प्रसिद्ध वक्ता
जगद्वल्लभ
जैन दिवाकर
श्री चौथमल जी महाराज
की
स्मृति में समायोजित

जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ

सम्पादक—

कविरत्न केवल मुनि

✲ आशीर्वाद

राष्ट्रसंत आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म०

✲ परामर्श एवं मार्गदर्शन

श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधर केसरी
श्री मिश्रीमलजी महाराज
उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज
उपाध्याय श्री फूलचन्दजी महाराज 'श्रमण'
उपाध्याय श्री मधुकर मुनिजी महाराज
प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज
मेवाड़भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज

✲ सम्पादक मण्डल

श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री
श्री अशोक मुनि साहित्यरत्न
श्री अजीत मुनि 'निर्मल'
श्री रमेश मुनि सिद्धान्त-आचार्य
श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'
पं० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल
डा० श्री नेमीचन्द जैन (इन्दौर)
डा० श्री नरेन्द्र भानावत (जयपुर)
डा० श्री सागरमल जैन (भोपाल)
श्री विपिन जारोली (कानोड़)

✲ प्रबन्ध सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

✲ संप्रेरक एवं सहयोगी

पं० मुनि श्री मूलचन्द जी महाराज
तपस्वी श्री मोहनलाल जी महाराज
पं० श्री उदय मुनि जी महाराज
पं० भगवती मुनि जी महाराज
पं० श्री चन्दन मुनि जी महाराज

✲ संयोजक तथा प्रकाशक

अभयराज नाहर
श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
महावीर बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

✲ प्रथमावृत्ति वि० सं० २०३५, जनवरी १९७९

[उदार सहयोगियों से प्राप्त अर्थसहयोग से प्रचारार्थ अर्धमूल्य]
✲ मूल्य—मात्र तीस रुपया

समर्पण

जिनके दिव्य ज्ञानालोक ने,
हजारों हृदयों का अंधकार दूर किया,
जिनकी अमोघ वाणी ने,
हजारों-हजार पतितों का उद्धार किया,
जिनकी अनंत करुणा ने,
लाखों जीवों को अभय-दान दिया,
उन श्रद्धा-संयम-सत्य-शील-प्रज्ञा के
साकार-पुरुष,
जैन दिवाकर, जगद्वल्लभ, गुरुदेव,
श्री चौथमल जी महाराज की
पावन स्मृति स्वरूप,
उन्हीं के श्री-चरणों में,
सश्रद्धा, सविनय, सभक्ति...

— केवल मुनि

प्रकाशकीय

तीन वर्ष पूर्व जब श्री जैन दिवाकर जन्म शताब्दी वर्ष के आयोजनों का कार्यक्रम बन रहा था, गुरुदेवश्री के भक्तों के मन में एक उत्साह व उमंग की लहर दौड़ रही थी। अनेक कल्पनाएँ व अनेक कार्यक्रम व सपने आ रहे थे। समारोह को सफलतापूर्वक तथा सुनियोजित तरीके से मनाने के लिए एक महासमिति का भी गठन किया। जिसका नाम था—**श्री जैन दिवाकर जन्म शताब्दी समारोह महासमिति**।

इस समिति में समाज के अनेक गणमान्य, उत्साही कार्यकर्ता, सेवा-भावी तथा दानी-मानी सज्जन सम्मिलित थे। सभी ने उत्साहपूर्वक समारोह मनाने का संकल्प लिया और इस महान् कार्य में जुट गये।

इन दो वर्षों में, इन्दौर, रतलाम, जावरा, मन्दसौर, चित्तौड़, कोटा, ब्यावर, जोधपुर, उदयपुर, निम्बाहेडा, नीमच, चित्तौड़, देहली आदि प्रमुख नगरों में तथा सैकड़ों छोटे-छोटे गाँवों में भी बड़े उत्साहपूर्वक अनेक आयोजन हुए, कार्यक्रम हुए। अनेक स्थानों पर गुरुदेवश्री जैन दिवाकर जी महाराज की स्मृति में, विद्यालय, चिकित्सालय, वाचनालय, साधर्मी-सहायता फंड आदि जन-सेवा के महत्त्वपूर्ण कार्यों का प्रारम्भ हुआ, लोगों ने तन-मन-धन से कार्य भी किये और उन्मुक्त मन से सहयोग भी किया। प्रायः समूचे भारत के जैनों में श्री जैन दिवाकरजी महाराज के पवित्र नाम की गूंज पुनः गूंज उठी और उनकी दिव्यता की पावन स्मृतियाँ भी ताजी हो उठीं।

गत वर्ष इन्दौर चातुर्मास से पूर्व ही कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज जोकि श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रमुख प्रभावशाली शिष्य हैं, उनके मन में जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ के निर्माण हेतु भी भावनाएँ जाग रही थीं। उनकी इच्छा थी कि उस महापुरुष की स्मृति में जहाँ सैकड़ों जन-सेवी संस्थाओं की स्थापना हो रही है, वहाँ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विराट् स्वरूप का दर्शन कराने वाला एक श्रेष्ठ ग्रन्थ भी लोगों के हाथों में पहुँचना चाहिए।

कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज यद्यपि स्मृति ग्रन्थ के महत्त्व को जानते थे, पर अन्यत्र भी स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन की चर्चाएँ चल रही थीं अतः उस कार्य से स्वयं को पृथक् ही रखा। उसी बीच आपने श्री जैन दिवाकरजी महाराज के विराट व्यक्तित्व का स्पष्ट दर्शन कराने वाली एक पुस्तक लिखी—'श्री जैन दिवाकर'। वैसे यह पुस्तक ही गागर में सागर थी। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्यक्तित्व एवं थोड़े से विचारों को बड़ी सुन्दर ललित भाषा में तथा प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया। सर्वसाधारण में यह प्रकाशन बहुत ही लोकप्रिय बना। चातुर्मास में कार्तिक शुक्ला १३ के देशव्यापी विशाल समारोह के प्रसंग पर मुनिश्री जी की प्रेरणा से 'तीर्थंकर' (मासिक) का एक सुन्दर विशेषांक भी प्रकाशित हुआ। देश विदेश में विद्वानों व विचारकों में सर्वत्र ही उसकी सुन्दर प्रतिक्रिया रही।

चातुर्मास के पश्चात् गत अप्रैल (बैसाख) महीने में ब्यावर में जन्म शताब्दी का विशाल

समारोह आयोजित हुआ। उपाध्याय पं० रत्न श्री मधुकर जी महाराज, श्री प्रतापमलजी महाराज, कविरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज, पं० श्री मूल मुनि जी महाराज, श्री अशोक मुनिजी महाराज आदि मुनिवरों व महासतियों के सम्मिलन से समारोह की शोभा में चार चाँद लग गये। इस प्रसंग पर स्व० गुरुदेवश्री के परम भक्त महाराणा भूपालसिंहजी (उदयपुर) के वंशज श्रीमान् महाराणा भगवतसिंहजी भी पधारे थे।

अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस एवं अखिल भारतीय जैन दिवाकर जन्म शताब्दी समारोह महासमिति की खास मिटिंग भी हुई। महासमिति की कार्यकारिणी के समक्ष 'जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ' प्रकाशन का पुनः जोरदार आग्रह आया और समिति ने सर्वानुमति से प्रस्ताव पास कर कविरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज से स्मृति-ग्रन्थ निर्माण का दायित्व अपने हाथों में लेने की प्रार्थना की।

गुरुदेव की स्मृति में आयोजित कार्य और समाज की आग्रह-भरी विनती को ध्यान में रखकर कवि श्री केवल मुनिजी महाराज ने स्मृति-ग्रन्थ सम्पादन आदि का दायित्व स्वीकार कर लिया। रूपरेखा बनी। विद्वानों से विचार-विमर्श हुआ। जैन दिवाकर स्मृति निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन भी हुआ और कुल मिलाकर श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ के रूप में यह श्रद्धा का सुमन गुरुदेवश्री के चरणों में समर्पित करने में हम सफल हुए।

ग्रन्थ के सम्पादन में श्रीयुत श्रीचन्दजी सुराना, डा० श्री नरेन्द्र भानावत, श्री विपिन जारोली आदि का भावपूर्ण सहयोग मिला तथा कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज की प्रेम पूर्ण प्रेरणा से प्रेरित होकर अनेक उदार सज्जनों ने अर्थ सहयोग दिया। श्री ज्ञानचन्द जी तातेड़, श्री नेमीचन्द जी तातेड़ श्री कमलचन्द जी धोडावत आदि उत्साही युवकों एवं बहनों ने भी बहुत सहयोग दिया।

अगर श्रीचन्दजी सुराना का सहयोग नहीं मिला होता तो यह ग्रन्थ इस रूप में सामने नहीं आ सकता एवं देहली के नवयुवक कार्यकर्ताओं का सहयोग नहीं होता तो ग्रन्थ अर्ध मूल्य में प्राप्त होना कठिन था।

साथ ही आगरा के प्रमुख प्रेस श्री दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स के मालिक बाबू पुरुषोत्तमदासजी भार्गव का सहयोग भी चिरस्मरणीय रहेगा, जिन्होंने कम समय में बहुत ही सुन्दर रूप में मुद्रण-कार्य सम्पन्न कराया।

उक्त सज्जनों के साथ ग्रन्थ के लेखक विद्वानों, मुनिवरों, उदार सहयोगियों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हुए मैं कामना करता हूँ कि भविष्य में भी इसी प्रकार सबके सहयोग का सम्बल हमें मिलता रहेगा।

—अभयराज नाहर

जय गुरुदेव !

मन्त्री, जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय

अपनी बात

सन्त का जीवन गंगा की धारा की तरह सहज पवित्र और सतत गतिशील होता है। सन्त का चरण-प्रवाह जिधर मुड़ता है, उधर के वायुमण्डल में पवित्रता और प्रफुल्लता की गन्ध महकने लगती है। जन-जीवन में जागृति की लहर दौड़ जाती है। मानवता पुलक-पुलक उठती है।

स्व० जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमल जी महाराज के दिव्य व्यक्तित्व की सन्निधि इसी प्रकार की थी। उनकी दिव्यता की अनुभूति और प्रतीति जिनको हुई, उनका जीवन क्रम आमूल चूल बदला गया, न केवल बदला, किन्तु पवित्रता और प्रसन्नता से गमक-गमक उठा। चाहे कोई गरीब था या अमीर, राजा था या रंक, अधिकारी था या कर्मचारी, किसी भी वर्ग, किसी भी वर्ण, और किसी भी पेशे का व्यक्ति हो, जो उनके निकट में आया, उनकी वाणी का पारस-स्पर्श किया, उसके जीवन में एक जादुई परिवर्तन हुआ, सुप्त मानवता अंगड़ाई ले उठी और वह मानव सच्चे अर्थ में मानव बन गया, मानवता के सन्मार्ग पर चल पड़ा।

मेरी इस अनुभूति में श्रद्धा का अतिरेक नहीं है, यथार्थ का साक्षात्कार है। मैं ही नहीं, हजारों व्यक्ति आज भी इसमें साक्ष्य हैं कि—ऐसा प्रभावशाली सन्त शताब्दियों में विरला ही होता है। उनका ज्ञान पांडित्य-प्रदर्शन से दूर, गंगोत्री के सलिल की तरह शीतल, शुद्ध और विकार रहित था। उनका दर्शन (आस्था) विशुद्ध और सुस्थिर था। वीतराग वाणी के प्रति सर्वात्मना समर्पित थे वे। विभिन्न धर्मों-दर्शनों का अध्ययन किया, अन्य दार्शनिक विद्वानों व धर्मावलम्बियों के सम्पर्क में भी रहे, पर उनकी चेतना स्वयं के रंग में ही रंगी रही, समय, परिस्थिति और भौतिक प्रभाव का रंग उन पर नहीं चढ़ा, बल्कि उनकी प्रचण्ड ज्ञान चेतना का रंग ही सम्पर्क में आने वालों पर गहराता रहा।

गुरुदेव श्री के चारित्र की निर्मलता स्वयं में एक उदाहरण थी। विवाह करके भी जो अखंड ब्रह्मचारी रह जावे उसके आत्म-संयम की अन्य कसौटी करने की अपेक्षा नहीं रह जाती। जम्बूस्वामी की तरह सुहागरात को ही 'विराग रात' बनाने वालों की चारित्रिक उज्ज्वलता का क्या वर्णन किया जाय।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज की आत्म-शान्ति अद्भुत थी। उनकी समग्र अन्तश्चेतना जैसे ऊर्ध्वमुखी हो गई थी। वाणी और मन एकाकार थे। वे आगम की भाषा में—

जोगसच्चे, करणसच्चे, भावसच्चे—थे।

मन से, वचन से, काया से सत्य रूप थे। वे सत्य को समर्पित थे। करुणा उनके कण-कण में रम चुकी थी। उनकी अहिंसा-जागृत थी। इसलिए क्रूर-हिंसक उनके समक्ष टिक नहीं, क्रूरता उनकी वाणी से कांप उठी थी, हिंसा भी वहाँ छिप चुकी थी।

वे समदर्शी थे। धर्म और साधना के क्षेत्र में किसी भी प्रकार के भेदभाव, ऊँच-नीच की परिकल्पना उनकी प्रकृति के विरुद्ध थी। महलों की मिठाई की अपेक्षा गरीब की रोटी उन्हें अधिक प्रिय थी।

वे एकता और संगठन के प्रेमी थे। वे एकता के लिए हर प्रकार के स्वार्थों का बलिदा कर सकते थे और किया भी, किन्तु सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए।

वे एक कर्मयोगी थे। फलाकांक्षा से दूर रहकर अनपेक्ष भाव से कर्तव्य करते जाना— यही उनका जीवन व्रत था।

आज जिस 'अंत्योदय' की बात राजनैतिक धरातल पर हो रही है, वह 'अन्त्योदय' क प्रक्रिया उन्होंने मानस-परिवर्तन के साथ अपने युग में ही प्रारम्भ कर दी थी। भील, आदिवासी हरिजन, चमार, मोची, कलाल, खटीक, वेश्यायें—आदि उनके उपदेशों से प्रभावित होकर स्वय ही धर्म की शरण में आये और सभ्य सुशील सात्विक जीवन जीने लगे। यह एक समाज-सुधार क चमत्कारी प्रक्रिया थी, जो उनके जीवनकाल तक बराबर चलती रही। काश ! वे शतायु होते त जैन समाज का और अपने देश का नक्शा कुछ अलग ही होता। पीड़ित-दलित मानवता आज मुस्कराती नजर आती।

एक दिन गुरुदेव कह रहे थे "मेरा उद्देश्य विराट् है, विशाल है, प्राणिमात्र की कल्याण कामना है। एक जाति के प्रति यह दृष्टिकोण बनाऊँ तो पूरी जाति को सुधार सकता हूँ परन्तु फिर दृष्टि सीमित हो जायगी, सर्वजनहिताय न रहेगी।'

मैं बचपन से ही उनके सान्निध्य में रहा, बहुत निकट से उनको देखा। प्रारम्भ से ही तर्कशील वृत्ति होने के कारण उनको परखा भी, अनेक बातें पूछी थीं। उनके सम्पर्क में आने वालों की भावनाओं और वृत्तियों को भी समझा, कुल मिलाकर मेरे मन पर उनका यह प्रतिबिम्ब बना कि उनके व्यक्तित्व में समग्रता है। जीवन में सच्चाई है। खण्ड-खण्ड जीवन जीना उन्होंने सीखा नहीं था। प्रभु भक्ति भी सच्चे मन से करते थे और उपदेश भी सच्चे अन्तःकरण से देते थे। उनका श्रुतज्ञान जो भी था, सत्कर्म से परिपूरित था। बस, इसीलिए उनका व्यक्तित्व चमत्कारी और प्रभावशाली बन गया। निस्पृहता और अभयवृत्ति उनके जीवन का अलंकार बन गई थी।

उनकी समन्वयशील प्रज्ञा बड़ी विलक्षण थी। अपने सिद्धान्तों पर अटूट आस्था रखते हुए भी वे कभी धर्माग्रही, एकान्तदर्शी या मतवादी नहीं बने। 'सर्व धर्म समभाव' जैसे उनके अन्तर मन में रम गया। उनकी एकता, सर्वधर्म समन्वय, दिखावा, छलना या नेतृत्व करने की चाल नहीं, किन्तु मानवता के कल्याण की सच्ची अभीप्सा थी। उनके कण-कण में प्रेम, सरलता और बंधुता का निवास था।

श्री जैन दिवाकर जी महाराज का जन्म हुआ था तो शायद एक ही घर में खुशियों के नगारे बजे होंगे, किन्तु जिस दिन उनका महाप्रयाण हुआ—जैन-हिन्दू, सिक्ख-मुसलमान-ईसाई तमाम कौम में उदासी छा गई। सभी प्रकार के लोगों की आँखों से आँसू बह गये। महलों से लेकर झोंपड़ी तक ने खामोश होकर सिर झुकाया। यह उनकी अखण्ड लोकप्रियता का प्रमाण था।

इस वर्ष समग्र भारत में श्री जैन दिवाकरजी महाराज का जन्म शताब्दी महोत्सव मनाया जा रहा है। उनकी पावन स्मृति में भक्तों ने स्थान-स्थान पर जन-सेवा के कार्य किये हैं। विद्यालय, चिकित्सालय, निःशुल्क औषधालय, असहायों की सेवा सहायता आदि कार्य प्रारम्भ हुए हैं तथा

भी जागी कि उस महापुरुष की स्मृति में एक सुन्दर श्रेष्ठ स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन भी किया जाय। इसी श्रद्धा भावना की सम्पूर्ति स्वरूप यह स्मृति ग्रन्थ भी तैयार हो गया है।

यद्यपि आजकल अभिनन्दन ग्रन्थ तथा स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का एक रिवाज या शौक-सा हो गया है, इस कारण कुछ लोग इसे महत्त्व कम देते हैं। इसी कारण मेरे अन्तर् मन में भी काफी समय तक विचार मन्थन चलता रहा कि स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय या नहीं ? अनेक श्रद्धालु जनों व विद्वानों का आग्रह रहा कि श्री जैन दिवाकरजी महाराज का कृतित्व और व्यक्तित्व बहुत ही विराट् था। इस शताब्दी के वे एक महान् पुरुष थे। उन्होंने अपने जीवन के ७३ वर्षों में जो कुछ किया, वह पिछले सैकड़ों वर्षों में नहीं हुआ। अहिंसा, दया और सदाचार प्रधान जीवन की जो व्यापक प्रेरणा उनके कृतित्व से मिली है वह इतिहास का अद्भुत सत्य है। भौतिक या आर्थिक सहयोग के बिना सिर्फ उपदेश द्वारा हजारों हिंसाप्रिय व्यक्तियों की हिंसा छुड़ाना, व्यसन ग्रस्त व्यक्तियों को सिर्फ उपदेश सुनाकर व्यसन मुक्त बना देना एक बहुत ही अद्भुत कार्य था। शासकों, अधिकारियों, व्यापारियों और सामान्य प्रजाजनों को एक समान रूप से प्रभावित कर जीवन-परिवर्तन की प्रेरणा देना सचमुच में इतिहास का अमर उदाहरण है। कहा जा सकता है कि श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने एक नये युग का प्रवर्तन किया था। उनके युग को हम 'जैन दिवाकर-युग' कह सकते हैं। और ऐसे युग-प्रवर्तक महापुरुष के कृतित्व-व्यक्तित्व के मूल्यांकन स्वरूप किसी स्मृति ग्रन्थ का निकालना सचमुच में आवश्यक ही नहीं, उपयोगी भी होता है। और होता है हमारी कृतज्ञता का स्वयं कृतज्ञ होना।

मैंने स्मृति ग्रन्थों की चालू परम्परा से थोड़ा-सा हटकर चलना ठीक समझा। आजकल अभिनन्दन ग्रन्थ या स्मृति ग्रन्थ जो भी निकलते हैं, उसमें मूल व्यक्तित्व से सम्बन्धित बहुत ही कम सामग्री रहती है और अन्य विषयों की सामग्री की अधिकता व प्रधानता रहती है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि मूल व्यक्तित्व की सामग्री अल्प हो, या उसकी व्यापकता एवं सम साम-यिक स्थितियों में उपयोगिता कम हो ! किन्तु श्री जैन दिवाकर जी महाराज के विषय में तो ऐसा नहीं है। उनके जीवन से सम्बन्धित सामग्री प्रचुर है। और धर्म, समाज तथा राष्ट्र के लिये किये गये उनके महनीय प्रदानों का लेखा-जोखा तो अपार है। मानवता के कल्याण की कथाएँ तो उनकी कई स्मृति ग्रन्थों की सामग्री दे सकती फिर उनकी उपेक्षा क्यों ? वास्तव में तो उन्हीं का मूल्यांकन हमें करना है। उन्हीं के व्यक्तित्व की किरणों के बहुरंगी आलोक में आज की जागतिक जटिलताओं का समाधान खोजना है अतः मैंने परम्परागत शैली को छोड़कर मूल व्यक्तित्व को प्रधानता देने की दृष्टि रखी। स्मृति ग्रन्थ में विषयान्तर करने वाले अनेक श्रेष्ठ लेख उपेक्षित करने पड़े हैं। हाँ, 'चिन्तन के विविध बिन्दु' में कुछ उपयोगी सामग्री अवश्य देदी है, ताकि पाठ्य सामग्री में कुछ विविधता का रस भी मिश्रित हो सके।

प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ में हमारे विद्वान् सम्पादक मंडल ने श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्यक्तित्व व कृतित्व के अनेक स्वरूपों को, अनेक दृष्टियों से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। हमारा विचार था प्रारम्भ में जिन्होंने साक्षात्कार किया है उनकी श्रद्धांजलियाँ दी ही जायें, उनके विशाल समूह के बीच जो उनके निकट सम्पर्क में नहीं आये हैं, वे उनके जीवन और विचार को पढ़ें तथा उस पर अपने दृष्टिकोण से लिखें। इस हेतु 'श्री जैन दिवाकर स्मृति निबन्ध प्रतियोगिता'

का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में भाग लेने वालों को श्री जैन दिवाकरजी महाराज से सम्बन्धित काफी साहित्य पढ़ने हेतु निःशुल्क भेजा गया। हमें सन्तोष है कि अनेक लेखकों ने श्री जैन दिवाकरजी महाराज को पढ़ा है, गहराई से पढ़ा है और अपने नजरिये से देखकर उन पर लिखा है। इन लेखों में घटनाओं की पुनरावृत्तियाँ तो होना सम्भव है, क्योंकि विभिन्न लेखक एक ही व्यक्तित्व पर जब अपने विचार व्यक्त करेंगे तब घटनाएँ तो वे ही रहेंगी, किन्तु चिन्तन-मनन और निष्कर्ष अपना स्वतन्त्र होगा। 'व्यक्तित्व की बहुरंगी किरणें' शीर्षक खण्ड में ऐसा ही कुछ प्रतीत होगा।

इस ग्रन्थ के खण्ड हमने नहीं किये हैं, फिर भी विभागों का वर्गीकरण जो हुआ है वह खण्ड जैसा ही बन गया है। प्रथम विभाग में कालक्रमानुसार श्री जैन दिवाकरजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन-वृत्त दिया है। अब तक गुरुदेवश्री के जितने भी जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए हैं उनमें स्व० उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज द्वारा लिखित 'आदर्श मुनि' तथा 'आदर्श उपकार' सबसे अधिक विस्तृत एवं प्रामाणिक जीवन-चरित्र है। किन्तु इन पुस्तकों में वि० सं० १९८७ तक का ही जीवन-वृत्त मिलता है। इस संवत के बाद का जीवन-वृत्त कहीं लिखा हुआ नहीं मिलता, जबकि इसके बाद के चातुर्मास बहुत ही अधिक प्रभावशाली तथा महत्त्वपूर्ण रहे हैं। लोकोपकार की दृष्टि से इन चातुर्मासों की अपनी महत्ता है। मैंने जीवन-चरित्र लिखते समय संवत् १९८७ के बाद के जीवन-वृत्त को विस्तार पूर्वक लिखने के लिए अनेक स्थानों पर सामग्री खोजने का प्रयत्न किया है। ब्यावर-आगरा में पुरानी सामग्री—जैन प्रकाश की फाइलें, जैन पथ-प्रदर्शक आदि पत्रों की फाइलें देखने की चेष्टा की। परन्तु लिखित सामग्री तो उपलब्ध हुई ही नहीं, मुद्रित सामग्री भी कुछ ही उपलब्ध हुई। देहली में भी जैन प्रकाश की कुछ पुरानी फाइलें मिलीं। इनमें से कुछ सामग्री, कुछ घटनाएँ मिली है यथास्थान इनका लेखन जीवन-चरित्र में किया है और अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न भी किया है।

दूसरे विभाग में गुरुदेवश्री से सम्बन्धित कुछ संस्मरण हैं। यद्यपि बीज रूप में ये घटनाएँ प्रायः जीवन-चरित्र में आ गई हैं, पर हर लेखक अपनी दृष्टि से कुछ-न-कुछ नवीनता के साथ रखने की चेष्टा करता है, अतः कुछ रुचिकर संस्मरण दूसरे विभाग में ले लिए हैं।

तीसरा विभाग ऐतिहासिक महत्त्व का है। गुरुदेवश्री के भक्त–राजा, राणा, ठाकुर, जागीरदार आदि लोगों ने उनकी करुणा प्रपूरित वाणी से प्रभावित होकर जीवदया के पट्टे, अगता पालने की सनदें आदि घोषित तथा प्रचारित कीं, उनकी मूल प्रतिलिपि (आदर्श उपकार पुस्तक से) यहाँ दी गई हैं।

चतुर्थ विभाग में श्रद्धांजलियाँ हैं। आजकल श्रद्धांजलिया सर्वप्रथम छापी जाती है, पर मेरे विचार में पहले श्रद्धेय के उदात्त जीवन की झांकी मिलनी चाहिए, फिर श्रद्धार्चन होना चाहिए अतः इन्हें चतुर्थ विभाग में रखी है।

पंचम विभाग में गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व की बहुरंगी किरणों की एक विरल झांकी है। 'जैन दिवाकर स्मृति निबन्ध प्रतियोगिता' में लगभग ३०-४० निबन्ध आये थे। उनमें से जो अच्छे स्तर के निबन्ध प्रतीत हुए उनका समावेश इस विभाग में किया गया है। मैं पहले भी लिख

चुका हूँ, अनेक लेखकों द्वारा एक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखे जाने पर घटनाओं की पुनरावृत्ति, पुनर्लेखन होना सहज सम्भव है, वैसा हुआ है, किन्तु हर लेखक का सोचने-समझने एवं प्रस्तुत करने का अपना तरीका है, उसे सर्वथा नकारना या पुनरावृत्ति मात्र को दोष कोटि में रख देना उन अनेक लेखकों के साथ न्याय नहीं होगा। इस दृष्टि से इस विभाग में घटनाओं, संस्मरणों के उल्लेख ज्यों के त्यों रख दिये हैं। इस विभाग में श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्यापक व्यक्तित्व के विभिन्न रंग पाठकों के समक्ष उजागर होंगे।

छठा विभाग में श्री जैन दिवाकरजी महाराज की इतिहास-प्रसिद्ध अपूर्व प्रवचन-कला के सम्बन्ध में यत्किंचित विवेचन तथा कुछ प्रवचनांश पर लिए गये हैं ताकि पाठक उस मनोहर मोदक का आस्वाद पा सकें। यह सच है कि प्रवचनकार के श्रीमुख से सुने प्रवचन में और पुस्तकों में पढ़े हुए में अन्तर होता है। हाथी दांत जब तक हाथी के मुँह में रहता है तब तक उसकी शोभा व शक्ति कुछ अलग होती है, वह दीवार तोड़ सकता है किन्तु हाथी के मुख में से निकलने पर वह शक्ति नहीं रहती। फिर भी हाथी दांत हाथीदांत ही रहता है। ऐसे ही प्रवचन प्रवचन ही रहता है।

इसी प्रकार सप्तम विभाग में सरल सहज भाषा में रचे हुए स्व० गुरुदेवश्री के प्रिय भजन व पद दिये गये हैं जोकि आज भी सैकड़ों भक्तों को याद हैं, वे प्रातः सायं श्रद्धा और भावना पूर्वक उन्हें गुनगुनाते हैं।

अष्टम विभाग में कुछ विशिष्ट विद्वानों के धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा इतिहास से सम्बन्धित लेख हैं जिनका जैन-दृष्टि से सीधा सम्बन्ध जुड़ता है।

इस प्रकार अष्ट पंखुड़ी कमल-दल की भाँति परम श्रद्धेय गुरुदेव का यह स्मृतिग्रन्थ अष्ट विभाग में सम्पन्न हुआ है। इसका समस्त श्रेय हमारे सहयोगी सम्पादकों, लेखकों, उदार सहयोगी सज्जनों को है जिनकी निष्ठा, विद्वत्ता, भक्ति और भावना इस ग्रन्थ के पृष्ठ-पृष्ठ पर अंकित है। मैं तो सिर्फ एक निमित्त मात्र हूँ। मेरे प्रयत्न से एक शुभकार्य हो सका, इसी का मुझे आत्मतोष है।
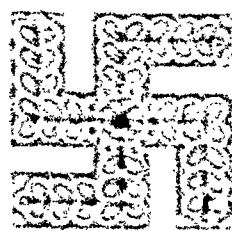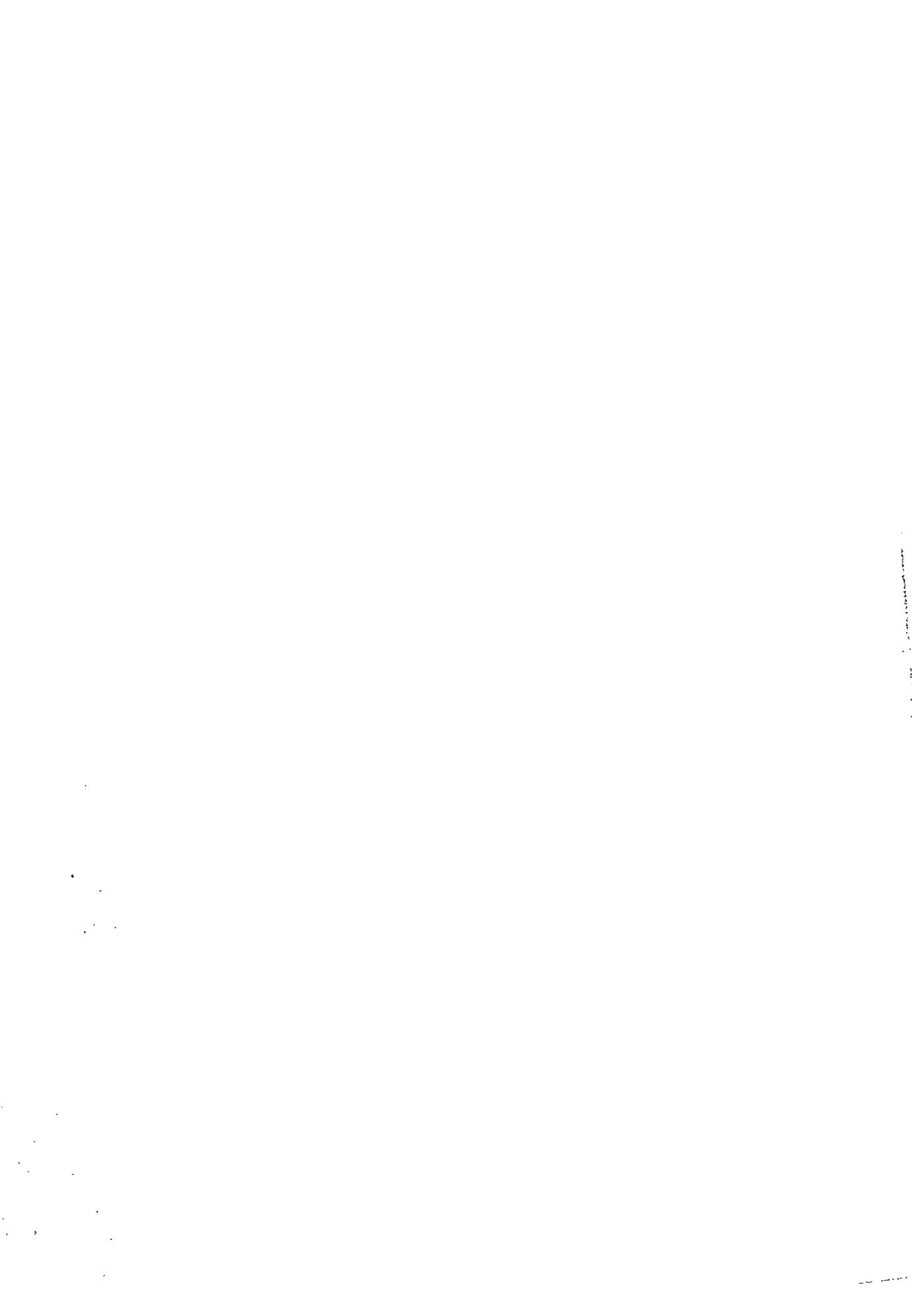
—केवल मुनि

गुरुदेव श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रतिभाशाली प्रमुख शिष्य

कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज

[स्मृति ग्रन्थ के प्रधान संपादक तथा प्रेरणा शक्ति केन्द्र]

श्री जैनदिवाकर जन्मशताब्दी महोत्सव (५ नवम्बर १९७८ देहली में) के अवसर पर महामहिम उपराष्ट्रपति श्री बा. दा. जत्ती गुरुदेव के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप उद्घाटन भाषण दे रहे हैं। पट्ट पर समारोह के प्रेरणासूत्र श्री केवलमुनि जी म. एवं सामने विशाल जन समूह।

शुभकामना सन्देश

✡✡

दिनांक १२-६-१९७८

स्वर्गीय जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज साहब का स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है, जानकर हार्दिक सन्तोष हुआ।

चौथमलजी महाराज जैन के सच्चे दिवाकर थे, उनके ज्ञान की किरणें झोंपड़ी से महलों तक पहुँची, वाणी के अद्भुत जादू ने वह कार्य किया जो सत्ता अपने तलवार एवं धन के बल से नहीं कर सकी। पतितों को पावन बनाया, लाखों जीवों को अभयदान दिलाया, अपने त्याग-तप से अद्भुत कार्य कर जनता को एक नई दिशा दी। बिखरे हुए समाज को एकत्र करने का अथक प्रयास किया। उनके जीवन के आद्योपान्त कार्य प्रत्येक प्राणी को अनुकरणीय हैं। इस स्मृति-ग्रन्थ के माध्यम से उनके जीवन की कृतियाँ प्रकाश में लाई जायें, जो कि भविष्य की पीढ़ी को प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करती रहेंगी। इसी शुभ-कामना के साथ।

—आचार्य आनन्द ऋषि

...भकामना

उपराष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली
मई २६, १६७८

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप इस वर्ष अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज के सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज का जन्म शताब्दी वर्ष मना रहे हैं और उनकी स्मृति में एक स्मृति-ग्रन्थ भी प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। मैं आपके इस आयोजन एवं स्मृति-ग्रन्थ की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ।

आपका
ब० दा० जत्ती
(उपराष्ट्रपति, भारत)

✡

राज भवन
लखनऊ
मई ३१, १६७८

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ है कि सर्व अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज सुप्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जन्मशताब्दी वर्ष सम्पन्न करने जा रहा है।

आध्यात्मिकता भारतीय राष्ट्र की प्राण शक्ति है जिसने देश और काल की चुनौतियों के अनुरूप कलेवर बदलते हुए समाज को जीवन्त बनाया है। अतः प्रत्येक आध्यात्मिक गुरु तथा सन्त के व्यक्तित्व व कृतित्व को द्वार-द्वार तक पहुँचाना राष्ट्र की अनुपम सेवा है।

उत्सव की सफलता के लिए मैं हार्दिक शुभकामनायें भेजता हूँ।

ग० दे० तपासे
(राज्यपाल, उत्तर प्रदेश)

संदेश

राज भवन
बंगलौर-५६० ००१
८ जून, १९७८

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज के तत्त्वावधान में सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की जन्मशताब्दी मनायी जा रही है और उसके उपलक्ष में एक स्मृति-ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जा रहा है।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने १८ वर्ष की किशोरावस्था में ही समाज में व्याप्त दुर्व्यसनों से दुखी होकर वैरागी बनकर जैन श्रमण दीक्षा ग्रहण की थी और तब से लगातार ५५ वर्ष उनके स्वर्गवास तक मानवमात्र की सेवा करते रहे। सन्त होते हुए भी वे महान् राष्ट्रधर्मी व समाजधर्मी थे जिसके कारण सभी कौमों के लोग उनका बड़ा आदर करते थे। मैं आशा करता हूँ कि उनके जन्मशताब्दी समारोह के अवसर पर उनके अनुयायी बन्धु उनके मानवधर्मवादी मिशन को सब प्रकार का बढ़ावा देने का दृढ़ संकल्प करके उनके चरणों पर अपनी श्रद्धा अर्पित करेंगे।

उनके जन्मशताब्दी समारोह की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनायें भेजता हूँ।

गोविन्द नारायण
(राज्यपाल, कर्णाटक)

✡

RAJ BHAVAN
Madras—600 022,
31st May. 78.

Dear Shri Surana,

I am glad to know that you are publishing Shri Jain Divakar Smruti Granth. Pujya Shri Chauthmalji Maharaj is well known for his numerous social services. His mission is a great inspiration to many. I wish the Granth and the function great success.

Yours sincerely,
(Prabhudas B. Patwari)

शुभकामना

विदेश मंत्री, भारत
दिनांक : २८-६-७८

प्रिय महोदय,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज सुप्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जन्म-शताब्दी समारोह मनाने जा रहा है। जैन-दर्शन में सत्य और अहिंसा जैसे चिरन्तन एवं विश्वजनीन मानवीय मूल्यों को मान्यता दी गई है और मुझे आशा है कि इस शताब्दी समारोह के माध्यम से अनेक सद्विचार समाज के सामने प्रस्तुत किये जायेंगे।

इस समारोह की सफलता के लिए हमारी हार्दिक शुभ कामनायें स्वीकार करें।

आपका
(अटल बिहारी वाजपेयी)

✡

पैट्रोलियम और रसायन तथा उर्वरक मंत्री
भारत सरकार
नई दिल्ली-११०००१
दिनांक : ५-६-१९७८

यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि जैन दिवाकर जन्म शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में श्री जैन दिवाकर स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। ऐसे अवसर पर चिकित्सालयों, विद्यालयों आदि की स्थापना करना उनके प्रति एक महान् श्रद्धांजलि अर्पित करना होगा।

मैं स्मृति-ग्रन्थ के सफल प्रकाशन हेतु अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेज रहा हूँ।

—हेमवतीनन्दन बहुगुणा

राज्य वित्त मंत्री
भारत
नई दिल्ली
दिनांक : ३१ मई १९७८

प्रिय श्री सुराना जी,

आपके २२ मई के पत्र से यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज श्री चौथमलजी महाराज का जन्म-शताब्दी वर्ष मनाने जा रहा है।

किसी भी देश में ऐसे सन्त महात्मा कभी-कभी ही जन्म लेते हैं जिनका जीवन यथार्थ रूप में सम्पूर्ण मानव समाज को और दरिद्र नारायण को समर्पित हो। बचपन में श्री चौथमलजी महाराज के बारे में जो कुछ जाना और सुना था, उस स्मृति के आधार पर मैं यह अभी भी कह सकता हूँ कि वे ऐसे विरले सन्त महात्माओं में से थे।

यह श्री चौथमलजी महाराज की विशेषता थी कि वे घोर अभाव में रहने वाले गरीब से गरीब आदमी के मन में भी विशिष्ट प्रकार की जिजीविषा जाग्रत कर देते थे। उसके अभावों में मानसिक सन्तोष का अमृत टपका कर उसके जीवन के शून्य पात्र में कर्तव्य और लगन का मधु भर देते थे।

आज के इस संघर्षमय जीवन और प्रतिगामी प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमें इस बात की आवश्यकता महसूस होती है कि हम महान् सन्त महात्माओं की जन्मतिथि अथवा जन्म-शताब्दी मनाकर ही न रह जायें, वरन् गांव-गांव और नगर-नगर में ऐसे सदाचार-संघों की स्थापना करें, जो प्रत्येक मानव के जीवन को जीने योग्य बना सकें।

आपके इस सद्प्रयास की सफलता की कामना तो मैं करता ही हूँ, परन्तु साथ ही जानना चाहता हूँ कि आपका समाज यथार्थ रूप से इस दिशा में क्या-क्या कार्यक्रम बना रहा है।

आपका
सतीश अग्रवाल

✱

शुभकामना

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री के
सहायक निजी सचिव
भारत
नई दिल्ली-११००११
८ जून, १९७८

प्रिय महोदय,

आपका दिनांक २२ मई का पत्र माननीय स्वास्थ्य मन्त्री महोदय के नाम प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के जन्म शताब्दी वर्ष पर आपके द्वारा आयोजित होने वाले समाज-सेवी कार्यों एवं स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन के बारे में जानकर माननीय मंत्री जी को प्रसन्नता हुई। आपके आयोजन एवं स्मृतिग्रन्थ अपने उद्देश्य में सफल हों इस हेतु माननीय मंत्री जी अपनी शुभकामनायें प्रेषित करते हैं।

भवदीय
(राजीव उपाध्याय)

☆

वीरेन्द्रकुमार सखलेचा
मुख्य मंत्री

भोपाल
दिनांक : २२ जून, १९७८

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज प्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की जन्म शताब्दी मना रहा है।

श्री चौथमलजी महाराज ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया तथा सदाचार के प्रचार द्वारा एक नई लहर पैदा की थी। वह एकता तथा विश्व बन्धुत्व के सबल प्रवक्ता थे।

मैं आशा करता हूँ कि उनकी जन्म शताब्दी के आयोजन तथा स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन से उनके अनुकरणीय कार्यों पर प्रकाश पड़ेगा तथा लोगों को समाज-सुधार के कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी। मैं इस आयोजन की सफलता की कामना करता हूँ।

(वीरेन्द्रकुमार सखलेचा)

शिक्षण मंत्री
महाराष्ट्र शासन
मंत्रालय, मुंबई ४०० ०३२
दिनांक २८ जून १९७८

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि प्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की इस वर्ष जन्मशताब्दी मनायी जा रही है।

श्री चौथमलजी महाराज ने भगवान् श्री महावीर की सीख को अपने जीवन में यथार्थ किया है। अहिंसा, सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन, गरीबों की सेवा और गरीबी नष्ट करने के उनके अथक प्रयत्नों से वे समाज के सभी वर्गों में बड़े प्रिय, आदरणीय और श्रद्धा के योग्य सिद्ध हुए हैं। ऐसे महान् क्रान्तिकारी सुधारक सन्त की स्मृति में एक स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन सर्वथा उचित है।

श्री चौथमलजी महाराज की जन्मशताब्दी और स्मृति-ग्रन्थ के प्रति मेरी सद्भावनायें।

(डॉ० बलीराम हिरे)

☆

राजमाता जोधपुर

उमेद भवन
जोधपुर
दिनांक १४-६-७८

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज द्वारा प्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जन्मशताब्दी वर्ष मनाया जा रहा है और इस अवसर पर उनके उदात्त चरित्र से प्रेरणा लेने व उनके जीवन सुधार मिशन को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से उनकी स्मृति में एक स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन होने जा रहा है।

मेरी इस स्मारिका की सफलता हेतु शुभकामनायें हैं।

कृष्णा कुमारी
(राजमाता-जोधपुर)

KASTURBHAI LALBHAI Tele { Gram "LALBHAI"
Phone : 66023 & 22377

Pankore's Naka,
Ahmedabad
31-5-78

आपका ता० २९-५-७८ का पत्र और उसके साथ भेजी हुई श्री चौथमलजी महाराज की जीवन परिचय पत्रिका मिली।

अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज प्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जन्म शताब्दी वर्ष मना रहे हैं और इसके उपलक्ष में एक 'स्मृति-ग्रन्थ' का प्रकाशन कर रहे हैं वह जानकर प्रसन्नता हुई।

इस 'स्मृति-ग्रन्थ' द्वारा आप लोग श्री जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज के उपदेश को समाज में प्रचार करने में सफल हों, ऐसी मैं शुभकामनाएँ प्रदान करता हूँ।

लि०
कस्तुरभाइ लालभाइ के प्रणाम

☆

जवाहरलाल मूणोत **बम्बई**

२ जून, १९७८
(ज्येष्ठ १२, १९०० शक)

प्रकट है कि श्री जैन दिवाकर स्मृति-ग्रन्थ एक उत्कृष्ट संरचना सिद्ध होगी, क्योंकि उसे श्री दिवाकरजी के अन्तेवासियों के परामर्श और मार्गदर्शन का लाभ मिलने जा रहा है, प्रधान सम्पादक के रूप में स्वयं श्री कविरत्न श्रमणवर श्री केवलमुनिजी हैं और साथ ही, उद्‌भट विद्वानों का सहयोगी सम्पादक मण्डल है। और सबसे बढ़कर, समग्र सार्थकता और सफलता की गैरण्टी स्वयं प्रथितयश दिवाकरजी महाराज साहब की रोमांचकारी प्रेरणादायी जीवनी है, जो अपने आप में एक धार्मिक महाकाव्य है, जिसका पारायण धर्म-साधना और धर्माराधना के दिव्य फल दे देता है। स्मृति-ग्रन्थ के सजीव, सुन्दर, सफल और चिरस्थायी यश की मेरी अग्रिम शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

आपका
जवाहरलाल मूणोत
अध्यक्ष : अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस

अनुक्रमणिका

प्रथम विभाग

एक पारस-पुरुष का गरिमामय जीवन

—कविरत्न श्री केवल मुनि

- एक शाश्वत धर्म-दिवाकर — १
- उद्भव : एक कल्पांकुर का — ८
- उदय : धर्म दिवाकर का — २१

द्वितीय विभाग

घटनाओं में बोलता व्यक्तित्व : स्मृतियों के स्वर

वाणी के देवता	अशोकमुनि, साहित्यरत्न	१०५
वशीकरण मन्त्र	श्री रमेश मुनि	१०७
सन्त वाणी का असर	,,	१०८
अनुभूत-प्रसंग	नरेन्द्र मुनि 'विशारद'	१०६
समय की बात	गणेशलाल धींग, छोगालाल धींग	१११
व्यक्तित्व की अमिट छाप	श्री ईश्वर मुनि	११२
अन्तिम दर्शन	कविरत्न केवल मुनि	११३
नजर भर देखा तो	मोतीसिंह सुराना	११७
सोहागवन्ती सौभाग्यवन्ती बन गई	सोहनलाल जैन	११८
अधर्मी भी गुरु बन गया	गणेश मुनि शास्त्री	१२०
आध्यात्मिक ज्ञान की जलती हुई मशाल	श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री	१२२
क्या ये चमत्कार नहीं है ?	चाँदमल नाहर	१२८
क्या चौथमलजी महाराज पधारे हैं ?	रिखबराज कर्णावट	१२६
जैसी करनी : वैसी भरनी	श्रीमती गिरिजा 'सुधा'	१३०
पाँच मिनट के [illegible]	सौभाग्यमल कोचट्टा	१३१
दुःख का सुख : महान् चमत्कार	बापूलालजी बोथरा	१३२

तृतीय विभाग

अहिंसा और सदाचार की प्रेरणा के साक्ष्य : ऐतिहासिक दस्तावेज

१३३-१७८

चतुर्थ विभाग

शाश्वत दिवाकर को श्रद्धा का अर्घ्य : भक्ति-भरा प्रणाम

शताब्दी पुरुष को प्रणाम	आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी	१७३
हमारी सच्ची श्रद्धांजलि	श्री बा० दा० जत्ती (उपराष्ट्रपति)	१७४
चौथ मुनि चारु चतुर (कविता)	मरुधरकेसरी मिश्रीमलजी म०	१७५
जगवल्लभ जैन दिवाकर (कविता)	श्री जगन्नार्थसिंह चौहान	१७६
देखा मैंने (कविता)	कविवर अशोक मुनि	१७७
एक महकता जीवन पुष्प	उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी म०	१७८
वह कालजयी इतिहास पुरुष	उपाध्याय श्री अमर मुनि	१७९
पवित्र प्रेरणा	प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म०	१८०
मुनिवर तुमने जन-मानस में····(कविता)	रमाकान्त दीक्षित	१८१
जन-जन के हृदय मन्दिर के देवता	उपाध्याय श्री मधुकर मुनि	१८२
शत-शत तुम्हें वन्दन	मुनिश्री लाभचन्द्रजी	१८३
युगप्रवर्तक श्री जैन दिवाकरजी	भंडारी श्री पदमचंदजी म०	१८४
गंगाराम जी री आंख्यां रा उजाला रो (लोकगीत)	मदन शर्मा	१८५
सच्चे सन्त और अच्छे वक्ता	उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी	१८७
विश्व वन्दनीय जैन दिवाकर	साध्वी कमलावती	१८९
शतशः प्रणाम (कविता)	डा० शोभनाथ पाठक	१९०
धण्णो य सो दिवायरो (प्रा० काव्य)	उमेश मुनि 'अणु'	१९१
नयनों के तारे (कविता)	श्रीमूल मुनि	१९१
श्रद्धा के सुमन	दिनेश मुनि	१९२
गीत (कविता)	चन्दनमल 'चाँद'	१९२
बहुमुखी प्रतिभा के धनी	महासती पुष्पावती	१९३
जिनके पद में (कविता)	अशोक मुनि	१९४
एक क्रांतदर्शी युग पुरुष	राजेन्द्र मुनि शास्त्री	१९५
महायोगी को वन्दन	श्री टेकचन्दजी म०	१९५
जैन दिवाकर ज्योति (कविता)	मुनि कीर्तिचन्दजी 'यश'	१९६
जैन दिवाकर-जग दिवाकर	रतन मुनि	१९७
श्रद्धा-सुमन	डा० भागचन्द्र जैन	१९७
सन्त परम्परा की एक अमूल्य निधि	मुनि प्रदीप कुमार	१९८
श्रद्धा के दो सुमन	बाबा विजय मुनि	१९८
प्रेम की हिलोरें उठीं (काव्य)	उपाध्याय अमर मुनि	१९९
परोपकारी जीवन	(स्व०) आचार्य श्री गणेशीलाल जी म०	१९९
भावांजली	रंगमुनि जी	२००
एक अद्भुत पुरुष	पं० शोभाचन्दजी भारिल्ल	२००
जीवन के सच्चे कलाकार (कविता)	जिनेन्द्र मुनि	२०१

वन्दना (कविता)	सुभाष मुनि 'सुमन'	२०१
प्रणाम, एक सूरज को	डा० नेमीचन्द जैन	२०२
जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म०	प्रकाशचन्द जैन	२०४
सफल जीवन का रहस्य	रतन मुनि	२०५
विराट व्यक्तित्व के धनी	साध्वी श्री कुसुमवती	२०६
हे जन जागृति के दिव्य दूत (कविता)	प्रो० श्रीचन्द्र जैन	२०७
जैन दिवाकर दिव्य द्वादशी (कविता)	श्री चन्दनमुनि (पंजाबी)	२०८
सम्पूर्ण मानवता के दिवाकर	श्री प्रतापमलजी महाराज	२०६
दिवाकर—एक आधार	निर्मलकुमार लोढा	२०६
शत-शत प्रणाम (कविता)	उदयचन्दजी महाराज	२१०
अद्‌भुत योगी (कविता)	मगन मुनि 'रसिक'	२१०
धर्मज्योति को नमन	मिश्रीलाल गंगवाल	२११
समर्पित व्यक्तित्व	सुगनमलजी भंडारी	२११
तेजस्वी पुण्यात्मा	बाबूलाल पाटोदी	२१२
अहिंसा धर्म के महान् प्रचारक	डा० ज्योति प्रसाद जैन	२१२
उच्चकोटि के व्याख्यानदाता	सेठ अचलसिंह	२१३
चौमुखी व्यक्तित्व के धनी	पारस जैन	२१४
पतितोद्धारक सन्त	सूरेलाल बया	२१४
शुभ कामनाएं और प्रणाम	द्वारिका प्रसाद पाटोदिया	२१४
दुखियारों के परम सखा	प्रतापसिंह वैद	२१५
वात्सल्य के प्रतीक	भगतराम जैन	२१५
जाज्वल्यमान नक्षत्र	सुन्दरलाल पटवा	२१५
एकता-करुणा-संवेदना की त्रिवेणी	चन्दनमल 'चाँद'	२१५
लोकोपयोगी मार्ग-दर्शक	चन्द्रभान रूपचन्द डाकले	२१५
स्वर्गवास के अवसर पर व्यक्त कुछ श्रद्धांजलियाँ		२१६-२१७
० धीरजलाल के० तुरखिया, ० सोमचन्द्र बोरा		
० जैनाचार्य श्री आनन्दसागर जी महाराज		
० चुन्नीलालजी कामदार		
श्रद्धा के सुमन	मदन मुनि 'पथिक'	२१७
जय बोलो जैन दिवाकर की (कविता)	केवल मुनि	२१८
जैन जग के दिवाकर को (कविता)	साध्वी चन्दना	२१८
मानवता की सेवा में निरत	दुर्गाशंकर त्रिवेदी	२१९
जीवित अनेकान्त	पं० नाथूलाल शास्त्री	२२१
जैन दिवाकर (कविता)	मोतीलाल जैन	२२२
एक देवदूत की भूमिका में	[illegible]	२२३
[illegible]	[illegible]	२२४
[illegible] (कविता)	श्रीमती [illegible]	२२४
अभिनन्दन	श्रीमती कमला जैन	२२५

भारत के नूर थे (कविता)	पं० जानकीलाल शर्मा	२२५
केवल स्मृतियाँ शेष	रामनारायण जैन	२२६
दिवाकर (कविता)	मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'कमल'	२२७
भाव-प्रणति	अमरचन्द लोढा	२२८
जैन दिवाकर अभिनन्दन है (कविता)	विपिन जारोली	२२९
अपनी आप मिसाल थे (कविता)	स्वामी नारायणानन्दजी	२३०
श्री जैन दिवाकर जी म० का समाज के प्रति योगदान	चाँदमल मारु	२३१
सद्धंजली (प्राकृत-कविता)	रमेश मुनि शास्त्री	२३२
महामानव (अकविता-कविता)	अक्षय कुमार जैन	२३३
वर समणो जिण दिवायरो	प्राचार्य माधव रणदिवे	२३४
दिवाकर पचीसी (कविता)	विजय मुनि 'विशारद'	२३५
गुलाब-सा सुरभित जीवन	सौ० मंजुला बेन बोटाद्रा	२३७
पूज्य गुरुदेव जैन दिवाकरजी	प्रकाशचन्द मारु	२३७
वन्दना (संस्कृत-कविता)	गोपीकृष्ण व्यास एम० ए०	२३८
श्री चौथमलजी महाराज को सम्प्रदाय में न बाँधें	मानव मुनि	२४१
दिवाकर स्तुति (कविता)	गौतम मुनि	२४१
अनुकरणीय आदर्श : शतशः नमन	आचार्य राजकुमार जैन	२४२
जैन दिवाकर : दिवाकर का योग	वैद्य अमरचन्द जैन	२४२
वन्दना हजार को....(कविता)	विमल मुनि	२४३
दिव्य ज्ञान की खान (कविता)	जीतमल चौपड़ा	२४३
तप त्याग की महान् ज्योति	मदनलाल जैन	२४४
हीरे की कनी थी (कविता)	मुनिश्री लालचन्दजी	२४४
सार्थक नाम	अमरचन्द मोदी	२४५
भक्त सहारे (कविता)	दिनेश मुनि	२४५
जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमल जित् प्रशस्ति : (सं० कविता)	पं० नानालाल रुनवाल	२४६
जैन दिवाकर : जग दिवाकर	लक्ष्मीचन्द्र जैन, 'सरोज' एम० ए०	२४७
श्रद्धार्चन	श्री श्वे० स्था० जैन संघ, लोहामण्डी, आगरा	२४७
एक अद्भुत फूल था	महासती मधुबाला	२४८
ज्योतिर्मान गुरुदेव (कविता)	कविरत्न श्री केवल मुनि	२४८
जैन दिवाकर पंच पंचाशिका (सं० कविता)	मुनि श्री घासीलालजी	२४९
दिवाकर श्रद्धांजलि (कविता)	भंवरलाल दोशी	२५५
गीत	श्री नवीन मुनि : सुरेशचन्द जैन	२५६

पंचम विभाग

जैन दिवाकर व्यक्तित्व की बहुरंगी किरणें

महामहिम जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज	अ० भा० श्वे०स्था० जैनकान्फ्रेंस स्व० ज० ग्रन्थ	२५७
मुनि श्री चौथमलजी : एक विलक्षण समाज शिल्पी	डा० नेमीचन्द जैन	२५८
युग पुरुष जैन दिवाकर जी महाराज	प्रो० निजामुद्दीन	२६२

श्रद्धा सुमन (कविता) — आर्या श्री आज्ञावतीजी — २७०
ज्योतिवाही युग-पुरुष श्री चौथमलजी महाराज — डा० नरेन्द्र भानावत — २७१
एक पारस-पुरुस श्री जैन दिवाकरजी — आचार्य श्री आनन्द ऋषि — २७४
एक सम्पूर्ण सन्त पुरुष — श्री केवल मुनि — २७६
जैन दिवाकर जी महाराज की कुछ यादें — रिषभदास रांका — २८१
समाज-सुधार के अग्रदूत — मुनि नेमीचन्द्र जी — २८३
विश्वमानव मुनि श्री चौथमलजी महाराज — पं० उदय जैन — २९५
चौथमल : एक शब्दकथा — मुनिश्री कन्हैयालाल 'कमल' — २९७
सन्तों की पतितोद्धारक परम्परा और मुनिश्री चौथमलजी महाराज — अगरचन्द नाहटा — २९९
बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, गुरुदेव श्री जैन दिवाकर जी — अजित मुनि 'निर्मल' — ३०६
लोक-चेतना के चिन्मय खिलाड़ी : मुनि श्री चौथमलजी महाराज — डा० महेन्द्र भानावत — ३१५
श्री जैन दिवाकर जी महाराज की संगठनात्मक शक्ति के जीवित स्मारक — कविरत्न श्री केवल मुनि जी — ३१८
भारत के एक अलौकिक दिवाकर — मनोहर मुनि 'कुमुद' — ३२२
सामाजिक समता के स्वप्न द्रष्टा : जगद्वल्लभ श्री जैन दिवाकर जी — पं० उदय नागोरी — ३२६
श्रमण-परम्परा में जैन दिवाकर जी महाराज का ज्योतिर्मय व्यक्तित्व — आचार्य राजकुमार जैन — ३३१
पीड़ित मानवता के मसीहा-श्री जैन दिवाकर जी — राजीव प्रचंडिया बी० ए० एल० एल० बी० — ३३८
समाज-सुधार की दिशा में श्री जैन दिवाकर जी के युगान्तरकारी प्रयत्न — श्री केवल मुनि — ३४३
समाज-सुधार में सन्त-परम्परा एवं श्री जैन दिवाकर जी महाराज — चतुर्भुज स्वर्णकार — ३४९
अन्त्योदय तथा पतितोद्धार के सफल सूत्रधार सन्त श्री जैन दिवाकर जी — रवीन्द्रसिंह सोलंकी — ३६०
साहित्य में सत्यं शिवं सुन्दरं के संगमकर्ता-श्री जैन दिवाकर जी — महेन्द्र मुनि 'कमल' — ३६३
जैन इतिहास के एक महान् प्रभावक तेजस्वी सन्त — साध्वी कुसुमवती — [illegible]
श्री जैन दिवाकर जी महाराज के सुधारवादी प्रयत्न : राजनैतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य — पीयूष कुमार जैन — [illegible]
व्यसन, [illegible] तथा सुसंस्कार निर्माण में श्री जैन दिवाकर जी का योगदान — [illegible] मेहता — [illegible]
एक निस्पृही [illegible] सन्त — साध्वी [illegible] कुमारी — [illegible]
मुनि श्री चौथमलजी महाराज के भाषण में सामाजिक चेतना के स्वर — [illegible] भानावत — [illegible]
मानव धर्म के व्याख्याता श्री जैन दिवाकर जी महाराज — डा० ए० डी० [illegible] — [illegible]
गुरु आज्ञा के साक्षी (कविता) — श्री केवल मुनि — [illegible]

षष्ठम विभाग

हृदयस्पर्शी और ओजस्वी प्रवचन कला : एक झलक

श्री चौथमलजी महाराज की प्रवचन कला	डा० नरेन्द्र भानावत	४०५
प्रसिद्धवक्ता श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रेरक प्रवचनांश	प्रा० श्रीचन्द जैन	४११
वाणी के जादूगर श्री जैन दिवाकर जी महाराज	सुरेश मुनि शास्त्री	४१८
विचारों के प्रतिबिम्ब	(संकलन)	४२१

सप्तम विभाग

भक्ति, उपदेश, वैराग्य और नीति की स्वर चेतना गुम्फित में

जैन दिवाकरजी के प्रिय पद्य

[संकलन—श्री अशोक मुनि]

भक्ति-स्तुति प्रधान-पद	४२६
वैराग्य-उपदेश प्रधान-पद	४३७

अष्ठम विभाग

चिन्तन के विविध बिन्दु : धर्म, दर्शन, संस्कृति और इतिहास

आत्मा : दर्शन और विज्ञान की दृष्टि में	श्री अशोक कुमार सक्सेना	४४६
आत्मसाधना में निश्चयनय की उपयोगिता	श्री सुमेर मुनिजी	४५७
नयवाद : विभिन्न दर्शनों के समन्वय की अपूर्व कला	श्रीचन्द चोरडिया, न्यायतीर्थ	४६५
श्रुतज्ञान एवं मतिज्ञान : एक विवेचन	डा० हेमलता बोलिया	४७५
जैन परम्परा में पूर्व ज्ञान : एक विश्लेषण	डा० मुनिश्री नगराजजी, डी० लिट्	४७६
सदाचार के शाश्वत मानदण्ड और जैन धर्म	डा० सागरमल जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०	४८६
ईश्वरवाद बनाम पुरुषार्थवाद	डा० कृपाशंकर व्यास एम० ए०, पी-एच० डी०	५०१
कर्म : बन्धन एवं मुक्ति की प्रक्रियाएं	मुनिश्री समदर्शीजी 'प्रभाकर'	६०७
जैन-दर्शन में मिथ्यात्व और सम्यक्त्व : एक तुलनात्मक विवेचन	डा० सागरमल जैन	५१६
जैन साहित्य में गाणितिक संकेतन	डा० मुकुट बिहारीलाल एम० ए०, पी-एच० डी०	५४६
ऐतिहासिक चर्चा—धर्मवीर लोंकाशाह	डा० तेजसिंह गौड़ एम० ए०, पी-एच० डी०	५५६
श्री जैन दिवाकरजी महाराज की गुरु-परम्परा	मधुरवक्ता श्री मूलमुनिजी	५६६

परिशिष्ट

सहयोगी परिचय
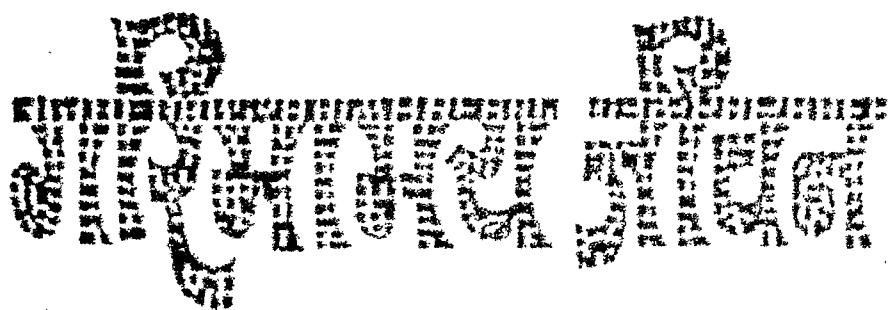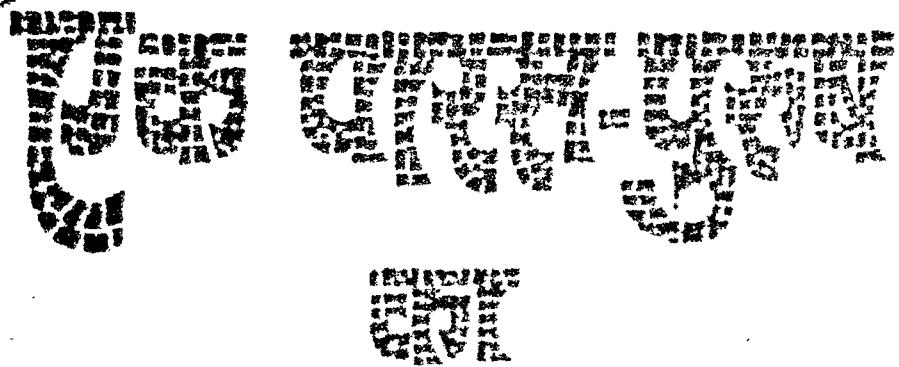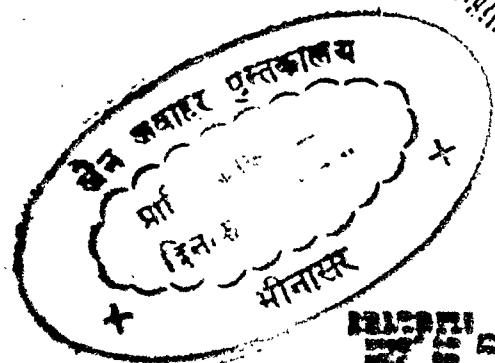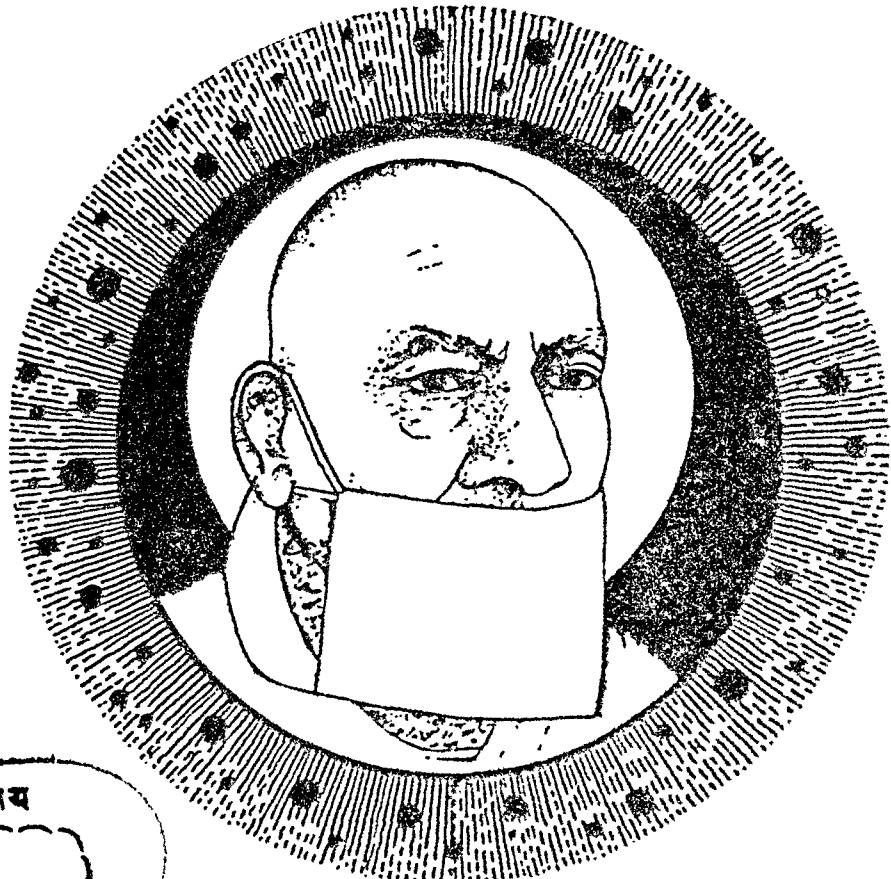
एक परम-पुरुष का गरिमामय जीवन
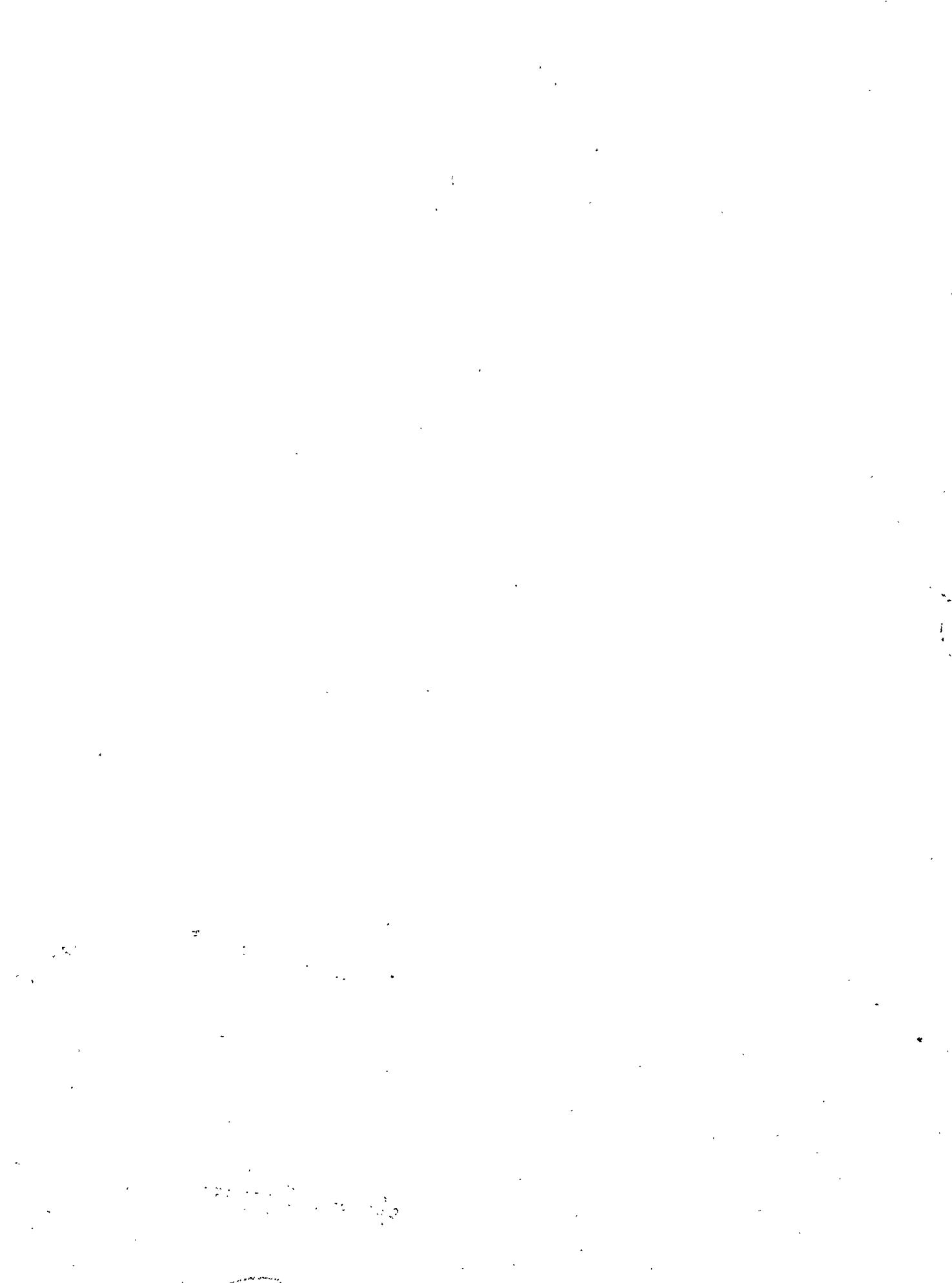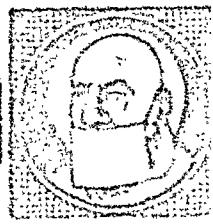
श्री जैन दिवाकर - स्मृति - ग्रन्थ

एक पारस-पुरुष का गरिमामय जीवन

✽ कविरत्न केवलमुनि

एक शाश्वत धर्म दिवाकर

दिवाकर अपनी सहस्र रश्मियों के साथ नित्य प्रातःकाल उदित होता है, दिन भर अन्धकार का नाश कर प्रकाश का प्रसार करता है और फिर संध्या के समय छिप जाता है। धरा पर गहन अन्धकार फैल जाता है। लेकिन धर्म दिवाकर की महिमा कुछ अद्भुत ही है। धर्म दिवाकर जब उदय होता है तो उसका प्रभाव क्षणस्थायी, एक-दो दिन अथवा वर्ष-दो-वर्ष का नहीं होता, वरन् युग-युगों तक आलोक फैलाता रहता है। गगन दिवाकर गिरि-कन्दराओं और अन्तर्गुफाओं का प्रगाढ़ अन्धकार नष्ट नहीं कर पाता, वहाँ उसकी किरणें नहीं पहुँच पातीं, लेकिन धर्म दिवाकर मानव के अन्तर्हृदय में घनीभूत अन्धकार को नष्ट करके वहाँ आलोक फैला देता है। अज्ञान और मोह से आवृत उनके अन्तर्चक्षुओं में ज्ञान के प्रकाश की ज्योति जग उठती है। दिवाकर प्रतिदिन उदय होता है और धर्म-दिवाकर युगों बाद कभी-कभी। ऐसे ही धर्म दिवाकर थे मुनिश्री चौथमलजी महाराज; जिन्होंने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व, ओजस्वी वाणी और निर्मल चरित्र से जन-जन के हृदय में सदाचार की ज्योति जलाई थी। अहिंसा भगवती की स्थापना करके हजारों मूक पशुओं को अभय दान दिलवाया था। लोगों के हृदय से पाप को निकाल कर पुण्य की, सत्यधर्म की स्थापना की थी। आगम की भाषा में 'लोगस्स उज्जोयगरे' की शब्दावली को वे सार्थक करते रहे।

भारतीय जीवन का आधार : धर्म

भारत अपने नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के लिए संसार में प्रसिद्ध रहा है। यहाँ के निवासियों के हृदय में धर्म की प्रतिष्ठा सदा से रही है। अति प्राचीन काल से धर्म और अनेक धर्मनायकों ने इसी पुण्य भूमि पर जन्म लिया था। इस देश में सन्तों का स्थान सम्राटों से ऊपर रहा है। सम्राटों के मुकुट सन्तों के चरणों में झुके हैं। प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत से लेकर यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। शासक व श्रीमंत लोग अकिंचन-निर्ग्रन्थ सन्तों के चरणों में सिर झुकाकर स्वयं को गौरवान्वित समझते रहे हैं।

धर्म और धर्मतन्त्र

प्राचीन युग से चले आये धर्म में काल प्रभाव से मध्यकाल तक आते-आते अनेक विकृतियाँ आ गईं। धर्म का स्थान धर्मतन्त्र ने ले लिया। जो धर्म सदाचार पर आधारित था, उसमें बाह्याडम्बर घुस गया। साम्प्रदायिकता से धर्म और धार्मिकों की पहचान होने लगी। भारतीय संस्कृति के वैदिक और श्रमण धारा में मत-मतान्तर होने लगे। जिन के अनुयायी जिन मन्दिरों में पूजा करने लगे। उनकी साधना और पूजा-अर्चना पद्धतियों में भारी अन्तर आ गया। एक-दूसरे के वे कट्टर शत्रु हो गये। धर्म के नाम पर देवों को प्रसन्न करने के लिए मूक पशुओं की बलि दी जाने लगी। धीरे-धीरे यह परम्परा बढ़ गई और राजाओं, धर्माधिकारियों, धर्मगुरुओं तथा साधारण जनता की इसमें रुचि बढ़ गई [illegible]। लोग हिंसा में ही धर्म मानने लगे और धर्म के मूलाधार—सदाचार, नैतिकता तथा अहिंसा को भूल गये।

श्रमण संस्कृति का मूल आधार : अहिंसा

भारतीय संस्कृति की धारा में श्रमण संस्कृति का विशिष्ट स्थान है। समय के झंझावातों से इसमें मत-मतान्तर की लहरें तो उत्पन्न हुई लेकिन इसने धर्म के मूल केन्द्र अहिंसा को नहीं छोड़ा। यह अहिंसा ही इसे गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में समर्थ रही है। सुदूर अतीत काल से आज तक सभी श्रमण भारत के कोने-कोने में पदयात्रा करके अहिंसा भगवती का सन्देश पहुँचाते रहे हैं। यह मानसिक, वैचारिक, शाब्दिक और शारीरिक अहिंसा का ही प्रभाव है कि श्रमण संस्कृति के अनुयायियों में कभी भी जीवन को विषाक्त करने वाली कटुता और ईर्ष्या-द्वेष न पनप सके।

श्रमणों का सतत प्रवाह

भारत में सन्तों-श्रमणों का अनवरत प्रवाह रहा है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों के शब्दों में प्रागैतिहासिक काल से ही भारतभूमि में श्रमणों का विचरण होता रहा है। उन्होंने अहिंसा भगवती की ज्योति को सदा जलाए रखा है। उनकी चारित्रनिष्ठा और सत्यपूत वाणी तथा असीम दया भावना से प्रभावित होकर बड़े-बड़े हिंसाप्रिय सम्राटों ने भी अहिंसा को स्वीकार किया, उसे हृदय में धारण किया एवं शिकार तथा मांसभक्षण पर प्रतिबन्ध लगवाया। उनके इस कार्य से राजा तथा प्रजा दोनों में सुख-शान्ति का प्रसार हुआ।

जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज

इसी श्रमण परम्परा में एक विशिष्ट सन्त का अभ्युदय हुआ। उनका नाम है—चौथमलजी महाराज। उनके विशिष्ट सद्गुणों और तपोमय जीवन से प्रभावित होकर समाज ने जैन दिवाकर, प्रसिद्धवक्ता, वाग्मी, महामनीषी, जगद्वल्लभ आदि उपाधियों से उन्हें अलंकृत किया। वास्तव में इन उपाधियों से वे अलंकृत नहीं हुए वरन् ये उपाधियाँ ही धन्य हो गईं।

वे क्रान्तदर्शी, युगपुरुष सन्त थे। उन्होंने अपने समय के समाज की नब्ज को पहचाना और प्रचलित कुरीतियों, कुरूढ़ियों एवं कुपरम्पराओं को नष्ट करने का प्रयत्न किया। इस कार्य में भी उनकी विशिष्टता यह रही कि लोगों ने उनके महान् प्रयत्न के प्रति श्रद्धा ही व्यक्त की, कभी द्वेष नहीं किया। इसीलिए तो लोगों ने उन्हें जगद्वल्लभ कहकर सम्मान किया, क्योंकि उनके प्रति श्रद्धा रखने वाले—हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, भारतीय, यूरोपीय, अँग्रेज आदि सभी थे। वे जैन श्रमण होते हुए भी सभी सम्प्रदायों के श्रद्धाभाजन थे।

वास्तविक अन्त्योदय

वैसे तो आधुनिक युग में किसी भी विशिष्ट व्यक्ति को युगपुरुष कहने का प्रचलन हो गया है; लेकिन वास्तविक युगपुरुष वह होता है जो अपने युग की सभी प्रवृत्तियों को प्रभावित करे। युग पर अपने विचारों व व्यक्तित्व की छाप डाले। लोग स्वयं ही उसकी बात मानें, आदर करें। उसका चरित्र भी ऐसा होना चाहिए जो महलों से झोंपड़ियों तक सर्वत्र प्रेरणास्पद हो। धनी-निर्धन, अपढ़-विद्वान्, ग्रामवासी, नगरवासी सभी जन जिसके अनुयायी हों। मुनिश्री चौथमलजी महाराज का जीवन ऐसा ही युग प्रभावकारी था।

आजकल अन्त्योदय की चर्चा समाचार पत्रों में खूब हो रही है। इसमें सरकार कुछ गरीबों को धन और जीविका के साधन जुटा देती है और समझती है कि इससे उनका जीवन उन्नत हो जायगा; उनके जीवन में सुख-शान्ति भर जायेगी। लेकिन धन से कोई सुखी नहीं हुआ है। सुख तो सद्गुणों और सुसंस्कारों से मिलता है। वास्तविक अन्त्योदय तो सद्प्रवृत्तियों का विकास है। अपने

को अन्त्यज व पतित मानने वाले व्यक्तियों में जब स्वयं के विकास और कल्याण की उमंग उठे, आत्म-विश्वास जगे और सत्संकल्प कर उस ओर बढ़ने की वृत्ति पैदा हो, तभी सच्चा अन्त्योदय हो सकता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने यही तो किया। उनकी प्रेरणा से खटीकों, कलालों, चमारों, मोचियों, भीलों आदि ने मांस-मदिरा आदि कुव्यसनों का त्याग किया; परिणामस्वरूप उनकी शारीरिक, आर्थिक, आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति हुई। वे अपने पैरों पर खड़े हो गये। उनके बुरे संस्कार बदले और उनमें स्वयं का उत्थान करने का मनोबल जागृत हुआ। कर्ज लेने वाले कर्जा देने लगे। गंगापुर, जोधपुर, मांडल आदि अनेक स्थानों के ज्वलन्त प्रमाण मौजूद हैं। आज उन लोगों का जीवन सुख-शान्ति से भरपूर है। वे जैन दिवाकरजी महाराज का हृदय से आभार मानते हैं और हजारों मुखों से उनके उपकारों का बखान करते हैं। जैन दिवाकरजी महाराज ने ऐसा अन्त्योदय किया जिससे उनका ही नहीं, उनकी पीढ़ियों तक का उद्धार हो गया। उनकी सन्तानें भी सुख के झूले में झूल रही हैं।

सद्गुण प्रचार की नयी शैली

श्री जैन दिवाकर जी महाराज ने जनता में सदाचार एवं अहिंसा के प्रचार के लिए नई शैली अपनाई। तत्कालीन धर्म-प्रचारकों की खण्डन-मण्डन प्रधान शैली से हटकर उन्होंने जनता को सरल और जनभाषा में प्रेरणा दी। उनकी सत्यपूत वाणी ने जन-जन के हृदय को स्पर्श किया। उनके शब्दों में आडम्बर नहीं, हृदय का घोष होता था। परिणामस्वरूप श्रोता की हार्दिक कोमल भावनाएँ सहसा जागृत हो जातीं और वह स्वयं ही हिंसा आदि दुर्गुणों से विरक्त होकर उनका त्याग कर देता।

वाणी का प्रभाव

मानव हृदय पर जितना प्रभाव वाणी का पड़ता है, उतना दूसरी किसी वस्तु का नहीं; होनी चाहिए रसना रस भरी।

श्री जैन दिवाकर जी महाराज की वाणी में यह सहजगुण था। जो एक बार उनका प्रवचन सुन लेता वह बार-बार सुनने को लालायित रहता। उस पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता। वह सदा के लिए उनका भक्त बन जाता। उनके शब्दों में ऐसा आकर्षण था कि राह चलते राही रुक जाते और एकाग्र होकर सुनते रहते। एक अंग्रेज कर्नल १० मिनट सुनने का संकल्प करके आया और ४० मिनट तक भाव-विभोर होकर सुनता रहा। रावजी ने मोटर रुकवाई और साधारण जनों के साथ बैठकर प्रवचन सुनने लगे। चोरों ने सुना तो चौर्यकर्म त्याग दिया, मद्यपियों ने शराब छोड़ दी, शिकारियों ने शिकार खूंटी पर लटका दिये, धर्म के नाम पर होने वाला मूक पशुओं का वध बन्द हो गया, मांसाहारियों ने मांसभक्षण त्याग दिया—यह सब क्या था? वाणी का ही तो प्रभाव था।

वे वाणी का मोल खूब जानते थे, इसीलिए तो उनकी वाणी इतनी प्रभावशालिनी थी। इसमें राजा और रंक, ब्राह्मण और शूद्र, हिन्दू और मुसलमान, पारसी और ईसाई, जैन और वैष्णव, [illegible] और [illegible], भारतीय और यूरोपीय सभी पर अपूर्व प्रभाव पड़ता था। सभी प्रभावित हो जाते थे। [illegible] हृदय [illegible]। [illegible] आवश्यकता है कि [illegible] हृदय को [illegible] सकें।

[illegible] श्री जैन दिवाकरजी महाराज की वाणी के [illegible], इसीलिए [illegible] और [illegible]।

गम्भीर ज्ञान

प्रसिद्ध वक्ता और वाग्मी होने के साथ-साथ जैन दिवाकरजी महाराज का ज्ञान भी बड़ा गहन और गम्भीर था। जैन आगमों में तो वे निष्णात थे ही, साथ ही साथ वैदिक दर्शनों—वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय आदि का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। गीता में गहरी पैठ थी। कुरानशरीफ और बाइबिल का भी आपने अध्ययन किया था। पैनी और तलस्पर्शी बुद्धि से उन्होंने इन ग्रन्थों के रहस्य और हार्द को हृदयंगम कर लिया था। उनके ज्ञान में अनुभव की तेजस्विता थी। उनके शब्द कण्ठ से नहीं, हृदय से निकलते थे। इसलिए उनमें प्रभावकता थी। लेकिन अपने इस विशाल और सूक्ष्म अध्ययन का उपयोग उन्होंने कभी भी विरोधी को नीचा दिखाने के लिए नहीं किया। उनके ज्ञान के पीछे पवित्र लोकहितकारिणी भावना बनी रही।

सरलहृदयी सच्चे सन्त

जैन दिवाकरजी महाराज सच्चे सन्त थे। भारतीय संस्कृति में सन्त के लिए सरल हृदय और मधुर स्वभाव आवश्यक माना गया है। उसे निष्कपट होना चाहिए। साधना से प्राप्त शक्तियों द्वारा चमत्कार प्रदर्शन में नहीं पड़ना चाहिए। अनेक सन्त चमत्कारों के मोह में पड़ जाते हैं। यश और मान की कामना में वे अपनी चमत्कारिक शक्तियों द्वारा राजाओं तथा सामान्य जनता को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। लेकिन आपका हृदय सरल था, स्वभाव मधुर था और वाणी कोमल। उनका उद्देश्य किसी को प्रभावित करना नहीं था वरन् सबको सुख-साता देना था। यह बात दूसरी है कि उनकी सहज साधना के प्रभाव से भक्तों की आधि-व्याधि और उपाधि स्वयं ही दूर हो जाती थी, जैसे सरोवर के निकट जाने से स्वतः ही ग्रीष्म की दाहकता का प्रभाव कम होकर शीतलता व्याप्त होने लगती है। वे निर्दोष श्रमणचर्या का पालन करते हुए अहिंसा की ज्योति जगाते रहे।

करुणा के आगार

आपका हृदय करुणा का आगार था। **णवणीयतुल्लहियया**—नवनीत के समान कोमल हृदय वाले थे। दीन-दुखियों को देखकर उनका हृदय करुणा से भर जाता था। वे किसी को भी पीड़ित व दुखी नहीं देख सकते थे। कष्ट देने वाले और कष्ट पाने वाले दोनों पर ही उन्हें दया आती थी। अपने हृदय की करुणा से प्रेरित होकर ही उन्होंने शिकारियों, मांसाहारियों और दुर्व्य-सनियों का हृदय परिवर्तन किया था। उनकी प्रेरणा से हजारों मानवों और पशुओं का जीवन सुखी हुआ था। मन, वचन एवं कर्म—तीनों से उन्होंने करुणा पाली। उनका घोष था—दया पालो। कभी उन्होंने कर्कश वचन नहीं बोले।

उनकी जिह्वा, उनकी वाणी ने किसी की आत्मा को दुखाया नहीं, वरन् सबको आत्म-कल्याण और सदाचार की ओर उन्मुख किया। अपनी विश्वव्यापिनी करुणा द्वारा उन्होंने सबको सुख तथा उन्नति के पथ पर अग्रसर ही किया।

निर्भीक और दृढ़

मधुर स्वभाव तथा करुणासागर होते हुए भी उनके हृदय में दृढ़ता और निर्भीकता का वास था। उनके संकल्पों और शब्दों में वज्र-सी दृढ़ता थी। इस दृढ़ता के कारण ही उनके व्यक्तित्व और वाणी में आकर्षण और प्रभाव था। निर्भीकता प्रभावोत्पादिनी होती है। ढिलमिल चरित्र वाले व्यक्तियों में कोई आकर्षण नहीं होता। विश्वास ही विश्वास का जनक होता है। जिसे स्वयं अपने

पर विश्वास न हो, वह दूसरों का विश्वास भी अर्जित नहीं कर पाता। उनमें दृढ़ आत्मविश्वास था तभी तो उनकी वाणी और व्यक्तित्व में इतना आकर्षण था और जादू का-सा प्रभाव था। विरोध को वे विनोद समझते थे। उनकी दृढ़ता से ही प्रभावित होकर उनके विरोधी भी समर्थक हो जाते थे। उनके निर्भीक और मधुर शब्दों को सुनकर उनके प्रति नतमस्तक हो जाते थे।

मानव हृदय के कुशल पारखी

आपका लौकिक अनुभव भी बहुत विशाल था। ५६ वर्ष के दीर्घ संयमी जीवन में वे अनेक और विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के सम्पर्क में आये। अपने इस विशाल अनुभव के आधार पर उन्हें मानव के हृदय को परखने की अद्भुत क्षमता प्राप्त हो गई थी। उन्होंने चोरों, डाकुओं, दुर्दान्त हत्यारों और वेश्याओं को भी प्रतिज्ञाएँ दिलवाई। कुछ लोगों ने उस समय उनके त्याग पर विश्वास नहीं किया, किन्तु आपका विश्वास कभी गलत नहीं हुआ। उन लोगों ने बड़ी निष्ठा से प्रतिज्ञाओं—नियमों का पालन किया। आपका विश्वास था कि अनेक बार मनुष्य परिस्थितियों और परम्पराओं से विवश होकर भी दुराचार में प्रवृत्त होता है। यदि उसकी सुप्त शुभ प्रवृत्तियों को जगा दिया जाय तो वह स्वयं ही सदाचार की ओर चल पड़ेगा। यही उन्होंने किया और उसमें सदा सफलता पाई।

महान् सर्जक

उत्तम मानव जीवन के सर्जक होने के साथ-साथ जैन दिवाकरजी महाराज उत्कृष्ट साहित्य के रचयिता भी थे। इस क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों लिखे। लोक गीत, भजन आदि के साथ-साथ उनकी प्रतिभा से जीवन-चरित्र तथा विवेचनयुक्त ग्रन्थ भी निःसृत हुए। इनकी ३० पद्य रचनाओं में १९ जीवन चरित्र हैं और ११ भजन संग्रह हैं। इन्हें पढ़ते हुए होंठ थिरकने लगते हैं, मन-मयूर नाचने लगता है और पाठक भाव-विभोर हो जाता है। इनकी रचनाओं में लोक-गीतों की मधुरता और रसमयता है तो गजलों के गुलदस्ते भी हैं।

'भगवान महावीर का आदर्श जीवन', 'जम्बूकुमार', और 'पार्श्वनाथ (चरित्र)' आदि आपकी गद्य-रचनाएँ हैं। इनमें अनेक प्रेरक प्रसंग भरे पड़े हैं।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने समस्त वेद-शास्त्रों का दोहन कर गीता का उपदेश दिया उसी प्रकार आपने समस्त जैन आगम साहित्य का मंथन कर '**निर्ग्रन्थ प्रवचन**' नाम से महावीर वाणी का संकलन किया। जिस प्रकार गीता योगिराज श्रीकृष्ण की कीर्ति का आध्यात्मिक आधारस्तम्भ है उसी प्रकार निर्ग्रन्थ प्रवचन आपकी भी वह अमर कृति है, जो युग-युगों तक प्रकाश-स्तम्भ बनकर जन-जन का मार्ग-दर्शन करती रहेगी। इसके अठारह अध्यायों में जैन आगमों के सभी विषय संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रूप से संकलित कर दिये गए हैं। यह आगमिक गूढ़ और [illegible] का परिचायक है। इस ग्रन्थ में संकलित गाथाओं का अनूठा प्रकाश पाठक के अन्तर्हृदय को आलोकित कर उसकी शुभ भावनाओं को [illegible] देता है और कल्याण पथ प्रशस्त करता है।

महान् और विराट् व्यक्तित्व

जैन दिवाकरजी महाराज का व्यक्तित्व विशाल और विराट था। उनका व्यक्तित्व गुण-[illegible] था। [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] और [illegible] के अनेक [illegible] का [illegible] हुआ था। [illegible]

[illegible]

जहाँ तक साधारण साधक नहीं पहुँच पाते। महान व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण है—निरभिमानता। साधारणतः मानव थोड़ी सी प्रसिद्धि पाकर ही फूल उठते हैं, अभिमान में भर जाते हैं। छोटे-छोटे तलैयों के समान उफन पड़ते हैं। लेकिन जैन दिवाकरजी महाराज कभी अपनी प्रसिद्धि से फूले नहीं, सागर के समान गम्भीर बने रहे। उनका विशाल हृदय फलदा वृक्ष की तरह और भी विनम्र हो गया। उनके पारस स्पर्श से अनेक लोहे सदृश मानव स्वर्ण की तरह चमक-चमक उठे। कलुषित हृदय निर्मल बन गए, आसमान में उड़ने वाले (अभिमानी) जमीन पर चलने लगे (विनम्र बन गए) फिर भी उन्हें कभी यह विचार नहीं आया कि मैंने कुछ किया है। कर्तृत्व-अहंकार तो उनमें था ही नहीं इसीलिए उनमें अभिमान नहीं आया, अहंकार नहीं जागा। वे तो केवल जिन-शासन की महत्ता और गुरुकृपा का प्रसाद मानते रहे, विनम्र और विनयशील बने रहे। क्योंकि वे जानते थे कि जिनशासन और आत्मोन्नति का मूल विनय है।

विनय, सदाचरण, शुद्ध श्रमणचर्या, तपोभूत जीवन, वाणी-विवेक, करुणापूरित हृदय आदि अनेक सद्गुणों के संगम से आपका व्यक्तित्व विशाल और विराट हो गया था।

आध्यात्मिक दिवाकर

मुनिश्री चौथमलजी महाराज भौतिक नहीं वरन् आध्यात्मिक, गगन के नहीं; वरन् धरा के दिवाकर बनकर चमके। भौतिक दिवाकर के प्रकाश के समान उनमें ताप नहीं वरन् तप की ज्योति थी। उनमें दाहकता नहीं, किन्तु जीवनदायी ऊष्मा थी। उनका जीवन तप से चमक रहा था। अपने तपोमय जीवन के प्रकाश से उन्होंने जन-जन का अन्तर्हृदय आलोकित किया। सम्पर्क में आने वाले नर-नारियों के मन के कलुष को धोकर उसे ज्ञान और सदाचार की ज्योति से चमकाया। लोगों के अवगुणों और दुर्व्यसनों को मिटाकर उनमें गुणों का विकास किया। जिस प्रकार बाल-रवि की किरणें सुखद और स्फूर्तिदायी होती हैं, इसी प्रकार उनके महान् व्यक्तित्व की वचनरूपी किरणें सुखद और स्फूर्तिदायिनी थीं। पाप-पंक और प्रमाद-निद्रा को मिटाने की अद्भुत शक्ति तथा क्षमता थी। जो भी उनके सम्पर्क में आया, कुन्दन की तरह चमक उठा।

एकता के अग्रदूत

आपश्री जब दीक्षा लेने का संकल्प कर रहे थे, तब आपके ससुर श्री पूनमचन्दजी ने दीक्षा से विरत करने के लिए कहा था—"श्रमण संघ में भी मनोमालिन्य है, अनेक सम्प्रदाय हैं।' यह सुनकर आप दीक्षा से विरत तो हुए नहीं, वरन् मन में यह सोच लिया कि 'मैं जैन-संघ में विद्यमान इन विभिन्न सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने का भरपूर प्रयास करूँगा।' श्रमण बनने के बाद भी आपकी यह इच्छा सदैव ही बलवती रही। जब भी अवसर मिला, आपने एकता का प्रयास किया। यहाँ तक कि एक श्रमण संघ हो इसके लिए आप अपने सम्प्रदाय की उपाधियाँ तक त्यागने को तैयार हो गए। आचार्य पद भी (ब्यावर के जैन श्रमण सम्मेलन में) श्री आनन्दऋषि जी महाराज को दिलवाया। अजमेर में पूज्य श्रीलालजी महाराज के स्वागतार्थ आप स्वयं पाँच साधुओं के साथ ब्यावर मार्ग पर पहुँचे। ढड्ढाजी की हवेली में जाकर उनसे सम्मिलित प्रवचनों की प्रार्थना की। रामगंज मण्डी में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार्यश्री की खोटी आलोचना भी समताभाव से सहन की। विरोध या परिहार में एक शब्द तक भी न कहा। दिगम्बर जैन आचार्य सूर्यसागर जी महाराज ने ज्यों ही सम्मिलित प्रवचन की इच्छा प्रकट की तुरन्त ही आपने सहर्ष उनका हार्दिक स्वागत किया। २००७ के कोटा चातुर्मास में तो आपकी एकता भावना फलवती होती दिखाई देने

लगी। एक मंच से ही त्रिमूर्ति (दिगम्बर आचार्य सूर्यसागर जी महाराज, श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्य आनन्दसागर जी महाराज और आपश्री) के प्रवचन होने लगे। काश ! आप कुछ दिन और जीवित रह जाते तो त्रिमूर्ति सर्वतोभद्र (चतुर्मुखी) बन जाती है। तेरापन्थी आचार्य तुलसी भी इस मंच पर विराजमान दिखाई देते।

विक्रम् सं० १९८३ में जब आप सादड़ी में विराजमान थे तब 'जैन प्रकाश' के सम्पादक झवेरचन्द जादवजी कामदार ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर आपके एकता सम्बन्धी विचारों को जानने की विनम्र इच्छा प्रकट की। आपने कहा कि एकता के लिए मूलभूत आवश्यकताएँ ये हैं—

(१) सभी साधु-साध्वियों का एक स्थान पर सम्मेलन हो।
(२) साधुओं की समाचारी और आचार-विचार प्रणाली एक हो।
(३) स्थानकवासी संघ की ओर से प्रमाणभूत श्रेष्ठ साहित्य का प्रकाशन हो।
(४) परस्पर एक-दूसरे की निंदा और टीका-टिप्पणी न करें।
(५) पर्व-तिथियों का सर्वसम्मत निर्णय हो।

आपके ये सभी सुझाव व्यावहारिक थे और आज भी इनकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

आपकी कल्पना थी, जैन समाज की सांस्कृतिक एकता की ओर उसे साकार बनाने के लिए महावीर जयंती (चैत्र सुदि १३) का उत्सव सामूहिक रूप में मनाने का प्रवर्तन आपश्री ने किया। संघ एकता की भावना से ही जहाँ भी 'महावीर जयन्ती' का प्रसंग आया उन्होंने इस पर्व को सम्मिलित रूप में मनाने की प्रबल प्रेरणा दी। उज्जैन, अमलनेर, आगरा आदि स्थानों पर दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी सभी संप्रदायों ने मिल-जुल कर भगवान महावीर का जन्म दिवस मनाया। आज प्रायः सभी स्थानों पर यह परम्परा प्रचलित हो रही है, जिसका मूल श्रेय आप ही को है।

हिन्दू जाति के संगठन के लिए लोकमान्य तिलक ने भी इसी प्रकार 'गणपति उत्सव' और 'शिवाजी उत्सव' का आयोजन महाराष्ट्र में किया था, जो आज भी चल रहे हैं।

संगठन निर्माण के प्रेरक

जैन दिवाकर जी महाराज संगठनों के महत्त्व को खूब समझते थे। समाज-सुधार और संगठनकारी कार्यों का संचालन इन्हीं संगठनों के द्वारा होता है। उन्होंने [illegible], ब्यावर, पीपलोदा, उदयपुर आदि अनेक स्थानों पर 'महावीर जैन मंडल' या 'जैन संघों' की स्थापना करवाई। रतलाम में जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति की स्थापना हुई, जहाँ से सत्साहित्य का प्रकाशन होता रहा। [illegible] ([illegible]), [illegible], [illegible], [illegible] आदि स्थानों पर बालकों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए जैन पाठशालाओं की स्थापना हुई। [illegible] में [illegible], अहमदनगर में [illegible], [illegible] में 'महावीर हितैषी श्रावक मंडल', [illegible] में 'चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम' आदि अनेक संस्थाएँ आपश्री की प्रेरणा से समाज के उपकारी कार्यों के लिए निर्मित हुईं।

जैन दिवाकर जी महाराज की [illegible] अद्भुत थी। वे [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] थे। वे दिवाकर के समान [illegible]। उनकी [illegible] जन-जन को प्रेरणा देती रही है और आगे भी देती रहेगी।

[illegible]

जहाँ तक साधारण साधक नहीं पहुँच पाते। महान व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण है—निरभिमानता। साधारणतः मानव थोड़ी सी प्रसिद्धि पाकर ही फूल उठते हैं, अभिमान में भर जाते हैं। छोटे-छोटे तलैयों के समान उफन पड़ते हैं। लेकिन जैन दिवाकरजी महाराज कभी अपनी प्रसिद्धि से फूले नहीं, सागर के समान गम्भीर बने रहे। उनका विशाल हृदय फलदा वृक्ष की तरह और भी विनम्र हो गया। उनके पारस स्पर्श से अनेक लोहे सदृश मानव स्वर्ण की तरह चमक-चमक उठे। कलुषित हृदय निर्मल बन गए, आसमान में उड़ने वाले (अभिमानी) जमीन पर चलन लगे (विनम्र बन गए) फिर भी उन्हें कभी यह विचार नहीं आया कि मैंने कुछ किया है। कर्तृत्व-अहंकार तो उनमें था ही नहीं इसीलिए उनमें अभिमान नहीं आया, अहंकार नहीं जागा। वे तो केवल जिन-शासन की महत्ता और गुरुकृपा का प्रसाद मानते रहे, विनम्र और विनयशील बने रहे। क्योंकि वे जानते थे कि जिनशासन और आत्मोन्नति का मूल विनय है।

विनय, सदाचरण, शुद्ध श्रमणचर्या, तपोभूत जीवन, वाणी-विवेक, करुणापूरित हृदय आदि अनेक सद्गुणों के संगम से आपका व्यक्तित्व विशाल और विराट हो गया था।

आध्यात्मिक दिवाकर

मुनिश्री चौथमलजी महाराज भौतिक नहीं वरन् आध्यात्मिक, गगन के नहीं; वरन् धरा के दिवाकर बनकर चमके। भौतिक दिवाकर के प्रकाश के समान उनमें ताप नहीं वरन् तप की ज्योति थी। उनमें दाहकता नहीं, किन्तु जीवनदायी ऊष्मा थी। उनका जीवन तप से चमक रहा था। अपने तपोमय जीवन के प्रकाश से उन्होंने जन-जन का अन्तर्हृदय आलोकित किया। सम्पर्क में आने वाले नर-नारियों के मन के कलुष को धोकर उसे ज्ञान और सदाचार की ज्योति से चमकाया। लोगों के अवगुणों और दुर्व्यसनों को मिटाकर उनमें गुणों का विकास किया। जिस प्रकार बाल-रवि की किरणें सुखद और स्फूर्तिदायी होती हैं, इसी प्रकार उनके महान् व्यक्तित्व की वचनरूपी किरणें सुखद और स्फूर्तिदायिनी थीं। पाप-पंक और प्रमाद-निद्रा को मिटाने की अद्भुत शक्ति तथा क्षमता थी। जो भी उनके सम्पर्क में आया, कुन्दन की तरह चमक उठा।

एकता के अग्रदूत

आपश्री जब दीक्षा लेने का संकल्प कर रहे थे, तब आपके ससुर श्री पूनमचन्दजी ने दीक्षा से विरत करने के लिए कहा था—"श्रमण संघ में भी मनोमालिन्य है, अनेक सम्प्रदाय हैं।' यह सुनकर आप दीक्षा से विरत तो हुए नहीं, वरन् मन में यह सोच लिया कि 'मैं जैन-संघ में विद्यमान इन विभिन्न सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने का भरपूर प्रयास करूँगा।' श्रमण बनने के बाद भी आपकी यह इच्छा सदैव ही बलवती रही। जब भी अवसर मिला, आपने एकता का प्रयास किया। यहाँ तक कि एक श्रमण संघ हो इसके लिए आप अपने सम्प्रदाय की उपाधियाँ तक त्यागने को तैयार हो गए। आचार्य पद भी (ब्यावर के जैन श्रमण सम्मेलन में) श्री आनन्दऋषि जी महाराज को दिलवाया। अजमेर में पूज्य श्रीलालजी महाराज के स्वागतार्थ आप स्वयं पाँच साधुओं के साथ ब्यावर मार्ग पर पहुँचे। ढड्ढाजी की हवेली में जाकर उनसे सम्मिलित प्रवचनों की प्रार्थना की। रामगंज मण्डी में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार्यश्री की खोटी आलोचना भी समताभाव से सहन की। विरोध या परिहार में एक शब्द तक भी न कहा। दिगम्बर जैन आचार्य सूर्यसागर जी महाराज ने ज्यों ही सम्मिलित प्रवचन की इच्छा प्रकट की तुरन्त ही आपने सहर्ष उनका हार्दिक स्वागत किया। २००७ के कोटा चातुर्मास में तो आपकी एकता भावना फलवती होती दिखाई देने

लगी। एक मंच से ही त्रिमूर्ति (दिगम्बर आचार्य सूर्यसागर जी महाराज, श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्य आनन्दसागर जी महाराज और आपश्री) के प्रवचन होने लगे। काश ! आप कुछ दिन और जीवित रह जाते तो त्रिमूर्ति सर्वतोभद्र (चतुर्मुखी) बन जाती है। तेरापन्थी आचार्य तुलसी भी इस मंच पर विराजमान दिखाई देते।

विक्रम् सं० १९८३ में जब आप सादड़ी में विराजमान थे तब 'जैन प्रकाश' के सम्पादक झवेरचन्द जादवजी कामदार ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर आपके एकता सम्बन्धी विचारों को जानने की विनम्र इच्छा प्रकट की। आपने कहा कि एकता के लिए मूलभूत आवश्यकताएँ ये हैं—

(१) सभी साधु-साध्वियों का एक स्थान पर सम्मेलन हो।
(२) साधुओं की समाचारी और आचार-विचार प्रणाली एक हो।
(३) स्थानकवासी संघ की ओर से प्रमाणभूत श्रेष्ठ साहित्य का प्रकाशन हो।
(४) परस्पर एक-दूसरे की निंदा और टीका-टिप्पणी न करें।
(५) पर्व-तिथियों का सर्वसम्मत निर्णय हो।

आपके ये सभी सुझाव व्यावहारिक थे और आज भी इनकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

आपकी कल्पना थी, जैन समाज की सांस्कृतिक एकता की और उसे साकार बनाने के लिए महावीर जयंती (चैत्र सुदि १३) का उत्सव सामूहिक रूप में मानने का प्रवर्तन आपश्री ने किया। संघ एकता की भावना से ही जहाँ भी 'महावीर जयन्ती' का प्रसंग आया उन्होंने इस पर्व को सम्मिलित रूप से मनाने की प्रबल प्रेरणा दी। उज्जैन, अमलनेर, आगरा आदि स्थानों पर दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी सभी संप्रदायों ने मिल-जुल कर भगवान महावीर का जन्म दिवस मनाया। आज प्रायः सभी स्थानों पर यह परम्परा प्रवर्तित हो रही हैं, जिसका मूल श्रेय आप ही को है।

हिन्दू जाति के संगठन के लिए लोकमान्य तिलक ने भी इसी प्रकार 'गणपति उत्सव' और 'शिवाजी उत्सव' का आयोजन महाराष्ट्र में किया था, जो आज भी चल रहे हैं।

संगठन निर्माण के प्रेरक

जैन दिवाकर जी महाराज संगठनों के महत्त्व को खूब समझते थे। समाज-सुधार और मंगलकारी कार्यों का संचालन इन्हीं संगठनों के द्वारा होता है। उन्होंने बालोतरा, ब्यावर, पीपलोदा, उदयपुर आदि अनेक स्थानों पर 'महावीर जैन मंडल' या 'जैन मंडलों' की स्थापना करवाई। रतलाम में जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति की स्थापना हुई, जहाँ से सत्साहित्य का प्रकाशन होता रहा। रायपुर (बोराणा), देलवाड़ा, सनवाड़, गोगूंदा आदि स्थानों पर बालकों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए जैन पाठशालाओं की स्थापना हुई। जोधपुर में महिलाश्रम, अहमदनगर में 'ओसवाल निराश्रित फंड, मन्दसौर में 'समाज हितैषी श्रावक मंडल', चित्तौड़गढ़ में 'चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम' आदि अनेक संस्थाएँ आपश्री की प्रेरणा से समाज के उपकारी कार्यों के लिए निर्मित हुई।

जैन दिवाकर जी महारज की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे प्रसिद्धवक्ता, वाग्मी, महामनीषी, जगद्वल्लभ, क्रान्तदर्शी और युगपुरुष संत थे। वे दिवाकर के समान ही चमके। उनकी प्रभा आज तक जन-जन को प्रेरणा देती रही है और आगे भी देती रहेगी।

ऐसे आध्यात्मिक दिवाकर को जन्म देने का श्रेय मालव धरा के एक छोटे से कस्बे नीमच को प्राप्त हुआ है। आपके जन्म से आपकी जन्मभूमि धन्य हो गई।

उद्भव : एक कल्पांकुर का

जन्म-भूमि

भारत की पुण्य धरा में मालव भूमि सदा से ही वीर-प्रसूता रही है। यहाँ अनेक कर्मवीरों ने जन्म लिया है तो धर्मवीरों ने भी इसे अपने जन्म से गौरवान्वित किया है। दशार्णपुरनरेश दशार्णभद्र जैसे कर्म और आध्यात्मिक क्षेत्र में शूरवीर ने यहीं जन्म लिया था। विक्रमादित्य जैसे प्रबल प्रतापी, विद्या व्यसनी और प्रजावत्सल शासक भी इसी भूमि ने उत्पन्न किये। यह भूमि प्राकृतिक सुषमा और सम्पदा से भरपूर है। इसीलिए यहाँ की भूमि के लिए प्रचलित है—

मालव भूमि गहन गम्भीर।
डग-डग रोटी पग-पग नीर ॥

इसी भूमि को पूज्यश्री मन्नालालजी महाराज, पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज आदि अनेक मनीषी संत एवं तपस्वियों तथा महासती रंगूजी महाराज आदि अनेक महासतियों को जन्म देने का गौरव प्राप्त हुआ है। यहाँ उत्पन्न हुई अनेक विभूतियों से भारत का आध्यात्मिक वैभव चमका है।

इस प्रदेश का एक नगर है 'नीमच'। नगर बहुत बड़ा तो नहीं है, लेकिन यह प्रसिद्ध प्राचीन काल से ही रहा है। यहाँ अनेक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक स्थल हैं। ब्रिटिश शासन काल में यह सैनिक छावनी के रूप में प्रसिद्ध रहा है। इसकी भौगोलिक स्थिति २५० उत्तरी अक्षांश तथा ७५° पूर्वी देशान्तर पर है। ग्वालियर के सिन्धिया नरेश के शासन काल में यह राजपूताना-मालवा के सीमांत पर था। वर्तमान में यह नगर मध्य-प्रदेश में स्थित है। रेल्वे का प्रमुख स्टेशन है।

जन्म वंश

इसी नीमच नगर में ओसवाल जाति का एक चोरड़िया परिवार का निवास था। यह परिवार कुल मर्यादा का पालन करने वाला था। इस परिवार के मुखिया—गृह स्वामी थे—गंगारामजी और इनकी धर्मपत्नी थी केसरबाई। पति-पत्नी दोनों ही आचार-निष्ठ, धर्मनिष्ठ सद्गृहस्थ थे। गंगारामजी का चरित्र गंगा के समान निर्मल था और केसरबाई के गुणों की महक केसर के समान ही संपूर्ण नगर में फैली हुई थी। गंगारामजी की आर्थिक स्थिति साधारण ही थी किन्तु उनके चारित्रिक गुणों के कारण उनकी नगर में प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। वे घी का व्यापार करते थे। इस व्यापार के अतिरिक्त उन्हें उत्तराधिकार में थोड़ी-सी जमीन, कुछ आम के वृक्ष और एक कुआ भी अपने पिता श्री ओंकारजी से मिला था।

ओंकारजी दारूग्राम (ग्वालियर स्टेट) के ठाकुर साहब के यहाँ कामदार थे। किसी बात पर इनका ठाकुर साहब से मतभेद हो गया। मतभेद इतना बढ़ा कि मनमुटाव तक जा पहुँचा। ओंकारजी शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। वे संघर्ष में न पड़े। उन्होंने जल में रहकर मगर से वैर रखना उचित न समझा। फलस्वरूप दारूग्राम छोड़कर नीमच आ बसे। यहीं गंगारामजी का जन्म और केसरबाई के साथ उनका पाणिग्रहण संस्कार हुआ।

धार्मिक परिवार में धर्मनिष्ठ केसरबाई आ मिलीं। गंगाराम जी के घर साधु-साध्वियों का आगमन होता रहता था। केसरबाई उनके दर्शन-वंदन करके बहुत हर्षित होतीं।

स्वप्न संकेत

ब्राह्ममुहूर्त का समय। टिमटिमाते तारे अस्त होने को प्रस्तुत थे। मन्द-सुगन्ध समीर शरीर में पुलक भर रहा था। केसरबाई अपनी शैया पर अर्द्ध निद्रित दशा में लेटी थी। पलकें अलसाई और मुँदी हुई थीं। एकाएक उन्हें पत्र-पुष्प और फलों से लदा हुआ एक विशाल आम्रवृक्ष दिखाई दिया। पीले-पीले पके हुए रसाल फलों के दर्शन से केसरबाई के मन-प्राण रससिक्त हो गए। उसने अचकचाकर आँखें खोल दीं। आम्रवृक्ष लुप्त हो गया। वह समझ गई कि यह स्वप्न था। विवेकिनी माताएँ शुभ स्वप्न देखने के बाद सोती नहीं। केसरबाई भी शय्या पर बैठ कर प्रभुस्मरण करने लगी।

गंगारामजी की आँखें खुलीं तो पत्नी को बैठे देखा तो पूछा—

"क्या बात हो गई? तुम्हारी नींद कैसे खुल गई?"

केसरबाई ने अपना स्वप्न सुना दिया। गंगारामजी ने कहा—

"यह तो बड़ा शुभ स्वप्न है। तुम्हारी कुक्षि से कोई ऐसा पुण्यशाली जीव जन्म लेगा जिसकी शीतल छाया में जगत सुख-शांति का अनुभव करेगा।"

स्वप्न फल जानकर केसरबाई बहुत हर्षित हुई। वह अपने गर्भस्थ शिशु को धार्मिक संस्कार देने को प्रस्तुत हो गई।

माता की कुक्षि प्रकृति की अद्भुत प्रयोगशाला है। इसी में राम, कृष्ण, जैसे सुसंस्कारी शिशुओं का निर्माण होता है तो रावण, कंस जैसे कुसंस्कारियों का भी। तामसी वृत्ति वाले भी इसी प्रयोगशाला में निर्मित होते हैं, तो सात्त्विक वृत्ति वाले भी। इनके निर्माण में माता के आचार-विचारों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त वंश-परम्परा, माता-पिता की शारीरिक एवं मानसिक वृत्तियाँ, उनके आचार-विचार आदि का भी प्रभाव पड़ता है। इच्छानुकूल योग्य संतान की चाह वाली माताएँ इन सभी बातों के प्रति सजग सावधान रहती हैं। गर्भस्थ शिशु का प्रभाव भी माता पर पड़ता है। धर्मात्मा जीव के गर्भ में आने पर माता की प्रवृत्ति सहज ही धार्मिकता की ओर उन्मुख हो जाती है।

केसरबाई स्वयं भी सदाचारिणी थीं और गर्भस्थ जीव भी धर्मात्मा था। परिणामस्वरूप केसरबाई का मन धर्म में रमने लगा। गर्भस्थ शिशु और माता दोनों ही परस्पर एक-दूसरे पर प्रभाव डाल रहे थे। माता का अन्तर्मन अधिकाधिक धर्ममय होता जा रहा था। वह बड़े यत्न से गर्भ की परिपालना कर रही थी।

जन्म

संवत् १९३४, कार्तिक सुदी १३, रविवार का दिन। ५० घटी, १३ पल बीतने के बाद, अश्विनी नक्षत्र के तृतीय चरण में माता केसरबाई ने एक शिशु को जन्म दिया।

शिशु के जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति इस प्रकार थी—

जन्म कुण्डली
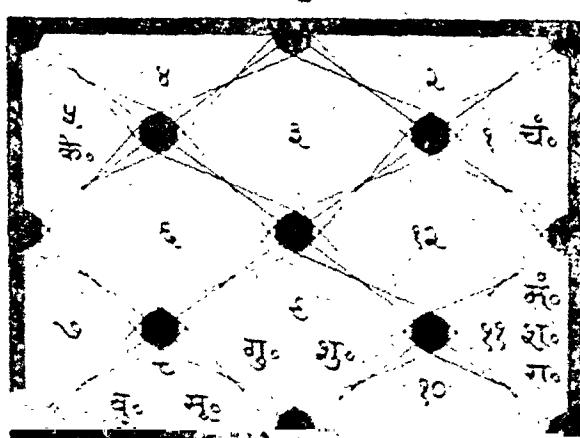
बालक के जन्म पर पूरे परिवार में हर्ष-उल्लास छा गया। प्रसूतिकर्म किये गए। १२वें दिन विद्वान ब्राह्मणों ने ज्योतिष के अनुसार नाम बताया—चौथमल (चतुर्थ मल्ल)।

नाम-विवेचन

चौथ को ज्योतिष में रिक्ता तिथि माना जाता है। सांसारिक व्यवहार में भी यह तिथि अशुभ समझी जाती है। लेकिन जैनागमों में चारित्र को रिक्त कर कहा है—'**चयरित्तकरं चारित्त**' अर्थात् कर्मों के चय, उपचय, संचय को रिक्त करने वाला चारित्र है।

मोक्ष के मार्गों का वर्णन करते हुए आचार्यों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और **चौथा** मार्ग 'तप' गिनाया है। कहा है—**भव कोड़ी संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ**—कोटि जन्मों के संचित कर्म तप से नष्ट हो जाते हैं।

चौथा महाव्रत ब्रह्मचर्य पाँचों महाव्रतों का कवच माना गया है। संसार में ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम है क्योंकि ब्रह्मचर्य का अर्थ ही आत्मा में रमण करना है।

धर्म के चार भेदों में **चौथा** भेद है 'भाव'। भाव ही मुख्य है। इसी के द्वारा मुक्ति की प्राप्त होती है। सांसारिक व्यापारिक जगत में भी 'भाव का महत्व सर्वोपरि है। भाव (मूल्य) ऊँचा जाने पर ही लाभ होता है। धर्ममार्ग में भी भाव (आत्मा के परिणाम) ऊर्ध्वमुखी होने से अतिशय ज्ञान—केवलज्ञान तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है।

चौदह गुणस्थानों में भी **चौथा** गुणस्थान सम्यक्त्व है। यही मोक्षमार्ग की आधारशिला है। मोक्षमार्ग का प्रारम्भ यहीं से होता है। इसी गुणस्थान में जीव सर्वप्रथम अपने स्वरूप का अनुभव करता है।

प्राचीन कहावत है—'व्यक्ति पर नाम का प्रभाव अवश्य पड़ता है।' गुरुदेव **चौथमल** जी महाराज पर अपने नाम का कितना प्रभाव पड़ा, यह सर्वविदित है। उन्होंने चारित्र का पालन करके कर्मों के संचय को रिक्त किया, घोर तप किया, ब्रह्मचर्य का पालन किया और साधना की उच्च भावभूमि पर पहुँचे। इसलिए तो जन-जन के वन्दनीय हुए। उनका नाम स्मरण आते ही हृदय श्रद्धा से भर जाता है।

जोधपुर के आशुकवि पं० नित्यानंद जी ने उनके बारे में कहा था—

युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वे जातास्तु जाता खलु धर्ममल्लाः।
अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे घातातिं सृष्टोऽस्ति चतुर्थ मल्लः॥

प्राचीन तीनों युगों में धर्मोपदेशक तथा धर्म प्रवर्तक हो गये हैं लेकिन आप इसी चतुर्थ युग में ऐसे प्रभावशाली पुरुष चतुर्थमल्ल (चौथमल) हैं।

परिवार

चौथमल जी महाराज के दो भाई और दो बहनें थीं। बड़े भाई का नाम कालूराम जी और छोटे भाई का नाम फतेहचन्द जी था। बड़ी बहन नवलबाई और छोटी बहन सुन्दरबाई थी। सुन्दरबाई का परिवार मंदसौर में रहता है। उनकी एक पुत्री जिसका बम्बई में विवाह हुआ वह बम्बई में ही रहती है। सबसे छोटी एक बहन और थी जिसका लघुवय में ही अवसान हो गया था।

विद्या भगवती के अंक में

समय गुजरने के साथ-साथ बालक चौथमल माँ के अंक से उतरकर उसकी अँगुली पकड़

कर चलने लगा और फिर दौड़ लगाने लगा। उसकी बाल-क्रीड़ाओं को देखकर माता केसरबाई का हृदय हर्ष से भर जाता; लेकिन हर्ष में भी वे अपने कर्तव्य को न भूलीं। पुत्र के मन-मस्तिष्क में सुसंस्कार भरती रहीं।

बालक चौथमल सात वर्ष का हो गया। पिता ने उसे विद्यार्जन के लिए गुरु के पास बिठा दिया। क्योंकि विद्या ही कुरूपों का रूप और रूपवानों का सौन्दर्य है। कहा है—**'विद्यारूपं कुरूपाणां।'**

कुशाग्र बुद्धि बालक चौथमल ने अक्षरज्ञान के साथ-साथ हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, गणित आदि का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन्हें नई-नई पुस्तकों को पढ़ने का चाव रहता था। वे नगर के पुस्तक विक्रेता नंदरामजी पंसारी की दुकान पर अवकाश मिलते ही जा बैठते और पुस्तकें पढ़ते रहते। कभी मन ही मन और कभी सस्वर। उन्हें संगीत का शौक भी लगा। आयु बढ़ने के साथ-साथ स्वर भी मधुर होता गया। संगीतशास्त्र के विधिवत् अध्ययन के बिना ही उन्हें श्रोताओं को मुग्ध करने की कला आ गई। लोग उनके उत्तम गुणों से प्रभावित होकर कहते —'यह बालक किसी दिन महापुरुष बनेगा।'

बालक चौथमल का एक प्रमुख गुण था—गम्भीरता। यह गम्भीरता उनकी विचार-हीनता के कारण न थी वरन् इसका कारण थे उनके धार्मिक और शुभ संस्कार। उनमें विनय गुण का भी समावेश था। यह गुण उनके यहाँ यदा-कदा आने वाले साधु-साध्वियों के प्रभाव का परिणाम था। घर का वातावरण शांत और धार्मिक होने के कारण बालक चौथमल में स्वच्छन्दता और उच्छृंखलता का किंचित्मात्र भी समावेश न हो पाया।

अपने इस गम्भीर स्वभाव और धार्मिक संस्कारों से आप्लावित बालक चौथमल १२ वर्ष का हो गया। उसने बाल्यावस्था से किशोरावस्था में प्रवेश किया।

वैराग्य स्फुरणा

प्रथम आघात : अग्रज का अन्त

अभी चौथमलजी १३ वर्ष के ही थे कि उन्हें पहला तीव्र आघात लगा। उनके अग्रज कालूराम जी का असमय ही करण अन्त हो गया।

कालूरामजी चौथमलजी के बड़े भाई थे। घर में धार्मिक वातावरण होने पर भी बाहर की कुसंगति के कारण उन्हें जुआ (द्यूत) खेलने का व्यसन लग गया। घर में तो जुआ खेल ही नहीं सकते थे। इधर-उधर लुक-छिपकर जुआ खेलते रहते थे। एक दिन उनके कुमित्रों ने नगर-सीमा के बाहर अपना व्यसन पूरा करने की योजना बनाई। सभी मित्र वहाँ पहुँच गए। संध्या के झुरमुटे तक खेल चलता रहा। संयोग से कालूराम जीतते रहे। रात्रि का अन्धकार फैलते ही कालूराम उठकर चलने लगे तो मित्रों ने आग्रह करके बिठा लिया। धन प्राणों का ग्राहक होता है। अवसर देखकर मित्रों ने कालूराम को धर दबोचा। उनका गला दबा दिया। कालूराम ने बहुत हाथ-पैर मारे लेकिन कई कुमित्रों के आगे उनका वश न चला और उनके प्राण तन पिंजर को त्याग कर निकल भागे।

यह था द्यूत-क्रीड़ा का भयंकर दुष्परिणाम !

कालूराम के शव को वहीं पड़ा छोड़कर मित्रों ने धन का परस्पर बँटवारा किया और अपने-अपने घर जा सोए।

माता केसरबाई ने भी उस रात भयंकर स्वप्न देखा। सम्पूर्ण घटना स्वप्न में उनकी आँखों के सामने घूम गई। वह सिहर गई, पसीना छूट गया।

सुबह मालूम हुआ कि कालूराम रात को घर नहीं आये। उनके न आने से पिता भी चिन्तित हुए। तलाश की तो नगर सीमा के पास जंगल में कालूराम का निर्जीव शरीर मिल गया। गंगारामजी रोष में भरकर कानूनी कार्यवाही करने को उद्यत हुए तो केसरबाई ने समझाया—

"संतोष धारण करो। कालू तो अब वापिस आयेगा नहीं। व्यर्थ ही शत्रुता बढ़ेगी। वैर से वैर शांत नहीं होता और रक्त से रक्त नहीं धुलता। रक्त धोने के लिए स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है और वैर को शांत करने के लिए क्षमा के पीयूष की। आप भी कालू के हत्यारों को क्षमा कर दीजिए।"

कितना उदार हृदय था वीरमाता केसरबाई का। उसके इन वचनों से गंगारामजी का क्रोध भी शांत हो गया। पुत्र की अन्त्येष्टि कर दी गई।

इस घटना का किशोर चौथमलजी पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। उनकी गम्भीरता और भी गहरी हो गई। समझ लिया कि व्यसन का परिणाम ऐसा ही क्रूर होता है।

यह घटना संवत् १९४८ की है।

दूसरा आघात : पिता का बिछोह

कालूरामजी की मृत्यु के बाद गंगारामजी मुख से तो कुछ न बोले लेकिन कालूराम के अकाल-मरण ने उनकी कमर ही तोड़ दी। पुत्र पिता का सहारा और उसके बुढ़ापे की लाठी होता है। यह सहारा छूट जाने से गंगारामजी का दिल टूट जाना स्वाभाविक ही था। पुत्र का गम उन्हें अन्दर ही अन्दर पीड़ित करने लगा। **'चिता जलावे मृतक तन, चिन्ता जीवित देह।'** गंगारामजी ने खाट पकड़ ली। केसरबाई और चौथमलजी सेवा में जुट गए। लेकिन गम की कोई दवा नहीं होती। उनकी सेवा व्यर्थ हो गयी। कालूराम का गम काल बनकर उन्हें खा गया। सं० १९५० में श्री गंगारामजी का स्वर्गवास हो गया।

केसरबाई का सुहाग सिन्दूर पुछ गया और चौथमलजी के सिर से पिता का साया हट गया। माता और पुत्र दोनों का जीवन दुःख से भर गया; किन्तु दोनों ही सुसंस्कारी थे इसलिए उनकी विचारधारा वैराग्य की ओर मुड़ गई। दोनों को ही संसार असार दिखाई देने लगा।

केसरबाई के दुःख का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। पति-मरण की पीड़ा पत्नी ही जान सकती है। यदि किशोर चौथमलजी का भार न होता तो वे उसी समय प्रव्रजित हो जातीं। लेकिन उन्हें अपना सांसारिक कर्तव्य पालन करना था, चौथमलजी को काम पर लगाना था और उनकी गृहस्थी जमानी थी। ये कार्य सम्पन्न होते ही उन्होंने दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय कर लिया।

विवाह-बन्धन

पहले हमने बताया है कि श्री चौथमलजी गम्भीर रहते थे। पुत्र की गम्भीरता ने माता के हृदय को चिन्तित कर दिया। परिवारीजन भी उनकी वैराग्य भावना को संसार की ओर मोड़ने को तत्पर हो गए। चौथमलजी की आयु १६ वर्ष की हो चुकी थी। इस अवस्था में स्त्री का बन्धन ही सबसे कड़ा बन्धन माना जाता है। परिवारी जनों की दृष्टि भी इधर ही गई। उन्होंने
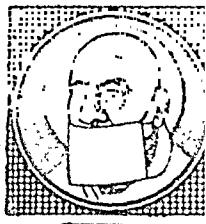
चौथमलजी को विवाह-बंधन में बाँधने का निर्णय किया। यह जिम्मेदारी डालने में माता केसरबाई भी सहमत थीं।

संयोग से उसी समय प्रतापगढ़ (राजस्थान) निवासी श्री पूनमचन्द जी की ओर से उनकी पुत्री मानकुँवर के साथ चौथमल जी की सगाई का आग्रहपूर्ण अनुरोध आया। माता-जी और परिवारीजनों को तो मुँहमाँगी मुराद ही मिल गई। उन्होंने तत्काल सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। चौथमलजी से पूछने और उनकी सहमति लेने का तो प्रश्न ही नहीं था। उस समय लड़के-लड़की की सहमति तो ली ही नहीं जाती थी। उनका बोलना भी निर्लज्जता समझी जाती थी। विवाह-सम्बन्ध में माता-पिता एवं वृद्धजनों का ही एकाधिकार था।

विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

यद्यपि चौथमलजी विवाह करना नहीं चाहते थे, लेकिन वे इस सम्बन्ध का विरोध न कर सके। विरोध न कर सकने का कारण उस समय की सामाजिक परिस्थितियाँ भी थीं। लेकिन प्रमुख कारण था उनकी माता-पिता के प्रति विशेष आदर भावना। वे इन्कार करके अपनी माता के हृदय को पीड़ित नहीं करना चाहते थे। उन्होंने कई बार माता के समक्ष अपने हृदय की बात कहने का विचार किया किन्तु उनका साहस जवाब दे जाता। वे कुछ भी न कह पाते।

वे इसी ऊहापोह में रहे और माताजी तथा परिवारीजनों ने संवत् १९५० में उन्हें विवाह सूत्र में बाँध दिया। प्रतापगढ़ निवासी पूनमचन्दजी की सुपुत्री मानकुँवर उनकी धर्मपत्नी बन गई।

माता केसरबाई ने सोचा—पुत्र को पटवारी का काम ही सिखा दिया जाय परिवार वालों ने भी सहमति व्यक्त की। चौथमलजी को निकटवर्ती गाँव में पटवारी का काम सीखने भेज दिया गया।

पटवारी ने काम सिखाना स्वीकार कर लिया। लेकिन पहले ही दिन उसने चौथमलजी को भोजन बनाने का आदेश दिया। इन्होंने कभी भोजन बनाया तो था ही नहीं, अतः कच्ची-पक्की रोटियाँ सेंक कर रख दीं। पटवारी ने देखा तो क्रोधित होकर इन्हें झिड़क दिया। चौथमल जी के जीवन में झिड़की खाने का यह प्रथम अवसर था। वे झिड़की न सह सके। विनयी स्वभाव होने के कारण प्रत्युत्तर तो न दिया किन्तु वहाँ से चले आए।

अब वे अपने भविष्य के बारे में गम्भीरता से विचारने लगे। उनकी गम्भीरता में वैराग्य का रंग घुलता गया।

उदासीनता

विवाह के बाद भी परिवारीजनों की इच्छा पूरी न हुई। चौथमलजी का गाम्भीर्य न टूटा, वरन् और बढ़ गया। वैवाहिक कार्यक्रमों में भी वे तटस्थ रहे और सुहागरात भी वैराग्यरात के रूप में मनाई। पत्नी मानकुँवर उनकी गम्भीरता को अनदेखी करती रही। उसे विश्वास था कि हाथ पकड़ा है तो जीवन भर निभायेंगे ही। वह युग भी ऐसा ही था जिसमें विवाह जन्म-जन्मांतर का सम्बन्ध माना जाता था। एक बार जिसका हाथ पकड़ लिया उसे मृत्यु ही छुड़ा सकती थी। लेकिन चौथमलजी तो वैवाहिक जीवन से निस्पृह थे। संसार में रहते हुए भी वे जल में कमलवत् निर्लेप थे।

उनकी उदासीनता को देखकर परिवारी और वृद्धजन उन्हें समझाते—'अब तुम्हारा विवाह

हो गया है। कुछ अर्थोपार्जन करो। ऐसे बैठे-बैठे कैसे काम चलेगा।' लेकिन चौथमलजी पर इस समझाने का कोई प्रभाव न पड़ता। वे तो धर्मोपार्जन करना चाहते थे तो फिर अर्थोपार्जन की ओर क्यों झुकते ?

वैराग्य का पल्लवन

उसी समय नीमच नगर में कुछ संतों का आगमन हुआ। चौथमल जी उनके पास जाने लगे। उनका अधिकांश समय संतों की सेवा और धर्मश्रवण मे ही व्यतीत हो जाता।

केसरबाई के लिए इस संसार का आकर्षण तो पति के देहान्त के साथ ही समाप्त हो चुका था, अब वह अपने कर्तव्यभार से भी मुक्त हो गई थीं। संतों के आगमन को उन्होंने शुभ संयोग माना और अपनी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त करते हुए पुत्र से बोली—

"बेटा ! अब तुम युवा और समर्थ हो चुके हो। तुम्हारा विवाह भी हो चुका है। अब अपनी गृहस्थी सँभालो। मुझे दीक्षा की अनुमति दो। मैं अपना आत्म-कल्याण करना चाहती हूँ।"

"आपकी भावना बहुत प्रशंसनीय है, माताजी ! लेकिन मेरे बारे में भी तो कुछ सोचिये।" चौथमलजी ने कहा।

"तुम्हारे बारे में····? अब क्या सोचना बाकी रह गया है ?"

"जिस कल्याण-पथ पर आप चलना चाहती हैं, उसी पथ पर चलने की मेरी हार्दिक इच्छा है।"

पुत्र के ऐसे विचार सुनकर माता चौंक गई। समझाने का प्रयास करती हुई कहने लगी—

"यह क्या कह रहे हो लाल ! तुम्हारी आयु भी छोटी है और विवाह भी अभी हुआ है। गृहस्थाश्रम का पालन करो। जब आयु परिपक्व हो जाय तो दीक्षा ले लेना।"

"तो क्या दीक्षा वृद्धावस्था में ही लेनी चाहिए ?"

"नहीं पुत्र ! ऐसा नियम तो नहीं है, जब भी भावना सुदृढ़ हो दीक्षा ली जा सकती है।"

"माताजी ! दीक्षा का दृढ़ निश्चय तो मैंने बड़े भाई के देहावसान के पश्चात् ही कर लिया था·······।"

"तो फिर विवाह का विरोध क्यों नहीं किया ?"

"आपका हृदय दुखी न हो, इसलिए।"

माता विचारमग्न हो गई। पुत्र ही पुनः बोला—

"माताजी ! यह मानव शरीर भोग का कीड़ा बनकर गँवाने के लिए नहीं मिला है। तप-संयम ही मानव-जीवन का सार है। मैं भी दीक्षित होने के लिए दृढ़संकल्प हूँ।"

पुत्र के दृढ़ शब्दों से माता समझ गई कि पुत्र की वैराग्य भावना बलवती है। इसे भोगों की ओर नहीं मोड़ा जा सकता। उन्होंने अपनी ओर से स्वीकृति देते हुए कहा—

"पुत्र ! मेरी ओर से तो तुझे अनुमति है, लेकिन जिसका हाथ पकड़ा है, उसकी अनुमति भी आवश्यक है। बहू को घर ले आ और उसे समझा-बुझाकर सहमत कर ले।"

माता की अनुमति पाकर चौथमलजी का गम्भीर चेहरा मुस्करा उठा। उनकी बात उचित थी। अतः वे ससुराल से अपनी परिणीता बहू को लिवा लाये।

श्रेयांसि बहु विघ्नानि : मानकुँवर का विरोध

चौथमलजी ने समझा-बुझाकर अपनी पत्नी मानकुँवर को अपने विचारों से सहमत करने का प्रयास किया तो वह एकदम भड़क उठी। विरोध करते हुए बोली—

"न मैं स्वयं दीक्षा लूँगी और न तुमको अनुमति दूँगी। यदि दीक्षा ही लेना था तो फिर विवाह क्यों किया ?"

सास ने समझाया तो बहू ने उसका भी विरोध किया।

चौथमलजी की प्रव्रज्या में व्यवधान तो खड़ा हुआ ही; साथ ही गृह-कलह भी होने लगा। घर की शान्ति भी भंग हो गई। चौथमलजी अपनी पत्नी को मामी-ससुर के यहाँ छोड़ आये। वे नीमच लौटकर अपना व्यापार समेटने लगे।

पत्नी के जाने से घर में शान्ति तो स्थापित हो गई, लेकिन बात छह कानों में पहुँच गई। मामी-ससुर के यहाँ रहते हुए भी पत्नी शान्त न रही।

चौथमलजी की दीक्षा का संकल्प उनके ससुर के कानों तक भी जा पहुँचा। वे अपनी पुत्री के भविष्य के प्रति चिन्तित हो गए। तुरन्त नीमच आये और चौथमलजी से पूछा—

"कुँवर साहब ! मैंने सुना है कि आपका विचार साधु बनने का है।"

"आपने ठीक ही सुना है।" चौथमलजी का प्रत्युत्तर था।

ससुर साहब ने समझाने का प्रयास किया—

"देखो कुँवर साहब ! धर्म की आराधना तो गृहस्थ में रहकर भी की जा सकती है। साधु बनने में कोई लाभ नहीं है। गृहस्थी का पालन करते हुए धर्मध्यान करो।"

चौथमलजी ने दृढ़ शब्दों में अपना संकल्प व्यक्त किया—

"गृहस्थाश्रम में धर्म-पालन की उतनी सुविधा नहीं है जितनी कि साधु-जीवन में है। इसलिए आत्म-कल्याण के लिए श्रमण-जीवन बहुत जरूरी है।"

ससुर साहब समझ गये कि चौथमलजी को समझाना व्यर्थ है। वे उठकर चले गये।

ससुरजी के प्रयास

ससुर पूनमचन्दजी के समझाने का कोई प्रभाव न हुआ तो उन्होंने नीमच नगर के वृद्ध प्रतिष्ठित व्यक्तियों का सहारा लिया। उन्होंने भी चौथमलजी को समझाया लेकिन वे भी उनके दृढ़संकल्प के समक्ष विफल हो गये।

इसके बाद फिर ससुरजी ने चौथमल जी को समझाने का प्रयास किया लेकिन चौथमलजी तो अपने संकल्प के धनी थे। उन पर कोई प्रभाव न हुआ।

टेढ़ी अँगुली

जब चौथमल जी समझाने-बुझाने से न माने। सीधी अँगुलियों से घी न निकला तो ससुर पूनमचन्द जी ने भय के द्वारा काम करने का विचार किया। वे नीमच नगर के हाकिम से मिले और सारी स्थिति समझाकर चौथमलजी को भयभीत करने की प्रेरणा दी। हाकिम सांसारिक पुरुष था, वह आत्मकल्याण के महत्त्व को क्या समझता। उसने भयभीत करने के लिए चौथमलजी को हवालात में बन्द कर दिया।

पूनमचन्दजी तथा अन्य सांसारिक व्यक्ति जिसे दण्ड समझते हैं, उसे चौथमलजी ने सुअवसर माना। हवालात के एकान्त शान्त स्थान को उन्होंने पौषधशाला समझा और जप-ध्यान में लीन हो गये।

छह दिन इसी प्रकार बीते। सातवें दिन ससुर साहब ने आकर व्यंग्य भरे शब्दों में पूछा—

"यह स्थान तो आपको अवश्य पसन्द आया होगा। यदि साधु बनने की हठ छोड़ दो तो यहाँ से मुक्ति मिल सकती है।"

चौथमलजी ने विचार किया—'यहाँ रहकर न सत्संगति मिल सकती है और न साधु-जनों की सेवा का सुयोग। यहाँ रहकर न तो विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकूँगा और न साधु ही बन सकूँगा। यहाँ से निकलने के बाद ही दीक्षा के लिए प्रयास किया जा सकता है।' अपनी व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग करते हुए उन्होंने ससुर साहब के विचारों से सहमति व्यक्त कर दी।

ससुरजी का नियन्त्रण

पूनमचन्द जी को इतनी शीघ्र सहमति की आशा न थी। इस सहज सहमति ने उन्हें सशंकित कर दिया। उनकी अनुभवी आँखों ने इस सहमति को रहस्यमयी माना। उन्होंने सोचा—'माता और पुत्र दोनों ही दीक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। कहीं चिड़िया हाथ से बिल्कुल ही न निकल जाय।' उन्होंने अपना नियन्त्रण कठोर करने का निश्चय कर लिया और माता-पुत्र दोनों को समझा-बुझा कर अपने साथ अपने ग्राम धम्मोत्तर (प्रतापगढ़) ले आए। अब उन्होंने अपना नियन्त्रण पक्का समझा। एक दिन गर्व में भरकर केसरबाई से बोले—

"समधिनजी! अपने पुत्र को समझा दीजिए कि साधु बनने की बात दिमाग से निकाल दे। उसे साधु बनाने का प्रयास आप भी न करें वरना याद रखिए मेरा नाम पूनमचन्द है।"

पूनमचन्दजी ने सोचा था कि केसरबाई विधवा है और इस समय मेरी निगरानी में है। दब जायगी। लेकिन सिंहनी हाथियों के समूह से घिर जाने पर भी घबराती नहीं वरन् उसका शौर्य और भी अधिक प्रदीप्त हो उठता है। यही दशा वीरमाता केसरबाई की हुई। पुत्र को हवालात में रखे जाने से वह भरी तो बैठी ही थी। कड़क कर बोली—

"समधीजी! होनी टलती नहीं, होकर रहती है। यदि मेरे पुत्र को साधु बनना है तो बनेगा ही, उसे कौन रोक सकता है। रही आपके पूनमचन्द होने की बात, तो मेरा नाम भी केसरबाई है। पूनम के चाँद को अमावस्या का चाँद बना दूँगी।"

पूनमचन्दजी को ऐसा उत्तर मिलने की आशा नहीं थी। वे सहम गये। आगे कुछ भी न कह सके। उनका गर्वोन्नत मुख लटक गया। बात यहीं समाप्त हो गई।

अब केसरबाई को भी पूनमचन्दजी का गर्व खल गया। वह अपने पुत्र की वैराग्य भावना को और दृढ़ करती रही।

शीलवती रंगूजी की घटना

एक बार माता-पुत्र दोनों धम्मोत्तर की एक गली में होकर जा रहे थे। मार्ग में एक मकान को देखकर पुत्र ने पूछा—

"माताजी! यह मकान किसका है?"

माँ ने बतलाया—

यह मकान शीलवती रंगूजी का है। यहाँ उनकी ससुराल थी। वे बाल विधवा हो गई थीं। विधवा होते ही उनका चित्त धर्म में रम गया। वे प्रातः सामायिक-प्रतिक्रमण करतीं, स्वाध्याय करतीं, साधु-साध्वियों के प्रवचन सुनतीं, मुक्तहस्त होकर दान देतीं, दोपहर को फिर धार्मिक ग्रन्थ पढ़तीं, सन्ध्याकालीन सामायिक प्रतिक्रमण करतीं, रात्रि को नवकार मंत्र गिनतीं—यों उनका जीवन धर्म को समर्पित था।

किन्तु संसार में ऐसे भी लोग होते हैं जो धार्मिक जनों को पाप के गर्त में ढकेलने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। अपनी क्षुद्र वासनापूर्ति के लिए घोर अनैतिक कर्म करते हैं। ऐसे ही एक ठाकुर की दृष्टि रंगूजी पर पड़ गई। वह ताक-झाँक करने लगा। रंगूजी ने उसे निवेदन करवाया कि "मैं उनकी पुत्री के समान हूँ। अपनी हरकतों को बन्द करने की कृपा करें।" लेकिन वासना के कीड़ों में विवेक कहाँ? उस पर विनय का उलटा प्रभाव हुआ। उसने रंगूजी को दो-चार बदमाशों के द्वारा उठवा कर मँगवाने (अपहरण) की योजना बना ली।

ठाकुर के तौर-तरीकों से रंगूजी को अपना शील असुरक्षित दिखाई दिया। शीलरक्षा के लिए उन्होंने दूसरी मंजिल से कूदकर अपने प्राणोत्सर्ग का विचार किया। रात को जब वे प्राणोत्सर्ग के लिए उद्यत थीं तभी ऊँट पर बैठा एक व्यक्ति आया। उसने कहा—"बहन! इस ऊँट पर बैठ जाओ। मैं तुम्हारे अभीष्ट स्थान पर पहुँचा दूंगा।" हृदय को हृदय भलीभाँति पहचानता है। रंगूजी को उस ऊँट वाले पर विश्वास हुआ। वे ऊँट पर बैठ गईं। कुछ ही समय बाद जब उन्होंने आँखें खोलीं तो अपने को पीहर में पाया।

कुछ समय बाद रंगूजी ने पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के प्रवचन सुनकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

पुत्र! यह उन्हीं रंगूजी का मकान है। बेटा! दृढ़निश्चयी और दृढ़धर्मी व्यक्तियों के जीवन में ऐसी घटनाएँ हो ही जाती हैं। उनके मार्ग की विघ्न-बाधाएँ स्वयमेव नष्ट हो जाती हैं।

इस घटना से चौथमलजी की दीक्षा-भावना और भी दृढ़ हो गई।

धम्मोत्तर में रहते हुए माता-पुत्र को काफी दिन हो गये थे। पूनमचन्दजी की निगरानी में भी कुछ ढील आ गई थी। एक दिन वहां से किराये की सवारी लेकर दोनों माता-पुत्र नीमच आ गये।

उनके जाने से पूनमचन्दजी क्रोध में भर गये।

व्यापार समेटना

नीमच में चौथमलजी की वैराग्य भावना को और भी बल मिला। उनके पड़ौस में एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी। वे उसकी शवयात्रा में सम्मिलित हुए। श्मशान में उस पुरुष की चिता जल रही थी और उनके मन में वैराग्य की ज्योति जल रही थी।

घर लौटकर आए और माता से आज्ञा लेकर पूज्य अमोलक ऋषिजी महाराज के दर्शन करने प्रतापगढ़ चले गये। उनके प्रवचन से वैराग्य भावना और बढ़ी। वहाँ से छोटी सादड़ी (मेवाड़) गये। पूज्य श्रीलालजी महाराज और शंकरलालजी महाराज के दर्शन किये। चार रात्रि का आगार रखकर तिविहार रात्रिभोजन का यावज्जीवन त्याग कर दिया।

फिर लौटकर घर आये तो माता ने कहा—

"बेटा! कारोबार समेट लो। लेना-देना साफ कर लो।"

पुत्र ने माता की सलाह मानी और व्यापार समेटना शुरू कर दिया। कुआँ, आम के वृक्ष और सारी चल-अचल सम्पत्ति बेच दी। नाई ने दुःख प्रगट करते हुए कहा कि मेरे यजमान का एक घर कम हो जायेगा तो अपने कानों की सोने की बालियाँ देकर उसे प्रसन्न कर दिया। एक व्यक्ति का मकान १५०) रु० में इनके पिताजी ने गिरवीं रखा था, उसे भी उस व्यक्ति को वापिस लौटा दिया। इनके सद्व्यवहार की प्रशंसा सम्पूर्ण नगर में होने लगी। उसी समय निम्बाहेड़ा

निवासी श्री खूबचन्दजी वैरागी नीमच आये। इनके अतिथि बने और उदयपुर आने की प्रेरणा देकर चले गये।

अभ्यास के पथ पर

उदयपुर में उस समय वादी मानमर्दक पं० श्री नन्दलालजी महाराज का चातुर्मास था, दोनों माता-पुत्र वहीं पहुँचे। वहाँ इन्होंने प्रतिक्रमण और दशवैकालिक सूत्र के तीन अध्ययन कंठस्थ कर लिए।

इसके बाद इन्होंने माता सहित गुरुदर्शनार्थ भ्रमण प्रारम्भ किया। ब्यावर में अपनी सगी मौसी साध्वी श्री रत्नाजी महाराज के दर्शन किये। वहाँ से बीकानेर गये। वहाँ ३२ शास्त्रों की ज्ञाता गट्टूबाई के घर ठहरे। महासती नन्दकुँवरजी महाराज की साध्वियाँ भी वहीं विराजमान थीं। बीकानेर से भीनासर होते हुए देशनोक पहुँचे। वहाँ पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदायानुगामी श्री रघुनाथजी महाराज और श्री हजारीमलजी महाराज विराजमान थे। उनके दर्शन किये, प्रवचन सुने। उन्होंने भी चौथमलजी के मुख से दशवैकालिक की गाथाओं का शुद्ध उच्चारण सुनकर हर्ष व्यक्त किया।

वहाँ से जयपुर गये। काशीनाथजी के घर ठहरे। फिर निम्बाहेड़ा (टोंक) पहुँचे। यहाँ कविवर श्री हीरालालजी महाराज से शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। कुछ शास्त्र, पात्र, रजोहरण आदि धर्म-उपकरण लेकर जावद (मालवा) पहुँचे। वहाँ उस समय पूज्यश्री चौथमलजी महाराज और पूज्य श्रीलालजी महाराज विराजमान थे। उन्होंने अलग-अलग इन्हें दीक्षा लेने की प्रेरणा दी।

इस भ्रमण का उद्देश्य साधुचर्या का सूक्ष्म अध्ययन और श्रमण-जीवन की कठिनाइयों को समझना था। पूर्व अध्ययन से जीवन यात्रा में प्रमाद और भूल का अवकाश नहीं रहता।

इस निकट अनुभव के बाद इन्होंने अब दीक्षा में विलम्ब करना उचित न समझा। दीक्षा की भावना लेकर माता-पुत्र निम्बाहेड़ा आये और कविवर्य पं० श्री हीरालालजी महाराज के साथ केरी गाँव पहुँचे। जब महाराजश्री ने इस पदयात्रा का कारण पूछा तो उन्होंने प्रव्रजित होने की इच्छा प्रकट की। इनकी दृढ़ता से महाराजश्री सन्तुष्ट हो गये।

पूनमचन्द जी फिर विघ्न बने

दीक्षार्थी के परिवार के लोगों की आज्ञा के बिना जैन साधु किसी को दीक्षा नहीं देते। यही इन माता-पुत्रों की दीक्षा में विलंब का कारण था। केरी से श्री फूलचन्दजी और भोगीदासजी चौथमलजी के श्वसुर पूनमचन्दजी से आज्ञा लेने के लिए गये। दीक्षा की बात सुनते ही पूनमचन्द जी आगबबूला हो गये। उन्होंने धमकी दी—

"मेरे पास दुनाली बन्दूक है। एक गोली से शिष्य को यमधाम पहुँचा दूँगा और दूसरी से दीक्षा देने वाले गुरु को।"

यह धमकी सुनकर दोनों सन्नाटे में आ गये। आगे कुछ कहने का प्रश्न ही नहीं था। लौटकर चले आये। सन्तगण भी चमक उठे। आशुकवि श्री हीरालालजी महाराज ने दीर्घदृष्टि से सोच-विचार कर चौथमल जी को धर्मोपकरण लेकर मन्दसौर आने की प्रेरणा दी।

चौथमलजी मंदसौर पहुँचे। वहाँ भी बिना आज्ञा दीक्षा देना सम्भव न हुआ। चौथमलजी का हृदय व्यथित हो गया। उनकी अकुलाहट बढ़ रही थी। माता के समक्ष अपनी भावना व्यक्त की तो उसने अपनी व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग करते हुए सुझाया—

"मेरे पास जो आभूषण हैं। उन्हें पूनमचन्द जी को दे आऊँ। शायद वे अनुमति पत्र लिख दें।"

वैरागी पुत्र को आभूषणों का क्या लोभ? उसने तुरन्त सहमति व्यक्त कर दी। माता आभूषण लेकर धम्मोत्तर गई। पूनमचन्दजी को आभूषण देकर समझाया—

"समधीजी! मेरा पुत्र प्रव्रजित हुए विना तो मानेगा नहीं। आप यह जेवर रख लीजिए। आपकी पुत्री के लिए सहारा बन जाएँगे। अब आप मुझे अनुमति-पत्र लिख दीजिए।"

पूनमचन्द भी पूरे घाघ थे। आभूषण लेकर अनुमति पत्र लिख दिया। लेकिन उसमें सिर्फ केसरबाई को दीक्षा की अनुमति लिखी, चौथमलजी की नहीं। माता इस चाल से अनजान थी। उसने समझा-बुझाकर बहूरानी से अनुमति-पत्र लिखा लिया। वहू ने माता-पुत्र दोनों को दीक्षित होने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

विघ्न पर विघ्न

पिता-पुत्री के अनुमति पत्र लेकर माता मन्दसौर आई। चौथमलजी हर्षित हुए। लेकिन जब पूनमचन्दजी का अनुमति-पत्र पढ़ा गया तो उनका कपट खुला। माता केसरबाई ने कहा—

"बहूरानी की अनुमति मिल ही गई है। ससुर की अनुमति न मिली, न सही। मैं माँ हूँ। मैं आज्ञा देती हूँ।"

गुरुदेव आशुकवि पं० श्री हीरालालजी महाराज सन्तुष्ट हुए। उन्होने मन्दसौर के श्री संघ से विचार-विमर्श किया। श्रीसंघ पर पूनमचन्दजी की धमकी का गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था। विनम्र किन्तु स्पष्ट शब्दों में कहा—'महाराजश्री इस दशा में हमारे यहाँ दीक्षा होना कठिन है।' यह उत्तर सुनकर गुरुदेव ने वहाँ से विहार कर दिया। जावरा पहुँचे तो वहाँ के श्रीसंघ ने भी यही उत्तर दिया।

इन विघ्नों से चौथमलजी बहुत क्षुभित हुए। उन्होंने अपनी माताजी से शीघ्र दीक्षा दिलवाने की प्रार्थना की। माता ने कहा—

"सादगीपूर्ण दीक्षा लेनी है तो जल्दी हो जायगी और यदि आडम्बरपूर्वक समारोह के साथ लेनी है तो प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।"

"हमें आडम्बरों से क्या काम? दीक्षा ही तो लेनी है। आप सादगी से दीक्षा दिलवा दें।" चौथमलजी ने कहा।

"ठीक है पुत्र! मुझे भी अपना आत्मकल्याण करना है। तुम्हें दीक्षा दिलाकर मैं भी प्रव्रजित हो जाऊँगी।"

पुत्र को आश्वासन देकर माता ने गुरुदेव से निवेदन किया। गुरुदेव ने कहा—

"मैंने भी खूब सोच-विचार लिया है। फाल्गुन शुक्ला ५ का दिन ठीक रहेगा। उपयुक्त अवसर और स्थान देखकर दीक्षा दे दूंगा। तुम धर्मोपकरण लेकर तैयार रहना।"

तिथि निश्चित होते ही माता-पुत्र दोनों हर्ष से भर गए। गुरुदेव बड़लिया, ताल होते हुए बोलिया पधारे।

संकल्प पूरा हुआ

वि० सं० १६५२, फाल्गुन शुक्ला ५, रविवार का दिन, पुष्य नक्षत्र का योग, शुभ मुहूर्त। ऐसे शुभमुहूर्त में कविवर्य श्री हीरालालजी महाराज ने चौथमलजी को दीक्षा प्रदान कर दी। अब

चौथमलजी श्री चौथमलजी महाराज बन गए। साधना के अमर पथ पर चल पड़े। उनका जीवन त्याग-पथ की ओर मुड़ गया। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—पाँच महाव्रतों का पालन करने लगे। आठ प्रवचनमाताओं को जीवन में साकार करने लगे। अब वे 'षट्काय के पीयर' बन गए। नवदीक्षित मुनि चौथमलजी महाराज गुरुदेव के साथ पंच पहाड़ पधारे। केसरबाई भी वहीं पहुँच गई। छोटी दीक्षा के ७ दिन बाद फाल्गुन शुक्ला १२ को बड़ी दीक्षा समारोहपूर्वक धूम धाम से सम्पन्न हुई। संकल्प के धनी का संकल्प पूरा हुआ। जो उसने विचार किया वह पूरा कर दिखाया। माता केसरबाई ने भी अपने पुत्र की दीक्षा में पूरी-पूरी सहायता की।

संवत् १९५० से १९५२ के दो वर्षों तक चौथमलजी महाराज की दीक्षा में विघ्न आते रहे। उनके वैराग्य की धारा को संसार की ओर मोड़ने का अथक प्रयास किया गया। हवालात में रखा गया, जान से मारने की धमकी दी गई लेकिन उनका वैराग्य इतना कच्चा नहीं था जो इन धमकियों से दब जाता। ठाणांग सूत्र में संसार विरक्ति के निम्न कारण बताए हैं—

(१) स्वेच्छा से ली हुई प्रव्रज्या
(२) रोष से ली गई प्रव्रज्या
(३) दरिद्रता से ऊबकर ली गई प्रव्रज्या
(४) स्वप्नदर्शन द्वारा ली गई प्रव्रज्या
(५) प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर ली गई प्रव्रज्या
(६) जाति स्मरण ज्ञान से पूर्व जन्मान्तर का स्मरण होने से ली गई प्रव्रज्या
(७) रोग के कारण ली गई प्रव्रज्या
(८) देवों द्वारा प्रतिबुद्ध किये जाने पर ली गई प्रव्रज्या
(९) अपमानित होने पर ली गई प्रव्रज्या
(१०) पुत्र-स्नेह के कारण ली गई प्रव्रज्या

अन्यत्र दीक्षा के संसार-प्रसिद्ध निम्न कारण माने गये हैं—

(१) **दुःखगर्भित वैराग्य**—अशुभ कर्मों के कारण दुःखों से घबराकर जो संसार से विरक्ति होती है, वह दुःखगर्भित वैराग्य कहलाता है।

(२) **श्मशानजन्य वैराग्य**—यह वैराग्य श्मशान में किसी शव की अन्येष्टि होते हुए देखने से होता है।

ये दोनों ही वैराग्य श्लाघनीय नहीं है। ये स्थायी भी नहीं रहते। चौथमलजी महाराज का वैराग्य इनमें से किसी भी कोटि का नहीं था। उनका वैराग्य आत्मा से प्रस्फुटित हुआ था। इसको आगम की भाषा में (३) **ज्ञानगर्भित वैराग्य** कहा जाता है। यह स्थायी भी होता है। इसीलिए दो वर्ष तक निरन्तर विघ्न-बाधाएँ सहते रहने पर भी चौथमलजी महाराज की वैराग्य ज्योति बुझी नहीं वरन् और भी अधिक प्रदीप्त होती रही। दीक्षा ग्रहण करने के बाद तो उनके वैराग्य में दिनोंदिन चमक आती गई। वे दिवाकर बनकर चमके और जन-जन के हृदय को आलोकित किया।

चौथमलजी की दीक्षा के दो महीने बाद केसरबाई ने भी महासती श्री फूंदीजी आर्याजी महाराज से दीक्षा अंगीकार कर ली। वे साध्वी बन गईं। वीरमाता और वीरपुत्र दोनों ही साधना द्वारा अपना आत्मकल्याण करने लगे।

उदय : धर्म-दिवाकर का

प्रथम चातुर्मास (सं० १९५३) : झालरापाटन छावनी

नवदीक्षित मुनि श्रीचौथमलजी महाराज ने सं० १९५३ का प्रथम चातुर्मास गुरुदेव श्री हीरालालजी महाराज के साथ छावनी में किया। गुरु-सेवा में रत रहकर 'दशवैकालिक का शब्दार्थ' तथा 'औपपातिक सूत्र' का अध्ययन किया।

दूसरा वर्षावास (सं० १९५४) : रामपुरा

छावनी चातुर्मास के पश्चात् गुरुदेव ने आपश्री को चैनरामजी महाराज के साथ अलग विहार करवाया। कोटा, रामपुरा, मणासा, नीमच, जावरा होते हुए आप पुनः गुरुदेव के पास पधारे और गुरुदेव की सेवा में रहकर दूसरा चातुर्मास रामपुरा में किया।

प्रथम प्रवचन

कोटा विहार के समय श्रावकों ने प्रवचन सुनने की जिज्ञासा की। मुनि चैनरामजी महाराज ने चौथमलजी महाराज को प्रेरित किया। आपने प्रवचन दिया। व्याख्यान देने का प्रथम अवसर था, लेकिन आपकी शैली इतनी मधुर और विषय प्रतिपादन इतना स्पष्ट था कि श्रोता पूर्ण रूप से प्रभावित हुए। आग्रह करके श्रावक संघ ने आपश्री का एक व्याख्यान और करवाया।

यह उनकी प्रवचन शैली की उत्तमता का प्रमाण है। इसके बाद तो उनकी प्रवचन शैली निखरती ही चली गई।

तीसरा वर्षावास (सं० १९५५) : बड़ी सादड़ी (मेवाड़)

तीसरा चातुर्मास भी आपने गुरुदेव के साथ बड़ी सादड़ी (मेवाड़) में किया। इस बीच आप जावरा दादागुरु श्री रतनचन्दजी महाराज के दर्शन-वन्दन हेतु गए थे। इस चातुर्मास में आपके शास्त्रीय ज्ञान और गहन अध्ययन की बहुत वृद्धि हुई।

चौथा चातुर्मास (सं० १९५६) : जावरा

बड़ी सादड़ी का चातुर्मास करने के बाद आपश्री निम्बाहेड़ा तथा चित्तौड़ होते हुए पारसोली (मेवाड़) पधारे। वहाँ के राव रत्नसिंहजी मेवाड़ाधीश के सोलह जागीरदारों में से एक थे। उन्हें जैनधर्म का ज्ञान भी था और वे श्रद्धेय पंडित श्री रतनचन्दजी महाराज, गुरु जवाहरलालजी महाराज, कविवर श्री हीरालालजी महाराज आदि से प्रभावित भी थे। उनकी दैनिक चर्या जैन श्रावकों की-सी थी। उन्होंने चौथमलजी महाराज के दर्शन करके अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये—महाराजश्री! एक दिन धार्मिक क्षेत्र में आपश्री का आदरणीय स्थान होगा। आपश्री जैन सिद्धान्तों के पारगामी विद्वान् बनोगे।

वहाँ से गुरुदेव के साथ विहार करते हुए आपश्री नारायणगढ़ पधारे। वहाँ नृसिंहजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक न था। गुरुदेव इन्हें उनकी सेवा में छोड़ गए। इनकी सेवा से कुछ दिन बाद नृसिंहजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक हो गया। आप उनके साथ विहार करते हुए मन्दसौर पधारे।

शास्त्रज्ञ द्वारा प्रशंसा

एक दिन भूरा मगनीरामजी महाराज ने आपसे कहा—'चौथमलजी आज व्याख्यान तुम दो।'

उस समय वहाँ आगम शास्त्रों के तत्त्ववेत्ता गौतमजी बागिया व्याख्यान श्रवण करने आये हुए थे। उनके सामने बड़े-बड़े मुनियों का भी प्रवचन देने का साहस न होता था। कारण यह था कि बागियाजी भगवती, पन्नवणा आदि आगमों के विशिष्ट जानकार थे। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने आत्मविश्वासपूर्वक व्याख्यान देना शुरू किया। उनकी ओजस्वी वाणी, मधुर शैली, गम्भीर घोष और आचारांग के अस्खलित उच्चारण तथा युक्तियुक्त एवं स्पष्ट भावार्थ को सुनकर श्रोतागण मुग्ध हो गए। बागियाजी बाग-बाग हो गए। उनके मुख से उद्गार निकले—

"महाराज साहब ! आपने अल्प समय में ऐसी विशिष्ट ज्ञानाराधना कर ली होगी, मुझे यह कल्पना भी नहीं थी। आपकी व्याख्यान शैली की रोचकता और स्पष्टता से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। आपकी वैराग्यावस्था में मैंने आपको जो अपमानजनक शब्द कहे, उनके लिए मैं हृदय से क्षमायाचना करता हूँ।"

बागियाजी की प्रशंसा आपश्री के प्रवचन की उत्कृष्ट प्रभावोत्पादकता का स्पष्ट प्रमाण है। इसके बाद तो आपके प्रवचनों की धूम ही मच गई।

श्रावकों ने वहाँ इन्हें आग्रहपूर्वक कुछ दिन के लिए रोक लिया। वहाँ से आपश्री विहार करके जावरा आये और गुरुवर श्रीजवाहरलालजी महाराज की सेवा में जुट गए। वहीं पं० नन्दलाल जी महाराज आदि विराजमान थे। उन्हीं की सेवा में रहकर आपने वहीं अपना चातुर्मास किया।

पाँचवाँ चातुर्मास (सं० १९५७) : रामपुरा

जावरा चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री वहाँ से विहार करके निम्बाहेडा पधारे। वहाँ उनकी मौसी रत्नाजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। कुछ दिन वहाँ रुककर कुकडेश्वर (होल्कर स्टेट) में पधारे। दूसरी ओर से विहार करते हुए गुरुदेव श्री हीरालालजी महाराज भी वहाँ आ पहुँचे। वहाँ से रामपुरा आए और वहीं वर्षावास किया। वर्षावास में कितने ही बालकों को तत्त्व-ज्ञान सिखाया और कई प्रवचन दिए।

छठा वर्षावास (सं० १९५८) : मन्दसौर

रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण करके मुनिश्री चौथमलजी महाराज अनेक स्थानों को अपने चरण स्पर्श से पवित्र करते हुए मन्दसौर पधारे। यहीं चातुर्मास किया। इस चातुर्मास की विशेषता यह थी कि यह वर्षावास आपने स्वतन्त्ररूप से किया। चार मास तक जनता आपश्री के प्रवचनों से लाभान्वित होती रही।

सातवाँ चातुर्मास (सं० १९५९) : नीमच

मन्दसौर चातुर्मास के बाद आपश्री विहार करते हुए खाचरोद पधारे। वहाँ आप गुरु श्री जवाहरलालजी महाराज की सेवा में रहे। वहाँ अनेक संत एकत्र हो गये। वर्षा ऋतु निकट आने लगी। इन्दौर का श्री संघ, धार से श्री मोतीलालजी आदि और उज्जैन से श्री हजारीमलजी आदि अपने-अपने यहाँ चातुर्मास का निमन्त्रण देने आए। उज्जैन संघ ने तो चौथमलजी महाराज के चातुर्मास के लिए खास प्रार्थना की। लेकिन उनके भाग्य में आपश्री की मंगलमयवाणी सुनने का योग न था। श्री चौथमल जी महाराज को उनके गुरुदेव ताल (जावरा) में चातुर्मास की आज्ञा प्रदान करने वाले थे तभी बड़ी सादड़ी का श्री संघ आ पहुँचा। बड़ी सादड़ी में अधिक उपकार की संभावना से आपकी प्रार्थना पर गुरुदेव ने बड़ी सादड़ी चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान करदी। तदनुसार आपने बड़ी सादड़ी की ओर विहार करने का विचार किया। मन्दसौर होते हुए आप

नीमच पधारे। नीमच में श्री हजारीमल जी महाराज बीमार हो गये। अतः वहीं चातुर्मास किया। वहाँ श्री हुकमीचन्द जी की दीक्षा सम्पन्न हुई।

आठवाँ चातुर्मास (सं० १९६०) : नाथद्वारा

नीमच से विहार करके छावनी, जावद होते हुए कनेरे पधारे। मार्ग के सभी स्थानों पर जैन और जैनेतरों ने प्रवचन-पीयूष का पान किया, विविध प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान लिए। सर्वत्र गरीब, अमीर, राज्याधिकारी, व्यापारी, मजदूर और कृषक एकत्र होते। अनेक स्थानों पर विहार करते हुए आपश्री सारोल पधारे। यह स्थान नाथद्वारा के निकट है। नाथद्वारा वैष्णवों का तीर्थ है और विष्णुपुरी कहलाता है। श्रावकों से पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ कुछ घर जैनों के भी हैं। आपश्री सारोल से विहार कर नाथद्वारा पधारे। बाजार से गुजरे तो दूकानदारों ने उठकर सभी संतों की वन्दना की। लोगों से ठहरने योग्य स्थान पूछा तो उत्तर मिला—'द्वारकाधीश की खडग पर योग्य स्थान है।' संत गण वहाँ के कर्मचारी से स्वीकृति लेकर ठहर गए। दूसरे दिन व्याख्यान हुआ तो श्रोता जैन ही थे, स्थान भी एकान्त में था। आपने सार्वजनिक स्थल पर व्याख्यान देने की इच्छा प्रगट की। इस पर लोगों ने कहा—

"महाराज साहब! सार्वजनिक स्थान—बाजार में व्याख्यान देना उचित नहीं। यह वैष्णवों का गढ़ है। यदि किसी ने टेढ़े-मेढ़े प्रश्न कर दिये तो आपश्री के साथ-साथ जिनशासन की भी अवमानना होगी।"

"गुरुदेव की कृपा से जिनशासन की प्रभावना ही होगी। आप लोग चिन्ता न करें।" महाराजश्री का आत्म-विश्वास भरा उत्तर था।

उत्साहित होकर उदयपुर निवासी श्री राजमलजी ताकड़िया ने कहा—

"यहाँ का सार्वनजिक स्थल लीलियाकुंड है। आपश्री वहीं पधारें। मैं सब व्यवस्था कर दूंगा।"

तदनुसार लीलियाकुंड पर आपश्री का प्रवचन हुआ। पहले दिन श्रोता कम रहे लेकिन उनकी संख्या बढ़ने लगी। तेरहवें व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या तेरह सौ तक पहुँच गई—उनमें वैष्णव, हिन्दू, सनातन धर्म के अधिकारी विद्वान् और श्रीनाथजी के भक्त आदि सभी होते थे। सभी प्रवचन-गंगा में डुबकियाँ लगाते। टेढ़े-मेढ़े तो क्या किसी ने कोई खास प्रश्न भी नहीं किए। प्रवचन शैली ही इतनी मधुर और रोचक थी कि विषय बिल्कुल स्पष्ट हो जाता। आपश्री किसी भी धर्म का खण्डन-मंडन नहीं करते थे। सीधी सच्ची सदाचार की बात ओजस्वी वाणी में कहते थे। परिणामस्वरूप जनता खिंची चली आती थी।

जिनशासन की महती प्रभावना हुई।

जब आपश्री नाथद्वारा से चले तो जैनों के अतिरिक्त जैनेतरों ने भी रुकने की सभक्ति प्रार्थना की। आपने जैन साधुओं का कल्प समझाकर उन्हें संतुष्ट किया। सभी ने फिर पधारने का आग्रह किया।

नाथद्वारा से विहार कर आपश्री संत समुदाय सहित गंगापुर पधारे। वहाँ प्रवचन-गंगा बहने लगी। एक बार बाजार में आपका व्याख्यान हो रहा था। वैष्णवों ने अपने ठाकुरजी के रथ का मार्ग इसीलिए बदल दिया कि आपके प्रवचन में विघ्न न पड़े और श्रोताओं को उठना न पड़े क्योंकि श्रोताओं से बाजार पूरा भरा हुआ था।

गंगापुर से चित्तौड़ होते हुए आप जावरा पधारे। मार्ग में गुरुदेव श्री हीरालालजी महाराज का सानिध्य भी प्राप्त हो गया। जावरे में नाथद्वारा श्रीसंघ चातुर्मास की प्रार्थना लेकर आया। जावरा श्रीसंघ को एवं रतलाम के सेठ अमरचन्द जी पीतलिया को इस प्रार्थना पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—

"आपके यहाँ जैन श्रावकों के कितने घर हैं ?"

"बहुत थोड़े हैं।"

"तो चातुर्मास की धर्म प्रभावना कैसे बनेगी ?"

"अजैन लोग हमसे अधिक उत्सुक हैं, इसलिए धर्म प्रभावना अधिक होगी, हमें पूरा विश्वास है।"

सेठ अमरचन्द जी ने सोचा—'विष्णुपुरी नाथद्वारा में महाराज साहब के निमित्त से जिन-शासन की प्रभावना होगी।' इसलिए उन्होंने नाथद्वारा चातुमासार्थ अपनी सहर्ष सहमति प्रगट कर दी।

मुनिश्री हीरालाल जी महाराज की आज्ञा से आपश्री का यह चातुर्मास नाथद्वारा में हुआ। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर अजैनों ने भी जैन विधि से व्रत उपवास आदि किए। आपकी प्रशंसा गाई जाने लगी। नाथद्वारा में जिनशासन और जैन सिद्धान्तों का खूब प्रचार-प्रसार हुआ।

नवाँ चातुर्मास (सं० १६६१) : खाचरोद

नाथद्वारा से विहार कर मुनिश्री चौथमलजी महाराज सन्त, समुदाय सहित हारोल, देल-वाड़ा, डबूक आदि स्थानों को पवित्र करते हुए उठाले (मेवाड़) पधारे। वहाँ नाथद्वारा के श्रावकों ने आकर आपसे पुनः नाथद्वारा पधारने की प्रार्थना की। यद्यपि वे नाथद्वारा में चातुर्मास बिताकर आये थे किन्तु श्रावकों और तपस्वी हजारीमलजी महाराज की इच्छा न टाल सके। तपस्वीजी महाराज ने श्रावकों द्वारा मिलने की इच्छा प्रकट करायी थी। आपश्री नाथद्वारा पहुँचे। तपस्वी हजारीमलजी महाराज के दर्शन किये, अन्य सन्तों की भी वन्दना की। उन्होंने भी बहुत प्रेम व्यक्त किया। हजारीमलजी महाराज ने बीकानेर चलने का आग्रह किया। इस पर आपश्री ने उत्तर दिया कि 'गुरुदेव की आज्ञा आवश्यक है।' इस पर तपस्वीजी ने कहा—'हम व्यावर में तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।' वहाँ से विहार कर आपश्री उदयपुर पधारे। प्रवचन-गंगा बहने लगी। उदयपुर स्टेट के सुप्रसिद्ध जागीरदार और भूतपूर्व प्रमुख दीवान कोठारी बलवन्तसिहजी भी प्रवचनों को बड़े चाव से सुनते। वहाँ से विहार कर आपश्री बड़ेगाँव पधारे। आपके उपदेश से प्रेरित होकर वहाँ के किसानों ने हिंसा का त्याग कर दिया। वहाँ से भिण्डर आदि स्थानों पर होते हुए कानोड पधारे।

कानोड में एक दिन आपश्री अपने ठहरने के स्थान पर बैठे थे। एक युवक पर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने अनुमान किया कि यह युवक (किशोर) निराश्रित है। पास बुलाकर उसका परिचय पूछा तो उसने बताया—'मैं राजपूत हूँ। मेरा नाम शंकरलाल है। पहले धरियावद में रहता था। माता-पिता न होने से यहाँ आ गया हूँ।'

महाराजश्री ने कहा—"अन्न-वस्त्र आदि के लिए इस मूल्यवान जीवन को खोने से क्या लाभ ? साधु बनकर अपने मनुष्य-जीवन को सफल कर।"

शंकरलाल ने प्रसन्न होकर सहमति दी। वहाँ के श्रावकों ने भी अनुमति दी। शंकरलाल ने अपनी जातिवालों से भी अनुमति ले ली और वह प्रव्रजित हो गया।

वहाँ से अनेक स्थानों पर होते हुए आप खाचरोद पधारे और वहीं वर्षावास किया।

दशवां चातुर्मास (सं० १९६२) : रतलाम

खाचरोद का चातुर्मास शान्तिपूर्वक पूरा हो गया। रतलाम से प्रतापमलजी महाराज की अस्वस्थता के समाचार मिले। आपने लक्ष्मीचन्दजी महाराज के साथ दो साधुओं को भेजा। किन्तु उनकी सेवा का सुफल प्राप्त न हो सका; प्रतापमलजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। आपश्री भी वहाँ पधार गये थे। स्वर्गवास के पश्चात् आपने वहाँ से विहार करने का विचार किया।

आपकी माताजी केसरकुंवरजी महाराज, जो सं० १९५२ में, साध्वी बन गई थीं, वहीं रतलाम में विराजमान थीं। ९ वर्ष की कठोर साधना से उनका शरीर-बल क्षीण हो गया था। उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था। गिरते स्वास्थ्य से उन्हें लगा—जैसे अन्त समय नजदीक आ पहुँचा है। एक दिन उनके उद्गार निकले—

"मेरा अन्त समय समीप ही दिखाई दे रहा है। अतः आप (मुनिश्री चौथमलजी महाराज) आसपास ही विचरण करना जिससे मुझे अन्तिम समय के त्याग-प्रत्याख्यान में आपका सहयोग प्राप्त हो सके। आपके मुख से मैं मंगलपाठ सुन सकूँ और संथारा ग्रहण करके शान्तिपूर्वक मेरी इहलीला समाप्त हो सके।"

माताजी की इस भावना का पुत्र पर यथेच्छ प्रभाव हुआ। यद्यपि अब माता-पुत्र का सम्बन्ध नहीं रहा था, लेकिन माता का उपकार कैसे भुलाया जा सकता है। माता का पद सांसारिक दृष्टि से तो बहुत ही उच्च माना गया है; इस पर आपश्री की माताजी तो दीक्षा में परम सहकारिणी हुई थीं। मार्ग में आने वाली सभी विघ्न-बाधाओं से जूझकर उन्होंने संयम का पथ-प्रशस्त किया था। उन्हीं के अकथ प्रयासों और साहस से आपश्री की दीक्षा और संयम-साधना संभव हो सकी थी। ऐसी माता का उपकार क्या भुलाया जा सकता था? उसकी भावना की क्या उपेक्षा की जा सकती थी? आपश्री ने महासतीजी महाराज की इच्छा सहर्ष स्वीकार कर ली। अनेक जनों को सत्पथ की ओर प्रेरित करते हुए रतलाम के निकट ही धमणोद और वहाँ से सैलाना पधारे। वहाँ आपको महासतीजी महाराज के स्वास्थ्य में सुधार के समाचार प्राप्त हुए। चिन्ता कम हुई। विचार हुआ—अब स्वास्थ्य सुधर ही जायगा। तनिक से सुधार से पूर्ण सुधार की आशा बँध ही जाती है। आप नीमच पधारे। वहाँ वादी-मानमर्दक गुरुवर श्रीनन्दलालजी महाराज विराज रहे थे। वहीं रतलाम श्रावक संघ ने रतलाम में चातुर्मास की प्रार्थना की। उत्तर मिला—सभी सन्तगण रामपुरा में एकत्र होंगे, वहीं वर्षावास का निर्णय होगा। आपश्री रामपुरा पधारे। सभी सन्त वहाँ एकत्र हुए।

रतलाम में महासती श्री केसरकुंवरजी महाराज का स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा। उनकी प्रत्येक श्वास में मुनिश्री चौथमलजी महाराज के दर्शनों की ध्वनि थी। किन्तु आपश्री तो रतलाम से बहुत दूर रामपुरा में थे। वहाँ कैसे पहुँच सकते थे? शायद प्रकृति का यह नियम है कि अत्यधिक अनुराग वालों को यह अन्त समय में समीप नहीं रहने देती। इसीलिए निर्वाण के समय श्रमण भगवन्त महावीर ने गौतम स्वामी को दूर भेज दिया था। वे जानते थे कि गौतम का उनके प्रति विशेष अनुराग है, निर्वाण के समय उन्हें बहुत दुःख होगा। शायद प्रकृति भी यही चाहती थी कि महासती केसरकुंवरजी महाराज के अन्तिम समय पर मुनिश्री चौथमलजी महाराज वहाँ उपस्थित न रहें।

माता का स्वर्गवास

माता-पुत्र का सम्बन्ध बड़ा अटूट होता है। हजारों कोस दूर रहने पर भी यह स्नेह का बन्धन नहीं टूटता। त्रयोदशी की रात्रि को आपश्री को एक स्वप्न दिखाई दिया। आपने देखा—महासती केसरकुँवरजी महाराज आपश्री के सम्मुख प्रत्यक्ष खड़ी हैं। वे कह रही हैं—तुम्हारे दर्शनों की इच्छा अपूर्ण रह गई। शरीर वेदना के अन्तिम समय में मैंने चौविहार संथारा ले लिया है। प्रातः तक मेरा यह नश्वर शरीर छूट जायगा। मेरी भावना है कि तुम जिनशासन की महती प्रभावना करो। शरीर छोड़कर मैं तुमसे दूर नहीं हूँ। धर्म-प्रभावना में मेरा उचित सहयोग तुम्हें मिलेगा।"

बस उनकी आँखें खुल गई। वे कुछ पूछ भी न सके। स्वप्न का दृश्य खुली आँखों के सामने भी नाचने लगा। सोचने लगे—यह स्वप्न है, या सत्य का संकेत ? क्या ऐसा हो गया ? शेष रात्रि वे सो न सके।

प्रातःकाल ही रतलाम से सूचना मिली कि 'महासती केसरकुँवरजी महाराज ने संथारा ग्रहण कर लिया है।'

समाचार पाते ही आपने शीघ्र विहार किया। कलारिया पहुँचे। वहाँ समाचार मिला—'चतुर्दशी की सुबह महासतीजी महाराज का स्वर्गवास हो गया है।'

चित्त में खेद हुआ। स्वप्न सत्य हो गया। भावना उमड़ी—'मैं अपनी वीरमाता, दीक्षा में परम सहकारिणी, उपकारिणी माता को अन्तिम समय दर्शन भी न दे सका। उनकी अन्तिम इच्छा भी पूरी न कर सका। त्याग-प्रत्याख्यान में सहायक भी न हुआ।' तुरन्त भावना बदली—'खेद से कर्मबन्धन की शृंखला बढ़ती है। होनी के अनुसार ही निमित्त मिलते हैं। कौन किसकी माता, कौन किसका पुत्र ? जीव अकेला आता है और आयु पूर्ण होने पर अकेला ही चला जाता है। जन्म-मरण का नाम ही तो संसार है। इसमें दुःख कैसा और आश्चर्य क्या ?' और आपने चित्त के खेद तथा मोह-बन्धन को झटक दिया।

कलारिया से आप वापिस लौट रहे थे तभी जावरा का श्रावक संघ आपको अत्यधिक आग्रह करके जावरा ले गया। वहाँ मालूम हुआ कि एक-दो दिन तो महासतीजी महाराज ने आपकी याद की और फिर अन्तिम समय उन्होंने मोह तोड़ दिया। उनके अन्तिम शब्द थे—'कौन किसका पुत्र, कौन किसकी माता। ये सब सांसारिक बन्धन झूठे हैं। मोह का पसारा है। मैं साध्वी होकर किस मोह-ममता में फँस गई ? मेरा तो एकमात्र लक्ष्य आत्मकल्याण है।'

यह जानकर आपने भी सन्तोष धारण कर लिया।

माता और पुत्र दोनों ही धन्य थे। माता ने अपने पुत्र को भी आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर किया और स्वयं भी अपनी आत्मा का कल्याण किया और पुत्र सदा ही माता के उपकारों के प्रति कृतज्ञ तथा विनम्र बना रहा।

तदनन्तर आप रतलाम पधारे। वहाँ चातुर्मास किया। इस चातुर्मास में बम्बई से जैन समाज के सुप्रसिद्ध तत्त्व-चिन्तक और क्रांतिकारी विचारों के अग्रणी वाड़ीलाल मोतीलाल शाह आपके दर्शनार्थ आये। उन्होंने कभी जीवन में उपवास नहीं किया था। किन्तु महाराजश्री के उपदेश से प्रभावित होकर स्वतः प्रेरणा से उन्होंने उपवास किया। श्रावक संघ ने भी खूब सेवाभक्ति प्रदर्शित की। किन्तु वहाँ प्लेग (महामारी) फैल गया। प्लेग का उपद्रव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही
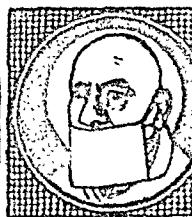
गया। तब श्रावक संघ ने प्रार्थना की—'प्लेग के कारण अनेक श्रावक चले गए हैं। प्लेग की भीषणता बढ़ती ही जा रही है। इसलिए आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि आपश्री यहाँ से विहार कर जाएँ तो उत्तम रहे।'

आप रतलाम से विहार करके पंचेड पधारे। वहाँ ठाकुर साहब रघुनाथसिंहजी तथा उनके सुयोग्य बन्धु चैनसिंहजी जैनधर्म से परिचित हुए। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर उन्होंने कितने ही जानवरों की हिंसा का त्याग कर दिया। अन्य लोगों पर भी काफी प्रभाव पड़ा। मांसाहारियों ने मांस भक्षण त्यागा, शराबियों ने मदिरा का त्याग किया और धर्मप्रेमी बने।

ग्यारहवाँ चातुर्मास (सं० १९६३) : कानोड़

रतलाम से आप कई गाँवों में होते हुए मांडलगढ़ की ओर जा रहे थे। मार्ग में लोगों ने कहा—'महाराज साहब ! इस रास्ते में कुछ दूर आगे जाकर लोग बन्दूकें लेकर झाड़ियों में छिपे बैठे रहते हैं। वे लोगों को लूट लेते हैं। उन्हें मार डालते हैं। आप इधर से न जाएँ।' महाराज ने सहज स्मितपूर्वक उत्तर दिया—'हमारे पास है ही क्या जो वे लूटेंगे।' फिर भी साथ में श्रावक थे वे गाँव से चौकीदार को लिवाने गए और आप निर्भय होकर गाँव पहुँच गए। मार्ग के लुटेरों का इनकी ओर आँख उठाने तक का साहस न हुआ। वहाँ से आप बेगुँ पधारे। वहाँ समाचार मिला कि आपकी सांसारिक नाते से सगी मौसी प्रवर्तिनी रत्नाजी महाराज ने संथारा ले लिया है। शीघ्र गति से विहार करके आप सरवाणिया, नीमच, मल्हारगढ़ होते हुए जावरा पधारे। वहाँ आपको आर्याजी रत्नाजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। आप पुनः मन्दसौर होते हुए मल्हारगढ़ पधारे। वहाँ के लोगों के अधिक आग्रह पर कुछ दिन रुककर नारायणगढ़ पधारे। वहाँ श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी सम्प्रदाय के सन्त अमीविजयजी महाराज के साथ वार्तालाप हुआ। वहाँ से आप जावद पधारे। जावद में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज विराज रहे थे। उनके साथ अन्य संत भी थे। वहाँ समाचार मिला कि कंजेडा में एक भाई दीक्षा लेना चाहता है। पूज्यश्री ने आपको कंजेडा जाकर उस भाई को प्रेरित करने का आदेश दिया। आप कंजेड़ा पहुँचे, उस भाई की वैराग्य भावना को उत्प्रेरित किया। तदनन्तर भाटखेडी होते हुए मणासे पधारे। वहाँ आपके उपदेश से प्रभावित होकर श्री कजोड़ीमल ने दीक्षा ग्रहण करने का विचार प्रगट किया। महाराज साहब ने विलम्ब न करने की प्रेरणा दी।

वहाँ से विहार करके नीमच, बड़ी सादड़ी होते हुए आपश्री कानोड पधारे और वहीं चातुर्मास किया। यहाँ आपश्री की प्रेरणा से लोगों में झगड़ा होते-होते रुक गया। झगड़ा रथ निकलने पर हो रहा था। मार्ग में व्याख्यान हो रहा था। कुछ लोग रथ निकालना चाहते थे और दूसरे लोग उसे रोक रहे थे। आपकी प्रेरणा से लोग शांत हो गए।

बारहवाँ चातुर्मास (सं० १९६४) : जावरा

सं० १९६४ का चातुर्मास आपने जावरा में किया। वहाँ मणासे से वैरागी कजोड़ीमलजी आये। उन्होंने परिवार की आज्ञा न मिलने पर भी साधुवेश धारण कर लिया।

तेरहवाँ चातुर्मास (१९६५) : मन्दसौर

जावरा चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आप कजोड़ीमलजी को साथ लेकर निम्बाहेडा गए। कजोड़ीमलजी की पत्नी आपके उपदेश से इतनी प्रभावित हुई कि उसने अपने पति को दीक्षा लेने हेतु अनुमति-पत्र लिख दिया। तदनन्तर आप डग, बड़ौद, सारंगपुर, सीहोर, भोपाल आदि स्थानों में होते हुए देवास पधारे। देवास में रतलाम निवासी श्री अमरचन्दजी पीतलिया का निमन्त्रण

मिला कि 'रतलाम में श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स का अधिवेशन हो रहा है, आप अवश्य पधारें।' आपश्री रतलाम पधारे।

रतलाम में चैत्र सुदी ११-१२ को राजकीय विद्यालय में आपके सार्वजनिक प्रवचन हुए। उपस्थित जनसमूह ने खूब प्रशंसा की। वहाँ मोरवी नरेश भी उपस्थित थे। वे भी बहुत प्रभावित हुए। कान्फ्रेन्स के जन्मदाता श्री अम्बादासजी डोसाणी ने प्रवचन समाप्ति पर अपने उद्गार व्यक्त किये—

"महाराज साहब के प्रवचन इतने प्रभावशाली हैं कि इनकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। कान्फ्रेन्स का उद्देश्य तथा सारांश आपके प्रवचनों में आ गया है। अब तो हम सब लोगों को आपके उपदेशानुसार कार्य करना चाहिए।"

तदन्तर अनेक क्षेत्रों में धर्म-जागृति करते हुए मन्दसौर पधारे और वहाँ चातुर्मास किया। इस चातुर्मास में बीसा ओसवाल नन्दलालजी ने दीक्षा ग्रहण की।

चौदहवाँ चातुर्मास (सं० १९६६) : उदयपुर

मन्दसौर चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आप वहाँ से विहार करके नीमच तथा निम्बाहेडा होते हुए उदयपुर पधारे। वहाँ आपके प्रवचन शुरू हुए। श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। राज-दरबारी लोग भी प्रवचनों में सम्मिलित होने लगे। हिन्दुआ कुलसूर्य उदयपुर नरेश सर फतेहसिंह जी महाराणा के दीवान तथा निजी सलाहकार श्रीमान् कोठारी बलवन्तसिंहजी ने महाराज साहब की खूब सेवा की।

पतितोद्धार

उदयपुर में प्रवचन गंगा बहाकर जैन दिवाकरजी महाराज वादी-मानमर्दक पं० श्री नन्दलालजी महाराज के साथ जन-कल्याण की दृष्टि से नाई गाँव पधारे। उस समय नाई गाँव के निकट लगभग साढ़े तीन हजार आदिवासी भील एक मृत्युभोज के सन्दर्भ में एकत्र हुए थे। भील नेताओं ने आपश्री का उपदेश सुना तो उनका हृदय भी दया व सादगी की भावना से ओत-प्रोत हो उठा।

भील जाति सदियों से अज्ञानान्धकार में डूबी हुई है। सभ्यता और धर्म के संस्कार उन्हें कभी मिले ही नहीं। मांस-मदिरा आदि ही उनका भोजन है और शिकार, लूट-पाट आदि उनका पेशा। सदियों से यही उनकी परम्परा रही है। उन लोगों को सद्बोध देना विरले और विशिष्ट साधकों का ही काम रहा है।

आपश्री ने बड़े ही सहज ढंग से उनको मानव-जीवन वे कल्याण की बातें और मनुष्य को मनुष्य बने रहने के लिए सर्वसाधारण नियम आदि समझाए, हेय-उपादेय अर्थात् करने योग्य तथा न करने योग्य कार्यों का विवेचन किया।

उपदेश का इच्छित प्रभाव हुआ। उनमें विवेक जागा। हिंसा आदि दुष्कृत्यों के कुपरिणामों का ज्ञान हुआ। पापों और दुर्व्यसनों के प्रति अरुचि उत्पन्न हुई। उनमें से भीलों के नेता व प्रमुख व्यक्तियों ने निवेदन किया—

"महाराज साहब! हम जीव-हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करते हैं, लेकिन नगर के महाजनों से कम न तौलने की प्रतिज्ञा भी कराइये।"

आपश्री के संकेत से नगर के महाजन भी एकत्र हुए। आपका उपदेश सुनकर उन्होंने भी
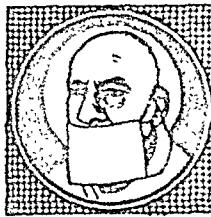
कम न तौलने की प्रतिज्ञा ली। आदिवासियों ने जैन दिवाकर जी महाराज के समक्ष निम्न प्रतिज्ञाएँ लीं—

(१) गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज के प्रवचन सुनने के बाद अब हम लोग जंगल में दावाग्नि नहीं सुलगवायेंगे।

(२) मनुष्यों को किसी भी तरह का त्रास न देंगे और किसी नारी की हत्या न करेंगे।

(३) विवाह के समय मामा के यहाँ से आने वाले भैंसों और बकरों की बलि नहीं देंगे; प्रत्युत उन्हें 'अमरिया' बनाकर छोड़ देंगे।

इन प्रतिज्ञाओं को हम हमेशा निभायेंगे।

आदिवासियों का हर्षरव वातावरण में गूँज उठा। जैन और जैनेतर सभी के मुख पर जैन दिवाकरजी महाराज की जय-जयकार गूँज रही थी। सभी हर्षित और संतुष्ट हुए। हजारों हिंसक व्यक्तियों को सहज प्रेरणा से ऐसी प्रतिज्ञाएँ करवाना एक असाधारण बात है।

उदयपुर से विहार करके आप बड़ेगाँव (गोगूंदे) पधारे। वहाँ से राव साहब श्री पृथ्वी सिंहजी और उनके पौत्र श्री दलपतसिंहजी ने प्रवचनों से प्रभावित होकर प्रतिवर्ष बलिदान हेतु प्राप्त होने वाले दो बकरों को सदा के लिए अभय देने की प्रतिज्ञा ली। अन्य अनेक किसानों ने भी पंचेन्द्रिय जीव-हिंसा और मदिरापान का त्याग किया।

वहाँ से नाथद्वारा, सरदारगढ़, आमेट, देवगढ़, नया शहर (ब्यावर) होते हुए अजमेर पधारे। मार्ग में सर्वत्र उपदेश प्रवचन होते रहे। लोगों पर यथेच्छ प्रभाव पड़ा। प्रवचन सभाओं में राजा, राव, सेठ, साहूकार, महाजन, किसान आदि सम्मिलित होते तो भंगी, चमार, भील आदि आदिवासी भी झुंड के झुंड बना कर आते और बड़े चाव से सुनते, तथा हिंसा एवं मदिरापान त्याग की प्रतिज्ञा लेते।

अजमेर में श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स का अधिवेशन हो रहा था। वहाँ भी आपश्री ने संघ एकता विषय पर प्रवचन दिये।

वहाँ से आपश्री चित्तौड़, निम्बाहेडा होते हुए जावद पधारे। वहाँ चातुर्मास हेतु उदयपुर श्रावक संघ की प्रार्थना आई। पण्डितरत्न श्री देवीलालजी महाराज और आपने उदयपुर में चातुर्मास किया।

पन्द्रहवाँ चातुर्मास (१९६७) : जावरा

उदयपुर चातुर्मास पूर्ण करके आप देलवाड़ा, कांकरोली, कुणज कुवेर होते हुए नाणदा पधारे। यहाँ के ठाकुर साहब तेजसिंहजी प्रति मास बकरे का बलिदान करते थे। आपके प्रवचन से प्रभावित होकर उन्होंने बकरे का बलिदान बन्द कर दिया।

नाणदा से आप बागोर पधारे। बागोर में स्थानकवासियों का एक भी घर न था; तेरापंथियों के ही घर थे। वे लोग स्थानकवासी साधुओं का न सम्मान करते थे और न उनका प्रवचन सुनते थे; लेकिन जैन दिवाकरजी महाराज का आगमन सुनकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। उत्साहपूर्वक स्वागत को आए। जैनेतर लोग माहेश्वरी बन्धुओं ने भी उत्साह दिखाया। श्रावगी बन्धुओं की सेवा भक्ति भी प्रशंसनीय रही। सभी ने आग्रहपूर्वक आठ दिन तक रोका। कई प्रवचन हुए। प्रवचनों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि सभी जातियों के लोग सम्मिलित होते और लाभ

उठाते। इस समय वहाँ के निवासियों ने भुने चनों का सदाव्रत चालू किया जो आज तक चल रहा है।

बागोर से आप भीलवाड़ा, मंगरूप, पारसोली, बीगोद, मांडलगढ़, बेगूं, सींगोली, नीमच होते हुए मल्हारगढ़ पधारे। वहाँ आपके गुरुदेव आशुकवि श्री हीरालालजी महाराज ने आदेश दिया—'अनुकूल अवसर पर प्रतापगढ़ जाकर सांसारिक नाते से अपनी पत्नी को सद्बोध देना।'

पत्नी मानकुँवर साध्वी बनी

गुरुदेव के इस आदेश को सुनकर आप असमंजस में पड़ गए। हृदय मंथन चलने लगा। दीक्षा ग्रहण किये भी १३ वर्ष से अधिक समय बीत चुका था। मोह का बन्धन तो बिलकुल ही समाप्त हो चुका था। फिर भी दो बातों का विचार था एक तो ससुर जी जल्दी ही आवेश में आ जाने वाले व्यक्ति थे और दूसरा मानकुँवर तो इस बात पर कटिबद्ध थी कि कहीं भी मिल जायें, वहीं आपको गृहस्थ वेश पहनाकर घर ले आऊँ। आप अपने व्रतों में अडोल थे। संकल्प भी दृढ़ था; फिर भी विवाद और क्लेश से दूर ही रहना चाहते थे।

इस सब स्थिति को जानते हुए भी आपने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और प्रतापगढ़ पहुँचे। बाजार में प्रवचन की योजना बनी। पूनमचन्दजी और मानकुँवर को भी आपके आगमन का पता चला। पूनमचन्द जी स्वयं तो आए नहीं, लेकिन मानकुँवर प्रवचन में उपस्थित हुई। प्रवचन शुरू होते ही उसने उच्च स्वर से चीख कर कहा—

"मेरा खुलासा किये बिना यहाँ से जाएँ तो मेरी सौगन्ध है।"

लोग प्रवचन सुनने में मग्न थे। किसी ने उसकी बात पर ध्यान न दिया। अब तो वह जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने लगी। चीख-पुकारों से प्रवचन का रंग भंग हो गया। परिणाम-स्वरूप आपने प्रवचन देना बन्द कर दिया। इस स्थिति में आपने वहाँ रुकना उचित न समझा और मन्दसौर आ गए। मानकुँवर ने वहाँ भी पीछा किया और उछल-कूद मचाने लगी। बड़ी कठिनाई से समझा-बुझाकर श्रीसंघ ने उसे वापिस प्रतापगढ़ भेजा।

जब आपश्री जावरा में विराज रहे थे; काफी शान्त, सौम्य वातावरण था; वहाँ भी मान-कुँवर (पत्नी) जा पहुँची। उसका एक ही ध्येय था—'किसी प्रकार आपको गृहस्थ वेश पहनाकर अपने साथ ले जाना।' लोगों ने बहुत समझाया, लेकिन वह अपनी हठ से टस से मस नहीं हुई। ताल निवासी श्री हुक्मीचन्दजी की बहन ऐंजाबाई की पुत्री धूलीबाई ने उसे बड़ी चतुराई से अच्छी तरह समझाया तो वह बोली—

"अच्छा! एक बार मुझे उनसे मिला दो। खुलासा बातचीत होने के बाद जैसा वे कहेंगे वैसा मैं मान लूँगी।"

उसकी यह इच्छा स्वीकार कर ली गई और चार-छह श्रावक-श्राविकाओं तथा कई साधुओं की उपस्थिति में उसे आपश्री के समक्ष लाया गया। उसने आते ही कहा—

"आपने तो मुझे छोड़ कर संयम ले लिया। अब मैं क्या करूँ? किसके सहारे जिन्दगी बिताऊँ।"

आपने शान्त गम्भीर स्वर में समझाया—

"तुम्हारा और मेरा अनेक जन्मों में सांसारिक सम्बन्ध हुआ है। परन्तु धर्म सम्बन्ध नहीं

हुआ। यह सम्बन्ध ही सबसे ज्यादा दुर्लभ है। संसार असार है। इसमें कोई किसी का साथी नहीं, तुम्हारा नहीं। सभी अपने कर्मों के वश आते हैं और चले जाते हैं। कोई भी अमर नहीं है। पुत्र को छोड़ कर पिता चल बसता है और पत्नी को छोड़कर पति। एकमात्र धर्म ही आश्रय है। मेरी मानो तो धर्म का आश्रय लो। साध्वी बन जाओ। तुम्हारे लिये यही श्रेयस्कर है।"

सन्तों के सत्यपूत वचन बड़े प्रभावकारी होते हैं। मानकुँवर प्रभावित हुई। उसका विग्रह अनुग्रह में बदल गया। उसके हृदय में वैराग्य भावना जाग्रत हो गई। उसने कहा—

"आपकी बात सत्य है। यह संसार असार है। अब मैं साध्वी बनकर इस मानव-जन्म को सफल करना चाहती हूँ। मुझे दीक्षा दिलवाने की कृपा कीजिए।"

जावरा संघ के माध्यम से श्री गुलाबचन्द जी डफरिया ने अपनी ओर से धन व्यय करके मानकुँवर का दीक्षा महोत्सव किया। यह वि० सं० १९६७ की विजयादशमी का दिन था। मानकुँवर अब साध्वी मानकुँवर बन गई।

एक साधक की वाणी में कितना आत्मबल और हृदय को बदलने की क्षमता होती है यह इस घटना से स्पष्ट हो गया कि आपको पुनः गृहस्थ बनाने की जिद पर अड़ी हुई मानकुँवर स्वयं ही संसार त्याग कर साध्वी बन गई।

महासती मानकुँवर जी महाराज छह वर्ष तक विविध प्रकार की तपाराधना करती रही। अपना अन्तिम समय निकट जान उसने संथारा ले लिया और श्रावण शुक्ला १० वि सं० १९७३ को स्वर्गवासी हुई।

जैन दिवाकरजी म० ने यह चातुर्मास जावरा में किया।

सोलहवाँ चातुर्मास (१९६८) : बड़ी सादड़ी

जावरा से विहार करके आपश्री करजू पधारे। करजू से अनेक ग्रामों में विहार करते हुए आप बड़ी सादड़ी पधारे और वहीं चातुर्मास किया। भाद्र पद शुक्ला ५ को उदयपुर निवासी कृष्णलालजी ब्राह्मण ने दीक्षा ग्रहण की।

सत्रहवाँ चातुर्मास (सं० १९६९) : रतलाम

बड़ी सादड़ी से विहार करके आप अनेक गाँव-नगरों में होते हुए रतलाम पधारे। रतलाम चातुर्मास की विनती स्वीकार कर धार, इन्दौर, देवास, उज्जैन आदि नगरों में सार्वजनिक व्याख्यान एवं त्याग-प्रत्याख्यान धर्मध्यान कराते हुए पुनः रतलाम पधारे। १९६९ का चातुर्मास रतलाम में हुआ। आपकी वाणी का लाभ हजारों लोगों ने लिया, बहुत उपकार हुआ। सं० १९६९ मार्गशीर्ष वदि ४ को रतलाम में ताल निवासी चंपालालजी ने धूमधाम से दीक्षा ग्रहण की। रतलाम निवासी पूनमचन्द जी बोथरा के सुपुत्र श्री प्यारचन्दजी ने भी साधु-जीवन स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की, लेकिन उसका सुयोग अभी नहीं आया था। गुरुदेव के साथ रतलाम से आप उदयपुर तक गये। वहाँ से आज्ञा लेने के लिए धाना सुता (रतलाम) आये। पारिवारिक एवं सम्बन्धी जनों ने विघ्न उपस्थित कर दिया। दादी और भ्राता ने आज्ञा देने से इन्कार कर दिया। श्री प्यारचन्दजी की इच्छा पुनः गुरुदेव के चरणों में पहुँचने की थी, परन्तु मार्ग व्यय नहीं था। रतलाम वाले श्री धूल-चन्दजी अग्रवाल की माता हीराबाई ने आर्थिक सहयोग दिया। आप पुनः उदयपुर पहुँचे। वहाँ से गुरुदेव के साथ चित्तौड़ आये। फिर घर जाकर आज्ञा लेकर आये एवं सं० १९६९ की फाल्गुन शुक्ला ५ को समारोहपूर्वक श्री संघ ने दीक्षा दिलवाई।

चित्तौड़ श्रीसंघ तथा यूरोपियन भक्त टेलर साहब ने आगामी चातुर्मास चित्तौड़ में ही करने की भावभरी प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार कर आपने निम्बाहेडा की तर्फ विहार किया।

अठारहवाँ चातुर्मास (सं० १९७०) : चित्तौड़

महाराजश्री निम्बाहेडा से केरी आदि स्थानों पर विचरण करते हुए तारापुर पधारे। वहाँ अठाणा के रावजी साहब का सन्देश मिला कि "आपश्री के प्रवचन बड़े मधुर और रोचक होते हैं। आप यहाँ पधारें।" प्रार्थना स्वीकार करके आप अठाणा पधारे। प्रवचनों का रावजी साहब तथा लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। राव साहब और अन्य लोगों ने विविध प्रकार के त्याग लिए।

वहाँ से आप कई स्थानों पर होते हुए हमीरगढ़ पधारे। हमीरगढ़ में हिन्दू-छीपा बन्धुओं के झगड़े पिछले ३६ वर्ष से चल रहे थे। इन झगड़ों को दूर करने के सभी प्रयत्न विफल हो चुके थे। महाराज श्री ने अपनी ओजस्वी वाणी में प्रवचन दिया। उनके उपदेश से लोगों का हृदय परिवर्तन हुआ। उन्होंने कलह न करने का निर्णय कर लिया। हिन्दू-छीपाओं का झगड़ा समाप्त हो गया। यह था आपकी दिव्य वाणी का अद्भुत प्रभाव।

इसके पश्चात् आप चातुर्मास हेतु चित्तौड़ पधारे। प्रवचन-गंगा बहने लगी। जैन-अजैन, जागीरदार, राजकर्मचारी आदि सभी वाणी का लाभ लेने लगे। वहाँ के ब्राह्मणों का कई वर्षों का वैमनस्य आपके उपदेशों से मिट गया। इसकी खुशी में हाकिम जीवनसिंहजी ने सबको प्रीति भोज दिया।

जैन आगम का परमाणु ज्ञान

चित्तौड़ के अफीम विभाग के चीफ इंस्पैक्टर एफ. जी. टेलर नाम के यूरोपियन थे। टेलर साहब आपके प्रेमी थे। प्रवचनों में आते और धर्म एवं विज्ञान के बारे में चर्चा किया करते। उन्हें हिन्दी भाषा का भी अच्छा ज्ञान था।

विशाल आगम भगवती सूत्र पर आपके प्रवचन चल रहे थे। परमाणु का प्रसंग आ गया। आपने परमाणु का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण फरमाया। टेलर चकित रह गये। वह तो समझते थे कि परमाणु का ज्ञान केवल पश्चिम वालों के ही है। उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी कि जैन आगमों में परमाणु का इतना सूक्ष्म ज्ञान भरा होगा। विशद और तलस्पर्शी विवेचन सुनकर वह गद्गद हो गये। प्रवचन समाप्त होने पर बोले—

"महाराज साहब ! आपके ग्रन्थों में एटम (परमाणु) का इतना सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन सुनकर मैं दंग रह गया। आप परमाणु ज्ञान का प्रारम्भ कब से मानते हैं ? मनुष्य को सर्वप्रथम यह ज्ञान कब हुआ और किसके द्वारा हुआ ? इसे कितना समय बीत गया ?"

महाराजश्री ने गम्भीर स्वर में फरमाया—

"इस ज्ञान को वर्षों की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को परमाणु का ज्ञान सर्वप्रथम हुआ। इसको प्राप्त हुए तो असंख्य वर्ष हो गए।"

"असंख्य वर्ष ? लेकिन हमारा पश्चिमी जगत तो वैज्ञानिक ज्ञान को ही चार सौ वर्ष पुराना मानता है। इससे पहले तो परमाणु का ज्ञान था ही नहीं।"—टेलर साहब के स्वर में आश्चर्य उभर आया था।

"यह तो अपनी-अपनी मान्यता है। ज्ञान की अल्पता से ही मनुष्य अपनी मनगढ़न्त मान्यताएँ बना लेता है।"

महाराजश्री के इन शब्दों ने बात समाप्त कर दी। टेलर साहब भी चकित हो, उठकर चले गए।

कुछ दिन बाद टेलरसाहब एक चित्र लेकर आये और महाराजश्री को दिखाकर बोले—

"देखिए! यह है परमाणु का चित्र! आपके ग्रन्थों में वर्णन मात्र ही है और विज्ञान ने चित्र भी उतार दिया।"

महाराजश्री ने मंद स्मितपूर्वक कहा—

"यह परमाणु का चित्र नहीं है, आप अभी तक परमाणु को समझ नहीं सके हैं।"

"कैसे?" टेलर साहब चकराये।

"जैन आगमों में परमाणु उसे कहा गया है जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है। उसका चित्र नहीं लिया जा सकता।"

"तब यह क्या है?"

"यह है स्कन्ध। इसका निर्माण अनन्त पुद्गल परमाणुओं के मिलने से होता है।"

"आपकी बात कैसे मान ली जाय?"

"स्कन्ध टूट सकता है, उसका विखण्डन हो सकता है, लेकिन परमाणु का खंडन नहीं हो सकता। आप लोग इसे कुछ भी नाम दें, परमाणु ही कहते रहें, लेकिन जैन आगम दृष्टि से तो परमाणु अखंडित और अविभाज्य ही होता है।"

टेलर साहब सोचने लगे—'जैन आगमों में अध्यात्म के साथ-साथ कितना भौतिक ज्ञान भरा हुआ है। जिस परमाणु ज्ञान को हम वैज्ञानिक लोग चार सौ वर्ष पहले ही प्राप्त कर पाये हैं उससे भी सूक्ष्म ज्ञान इनको हजारों-लाखों वर्ष पहले था।' और वे श्रद्धा से अभिभूत होकर गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक हो गए।

कुछ वर्षों बाद जब पश्चिमी वैज्ञानिकों ने अपने तथाकथित परमाणु का विखंडन कर दिया तो विज्ञान ने जैन आगम ज्ञान का लोहा मान लिया।

टेलर साहब प्रवचनों में आते ही रहते थे। एक दिन उन्होंने अपने हार्दिक उद्गार व्यक्त किये—

"महाराज! आपका धर्म बहुत ही उच्च आदर्शों पर स्थित है। भोग-प्रधान व्यक्ति के लिए इसका पालन करना बड़ा कठिन है। लेकिन मोक्ष की इच्छा करने वाले को तो इसी की शरण लेनी पड़ेगी।"

उक्त शब्द टेलर साहब की जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा के परिचायक हैं। उन्होंने मांस-मदिरा का आंशिक त्याग कर दिया था। उनकी पत्नी भी गुरुदेव के प्रति श्रद्धा रखती थी। एक दिन उसने कुछ फल अपने नौकर के हाथ भेजे तो जैन दिवाकरजी महाराज ने नौकर को अपनी श्रमण-मर्यादा समझा कर वापिस लौटा दिये।

टेलर साहब के मित्र एक अंग्रेज सेनाध्यक्ष (कर्नल साहब) महाराजश्री के दर्शनों को आये तो उनके प्रवचन सुनकर भक्त ही बन गए। जीवदया के भावना से प्रेरित होकर मोर और कबूतर को मारने का त्याग कर लिया।

एक बार आपश्री के पास टेलर साहब एक शीशी में पाउडर (चूर्ण) लाये और भेंट करते हुए बोले—
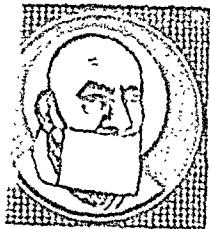
"महाराज ! यह तो वनस्पतियों से बनी है। वैज्ञानिक विधि से निर्मित होने के कारण पूर्ण रूप से शुद्ध है। इसे तो आप ले ही सकते हैं। यह पानी में डालते ही दूध बन जायगा।"

शीशी अस्वीकार करते हुए आपने समझाया—

"शुद्ध होने पर भी खाद्य पदार्थों का संग्रह करना हमारी साधु-मर्यादा के खिलाफ है। रात्रि को कोई भी खाद्य पदार्थ जैन साधु नहीं रखता। आवश्यक वस्तुएँ हमें गृहस्थों से मिल ही जाती हैं। फिर व्यर्थ का परिग्रह रखने से क्या लाभ ?"

"आपके लिए भेंट लाई वस्तु को मैं वापिस तो ले नहीं जा सकता।" टेलर साहब ने निराश स्वर में कहा।

परिमाणस्वरूप वह शीशी रोगियों के उपयोग के लिए अस्पताल में भिजवा दी गई।

टेलर साहब महाराजश्री तथा जैन संतों की निस्पृहता तथा त्यागवृत्ति को देखकर गद्गद हो गए।

वास्तव में टेलर साहब और उनकी पत्नी आपश्री के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं निर्मल चरित्र से बहुत प्रभावित थे। उनके हृदय में असीम श्रद्धा और भक्ति थी। वे महाराजश्री के विदेशी भक्तों में अग्रगण्य थे। इसके बाद उन्होंने दो भावभीने पत्र भी भेजे थे।

उन्नीसवां चातुर्मास (सं० १९७१) : आगरा

चित्तौड़ चातुर्मास पूरा करके महाराजश्री विहार करने लगे तो अन्य लोगों के साथ टेलर साहब भी आए। सभी की इच्छा थी कि आप विहार न करें लेकिन श्रमणधर्म के नियमों के कारण चुप हो जाना पड़ा। सभी ने महाराजश्री को भावभीनी विदाई दी।

विचरण करते हुए मुनि श्री गंगरार पधारे। वहाँ वैर-वृत्ति के कारण कुसंप था। महाराज श्री के उपदेश से उनका विरोध समाप्त हो गया।

वेश्याओं का उद्धार

वहाँ से विहार करके आपश्री हमीरगढ़, बिगादे होते हुये नन्दराय पधारे। आपके उपदेशों से यहाँ के ओसवाल परिवार में आई धार्मिक शिथिलता दूर हो गई। कुछ दिन के प्रवास के बाद विचरण करते हुए आप जहाजपुर पधारे। वहाँ स्थानकवासी जैनों के पाँच ही परिवार थे, लेकिन पूरा कस्बा ही आपके प्रवचनों को बड़े चाव से सुनता था। सभी उपस्थित होते थे। तीन हजार से भी अधिक जनसमूह एकत्र हो जाता। वहाँ एक कुप्रथा थी—विवाह आदि अवसरों पर वेश्या नृत्य की। आपको जैसे ही इस कुप्रथा का पता चला तो आपने इसे बन्द कराने का विचार किया। आपकी प्रेरणा से यह कुप्रथा बन्द हो गई। समाज ने वेश्या-नृत्य न कराने का निर्णय कर लिया।

यह निर्णय सुनते ही वेश्याएँ हतप्रभ रह गईं। जीवन-निर्वाह की चिन्ता सताने लगी। सोचा—'जिसने समाज को यह प्रेरणा दी है, वे ही हमें भी कोई राह बताएँगे।' एक दिन बाहरि भूमि को जाते हुए आपके मार्ग में वे उपस्थित होकर बोलीं—

"गुरुदेव ! आपकी प्रेरणा से समाज ने वेश्यानृत्य बन्द करने का निर्णय कर लिया। हमारी आजीविका का साधन छिन गया। अब आप ही बताइये हम क्या करें ? कैसे अपना पेट भरें ?"

महाराज साहब ने जोशीली वाणी में उन्हें उद्बोधन दिया—

"बहनो ! नारी जाति का पद बहुत ही गौरवपूर्ण है। वह ममतामयी माता और स्नेह-

शीला बहन है। तुमने इतना महत्वपूर्ण पद पाया है। यह कुत्सित कर्म और नृत्य-गान तुम्हारे लिए अनुचित है, नारी के माथे पर कलंक है। सदाचरण और सात्त्विकवृत्ति से इस कलंक को धो डालो। मेहनत-मजदूरी से भी पेट का पालन हो सकता है, धार्मिक तथा सात्त्विक जीवन विताओ।"

वेश्याओं ने आपके उद्‌बोधन से प्रभावित होकर सात्त्विक जीवन अपना लिया। मेहनत मजदूरी करके पेट भरने लगीं। नारकीय जीवन से उद्धार पाकर वे सात्त्विक व सदाचारमय जीवन बिताने लगीं।

जहाजपुर में एक दिन जागीरदार साहब ने किले में प्रवचन का प्रबन्ध कराया। व्याख्यान से प्रभावित होकर जागीरदार साहब ने ३० बकरों को जीवनदान दिया। यहाँ से टोंक होते हुए आप सवाई माधोपुर पधारे।

खटीकों में जागरण

यहाँ तीस खटीकों ने हिंसा कृत्य बन्द कर दिया तथा खेती और मजदूरी करके जीवनयापन करने लगे। कई वर्षों बाद उन्होंने अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये—

"जब हम लोग हिंसा कर्म करते थे तो हमारा गुजारा भी नहीं हो पाता था, पेट भी बड़ी कठिनाई से भरता था, लेकिन जब से हिंसा छोड़ी है तब से हम सभी प्रकार से सुखी हैं। हमारे जीवन में अब सुख-शांति है। गुरुदेव की कृपा से हमारा जीवन सुधर गया है।"

इसके बाद जब आप भीलवाड़ा पधारे तो वहाँ ३५ खटीक परिवारों ने हिंसात्मक धन्धा-बन्द करके अहिंसा की शरण ली। इसी प्रकार स्थानीय माहेश्वरी समाज भी आपके प्रवचनों से प्रभावित हुआ। वर्षों से चले आये मतभेद भुलाकर वे भी परस्पर प्रेम-सूत्र में बँध गये।

इस समय आगरा श्रीसंघ ने सेवा में उपस्थित होकर चातुर्मास की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई। आपश्री यहाँ से विहार करके श्यामपुर होते हुए गंगापुर पधारे। कुछ लोगों की अरुचि देखकर वहाँ श्मशान के पास बनी छतरियों में ही ठहर गए। गाँव में स्थानकवासी जैन एक ही परिवार था। उसे महाराजश्री का आगमन ज्ञात हुआ तो तुरन्त सेवा में पहुँचा। गाँव में पधारने की प्रार्थना करने लगा। लेकिन तब तक दिन का चौथा पहर बीत चुका था। साधु-मर्यादा के अनुसार महाराजश्री गमन नहीं कर सकते थे। कड़कड़ाती ठंड पड़ रही थी। वह श्रावक चटाई आदि बाँधने लगा जिससे कि शीत का प्रकोप कुछ तो कम हो सके। महाराजश्री ने मना करते हुए कहा—

"भाई! इस प्रबन्ध की कोई जरूरत नहीं। हरिण, खरगोश आदि तो बिल्कुल ही निर्वस्त्र रहते हैं।"

और आपने वह रात्रि कड़ाकड़ाती ठंड में चारों ओर से खुली छतरियों में ही बिताई। प्रातःकाल ग्राम में पधारे। दिगम्बर जैन धर्मशाला में ठहरे। फिर श्रावक से पूछा—

"भाई व्याख्यान कहाँ देना है ?"

"कहीं भी प्रवचन दे दीजिए महाराज! सुनने वाले तो हम पिता-पुत्र दो ही हैं।" बेचारा श्रावक अचकचाकर बोला।

"भाई। घबराओ मत। कहावत है—दो तो दो सौ से भी ज्यादा हैं।" महाराजश्री ने आत्म-विश्वास भरे स्वर में कहा और बाजार में उसकी दूकान पर बैठकर ही प्रवचन देना शुरू किया। मंगलाचरण होते ही कुछ लोग और आ गए। प्रवचन चलने लगा, श्रोता समूह बढ़ने लगा।

समाप्त होते-होते तो सैकड़ों श्रोता एकत्र हो गये। सभी एकाग्रचित्त होकर सुन रहे थे। प्रवचन पूर्ण हुआ लेकिन लोगों की प्यास और बढ़ गई। अमृत-पान से कौन अघाता है। लोगों ने आग्रह किया। महाराजश्री ने दो प्रवचन और दिये।

दो से दो हजार का श्रोता समूह एकत्र होना आपश्री के अपूर्व प्रवचन प्रभाव का द्योतक है।

वहाँ से विहार करके भरतपुर होते हुए आप आगरा पधारे। इस समय आगरा में महावीर जयन्ती उत्सव धूमधाम से मनाया गया। बेलनगंज (आगरा) में हुए प्रवचन में धौलपुर निवासी श्री कन्नोमलजी सेशन जज उपस्थित थे। उन्होंने तथा अनेक लोगों ने धौलपुर पधारने की प्रार्थना की।

आगरा से महाराजश्री धौलपुर पधारे। वहाँ मुरैना निवासी स्याद्वादवारिधि प्रसिद्ध विद्वान् पं० गोपालदासजी वरैया का आग्रहपूर्ण निमन्त्रण मिला। पंडित जी दिगम्बर जैन थे और गोम्मटसार आदि ग्रन्थों के प्रकाण्ड विद्वान थे।

वहाँ से आप लश्कर (ग्वालियर) पधारे। श्वेताम्बर समाज के वहाँ लगभग ४० घर थे लेकिन सराफा बाजार में हुए आपके प्रवचनों में ७००-८०० से अधिक उपस्थिति थी। सभी सम्प्रदायों के लोग आपका उपदेश सुनने आते थे। लश्कर के श्रीसंघ ने आपसे चातुर्मास का आग्रह किया। आपने कहा—दो साधु आगरा में रह गए हैं। उनसे सम्मति लिए विना निर्णय नहीं किया जा सकता। महाराजश्री पुनः आगरा की ओर पधारे और वह चातुर्मास आगरा में ही सम्पन्न किया।

खटीक का हिंसा-त्याग

आगरा वर्षावास पूर्ण करने के बाद आप मालव भूमि की ओर बढ़ रहे थे। कोटा से कुछ आगे विहार कर रहे थे। मार्ग में एक व्यक्ति किसी छायादार विशाल वृक्ष के नीचे सोया हुआ था। उसके पास ही दो बकरे बँधे थे। उस व्यक्ति की मुखमुद्रा कठोर थी। जाति से वह खटीक था। महाराजश्री ने अनुमान लगाया—यह व्यक्ति वधिक है। वधिकों के मुख पर ही ऐसी कठोरता होती है। उसकी निद्रा भंग हुई। उसने आँखें खोलीं। महाराजश्री ने प्रतिबोध देने के लिए प्रश्न किया—

"भाई! तू यह पाप क्यों करता है? जीविकोपार्जन के लिए ही न! फिर भी तू सभी प्रकार से दीन-हीन दिखाई दे रहा है। तन पर साबित कपड़े भी नहीं हैं। दुःख और दैन्य की मूर्ति ही बना हुआ है।"

"महाराज! आपके सामने झूठ नहीं बोलूंगा। मैं सभी प्रकार से दुःखी हूँ। सुख क्या है, मैंने इस जीवन में जाना ही नहीं।"

"सुखी तुम हो भी कैसे सकते हो? दूसरों को दुःख देने वाला, उनकी हत्या करने वाला खुद कैसे सुख पा सकता है। इस हिंसाकर्म को छोड़ो तो सुख की आशा करो—महाराजश्री ने कहा।

"कैसे छोड़ूं? यह तो मेरा पैतृक व्यवसाय है?"

"तो क्या पैतृक व्यवसाय छोड़ा नहीं जा सकता? सवाई माधोपुर के खटीकों को जानते हो? वहाँ के ३५ परिवारों ने यह बुरा धन्धा छोड़ दिया। क्या वे अब सुखी नहीं है?"

"उनको तो मैं खूब जानता हूँ। वे तो बहुत सुखी हैं।"

"तो उन्हीं का अनुकरण करो। तुम भी सुखी हो जाओगे।"

सुखी होना कौन नहीं चाहता ? माधू खटीक कुछ क्षण तक सोचता रहा और फिर बोला—

"महाराज ! मैं अभी इस धन्धे को छोड़ने को तैयार हूँ। मेरे पास इस समय ३२ बकरे हैं। यदि कोई मुझे इन सबका लागत मूल्य भी दे दे तो उस धन से मैं कोई ऐसा काम कर लूँगा जिसमें हिंसा न हो!"

महाराजश्री कुछ क्षण तक सोचते रहे तो वही पुनः बोला—

"आप मेरा विश्वास करें। मैं परमात्मा और चन्द्र-सूर्य की साक्षी से अपनी प्रतिज्ञा का जीवन भर दृढ़तापूर्वक पालन करता रहूँगा। कभी भी जीव-हिंसा न करूँगा।"

श्रावक का एक परम कर्तव्य होता है—सदाचार की ओर बढ़ते हुए मानव की सहायता करना। आपके साथ विहार में श्री कन्हैयालाल जी और जुहारमल जी थे। उन पुण्यशाली श्रावकों ने वैसी ही व्यवस्था कर दी। माधू खटीक जीव-हिंसा से जीवन भर के लिए विरत हो गया। अब उसका हृदय-परिवर्तन हो चुका था। वह कल्याण-पथ को स्वीकार कर चुका था। वह सुखपूर्वक जीवन विताने लगा। सत्य है—

संगः सतां किमु न मंगलमातनोति।

साधुओं की संगति से कौन सा मंगल नहीं प्राप्त होता ? अर्थात् सभी प्रकार के मंगल प्राप्त हो जाते हैं।

बीसवाँ चातुर्मास (सं० १९७२) : पालनपुर

वहाँ से विचरण करते हुए महाराजश्री सींगोली, सरवाणिया, नीमच, मल्हारगढ़ होते हुए मन्दसौर पधारे। वहाँ गुरु श्री जवाहरलालजी महाराज तथा पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज भी विराजमान थे। पालनपुर के श्रीसंघ ने वहाँ आकर चातुर्मास की प्रार्थना की। उन्हें स्वीकृति मिल गई। इस स्वीकृति के उपरान्त गंगापुर (मेवाड़) का श्रीसंघ अपने यहाँ पधारने की प्रार्थना करने आया। गंगापुर के श्रीसंघ ने निवेदन किया—

"हमारे यहाँ कुछ दिन बाद तेरापन्थी संघ का पाट (मर्यादा) महोत्सव होने वाला है। वहाँ कई विद्वान संत उपस्थित होंगे। यदि स्थानकवासी विद्वान संत भी पधारें तो बहुत उपकार होने की संभावना है।"

पूज्य श्रीलालजी महाराज को गंगापुर श्रीसंघ की यह बात उचित लगी। उन्होंने सस्नेह आपश्री की ओर देखकर कहा—

"मुनिजी ! आप वहाँ जाकर धर्म-प्रभावना करिए।"

आपने विनय भरे शब्दों में निवेदन किया—

"पूज्य महाराज साहब ! ऐसे अवसर पर तो वहाँ आप जैसे दिग्गज आचार्य का पधारना अधिक उपयुक्त रहेगा।"

पूज्यश्री ने प्रत्युत्तर देते हुए फरमाया—

"चौथमलजी ! आपके प्रवचन बहुत प्रभावशाली होते हैं। जैनियों के अतिरिक्त जैनेतर लोग भी हजारों की संख्या में उपस्थित होकर श्रद्धा और रुचि के साथ सुनते हैं। आप ही पधारिये।"

आपने पूज्यश्री का आदेश शिरोधार्य किया। गंगापुर पधारकर प्रवचन-गंगा बहाई। आपके प्रवचनों की प्रशंसा होने लगी। वहाँ अनेक मोची परिवारों ने जैनधर्म अंगीकार किया।

नवकार मन्त्र जपने लगे, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि भी करने लगे। हिंसा आदि कृत्य तथा मांस-मदिरा आदि का त्याग कर दिया। आज भी अनेक परिवार मांस-मदिरा आदि के पूर्ण त्यागी हैं। जैनधर्मानुसार धर्माराधना करते हैं और बहुत सुखी हैं। धर्म में दृढ़ श्रद्धालु हैं।

उसी समय उज्जैन के सरसूबा बालमुकुन्द जी भैया साहब राज्य-कार्य से वहाँ आए। एक दिन वे आपके प्रवचन में उपस्थित हुए। दर्शन-वन्दन करके बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। महाराजश्री ने उनको प्रेरित करते हुए कहा—

"आप तो राज्याधिकारी हैं। वाणी द्वारा ही बहुत पुण्य का उपार्जन कर सकते है। उज्जैन परगना में अनेक देवी-देवताओं के धाम हैं। उन स्थानों पर जो हिंसा होती है, उसे आप बन्द करा दें तो बहुत उत्तम हो।"

बालमुकुन्द जी भैया साहब ने आपकी इच्छा स्वीकार की और पूरा-पूरा प्रयास करने का वचन दिया।

गंगापुर से विहार कर आपश्री रास्मी पधारे। वहाँ कई जातियों के लोगों ने अभक्ष्य आहार का त्याग किया। एक देवी के समक्ष प्रतिवर्ष एक भैंसे का वध किया जाता था, उसे भी बन्द कर दिया।

रास्मी से विहार करके आपश्री पोटला पधारे। वहाँ आपके प्रभाव से माहेश्वरियों में फैले कुसंप की समाप्ति हो गई। वहाँ से कोसीथल, रायपुर, मोखणदा आदि स्थानों पर लोगों को कल्याण-पथ पर अग्रसर करते हुए आमेट पधारे।

मार्ग में अरणोदा के ठाकुर साहब हिम्मतसिंहजी ने जीवन-भर के लिए शिकार खेलने का त्याग कर दिया। कोसीथल के ठाकुर साहब श्रीमान् पद्मसिंह जी ने वैशाख, श्रावण और भाद्रपद-इन तीन महीनों में शिकार न खेलने का नियम लिया। साथ ही उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जुवानसिंह जी ने वैशाख और भाद्रपद मास में शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा ली।

आमेट के राव श्रीमान् शिवनाथ सिंहजी आपके दर्शन हेतु आए। व्याख्यान राव साहब के महल के सामने विशाल मैदान में हुआ। महावीर जयन्ती का महोत्सव बड़े समारोहपूर्वक उत्साह के साथ मनाया गया।

वहाँ से विहार करके चारभुजाजी, घाणेराव, सादड़ी आदि अनेक स्थानों पर होते हुए आबूरोड पधारे। वहाँ पालणपुर का श्रीसंघ आ पहुँचा और भक्तिपूर्वक आपश्री को पालनपुर ले गया।

पालणपुर में आप पीताम्बर भाई की धर्मशाला में ठहरे। प्रवचन गंगा बहने लगी। पालणपुर के नवाब साहब शेर मुहम्मद खाँ बहादुर को पता चला तो एक हाफिज और एक हिन्दू पंडित के साथ वे व्याख्यान सुनने आये। सारगर्भित व्याख्यान सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। थोड़ी देर तत्त्व-चर्चा भी की। जाते-जाते उन्हें एक ज्ञान-पेटी दिखाई दे गई। उसमें चालीस रुपये डाले। नवाब साहब की इच्छा तो प्रतिदिन व्याख्यान सुनने की थी लेकिन वृद्धावस्था के कारण शरीर से विवश थे, प्रतिदिन नहीं आ पाते थे।

मन्दसौर से तार द्वारा समाचार मिला कि बड़े महाराज श्री जवाहरलालजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। आपने एकदम विहार कर दिया। लेकिन आबूरोड के पास पहुँचने पर बड़े महाराजश्री के स्वर्गवास का समाचार मिला। आप पुनः पालणपुर वापिस आ गए।
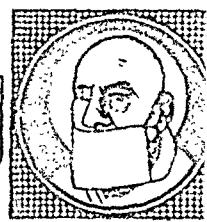
कुछ ठंड पड़ने लगी थी। एक दिन नवाब साहब आये। बहुमूल्य शालें महाराजश्री के चरणों में रखकर बोले—

"महरबानी करके मेरी यह छोटी-सी भेंट कबूल फरमायें।"

आपने वे दुशाले अस्वीकार करते हुए कहा—

"हम लोग जैन साधु हैं। बहुमूल्य वस्तु नहीं लेते। सदा विचरण करते रहते हैं। कभी महलों में तो कभी झोंपड़ी में और कभी वन में ही वृक्ष के नीचे रात गुजारते हैं। इसलिए बहुमूल्य वस्तुएँ कभी अपने पास नहीं रखते।"

नवाब साहब जैन साधुओं की निर्लोभता से बहुत प्रभावित हुए। भेंट अस्वीकार करने से उनका दिल बैठने लगा। आजिजी भरे शब्दों में बोले—

"मैं बड़ा बदकिस्मत हूँ। क्या आप मेरी कोई भी भेंट स्वीकार नहीं करेंगे? मैं क्या दूं जिसे आप स्वीकार कर लें।"

आपश्री ने कहा—

"नवाब साहब! आप बदकिस्मत नहीं हैं। हम आपकी भेंट अवश्य स्वीकार करेंगे लेकिन वह भेंट अहिंसा और सदाचार की होनी चाहिए।"

"जो आप कहें, वही करूँ?"

"तो आप जीवन भर के लिए शिकार, मांस और मदिरा को छोड़ दें। आपकी यही भेंट सच्चा तोहफा होगी।"

'जो हुकुम' कहकर नवाब साहब ने उसी समय शिकार, मांस और मदिरा का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया। साथ ही अपनी पूरी रियासत में मुनादी (राजकीय घोषणा) करा दी—

"जहाँ भी जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज पधारें वहाँ की जनता इनका पूरा-पूरा सम्मान करे। आपके प्रवचनों को सुनकर जिन्दगी पाक बनाए, क्योंकि ऐसे साधु दुनिया में बार-बार नहीं पधारा करते हैं।"

ऐसा ही एक प्रसंग आचार्य हेमचन्द्र के जीवन में भी आया था। उन्होंने भी गुर्जर सम्राट महाराज कुमारपाल की बहुमूल्य शाल अस्वीकार करके निर्धन विधवाओं की सहायता का मार्ग प्रशस्त किया था। घटना इस प्रकार थी—

आचार्यश्री हेमचन्द्र एक बार पाटण की ओर विहार करते हुए निकट के एक गाँव में ठहरे। वहाँ एक विधवा वृद्धा आचार्यश्री के प्रति बहुत श्रद्धा रखती थी। वह अत्यन्त निर्धन होते हुए भी बहुत संतोषी थी। उसने अपने हाथ से सूत कातकर एक मोटी खुरदरी चादर आचार्यश्री को भेंट दी। वृद्धा की भक्ति-भाव से भीनी भेंट आचार्य ने सहर्ष स्वीकार करके उसी के सामने अपने कन्धे पर डाल ली। वृद्धा धन्य हो गई। उसने अपना जीवन सफल माना।

उसी चादर को कन्धे पर डाले आचार्यश्री ने पाटण में प्रवेश किया। महाराज कुमारपाल उनके परमभक्त थे। उत्साहपूर्वक स्वागत हेतु आए। आचार्यश्री के कन्धे पर पड़ी मोटी-खुरदरी चादर को देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। अपनी ओर से बहुमूल्य चादर भेंट करते हुए कहा—

"गुरुदेव! आपके कन्धे पर यह मोटी चादर शोभा नहीं देती। इसलिए इसे उतार कर मेरी इस चादर को धारण करिए।"

आचार्यश्री ने चादर अस्वीकार करते हुए कहा—

"राजन्! शोभा तो प्रजा के प्रति तुम्हारी उपेक्षा नहीं देती। तुमने गरीब विधवाओं के लिए क्या किया है? क्या तुम्हारा उनके प्रति कोई कर्तव्य नहीं है?"
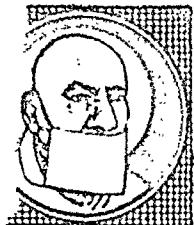
कुमारपाल की कर्तव्य बुद्धि जागृत हो गई। तत्काल उन्होंने राजकोष से कई करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ व्यय करके निर्धन विधवाओं की सहायता की घोषणा कर दी।

संतों और सत्पुरुषों के जीवन में ऐसे प्रसंग आते रहते हैं और उनकी प्रेरणा से लोकोपकार होता है।

पालणपुर चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री धानेरा में पधारे। वहाँ के हाकिम ने आपका बहुत स्वागत किया। वहाँ पालनपुर के नवाब शमशेर खाँ बहादुर के दामाद जबर्दस्तखाँ का निवास था। वे आपश्री की सेवा में उपस्थित हुए। प्रवचन सुनकर इतने प्रभावित हुए कि कई जाति के पशुओं की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा ली। वहाँ से विचरण करके बालोत्तरा पधारे। उस समय तक वहाँ के निवासी सभा की स्थापना, उसके संचालन के नियमों आदि बातों के जानकार नहीं थे। धर्म-क्रियाएँ करने, प्रवचन सुनने आदि तक ही उनका धार्मिक जीवन सीमित था। आपने अपने प्रवचन में सब बातों पर प्रकाश डाला। वहाँ 'जैन मंडल' की स्थापना हुई।

इक्कीसवाँ चातुर्मास (सं० १९७३) : जोधपुर

बालोतरा से आप जोधपुर पधारे। वहाँ खूंटे की पोल में ठहरकर श्री शंभुलालजी कायस्थ के नोहरे में व्याख्यान दिया। स्थान की तंगी से अन्य स्थान पर व्याख्यान होने लगे। वहाँ के निवासी प्रवचनों से इतने प्रभावित हुए कि चातुर्मास की पुरजोर प्रार्थना करने लगे। महावीर जयन्ती का उत्सव बड़े उत्साहपूर्वक मनाया गया। लोगों ने जब चातुर्मास का अधिक आग्रह किया तो आपने फरमाया—'मेरे गुरुदेव पाली में विराजमान हैं। उनकी आज्ञा चाहिए।' लोग पाली जाकर गुरुदेव की आज्ञा भी ले आए। कुछ दिन इधर-उधर विहार करके आप जोधपुर लौट आए। अन्य संत भी वहाँ आ गए। आऊवा की हवेली में सभी संत ठहरे। उसी के चौक में प्रवचन होने लगे। शीघ्र ही श्रोताओं की संख्या बढ़ गई और वह स्थान छोटा पड़ने लगा। जैन और जैनेतर सभी प्रवचन में आते। सरकारी कर्मचारियों के सरसामान खाता के दरोगा श्रीयुत नानुरामजी माली ने कुचामन की हवेली में प्रवचन का प्रबन्ध किया। महाराज श्रीविजय सिंहजी साहेब; रायबहादुर पं० श्यामबिहारी मिश्र, रेवेन्यू मेम्बर, रीजेन्सी काउन्सिल; रायसाहेब लक्ष्मणदास जी चीफ जज आदि उपस्थित हुए।

इस पर्युषण में बहुत तपस्याएँ हुईं। जैनों के अतिरिक्त अजैनों ने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। लगातार आठ-आठ दिन का उपवास किया।

बाईसवाँ चातुर्मास (सं० १९७४) : अजमेर

जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके आप पाली की ओर प्रस्थित हुए क्योंकि वहाँ आपके गुरुदेव चातुर्मास कर रहे थे। उनका स्वास्थ्य भी ठीक न था। कुछ दिन गुरु-सेवा में रत रहे। जब उनका स्वास्थ्य ठीक हो गया तो उनकी आज्ञा लेकर विहार किया और अनेक स्थलों पर विचरण करते हुए ब्यावर पधारे। वहाँ आपके गुरुदेव आशुकवि हीरालालजी महाराज पहले ही पहुँच चुके थे। वयोवृद्ध मुनिश्री नन्दलालजी महाराज भी विराजमान थे। वहाँ का जैन समाज कई सम्प्रदायों में विभक्त था। देशभक्त सेठ दामोदरदासजी राठी ने आपके प्रवचन सनातन धर्म हाईस्कूल में कराए। आपने 'प्रेम और एकता' पर ऐसा सारगर्भित तथा ओजस्वी भाषण दिया कि एकता की प्रचण्ड लहर फैल गई। हैडमास्टर ने प्रभावित होकर दूसरा व्याख्यान कराया।

इसी समय अजमेर श्रीसंघ ने आपको आग्रहपूर्वक बुलाया। आप अजमेर पधारे। प्रवचन सुनकर सभी प्रभावित हुए। राय बहादुर छगनमलजी, दीवान बहादुर उम्मेदमलजी लोढ़ा, मगनमल
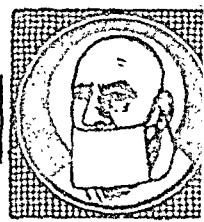
जी, गाढमलजी लोढ़ा आदि ने समस्त श्रीसंघ की ओर से अजमेर चातुर्मास की विनती की। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके आपने किशनगढ़ की ओर विहार कर दिया।

किशनगढ़ में महावीर जयन्ती

किशनगढ़ में आपके पदार्पण के साथ ही हर्ष छा गया। कुछ दिन बाद ही चैत्र सुदी १३ आने वाली थी। भगवान महावीर के जन्मोत्सव की धूमधाम से तैयारी होने लगी। राज्य की ओर से छाया आदि का प्रबन्ध हुआ। महावीर जयन्ती का उत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। व्याख्यान सुनने को हजारों मनुष्य उपस्थित हुए। हिंसादिक कृत्य बन्द रहे। गरीबों को वस्त्र आदि का दान दिया गया। जैन लोगों ने आयंबिल व्रत किये।

किशनगढ़ से विहार करके टोंक होते हुए आप हरमाडे पधारे। वहाँ तेलियों ने अमुक दिन धानी बन्द रखने की और जैन भाइयों ने अपनी आय में से पच्चीस टका सैकड़ा धार्मिक कार्यों में व्यय करने की प्रतिज्ञा की।

वहाँ से रूपनगढ़ आए। रूपनगढ़ में प्राचीन शास्त्रों का भण्डार था। श्रावकों के अत्यधिक आग्रह पर आपने कुछ शास्त्र अपने साथ लिये और अजमेर की ओर विहार कर दिया।

अजमेर में आप लाखन कोठरी में रायबहादुर सेठ उम्मेदमलजी के मकान में चातुर्मास हेतु ठहरे। इस समय आपके गुरुदेव आशुकवि हीरालालजी महाराज का चातुर्मास किशनगढ़ में था। लेकिन वहाँ प्लेग फैल गया। इसीलिए श्रावकों के अत्यधिक आग्रह पर वे पंडित नन्दलालजी महाराज के साथ अजमेर पधारे। इस मुनि संगम से अजमेरवासियों को बड़ा हर्ष हुआ।

आपके गुरुदेव पं० श्री हीरालालजी महाराज ने बहुत से भजन बनाये और साधु-साध्वियों में वितरित कर दिये।

एक दिन अस्वस्थ रहने के बाद आश्विन शुक्ला २ को पं० मुनिश्री हीरालालजी महाराज देवलोकवासी हो गए।

प्लेग अजमेर में भी फैल गया। अतः मुनि संघ को नगर के बाहर लोढ़ाजी की हवेली में जाना पड़ा। शेष चातुर्मास वहीं पूरा हुआ।

तेईसवाँ चातुर्मास (सं० १९७५) : ब्यावर

अजमेर से विचरण करते हुए आप ताल पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब उम्मेदसिंहजी ने अष्टमी और चतुर्दशी को बिलकुल शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। उनके बन्धुओं और पुत्रों ने भी अनेक प्रकार के त्याग लिए। वहाँ से आप लसाणी पहुँचे तो वहाँ के ठाकुर सहाब श्री खुमाण-सिंहजी प्रतिदिन प्रवचन सुनने लगे और उन्होंने पक्षियों की हिंसा का त्याग कर दिया। साथ ही कितने ही अन्य मांसाहारी व्यक्तियों ने मांस न खाने का नियम लिया।

लसाणी से विहार करके आप देवगढ़ पधारे। वहाँ के रावतजी, विजयसिंहजी उदयपुरनरेश के सोलह उमरावों में से एक थे। जैन मुनियों के प्रति उनके हृदय में घोर अरुचि थी। एक बार कुछ पंडितों को एक जैन मुनि के साथ वितण्डावाद करने के लिए भी उन्होंने भेजा। एक दिन जब उन मुनि का प्रवचन हो रहा था उस समय वे घोड़े पर बैठकर निकले। मण्डप बँधा हुआ देखकर बोले—'इसे हटवा दो। हम इसके नीचे से नहीं निकलेंगे।' श्रावक क्या कर सकते थे? लाचार होकर पर्दा खोल देना पड़ा।

यह उनकी अरुचि की पराकाष्ठा थी।

लेकिन एक दिन वह भी आया जब वे जैन दिवाकरजी महाराज का सार्वजनिक प्रवचन

बाजार में हो रहा था, वहाँ जन-साधारण के बीच महाराजश्री का प्रवचन बड़े प्रेम व भक्ति से नियमित सुनने लगे, अपनी शंकाओं के समाधान के लिए आने लगे। रानियों ने भी व्याख्यान सुनने की इच्छा प्रकट की तो आदरपूर्वक आपको महल में बुलवाया। उस दिन महल में सर्व साधारण जनता को भी व्याख्यान सुनने का अवसर दिया। आसन के लिए बहुमूल्य गद्दे बिछवाये। किन्तु महाराजश्री तो निस्पृह थे। उन्हें गलीचों से क्या वास्ता ? आपने अपने साधारण वस्त्र पर ही बैठकर प्रवचन दिया। रावतजी साहब ने भी गलीचा उठवा दिया और सामान्य आसन ग्रहण किया। ॐकार शब्द की ऐसी युक्तियुक्त तथा विशद व्याख्या की कि प्रभावित होकर रावतजी ने साल के अधिक महीनों में शिकार न करने का तथा कुछ जानवरों को बिल्कुल ही न मारने का नियम लिया।

कुछ दिन बाद महाराजश्री ने वहाँ से विहार किया तो रावतजी ५०-६० आदमियों के साथ उन्हें वापिस लौटाने के लिए चल दिये। महाराजश्री कुछ आगे निकल गए थे। देर न हो जाय इसलिए अकेले ही बड़ी शीघ्रता से चलकर महाराजश्री के पास पहुँचे और बड़े आग्रह तथा अनुनयपूर्वक उन्हें वापिस देवगढ़ में ले आए। अत्यधिक विनय करके कुछ दिन रोका।

सं० १९७५ में फिर जैन दिवाकरजी महाराज को अनुनय-विनय करके बुलवाया और बहुत सेवा-भक्ति की।

यह था गुरुदेव के प्रवचन का प्रभाव कि रावतजी साहब की घोर अरुचि श्रद्धा-भक्ति में परिणत हो गई।

महाराजश्री देवगढ़ से विहार करके कोशीथल पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्रीपद्मसिंहजी के सुपुत्र श्री जवानसिंहजी तथा उनके छोटे भाई दर्शनार्थ आए। उन्होंने अहिंसा का पट्टा लिखकर दिया। उन्होंने स्वयं भी अनेक प्रकार के त्याग किए।

कोशीथल से आप चैत सुदी १ को चित्तौड़ पधारे। यहाँ मुनिश्री नन्दलालजी महाराज तथा मुनिश्री चंपालालजी महाराज भी विराजमान थे। टेलर साहब भी प्रवचनों में आने लगे।

चित्तौड़ से विहार करके हथखंदे, निम्बाहेड़ा, नीमच होते हुए मन्दसौर पधारे। मन्दसौर में महावीर जयन्ती उत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इसी समय रतलाम के श्रीसंघ ने आकर रतलाम पधारने की आग्रह-भरी प्रार्थना की। महाराजश्री रतलाम की ओर प्रस्थित हुए। रतलाम श्रीसंघ ने जेठ वदी ११ के दिन भैरवलालजी सुरिया (कोशीथल वाले) को समारोहपूर्वक दीक्षा दिलवाई। चतुर्दशी के दिन प्रवचन देने के बाद जावरा, मन्दसौर, नीमच होते हुए चित्तौड़ पधारे। वे नगर के बाहर ही ठहर गए। टेलर साहब सेवा में उपस्थित हुए, रुकने की प्रार्थना की लेकिन समयाभाव के कारण आप रुक नहीं सके, विहार कर दिया। टेलर साहब डेढ़ मील तक पहुँचाने गए।

चित्तौड़ से अनेक स्थलों पर विहार करते हुए आप ब्यावर पहुँचे और दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी की हवेली में चातुर्मास हेतु ठहर गए।

आपके दर्शनों के लिए दूर-दूर से लोग आने लगे। चुन्नीलालजी सोनी, जो सज्जन एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे, ने आने वाले दर्शनार्थियों के स्वागत-सत्कार का भार अपने कन्धों पर उठा लिया।

इस चातुर्मास में डॉ० मिलापचन्दजी ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

चौबीसवाँ चातुर्मास (सं० १९७६) : दिल्ली

देवगढ़ के रावतजी के अत्यधिक आग्रह पर आप ब्यावर का चातुर्मास पूर्ण करके देवगढ़ पधारे। रावतजी ने बहुत सेवाभक्ति प्रदर्शित की। वहाँ से नाथद्वारे में लीलियाकुण्ड की पेढ़ी पर प्रवचन देकर देलवाड़ा होते हुए उदयपुर की ओर विहार किया।

जब आपश्री उदयपुर के निकट पहुँचे तो कुछ विरोधियों ने आकर कहा—महाराज! हमने सुना है आपने उदयपुर पधारने की स्वीकृति दे दी है?

"हाँ"—महाराजश्री ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"लेकिन''''आपश्री को यह तो मालूम ही है कि आपके पास जो लोग प्रार्थना करने गये थे वे गैर जिम्मेदार थे। श्रीसंघ में उनका कोई स्थान नहीं है, अतः उनकी प्रार्थना का कोई महत्त्व नहीं है।"

"'''' तो इससे क्या फर्क पड़ता है? प्रार्थना का मूल्य व्यक्ति के पद से नहीं, भावना से होता है। फिर मैंने जो वचन दिया है उसका पालन तो मुझे करना ही है।"

"तो हमारा संघ आपका विरोध करेगा''''।"

विरोध की बात सुनकर गुरुदेवश्री के मुख पर मुस्कान तैर गई। बोले—"विरोध को मैं विनोद समझता हूँ। उससे कभी घबराया नहीं, पर एक बात यह तो बताइये कि उदयपुर में आपके कितने घर हैं''''?

"लगभग पाँच सौ तो हैं ही''''।"

"और पूरे उदयपुर में कितने घर हैं''''?"

"छत्तीस हजार!"

"तो पाँच सौ घरों पर आप अपना अधिकार बनाये रखिए। बाकी लोग तो प्रवचन सुनेंगे ही''''?"

आपके इस निर्भीकतापूर्ण उत्तर से विरोधी झेंप गए। वे हाथ मलते ही रह गये और गुरुदेव ने खूब उल्लासपूर्ण वातावरण में नगर-प्रवेश किया। उनका आत्म-विश्वास इतना दृढ़ था कि वे कभी किसी के विरोध से डरे नहीं, जो ठीक समझा वह किया और सफलता सदा चरणों की चेरी बनती रही।

नगर में दिल्ली दरवाजा के निकट लाधुवास की हवेली में आपश्री को ठहराया गया। आपश्री के प्रवचन सार्वजनिक स्थानों पर होने लगे और विभिन्न जातियों और वर्णों के हजारों लोग उमड़-उमड़कर आते थे। उदयपुर में श्रावक समाज दो दलों में विभाजित था। एक दल ने अपनी उपेक्षा होते देखकर गुरुदेवश्री का आगमन ही रोकने की व्यर्थ चेष्टा की, किन्तु जब प्रवचन में अपार भीड़ देखी तो उनके भी दिल बुझ गये।

उदयपुर नरेश महाराणा फतेहसिंह जी के बड़े भाई हिम्मतसिंहजी ने गुरुदेवश्री की खूब सेवाभक्ति की। अधिकारी मानसिंह सिराही ने भी प्रवचन का लाभ लिया। अजमेर से दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी भी आ गए। कुंवर फतहलालजी तथा महन्त गंगादासजी भी प्रवचनों से बहुत प्रभावित हुए। महन्त गंगादासजी की भक्ति तो इतनी बढ़ गई कि कभी-कभी आप गोचरी न पधारते तो वह भी प्रसाद नहीं पाते।

उदयपुर से नाई पधारे। वहाँ आपके उपदेश से कई लोगों ने मांस-मदिरा का त्याग

किया। सनवाड़ में हजारों श्रोताओं को उपदेश देने के बाद आप कपासण तथा हमीरगढ़ होते हुए मांडलगढ़ पधारे। सभी स्थानों पर लोगों ने त्याग पचखाण किए।

वहाँ से आपने बूंदी की ओर विहार किया। मार्ग में एक स्त्री ने कहा—'मुनिवर! इस भयंकर वन में आप क्यों जाते हो? यहाँ तो चोरों का बहुत भय है।' आपने हँसकर उत्तर दिया—'जिसके लिए भय होता है, ऐसी कोई वस्तु हमारे पास है ही नहीं। चोर हमसे क्या ले जायगा।"

बूंदी में आपके प्रवचन सार्वजनिक स्थल पर हुए। दिगम्बर भाइयों ने भी बड़ा रस लिया। प्रत्येक प्रवचन समाप्त होने पर कुंवर गोपाललाल जी केटिया (सुप्रसिद्ध सेठ केसरीलाल जी केटिया के सुपुत्र) खड़े होकर आपकी वंदना करते और आभार प्रदर्शित करते। बूंदी से आप माधोपुर पधारे।

माधोपुर में आपने एक बाई को दीक्षा देकर श्री फूलांजी आर्या जी की शिष्य बना दिया। वहाँ महावीर जयन्ती उत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर एक मुसलमान भाई आलिम हाफिज ने जैन सिद्धान्तों को स्वीकार किया। मुँहपत्ती बाँधकर वह सामायिक, पौषध करने लगा, दया पालने लगा।

माधोपुर से विचरण करके आप श्यामपुर, वेतेड, अलवर होते हुए दिल्ली पधारे। चाँदनी चौक में पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के दर्शन किये। वहाँ की जनता ने चातुर्मास का अत्यधिक आग्रह किया। वर्षा ऋतु भी सिर पर थी। अतः वहीं चातुर्मास का निर्णय हो गया।

चातुर्मास शुरू होते ही दूर-दूर से दर्शनार्थी आने लगे। जम्मू नरेश के दीवान भी आए। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण द्वारका प्रसाद ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया।

पच्चीसवाँ चातुर्मास (सं० १९७७) : जोधपुर

दिल्ली का यशस्वी चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री ने आगरा की ओर विहार किया। मार्ग में मथुरा आये, वहाँ दिगम्बर जैनों का अधिक प्रभाव था। दिगम्बर जैन भाइयों के आग्रह पर आपश्री का एक प्रवचन दिगम्बर जैन मन्दिर में तथा दूसरा सार्वजनिक स्थान पर हुआ।

मथुरा से गुरुदेव श्री आगरा पधारे। लोहामंडी और मानपाड़ा में आपके अनेक प्रवचन हुये। यहाँ पं० रत्न पूज्यश्री माधव मुनि जी महाराज से आपका मिलन हुआ। पूज्य माधव मुनि जी महाराज शास्त्रार्थ महारथी थे। साहित्य के मर्मज्ञ और सुकवि थे। अनेक वर्षों से आप गुरुदेवश्री से मिलना चाहते थे। आगरा में यह सुयोग आया। व्याख्यान भी साथ में हुआ।

आगरा से जयपुर होते हुए चैत शुक्ला ११ को किसनगढ़ पधारे।

किशनगढ़ में महावीर जयन्ती उत्सव बड़े धूमधाम से हुआ। व्याख्यान में सभी जातियों के तीन हजार से अधिक श्रोता उपस्थित हुए। बहुत से तो बाहर गाँव से आए थे। शास्त्रविशारद पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज, पं० रत्न मुनिश्री देवीलालजी महाराज आदि भी विराजमान थे। आपने महावीर भगवान के जीवन पर सुन्दर व्याख्यान दिया।

किशनगढ़ से आप अजमेर पधारे। अजमेर में साम्प्रदायिक तनाव कुछ अधिक था। सन्त तो इस तनाव को महत्व नहीं देते थे, लेकिन अनुयायीजन इन मतभेदों को अधिक तूल देते थे। सभी मुनिवर मुथैयों की हवेली में विराजे। दूसरे दिन ही पूज्य श्रीलालजी महाराज के आगमन का समाचार मिला। स्थानीय जैन संघ ने विनय की—"यदि आप (मुनिगण) उनके (पूज्य श्रीलाल
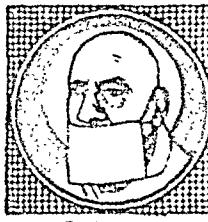
जी महाराज के) स्वागतार्थ पधारें तो मतभेद भी दूर होंगे और जनता पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"

जैन संघ की प्रार्थना स्वीकार हुई। पूज्य मन्नालालजी महाराज की आज्ञा से आप पाँच मुनिवरों के साथ ब्यावर मार्ग की ओर पधारे। दोनों ओर के सन्तों का मिलन हुआ। आपने अपने साथ ही विराजने का आग्रह किया लेकिन पूज्य श्रीलालजी महाराज अपनी शिष्य मंडली सहित ढड्ढा जी हवेली में ठहरे। सन्ध्या समय पूज्य खूबचन्दजी महाराज तथा जैन दिवाकरजी महाराज अन्य ९ साधुओं के साथ पूज्य श्रीलालजी महाराज की सेवा में पधारे। उनसे एक ही स्थान पर सम्मिलित रूप से प्रवचन देने की प्रार्थना की। लेकिन पूज्यश्री ने आनाकानी की। व्याख्यान अलग-अलग ही हुए।

अजमेर से जैन दिवाकरजी महाराज तवीजी पधारे। वहाँ पुनः पूज्य श्रीलालजी महाराज का मधुर मिलन हुआ। पूज्यश्री ने आपकी बहुत प्रशंसा की, खूब स्नेह प्रदर्शित किया।

पुनः ब्यावर में जब जैन दिवाकर जी महाराज बाजार में व्याख्यान दे रहे थे तब पूज्य श्रीलालजी महाराज उधर से निकले। जैन दिवाकर जी महाराज ने पट्टे पर से उतर कर उनकी विनय की।

साम्प्रदायिक मतभेद होते हुए भी जैन दिवाकरजी महाराज के विचार कितने उत्तम और हृदय कितना विनय से भरा था।

ब्यावर से बिलाड़े पधारे। वहाँ दासफा परगना जसवन्तपुरा (मारवाड़) के कुँवर चमन सिंह जी तथा डाक्टर जवेरीमल जी आये हुए थे। वे भी आपके प्रवचन से बहुत प्रभावित हुए।

आसाढ़ सुदी ३ के दिन आपश्री अन्य सन्तों तथा पूज्य श्री मन्नालाल जी महाराज के साथ जोधपुर पधारे। यहाँ रावराजा रामसिंह जी की हवेली में विराजे। जनता प्रवचन सुनने को उत्सुक थी। उसी समय तार द्वारा समाचार मिला कि पूज्य श्रीलाल जी महाराज का आकस्मिक स्वर्गवास हो गया है। व्याख्यान स्थगित कर दिया गया और हार्दिक संवेदना प्रगट की गई। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने पूज्य श्रीलाल जी महाराज का श्लोकबद्ध जीवन-चरित्र लिखा; किन्तु साम्प्रदायिक कारणों से प्रकाशित न हो सका।

जोधपुर चातुर्मास शुरू हो गया। जैन और जैनेतर सभी लोगों पर प्रवचनों का बहुत प्रभाव पड़ा। वे सामायिक-प्रतिक्रमण सीखने लगे। सोनियों ने एकत्र होकर दया प्रभावना की। उनकी स्त्रियों ने एकान्तर तथा षष्ठ-अष्टम व्रत किये।

पूज्यश्री की सेवा में रहने वाले मुनिश्री फौजमल जी महाराज ने ६७ दिन की दीर्घ तपश्चर्या की। उनकी तपःपूर्ति का दिन अहिंसा दिवस के रूप में मनाने का निश्चय हुआ। ओसवाल भाई राजसभा (काउन्सिल) में गए। उनकी प्रार्थना पर महाराज प्रतापसिंह जी ने इस दिन हिंसा पूर्णरूप से बन्द करवा दी। एक-दो कसाइयों ने कहा भी कि 'हाकिमों और सरकारी रसोई को मांस कैसे मिलेगा?' तो महाराज ने आदेश दिया कि 'कोई भी मांस नहीं खावेगा। यहाँ तक कि शेरों और बाघों को भी दूध ही दिया जावेगा।'

इस प्रकार इस दिन हिंसा पूर्ण रूप से बन्द रही। यहाँ तक कि कसाइयों के अतिरिक्त, हलवाई, भड़भूंजे, तेली, तमोली, लोहार आदि सबने अपना कारोबार बन्द रखा। कसाइयों ने भी

सौ बकरों को अभयदान दिया और रावराजा रामसिंहजी ने अपनी ओर से तीस बकरों को अभयदान दिलाया तथा ५० अपाहिजों को भोजन कराया।

तेवीस वर्षीय सादड़ी (मेवाड़) निवासी ओसवाल भैरवलाल जी ने दीक्षा ग्रहण की। उनका नाम बदल कर वृद्धिचन्दजी रखा गया।

श्री भैरवलालजी को वैराग्य भावना तो १६ वर्ष के थे तभी आ गयी थी परन्तु उनके काका ने आज्ञा नहीं दी, बल्कि मार-पीट और मिर्चों की धुनी तक भी दी कि यह साधु बनने का नाम न ले।

छब्बीसवाँ चातुर्मास (सं० १९७८) : रतलाम

जोधपुर से विहार करके आप पाली पधारे। वहाँ पहले किसी समय पं० रत्न पूज्य श्री माधव मुनिजी महाराज ने एक पाठशाला प्रारम्भ करने की योजना बनाई थी। वह योजना कार्य रूप में परिणत हो गई। पाठशाला अभी तक चालू है। वहाँ से आप सोजत पधारे। आपके प्रवचन के प्रभाव से कितने ही लोगों ने दुर्व्यसनों का त्याग कर दिया। वहाँ से आप ब्यावर पधारे। अजमेर से पूज्यश्री शोभाचन्द जी महाराज का सन्देश आया कि "यहाँ दो वैरागी तथा दो वैरागिनों की दीक्षा होने वाली है उसमें आप पूज्य मन्नालालजी महाराज सहित पधारें।" अजमेर श्रीसंघ ने यह सन्देश दिया एवं आग्रह पूर्वक प्रार्थना की। आपने स्वीकृति दे दी तथा पूज्यश्री के साथ अजमेर पधारे।

अजमेर से विहार करके आप नसीराबाद पधारे। वहाँ अनेक खटीकों ने जीवहिंसा का त्याग किया। वहाँ से भीलवाड़ा पधारे।

मार्ग में भी बहुत उपकार हुआ। श्रावकों ने ४० बकरों को अभय दिया। फिर आप चित्तौड़ पधारे। वहाँ ओसवाल और महेश्वरियों ने दहेज न लेने का निश्चय किया और कन्या-विक्रय का दण्ड निर्धारित कर दिया। साथ ही असमर्थ और निर्धन भाइयों को कन्या के विवाह के लिए ४०० रुपये बिना ब्याज के देने का निर्णय किया। सोनियों ने प्रत्येक एकादशी और अमावस्या के दिन अग्नि का उपयोग न करने की प्रतिज्ञा की। मोचियों ने प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या के दिन मांस मदिरा के सेवन का त्याग किया और इन दो दिनों ईश्वर-भजन का नियम लिया। गाड़ी वालों ने अधिक भार न लादने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार के अनेक नियम अन्य जाति वालों ने भी लिए।

चित्तौड़ से विहार करके आप चित्तौड़ किले पर पधारे। वहाँ चारभुजाजी के मन्दिर में प्रवचन हुए। महन्त लालदासजी तथा उनका शिष्य समुदाय प्रवचन सुनते थे। चितौड़ होकर टेलर साहब बेलगाम (दक्षिण) जाते हुए निकले। उनके हृदय में महाराज साहब के दर्शन-वन्दन की बहुत इच्छा थी, लेकिन आवश्यक सरकारी कार्य होने के कारण रुक न सके। उनका भावभरा पत्र आया।

जब आपने वहाँ से विहार किया तो महंतजी ने रुकने का बहुत आग्रह किया और उनका शिष्य तो चरणों से लिपट ही गया। बड़ी कठिनाई से उसे समझा-बुझाकर आपने घटियावली के लिए प्रस्थान किया।

घटियावली में महाजनों और किसानों ने आपश्री के उपदेश सुनकर विविध प्रकार के त्याग लिए। वहाँ के ठाकुर साहब श्री यशवन्तसिंहजी और उनके काका श्री जालिमसिंहजी नित्य प्रवचन सुनते थे। ठाकुर साहब ने पक्षियों को न मारने की तथा जालिमसिंहजी ने शेर, सूअर तथा पक्षियों को न मारने की एवं कालूसिंहजी ने चार प्रकार के प्राणियों के अलावा किसी को न मारने

की प्रतिज्ञा ली। किशन खाटकी ने एकम, द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या के दिन अपने हिंसापूर्ण व्यापार को बन्द रखने का नियम लिया।

निम्बाहेडा में महावीर जयन्ती

घटियावली से अनेक स्थलों पर विहार करते हुए आप निम्बाहेडा पधारे। चैत सुदी १३ आने वाली थी। आपने 'एकता' पर सरगर्भित प्रवचन दिया। लोगों पर बहुत प्रभाव हुआ। परिणामस्वरूप महावीर जयन्ती का उत्सव समस्त जैन भाइयों ने मिलकर बड़ी धूमधाम से मनाया। इस उत्सव के मनाने से पहले लोगों ने आपसे पूछा था—'महावीर जयन्ती कैसे मनाएँ?' आपने कहा—'महावीर भगवान तो सभी के हैं। सभी जैनियों को मिलकर मनाना चाहिए।' इस एक शब्द ने ही समाज में एकता के प्राण फूंक दिये। परिणामस्वरूप जैन समाज में इस अवसर पर ऐक्य हो गया।

मिथ्या कलंक निवारण

विहार करते हुए आप सादड़ी पधारे। वहाँ पाँच-सात स्त्रियों पर मिथ्या कलंक लगाया जा रहा था। अन्य स्त्रियाँ उन्हें छूती भी न थीं। कई संतों ने इस विवाद को मिटाने का प्रयत्न किया लेकिन सफल न हो सके। आपके उपदेश से यह विवाद समाप्त हो गया। इन स्त्रियों को समाज में उचित स्थान प्राप्त हुआ।

सादड़ी से विहार करते हुए आप नामली पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्री महीपालसिंह जी तथा उनके बन्धु श्री राजेन्द्रसिंहजी आपके प्रवचनों से बहुत प्रभावित हुए।

धानासुत, खाचरोद होते हुए रतलाम पधारे और श्रीमान् सेठ उदयचन्दजी के भवन में विराजे। वर्षावास शुरू हो गया। दूर-दूर से दर्शनार्थी आने लगे। प्रवचन-पीयूष पान करने के लिए राह चलते रास्तागीर भी रुक जाते। बड़े-बड़े राज्याधिकारी तथा रतलाम काउन्सिल के सदस्य पंडित त्रिभुवननाथ जी जुत्सी भी प्रवचनों का लाभ लेने लगे।

यहाँ चित्तौड़ किला के चारभुजाजी के मन्दिर के महन्त श्री लालदासजी का भाव-भीना पत्र आया। जैनेतर वैदिक विद्वान द्वारा लिखा होने के कारण यह पत्र उद्धरण योग्य है। महन्तजी का पत्र निम्नानुसार है—

> स्वस्तिश्री रतलाम नगर शुभस्थाने......सकल गुण सम्पन्न, गंगाजलसम निर्मल, चरित्रनायक श्री चौथमलजी महाराज जोग किला चित्तौड़गढ़ से लिखी महन्त लालदास का प्रणाम स्वीकार करिए।......स्वामी जी! आपके अमृतमय वचनों को याद करके मेरा हृदय गद्‌गद् हो जाता है।

पाँच साधु के बीच में, राजत मानो चन्द।
अमृत सम तुम बोलते, मिटत सकल भ्रम फन्द॥
दृष्टि सुहृद मुनि चौथ की, सबको करे निहाल।
गति विधि हू पलटैं तबै, कागा होत मराल॥
सद्‌गुरु शब्द सु तीर हैं, तन-मन कीन्हों छेद।
बेदर्दी समझे नहीं, विरही पावे भेद॥
हरिभक्ता अलगुरुमुखी, तप करने को आन।
सतसंगी साँचा यती, वहि देखूं मैं दास॥
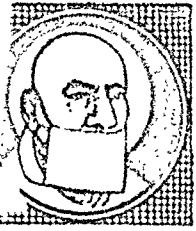
आपने पांच व्याख्यान देने का वचन दिया था, उसे कब पूरा करेंगे ? पत्र के उत्तर की अभिलाषा है। आशा है पत्र पढ़ते ही अविलम्ब अपनी कुशलता का समाचार देंगे।

संवत् १९७८, भादवा वदी १०
ता० २८-८-१९२१

आपका शुभेच्छुक
महन्त लालदास
चतुर्भुजाजी का मन्दिर
किला (चित्तौड़गढ़)

तपस्वी मुनि मयाचन्दजी महाराज की ३३ दिन की तपस्या का पूर्णाहुति दिन भाद्रपद सुदी ५ को था। उस दिन अपाहिजों को भोजन-वस्त्र का दान दिया गया। हिंसा पूर्णरूप से बन्द रही। बाघ आदि को भी दूध ही पिलाया गया। रतलाम नरेश महाराजा सज्जनसिंह जी अस्वस्थ थे; फिर भी भाद्रपद वदी १२ को प्रवचन सुनने आये। लोगों ने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिलाया फिर भी महाराज उठे नहीं। उनके साथ काउन्सिल के सदस्य, सरदार तथा अन्य उच्च राज्यकर्मचारी भी थे। डेढ़ घंटे तक व्याख्यान सुनते रहे। दूसरे दिन जोधपुर स्टेट के दीवान के सुपुत्र श्री कान्हमल जी दर्शनार्थ आये।

मंगलपाठ से मंगल

रतलाम चातुर्मास की ही घटना है। महाराजश्री शौच के लिए जा रहे थे। प्रभात का समय था। नगर के बाहर एक बैलगाड़ी के समीप कोई आदिवासी करुण स्वर में क्रन्दन कर रहा था। आपने पूछा—

"क्यों रो रहे हो मामा ! क्या कुछ खो गया है ?"

"सब कुछ चला गया, महात्माजी ! मेरा बीस वर्ष का जवान बेटा अब नहीं बचेगा। वैद्यों से निराश होकर घर ले जा रहा हूँ।" आदिवासी ने आर्तस्वर में बताया।

महाराज श्री के नेत्र सजल हो गये। हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ने लगा। दयार्द्र होकर बोले—

"भगवान का नाम सुनाए देता हूँ। तुम्हारे पुत्र का कल्याण होगा।"

तदुपरान्त मांगलिक सुनाकर कहा—

"घर ले जाओ। इसका अब कल्याण हुआ ही समझो।"

आपकी वाणी से उसके हृदय में आशा का संचार हुआ। घर पहुँचा। दस दिन में उसका बेटा पूर्ण स्वस्थ हो गया। आदिवासी दम्पति के हृदय में गुरुदेव के प्रति असीम श्रद्धा जाग उठी। सबसे यही कहता कि 'यह तो मर चुका था; महात्माजी के मन्त्र से ही इसे जीवन मिला है।'

आदिवासी दम्पति श्रद्धा से विभोर होकर कृतज्ञता प्रगट करने के लिए कुछ भेंट लेकर आये। लेकिन महात्माजी का पता ठिकाना तो कुछ मालूम नहीं था अतः उसी स्थान पर आ बैठे। जहाँ पहले गुरुदेव ने मांगलिक सुनाई थी। आतुर हृदय लिए प्रतीक्षा करने लगे। प्रतीक्षा फलवती हुई। महाराजश्री आते हुए दिखाई दिये। आदिवासी दम्पति विभोर हो उठे। चरण पकड़ कर भेंट सामने रखते हुए बोले—

"बापजी ! आपके लिए टिमरू-चारोली और दस रुपये लेकर आए हैं। खेती पकने पर मक्का भी लाएँगे। इन्हें कृपा करके ले लो।"

महाराजश्री उनकी श्रद्धा से गद्‌गद हो गये। किन्तु भेंट अस्वीकार करते हुए बोले—

"भेंट तो हम लेते नहीं।"

आदिवासी का दिल बैठने लगा। महाराजश्री ने कहा—

"तुम यदि कुछ देना ही चाहते हो तो आज से जीवन-भर के लिए शिकार, पशु-बलि, मांस और मदिरा छोड़ दो। क्या तुम इतना कर सकोगे ?"

"क्यों नहीं कर सकेंगे, बापजी ! आपने हमारे बेटे की जान बचाई तो हम भी सभी प्राणियों की प्राण-रक्षा करेंगे।"

आदिवासी दम्पति ने निष्ठापूर्वक प्रतिज्ञा-पालन का वचन दिया।

सत्ताईसवाँ चातुर्मास (सं० १९७९) : उज्जैन

रतलाम से विचरण करते हुए आप सारंगी पधारे। वहाँ के ठाकुरसाहब जोरावरसिंहजी ने बहुत भक्ति-भाव प्रदर्शित किया। आपने 'पर-स्त्री-गमन निषेध' पर एक प्रभावशाली प्रवचन दिया। सुनकर लोगों ने 'पर-स्त्री-त्याग' का नियम लिया। इसके बाद 'अहिंसा परमो धर्मः' पर आपका ओजस्वी प्रवचन हुआ। अहिंसा की धारा बहने लगी। ठाकुर साहब ने अपनी रियासत में मछलियाँ मारने तथा शिकार करने की पाबन्दी (सभी धार्मिक तिथियों, एकादशी, पूनम, अमावस्या जन्माष्टमी, रामनवमी और पर्यूषण के दिनों में) लगा दी।

इसके बाद ठाकुर जोरावरसिंहजी मिगसर वदी ९ का लिखा एक पत्र आया। उसमें क्षमा प्रार्थना करते हुए लिखा था कि "मैंने परस्त्रीगमन न करने का नियम नहीं लिया था उसका कारण यह था कि क्षत्रिय धर्म में परस्त्रीगमन वैसे ही निषेध है। तथा—

यह विरद रजपूत प्रथम, मुख झूठ न बोले।
यह विरद रजपूत, काछ परत्रिय नहिं खोले॥
यह विरद रजपूत, दान देकर कर जोरे।
यह विरद रजपूत, मार अरियाँ दल मोरे॥
जमराज पाँव पाछा धरे, देखि मतो अवधूत रो।
करतार हाथ दीधी करद, यह विरद रजपूत रो॥

मैं इस कवित्त (छप्पय) को सदा स्मरण रखते हुए अपना जीवनयापन करता हूँ।"

राजमहल की स्त्रियों तथा अन्य महिलाओं ने भी विविध प्रकार के नियम लिए।

विहार करते हुए आप राजगढ़ पधारे। आपके प्रवचनों को सुनकर मुसलमान भाई भी कहने लगे कि 'ऐसा मालूम पड़ता है कि इन्हें खुदा ने ही भेजा है।' तीस बुनकरों ने मांस-मदिरा का त्याग किया।

अनुपम इकरारनामा

धारानगरी से आप केसूरग्राम पधारे। उस समय सैलाना, महीदपुर, उज्जैन, रतलाम आदि ६० क्षेत्रों के चमार गंगाजलोत्सव पर केसूरग्राम में एकत्र हुए थे। इनमें मदिरापान की कुटेव सदियों से जड़ जमाए हुए थी। कुछ सुधार प्रेमी श्रावकों ने आपश्री से निवेदन किया—

"महाराज ! हमें तो अनुग्रह करके आप उपदेश फरमाते ही हैं। यदि चर्मकार बस्ती में पधार कर इन चर्मकारों को भी सदुपदेश दें तो इनका भी उद्धार हो जायेगा। इन्हें आपके सदुपदेश की सख्त आवश्यकता है।"

आपने श्रावकों का निवेदन स्वीकार किया। चर्मकार बस्ती में दो प्रवचन फरमाए। चमत्कारी प्रभाव हुआ। चर्मकारों की एक विशेष मीटिंग (सभा) हुई। दीर्घदृष्टि से विचार किया गया और निम्न इकरारनामा लिखा गया—

पंच चमार मेवाडा केसूर

यह इकरारनामा लिखने वाले चमार पंच लुनीवाला दुर्गाजी चौधरी, सकल पंच मालवा तथा खाचरोदवाला घासी जी तथा सकल पंच बड़लावदावाला बालाजी तथा बडनगर के सरपंच मोतीजी यह चार गाँव के पंच केसूर (धार जिला) में एकत्र हुए। चंपाबाई के यहाँ गंगाजल हुआ था। इस समय पूज्यश्री १००८ श्री मन्नालालजी महाराज की संप्रदाय के सुप्रसिद्ध वक्ता श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के सदुपदेश से यह प्रस्ताव किया है कि जो मांस खायेगा या दारु (शराब) पीयेगा उसका व्यवहार पंच तोड़ देंगे। जाति से छह महीने बन्द रहेगा और ११) रु० दंड देना होगा। इस इकरारनामे के अनुसार महीदपुर, उज्जैन, खाचरोद, सुखेड़ा, पिपलौद, जावरा, मन्दसौर, चित्तौड़, रामपुरा, कुकडेश्वर, मनासा आदि ६० गाँवों में पालन किया जायेगा।

तिथि फाल्गुन वदी ३, सं० १९७८, ता० १३-२-२२
निशानी अंगूठा—पंच लूनीवाला—दुर्गाजी
—खाचरोदवाला—घासीजी
—बड़लावदावाला—बालाजी पटेल
—बड़नगर वाला—मोतीजी पटेल
—पटेल भेरू केसूर—रूपा पन्ना, केसूर

इस प्रकार ६० गाँवों के चमारों ने मांस-मदिरा का त्याग कर दिया।

ये लोग अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ रहे। शराब के ठेकेदार को हानि हुई तो उसने सरकारी अधिकारियों से शिकायत कर दी। उनके स्वार्थ की भी हानि थी। अधिकारियों ने चमारों को डराया, धमकाया यहाँ तक कि एक चमार के मुँह में शराब की बोतल जबरदस्ती उड़ेल दी, फिर भी उसने नहीं पी, उगल दी। एक स्वर से सभी चमारों ने विरोध किया—

"हम धमकियों से डरने वाले नहीं है। आप हमारी गरदनों पर तलवार चलवा दें, फिर भी हम गुरुदेव के सामने ली हुई प्रतिज्ञा नहीं तोड़ेंगे।"

कितना प्रभाव था गुरुदेव की वाणी में कि प्रतिज्ञा लेने वाला मेरु के समान अटल हो जाता था।

केसूर से आप इन्दौर होते हुए देवास पधारे। यहाँ के नरेश (जूनियर) सर मल्हार राव बाबा साहब ने प्रवचन लाभ लिया। वहाँ से आप उज्जैन पधारे। उज्जैन में महावीर जयन्ती उत्सव मनाया गया। इस उत्सव में दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी सभी भाइयों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। जैनों के अतिरिक्त, वैष्णव, मुसलमान, वोरा आदि भी चातुर्मास करने का आग्रह करने लगे। लेकिन आपने स्पष्ट स्वीकृति नहीं दी। वहाँ से आप रतलाम पधारे। रतलाम में मुनि सम्मेलन होने वाला था। इसलिए पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज, पं० रत्न श्री नन्दलालजी महाराज आदि २९ संत विराजमान थे। यहाँ उज्जैन श्रीसंघ, दिगम्बर जैन श्री राजमलजी, बाबू वंशीधर जी भार्गव, आदि आए। चातुर्मास की प्रार्थना यहाँ स्वीकार हो गई।

अनेक स्थानों पर विहार करते हुए आप उज्जैन पधारे। यहाँ मुनि मयाचन्दजी महाराज ने ३३ दिन की तपस्या की। तपस्या की पूर्णाहुति भाद्रपद शुक्ला ६, बुधवार सं० १६७६ (दिनांक ३०-८-१६२२) को हुई। इस पावन प्रसंग पर उज्जैन के कपड़े का कारखाना, प्रेस, जीन तथा कसाईखाना वन्द रखे गये। उस समय की ७०००) रु० दैनिक की हानि उठाकर भी जनरल मैनेजर श्री मदनमोहनजी ने मील वन्द रखा। खानसाहब सेठ नजरअली, अल्लावख्श मिल्स के मालिक सेठ लुकमान भाई ने भी अपनी फैक्ट्री वन्द रखी। मुहर्रम का त्यौहार होने पर भी उन्होंने जातिभोज में मीठे चावल वनवाए और १०० वकरों को अभय दिया।

यह गुरुदेव के दयामूलक सर्वव्यापी प्रभाव का उदाहरण है।

महाराजश्री का अहिंसा पर प्रभावशाली प्रवचन हुआ। इसमें काजी वजरुद्दीन, उस्ताद हसन मियाँ, मौलाना फैज मुहम्मद, इब्राहीम कस्साव जज साहब, मौलवी फाजिल सादुद्दीन हैदर सवजज मी० चौथे, पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट आदि पधारे। जज साहब ने आपके प्रवचन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसका सारांश था।

"मैंने वहुत से भाषण, स्पीच वगैरह सुने हैं, लेकिन मुनि चौथमलजी महाराज साहब ने जो व्याख्यान आज हम लोगों को सुनाया है, उसमें बहुत ज्यादा आनन्द आया। वे इज्जत करने लायक हैं। इनकी बातें याद रखना और उन पर अमल करना आप सबका फर्ज है।

"हमारे सामने जो स्वामी जी महाराज (श्री मयारामजी महाराज) वैठे हैं, आपने तेतीस उपवास किये हैं। ख्याल कीजिये कि "३३ उपवास" कहना आसान है, लेकिन करना, कितना मुश्किल है। हम लोगों में ३० रोजे किये जाते हैं, जिसमें रात को खाया जाता है उस पर भी रोजे रखना मुश्किल का मैदान मालूम होता है। स्वामीजी ने दिन में सिर्फ गर्म पानी से ही गुजारा किया। रात को वह भी नहीं लिया जाता। आपके धर्म में इसकी मुमानियत है। मैं स्वामीजी का तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ। मैंने यहाँ आकर यह सुना कि कसाइयों ने व-रजामंदी खुद वाहमी इत्तिफाक (पारस्परिक मेल) से आज के दिन जानवरों का कत्ल करना व गोश्त वेचना बन्द कर दिया, जिसमें कि सरकार की जानिव से कतई दवाव नहीं किया गया। मुझे इस वात से बहुत ही खुशी हासिल हुई। सरकार तो चोर, पापी, अन्यायी, दुराचारी आदि को चोरी, पाप, अन्याय और दुराचरण करने पर पकड़ कर दंड देती है, लेकिन उससे उतना सुधार नहीं होता जितना स्वामीजी के व्याख्यान से।"

इसके पश्चात् मौलाना याद अली साहब ने सभा में खड़े होकर जाहिर किया कि स्वामीजी महाराज के व्याख्यान की तारीफ करने के लिए मेरे पास अल्फाज नहीं हैं।

दूसरे दिन तीन सौ अपाहिजों को भोजन कराया गया।

अट्ठाइसवाँ चातुर्मास (सं० १६८०) : इन्दौर

उज्जैन चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री देवास पधारे। देवास के महाराज सर मल्हारराव पंवार (छोटी पांती) ने गुरुदेवश्री की वहुत सेवा-भक्ति की। प्रवचन आदि सुने।

एक दिन महाराजा मल्हारराव के मन में गुरुदेव को आहार-पानी देने का विचार आया। महाराजा ने अपने मन की वात गुरुदेवश्री से कही। गुरुदेव ने कहा—जैन मुनियों की गोचरी के कुछ विशेष नियम हैं। दोष टालकर अपने नियमों के अनुसार ही आहार-पानी ले सकते हैं।'

महाराजा ने कहा— "मेरा प्राइवेट सेक्रेटरी जैन है। मैंने जैन मुनियों के नियमों की जान-

कारी करली है। मैं आपके नियमों के अनुसार ही भिक्षा दूँगा।" दूसरे दिन गुरुदेव गोचरी हेतु पधारे। एक कमरे में भोजन का थाल सजाकर रखा था।
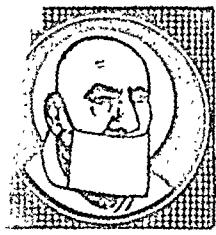
गुरुदेव ने कहा—जहाँ भोजन रखा है, हम वहीं जाकर भिक्षा लेंगे। भोजन-गृह में ले जाया गया। महाराजा स्वयं अपने हाथ से दान देना चाहते थे। गुरुदेव ने छोटा पात्र सामने रखा।

महाराजा ने कहा—"बड़ा पात्र रखिये। यहाँ भी परिवार बहुत है और आपका शिष्य समुदाय भी बड़ा है, फिर संकोच क्यों?"

गुरुदेव—"आवश्यकता से अधिक भोजन लेकर हम क्या करेंगे?" अतः छोटा पात्र ही रखा। महाराज ने अपने हाथ से केसरिया चावल दबा-दबाकर पात्र में भर दिये। गुरुदेव गोचरी लेकर निकले तो महल के द्वार तक महाराजा पहुँचाने के लिए आये। महल के बाहर पहुँचकर महाराजा ने चरणों में मस्तक रखकर नमस्कार किया तो दोनों हाथ धूल से भर गये।

गुरुदेवश्री ने कहा—"कच्चे पानी से हाथ न धोना।"

महाराजा ने हँसकर नम्रता के साथ कहा—मैंने पहले से ही आपका आचार-विचार मालूम कर लिया है। गर्म पानी भी तैयार है।

महल के बाहर निकलते ही बैंड बजने लगा। गुरुदेव ने कहा—यह क्या?

महाराजा—यह लोग आपश्री को सम्मानपूर्वक अपने स्थान तक पहुँचाने आयेंगे।

गुरुदेव—हम लोग बाजे के साथ नहीं चलते हैं।

महाराजा ने अपने अधिकारियों व बाजे वालों से कहा—आपको वैसे ही स्थान तक पहुँचा आओ।

देवास में आपश्री कई दिन विराजे। महाराजा सर तुकोजीराव बापू साहेब पंवार (बड़ी पाँति) दीवान राय बहादुर नारायण प्रसाद जी, श्री डी० आर० लहरी एम० ए०, श्री बी० एन० माजेकर वकील, डा० गणपतराव सितोले आदि अनेक सुशिक्षित व्यक्ति गुरुदेवश्री के संपर्क में आये, प्रवचन सुनते। प्रवचन सभा में अपार भीड़ होने लगी। पहले कन्यापाठशाला में प्रवचन होते थे। श्रोताओं की उपस्थिति प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। फिर तुकोजी गंज के मैदान में प्रवचन होने लगे। देवास के घंटाघर और राजवाडे में भी कई व्याख्यान हुए। महाराजा की ओर से बड़े पेड़े की प्रभावना की गई।

देवास के मुसलमान भाइयों में भी आपश्री के प्रति अत्यन्त भक्ति जगी। उनकी प्रार्थना पर ईदगाह में आपने प्रवचन दिया। शहर के काजी ताजुद्दीन ने आजीवन मांस-मदिरा-परस्त्रीगमन आदि का त्याग किया। अन्य लोगों ने भी अनेक प्रकार के नियम लिये।

देवास से विहार कर आपश्री इन्दौर पधारे। वहाँ की रिवाज के अनुसार सैकड़ों पशुओं का बलिदान होने वाला था। आपश्री को पता चला तो आपने दया व करुणा पर वह हृदयस्पर्शी प्रवचन दिया कि बलिदानकर्ताओं का हृदय पिघल गया। लगभग १५०० पशुओं को जीवन दान मिला।

इन्दौर से रतलाम की ओर विहार किया। मार्ग में किसानों के आग्रह से १०-१२ दिन हातोद गाँव में रुकना पड़ा। डेढ़ हजार व्यक्ति प्रवचन में उपस्थित हुए। उन्होंने निम्न नियम लिए। एकादशी और अमावस्या के दिन—

(१) भड़भूंजे भाड़ और तेली घानी बन्द रखेंगे।

(२) कुम्भकार (कुम्हार) चाक बन्द रखेंगे।

(३) किसान बैलों को नहीं जोतेंगे।
(४) हलवाई भट्टी बन्द रखेंगे।
(५) सुनार अग्नि सम्बन्धी कार्य नहीं करेंगे।

हातोद से अनेक स्थानों पर होते हुए आप रतलाम पधारे। वहाँ पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के दर्शन किये। फिर वहाँ से सैलाना पधारे और सैलाना से पिपलोदा। पिपलोदा में प्रतिवर्ष माता के मन्दिर में एक बकरे का बलिदान होता था। आपके उपदेश से ठाकुर साहब ने वह बन्द करा दिया और स्वयं सूअर तथा शेर के अलावा अन्य पशु-पक्षियों का शिकार न करने का नियम लिया।

पिपलोदा से अनेक स्थानों पर विचरते हुए मंदसौर पधारे। जनकूपुरा और बजाजखाना के प्रवचनों से प्रभावित होकर पोरवाल बन्धुओं ने कन्या विक्रय न करने की प्रतिज्ञा ली। एक भाई ने (पिता ने) कन्या विक्रय के लिए कुछ रुपये ले लिये थे, और कुछ लेने बाकी थे। आपश्री के उपदेश से उसका हृदय बदल गया। उसने कहा—"जो रुपये ले लिए हैं वह रुपये भी लौटा दूँगा और अब भविष्य में कन्या विक्रय का पाप सिर पर नहीं बाँधूँगा।" सुनारों ने चाँदी में अधिक मिलावट न करने का नियम लिया।

मन्दसौर से आप पालिया होते हुए नारायणगढ़ पधारे। वहाँ के जागीरदार हफीजुल्लाखाँ ने आग्रह करके प्रवचन कराया। ठाकुर रणजीतसिंहजी, रघुनाथसिंहजी तथा चैनसिंहजी ने मदिरा तथा परस्त्री का त्याग किया। वहाँ से आप महागढ़ पधारे। महागढ़ में एक प्रवचन सुनकर अमावस्या के दिन किसानों ने हल न जोतने तथा वैश्यों ने दुकान न खोलने और कन्या विक्रय न करने की प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कीं। ठाकुर भवानीसिंहजी, रणछोड़सिंहजी, कालूसिंहजी आदि ने जीवहिंसा का त्याग किया।

महागढ़ से अनेक स्थानों पर प्रवचन फरमाते हुए आप इन्दौर पधारे।

इन्दौर में सर सेठ हुक्मचन्दजी की धर्मशाला में आपश्री को ठहराया गया। व्याख्यान में जनाब मुंशी अजीजुर्रहमानखां बैरिस्टर, इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस तथा जनरल भवानीसिंहजी आदि अनेक उच्च अधिकारी बराबर आते थे।

यहाँ पर तपस्वी मयाचन्द जी महाराज ने ३५ दिन की तपस्या की। तप के पूर के दिन कसाइयों ने अपनी दुकानें व कसाईखाने बन्द रखे। स्टेट मिल के कन्ट्रेक्टर सेठ नन्दलालजी ने भण्डारी मिल बन्द रखा। ३० हलवाइयों ने स्वतः की प्रेरणा से अपनी भट्टियाँ बंद रखीं। लगभग दो हजार दीनों और याचकों को भोजन कराया गया।

एक दिन 'जीवदया' पर आपका सार्वजनिक प्रवचन हुआ। सुनकर नजर मुहम्मद कसाई ने उठकर भरी सभा में प्रतिज्ञा की—'मैं कुरान-शरीफ की कसम खाकर कहता हूँ कि आज से किसी भी जीव को नहीं मारूँगा।' कसाई के इस हृदय-परिवर्तन से सभी चकित रह गए। अन्य लोगों ने भी जीव हिंसा न करने की प्रतिज्ञा ली। श्री नंदलालजी नटेवरा की दीक्षा आपके कर-कमलों से सम्पन्न हुई।

पीपलगांव (महाराष्ट्र) के श्री सूरजमलजी हंसराजजी आमड ने दीक्षा में काफी धन खर्च किया।

इंदौर चातुर्मास पूर्ण करके आप जुकोगंज पधारे। वहाँ श्री नेमिचंदजी नंदलालजी के आग्रह से माणिक भवन में ठहरे। प्रातः राय बहादुर सेठ कल्याणमलजी की कोठी पर व्याख्यान

हुआ। कोठी शहर से दो मील दूर थी, फिर भी जनता बहुत बड़ी संख्या में आई। दो व्याख्यान और देने का आग्रह करने पर आपश्री ने स्वीकृति दी। लाला जुगमन्दिरलालजी जैनी, दानवीर सर सेठ हुकमचंदजी, राय बहादुर सेठ कस्तूरचन्दजी, श्री नेमिचन्दजी भँवरलालजी आदि सभी दिगम्बर जैन भाई सम्पन्न थे, फिर भी उनमें धर्म के प्रति अच्छा प्रेम था। व्याख्यान सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे "आप जैसे २-४ उपदेशक भारत में हो जायें तो जैन जाति की उन्नति होने में कोई देर नहीं लगे।"

सर सेठ हुकमचन्द जी ने अपने दशलाक्षणी पर्व के व्याख्यानों में एक बार जनता से कहा था "मेरे बोलने का आप लोगों पर असर नहीं हो सकता, क्योंकि आप भी भोगी मैं भी भोगी। असर होता है त्यागियों का। मैंने एक व्याख्यान श्री चौथमलजी महाराज का सुना है, जन्मभर नहीं भूलूंगा। स्कंधक मुनि की कथा मेरे हृदय में बस गई है। दो-चार व्याख्यान और उनके सुन लूं तो मुझे मुनि ही बनना पड़े।"

महाराजश्री का प्रवचन सुनने के लिए कुशलगढ़ के राव रणजीतसिंहजी इन्दौर आए। कुशलगढ़ में पधारने और अपने उपदेशामृत से जनता का कल्याण करने की प्रार्थना की।

उन्तीसवाँ चातुर्मास (सं० १९८१) : घाणेराव सादड़ी

इन्दौर से चातुर्मास पूर्ण करके आप हातोद की ओर प्रस्थित हुए किन्तु मार्ग में ही देवास का श्री संघ मिल गया। अत्यधिक आग्रह के कारण आपके चरण देवास की ओर मुड़ गए। देवास में 'गौरक्षा' और 'विद्या' विषय पर व्याख्यान हुए।

देवास से उन्हेल पधारे तो वहाँ के जागीरदार ने मुसलमान होते हुए भी प्रवचन लाभ लिया और अपनी सीमा में किसी को भी जीव न मारने देने की प्रतिज्ञा की।

अनेक लोगों का अपने प्रवचन-पीयूष से हृदय परिवर्तन करते हुए भीलवाड़ा पधारे। यहाँ अनेक संत एकत्र हुए। महावीर जयंती का उत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। यहीं सादड़ी (मारवाड़) के श्री संघ ने चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई।

यहाँ से आप बनेड़ा पधारे। बनेड़ा-नरेश अमरसिंहजी आपका प्रवचन सुनने आये। प्रभावित होकर नजरबाग में व्याख्यान देने का आग्रह किया जिससे राज-परिवार की महिलाएँ भी लाभ ले सकें। नजरबाग में प्रवचन होने के बाद बनेड़ा नरेश ने जिज्ञासा प्रगट की—

"महाराज ! क्या जैनधर्म, बौद्धधर्म की शाखा है ?"

महाराजश्री ने समझाया—

"जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है; अपितु एक स्वतन्त्र धर्म है। बौद्धधर्म का प्रारम्भ कुल ढाई हजार वर्ष पहले हुआ है। इसके आद्य प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे, जबकि जैनधर्म अनादि है। इस अवसर्पिणी काल में इसके आद्य प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव थे जिनके काल की गणना वर्षों में नहीं हो सकती। असंख्य वर्ष हो गए हैं उन्हें। चौबीसवें तीर्थंकर महावीर और महात्मा बुद्ध अवश्य समकालीन थे, लेकिन दोनों धर्मों की आचार-विचार पद्धति में अन्तर रहा। स्वयं बुद्ध भी तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा में पहले दीक्षित हुए थे लेकिन श्रमणचर्या के कठोर नियमों का पालन न कर सकने के कारण अलग हो गए और अपना मध्यम मार्ग खोज निकाला। इस प्रकार जैनधर्म बौद्धधर्म की अपेक्षा बहुत प्राचीन है।"

नरेश ने दूसरा प्रश्न किया—

"जब जीव किसी के मारने से नहीं मरता तो हिंसा किसकी होती है और हिंसा करने वाले को क्यों रोका जाता है ?"

महाराजश्री ने उत्तर दिया—

"आपका सोचना किसी सीमा तक स्वाभाविक है। लेकिन संसारी जीव पाँच इन्द्रियों (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र) तीन बल (मन, वचन, काया), श्वासोश्वास और आयु इन दश प्राणों के आधार पर जीवित रहता है। इन स्थूल प्राणों के छेदन, भेदन, मारन, ताड़न आदि से जीव को असह्य वेदना होती है। इसलिए किसी भी प्राणी को मारना या वेदना पहुँचाना हिंसा है। अपनी मृत्यु से प्राणी मरे यह बात अलग है, उसे अवधि से पूर्व शरीर से पृथक् करना हिंसा है। जैसे कोई मनुष्य अपनी इच्छा से आपके पास से उठकर चला जाय तो कोई बात नहीं; किन्तु उसे धक्का देकर निकाला जाय तो दुःख होगा। इसलिए किसी प्राणी की हिंसा नहीं करना चाहिए। और सज्जनों को हिंसा रुकवानी भी चाहिए।

प्रश्न—जैनधर्म पृथ्वी, जल, वनस्पति आदि में भी जीव मानता है। इनकी रक्षा कैसे हो सकती है ?

उत्तर—जैनधर्म के इन पृथ्वी, जल आदि में जीव मानने के सिद्धान्त को तो आज विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है। वे भी इसमें जीव मानते हैं। गृहस्थी पूर्णरूप से इनकी हिंसा से तो नहीं बच सकते लेकिन अपनी शक्ति के अनुसार व्यर्थ की हिंसा से तो विरत हो ही सकते हैं।

प्रश्न—तो फिर पूर्णरूप से अहिंसा—दयाधर्म का पालन कौन करता है ?

उत्तर—जैन श्रमण करते हैं। वे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि से सर्वथा दूर रहते हैं। अपने आप भोजन आदि तो बनाते ही नहीं; अपने निमित्त बनाया हुआ भोजन आदि भी नहीं लेते। शुद्ध और प्रासुक भोजन-पानी आदि ही लेते हैं।

प्रश्न—यदि ऐसा भोजन-पानी न मिले तो ?

उत्तर—श्रमण समताभाव में रहते हैं। वे अग्लान भाव से उपवास कर लेते हैं। तिरस्कार-पुरस्कार, प्राप्ति-अप्राप्ति में भी उनकी समता भंग नहीं होती।

प्रश्न—बड़ी कठिन साधना है जैन साधुओं की ? अब आप यह बतावें कि जैनधर्म का सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण शास्त्र कौन-सा है ?

उत्तर—सभी शास्त्र महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन भगवती और प्रज्ञापना अधिक विशाल हैं।

राजा अमरसिंहजी ने और भी कई प्रश्न किये और अपने प्रश्नों का समाधान पाकर धन्य हो गये। गुरुदेव ने चन्दनबाला और अनाथी मुनि की कथा विस्तृत एवं रोचक ढंग से सुनाई। उसका भी राजा साहब पर बहुत प्रभाव पड़ा। राजा अमरसिंहजी ने भेंट देने का प्रयास किया तो आपने कह दिया—'हमारे लिए सबसे अच्छी भेंट यही है कि आप दया और उपकार के कार्य करिये।' राजा अमरसिंहजी ने दया विषयक पट्टा लिखा।

आपश्री मांडल पधारे तो वहाँ व्याख्यान से प्रभावित होकर लोगों ने मांस, मदिरा, तम्बाकू तथा झूठी गवाही देने का त्याग कर दिया।

कोशीथल पधारे तो वहाँ के ठाकुर साहब पद्मसिंहजी के सुपुत्र जुवानसिंहजी ने कितने ही त्याग किये और एक पट्टा दिया।

रायपुर पधारने पर आपकी प्रेरणा से एक जैन पाठशाला की स्थापना हुई। एक दिन व्याख्यान में एक विधवा स्त्री द्वारा भैरव के मन्दिर पर रखा हुआ नवजात शिशु लाया गया तो
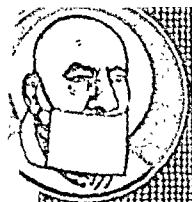
उस करुण दृश्य से द्रवित होकर आपने 'विधवा का कर्तव्य' विषय पर विशद और सारगर्भित प्रवचन दिया।

करेड़ा के ठाकुर साहब के आग्रह पर आपने राजमहल में व्याख्यान फरमाया। राजमाता ने रात्रिभोजन का त्याग किया और रानीजी ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। दास-दासियों ने भी मांस-मदिरा-त्याग आदि कई प्रकार के नियम लिए। ठाकुर साहब उम्मेदसिंहजी ने भी महीने में २२ दिन शिकार न खेलने का नियम लिया और तालावों से मछलियाँ मारने का निषेध कर दिया। उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी ली कि वर्ष में जितने भी बकरे राज्य में आएँगे सबको अभयदान दूँगा।

थाणा के ठाकुर साहब ने पक्षियों की शिकार का त्याग किया। गोदाजी के गाँव में रावत लोगों ने मदिरा-मांस का त्याग किया।

लसाणी के ठाकुर साहब खुमाणसिंहजी ने चैत्र शुक्ला १३ के दिन किसी भी प्राणी को न मारने, मादा जानवर को कभी भी न मारने और भाद्रपद मास में शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। साथ ही निरपराधी जीव को कभी भी न मारने का नियम लिया।

तदनन्तर आप देवगढ़ की ओर प्रस्थित हुए तो ठाकुर खुमाणसिंहजी अपने युवराज कुमार के साथ रियासत की सीमा तक पहुँचाने आये।

इसके बाद आपश्री घाणेराव (सादड़ी) पधारे और चातुर्मास करने लगे।

एक दिन मन्दिरमार्गी-सम्प्रदाय की आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी के सुयोग्य मुनीम श्री भगवानलालजी आपकी सेवा में उपस्थित हुए और गाँव के बाहर माता के मन्दिर में प्रतिवर्ष होने वाली पाड़ा (भैंस का बच्चा) की बलि बन्द करवाने की प्रार्थना की। स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी दोनों संघ के सज्जनों के प्रयत्न एवं महाराजश्री के प्रभाव से वह बलि बन्द हो गई।

इस चातुर्मास में तपस्वी मुनि मयाचन्दजी महाराज ने ३६ दिन की तपस्या की। पूर्णाहूति के दिन अनेक नगरों के सैकड़ों नर-नारियों ने दर्शन और प्रवचन का लाभ लिया एवं गरीबों को मिठाई और वस्त्र दान दिये गये।

पर्युषण के पावन दिवस में फतहपुर के ठाकुर साहब ने प्रवचन लाभ लिया। कई अजैन भाइयों ने उपवासादि किये और मांस-मदिरा तम्बाकू पीने आदि के त्याग किये।

एक दिन बूसी (मारवाड़) के ठाकुर साहब व्याख्यान सुनने आये। उन्होंने हरिण और पक्षियों का शिकार बिल्कुल न करने और महीने में १० दिन शिकार न करने का नियम लिया।

सादड़ी (मारवाड़) का श्री संघ सम्पन्न और धर्मप्रेमी है। चातुर्मास में गुरुदेव की सेवा का बहुत लाभ लिया एवं स्वधर्मी बन्धुओं की प्रेमपूर्वक सेवा की।

तीसवाँ चातुर्मास (सं० १९८२) : ब्यावर

घाणेराव (सादड़ी) का चातुर्मास पूर्ण कर आपश्री वाली, खीमेल आदि स्थानों पर विचरण करते हुए पाली पधारे। यहाँ जोधपुर से कैप्टेन केसरीसिंहजी देवड़ा, जागीरदार गलथनी (मारवाड़) और ब्रह्मचारी लाल जी, ठाकुर लालसिंहजी, कुँवर कुचामण, व जगदीश सिंह जी गहलोत आदि ने दर्शन प्रवचन का लाभ लिया।

कैप्टन साहब ने कहा—"सं० १९७३ में जोधपुर में कुचामण की हवेली में आपके उपदेश सुने थे, आपके प्रवचन रूप समुद्र में से अहिंसा के मोती लेकर जागीरी ठिकाणों और अन्य लोगों में दारु-मांस के त्याग का प्रचार कर रहा हूँ। वह अहिंसा के मोती लुटाने में मुझे बहुत सफलता

मिली है। अनेक स्थानों पर मांस-मदिरा, शिकार का व्यवहार बन्द हो चुका है प्रयत्न चालू है, ब्रह्मचारी लालजी महाराज भी इसी में लगे हैं।"

पालीसंघ इस समय दो गुटों में विभाजित था। आप पाली से विहार कर गाँव के बाहर रामस्नेही सम्प्रदाय के रामद्वारा में आ विराजे। वहाँ भी आपका व्याख्यान सुनने के लिए श्रोता समूह उमड़ पड़ा। आपने 'एकता' पर ऐसा ओजस्वी व्याख्यान दिया कि पालीसंघ में एकता स्थापित हो गई, मनोमालिन्य दूर हो गया। पाली श्रीसंघ में हर्ष की लहर दौड़ गई। आपको पुनः पाली नगर में आना पड़ा। संघ ने इस खुशी में प्रभावना बाँटी। ३५० बकरों को अभयदान दिया गया। गौओं के लिए घास का प्रबन्ध किया गया। इस एकता के शुभकार्य में पाली श्रीसंघ एवं विशेषकर श्री मिश्रीमलजी मुणोत का अथक सहयोग रहा। जैन-अजैन सभी लोगों पर आपके उपदेश का अचूक प्रभाव होता था।

बनी और मंगनी नाम की वेश्याओं ने आजीवन शीलव्रत पालने का नियम लिया और सिणगारी नाम की वेश्या ने एक पति-व्रत पालन करने का संकल्प किया।

पाली से विहार करके पोटिले पधारे। वहाँ से विहार करते समय ठाकुर अभयसिंहजी भी पहुँचाने आए। गुरुदेव जब पहले पधारे थे तब ठाकुर साहब ने श्रावण एवं भाद्रपद मास में मांस खाने तथा शिकार खेलने का त्याग किया था और अब आषाढ़ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक शिकार न खेलने का नियम लिया। ठाकुर साहब के छोटे भाई मगसिंह जी ने भी न स्वयं शिकार करने का और न किसी दूसरे को शिकार बताने का नियम लिया।

आपश्री ने वहाँ से सैंलावास की ओर विहार किया। मार्ग में शिकारपुर (मारवाड़) के ठाकुर साहब श्री नाहरसिंहजी की प्रार्थना पर प्रवचन दिया।

आपश्री जोधपुर पधारे। वहाँ की जनता आपसे परिचित थी। बड़े-बड़े अधिकारी भी प्रवचनों में आने लगे। आपका एक प्रवचन 'मनुष्य कर्तव्य' पर आहोर की हवेली में हुआ। उसमें लगभग ५ हजार श्रोता सम्मिलित थे। श्री ठाकुर उगरसिंहजी (सुपरिन्टेन्डेन्ट कोर्ट आफ वार्डस) श्री किशनसिंहजी (होम मेम्बर कौन्सिल स्टेट), श्री हंसराज जी (कोतवाल), श्री उदयराज जी (नायब कोतवाल) श्री मोतीलालजी (फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट), श्री रणजीतमल जी (वकील), श्री नवरत्नमलजी (भूतपूर्व मजिस्ट्रेट) श्री केवलचन्दजी (भूतपूर्व मजिस्ट्रेट) डा० अमृतलालजी, श्री सोनी प्रतापनारायणजी बार एटला, श्री काजी सैयद अली, श्री भभूतसिंहजी वकील आदि कई राज्य कर्मचारियों ने उपदेश का लाभ उठाया।

दि० १८ जनवरी १९२५ को 'ओसवाल यंगमेन्स सोसाइटी' के सभासदों के आग्रह पर आपने 'एकता' पर प्रेरक उपदेश फरमाया। सभा के सेक्रेटरी राय साहब ने किशनलाल जी बाफना ने निम्न नियम लिए—

(१) मैं अपने स्वार्थ अथवा किसी आकांक्षा से कभी झूठ नहीं बोलूंगा।

(२) साल भर में २४ दिनों के अतिरिक्त शीलव्रत पालूंगा।

(३) अपनी रक्षा के अलावा किसी से ईर्ष्या-द्वेषवश क्रोध नहीं करूंगा।

उनके सुपुत्र डा० श्री अमृतलालजी ने भी ताश-चौपड़ आदि में समय खराब न करने, वृद्ध विवाह की सम्मति न देने, ओसवाल भाइयों की चिकित्सा बिना फीस करने, महीने में बीस दिन शीलव्रत पालने आदि के नियम लिए।

ब्रह्मचारी लालजी महाराज (वैदिक) के प्रयत्न से आपने सार्वजनिक प्रवचन जोधपुर के सरदार मार्केट (घंटाघर) में अहिंसा के महत्व पर फरमाया जिसका श्रोताओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

जोधपुर से आप झालामंड़ होते हुए कांकेराव पधारे। वहाँ ब्राह्मणों की बारात आई हुई थी। उन्होंने महाराजश्री का नाम सुना तो अत्याग्रह करके व्याख्यान करवाया और बहुत प्रशंसा की।

कांकेराव से विहार कर विशालपुर विलाड़े होते हुए ब्यावर पधारे। वहाँ कोशीथल निवासी स्व० सेठ श्री जवाहरलालजी कोठारी के पुत्र प्यारचन्द, बख्तावरमल और उनकी माता कंकूबाई तीनों दीक्षार्थी थे। ब्यावर श्रीसंघ ने फाल्गुन शुक्ला ३ के शुभदिन बाहर गाँवों के श्री संघों को आमंत्रित करके दीक्षा उत्सव किया। दोनों भाई जैन दिवाकरजी महाराज के शिष्य बने एवं कंकूबाई श्री महासती धापूजी महाराज की शिष्या बनीं।

उस समय ब्यावर में दिगम्बर जैन महासभा एवं खंडेलवाल जैन महासभा के अधिवेशन हो रहे थे। उसमें रायबहादुर सेठ कल्याणमल जी इन्दौर, श्री सेठ भैया साहब मन्दसौर, श्री सेठ रिखबचन्द जी उज्जैन—ये सभी दिगम्बर बन्धु आये थे। जैसे ही उनको जैन दिवाकरजी के विराजमान होने की सूचना मिली, वे आपश्री के दर्शन करने आये। परन्तु महाराजश्री रायबहादुर श्री सेठ कुन्दनमलजी कोठारी के बंगले पर ठहरे हुए थे अतः गुरुदेव के दर्शन न हो सके।

आप ब्यावर से आनन्दपुर (कालू) पुष्कर होते हुए अजमेर पधारे। वहाँ एक सार्वजनिक प्रवचन हुआ। उसमें साहबजादा-अब्दुल वाहिद खाँ (सेशन जज), मुन्शी हरविलासजी (रिटायर्ड जज, मेम्बर लेजिस्लेटिव कौन्सिल), मुन्शी शिवचरणजी (जज) आदि राज्य कर्मचारी एवं बहुत बड़ी संख्या में जनता ने भाग लिया।

चातुर्मास के दिन निकट आ रहे थे। जोधपुर से चातुर्मास के लिए तार आ रहे थे। जयपुर के श्रावकगण भी विनती कर रहे थे। परन्तु विशेष लाभ की दृष्टि से ब्यावर श्रीसंघ को चातुर्मास की स्वीकृति मिली।

अजमेर से विहार करके आपश्री रघुनाथप्रसादजी वकील की कोठी पर ठहरे। वहीं दो व्याख्यान दिये। वहाँ से किशनगढ़ पधारे। फिर नसीराबाद, मसूदा होते हुए ब्यावर पधारे। रास्ते के गाँवों में अनेक राजपूतों ने शिकार, मदिरा और माँस आदि के त्याग किए।

कोटा संप्रदाय के पं० श्री रामकुमारजी महाराज अपने शिष्यों सहित जैन दिवाकरजी महाराज की सेवा में ब्यावर चातुर्मास में रहे। उनकी भावना बहुत वर्षों से गुरुदेव की सेवा में रहकर विशेष ज्ञान-ध्यान सीखने की थी। उन्होंने इस चातुर्मास में जैन दिवाकरजी महाराज से ज्ञान सीखा।

इस चातुर्मास में तपस्वी मुनि मयाचन्दजी महाराज ने ३७ दिन का उपवास गर्म पानी के आधार पर किया। भादवा सुदी १० पूर्णाहुति का दिन था। इस दिन 'तपस्या का महत्व' पर आपका प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। अनेक लोगों ने अनेक तरह के नियम लिए। तपस्याएँ भी खूब हुईं। अनेक बहिनों ने चार प्रकार के स्कन्ध (हरी वनस्पति, कंदमूल एवं रात्रिभोजनत्याग, कच्चे पानी का त्याग और शीलव्रत पालन) की प्रतिज्ञाएँ लीं। ब्यावर निवासी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट दानवीर सेठ कुन्दनमलजी ने आगरा के जैन अनाथाश्रम को अनाथ बालकों के लिए चार महीने का पालन-पोषण व्यय अपनी ओर से देने का वचन दिया। पारणे के दिन १०१ बकरों को
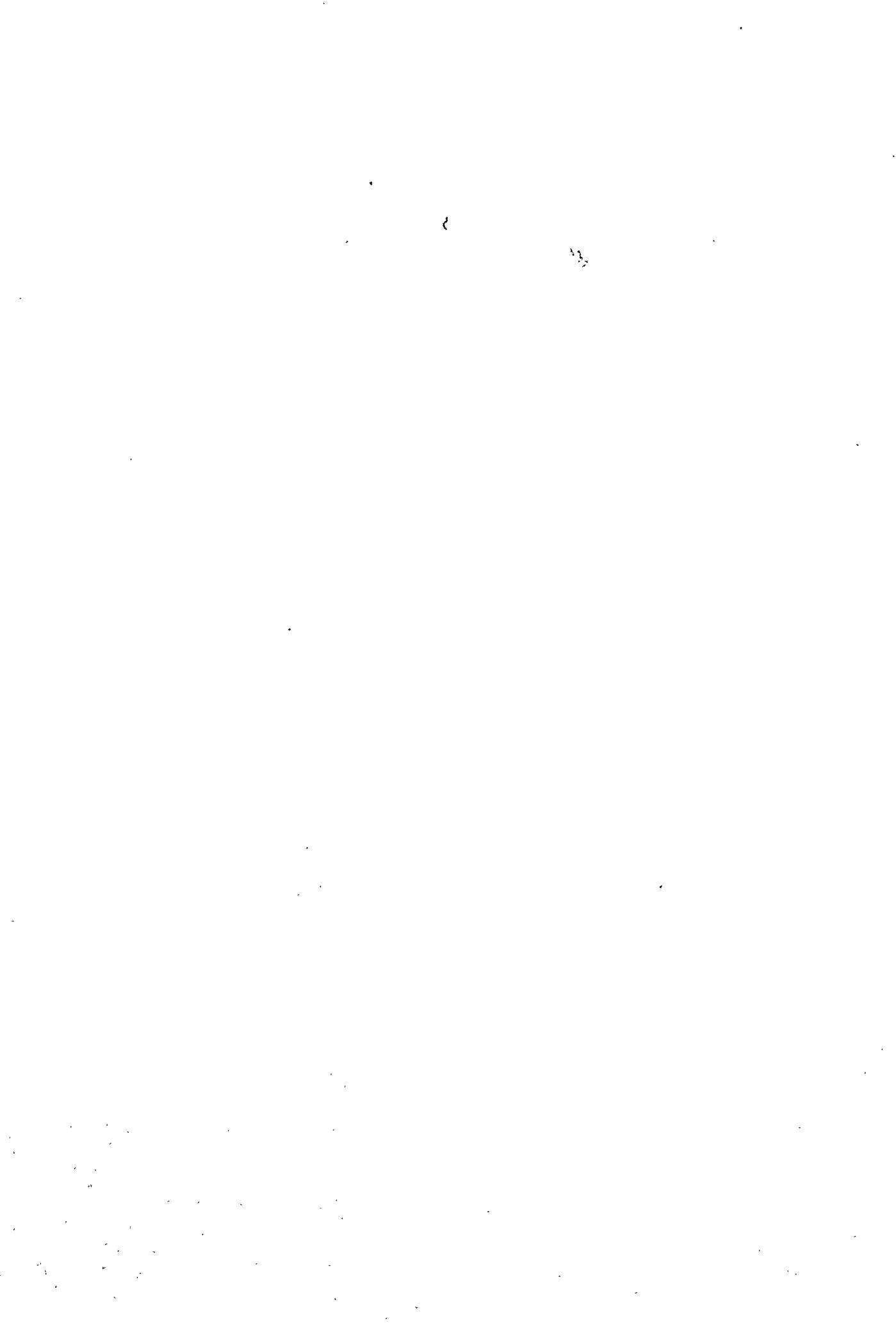
अभयदान मिला। दीन-दुखी अपाहिजों को भोजन दिया गया। १,२२,८०० रुपये की राशि श्री सेठ रायबहादुर कुन्दनमलजी ने दान में निकाली। इसका ब्याज भी शुभ कार्यों में लगाने का वचन दिया।

इस प्रकार चातुर्मास में काफी धर्म प्रभावना हुई।

इकत्तीसवाँ चातुर्मास (सं० १९८३) : उदयपुर

ब्यावर चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री बदनौर पधारे। वहाँ जोधा खटीक और जीवन खाँ मुसलमान ने जीवन पर्यन्त माँस न खाने का और जीव-हिंसा का त्याग किया।

आपश्री देलवाड़ा में थे तभी उदयपुर के श्रावक लोग वहाँ आ पहुँचे और उदयपुर क्षेत्र में पधारने का आग्रह करने लगे। इनकी प्रार्थना स्वीकार हुई। श्रावकगण प्रसन्न हो गए। आपके आगमन का समाचार उदयपुर में बिजली की भाँति फैल गया।

आपकी कीर्ति उदयपुरनरेश हिन्दूकुलसूर्य महाराणा फतेहसिंहजी के कानों तक जा पहुँची। उनके सुपुत्र श्री युवराजकुमार सर भूपालसिंहजी ने सुनी तो कुमार साहब ने डोडी वाले मेहताजी, श्री मदनसिंहजी कोठारी, श्री रंगलालजी, श्री कारूलालजी आदि पदाधिकारियों को महाराजश्री के पास भेजा। प्रवचन सुनाने के लिए महलों में पधारने की विनती की गई। प्रवचन **'सज्जन निवास'** उद्यान के समोद नामक महल में हुआ। इस प्रवचन में कई मुख्य अधिकारियों ने लाभ लिया। सदुपदेश से युवराजकुमार भूपालसिंहजी तथा अन्य सभी बहुत प्रभावित हुए। गुरुदेव श्री के उदयपुर पधारने और विहार करने के दिन जीव दया का पट्टा (सनद) लिख कर दिया।

उस दिन का उपदेश अलग पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुआ।

उसके बाद हिंदूकुलसूर्य श्री महाराणा फतेहसिंहजी की ओर से सन्देश लेकर श्री फतेहलालजी आये कि 'महाराणा साहब आपका उपदेश सुनना चाहते हैं।'

अपने चौदह शिष्यों सहित गुरुदेव 'शिवनिवास' नामक महल में पधारे। महाराणा ने भक्तिपूर्वक महाराजश्री का स्वागत किया। महाराणा साहब बोले—

"आपने यहाँ पधारने की बहुत कृपा की।"

महाराजश्री ने उत्तर दिया—

"यह तो हमारा काम है।"

इसके बाद आपने प्रवचन फरमाया। प्रवचन समाप्त होने पर महाराणाजी ने पूछा—

"महाराज साहब ! आप कितने दिन यहाँ और रुकेंगे ?"

"चार-पाँच दिन और रुक सकते हैं अथवा कल भी विहार कर सकते हैं। किन्तु जिस दिन जायेंगे उस दिन का अगता पलवाने की सनद युवराजकुमार ने लिख दी है।" महाराजश्री ने बताया।

महाराणाजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने उद्‌गार व्यक्त किए—

"आपके दर्शन करके मुझे बड़ी खुशी हुई। मुझे पहले से आपके आगमन की बात मालूम न थी।"

इसके बाद उदयपुर निवासियों ने चातुर्मास की प्रार्थना की।

विहार से एक दिन पहले सायंकाल के समय सलुम्बर के रावतजी ओनाड़सिंहजी दर्शनार्थ आए। 'आया हूँ तो कुछ भेंट देना ही चाहिए' कहकर उन्होंने निम्हर नामक पशु का शिकार न करने की प्रतिज्ञा की।
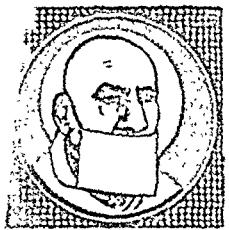
पारसोली के रावत लालसिंहजी ने भी व्याख्यान सुना।

विहार के एक दिन पहले उदयपुर में राज्य की ओर से इस प्रकार की घोषणा कराई गई—

"काले चौथमलजी महाराज विहार करेगा सो अगतो राखजो। नहीं राखेगा तो सरकार को कसूरवार होवेगा।"

उदयपुर से विहार कर आपश्री डबोक पधारे तो वहाँ करजाली के महाराज साहब लक्ष्मणसिंहजी आपके दर्शन करके धन्य हुए।

फिर अनेक गाँवों में होते हुए आप रतलाम पधारे। उदयपुर श्रीसंघ की चातुर्मास की विनती स्वीकार की।

वहाँ से सैलाना स्टेट पधारे तो वहाँ के सरकार दिलीपसिंहजी ने तीन व्याख्यान सुने और वहीं चातुर्मास करने की प्रार्थना की। लेकिन चातुर्मास उदयपुर में निश्चित हो चुका था इसलिए उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई।

पिपलोदा में आपके पधारने पर 'श्री जैन महावीर मंडल' और एक 'जैन पाठशाला' की स्थापना हुई। पिपलोदा दरबार ने भी व्याख्यान श्रवण किया।

जावरा, मन्दसौर आदि गाँवों में होते हुए आप बड़ी सादड़ी (मेवाड़) पधारे। महाराज साहब के सार्वजनिक प्रवचन हो रहे थे। भारी संख्या में हिन्दू-मुस्लिम-वोरा आदि बैठे थे। उसी समय राजराणा दुलहसिंहजी कार में बैठकर कहीं जा रहे थे। उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में लोगों को एक स्थान पर शांतभाव से बैठे देखा तो ड्राइवर से पूछा—

"यह लोग यहाँ क्यों बैठे हैं? यह आवाज किसकी आ रही है?"

"यह जैन दिवाकरजी श्री चौथमलजी महाराज की आवाज है। उनका प्रवचन जनता सुन रही है।"—ड्राइवर ने बताया।

राजराणा साहब ने तुरन्त कार पीछे मुड़वाई और सभा स्थान पर लोगों के समूह के बीच प्रवचन सुनने बैठ गए। अचानक अपने बीच में राजराणा को देखकर लोग विस्मित रह गए।

राजराणा ने महलों में भी आपका व्याख्यान करवाया और अभयदान का पट्टा दिया। उनके परिवारी-जनों, सगे-सम्बन्धियों एवं कर्मचारी, छड़ीदार, हजूरिए आदि ने भी बहुत से त्याग किये।

राजराणा दुलहसिंहजी आपके प्रवचनों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने टैक्स देकर मांस बेचने वाले कसाई को भी दुकान खोलने की भी आज्ञा न दी।

लूणदे के रावतजी जवानसिंहजी और उनके सुपुत्र ने आपके प्रवचन से प्रभावित होकर अभयदान का पट्टा दिया।

कानोड़ में वहाँ के रावतजी केशरीसिंहजी ने आपका उपदेश सुनकर अभयदान का पट्टा दिया।

भिण्डर के महाराज साहब भूपालसिंहजी ने तीन प्रवचन सुने और अभयदान का पट्टा दिया। अन्य सरदारों एवं प्रजाजनों ने भी बहुत से त्याग किए।

बम्बोरे के रावत मोड़सिंहजी ने आपकी सेवा में अभयदान का पट्टा दिया। इनके सरदारों एवं प्रजाजनों (लगभग १७ लोगों) ने अनेक नियम लिए।

कुराबड़ के रावत बलवन्तसिंहजी और बाठरड़े के रावत दिलीपसिंहजी ने प्रवचनों से
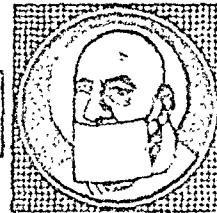
प्रभावित होकर अभयदान के पट्टे दिए। २९ सरदारों और प्रजाजनों ने मद्य, मांस, परस्त्री, शिकार आदि के त्याग किए।

फिर आप अनेक ग्रामों को पावन करते हुए आहिड़ पधारे। उदयपुर नरेश ने घोषणा करा दी कि 'कल मुनिश्री चौथमलजी महाराज पधारेंगे। इसलिए सभी लोग अगता रखें।'

इस घोषणा को सुनते ही उदयपुर में नव जागृति का संचार हो गया। आषाढ़ सुदी ६ के दिन आपके स्वागतार्थ हजारों नर-नारी एकत्र होकर महाराजश्री को उत्साह और हर्ष प्रकट करते हुए समारोहपूर्वक नगर में लाए।

आषाढ़ सुदी ७ के प्रातःकाल ही आपके सार्वजनिक प्रवचनों का प्रारम्भ हो गया। बनेड़ा राजा साहब की हवेली में सभी जाति और धर्म के लोग प्रवचन सुनते थे।

अँग्रेज अधिकारी के नौकर का सुधार

एक दिन एक अँग्रेज अफसर का नौकर शाक-भाजी लेने बाजार जा रहा था। हवेली में भीड़ को जाते देखा तो रुक गया। वह भी भीड़ के साथ हवेली में पहुँचा और आपका प्रवचन सुनने में तल्लीन हो गया। उसे प्रवचन में बड़ा आनन्द आया। अब वह प्रतिदिन व्याख्यान सुनने लगा। प्रवचनों का उस पर प्रभाव भी हुआ। उसकी सभी बुरी आदतें छूट गईं। अपने नौकर के इस परिवर्तन से वह अँग्रेज अफसर चकित रह गया। उसने इस परिवर्तन का कारण नौकर से पूछा तो नौकर ने बताया—

"यह सब जैन मुनि श्री चौथमलजी महाराज की वाणी का प्रताप है। आजकल मैं उनका (लेक्चर) प्रवचन रोज सुनता हूँ।"

अँग्रेज अफसर का हृदय आपश्री के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

श्रावण वदी ३ का दिन था। गुरुदेव दशहरे मैदान की तरफ पधार रहे थे। वह अँग्रेज अफसर भी घूमने आया था। कृतज्ञता प्रगट करते हुए बोला—

"मेरा नौकर पहले बहुत बदमाश था। आपकी प्रीचिंग्स (सदुपदेश) को सुनकर बिल्कुल नेक बन गया है। मैं आपका बहुत एहसानमन्द हूँ। थैंक यू सर!"

उस अँग्रेज अफसर का नाम था—सी० जी० चैनेविक्स ट्रेंच, आई० सी० एस०, सेटिलमेण्ट आफीसर तथा रेवेन्यू कमिश्नर।

गुरुदेव के वचनों के अद्भुत हितकारी प्रभाव को देखकर सभी जन दंग रह गये। कुछ दिन बाद मि० चैनेविक्स ट्रेंच का एक पत्र गुरुदेवश्री की सेवा में आया, जिसमें उन्होंने गुरुदेव की प्रवचन शैली की प्रशंसा करते हुए दीर्घायुष्य की कामना की थी।

पत्र इस प्रकार था—

Udaipur, 12-10-1926

I have heard much good of Chothmalji Maharaj and believe him to be an influence for good lectures wherever he goes. His preachings seem to exercise much impression on young and old. I trust he will long be spared to carry on his beneficient work.

(Sd.) C. G. Chenwiks Trench,
I. C. S.
Settlement Officer and Revenue Commissioner,
Mewar.

श्रावण सुदी २ को तपस्वी श्री मोतीलालजी महाराज की ३३ दिन की तपस्या का पूर्णाहुति का दिन था। उस दिन दया, पौषध आदि धार्मिक कार्य खूब हुए, अगता पलवाया गया। पारणे के दिन ४५० बकरों को अभयदान मिला। ३५० गरीबों को मिष्ठान खिलाया गया।

एक दिन भगवानपुरा के रावत सुजानसिंहजी आपके दर्शनार्थ आये।

भाद्रपद शुक्ला ९ को तपस्वी श्री छोटेलालजी महाराज के ५४ उपवास के पारणे का दिन था। जैन दिवाकरजी महाराज, तपस्वीजी महाराज एवं अन्य मुनिगण पारणा लेने को स्थान से बाहर पधार रहे थे कि महाराणा साहब की ओर से शाह रत्नसिंहजी और यशवन्तसिंहजी मुनिश्री को बोले कि 'आप राजमहलों में गोचरी हेतु पधारें। महाराणा साहब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।' आप, तपस्वीजी एवं चार सौ मनुष्यों के साथ शिवनिवास महल में पधारे। स्वयं महाराणा साहब ने स्वागत करते हुए कस्तूर-गर्म दूध एवं श्री एकलिंगजी का महाप्रसाद बहराया। आग्रह-भक्ति पूर्वक बहराने के बाद महाराणा साहब ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट की।

उस दिन गुरुदेव ४ बजे स्वस्थान पर पधारे। अनेक जागीरदार, ठाकुर एवं अन्य-अन्य घरों में जाने से समय लग गया। बहुत तरह के त्याग-प्रत्याख्यान हुए। ७०० बकरों को अभयदान मिला। गरीबों को मिष्ठान खिलाया गया। आगरा अनाथालय के अनाथ बच्चों के लिए सैंकड़ों रुपयों की सहायता दी गई।

गुरुदेव के पास इस चातुर्मास में अनेक जागीरदार, राजकुमार बराबर प्रवचन सुनने और शंका समाधान करने आया ही करते थे।

महाराणा साहब के भतीजे, करजाली महाराज श्री चतरसिंहजी, जगतसिंहजी, अभयसिह जी आदि, एवं बनेड़ा राजकुमार श्री प्रतापसिंहजी, करजाली राजकुमार जगतसिंहजी धार्मिक वार्तालाप करने आये।

बनेड़ा, बदनोर, मैंगा, भदेसर, देलवाड़ा आदि महाराणा साहब के सोलह और बत्तीस उमरावों और अन्य सरदारों ने एक ही समय नहीं, अनेक बार व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया और अपने-अपने गाँवों में पधारने की प्रार्थना की।

ब्यावर से सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी सपरिवार और श्री जैन वीर मण्डल के सदस्यगण मुनिश्री के दर्शनार्थ आए। सेठ कुन्दनमलजी ने 'श्री जैन महावीर मण्डल उदयपुर' को फर्नीचर के लिए ३५० रुपये दिये, 'श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम' को ५२०० रुपये का मकान खरीद कर दिया और 'आगरा अनाथालय' के बालकों के भोजन के लिए ३००० रुपये का दान दिया। सेठजी उदार थे, उन्होंने परोपकार के बहुत से काम किये।

आश्विन शुक्ला ९ के दिन आपश्री गोचरी हेतु गणेशघाटी गये। हरिसिंह जी ने अपना घर पवित्र करने की प्रार्थना की थी। वहाँ किसी तरह आपश्री को ज्ञात हो गया कि इस हवेली में प्रति वर्ष दशहरे के दिन बकरे की बलि दी जाती है। आपका हृदय दयार्द्र हो उठा। आपने हरिसिंहजी से कहा—

"मैं यहाँ आया हूँ तो आप मुझे कुछ भेंट दीजिए और मेरी भेंट यही है कि प्रतिवर्ष दशहरे के दिन होने वाली बकरे की बलि बन्द कर दी जाए।"

हरिसिंहजी ने बकरे को अभयदान देने की प्रतिज्ञा की।

उदयपुर की धानमण्डी में भी आप पधारे। लाधुवास की हवेली के सामने विशाल चौक में व्याख्यान होने लगे।

महाराणा फतेहसिंहजी, युवराज भोपालसिंहजी ने चातुर्मास में कई व्याख्यान श्रवण किये। महावीर जयन्ती एवं पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगते पलवाने और अभयदान के पट्टे लिखकर दिये।

पुण्य-पाप का वर्णन सुनकर महाराणा साहब ने ६ पुण्यों और १८ पापों के नाम लिखवाकर मँगवाये एवं उनको पास में रखा तथा अपना जीवन बदल लिया।

महाराणा साहब और युवराजकुमार ने आपसे उदयपुर फिर पधारने की कृपा करने की भावभरी विनती की।

एक दिन सूर्यगवाक्ष महल में मुनिश्री को आमन्त्रित किया। भक्तिपूर्वक वस्त्र वहराने की इच्छा प्रगट की। महाराणा साहब के पास रहने वालों ने कहा—'आपके लिए नहीं मँगाया है। वस्त्र भण्डार में तो एक लाख रुपये से अधिक के वस्त्र रहते ही हैं।' यह सुनने के बाद आपश्री ने अल्प वस्त्र लिया।

उदयपुर के उपनगरों में भी विहार हुआ। वहाँ भी अनेक रावजी तथा जागीरदारों ने प्रवचन लाभ लिया।

श्री जीवनसिंहजी मेहता के सुपुत्र श्री तेजसिंहजी ने जीवदया आदि के कार्यों में बहुत सहयोग दिया।

बत्तीसवाँ चातुर्मास (वि० सं० १९८४) : जोधपुर

उदयपुर चातुर्मास पूर्ण करके आप बोदला होते हुए माणपुर (मारवाड़) पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्री पृथ्वीसिंहजी ने आजन्म प्रत्येक एकादशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन शिकार न करने का नियम लिया। वरकाणा पधारे तो वहाँ के ठाकुर साहब ने एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या और सोमवार के दिन शिकार न खेलने की, पार्श्वनाथ जयन्ती के अवसर पर होने वाले मेले में जीवहिंसा न स्वयं करने और न होने देने की और प्रतिवर्ष ५ बकरों को अभय देने की प्रतिज्ञा की।

इसी प्रकार की प्रतिज्ञाएँ मोखमपुर के ठाकुर साहब श्री हमीरसिंह जी, भीखाड़े के कुमार साहब श्री सरदारसिंहजी, फतेहपुर के ठाकुर साहब कल्याणसिंहजी आदि शासकों ने लीं।

कोट के ठाकुर साहब धोंकलसिंहजी और कोरड़ी के ठाकुर साहब फत्तेसिंहजी ने परस्त्री-त्याग, पौष बदि १० तथा चैत सुदि १३ को शिकार-मांसभक्षण आदि का त्याग, भादवा मास में शिकार त्याग, प्रतिवर्ष दो बकरों को अभयदान देना आदि प्रतिज्ञाएँ लीं। भारोड़ी के ठाकुर साहब श्री अमरसिंहजी और यशवन्तसिंहजी ने जीवनपर्यन्त जीवहिंसा न करने और मांस-मदिरा का सेवन न करने का नियम लिया।

पलाणा में माहेश्वरी बन्धुओं ने बहुत लाभ लिया। अब्दुल अली बोहरा ने ईद के सिवाय जीवहिंसा न करने का नियम लिया और रहमानबख्श मुसलमान ने जीवन भर जीवहिंसा करने का त्याग किया।

गोठाण्डा के रावत साहब श्री मानसिंहजी सन्ध्या समय आपके दर्शनार्थ आये। अगले दिन प्रवचन सुना। प्रवचन समाप्त हुआ। जिस चौकी पर आपश्री बैठे हुए थे, उसे उठाया गया तो नीचे रुपये पड़े मिले। एक साधु ने कहा—'रावतजी ने रखे होंगे।'

रावतजी गुरुदेव के सामने आए तब आपने गम्भीर स्वर में कहा—

"रावतजी! जैन साधु को रुपयों की भेंट नहीं दी जाती। यदि कुछ देना ही चाहते हो

तो शराब छोड़ दो। शराब के कारण ही आपकी तीन पीढ़ियाँ जवान आयु में ही काल का ग्रास बन गई हैं।"

रावतजी ने पक्का मन करके आजीवन परस्त्रीगमन एवं शराब का त्याग कर दिया। वे दीर्घायु तक सुखी और स्वस्थ जीवन बिताते रहे।

कोठारिया के बाद अनेक गाँवों जैसे आमेट, सरदारगढ़, लसाणी, ताल आदि के रावत जी एवं ठाकुर साहब ने काफी लाभ लिया। ग्रन्थ के विस्तार भय से यहाँ संक्षिप्त वर्णन किया है, अधिक 'आदर्श मुनि' के गुजराती संस्करण में है।

सारण, सिरियारी होते हुए सोजत पधारे। वहाँ से पाली पधारे। पाली में ५ खटीकों ने जीवहिंसा का त्याग किया।

महाराजश्री जोधपुर पधारने वाले थे परन्तु महामन्दिर से महाराज गुमाननाथजी ने महामन्दिर पधारने की प्रार्थना की। वहाँ व्याख्यान सुनकर उन्होंने दो प्रतिज्ञाएँ कीं—

(१) जीवनपर्यन्त शिकार नहीं करेंगे और इस पाप-कार्य के लिए किसी को इशारा भी नहीं करेंगे।

(२) महामन्दिर की सीमा में कैसा भी पदाधिकारी हो, उसको शिकार नहीं करने दिया जायेगा।

जोधपुर में चातुर्मास प्रारम्भ हो गया। प्रवचनों की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

एक पंडितजी थे। वे विद्वान् तो थे पर स्वरों पर बहुत विश्वास करते थे। घर से चले तो सूर्य-स्वर चल रहा था। सोचा—'आज मुनिजी से ऐसा प्रश्न पूछूँगा कि उन्हें निरुत्तर कर दूँगा।' लेकिन जब तक महाराजश्री के समक्ष पहुँचे चन्द्र स्वर चलने लगा। बड़े असमंजस में पड़े। बार-बार स्वर देखने लगे। प्रश्न न पूछ सके। महाराजश्री ने हँसकर कहा—

"पंडितजी! जो पूछना है, निःसंकोच पूछिए। स्वर बदलने से ज्ञान लुप्त नहीं हो जाता है। आपका चन्द्रस्वर चल रहा है और मेरा सूर्यस्वर है तो इससे न प्रश्न में अन्तर पड़ेगा, न उत्तर में।"

पंडितजी पर घड़ों पानी पड़ गया। श्रद्धापूर्वक गुरुदेव के चरणों में सिर झुकाकर चले गए।

अहिंसा का प्रभाव : जलवृष्टि

जोधपुर चातुर्मास की ही एक घटना है। श्रावण का महीना था। आकाश में एक भी बादल नहीं, सावन सूखा जा रहा था। लोग चिन्तित हो गए। पानी नहीं बरसा तो अकाल पड़ेगा। जोधपुर स्टेट के प्राइम मिनिस्टर ने घोषणा कराई—"कल सभी नर-नारी अपने-अपने इष्टदेवों का स्मरण करते हुए चौबीस घंटे बिताएँ।"

प्रबुद्ध श्रावक श्री विलमचन्दजी भंडारी ने यह घोषणा सुनी तो आकर जैन दिवाकर जी महाराज को भी सुनाई और कहा—

"आप भी लोगों को २४ घंटे शांति-जाप की प्रेरणा दें।"

महाराजश्री ने फरमाया—

"जब तक कसाईखानों में हिंसा होती रहेगी, इष्टदेवों के स्मरण मात्र से कुछ नहीं होगा। कल कसाईखाने भी बन्द रहने चाहिए। खून भरे हाथों की प्रार्थना कैसे सुनी जायेगी?"
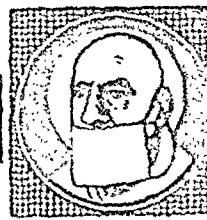
"यह कैसे हो सकेगा ? रात के नौ बजे हैं। अब मैं क्या कर सकूँगा ?"—भंडारी जी ने निराश स्वर में कहा—

"निराश न बनो। अच्छे काम में लग जाओ। सफलता मिलेगी।" आपने भंडारी जी को साहस बँधाया।

"गुरुदेव ! आपके मांगलिक पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मांगलिक सुनाइये अवश्य सफलता मिलेगी।" भंडारीजी ने आशा भरे शब्दों में अपने उद्गार व्यक्त किये।

गुरुदेव ने मांगलिक सुनाकर भंडारीजी से कहा—

"जाकर हमारी तरफ से उस घोषणा करने वाले अधिकारी से साफ-साफ कह दो कि हिंसा से मलिन हृदयों की पुकार इष्टदेवों तक कभी नहीं पहुँच सकती। मूक पशुओं की गरदनों पर छुरी चलाने वालों की प्रार्थना कभी स्वीकार नहीं होती।"

श्री विलमचन्दजी भंडारी ने साहस करके स्टेट के प्राइम मिनिस्टर से महाराजश्री का संदेश कह दिया। पहले तो प्राइम मिनिस्टर कहने लगा कि अब कुछ नहीं हो सकता। लेकिन जैसे ही उसकी लेडी (धर्मपत्नी) ने सुना तो उसका हृदय पसीज गया, साहब से बोली—

"एक साधुजी महाराज ने कहा है तो उनकी बात माननी ही चाहिए। आपके हाथ में कलम है। रात हो गई तो क्या हुआ, हुक्म तो आपका ही चलेगा।"

साहब को भी सद्बुद्धि जागी। उसने दूसरी घोषणा उसी समय कराई—

"जैन मुनि श्री चौथमलजी के सुझाव पर कल सभी कत्लखाने बन्द रहेंगे। इस आज्ञा का दृढ़तापूर्वक पालन होगा।"

हजारों पशुओं के प्राण बच गए।

[कुछ वर्षों बाद श्री विलमचन्द जी भंडारी ने यह बात स्वयं सुनाई थी जब हम लोग उनके बंगले पर ठहरे हुए थे।]

संयोग अथवा अहिंसा का प्रभाव ! दूसरे दिन ही जमकर जलवृष्टि हुई। मेघों ने शांति की धारा ही बहा दी। जनता और धरती दोनों ही तृप्त हुए। लोगों ने अहिंसा भगवती के जयकारों से धरा-गगन गूँजा दिये।

गुरुदेव ने श्रावण सुदि १४ के व्याख्यान में कहा कि तुम लोग पर्युषण पर्व में जीवदया का पालन सरकार द्वारा या अन्य लोगों से करवाते हो, किन्तु तुम स्वयं तो अपना धन्धा बन्द करते नहीं। तब जैनेतर लोग जीवदया पालने में क्यों नहीं आनाकानी करें ? इसलिए सबसे पहले जब तुम धन्धा बन्द रखोगे और फिर अन्य लोगों को बन्द रखने को कहोगे तब तुमको इसमें सफलता मिलेगी।

जैन दिवाकरजी की इस बात का समर्थन जोधपुर में विराजमान अन्य मुनिवरों ने भी अपने-अपने व्याख्यानों में किया।

इन व्याख्यानों और गुरुदेव की वाणी से प्रेरित होकर ओसवाल भाइयों ने मिलकर लिखित नियम बना दिया कि—

'पर्युषण के दिनों में ८ दिन या संवत्सरी अलग-अलग हो तो ९ दिन किसी भी प्रकार का व्यापार नहीं करना। कोई कदाचित् इस नियम का भंग करेगा तो उसको २१ रुपया दण्ड दिया जायगा जो जीवदया खाते में जमा पड़ेगा।'

यह छपी हुई सूचना सोजत पहुँचने पर वहाँ के सज्जनों ने भी इसका अनुकरण किया। अपने गाँव में पर्युषण पर्व के ९ दिनों के लिए ऐसा ही नियम बना दिया।
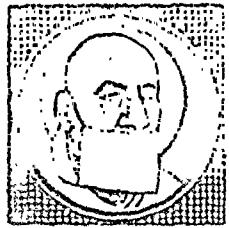
जोधपुर की जैन जनता जब इस कार्य में सफल हुई तब उसके पत्र-व्यवहार से दरबार ने पूरे राज्य के कोने-कोने में भादवा सुदि चौथ और पंचमी को जीवदया पालने का हुक्म जारी कर दिया। जैनियों को पर्युषण में दफ्तरों से सवेतन अवकाश भी दिया। इसके लिए जैन कान्फ्रेन्स की तरफ से धन्यवाद का तार भी दिया गया।

जोधपुर में ओसवालों के हजारों घर हैं। भारत में दो-तीन नगर ही ऐसे हैं जहाँ हजारों की संख्या में ओसवाल रहते हैं। उसमें भी ओसवालों में स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, तेरापंथी और वैष्णव आदि अनेक सम्प्रदाय हैं। फिर भी यह निर्णय लिया गया; यह स्पष्ट ही थी जैन दिवाकरजी महाराज के त्यागपूर्ण जीवन का प्रभाव है।

उस समय जोधपुर में अनेक संत और सतियाँ विराजमान थे। जोधपुर में उस समय ६ जगह व्याख्यान होते थे। जैन दिवाकर जी महाराज का व्याख्यान सभी लोग सुनना चाहते थे। परन्तु अपने सम्प्रदाय के गुरु महाराज का व्याख्यान सुनकर फिर वे लोग जैन दिवाकर जी महाराज का व्याख्यान सुनने आते थे। इससे गुरुदेव का व्याख्यान बहुत देर तक चलता था। ग्यारह-साढ़े ग्यारह बज जाते थे। उपस्थिति भी बहुत होती थी।

'कन्या विक्रय निषेध' विषय पर व्याख्यान सुनकर कन्या विक्रय नहीं करना और करने वाले के यहाँ भोजन भी नहीं करना—ऐसा नियम बहुत से लोगों ने लिया।

'विद्यार्थी कर्तव्य' पर जो व्याख्यान हुआ उसका और महिलाश्रम में व्याख्यान हुआ उसका बहुत प्रभाव पड़ा। महिलाश्रम के लिए ५००० रुपये के दान—वचन वहीं मिल गए।

भादवा बदी ६ को जोधपुर के तत्कालीन नरेश उम्मेदसिंह जी के दादा फतेहसिंहजी स्वयं महाराजश्री के दर्शनार्थ आये और श्रद्धापूर्वक चरणों में सिर झुकाया।

इस चातुर्मास में ५२ मोची परिवारों ने आजीवन मांस-मदिरा का त्याग कर दिया। जैन-धर्म स्वीकार किया, नवकार मंत्र, सामायिक सीखने लगे।

तेतीसवाँ चातुर्मास (सं० १९८५) : रतलाम

जोधपुर से विहार कर आपश्री सोजतिया गेट के बाहर ठहरे। ठीक सोजतिया गेट के सामने मुनिश्री के व्याख्यान होते थे। यहाँ माली लोगों ने काफी भक्ति की।

वहाँ से कई गाँवों में विहार करते हुए बडलू (भोपालगढ़) पधारे। वहाँ 'जैन रत्न पाठशाला' महाराज साहब के उपदेश से चालू हुई। जो आज 'जैन रत्न विद्यालय' के रूप में है एवं वहाँ एक बोर्डिंग हाउस भी चल रहा है।

नागौर में सार्वजनिक व्याख्यान हुए; फिर बीकानेर पधारे। बीकानेर में करीब एक महीने रहे। रांगडी चौक में भी व्याख्यान हुआ।

स्थानकवासी मुनियों का सार्वजनिक प्रवचन यह पहला ही था। बीकानेर नरेश के भाई कर्नल श्री भेरूँसिंह जी (बीकानेर) के साला श्री रामसिंहजी, बीकानेर के राजकुमार शार्दूलसिंहजी आदि ने भी लाभ लिया। बीकानेर से विहार कर कुचेरा होते हुए मेड़ता पधारे।

मेड़ता में आपने 'पापों से मुक्त कैसे हों?' विषय पर सार्वजनिक प्रवचन दिया। श्रोता समूह में मुस्लिम भाई भी थे। पैगम्बर साहब की बात कहने पर मुसलमानों की आँखों से आँसू बहने लगे। एक मुसलमान भाई तो बहुत जोर से रोने लगा। मुसलमानों पर जिनका ऐसा प्रभाव था तो अन्य जनों का क्या कहना! उन पर कितना प्रभाव था इसकी तो कल्पना ही की जा सकती है।

अनेक गाँवों में विचरण करते हुए आपश्री बदनौर पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब भूपालसिंहजी ने आपके प्रवचन सुने और जीवदया का पट्टा दिया। इसी प्रकार के पट्टे केरिया के महाराज श्री गुलाबसिंहजी, निम्बाहेड़ा के ठाकुर साहब, भगवानपुरा के कुमारसाहब आदि अनेक शासकों ने दिये।

इन सभी ने जीवदया के बहुत काम किये। 'आदर्श उपकार' नामक पुस्तक में सब बातें विस्तार पूर्वक लिखी हैं।

भगवानपुरा से मांडल पधारे। वहाँ ओसवालों के सिर्फ ५ घर थे, फिर भी व्याख्यान में करीब १५०० की जनसंख्या उपस्थित होती थी। महेश्वरियों के १२५ घरों ने कन्या विक्रय बन्द किया और कन्या विक्रय करने वालों के साथ भी कोई व्यवहार नहीं रखा जायगा—ऐसा प्रस्ताव भी जाति से पास किया।

रानीवास के सरदारों ने पक्षियों और हरिणों का शिकार न करने की प्रतिज्ञा की।

मेजा रावतजी श्री जयसिंहजी, हमीरगढ़ रावतजी मदनसिंहजी आदि ने भी व्याख्यान सुने और जीवदया के पट्टे दिए।

मेजा से विहार करते हुए गुरुदेवश्री हमीरगढ़ होकर चित्तोड़ पधारे। वहाँ के मजिस्ट्रेट यशवन्तसिंह जी आपकी वाणी के प्रभाव से परिचित थे। उन्होंने सोचा—'यदि महाराजश्री की वाणी इन बन्दियों को सुनवा दी जाये तो इनका हृदय-परिवर्तन हो जायगा। ये सुमार्ग पर लग जायेंगे।' उनने अपनी यह इच्छा आपश्री के समक्ष रखी। मजिस्ट्रेट की इच्छा स्वीकार करके आपने बन्दियों को उपदेश दिया। बन्दियों पर इच्छित प्रभाव हुआ। अपने दुष्कृत्यों पर उनको बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने भविष्य में सदा सन्मार्ग पर चलने का संकल्प लिया।

देवास में भी आपश्री ने इसी प्रकार कैदियों को उपदेश देकर त्याग करवाए थे।

यह था जैन दिवाकरजी का पतितोद्धारक रूप!

चित्तोड़ प्रवास के बाद आपश्री ओछड़ी पधारे। ओछड़ी में घटियावली के ठाकुर साहब श्री शम्भुसिंहजी, रोलाहेड़ा के ठाकुर साहब श्री सज्जनसिंहजी, पुढोली के ठाकुर साहब श्री प्रतापसिंह जी और ओछड़ी के ठाकुर साहब श्री भूपालसिंहजी चारों एकत्र हुए। पुढोली के ठाकुर साहब ने पार्श्वनाथ जयन्ती और महावीर जयन्ती के दिन अपने संपूर्ण राज्य में जीवहिंसा का निषेध करा दिया। नदी में से कोई मछलियाँ न पकड़ सके इसलिए शिलालेख लगवा दिया। घटियावली के ठाकुर साहब ने भी ऐसा ही शिलालेख तालाब के किनारे लगवाया। रोलाहेड़ा के ठाकुर साहब ने बैसाख, श्रावण, भादवा और कार्तिक चार महीने शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा ली। महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती तथा जैन दिवाकर जी महाराज के आने-जाने के दिन जीवदया पालने का नियम लिया। शराब पीना तो उन्होंने चार वर्ष पहले ही त्याग दिया था। ओछड़ी के ठाकुर साहब ने प्रत्येक अमावस्या तथा महावीर जयन्ती एवं पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा ली। इस प्रकार चारों ठाकुरों ने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार दृढ़ संकल्प पूर्वक प्रतिज्ञाएँ लीं।

ओछड़ी से निम्बाहेड़ा, मन्दसौर, जावरा, नामली आदि स्थानों पर होते हुए रतलाम पधारे।

रतलाम चातुर्मास में तपस्वी श्री मयाचन्द जी महाराज ने ३८ दिन की तपस्या की। तपस्या की पूर्णाहुति (श्रावण शुक्ला १०) के दिन महाराज श्री ने 'मनुष्य जीवन' पर मार्मिक प्रवचन फरमाया। उस दिन हलवाई, तेली, कुम्हार, कसाई आदि ने अपना कारोबार बन्द रखा।

कार्तिक सुदी ७ के दिन राय बहादुर दानवीर सेठ कुन्दनमलजी और उनके सुपुत्र लालचन्दजी परिवार सहित दर्शनार्थ आए। सेठजी ने सं० १६८२ में रतलाम श्री संघ को ५२०० रुपये का भवन खरीद कर जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति के लिए दिया था। उसका निरीक्षण करके ११०० रुपये व्यवस्था हेतु और दिये। आगरा अनाथालय को भी ११०० रुपये दिये तथा रतलाम की पाठशाला को ३२०० रुपये दिये।

चौंतीसवाँ चातुर्मास (सं० १६८६) : जलगाँव

रतलाम चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री पीपलखूटा पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब ने जीवदया संबंधी पट्टा लिखकर दिया।

उमरणा की रानी साहिबा ने आपका प्रवचन सुनने की इच्छा प्रकट की। प्रवचन सुनकर रानी साहिबा तथा अन्य स्त्रियों ने रात्रि-भोजन का त्याग किया। उस समय ठाकुर साहब सैलाना गए हुए थे। रानी साहिबा ने वचन दिया कि ठाकुर साहब के आते ही चैत सुदी १३ (महावीर जयन्ती) तथा पौष बदी १० (पार्श्वनाथ जयन्ती) के दिनों में जीवदया पलवाने का फरमान जारी कर दिया जायेगा।

उमरणा से आपश्री छत्रीबरमावर पधारे। वहाँ के ओसवाल समाज में पुराना वैमनस्य था, वह आपके प्रवचनों से पूर्णरूप से धुल गया।

अनेक गाँवों में विचरण करते हुए आप दभासी की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक भील ५ बकरों को कसाई को बेचने के लिए ले जाता हुआ मिला। श्रावकों ने उन बकरों को छुड़ाया और सरकारी मवेशीखाने (पिंजरापोल) में भेज दिया।

पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज का संदेश श्रीसंघ धूलिया द्वारा प्राप्त हुआ कि 'मुनिश्री से मिलने की इच्छा है।' गुरुदेव की भी बहुत दिनों से मिलने की इच्छा थी। मुनिश्री धुलिया पधारे। दोनों मुनिवरों का मिलन हार्दिक स्नेह भरा रहा।

पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज जैन श्रमणों में पहले श्रमण थे जिन्होंने संपूर्ण ३२ आगमों का हिन्दी भाषा में अनुवाद बहुत ही अल्प समय में पूर्ण किया।

वहाँ से आपश्री अमलनेर पधारे। वहाँ आपकी प्रेरणा से महावीर जयन्ती का उत्सव दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी—तीनों सम्प्रदायों ने मिलकर मनाया।

धरण गाँव में जैन दिवाकर जी महाराज का व्याख्यान मालीवाड़ा नामक स्थान पर सार्वजनिक रूप से हुआ। प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने मांस-मदिरा आदि दुर्व्यसन त्याग की प्रतिज्ञाएँ लीं।

भुसावल में आपका प्रवचन सुनने के लिए श्रोताओं की भीड़ तो होती ही थी, इस्लाम धर्म के पक्के अनुयायी मौलवी तथा ऑनरेरी मजिस्ट्रेट श्री खान बहादुर भी आते थे। प्रवचन से प्रभावित होकर उन्हें कहना पड़ा कि 'हम सचमुच भाग्यशाली हैं कि आप हमारे नगर में पधारे हैं। यदि कुछ दिन आप जैसे सन्तों का सम्पर्क लाभ मिल जाय तो हम लोगों का वैमनस्य मिट जाय और एकता स्थापित हो जाय।' मुस्लिम भाइयों का जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति इतना प्रेम था कि उन्होंने अपनी शवयात्रा का मार्ग बदल दिया जिससे कि आपके प्रवचन में बाधा न पड़े।

भुसावल से आप जलगाँव पधारे। इस चातुर्मास में तपस्वी श्री मयाचन्दजी महाराज ने ४० दिन की और तपस्वी श्री विजयराज जी महाराज ने ४४ दिन की तपस्याएँ गर्म जल के आधार पर कीं। भादवा सुदी ६ को पारणा था। इस दिन नगर के सभी कसाईखाने बन्द रहे।

इस चातुर्मास में आसपास के दर्शनार्थियों ने दर्शन एवं प्रवचन का बहुत लाभ लिया। धर्म-ध्यान भी बहुत हुआ।

पैंतीसवाँ चातुर्मास (सं० १९८७) : अहमदनगर

जलगाँव चातुर्मास के बाद आपश्री भुसावल पधारे। वहाँ सेठ पन्नालालजी की सुपुत्री का विवाह था। विवाहमंडप में व्याख्यान होते थे। वर और वधू के पिताओं की ओर से हजारों रुपयों का दान किया गया। पाठशाला स्थापित की गई।

वहाँ से विहार करके आपने खेड़ग्राम, पाचोरा, भड़गाँव, चालीसगाँव, मनमाड आदि स्थानों को पवित्र किया। सभी स्थानों पर लोगों ने मांसाहार त्याग की प्रतिज्ञाएँ लीं। मुसलमानों ने जुमे (शुक्रवार) के दिन हल नहीं चलाने की अनेक गाँवों में प्रतिज्ञा लीं। वाघली में चमड़े का प्रयोग न करने, बूढ़े पशुओं को न बेचने और तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का सेवन न करने की प्रतिज्ञाएँ अनेक व्यक्तियों द्वारा ली गईं। लोगों ने अपनी चिलमें तोड़ दीं। इसी प्रकार बहुत से गाँवों में कन्या विक्रय, चोरी, व्यभिचार, मदिरा-पान, मांस भक्षण, भाँग-गाँजा आदि का त्याग किया गया।

अहमदनगर के चातुर्मास में तपस्वी श्री विजयराजजी महाराज ने ४१ दिन की तपस्या की। पूर्णाहुति के दिन हिन्दू-मुस्लिम, माहेश्वरी, पारसी, आदि सभी भाइयों ने सहयोग दिया। आपश्री ने 'जीव दया' पर प्रवचन फरमाया। श्रोताओं में वहाँ के कसाइयों का मुखिया भी उपस्थित था। स्थानीय संघ ने जीवदया का चन्दा लिखना शुरू किया। लोग अपने-अपने नाम के आगे धनराशि लिखवा रहे थे। आपके प्रवचन का उस कसाई मुखिया के हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह भी उठ खड़ा हुआ और बोला—

"मेरी ओर से भी २१ रुपये लिख लीजिए।"

लोग उसकी तरफ देखने लगे तब उसने भरे गले से कहा—

"मैं यहाँ के कसाइयों का मुखिया हूँ। मेरी आप सब लोगों से एक प्रार्थना है कि आप लोग लोभ छोड़ें। अपने बेकार और बूढ़े पशुओं को कसाइयों के हाथ न बेचें। जब तक आप लोगों का लोभ नहीं छूटेगा तब तक जीव-हिंसा भी बन्द नहीं हो सकती। आप लोग मेरी बात पर आश्चर्य न करें। मुझमें यह परिवर्तन महाराज साहब के उपदेश से आया है।"

कसाई की बात सुनकर सभी दंग रह गए।

जैन दिवाकरजी का प्रवचन इतना प्रभावशाली होता था कि पाषाण-हृदयों से भी करुणा के स्रोत फूट पड़ते थे।

पाँच मोची परिवारों ने भी आजन्म मांस-मदिरा का त्याग किया।

'ओसवाल निराश्रित सहायता फंड में १५००० रुपये की राशि एकत्र हुई और आपश्री के प्रवचनों से मृत्यु-भोज की प्रथा बन्द हो गई।

अहमदनगर में 'जैन शिक्षा' संस्था की स्थापना हुई, ४० विद्यार्थी भी पढ़ने लगे।

सतारा श्रीसंघ सतारा के लिए विनती करने आया। मातृभाषा में शेष काल के लिए स्वीकृति दी।

छत्तीसवाँ चातुर्मास (सं० १९८८) : बम्बई

अहमदनगर चातुर्मास पूर्ण करके विहार करते पधारे। वहाँ के मुसलमानों ने अपने मोहल्ले

में व्याख्यान करवाया, जिससे उनकी महिलाएँ भी लाभ ले सकें। बहुत बड़ी संख्या में मुसलमान भाई व्याख्यान में सम्मिलित हुए। कइयों ने त्याग लिए। काजी ने आपकी बहुत प्रशंसा की।

वहाँ से कई स्थानों पर विचरते हुए आपश्री पिपल गाँव पधारे। वहाँ एक भाई के पास सैकड़ों ही बकरे थे। उसने कसाई को बकरे न बेचने की प्रतिज्ञा ली।

सतारा में आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने दुर्व्यसनों का त्याग किया। वकील एवं अग्रगण्य लोगों ने सार्वजनिक प्रवचन करवाए। कई शिक्षित लोगों ने मांस-मदिरा का त्याग किया। ईनामदार साहब ने आजीवन मांसाहार छोड़ा और भाऊराव पाटिल ने आजीवन कटु-भाषण न करने की प्रतिज्ञा ली।

आपका प्रवचन एक दिन हो रहा था। उसी समय एक व्यक्ति एक पिंजड़े में ५०-६० चूहे लेकर जा रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह इन चूहों को मारने ले जा रहा है। समझा-बुझाकर लोगों ने उन चूहों को अभयदान दिलवाया।

भाऊराव पाटिल ने आपका प्रवचन सर्वजातीय बोर्डिंग में कराया। सदुपदेश सुनकर विद्यार्थियों ने मांस-मदिरा का जीवन-भर के लिए त्याग किया।

पूना में आपने फर्ग्यूसन कालेज में प्राकृत विद्यार्थियों के लिए रायपसेणीय सूत्र के रहस्य पर प्रवचन दिया। प्राध्यापकों को कहना पड़ा कि 'आपने एक घंटे में जितना विशद विवेचन किया है, उतना हम भी नहीं कर सकते।'

चिंचवड़ में आपके प्रभावशाली प्रवचन से प्रभावित होकर एक मुसलमान भाई ने अपना प्रेम प्रदर्शित किया—'यदि ये पुण्यशाली महात्मा यहाँ चातुर्मास करें तो मैं सारा खर्च सहन करने को तैयार हूँ।'

चिंचवड़ से आप कांदावाड़ी पधारे। वहाँ तपस्वी श्री मयाचन्द जी महाराज २१ दिन की तथा तपस्वी श्री विजयराजजी महाराज ने १३ दिन की तपस्याएँ कीं। पूर्णाहुति के दिन १६ गायों को अभयदान दिया गया। सतारा, जालना, बम्बई संघ ने चातुर्मास की विनती की। कांदावाड़ी में महावीर जयन्ती बहुत धूमधाम से मनाई गई। अनेक जीवों को अभयदान मिला। बालिकाओं के संवाद हुए।

बम्बई-कांदावाड़ी से कोट, चिंचपोकली, दादर, शान्ताक्रुज, विलेपार्ले आदि उपनगरों में आप पधारे। इन सभी उपनगरों में आपके कई व्याख्यान हुए। विलेपार्ले संघ ने गांधी चौक में आपका सार्वजनिक प्रवचन रखा, जिसमें जैन-अजैन भाइयों ने बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होकर वाणी का लाभ लिया। आपके प्रवचनों की बम्बई नगर में धूम मच गई। घाटकोपर में आपने 'आत्मोन्नति' पर सार्वजनिक प्रवचन दिया। जैन-जैनेतर सभी भाइयों ने बड़ी संख्या में उपस्थित होकर आपकी अमृतवाणी का लाभ लिया। जैन प्रकाश में 'दरिद्रता का नग्न नृत्य' नामक अपील छपी थी। जिसमें गरीबों की सहायता के लिए आह्वान था। उस सन्दर्भ में गरीब भाइयों के लिए इस व्याख्यान में अच्छी राशि में चन्दा एकत्र हुआ।

चिंचपोकली के स्थानक में कच्छी वीसा ओसवाल स्थानकवासी जैन पाठशाला के विद्यार्थियों को आपश्री ने 'सत्य की महिमा' पर उपदेश फरमाया। आप पनवेल पधारे। वहाँ २२ दिन धर्मोद्योत करके पुनः आषाढ़ सुदी १ को चातुर्मास हेतु आप बम्बई (कांदावाड़ी) में पधारे। जनता ने बड़े उत्साहपूर्वक स्वागत किया। बम्बई श्रीसंघ ने स्थानक के पास ही खुले मैदान में सभामंडप

की व्यवस्था की। वहाँ सभी जातियों के भाई आते और प्रवचन लाभ लेते। लोग दूर-दूर उपनगरों से भी आते। पर्युषण के दिनों में तो त्याग तपस्याएँ खूब हुईं।

७ वर्ष के बाद बम्बई संघ की गुरुदेव के चातुर्मास कराने की इच्छा पूर्ण हुई थी। बम्बई के लोगों में भारी उत्साह था। तपस्वी श्री मयाचन्दजी महाराज ने अभिग्रह सहित ३४ दिन की तपस्या की। उस अवसर पर भी बहुत धर्मध्यान हुआ। बहुत से जीवों को अभयदान और हजारों केंकड़ों को जीवनदान मिला। जैन संघ ने एक निवेदन किया था—'बम्बई में रहने वाले प्रत्येक बहन-भाई विद्वान् मुनिश्री की अमृतवाणी का लाभ लेकर आत्मकल्याण करे।'

बम्बई के सुप्रसिद्ध जौहरी सूरजमल लल्लुभाई आपके दर्शनार्थ प्रतिदिन आते थे। एक दिन उनके साथ बौद्ध धर्म के अग्रगण्य विद्वान् नाइकर भी आए। आपसे धर्मचर्चा करके बहुत प्रभावित हुए। इसी प्रकार गुजरात में भिक्षुराज के नाम से प्रसिद्ध प्रखर देशभक्त माणिकलाल कोठारी ने भी आपका प्रवचन सुना और भूरि-भूरि प्रशंसा की। देशभक्त वीर नरीमान ने भी आपके दर्शन का लाभ लिया।

१५ नवम्बर, १९३१ को आपका प्रवचन लेमिंग्टन सिनेमा-गृह में हुआ—विषय था 'मानव कर्तव्य'। प्रवचन-समाप्ति पर प्रसिद्ध विद्वान् पं० लालन ने अपने उद्गार व्यक्त किये—'महाराजश्री का प्रवचन सुनकर मैं हर्ष से भर गया हूँ। आपश्री अपने आपको भगवान महावीर का चौकीदार मानते हैं लेकिन वास्तव में ये भगवान के वायसराय हैं।'

युवा जिज्ञासा : प्रौढ़ समाधान

एक दिन कुछ युवक कांदावाड़ी स्थानक में आये। उनका आगमन ही उनकी आध्यात्मिक विषयों की ओर रुचि का परिचायक था। नमन-वन्दन करके बैठ गए। वे कई बार आपका प्रवचन सुन चुके थे और प्रभावित हो चुके थे। उन युवकों ने जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा—

"महाराज साहब! आपकी वक्तृत्व शैली बड़ी प्रभावशालिनी है। सुनने वालों में आत्म-स्फुरणा जागृत होती है। लेकिन आप लोगों का अधिकांश समय तो पदयात्रा में ही चला जाता है। यदि जैन सन्त वाहनों का उपयोग करें तो बहुत लोगों का कल्याण हो सकता है, फिर आप लोग वाहनों का प्रयोग क्यों नहीं करते?"

महाराजश्री युवकों की बात सुनकर प्रसन्न मुद्रा में उन्हें मर्यादा का महत्व समझाते हुए बोले—

"यह जैन श्रमणों की मर्यादा है। मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। जिस प्रकार मर्यादा में तट-सीमा में बहती हुई नदी जन-जन का कल्याण करती है और मर्यादाहीन होकर भयंकर विनाश कर देती है, उसी प्रकार साधु-जीवन भी है। मर्यादा-सूत्र में बँधी पतंग आकाश में उड़ती है और सूत्र टूटते ही जमीन पर गिर जाती है, उसी प्रकार मर्यादाहीन साधु भी अपने उच्च स्थान पर नहीं रहता।

"वाहनों के प्रयोग न करने से अन्य भी लाभ हैं कि भारत गाँवों का देश है। वहाँ सब जगह वाहन नहीं पहुँच पाते। अतः पदयात्रा से ही अधिक जन-कल्याण संभव है। फिर तीव्रगति से चलने वाले वाहनों द्वारा हिंसा की बहुत सम्भावना रहती है। अनेक जीव पहियों के नीचे दबकर मर जाते हैं। गाय, भैंस आदि बड़े पशु भी टकरा जाते हैं, वायुकाय के जीवों की भी अत्यधिक हिंसा होती ही है। इसीलिए महाव्रती श्रमण वाहनों का प्रयोग नहीं करते। यह श्रमण संघ की मर्यादा और तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा है।"

युवकों का समाधान हो चुका था। उन्होंने सिर झुका कर कहा—

"समझ गए गुरुदेव ! आपका ज्ञान विशाल है और समझाने का तरीका अति उत्तम।"

सेंतीसवां चातुर्मास (सं० १९८९) : मनमाड

बम्बई चातुर्मास पूर्ण कर आपश्री नासिक की ओर प्रस्थित हुए। नासिक से कुछ ही दूर पहले सड़क पर एक घर के सामने एक भाई खड़ा था। उसको कम दिखाई देता था, सड़क पर चलने वाले लोगों से पूछ रहा था—'हमारे महाराज आने वाले हैं, तुमने देखे हैं क्या ?' थोड़ी दूर पर ही गुरुदेव अपने शिष्यों के साथ पधार रहे थे। उसने एक साधु जी से पूछा तो उन्होंने बताया-'हाँ, गुरुदेव पधार रहे हैं।' उसने वहीं से अपनी भाभी को आवाज देकर कहा—'महाराज साहब पधार रहे हैं, दर्शन करलो।' आवाज सुनकर उसकी भाभी बाहर आई। वह दरिद्रता की साक्षात मूर्ति थी। बदन के कपड़े कई स्थानों से सिले हुए थे। उसका सारा शरीर कंकाल-मात्र था। उसकी ऐसी दीन-दशा देख संतों के हृदय में दया उमड़ी। घर के अन्दर जाकर देखा तो भोजन-सामग्री का भी अभाव था। संतों का करुण हृदय द्रवित हो गया। नासिक पहुँचकर अहमदनगर के श्रीमान् ढोढीरामजी को उस भाई की करुण-दशा लिखाई और साधर्मी वात्सल्य की प्रेरणा दी। ढोढीरामजी ने अहमदनगर चातुर्मास में ही मृत्यु-भोज (मोसर) का त्याग करके ५००० रुपये ओसवाल निराश्रित सहायता के लिए निकाले थे। उन्होंने पत्र मिलते ही अपने मुनीम को भेज कर उस भाई के निर्वाह की समुचित व्यवस्था करवा दी। नासिक श्रीसंघ ने भी साधर्मी भाइयों की सहायता करना अपना पहला कर्तव्य माना। नासिक में आपके व्याख्यानों का अधिकारियों पर बहुत प्रभाव पड़ा। आपका व्याख्यान थिएटर हॉल में होता था। जैन पाठशाला भी प्रारम्भ हुई।

भगवान या बिम्ब

नासिक से मनमाड होते हुए बीजापुर पधारे। वहाँ पर स्थानकवासी तथा मन्दिरमार्गी जैन समाज में बहुत मनमुटाव चल रहा था। कुछ मन्दिरमार्गी भाई वितण्डावाद खड़ा करने के लिए आपके पास आए। उन्होंने प्रश्न किया—

"महाराज ! आप प्रतिमा को भगवान मानते हैं या.........?"

आप समझ गए कि ये लोग व्यर्थ का वितण्डावाद खड़ा करना चाहते हैं, अतः इन्हीं के मुख से न्याय होना चाहिए। शान्त गम्भीर स्वर में आपने प्रतिप्रश्न किया—

"आप लोग क्या मानते हैं ?"

"हम तो भगवान की प्रतिमा को भगवान ही मानते हैं।" उन लोगों ने तपाक् से उत्तर दिया।

"और मोक्ष स्थित भगवान को ?" महाराज श्री ने दूसरा प्रश्न किया।

"वे भी भगवान हैं।" उनका उत्तर था।

अब आपने सूत्र अपने हाथ में लिया—

"मोक्ष स्थित भगवान और उनकी प्रतिमा में आपकी दृष्टि से कोई अन्तर ही न रहा क्यों न ? यदि धातु-पत्थर की मूर्ति में अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य आदि आत्मिक गुणों का सद्भाव है तो हम भी उसे भगवान मान लेंगे और यदि ये गुण नहीं हैं तो प्रतिमा बिम्ब मात्र है और पुद्गल में आत्मिक-गुणों का होना असम्भव है। आप उसे भगवान मानें, हमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन आप सब लोग विवेक रखते ही हैं, इसलिए स्वयं ही सोच-विचार कर निर्णय कर
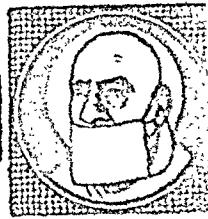
लीजिए।" वितंडावादी निरुत्तर हो गए। उनके हृदय ने स्वीकार कर लिया कि प्रतिमा भगवान नहीं, विम्ब मात्र है।

बीजापुर से आप औरंगाबाद पधारे। वहाँ भी सिनेमाहॉल में व्याख्यान होते थे। हिन्दू-मुस्लिम सभी लोग बड़ी संख्या में आते और प्रवचन लाभ लेते। कई त्याग प्रत्याख्यान हुए।

औरंगाबाद से आप जालना पधारे। वहाँ एक ऑइलमिल में आपका सार्वजनिक प्रवचन हुआ। यह स्थान शहर से लगभग एक किलोमीटर दूर था। वहाँ भी हजारों की संख्या में हिन्दू-मुस्लिम उपस्थित हुए। इस विशाल जन-समूह को देखकर लोग परस्पर कहने लगे कि—'पहले इतने लोग कभी भी व्याख्यान सुनने के लिए एकत्र नहीं हुए। ऐसे अपरिचित गाँव में इतनी बड़ी संख्या में लोगों का उपदेश सुनने के लिए आना गुरुदेव के पुण्य और त्याग का प्रभाव है।'

अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए आप मनमाड (महाराष्ट्र) पधारे। वर्षावास शुरू हो गया। धर्म की धारा बहने लगी।

चुड़ैल भागी

एक दिन प्रातःकाल आप बाहर भूमि से लौट रहे थे। एक संकरी गली में होकर आपके कदम स्थानक की ओर बढ़ रहे थे। गली के नुक्कड़ पर ही एक मकान था। इस मकान में एक जैनेतर परिवार रहता था। घर में काफी शोर-गुल हो रहा था। आपके कदम उसी की ओर मुड़ गए। शोर-गुल का कारण यह था कि उस घर की गृहस्वामिनी चुड़ैल के प्रकोप से काफी दिन से ग्रसित थी। इस बाधा के कारण वह दुर्बल भी बहुत हो गई थी। इस समय भी चुड़ैल उसे तंग कर रही थी। अनेक जन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने कराए गए, लेकिन चुड़ैल पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह अहंकार में भरकर बार-बार एक ही बात कहती थी—'इसने मल-मूत्र त्याग कर मेरा अपमान किया है, अब इसे साथ लेकर ही जाऊँगी।' लोग विवश थे और गृहस्वामी निरुपाय। चुड़ैल उत्पात करती थी और वे निरीह बने रहते थे।

महाराजश्री के चरण उस घर की ओर मुड़े तो चुड़ैल चीखने लगी—

"जाती हूँ, जाती हूँ। फिर कभी इधर को मुँह भी नहीं करूँगी।"

उपस्थित जन चकित होकर पूछने लगे—

"अब क्यों जाती है? अभी तक तो इस स्त्री को साथ ले जाने की रट लगाए हुई थी। "अब क्या विशेष बात हो गई?"

चुड़ैल का भयभीत स्वर निकला—

"किसी मन्त्र-यन्त्र का प्रभाव मुझ पर नहीं होता; लेकिन ये मुँहपत्ती वाले साधु जो इधर ही आ रहे हैं उनके सामने मैं पलभर भी नहीं टिक सकती। अरे कोई रोको उन्हें। यहाँ मत आने दो।"

अब लोग क्यों उसकी बात मानते! महाराज को क्यों रोकते! तुरन्त महाराज साहब को आदर सहित बुला लाये। अहिंसा के सामने हिंसा नहीं टिक सकती, प्रकाश के सामने अन्धकार भाग जाता है। घर में आपके चरण पड़ते ही चुड़ैल छूमन्तर हो गई। मुनि पर पड़ी महिला को आपने मंगल पाठ सुनाया। वह सचेत होकर उठ-बैठी। अस्त-व्यस्त वस्त्र ठीक करके गुरुदेव को वन्दन किया। सभी उपस्थित जनों ने श्रद्धा से नत-मस्तक होकर चरण स्पर्श किये।

चुड़ैल सदा को चली गई थी। गृहिणी स्वस्थ हो गई। पूरा परिवार आपके प्रवचनों में आने लगा।

बृहत्साधु-सम्मेलन

मनमाड़ के वर्षावास में बम्बई के स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के अग्रगण्य पदाधिकारी श्री वेलजी लखमशी नप्पू, दुर्लभजी भाई जौहरी आदि ने आपको अजमेर में होने वाले बृहत्साधु-सम्मेलन में पधारने का निमंत्रण दिया। उस पर आपने अपनी स्वीकृति दे दी। लेकिन इस सम्मेलन से पहले अपने सम्प्रदाय के साधुओं का सम्मेलन आवश्यक समझा गया। इस सम्मेलन का स्थान भीलवाड़ा निश्चित हुआ।

जैन दिवाकरजी महाराज मनमाड़ चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् धूलिया आदि स्थानों को पवित्र करते हुए भीलवाड़ा पधारे। अन्य सन्त पहले ही आ चुके थे। पूज्यश्री मन्नालालजी महाराज, भावी पूज्यश्री खूबचन्दजी महाराज भी उपस्थित थे। अजमेर सम्मेलन में भाग लेने वाले सन्तों का चुनाव हुआ। उनमें आप भी थे।

भीलवाड़े से अनेक नगरों में होते हुए आप ब्यावर पधारे। वहाँ सम्मेलन में भाग लेने के लिए पंजाब, काठियावाड़, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों से मुनिराज पधारे हुए थे। सभी के साथ आपका प्रेम वात्सल्य रहा। फिर आप अजमेर पधारे।

अजमेर के बृहत्साधु-सम्मेलन में आपने अपने सम्प्रदाय के प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया। सम्मेलन की प्रत्येक कार्यवाही में उचित राय देते रहे। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के दोनों सम्प्रदाय भी आपकी प्रेरणा से ही एक हुए। इस सम्मेलन में आपकी समन्वयकारी दृष्टि ही प्रमुख रही।

साधु-सम्मेलन समाप्त होने के बाद कान्फ्रेंस के खुले अधिवेशन में आपने जैन समाज में फैली कुरीतियों पर प्रहार किया। जैन समाज में जागृति लाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। अनमेल-विवाह, फिजूलखर्ची, दहेज आदि प्रथाओं से होने वाली हानियों पर प्रकाश डाला।

अड़तीसवां चातुर्मास (सं० १९९०) : ब्यावर

अजमेर से आप किशनगढ़ पधारे। तत्कालीन नरेश श्री यज्ञनारायणसिंह जी ने आपका प्रवचन सुना। प्रभावित होकर राज्य भर में वैसाख बदी ११ तथा चैत सुदी १३ को अगता पलवाने का वचन दिया। दरबार ने आहार और वस्त्र वहराने की भावना प्रकट की। सूर्यास्त का समय निकट होने से आहार तो नहीं लिया किन्तु दरबार की उत्कृष्ट भावना देखकर थोड़ा वस्त्र लिया।

यहाँ श्री जैन सागर पाठशाला चल रही थी। मुनिश्री ने छात्रों की परीक्षा ली। उसमें हिन्दू, मुसलमान, हरिजन आदि की छूआछूत रहित पढ़ाई और जैनधर्म के प्रति छात्रों का पूज्य भाव देख कर मुनिश्री ने प्रसन्नता प्रकट की।

अनेक गाँवों में विचरण करते हुए चातुर्मास के लिए ब्यावर पधारे। रायली कम्पाउण्ड में आपका चातुर्मास हुआ। तपस्वी श्री मयाचन्दजी महाराज ने यहाँ भी तपस्या की। अच्छा धर्मध्यान हुआ। सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी, सेठ कालूरामजी कोठारी, सेठ सरूपचन्दजी तलेसरा, श्री चाँदमलजी टोडरवाल, श्री छगनमलजी वस्तीमलजी, श्री चाँदमलजी कोठारी, सेठ अभयराज जी नाहर, श्री पूनमचन्द जी बावेल आदि ने धर्मध्यान का बहुत लाभ लिया।

पुण्यलाभ या मर्यादा-पालन

ब्यावर चातुर्मास की ही घटना है। एक दिन एक तेरापंथी श्रावक ने आपके पास आकर एक कुटिल प्रश्न किया—

"महाराज ! आप तो पुण्य का बहुत उपदेश देते हो। फिर अपने पात्र में से किसी विसंभोगी याचक को अन्न-जल आदि देकर पुण्यलाभ क्यों नहीं करते ?"

श्री जैनदिवाकरजी उस श्रावक की कुटिलता समझ गए। आपने उससे प्रतिप्रश्न किया—

"श्रावकजी ! पहले तो आप एक बात बताइये, यदि कोई साधु-साध्वी आपके आचार्य कालूगणी के दर्शन करे तो उसे पुण्य होगा या पाप ?"

"पुण्य ही होगा।"

"तो फिर बरसात के महीनों में विहार कर या वाहनों का प्रयोग करके वे अधिकाधिक और शीघ्रातिशीघ्र पुण्यलाभ क्यों नहीं करते ?"

"यह तो मर्यादा है।"

"क्या मर्यादा का महत्व पुण्यलाभ से अधिक है ?"

"हाँ महाराज ! मर्यादा सर्वोपरि है। उसका पालन अवश्य होना चाहिए। मर्यादा पर ही तो जिनशासन टिका हुआ है।"—श्रावक ने मर्यादा का महत्व स्वीकार कर लिया।

अब आपने उस श्रावक के मूल प्रश्न का उत्तर दिया—

"श्रावकजी ! आप स्वयं ही अपने प्रश्न का उत्तर दे चुके हैं। पुण्यलाभ से बढ़कर आपने मर्यादा को बताया है। भूखे को अन्न-जल देने से पुण्यलाभ तो होता है, लेकिन यह साधु-मर्यादा के विपरीत है।"

श्रावकजी निरुत्तर हो गए।

चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आप जैन गुरुकुल ब्यावर में पधारे। साथ में पंडित मुनि श्री मणिलालजी भी थे। गुरुदेव ने ब्रह्मचारियों को सारगर्भित उपदेश दिया। धर्मशास्त्र की परीक्षा ली और संतोष प्रगट किया।

जब आप बदनौर पधारे तो सरकारी स्कूल में आपके प्रवचन होने लगे। चौथे दिन वहाँ के ठाकुर साहब सुनने आए। महल में भी व्याख्यान देने की प्रार्थना की जिससे रानियाँ भी लाभान्वित हो सकें। महल में प्रवचन हुआ। आपके प्रवचन से प्रभावित होकर सदा से होने वाली पाड़ा (भैंस का बच्चा) की बलि को तुरन्त बन्द करवा दिया गया। ठाकुर साहब ने पुनः एक व्याख्यान सुना तथा अभयदान का पट्टा लिखकर दिया।

आप उदयपुर पधारे तो महाराणा ने अगता पलवाया, प्रवचन सुना और चातुर्मास वहीं करने की प्रार्थना की।

उन्तालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९१) : उदयपुर

सं० १९९१ का चातुर्मास उदयपुर में घंटाघर के निकट कनोड़ा नरेश की हवेली में हो रहा था। उदयपुर के महाराणा ने भी कई बार आपके प्रवचनों का लाभ उठाया। तपस्वी छोटेलालजी महाराज की तपस्या के पारणे के दिन सारे नगर में अगता पलवाया गया और सैकड़ों बकरों को अभयदान दिया।

हृदय-रोग का आध्यात्मिक उपचार

एक बार प्रवचन में अलवर निवासी डा० राधेश्याम जी भी उपस्थित थे। प्रवचन समाप्त होने पर भाव-भरे कंठ से कहने लगे—

"उपस्थित सज्जनो ! मैं ६ वर्ष से हृदय-रोग से पीड़ित था। स्वयं भी डाक्टर हूँ इसलिए चिकित्सा में कोई कमी न रखी। फिर भी कोई लाभ न हुआ। रात के ग्यारह बजे से दो बजे तक निश्चेष्ट पड़ा रहता था। अलवर महाराज ने भी बहुत-सी विदेशी दवाइयाँ मँगवाईं लेकिन सब बेकार। मरने का विचार किया लेकिन उसी रात ६ फरवरी, १९३४ की रात को मुझे स्वप्न में ऐसा लगा, जैसे कोई कह रहा था—'क्यों व्यर्थ ही इधर-उधर भटकता है ? कुछ नहीं होगा। जैन मुनि चौथमलजी महाराज की शरण में जा। बीमारी का नाम-निशान भी न रहेगा।' प्रातः होते ही मैंने महाराजश्री का पता पूछा और चित्तौड़गढ़ जा पहुँचा। दर्शनमात्र से ही मैं नीरोग हो गया और अब पूर्ण स्वस्थ हूँ। आप लोगों का सौभाग्य है जो बार-बार आपको महाराजश्री के दर्शन प्राप्त होते हैं।"

ऐसे ही दिव्य प्रभावों के लिए एक कवि ने कहा है—

कहने की जरूरत नहीं आना ही बहुत है।
इस दर पै तेरा शीश झुकाना ही बहुत है ॥

साहित्य-रचना कब ?

जैन दिवाकरजी महाराज की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे जितने कुशल वक्ता थे उतने ही सिद्धहस्त रचनाकार। गद्य-पद्य दोनों में उनकी समान गति थी। उदयपुर के श्रावकों को उनकी बहुमुखी प्रतिभा को देखकर बहुत आश्चर्य था। एक दिन वे पूछ ही बैठे—

"गुरुदेव ! दिनभर तो आप श्रद्धालु-भक्तों से घिरे रहते हैं, जन-जन के कल्याण के उपदेश फरमाते हैं, धार्मिक क्रियाएँ भी करते हैं। फिर आपको समय ही कब मिलता है, जो साहित्यसर्जना कर लेते हैं।"

गुरुदेव ने श्रद्धालु भक्तों की भावना को समझा। उत्सुकता शान्त करते हुए बोले—

"लोग श्रद्धा-भक्ति और स्नेह से प्रेरित होकर मेरे पास आते हैं, उन्हें निराश करना क्या उचित है ? श्रद्धालुओं की शंकाओं का उचित समाधान भी श्रमण-जीवन का एक अंग है। रही साहित्य-सर्जना की बात; सो मैं अपने आराम में कटौती कर लेता हूँ।"

"कटौती कब कर लेते हैं, गुरुदेव !"

"निद्रा कम लेता हूँ। रात्रि में भी चिन्तन में समय देता हूँ। जो विचार आते हैं उन्हें मस्तिष्क में केन्द्रित कर लेता हूँ और फिर दिन के किसी समय कागज पर उतार देता हूँ।"

जैन दिवाकर जी महाराज के समय के सदुपयोग को जानकर श्रद्धालु भाव विभोर हो गये।

एक दिन उदयपुर के महाराणा श्री भूपालसिंह जी शिकार खेलने जयसमुन्द गये। वहाँ एक बड़ा भारी साँभर दरबार के सम्मुख आया। पास वालों ने कहा—'शिकार कीजिए।' दरबार ने सांकेतिक स्थान पर साँभर के आने पर बन्दूक उठाई किन्तु तुरन्त ही बन्दूक रख दी और श्री गिरधारीलाल जी से बोले—'चौथमल जी महाराज को सूचित कर देना कि मैंने इस जीव को अभयदान दिया है।'

चालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९२) : कोटा

उदयपुर चातुर्मास पूर्ण कर आप मन्दसौर पधारे। वहाँ पूज्यश्री खूबचन्द जी महाराज के

पावन नेतृत्व में मंगलमय धार्मिक महोत्सव हुआ। इसमें सर्वश्री चौथमल जी महाराज, पण्डित श्री कस्तूरचन्द जी महाराज, पण्डित श्री प्यारचन्द जी महाराज, पण्डित श्री हजारीमल जी महाराज, बड़े श्री नाथूलाल जी महाराज, पण्डित श्री हीरालाल जी महाराज, मैं (श्री केवलमुनि जी महाराज) आदि अनेक सन्त एवं विदुषी महासती हगामकुँवर जी महाराज, श्री धापू जी महाराज आदि सतियाँ विराजमान थीं। सभी के समक्ष श्री चौथमल जी महाराज को चतुर्विध संघ ने 'जैन दिवाकर' की पदवी से अलंकृत किया। इस अलंकरण से समाज ने अपनी 'गुणिषु प्रमोदं' की भावना को ही व्यक्त किया। आप तो अपनी प्रवचन रश्मियों से वैसे भी दिवाकर के समान दीपित थे।

जैन दिवाकर जी महाराज सीतामऊ पधारे। सीतामऊ दरबार, राजकुमार और महारानियों ने प्रवचन सुने। वे बहुत प्रभावित हुए।

भाटखेड़ी में आप पधारे तो गाँववासियों ने मंगल-गीतों से आपका स्वागत किया। यहाँ के राव साहब श्री विजयसिंह जी स्वयं आपके स्वागतार्थ गाँव के बाहर तक आए। प्रभावित होकर एक प्रतिज्ञापत्र भेंट किया जिसमें महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगते पलवाने का वचन था।

२३ मई, १९३५ के दिन आपके चरण रायपुर (इन्दौर स्टेट) में पड़े। स्वागत के लिए वहाँ के रावजी आये। उन्होंने भी प्रवचनों से प्रभावित होकर जीवदया का पट्टा दिया।

आषाढ़ शुक्ला ५ को आप कुमाड़ी पधारे। कप्तान दौलतसिंह जी दोपहर को सेवा में उपस्थित हुए। प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने यथाशक्ति त्याग किये।

सं० १९९२ का चातुर्मास कोटा में हुआ। कोटा के यादघर (कोसवेट इंस्टीट्यूशन) में 'अहिंसा' पर आपका भाषण हुआ। इस समय कोटा नरेश हिम्मत बहादुरसिंह जी महाराज कुमार, मेजर जनरल ओंकारसिंह जी आदि अनेक प्रतिष्ठित-जन उपस्थित थे। कोटा नरेश १० मिनट के लिए सुनने आये और ५० मिनट तक मंत्र-मुग्ध होकर सुनते रहे। कोटा में चार मास तक धर्म-प्रभावना होती रही।

इकतालीसवाँ चातुर्मास (१९९३) : आगरा

सं० १९९२ का चातुर्मास कोटा में पूर्ण कर आप इन्द्रगढ़ पधारे। इन्द्रगढ़ के ब्राह्मण समाज में ४० वर्ष से फूट अपना डेरा जमाए हुए थी। नरेश ने फूट मिटाने का प्रयास किया तो ब्राह्मणों ने स्पष्ट जवाब दे दिया—'अन्नदाता ! इस बारे में आप कुछ भी न कहें।' निराश होकर इन्द्रगढ़ नरेश चुप हो गये। आपश्री वहाँ पधारे तो प्रवचन सुनने के लिए विशाल जनमेदिनी उमड़ पड़ी। ब्राह्मण समाज के दोनों विरोधी दलों के मुखिया भी आते थे। एक दिन आपने 'एकता' पर ऐसा ओजीला भाषण दिया कि दोनों दलों के मुखिया खड़े होकर बोले—'संघर्ष में तो हम बरबाद हो गये। अब तो एकता की इच्छा है।'

आपने दोनों मुखियाओं को अपने पास बुलाकर कहा—

"सच्ची एकता चाहते हो तो एक-दूसरे से हार्दिक क्षमा माँगकर अपने मन का कलुष बाहर निकाल दो और बोलो आज से हम एक है।"

दोनों ओर के मुखियाओं ने एक-दूसरे से क्षमा माँगी। उनके हृदय का कलुष मिट चुका था। ब्राह्मण समाज में एकता हो गई।

इस दृश्य से प्रभावित होकर राज्य के मन्त्री ने नरेश को बम्बई बधाई का तार भेजा—

हृदय-रोग का आध्यात्मिक उपचार

एक बार प्रवचन में अलवर निवासी डा० राधेश्याम जी भी उपस्थित थे। प्रवचन समाप्त होने पर भाव-भरे कंठ से कहने लगे—

"उपस्थित सज्जनो! मैं ९ वर्ष से हृदय-रोग से पीड़ित था। स्वयं भी डाक्टर हूँ इसलिए चिकित्सा में कोई कमी न रखी। फिर भी कोई लाभ न हुआ। रात के ग्यारह बजे से दो बजे तक निश्चेष्ट पड़ा रहता था। अलवर महाराज ने भी बहुत-सी विदेशी दवाइयाँ मँगवाईं लेकिन सब बेकार। मरने का विचार किया लेकिन उसी रात ६ फरवरी, १९३४ की रात को मुझे स्वप्न में ऐसा लगा, जैसे कोई कह रहा था—'क्यों व्यर्थ ही इधर-उधर भटकता है? कुछ नहीं होगा। जैन मुनि चौथमलजी महाराज की शरण में जा। बीमारी का नाम-निशान भी न रहेगा।' प्रातः होते ही मैंने महाराजश्री का पता पूछा और चित्तौड़गढ़ जा पहुँचा। दर्शनमात्र से ही मैं नीरोग हो गया और अब पूर्ण स्वस्थ हूँ। आप लोगों का सौभाग्य है जो बार-बार आपको महाराजश्री के दर्शन प्राप्त होते हैं।"

ऐसे ही दिव्य प्रभावों के लिए एक कवि ने कहा है—

कहने की जरूरत नहीं आना ही बहुत है।
इस दर पै तेरा शीश झुकाना ही बहुत है।।

साहित्य-रचना कब ?

जैन दिवाकरजी महाराज की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे जितने कुशल वक्ता थे उतने ही सिद्धहस्त रचनाकार। गद्य-पद्य दोनों में उनकी समान गति थी। उदयपुर के श्रावकों को उनकी बहुमुखी प्रतिभा को देखकर बहुत आश्चर्य था। एक दिन वे पूछ ही बैठे—

"गुरुदेव! दिनभर तो आप श्रद्धालु-भक्तों से घिरे रहते हैं, जन-जन के कल्याण के उपदेश फरमाते हैं, धार्मिक क्रियाएँ भी करते हैं। फिर आपको समय ही कब मिलता है, जो साहित्यसर्जना कर लेते हैं।"

गुरुदेव ने श्रद्धालु भक्तों की भावना को समझा। उत्सुकता शान्त करते हुए बोले—

"लोग श्रद्धा-भक्ति और स्नेह से प्रेरित होकर मेरे पास आते हैं, उन्हें निराश करना क्या उचित है? श्रद्धालुओं की शंकाओं का उचित समाधान भी श्रमण-जीवन का एक अंग है। रही साहित्य-सर्जना की बात; सो मैं अपने आराम में कटौती कर लेता हूँ।"

"कटौती कब कर लेते हैं, गुरुदेव!"

"निद्रा कम लेता हूँ। रात्रि में भी चिन्तन में समय देता हूँ। जो विचार आते हैं उन्हें मस्तिष्क में केन्द्रित कर लेता हूँ और फिर दिन के किसी समय कागज पर उतार देता हूँ।"

जैन दिवाकर जी महाराज के समय के सदुपयोग को जानकर श्रद्धालु भाव विभोर हो गये।

एक दिन उदयपुर के महाराणा श्री भूपालसिंह जी शिकार खेलने जयसमुन्द गये। वहाँ एक बड़ा भारी साँभर दरबार के सम्मुख आया। पास वालों ने कहा—'शिकार कीजिए।' दरबार ने सांकेतिक स्थान पर साँभर के आने पर बन्दूक उठाई किन्तु तुरन्त ही बन्दूक रख दी और श्री गिरधारीलाल जी से बोले—'चौथमल जी महाराज को सूचित कर देना कि मैंने इस जीव को अभयदान दिया है।'

चालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९२) : कोटा

उदयपुर चातुर्मास पूर्ण कर आप मन्दसौर पधारे। वहाँ पूज्यश्री खूबचन्द जी महाराज के

पावन नेतृत्व में मंगलमय धार्मिक महोत्सव हुआ। इसमें सर्वश्री चौथमल जी महाराज, पण्डित श्री कस्तूरचन्द जी महाराज, पण्डित श्री प्यारचन्द जी महाराज, पण्डित श्री हजारीमल जी महाराज, बड़े श्री नाथूलाल जी महाराज, पण्डित श्री हीरालाल जी महाराज, मैं (श्री केवलमुनि जी महाराज) आदि अनेक सन्त एवं विदुषी महासती हगामकुँवर जी महाराज, श्री धापू जी महाराज आदि सतियाँ विराजमान थीं। सभी के समक्ष श्री चौथमल जी महाराज को चतुर्विध संघ ने 'जैन दिवाकर' की पदवी से अलंकृत किया। इस अलंकरण से समाज ने अपनी 'गुणिषु प्रमोदं' की भावना को ही व्यक्त किया। आप तो अपनी प्रवचन रश्मियों से वैसे भी दिवाकर के समान दीपित थे।

जैन दिवाकर जी महाराज सीतामऊ पधारे। सीतामऊ दरबार, राजकुमार और महारानियों ने प्रवचन सुने। वे बहुत प्रभावित हुए।

भाटखेड़ी में आप पधारे तो गाँववासियों ने मंगल-गीतों से आपका स्वागत किया। यहाँ के राव साहब श्री विजयसिंह जी स्वयं आपके स्वागतार्थ गाँव के बाहर तक आए। प्रभावित होकर एक प्रतिज्ञापत्र भेंट किया जिसमें महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगते पलवाने का वचन था।

२३ मई, १९३५ के दिन आपके चरण रायपुर (इन्दौर स्टेट) में पड़े। स्वागत के लिए वहाँ के रावजी आये। उन्होंने भी प्रवचनों से प्रभावित होकर जीवदया का पट्टा दिया।

आषाढ़ शुक्ला ५ को आप कुमाड़ी पधारे। कप्तान दौलतसिंह जी दोपहर को सेवा में उपस्थित हुए। प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने यथाशक्ति त्याग किये।

सं० १९९२ का चातुर्मास कोटा में हुआ। कोटा के यादघर (क्रोसवेट इंस्टीट्यूशन) में 'अहिंसा' पर आपका भाषण हुआ। इस समय कोटा नरेश हिम्मत बहादुरसिंह जी महाराज कुमार, मेजर जनरल ओंकारसिंह जी आदि अनेक प्रतिष्ठित-जन उपस्थित थे। कोटा नरेश १० मिनट के लिए सुनने आये और ५० मिनट तक मंत्र-मुग्ध होकर सुनते रहे। कोटा में चार मास तक धर्म-प्रभावना होती रही।

इकतालीसवाँ चातुर्मास (१९९३) : आगरा

सं० १९९२ का चातुर्मास कोटा में पूर्ण कर आप इन्द्रगढ़ पधारे। इन्द्रगढ़ के ब्राह्मण समाज में ४० वर्ष से फूट अपना डेरा जमाए हुए थी। नरेश ने फूट मिटाने का प्रयास किया तो ब्राह्मणों ने स्पष्ट जवाब दे दिया—'अन्नदाता! इस बारे में आप कुछ भी न कहें।' निराश होकर इन्द्रगढ़ नरेश चुप हो गये। आपश्री वहाँ पधारे तो प्रवचन सुनने के लिए विशाल जनमेदिनी उमड़ पड़ी। ब्राह्मण समाज के दोनों विरोधी दलों के मुखिया भी आते थे। एक दिन आपने 'एकता' पर ऐसा जोशीला भाषण दिया कि दोनों दलों के मुखिया खड़े होकर बोले—'संघर्ष में तो हम बरबाद हो गये। अब तो एकता की इच्छा है।'

आपने दोनों मुखियाओं को अपने पास बुलाकर कहा—

"सच्ची एकता चाहते हो तो एक-दूसरे से हार्दिक क्षमा माँगकर अपने मन का कलुष बाहर निकाल दो और बोलो आज से हम एक हैं।"

दोनों ओर के मुखियाओं ने एक-दूसरे से क्षमा माँगी। उनके हृदय का कलुष मिट चुका था। ब्राह्मण समाज में एकता हो गई।

इस दृश्य से प्रभावित होकर राज्य के मन्त्री ने नरेश को बम्बई बधाई का तार भेजा—

'यहाँ पर एक जैन साधु आये हैं। इन्होंने अपनी वाणी के जादू से ब्राह्मणों का झगड़ा मिटा दिया है।'

इस चमत्कार से नरेश भी चकित रह गए। तुरन्त तार भेजा—'साधुजी को रोको। उनके दर्शन के लिए मैं आ रहा हूँ।'

इन्द्रगढ़ नरेश आए। अपनी बागवाली कोठी में प्रवचन कराए। इन्द्रगढ़ नरेश ने महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन पशुवध बन्द कराने का वचन दिया।

इन्द्रगढ़ में ही एक जिज्ञासु ने आकर निवेदन किया—

"महाराज ! मेरी कुछ शंकाएँ हैं। उनके समाधान के लिए अनेक साधु-संतों, दार्शनिकों, विद्वानों के पास भटका हूँ। कहीं भी संतोषजनक समाधान नहीं मिला। कृपा करके आप ही मेरी शंकाओं का समाधान कर दें।"

आपश्री ने फरमाया—

"प्रवचन सुनो, समाधान हो जायगा।"

जिज्ञासु ने प्रवचन सुने और उसकी सभी शंकाओं का समाधान हो गया।

वास्तव में आपके प्रवचन इतने सारगर्भित होते थे कि जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान स्वतः ही हो जाता था।

आप गेंता पधारे तो शासक और जनता सभी ने प्रवचन लाभ लिया। महल में प्रवचन हुआ तो माँ साहिबा, रानी साहिबा आदि सभी ने प्रवचन सुना। गेंता सरदार श्री तेजसिंहजी और उनके छोटे भाई यशवन्तसिंहजी ने मदिरा का त्याग किया। महावीर जयन्ती तथा पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगता पलवाने का पट्टा दिया।

२६ फरवरी, १९३६ को जैन दिवाकर जी महाराज उणियारा पधारे। सार्वजनिक प्रवचन हुए। लोगों ने कन्या विक्रय का त्याग तो किया ही; साथ ही कन्या विक्रय करने वाले के यहाँ भोजन करने का भी त्याग किया। अनेक ने परस्त्रीगमन तथा तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का त्याग किया। उणियारा नरेश ने उद्‌गार व्यक्त किए—'हमारा सौभाग्य है कि आपश्री के दर्शन हुए। आपको जैनधर्म के तत्त्वज्ञान का विशद अध्ययन है। आप उसी पर उपदेश फरमावें।' आपश्री ने तत्त्वज्ञान पर ही दो घंटे तक प्रवचन फरमाया। प्रभावित होकर नरेश ने महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगते पलवाने का वचन दिया।

७ मार्च १९३६ को आप बणजारी पधारे। प्रवचन सुनने वेडोला के ठाकुर संग्रामसिंहजी भी उपस्थित हुए। ठाकुर साहब ने स्वयं शिकार न खेलने और राज्य-भर में प्रत्येक अमावस्या, महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगता पलवाने की प्रतिज्ञा ली।

टेकले के मार्ग में एकड़ा के ठाकुर साहब मोहनसिंह जी मिले। उन्होंने वहीं चैत्र सुदी १३, पौष वदी १०, पर्युषण के आठ दिन और वैसाख के महीने में अगता रखने तथा शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा ली। उनके कामदार कर्णसिंहजी ने आजीवन हिंसा का त्याग कर दिया।

वाष्प-शक्ति पर आत्मबल का प्रभाव

आपश्री के चरण आगरा की ओर बढ़ रहे थे। साथ में अनेक श्रद्धालु भी थे। रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ और कंकरीला-पथरीला था। मालूम हुआ कि आगे सड़क पर पानी भरा हुआ है। रेलवे लाइन के बगल से सभी चले लेकिन पत्थर पाँवों में शूल की तरह गड़-गड़ जाते। पर आप
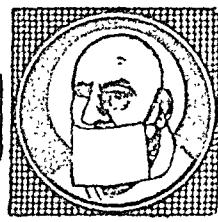
तो समता-रस के रसिक थे। निस्पृह भाव से चलते रहे। आगे एक रेलवे पुल आया। उसे पार करना जरूरी था।

सहसा पैसेंजर ट्रेन की गर्जना सुनाई पड़ी। कुछ लोग घबड़ाकर पीछे लौट गए, कुछ जल्दी-जल्दी पुल पार करने लगे और कुछ ने वहीं पुल पर ही सुरक्षित स्थान देखकर शरण ले ली। किन्तु आप तो धुन के धनी और निश्चय के पक्के थे। ईर्यापथ शोधते हुए गज-गति से चलते रहे। सीटी बजाती हुई ट्रेन निकट आ पहुँची। लोगों के दिल धक् से रह गए। आपश्री ने अपना एक हाथ ऊँचा किया—मानो वाष्पशक्ति को रुकने का आदेश मिला। ट्रेन अत्यन्त धीमी चाल से चली और रुक गई। ड्राइवर आश्चर्य में डूब गया—'बिना ब्रेक लगाए इंजन कैसे रुक गया ? यात्रीगण डिब्बों से सिर निकालकर उत्सुकतापूर्वक देखने लगे। आपने पुल पार कर हाथ नीचा किया—जैसे इंजन को चलने का संकेत किया। गाड़ी चलने लगी और शीघ्र ही उसने गति पकड़ ली।

श्रद्धालु तो चकित थे ही। इंजन ड्राइवर और यात्री भी आपके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो गए। सभी ठगे से देख रहे थे। लेकिन आप तो अपनी सहज गति से ऐसे चले जा रहे थे जैसे कुछ हुआ ही न हो।

सवाई माधोपुर के कई भाई साथ में थे। आज भी उनमें से कुछ प्रत्यक्षदर्शी लोग हैं जो यह जानते हैं।

संवत् १९९३ का वर्षावास आगरा में हुआ। 'निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह' आदि अनेक कार्यक्रमों से प्रभूत धर्म प्रभावना हुई। आपके प्रवचनों से लोगों में धर्म उत्साह जाग उठा।

आगरा में लोहामंडी के बाद मानपाड़ा, घूलियागंज, बेलनगंज आदि में आपश्री के प्रवचन हुए। सर्वत्र जनता में एक अपूर्व उत्साह उमड़ पड़ा था। हजारों अजैन भक्त डाक्टर, वकील, प्रोफेसर आदि भी इन सभाओं में प्रवचन सुनने आते थे।

आगरा से विहार कर आपश्री हाथरस पधारे। यहाँ जैन समाज के घर कम हैं, पर अजैन समाज में बड़ा उत्साह जाग उठा। बाजार में आपके प्रवचनों की घूम मच गयी। वहाँ से आप जलेसर पधारे।

चौर कर्म का त्याग

जलेसर में आपश्री का सार्वजनिक प्रवचन हो रहा था। विषय था—चोरी का दुष्परिणाम। श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। प्रवचन समाप्त होते ही एक व्यक्ति ने खड़े होकर कहा—

"महाराज ! मुझे चोरी का त्याग करा दीजिए। मैं आज से चोरी कभी नहीं करूँगा।"

उसके मुख पर पश्चात्ताप स्पष्ट था। आँखों में करुणा साकार थी, वे भीगी हुई थीं।

श्रोता-समूह ने मुड़कर पीछे की ओर देखा तो सभी चकित रह गए। वह व्यक्ति दुर्दान्त हत्यारा और बेरहम था। कितनी डकैतियाँ उसने डालीं, गिनती नहीं। इस समय निरीह बना करबद्ध खड़ा था।

महाराजश्री ने उसे चोरी का त्याग कराया। लोग आपकी चमत्कारी वक्तृत्व-शक्ति के प्रति श्रद्धानत हो गए। उपस्थित जन धन्य-धन्य कह उठे।

बयालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९४) : कानपुर

उत्तर प्रदेश के अनेक क्षेत्रों को स्पर्शन करते हुए कानपुर में वर्षावास करने से पहले आप लखनऊ पधारे। वहाँ सिर्फ एक ही स्थानकवासी जैन परिवार था। ४० वर्ष बाद लखनऊ में किसी

स्थानकवासी साधु का पदार्पण हुआ था, अतः स्वागत फीका ही रहा। लेकिन आपके व्याख्यानों ने ऐसी धूम मचाई कि लोग वहीं चातुर्मास करने की प्रार्थना करने लगे, लेकिन कानपुर चातुर्मास निश्चित हो जाने के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई।

लखनऊ में प्रवेश करते समय तो आपका स्वागत साधारण रहा था, लेकिन विदाई के समय अपार जनसमूह जयघोष कर रहा था। काफी दूर तक लोग आपको पहुँचाने आए थे।

विष-निर्विष हुआ

वर्षावास हेतु आपके चरण कानपुर की ओर बढ़ रहे थे। मार्ग में मुनि संघ को रात्रि विश्रामार्थ रुकना पड़ा। अचानक समीप के देवी मन्दिर में करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि 'खेत में काम करते हुए एक युवक किसान को किसी भयंकर सर्प ने डस लिया है। उसे माता के मन्दिर में लाए हैं। लेकिन पुजारी ने देखते ही उसे मृत घोषित कर दिया। अब उसके परिवारी जन विलाप कर रहे हैं।' आपके हृदय में करुणा जागी। उस युवक के शरीर को देखने की इच्छा प्रगट की। तुरन्त शरीर वहाँ लाया गया। परिवारीजन कातर स्वर में पुकार करने लगे—'बाबा जिला दो, बाबा जिला दो।'

आपने अनुमान लगा लिया कि युवक का शरीर सर्पविष से ग्रस्त होकर निश्चेष्ट हो गया है, लेकिन अभी तक प्राण नहीं निकले हैं। सांत्वना देते हुए कहा—

"घबड़ाओ मत ! मैं भगवान का नाम सुनाता हूँ, शायद यह ठीक हो जाय। अब तुम सब लोग बिलकुल शांत हो जाओ।"

सभी शांत हो गए। गुरुदेव ने तन्मय होकर भक्तामर के ४१वें काव्य का पाठ शु किया—

रक्तेक्षणं समद कोकिल कंठनीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तं।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्त शंकस्
त्वन्नाम नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः॥

पाठ चलने लगा। ज्यों-ज्यों पाठ चला युवक के शरीर में चेतना के लक्षण प्रगट हों लगे। युवक ने एक जोरदार वमन किया। सारा विष निकल गया। उसने आँखें खोलीं और उठक बैठ गया। लोग गुरुदेव के चरणों में आ गिरे। जय-जयकारों से वातावरण गूंज गया। सोने-चाँदि की वर्षा होने लगी।

आपने गम्भीर स्वर में कहा—

"हम लोग जैन साधु हैं। कंचन-कामिनी से सदा दूर रहते हैं। आप लोग ये सब माया ले जाइये। हमें यही संतोष है कि युवक के प्राण लौट आये और आप लोगों को शांति मिली।"

सभी लोग आपकी इस निस्पृहता से बहुत प्रभावित हुए।

आपश्री कानपुर पहुँचे और सं० १९९४ का वर्षावास कानपुर में हुआ।

कानपुर में ४० वर्षों के बाद स्थानकवासी जैन मुनि का पधारना हुआ था। लाला फूलचन्द जी ने अपनी धर्मशाला में चातुर्मास कराया।

चातुर्मास के पश्चात् आपश्री ने देहली की तरफ प्रस्थान किया। अनेक गांवों-नगरों में होते हुए आप मथुरा पधारे।

मथुरा नगरी दिगम्बर जैनों का गढ़-सा है। यहाँ अनेकानेक पंडित भी रहते हैं। विश्रान्ति हेतु आप यहाँ ठहरे। दो प्रवचनों की स्वीकृति भी दे दी और शंका-समाधान के लिए समय भी

निश्चित कर दिया। दिगम्बर धर्मशाला में ही आपके प्रवचन हुए। शंका-समाधान के कार्यक्रम से उत्साहित होकर कुछ विशिष्ट विद्वान् एकत्र होकर आए। उन्होंने प्रश्न किया—

"आप स्त्री-मुक्ति स्वीकार करते हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु साथ ही इस बात को भी मानते हैं कि स्त्री १४पूर्वों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती। फिर उसे केवलज्ञान, केवलदर्शन कैसे हो सकते हैं ? जब केवलज्ञान ही नहीं होता तो मुक्ति कैसे संभव है ? आपका यह सिद्धान्त कैसे ठहरेगा ?"

महाराजश्री के मुख पर गम्भीरतापूर्ण मुस्कान खेल गई। सहज शांत स्वर में बोले—

भद्रजनो ! तुम्हारे इस प्रश्न में दो प्रश्न निहित हैं—'एक स्त्री मुक्ति और दूसरा १४पूर्वों के ज्ञान के अभाव में केवलज्ञान न होना। अब प्रथम प्रश्न का उत्तर सुनिये—

इतना तो आप भी मानते हैं कि मुक्ति आत्मा की होती है, शरीर की नहीं; और आत्मा न पुरुष है, न स्त्री। पुरुष और स्त्री तो शरीर है और शरीर की रचना नामकर्म के उदय से होती है। नामकर्म अघाती कर्म है, इसलिए केवलज्ञान प्राप्ति में बाधक नहीं है। केवलज्ञान के उपरान्त तो मुक्ति का द्वार खुला हुआ है ही।

अब अपने प्रश्न के दूसरे भाग का उत्तर सुनिये—

ऐसा कोई नियम नहीं है कि १४पूर्वधर ही मुक्त हो सके। आगम की एक गाथा का ज्ञान रखने वाला भी मुक्त हो सकता है। माष-तुष जैसे अनेक मुनियों के उदाहरण आपके शास्त्रों में भी आते हैं। यद्यपि बात यह बराबर नहीं है, फिर भी यह मानें कि १४पूर्वों का ज्ञाता ही मुक्त हो सकता है तो १४पूर्वों का सार नवकार मन्त्र में है, ऐसा आप लोग भी मानते हैं। इस तरह एक नवकार मन्त्र के माध्यम से स्त्री भी उस सार को जान सकती है।

धर्म-साधना, मनोबल और दृढ़ता की दृष्टि से विचार करें तो भी स्त्री हीन नहीं, वरन् कुछ अधिक ही प्रमाणित होती है। वह एक बार जो मन में निश्चय कर लेती है, उसे अवश्य पूरा करके ही रहती है। बेले-तेले यहाँ तक कि मास-मास का व्रत-तप वही कर पाती है, जबकि पुरुष हिचकता है। अब आप ही बताइये—बल, वीर्य, उत्थान आदि किसका तेजस्वी है ?

युक्तियुक्त समाधान पाकर विशिष्ट विद्वान् बगलें झांकने लगे। फिर दूसरा प्रश्न किया—

"वस्त्र आदि अन्य उपकरण आप लोग रखते हैं। क्या इससे पाँचवाँ महाव्रत अपरिग्रह दूषित नहीं होता ?"

महाराज श्री ने समाधान दिया—

"परिग्रह को आप लोगों ने सर्वांग दृष्टि से नहीं समझा। वस्त्र, पात्रों को नहीं, वरन् मूर्च्छाभाव को परिग्रह कहा गया है। दिगम्बर मुनि भी पीछी, कमण्डल का परिग्रह रखते हैं। पूर्ण अपरिग्रही कोई नहीं होता। अति आवश्यक उपकरणों को रखने की आज्ञा आगम में दी गई है। **'मूर्च्छा परिग्रहः'** सूत्र के आधार पर आप स्वयं ही निर्णय कर लीजिए।"

विद्वान् निरुत्तर हो गये। जिनमें सत्य को समझने की वृत्ति थी, वे संतुष्ट भी हो गये और गुरुदेवश्री की विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

तेतालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९५) : दिल्ली

यह चातुर्मास आपका भारत की राजधानी दिल्ली में हुआ। यहाँ आपने एक जर्मन प्रोफेसर को आत्मा के बारे में बड़े ही सरल शब्दों में ज्ञान कराया।

जर्मन प्रोफेसर को आत्मा का ज्ञान

दिल्ली चातुर्मास की घटना है। बोर्ड पर सूचना अंकित थी—'अध्यात्म व्याख्याता जैन

दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज यहाँ विराजमान हैं।' एक कार रुकी। उसमें एक जर्मन प्रोफेसर था। वह भारत-भ्रमण के लिए आया था। पार्श्व में बैठे भारतीय सज्जन से पूछा—'बोर्ड पर क्या लिखा है?' उन्होंने अंग्रेजी में अनुवाद करके सुना दिया। जर्मन प्रोफेसर उतरा। भारतीय सज्जन के साथ महाराजश्री के पास पहुँचा। उस समय महाराजश्री का प्रवचन हो रहा था। श्रोता-समूह मन्त्रमुग्ध-सा सुन रहा था। जर्मन प्रोफ़ेसर ने भारतीय सज्जन के माध्यम से जिज्ञासा रखी—

"आत्मा है या नहीं? है तो उसका क्या प्रमाण है? मुझे थोड़े में ही बता दीजिए, क्योंकि मैं बहुत जल्दी में हूँ।"

"क्या इन (जर्मन प्रोफेसर साहब) के पिता जीवित हैं?—महाराजश्री ने प्रतिप्रश्न किया।

"नहीं, वे जीवित नहीं हैं।"

"जब वे जीवित थे तो क्या करते थे?"

"खाने-पीने, बोलने-चालने आदि के सभी काम करते थे।"

"आपने कैसे जाना कि वे मर गए हैं?"

"उनकी ये सब क्रियाएँ बन्द हो गईं।"

"शरीर के सारे अंग-उपांगों के ज्यों की त्यों रहने पर भी ये क्रियाएँ बन्द क्यों हो गईं?"

अब जर्मन प्रोफेसर चुप हो गया। वह सोचने लगा। महाराजश्री ने समझाया—

"जिसके आदेश से शरीर द्वारा ये सब क्रियाएँ हो रही थीं, वही आत्मा है। उसके निकल जाने के बाद शरीर ज्यों का त्यों पड़ा रह जाता है। वह अमूर्त, अविनाशी और अतीन्द्रिय है। उसे इन आँखों से देखा नहीं जा सकता, केवल अनुभव ही किया जा सकता है।"

समाधान पाकर प्रोफेसर सन्तुष्ट हुआ। आभार व्यक्त किया—

Alright, I understood it. The director of all the activities is the soul or Atman. That is an unseen element. I could not get anyone who ought to have clarified such a serious subject in so a simple way. Thanks.

—बहुत अच्छा, मेरी समझ में आ गया। जो सभी क्रियाओं का संचालक है, वही आत्मा है। वह आत्मा अदृश्य तत्त्व है। मुझे इतने गम्भीर विषय को सीधे-सादे शब्दों में समझाने वाला आज तक कोई नहीं मिला। धन्यवाद!

अपनी जिज्ञासा का उचित समाधान पाकर उस जर्मन प्रोफेसर ने जैन दिवाकरजी महाराज के सम्मुख अपना सिर झुका दिया।

उदयपुर के महाराणा भूपालसिंहजी ने दिल्ली चातुर्मास में आपके दर्शन किए और अगला चातुर्मास उदयपुर में करने की भाव-भरी प्रार्थना भी की।

चवालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९६) : उदयपुर

दिल्ली चातुर्मास पूर्ण करके आप अलवर पधारे। जगत टाकीज में प्रवचन हुए। वकील ऐसोसिएशन ने भी प्रवचन कराया। अलवर नरेश श्री तेजसिंहजी प्रवचनों से प्रभावित हुए। उन्होंने जीवदया का पट्टा दिया।

आपश्री ने उदयपुर में चातुर्मास शुरू किया। आपके प्रवचन सुनकर लोगों ने मदिरापान का त्याग किया। महाराणा भूपालसिंहजी ने साँभर के शिकार का त्याग किया। महाराणा की जिज्ञासा पर एक प्रवचन में आपने रक्षाबन्धन के रहस्य प्रगट किए जिसे सुनकर सभी चकित रह गए।

उदयपुर से विहार करके कई गाँवों में होते हुए बड़ी सादड़ी पधारे। उस समय आपके

साथ १७ साधु और थे। राजराणा कल्याणसिंहजी ने प्रवचन सुने। आने के दिन अगता पलवाया। बड़े साथ ओसवालों के झगड़े का अन्त किया।

निम्बाहेड़ा पधारने पर हिन्दू-मुस्लिम भारी संख्या में आपके व्याख्यान में उपस्थित हुए। मुस्लिम भाइयों ने माँस खाने का त्याग किया। वहाँ से चित्तौड़ पधारे। करीब ७००० मनुष्यों की उपस्थिति में महावीर जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई। यहाँ श्री वृद्धिचन्द डंक डूँगला वालों ने दीक्षा ली; उनका नाम विमल मुनि रखा गया।

अनेक मनुष्यों ने मद्य-मांस, तम्बाकू-सेवन आदि के त्याग लिए। श्री पुखराजजी भंडारी, श्री सुकनराजजी गोलिया मैसर्स हीराचन्द भीकमचन्द, लाडजी महेश्वरी आदि ने अगला चातुर्मास जोधपुर में करने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई।

चित्तौड़ से विहार करते हुए आपश्री भीलवाड़े पधारे। यहाँ हाकिम श्री केशरीसिंहजी, जज दुलेसिंहजी ने भी प्रवचन का लाभ लिया। सार्वजनिक प्रवचन में लगभग २००० व्यक्ति उपस्थित होते थे। यहाँ जेल के कैदियों को भी उपदेश दिया। उन बन्दियों ने भी चोरी, जीव-हिंसा के त्याग किये। वहाँ से विहार कर गुडले पधारे। जागीरदार श्री शुभसिंहजी ने उपदेशों से प्रभावित होकर भैंसे का बलिदान बन्द किया। श्रावण में शिकार करने का और हिंसक पशुओं के सिवाय अन्य पशुओं का शिकार करने का त्याग किया। वर्ष में दो बकरे अमरिए करना आदि अनेक त्याग किए।

कोसीथल होकर नांदसा पधारे। नांदसा जागीरदार के काका जयसिंहजी ने जीवहिंसा करने का त्याग किया। ताल ठाकुर साहब श्री रणजीतसिंहजी ने अनेक जीवों की हिंसा का त्याग किया। कुँवर दौलतसिंहजी ने पक्षी, हिरण एवं बकरे की हिंसा स्वयं न करना और न अन्य से कहकर करवाना—यह नियम लिया। सुरतपुर के ठाकुर सवाईसिंहजी ने सुअर के सिवाय अन्य सभी जानवरों की हिंसा त्याग दी। बरार में भी उपकार हुआ। लसाणी के ठाकुर साहब ने जीवन भर के लिए शिकार का त्याग किया। महीने में १५ दिन ब्रह्मचर्य पालन करने का नियम लिया। ठेकरवास, देवगढ़, हरियारी आदि में भी इसी प्रकार के उपकार हुए।

चंडावल के ठाकुर श्री गिरधारीसिंहजी प्रवचनों से बहुत प्रभावित हुए। इन्होंने अपनी जागीर के छह गाँवों में पर्युषण के प्रथम और अन्तिम दिन, महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन पूर्णरूप से अगते पालने का पट्टा लिखकर दिया।

पाली में प्रवचनों में जैन-अजैनों ने बड़ी संख्या में लाभ लिया। सेठ सिरेमलजी कांठेड़ की ओर से विद्यादान और अकाल पीड़ितों के लिए भी सहस्रों रुपये दिए गए।

वहाँ से आपश्री जोधपुर पधारे।

पैंतालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९७) : जोधपुर

सं० १९९७ का चातुर्मास १५ मुनियों के साथ में जोधपुर में हुआ। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर अनेक वेश्याओं ने वेश्यावृत्ति का त्याग कर दिया।

इस चातुर्मास से पूर्व जैन दिवाकरजी सरदारहाईस्कूल में पधारे। वहाँ प्रवचन दिए। एक व्याख्यान आर्यसमाज में भी हुआ। फिर आहोर के ठाकुर साहब की हवेली में व्याख्यान होने लगे। लगभग ५००० मनुष्यों की उपस्थिति में अनेक राज्याधिकारी, वकील एवं गणमान्य व्यक्ति उपस्थित होते थे। सार्वजनिक व्याख्यान में करीब ७००० की उपस्थिति होती थी।

इसी चातुर्मास में 'ॐ शान्ति' जप के साथ लगभग २१०० आयंबिल हुए। श्री रूपराजजी संचेती (आयु ३५ वर्ष) ने यावज्जीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया।

जोधपुर संघ में सिंहपोल को लेकर जो उग्र विवाद चल रहा था उसमें आपके शांति-प्रेरक प्रवचनों ने शांति का वातावरण बनाया। एकता के प्रयत्न प्रारम्भ हो गए। तीन वर्षों से द्वन्द्व चल रहा था। भादवा वदी १४ को व्याख्यान में जोरदार शब्दों में जैन समाज में चल रहे झगड़े को मिटाकर शांति का सन्देश दिया। एक पक्ष ने श्री मगरूपजी भंडारी (सिटी कोतवाल) श्रीजसवन्तराज जी मेहता को पंच बना दिया। श्री चन्दनमल मूथा ने इनको स्वीकार किया और पंचों ने व्याख्यान में फैसला सुनाया जिसे सुनकर दोनों पक्षों के साथ हजारों व्यक्ति पंचों की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करने लगे।

फैसले के बाद गुरुदेव ने फरमाया कि समाज में शांति हो गई, सो तो प्रसन्नता की बात है। आप लोग यहाँ क्षमायाचना कर लेवें। जिन मुनिराजों का अपमान किया है उनके पास जाकर क्षमायाचना करनी चाहिए। दोनों पक्षों की तरफ से शाहजी नवरतनमलजी मोदी, शंभुनाथजी चंदनमलजी मूथा, सेठ लक्ष्मीरामजी सांड, भँवरलालजी जालोरी, नारमलजी पारख, मोतीलालज रातड़िया, मूलचन्दजी लूंकड़, सलेराजजी मुणोत आदि नेताओं ने सभास्थल पर ही प्रेम के सा हाथ में हाथ डालकर खमत-खामना किये। इस दृश्य से जनता बहुत हर्षित हो गई। इस का में राय साहब विलमचन्दजी भण्डारी और हुक्मीचन्द जैन का सहयोग प्रशंसनीय रहा।

भादवा सुदी ७ के व्याख्यान में श्री रा०रा० नरपतसिंहजी (मिनिस्टर इन वेटिंग) ठाकु वखतावरसिंहजी आदि विशिष्ट नागरिकों ने दोनों पक्षों, पंचों और शांति-सहयोगियों क धन्यवाद दिया। सभी ने जैन दिवाकरजी महाराज का हार्दिक आभार माना। इस संप की खुश में दयाव्रत का आयोजन किया गया जिसमें समाज के कई मुख्य व्यक्ति सम्मिलित हुए।

चरणोदक

जोधपुर चातुर्मास की ही घटना है। भोपालगढ़ (मारवाड़) के निकटवर्ती कूड़ी गाँव की पुत्रवधू सौ० कल्याणबाई कर्णावट अपने पीहर जोधपुर आई। महाराजश्री के प्रवचन वह भी बड़ी श्रद्धाभक्ति से सुनती। एक दिन वह शीशी में गुलावजल भर लाई और एक भाई को कहकर गुरुदेव के पाद प्रक्षालित करके पुनः शीशी में भरवा ही लिया। महाराजश्री मना करते ही रह गए। यथासमय वह अपनी ससुराल पहुँची। उसकी ससुराल में घर का कामकाज करने के लिए एक वृद्धा आती थी। एक दिन उसने कल्याणबाई को अपनी व्यथा सुनाई—

"सेठानीजी ! आपके पीहर जाने के बाद मेरे लड़के की आँखें दुखने आ गईं। बहुत इलाज कराया पर कोई फायदा न हुआ। वह अन्धा हो गया है। अब मैं मेहनत-मजदूरी करके पेट भरू या उसकी सेवा करूँ। मैं तो बड़ी मुसीबत में फँस गई हूँ।"

कल्याणबाई के हृदय में करुणा जागी। वृद्धा और उसके पुत्र की कल्याणकामना करते हुए उसने चरणोदक वाली शीशी देकर कहा—

"माँजी ! जोधपुर से मैं बहुत अच्छी दवाई लाई हूँ। इसे लगातार विश्वासपूर्वक लड़के की आँख में डालो। उसे दीखने लगेगा।"

वृद्धा ने दवाई डाली और १५-१६ दिन में ही उस लड़के की नेत्रज्योति लौट आई। वृद्धा ने कल्याणबाई को भरपेट आशीर्वें दीं। कल्याणबाई गुरुदेव की कल्याणकारी शक्ति से विभोर हो गई। दीपावली के बाद कल्याणबाई उस वृद्धा और उसके पुत्र को साथ लेकर गुरुदेव के
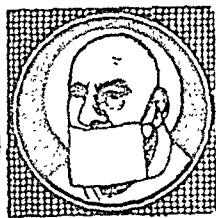
दर्शनार्थ आई। उसने समस्त घटना लोगों को सुनाई। गद्गद कंठ से लोगों ने कहा—

"यह गुरुदेव की साधना का प्रभाव है।"

चातुर्मास समाप्ति के दिन गुरुदेव के गुणगान भाइयों ने तो किए ही, एक वेश्या ने भी किए। उसने भी विभोर होकर श्रद्धापूर्वक गुरुदेव के गुण गाए।

आहोर के ठाकुर साहब ने पर्युषण पर्व, महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती पर अगते रखने का निश्चय जाहिर किया। श्री विलमचन्दजी भण्डारी ने अहिंसा प्रचारक सभा की स्थापना को शुभ सन्देश दिया।

चातुर्मास पूर्ण करने के बाद गुरुदेव जोधपुर से समदड़ी होते हुए गढ़ सिवाना पधारे। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने हाथ के कते-बुने कपड़े के प्रयोग करने का नियम लिया और कुछ ने विदेशी वस्त्र का त्याग कर दिया। होली पर धूल उड़ाने और गन्दे गीत नहीं गाने के नियम लिए। वहाँ गुड़-शक्कर और एक चबूतरे के झगड़े थे वे भी जैन दिवाकरजी के उपदेशों से समाप्त हो गए।

मोकलसर, जालौरगढ़ आदि गाँवों में भी अच्छे उपकार हुए। हाथी-दाँत के चूड़े और रेशम पहनने का कई बहनों ने त्याग किया।

छयालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९८) : ब्यावर

सं० १९९८ का चातुर्मास पूज्यश्री खूबचन्दजी महाराज के साथ ब्यावर में हुआ। आपके प्रवचनों से अच्छी धर्म-प्रभावना हुई। निराश्रित भाइयों की सेवा तथा सहायता के निमित्त 'जैन सेवा संघ' की स्थापना भी हुई। यहाँ शान्तिनाथ भगवान का अखण्ड जाप और 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन सप्ताह' मनाया गया।

राजा-महाराजाओं को सप्ताह की पूर्ति के दिन हिंसा बन्द रखने का श्रीसंघ ने निवेदन-पत्र भेजा। अनेक गाँवों में जीव-हिंसा बन्द रही। दि महालक्ष्मी मिल और एडवर्ड मिल बन्द रखे गए। तपस्वी श्री नेमीचन्दजी महाराज ने ४५ दिन की और तपस्वी श्री मयाचन्दजी महाराज ने ३५ दिन की तपस्याएँ कीं। इसमें बहुत धर्मध्यान हुआ। तपस्याएँ भी खूब हुईं।

गुरला के महाराज, रायपुर (मारवाड़) तथा सिगड़ा (जयपुर) के ठाकुर साहब ने व्याख्यान का लाभ लिया। सिगड़ा (जयपुर) के ठाकुर साहब ने मांस-मदिरा का त्याग पहले ही कर दिया था, अब जैन दिवाकरजी महाराज से रात्रि-भोजन के त्याग का नियम लिया। उसी दिन आप जयपुर लौटने वाले थे। स्टेशन पहुँचे, टिकिट ले लिए। गाड़ी आने में देर थी। साथ के लोग खाने की चीजें लाए। नित्य की आदत के अनुसार ठाकुर साहब ने भी मुँह में खाने की वस्तु डाल लीं, तभी उन्हें याद आया कि 'मैंने तो रात्रि-भोजन का त्याग लिया है।' तुरन्त उन्होंने खाई हुई वस्तु को थूक दिया और गुरुदेव के पास प्रायश्चित्त लेने को जाने लगे। आपके साथ वाले लोगों ने कहा—'शहर में जाकर आओगे तो गाड़ी छूट जायेगी।' ठाकुर साहब ने उत्तर दिया—'गुरुदेव से ली हुई प्रतिज्ञा भंग हो गई तो प्रायश्चित्त भी उन्हीं से लूँगा। गाड़ी मिले या न मिले। टिकिट के पैसे ही तो जायेंगे। क्षत्रिय के लिए धन से अधिक महत्व प्रतिज्ञा का है।'

यह कहकर ठाकुर साहब ताँगे में बैठकर गुरुदेव के पास आए और उनसे प्रायश्चित्त माँगा। गुरुदेव ने कहा—'भूल से हो गया है।' ठाकुर साहब ने कहा—'भूल से ही सही, पर इसके प्रायश्चित्त स्वरूप एक निर्जल उपवास अवश्य करूँगा।'

इसके बाद ताँगे में बैठकर स्टेशन पहुँचे। तब तक गाड़ी आई नहीं थी, लेट थी। ठाकुर साहब के विश्वास से साथी लोग आश्चर्यचकित हो गए।

इस घटना से स्पष्ट हो जाता है कि गुरुदेव से प्रतिज्ञा लेने वाले व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा में कितने दृढ़ रहते थे।

ब्यावर चातुर्मास पूर्ण कर आप वहाँ से विहार करके सुमेल पधारे। सुमेल के ठाकुर साहब ने रनिवास सहित व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया। प्रवचन से प्रभावित होकर पार्श्वनाथ जयन्ती, महावीर जयन्ती को अगता रखने के और पौष, कार्तिक, वैशाख आदि महीनों में शिकार न खेलने की लिखित प्रतिज्ञा ली।

सुमेल से जैन दिवाकरजी मसूदा होते हुए अरनिया पधारे। वहाँ बलिदान बन्द हुआ। कोटड़ी के कई मुसलमान भाइयों को मांस खाने का त्याग करवाकर मांडलगढ़ पधारे। वहाँ कई वर्षों से चले आए वैमनस्य को दूर किया। शाहपुरा में अनेकों ने मांस-मदिरा के त्याग किये।

मीचोर में कई मुसलमान भाइयों ने नशा व गोश्त (मांस) खाने के त्याग किए। वेगू में आपश्री के उपदेश से ओसवालों का वैमनस्य दूर हुआ। फिर कदवासा पधारे। वहाँ ३७ जमींदारों ने जैनधर्म स्वीकार किया।

अनेक गाँवों में विचरण करते हुए २५ सन्तों सहित सिंगोली पधारे। महावीर जयन्ती बड़े समारोह के साथ मनाई गई। पारसोली, सरवाणिया, नन्दवई, वेगू, सिंगोली आदि के राज्याधिकारियों ने लाभ लिया। सिंगोली में ५ दिन अगता पलवाया गया।

नीमच सावण होते हुए भाटखेड़ी पधारे। वहाँ की महारानी श्रीमती नवनिधि कुमारी के अत्याग्रह से तीन व्याख्यान राजमहल में हुए। महारानीजी ने प्रभावना बाँटी। महारानीजी विदुषी थीं। आपने ३००० पृष्ठ का एक ग्रन्थ लिखा था। उनकी जैनधर्म पर अटूट श्रद्धा है। मुँहपत्ति बाँधकर ७ बार भगवतीसूत्र पढ़ चुकी हैं। अन्य अनेक शास्त्रों एवं ग्रन्थों का अध्ययन किया है। आप बड़ी दया-प्रेमी हैं।

रामपुरा, संजीत आदि गाँवों को पावन करते हुए महागढ़ पधारे। वहाँ आपकी वाणी से प्रभावित होकर कई लोगों ने रात्रि-भोजन के त्याग किए, ब्रह्मचर्यव्रत लिए। राजपूत, गावरी, चमार आदि ने मांस-मदिरा के त्याग किए।

जावरा में २६ सन्तों सहित आप पधारे तो लोगों ने आपका भावभीना स्वागत किया। यहाँ स्थानकवासी समाज में झगड़ा था। अनेक सन्तों एवं मुनिवरों के समझाने पर भी वह झगड़ा मिट न सका, किन्तु आपके प्रभाव से शांत हो गया। व्याख्यान में चीफ मिनिस्टर, रेवेन्यु सेक्रेटरी, पुलिस अधिकारी आदि लाभ लेते थे। सेजावता के ठाकुर साहब ने जीवनभर शिकार करने का त्याग किया।

सैंतालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९९) : मन्दसौर

वि० सं० १९९९ में आपश्री विचरण करते हुए रतलाम पधारे। महावीर जयन्ती का दिन समीप था। पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के संप्रदाय वाले पं० मुनिश्री किशनलालजी महाराज, मालवकेशरी पं० मुनि श्री सौभाग्यमलजी महाराज आदि भी वहीं विराजमान थे। विचार चला कि महावीर जयन्ती सम्मिलित रूप से मनाई जाय या अलग-अलग। जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा—

"भगवान महावीर के जन्म दिवस पर क्या मतभेद ? वे तो सभी के आराध्य हैं। उनका जन्म-दिवस तो सभी को मिलकर मनाना चाहिए।"

आपके इन वचनों ने निर्णय ही कर दिया। महावीर जयन्ती सम्मिलित रूप से ही मनाई गई।

इसी चातुर्मास में आपकी प्रेरणा से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज सम्प्रदाय के हितैषी मंडल की स्थापना 'समाज हितैषी श्रावक मण्डल' के नाम से हुई।

सच्चा वशीकरण

मन्दसौर चातुर्मास की ही एक घटना है। जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन होते थे। प्रवचनों में श्रोताओं की अपार भीड़ एकत्र होती थी। एक दिन एक वृद्धा भीड़ को चीरती हुई आई और कहने लगी—

"गुरुजी! आपकी बात तो सब लोग मान लेते हैं, मेरी कोई नहीं मानता। सभी मुझे चिढ़ाते हैं। मेरी बात तक नहीं सुनते। अपना वशीकरण मन्त्र मुझे भी दीजिए।"

महाराजश्री ने कुछ क्षण सोचा और गम्भीर स्वर में बोले—

"माताजी! सच्चा वशीकरण है मधुर वचन, कठोर शब्दों का त्याग। आप सदा मधुर वचन बोलिए। चिढ़ाने वालों से या तो मौन धारण कर लीजिए या उनसे भी मीठे शब्दों में बोलिए। कुछ ही दिनों में सब लोग आपकी बात सुनने लगेंगे, मानने लगेंगे।"

वृद्धा उनकी बात मान गई। दो ही महीने बाद आकर बोली—

"महाराज साहब! आपका मन्त्र अचूक है। इसका प्रभाव अमोघ है। मैं सुखी हो गई। मुझे सच्चा वशीकरण मिल गया।"

"अच्छी बात है, अब इसका जीवन भर प्रयोग करना, कभी मत छोड़ना। सुख के साथ-साथ तुम्हें शांति भी मिलेगी।"

वृद्धा ने सिर झुकाकर सहमति व्यक्त की।

महाराजश्री की यह प्रेरणा **'बहुयं मा य आलवे', 'मियं भासेज्ज पन्नवं', 'न य ओहरिणी वए'** आदि शास्त्र वचनों का अनुभवमूलक सन्देश थी।

अंगुष्ठोदक का चमत्कार

मन्दसौर के जीयागंज मौहल्ले में जैन दिवाकरजी महाराज अपने प्रवचनों से दयाधर्म की गंगा बहा रहे थे। एक दिन मनासा निवासी श्री भँवरलाल जी रूपावत अपने दुःसाध्य रोग से पीड़ित पुत्र शांतिलाल को लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए।

शांतिलाल जब चार मास का ही था तभी से वह उदरशूल से पीड़ित था। दर्द इतना तीव्र था कि वह तड़पता रहता था। चार मास के शिशु की पीड़ा से माता-पिता दोनों की नींद हराम हो गई थी। रूपावतजी ने सभी तरह के उपचार करा लिए थे। माता-मसानी, पीर-फकीर, पंडित-मौलवी, वैद्य-हकीम, डाक्टर, तांत्रिक-मांत्रिक सभी विफल हो गए थे। माता-पिता अब निरुपाय हो गए थे। वे अपने पुत्र के जीवन से निराश हो चुके थे। एक दिन रूपावतजी के किसी मित्र ने उन्हें सलाह दी—'रूपावतजी! आप मन्दसौर जाकर जैन दिवाकरजी महाराज की शरण लें तो मुझे विश्वास है आपका बच्चा नीरोग हो जायगा।'

मित्र की सलाह मानकर रूपावतजी मन्दसौर पहुँचे। सतीवर्ग को शिशु की व्यथा कह सुनाई। करुण व्यथा सुनकर महासतीजी का हृदय करुणार्द्र हो उठा। उन्होंने उपाय बताया—'एक गिलास में प्रासुक गरम जल लेकर आप महाराजश्री के दाहिने पाँव का अगूंठा प्रक्षालित कर लीजिए। उस प्रक्षालित जल को शिशु को पिलाइये। शिशु नीरोग हो जायगा।'
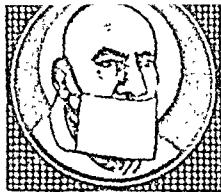
रूपावतजी ने वही किया। गुरुदेव के मना करते-करते भी अंगुष्ठोदक ले ही लिया। इस जल को दो-चार बार ही पिलाने से बालक सर्वथा नीरोग हो गया। जो रोग दुनिया-भर की औषधियों और उपचारों से ठीक न हो सका; वह महाराजश्री के अंगुष्ठोदक से मिट गया।

शांतिलाल आज भी मनासा में सकुशल हैं।

मन्दसौर में ३३ वर्षों के बाद चातुर्मास हो रहा था। विशाल मण्डप में धारावाही प्रवचन होने लगे। राजकर्मचारी, बोहरे और मुसलमान भाई भी व्याख्यान श्रवण का लाभ लेने लगे। यहाँ तपस्वी मेघराजजी महाराज ने ३१ दिन की तपस्या की। महासतियाँ जी एवं भाई-बहनों ने भी तपोव्रत किया।

चातुर्मास बाद महाराज साहब प्रतापगढ़ पधारे। वहाँ जितने भी राज्याधिकारी थे, सभी व्याख्यान का लाभ लेते थे। प्रतापगढ़ दरबार एवं राजमाता ने दो व्याख्यान राजमहल में करवाए। प्रभावना भी दी। महावीर जयन्ती के दिन अगता रखने का वचन दिया। दशहरे पर होने वाले पाड़े का बलिदान बन्द कर दिया। महाराजश्री के विहार के दिन कसाईखाना बन्द रखा।

प्रतापगढ़ से आपश्री धरियावद पधारे। रावजी साहब पहाड़ी रास्ते में भी साथ रहे। चार मील पैदल चले। गुरुदेव की तबियत वहाँ खराब हो गई।

अड़तालीसवाँ चातुर्मास (सं० २०००) : चित्तौड़

सं० २००० का चातुर्मास चित्तौड़ में हुआ। अपने प्रवचनों द्वारा आपश्री ने वृद्धों, अपाहिजों की सेवा करने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप 'चतुर्थ वृद्धाश्रम' की स्थापना हुई, जहाँ वृद्ध लोगों के भरण-पोषण और आध्यात्मिक साधना हेतु समुचित साधन जुटाए गए।

चित्तौड़ में आपश्री ने १७ मुनियों के साथ चातुर्मास किया। पधारने के दिन महाराणा साहब ने अगता पलवाया। तपस्वी नेमिचन्दजी महाराज ने ५० दिन की और तपस्वी वक्तावरमलजी महाराज ने ५७ दिन की तपश्चर्या की। दोनों तपस्वियों के पारणे आनन्द से हो गए परन्तु पारणे के दिन तपस्वी वक्तावरमलजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। १२ हजार जनता की उपस्थिति में चन्दन और हजारों नारियलों के साथ संस्कार हुआ।

इस वर्ष नदियों में बाढ़ आने से बाढ़ पीड़ितों के लिए काफी आर्थिक सहायता दी गई।

उनपचासवाँ चातुर्मास (स० २००१) : उज्जैन

सं० २००१ में महावीर जयन्ती का अवसर आ गया। जैन दिवाकरजी महाराज ४० सन्तों सहित वहाँ विराजमान थे ही। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के व्याख्यान वाचस्पति श्री विद्याविनयजी महाराज भी विराज रहे थे। आपकी उदारता से दोनों संतों के प्रवचन एक ही मंच से हो रहे थे। वहाँ मूर्तिपूजक संघ का उपधान तप भी चल रहा था। बाहर से १०-१५ हजार नर-नारी प्रवचन लाभ लेने आए हुए थे। महावीर जयन्ती उत्सव सभी लोगों ने मिलकर आनन्द पूर्वक मनाया।

उज्जैन में यह प्रथम अवसर था जब श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और दिगम्बर बन्धुओं ने मिलकर महावीर जयन्ती उत्सव मनाया। जैन बोर्डिंग के लिए १५००० रुपये का चन्दा भी हुआ।

भवन; स्थानक बना

गुरुदेवश्री की वाणी में एक आश्चर्यजनक शक्ति थी कि जब भी आप किसी को कोई उपदेश

या प्रेरणा देते तो एक बार तो पत्थर भी पिघल जाता। नया और अनजान व्यक्ति भी आपके उपदेश से प्रभावित होकर संकल्पबद्ध बन जाता।

उज्जैन चातुर्मास की घटना है। सुन्दरबाई नाम की एक राजपूत महिला आपके उपदेशों से प्रभावित होकर जैन श्राविका बन गई। एक दिन उसने आपसे सामायिक का नियम लिया। नियम दिलाने के बाद आपने कहा—

"तुमने नियम ले तो लिया है किन्तु धर्म-क्रियाओं के लिए शांत-एकांत स्थान की आवश्यकता होती है। स्थानक ही उपयुक्त होता है।"

महिला विचार में पड़ गई, बोली—

"ऐसा स्थान यहाँ फ्रीगंज में तो कोई नहीं है।"

"है तो नहीं, लेकिन होना अवश्य चाहिए, जहाँ सभी भाई धर्म-क्रियाएँ कर सकें।"

सुन्दरबाई कुलीन महिला थी। गुरुदेवश्री के इन शब्दों से उसकी धर्म-भावना जागृत हुई, बोली—

"गुरुदेव! मेरे पास कई भवन हैं। उनमें से एक मैं श्रीसंघ (उज्जैन) को समर्पित करती हूँ। साथ ही २५०० रुपये भी, जिससे उसका रख-रखाव भी होता रहे।"

सुन्दरबाई का भवन स्थानक बन गया। उज्जैन श्रीसंघ ने आभार प्रदर्शित किया तो सुन्दरबाई ने इसे गुरुदेव की कृपा कहकर अपनी विनम्रता का परिचय दिया।

चातुर्मास के दिनों में आप नमकमंडी और नयापुरा दोनों स्थानों पर विराजे। एक दिन जैन दिवाकरजी महाराज एवं दिगम्बर पं० मुनि श्री वीरसागरजी महाराज दोनों एक स्थान पर मिले और बहुत देर तक प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप हुआ। यह पहला ही सुअवसर था। इस मिलन से दोनों सम्प्रदायों के श्रावकों में एकता की भावना बढ़ी।

इस प्रकार उज्जैन चातुर्मास के समय काफी धर्म-प्रभावना और जैन संघ में ऐक्य स्थापित हुआ।

चातुर्मास के बाद आपश्री देवास पधारे। हिन्दू-मुस्लिम सभी ने मिलकर व्याख्यान का लाभ लिया। कैदियों ने भी व्याख्यान सुने और अपने पापों के लिए पश्चात्ताप किया एवं शराब, चोरी आदि का त्याग किया।

पचासवाँ चातुर्मास (सं० २००२) : इन्दौर

इन्दौर में जैन दिवाकरजी के चार व्याख्यान राय बहादुर भण्डारी मिल में हुए। नागरिक एवं मिल मजदूरों ने काफी संख्या में उपदेश श्रवण का लाभ लिया। छह-सात हजार के लगभग श्रोता हो जाते थे। मिल मजदूरों ने सैकड़ों की संख्या में मांस-मदिरा सेवन और पर-स्त्रीगमन के त्याग किये।

पिछले दो व्याख्यानों के लिए मिल मजदूरों ने भण्डारी साहब के द्वारा जैन दिवाकरजी महाराज से आग्रह करवाया था।

वंशी प्रेस के समीप कई गरीबों की झोंपड़ियाँ जल गई थीं। उनकी सहायता के लिए भंडारी साहब ने व्याख्यान में काफी चन्दा करवा दिया।

भण्डारी हाईस्कूल में जब गुरुदेव पधारे तो दर्शन करने के लिए झाबुआ दरबार आए। वार्तालाप कर दरबार ने प्रसन्नता प्रकट की।

गुरुदेव के इन्दौर पधारने पर जनता एवं मिलों के मजदूर बहुत बड़ी संख्या में आए। बहुत
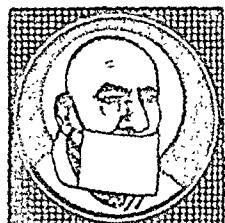
लम्बा जुलूस था। एम० टी० क्लोथ मार्केट के वाडेंड वेअर हाउस में गुरुदेवश्री का चातुर्मास हुआ।

२७ संत एवं २७ ही महासतीजी महाराज के विराजने से बहुत ही धर्मध्यान हुआ। पर्युषण पर्व में बाहर के करीब ढाई हजार बन्धु आए थे। व्याख्यान में ६ हजार से अधिक की उपस्थिति हो जाती थी। तपस्याओं की झड़ी लग गई। एक दिन से लगाकर २१ दिन तक की तपस्याएँ हुईं। अनेक पचरंगिए हुईं। घोरतपस्वी श्री नेमीचन्दजी महाराज ने ४८ दिन की, घोर तपस्वी श्री सागरमलजी महाराज ने २८ दिन की एवं घोर तपस्वी श्री माणकचन्दजी महाराज ने ३९ दिन की तपस्याएँ कीं। इन तपस्याओं की पूर्णाहुति समारोहपूर्वक मनाई गई। एक हजार गरीबों को भोजन दिया गया।

श्री सुगनमलजी भण्डारी की प्रेरणा से श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम को दस हजार रुपये के वचन मिले तथा समाज के अन्य दानवीर श्रीमंतों एवं सद्गृहस्थों ने मुक्तहस्त से २०००० रुपये का दान देकर इस संस्था की जड़ें मजबूत कीं। अन्य संस्थाओं को भी दान दिया गया।

'निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह' मनाया गया। लोंकाशाह जयन्ती आपके सान्निध्य में बड़ी धूमधाम से मनाई गई। राय बहादुर सेठ कन्हैयालालजी भण्डारी व श्री नन्दलालजी मारू ने भी भाषण किया। महिला सम्मेलन एवं वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ भी हुईं।

इस चातुर्मास में सेठ श्री भँवरलालजी धाकड़ ने भी सेवा का खूब लाभ लिया।

एक बार एम० टी० क्लोथ मार्केट के प्रांगण में जैन दिवाकरजी महाराज का सार्वजनिक प्रवचन हो रहा था। इन्दौर के बड़े-बड़े लोग सम्मिलित थे। सर सेठ हुकमचन्दजी भी आए थे। सेठजी ने गुरुदेव को वन्दन किया, तो आपने कहा—'दया पालो सेठजी!' लेकिन दूसरे ही क्षण गुरुदेव ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—'सेठजी को दया पालो कहा है तो आप लोग यह न समझें कि इनसे हमें कुछ स्वार्थ है। साधुओं को इनसे किसी प्रकार की कामना नहीं है। किन्तु ये धर्मप्रिय व्यक्ति हैं। इनके पास कोरा धन ही नहीं है, धन के साथ धर्म भी है। इनका धर्म-प्रेम देखकर ही हमने इन्हें सेठजी कहा है। अतः 'गुणिषु प्रमोदं' के नाते कहा है।' यह थी आपकी वाणी की जागरूकता!

इक्यावनवाँ चातुर्मास (सं० २००३) : घाणेराव सादड़ी

संवत् २००३ का आपश्री का चातुर्मास घाणेराव सादड़ी में हुआ। प्रवचनों में वहाँ के ठाकुर साहब भी उपस्थित होते थे।

बावनवाँ चातुर्मास (सं० २००४) : ब्यावर

जैन दिवाकरजी महाराज का सं० २००४ का वर्षावास ब्यावर में हुआ। खूब धर्म-प्रभावना हुई। यहाँ आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर खटीक जाति का एक किशोर नाथूलाल जीव-हिंसा से विरत हो गया।

इस चातुर्मास में भारत विभाजन के कारण हजारों जैन परिवार पाकिस्तान से भारत आये। उनकी दशा बड़ी हृदयद्रावक थी। आपश्री के उपदेशों से विपद्ग्रस्त जैन बन्धुओं की सहायता की गई।

ब्यावर चातुर्मास पूर्ण करने के बाद अनेक स्थलों को पवित्र करते हुए आप जूनिया पधारे। जूनिया महाराज ने भावभरा स्वागत किया, प्रवचन सुने और त्याग किये। सरवाड़ पधारने पर एक
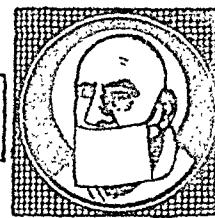
व्याख्यान मुसलमानों के आग्रह पर दरगाह में भी हुआ। मुसलमान स्त्रियों ने भी भाषण सुना। कइयों ने त्याग किए।

गाँधी स्मारक की चर्चा चल रही थी। गुरुदेव के सन्देशानुसार श्रावकों ने प्रधान मन्त्री और गृहमन्त्री को तार दिया कि—'गाँधीजी की स्मृति को अहिंसक रूप देना है तो सम्पूर्ण भारत में दूध देने वाले (दुधारु) और कृषि योग्य पशुओं का वध बन्द कर दिया जाय।'

आप जहाँ-जहाँ पधारे, सर्वत्र हिन्दू-मुसलमानों ने आपके प्रवचनों में समान रूप से भाग लिया। सभी में धर्म-जागृति होती। उन दिनों आपके प्रवचन 'बदले की भावना छोड़ो' इस विषय पर होते थे। इन प्रवचनों का हिन्दू-मुसलमान दोनों पर काफी प्रभाव पड़ा तथा साम्प्रदायिक द्वेष की अग्नि शान्त करने में बड़ा सहयोग मिला।

चातुर्मास के बाद विहार करते हुए आपश्री पाली पधारे। श्रमण-संगठन के लिए कान्फ्रेंस के प्रयत्न चल रहे थे। यहाँ गुरुदेवश्री के प्रयत्नों से संघ ऐक्य की योजना बनी।

संघ ऐक्य योजना

जैन कान्फ्रेन्स संघ ऐक्य के लिए बहुत समय से प्रयत्नशील था। संघ ऐक्य कैसे हो? उसका आधार क्या हो? प्रारम्भ में क्या करना चाहिए? इन सब बातों की चर्चा चल रही थी। कान्फ्रेन्स के नेताओं के विचार थे—

"साम्प्रदायिक मतभेद और ममत्व के कारण स्थानकवासी जैन समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है। साधु-साधुओं में और श्रावक-श्रावकों में मतभेद मौजूद हैं और बढ़ते जा रहे हैं। समाज-कल्याण के लिए ऐसी परिस्थिति का अन्त कर ऐक्य और संगठन करना आवश्यक है। साधु और श्रावक दोनों के ही सहकार और शुभ भावना द्वारा ही यह कार्य सफल होगा। अतः साधु-साध्वी और कान्फ्रेन्स को मिलकर इस कार्य में लगना चाहिए। इस कार्य के लिए तात्कालिक कुछ नियम ऐसे होने चाहिए कि जिससे ऐक्य का वातावरण उत्पन्न हो और साथ-साथ एक ऐसी योजना बनानी चाहिए कि संगठन स्थायी और चिरंजीवी बने।"

गुरुदेव उस समय पाली में विराजमान थे। कान्फ्रेन्स का डेपूटेशन संघ ऐक्य की भावना लेकर गुरुदेव के पास आया। आपश्री ने पूछा—

"आप लोगों के पास क्या योजना है? प्राथमिक योजना क्या है?"

गुरुदेव के इस प्रश्न पर डेपूटेशन के लोग चुप रह गए। तब गुरुदेव ने फिर पूछा—

"बिना योजना के संघ ऐक्य का कार्य आगे कैसे बढ़ेगा?"

डेपूटेशन ने कहा—

"आप ही बताइये।"

तब गुरुदेव ने कहा—

"आप लोग यह बातें सन्तों से मनवा सकें तो आगे का संघ ऐक्य का कार्य पूरा हो जायगा। नहीं तो आपका यह सब विचार व्यर्थ ही रहेगा।"

नेताओं ने जब पूछा कि 'वे बातें कौन सी हैं जिनसे कि संतगण निकट आ सकें?' तब गुरुदेव ने निम्न बातें उन लोगों को लिखवाई—

(१) एक गाँव में एक चातुर्मास हो।
(२) एक गाँव में एक ही व्याख्यान हो।
(३) सब साधु, श्रावक कान्फ्रेन्स की टीप के अनुसार एक संवत्सरी करें।
(४) सब साधु-साध्वी अजमेर सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार एक प्रतिक्रमण करें।
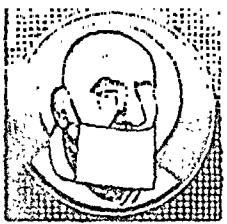
(५) किसी सम्प्रदाय की तरफ से अन्य सम्प्रदाय के सम्बन्ध में निन्दात्मक लेखन नहीं होना चाहिए।

(६) सम्प्रदाय मंडल या समितियाँ मिटा दी जायँ।

(७) कोई साधु-साध्वी अपने सम्प्रदाय को छोड़कर अन्य सम्प्रदाय में जाना चाहे तो इनके पूज्य प्रवर्तक या गुरु की स्वीकृति विना न लिया जाय।

यह सात बातें गुरुदेव ने लिखवाकर अपने सम्प्रदाय के सभी मुनियों की ओर से इनके लिए सर्वप्रथम स्वीकृति भी फरमाई।

(१) जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने उपरोक्त बातों की स्वीकृति फरमाई।

मिती पौष बदी १०, सं० २००५ —दः देवराज सुराना

ता० २५-१२-४८, पाली

तारीख २५ के बाद ही अन्य मुनियों की स्वीकृतियाँ प्राप्त हुई हैं।

बम्बई से निकलने वाले जैन प्रकाश के ता० ८-१२-४९ वर्ष ३७, अंक ७ से पता चलता है कि १२ मास के प्रयास के बाद भी स्वीकृतियाँ होना बाकी थी। संघ-एकता के लिए सर्वप्रथम कदम उठाने वालों में श्री जैन दिवाकरजी महाराज अग्रणी थे।

तिरेपनवां चातुर्मास (सं० २००५) : जोधपुर

सं० २००५ का आपश्री का चातुर्मास जोधपुर में हुआ। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने वेश्यावृत्ति आदि व्यसनों का त्याग कर दिया।

इस चातुर्मास में तपस्वी श्री नेमीचन्दजी महाराज ने ४३ दिन की तपस्या की। पूर्ति दिन पुस्तकों और श्रीफलों की प्रभावना की गई। बहुत त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

जोधपुर में गुरुदेव के खास भक्तजनों की एक मीटिंग हुई। उसमें स्थानकवासी साधुओं संगठन एवं प्रेम बढ़ाने के लिए और एक समाचारी बनाकर संगठन को सुदृढ़ करने के प्रस्ताव प किये गए।

जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके जैन दिवाकरजी महाराज ने अनेक ग्रामों में भ्रमण करते हु चारभुजाजी की ओर प्रस्थान किया।

रतलाम निवासियों की उत्कट इच्छा आपका चातुर्मास रतलाम में कराने की थी, पर वहाँ (रतलाम में) के लोग तीन संघों में विभक्त थे—(१) पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज के अ यायी, (२) पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के अनुयायी, और (३) पूज्यश्री मन्नालालजी मह राज के अनुयायी। अतः कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधि श्री खीमचन्द भाई वोरा, श्री दुर्लभजी भ खेतानी आदि ने तीनों अनुयायियों में से चुन कर एक कमेटी बनाई। इस कमेटी ने सर्वानुमति जैन दिवाकरजी महाराज से रतलाम चातुर्मास की प्रार्थना की। विरोध में समन्वय का मा प्रस्तुत किया। प्रमुख रूप से इस संघ के समन्वय की कड़ी को जोड़ने में श्री नाथूलालजी सेठिय श्री लखमीचन्दजी मुणत और श्री बापूलालजी बोथरा ने अपना बहुत योगदान दिया।

श्री बापूलालजी बोथरा, श्री मांगीलालजी बोथरा, सेठ चाँदमलजी चाणोदिया के अथ प्रयासों से २१ वर्षों के बाद जोधपुर में रतलाम स्पर्शने की स्वीकृति मिली थी और चैत्र कृष्णा ५ सं० २००५ को चातुर्मास की स्वीकृति मिली।

इस स्वीकृति से रतलाम श्रीसंघ में अपार हर्ष छा गया। बाहर गाँव के धर्म-प्रेमियों क भी तार और पत्रों द्वारा समाचार दे दिया गया।

सांध्य बेला : [वि० सं० २००७ कोटा]
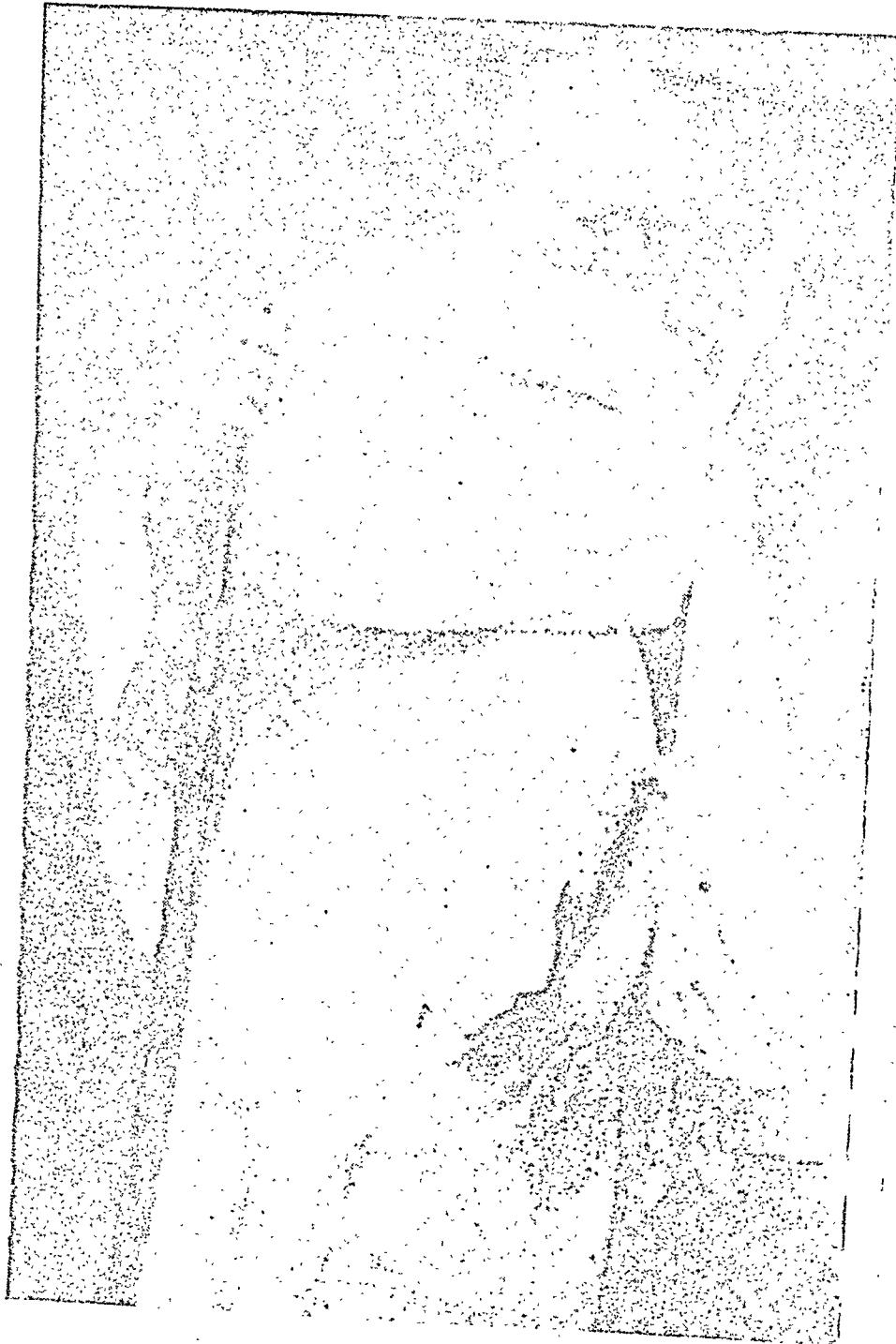
महाप्रयाण से पूर्व श्री जैन दिवाकर महाराज की रुग्णावस्था का एक चित्र
रोग व जरा ने शरीर को शिथिल बना दिया, पर आत्मबल आज भी प्रचंड है ।

और यह है अन्तिम महायात्रा का दृश्य [वि० सं० २००७ कोटा]
हजारों-हजार शोकाकुल नर-नारी गुरुदेव की अन्तिम यात्रा (श्मशान यात्रा)
में वैकुण्ठी के साथ चल रहे हैं।
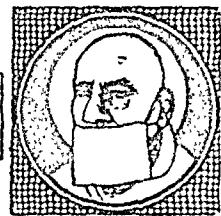
चौवनवाँ चातुर्मास (सं० २००६) : रतलाम

गुरुदेव जब रतलाम पधार रहे थे तो रतलाम से २ मील दूर तीनों सम्प्रदायों के तीन-चार सौ नर-नारी सेवा में उपस्थित हुए। वार्तालाप किया। बड़ा ही मधुर वातावरण रहा।

हजारों नर-नारियों के जयघोष के साथ गुरुदेव ने रतलाम में प्रवेश किया।

जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन नीमच चौक में होने लगे। श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। पंडाल पहले से ही बहुत बड़ा था। लेकिन उपस्थिति जब नगर के छह हजार और बाहर के पाँच हजार—इस तरह लगभग १०-११ हजार श्रोताओं की होने लगी तो पंडाल और भी बढ़ाना पड़ा। प्रवचनों में हिन्दू, मुसलमान, बोहरे, जैन-जैनेतर एवं अधिकारीगण सभी समान रूप से भाग लेते और वाणी का लाभ उठाते। पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के सम्प्रदाय के श्रावक-श्राविका भी प्रवचन लाभ लेते थे। इस विशाल उपस्थिति को देखकर श्री सोमचन्द तुलसीभाई को कहना पड़ा कि—'रतलाम में प्रवचनों में इतनी उपस्थिति मेरे देखने में नहीं आई।'

'निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह' मनाया गया। तपस्वी श्री माणकचन्दजी महाराज ने ३८ दिन की तपस्या की। इसके उपलक्ष में कसाईखाने बन्द रहे, गरीबों को मिष्ठान्न खिलाया गया और विभिन्न संस्थाओं को दान दिया गया। तपस्वी श्री बसन्तीलालजी महाराज ने पंचोले-पंचोले पारणे किये।

आसोज सुदि में जैन दिवाकरजी महाराज की सेवा में ब्यावर, उदयपुर, मंदसौर, जावरा, इन्दौर आदि अनेक स्थानों के मुख्य-मुख्य व्यक्ति उपस्थित हुए थे। उस समय महाराजश्री के मस्तिष्क में एक विचार आया कि—'पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज का सम्प्रदाय कई वर्षों से दो भागों में विभक्त है। उनमें ऐक्य किस प्रकार हो सकता है?' आपने कुछ प्रमुख लोगों के सामने अपने विचार व्यक्त किये।

उस समय पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज जयपुर में विराजमान थे।

श्री देवराजजी सुराणा ब्यावर, श्री बापूलालजी बोथरा, श्री सुजानमलजी मेहता, जावरा; श्री सौभागमलजी कोचेट्टा, जावरा; श्री चाँदमलजी मारू, श्री चाँदमलजी मुरडिया, मन्दसौर;—ये छह व्यक्ति जयपुर पहुँचे। वहाँ करीब ५ दिन ठहरे। पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज को श्री जैन दिवाकरजी महाराज का सन्देश दिया। उस पर विचार करके पूज्यश्री गणेशीलाल जी महाराज ने सात बातें एकीकरण के सम्बन्ध में लिखवाईं। उनमें एक बात यह थी कि एक आचार्य होना चाहिए।

जैन दिवाकरजी महाराज ने सभी बातों के साथ एक आचार्य की बात भी स्वीकार कर ली। किन्तु पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज को आचार्य बनाने की सहमति देकर अपनी उदारता भी प्रदर्शित की। लेकिन साथ ही साथ यह सुझाव भी दिया कि—'क्योंकि अनेक वर्षों से अलग रहे हैं इसलिए आचार्यश्री के सम्मिलित संघ संचालन में पूज्यश्री मन्नालालजी महाराज के सम्प्रदाय के मुख्य मुनिराज की सम्मति अवश्य ले ली जाय।'

यह सन्देश लेकर श्री चंपालालजी बंब जयपुर पहुँचे। परन्तु पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया, और चातुर्मास बाद अलवर की ओर विहार कर दिया।

कार्तिक शुक्ला ६ को जैन कान्फ्रेंस का एक डेपूटेशन (शिष्टमंडल) अध्यक्ष श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया के नेतृत्व में आया। महामंत्री श्री चीमनलाल पोपटलाल शाह, संयुक्त मंत्री

श्री गिरधरभाई दामोदर दफ्तरी, श्री धीरजलालभाई तुरखिया, श्री महासुखभाई, सेठ देवराजजी सुराना आदि सज्जन इस शिष्टमंडल में सम्मिलित थे। शिष्टमंडल के सभी सज्जन तीन दिन तक रतलाम में रहे। संघ ऐक्य योजना का शेष कार्य पूर्ण करने के उद्देश्य से जैन दिवाकरजी महाराज ने संघ ऐक्य योजना की महत्ता एवं डेपूटेशन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामना प्रगट की। ऐक्य के सम्बन्ध में चर्चा होने पर उनको सात बातें और उन बातों पर सुझाव बताए। श्री कुन्दनलालजी फिरोदिया ने यह सब जानकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि 'श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने बड़ी उदारता के साथ सात बातें स्वीकार कीं—यह बहुत प्रसन्नता की बात है। आपकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। सातवीं कलम (बात) में दिया हुआ आपका सुझाव वास्तविक है कि इतने दिनों से अलग रहे हैं तो संघ ऐक्य बराबर निभे इसके लिए आचार्यश्री एक मुनिराज की सम्मति से संघ संचालन करें तो श्रेष्ठ है।'

अध्यक्ष श्री फिरोदियाजी ने आपसे आशीर्वाद की याचना करते हुए कहा—

"आपने पहले पहल पाली (मारवाड़) में हमें शुभाशीष प्रदान की थी। उसी प्रकार अब इस योजना के दूसरे वांचन के समय भी हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।"

जैन दिवाकरजी महाराज ने डेपूटेशन एवं कान्फ्रेंस के सद्कार्यों की प्रशंसा की एवं अपना पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया तथा रतलाम संघ को भी प्रेरणा दी कि समय को पहचान कर संगठन करना चाहिए।

कार्तिक शुक्ला १३ को गुरुदेव की ७३वीं जयन्ती मनाई गई। अनेक मुनियों एवं श्रावकों के भाषण-भजन आदि हुए। गुरुदेव के गुणगान किये, चरणों में श्रद्धा-भक्ति के पुष्प चढ़ाए, दीर्घायु के लिए कामना की। अनेक तरह के त्याग-प्रत्याख्यान, तपस्याएँ भी हुईं।

जैन दिवाकरजी महाराज ने फरमाया कि 'गुणगान तो भगवान महावीर एवं जैनधर्म के होने चाहिए। मैं तो चतुर्विध संघ का सेवक हूँ और यथाशक्ति सेवा कर रहा हूँ और करता रहूँगा।"

रात्रि को सेठ कन्हैयालालजी भंडारी इन्दौर की अध्यक्षता में सभा हुई जिसमें विद्वान् वक्ताओं और कवियों ने गुरुदेव के गुणगान किये।

कई संस्थाओं की मीटिंगें भी हुईं।

इस चातुर्मास में श्री कन्हैयालालजी फिरोदिया आपश्री के सम्पर्क में आए। फिरोदियाजी ने साम्प्रदायिक कारणों से किसी संत के प्रवचन सुनने की तो बात ही क्या, ३५ वर्ष की आयु तक किसी संत के दर्शन भी नहीं किये थे। ऐक्य का वातावरण बना, चातुर्मास में आना-जाना प्रारम्भ हुआ। प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण करते ही उनकी कवि-वाणी फूट पड़ी—

मेरा प्रणाम लेना—

(तर्ज—ओ! दूर जाने वाले)

ओ जैन के दिवाकर ! मेरा प्रणाम लेना।
आया हूँ मैं शरण में, मुझको भी तार देना ॥टेक॥
करके कृपा पधारे, गुरुवर नगर हमारे।
उपकार ये तुम्हारे, भूलेंगे हम कभी ना ॥ १ ॥
वाणी अति सुहानी, निशदिन सुनाते ज्ञानी।
समझाते हैं खुलासा, है साफ-साफ कहना ॥ २ ॥
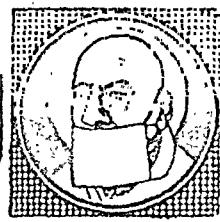
चमके सभा के अन्दर, तारों में चाँद जैसे।
सूरत निरख-निरख कर, तरपत हुए हैं नयना ॥ ३ ॥
तारन-तरन तुम्हीं हो, प्यारे गुरु जहाँ में।
तुमको जो कोई छोड़े, उसका कहाँ ठिकाना ॥ ४ ॥
गफलत में सो रहा था, बरबाद हो रहा था।
अब खुल गई है आँखें, हीरे का मोल जाना ॥ ५ ॥
करना कसूर मेरा, सब माफ अन्न-दाता।
अर्जी करे "कन्हैया", माफी जरूर देना ॥ ६ ॥

रतलाम श्रीसंघ के अध्यक्ष श्री नाथूरामजी सेठिया ने चातुर्मास समाप्ति पर नीम चौक संघ की ओर से 'श्री महावीर नवयुवक मंडल' एवं 'श्री धर्मदास मित्रमंडल' को चाँदी की तश्तरी दी। कर्मचारियों, जैन स्कूल की अध्यापिकाओं तथा स्वयंसेवकों आदि को वस्त्र एवं नकद रकम से सम्मानित किया।

विहार के दिन श्री चाँदमलजी गाँधी ने सपत्नीक शीलव्रत धारण किया। खुशी में २०१ रुपये उछाल किये। निषेध करने पर भी अन्य जैन-अजैन बन्धुओं ने लगभग १००० रुपये उछाल दिये।

स्टेशन पर जैन-अजैन जनता एवं सिनेमा मालिक मुल्ला नजर अलीजी ने व्याख्यान देने की पुरजोर प्रार्थना की। परिणामस्वरूप दो-तीन व्याख्यान वहाँ हुए।

इस प्रकार जैन दिवाकरजी महाराज का रतलाम (सं० २००६) का चातुर्मास अत्यन्त गौरवशाली रहा। इसमें संघ ऐक्य योजना में प्रगति हुई, कान्फ्रेंस के डेपूटेशन को सफलता मिली। गुरुदेव के प्रवचनों में श्रोताओं की अत्यधिक संख्या रही। आपके उपदेशों से नवयुवकों में अपूर्व उत्साह भरा तथा धर्म जागृति हुई। पर्युषण में चार-पाँच हजार दर्शनार्थी बाहर से आए। इन सब कारणों से इसे ऐतिहासिक चातुर्मास की संज्ञा दी गई है।

रतलाम चातुर्मास में ही आपको ज्ञात हुआ कि व्यावर में स्थानकवासी सम्प्रदाय के मुनिवरों का सम्मेलन होने की चर्चा चल रही है। इस सम्मेलन में संगठन पर विचार-चर्चा होनी थी। नागदा में मालवकेसरी पं० मुनि सौभागमलजी महाराज का मिलन होने पर विचार-विमर्श करके उपाध्याय पं० प्यारचन्दजी महाराज तथा मालवकेसरीजी महाराज का सम्मेलन में जाने का निश्चय हुआ। उपाध्याय पं० मुनि प्यारचन्दजी महाराज को व्यावर भेजते समय जैन दिवाकरजी महाराज ने अपना सन्देश दिया—

"संघ के कल्याण के लिए अपने सम्प्रदाय की सभी उपाधियों का त्याग कर देना। यदि सभी मुनिवर एकमत हो जायें तो आचार्य अपने संतों में से मत बनाना। आचार्यश्री आनन्द ऋषिजी महाराज को ही आचार्य स्वीकार कर लेना।"

उपाध्यायजी महाराज व्यावर पहुँचे। ६ सम्प्रदायों के मुनिवरों ने विचार-विमर्श करके एक समाचारी का निर्माण कर लिया; किन्तु एक आचार्य स्वीकार करने में गतिरोध उत्पन्न हो गया। ५ सम्प्रदाय तो सहमत हो गए; किन्तु चार सहमत नहीं हुए। फलतः 'श्री वीर वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ' की स्थापना हुई। श्री आनन्दऋषिजी को आचार्य बनाया गया।

उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने रामपुरा में गुरुदेव के दर्शन किए। यहाँ महावीर जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई।

एक दिन एक शिष्य ने आपसे कहा—

"गुरुदेव ! अपनी सम्प्रदाय की आचार्य आदि पदवियाँ समर्पित करके हमें क्या मिला? हम तो घाटे में ही रहे।"

आपने समझाया—

"हमें वणिक्वृत्ति से घाटा-नफा नहीं सोचना चाहिए। संघ-लाभ के लिए सर्वस्व समर्पण करना भी उचित है। आज का बीज जब वृक्ष बनेगा तब एकता के मधुर फल आएँगे।"

इन शब्दों से प्रकट होता है कि जैनदिवाकरजी महाराज का हृदय कितना उदार था और कितनी निष्ठा थी संघ एकता के प्रति !

अगर बात मान लेता

रामपुरा की ही एक घटना है। प्रभात बेला में एक श्रावक आपके पास आया और चरण-स्पर्श करके मांगलिक सुनने की इच्छा प्रगट की। आपने मांगलिक सुनाकर कहा—'भद्र ! जाने से पहले नवकार मन्त्र की एक माला फेर लो।' श्रावक जल्दी में था, बोला—"मैं नित्य सामायिक करता हूँ। उसी समय नवकार मन्त्र की माला भी फेर लेता हूँ। इस समय जल्दी में हूँ।' और वह चला गया।

घर पहुँचा तो दरवाजे पर पुलिस का सिपाही खड़ा मिला। 'दरोगाजी बुला रहे हैं' सिपाही के मुँह से ये शब्द सुने तो उसके साथ जाना ही पड़ा। थाने में उस समय दरोगाजी नहीं थे। श्रावक को बैठना पड़ा। शाम को चार बजे जब दरोगाजी आए तब पता चला कि उन्होंने तो उसके नाम-राशि किसी अन्य व्यक्ति को बुलाया था, लेकिन नाम-भ्रान्ति के कारण पुलिस वाले उसे ही बुला लाये। आखिर सायंकाल छुट्टी मिली। अब श्रावकजी को ध्यान आया कि 'महाराज साहब ने तो पहले ही भविष्य की ओर संकेत कर दिया था। मेरी ही भूल हुई। अगर गुरुदेव की बात मान लेता····।' उसने स्थानक में आकर अपनी भूल स्वीकार की और संतों के वचन के अनुसार आचरण करने का निश्चय कर लिया।

रतलाम से नागदा सुमेल होकर आपश्री भाणपुरा पधारे। तीनों जैन सम्प्रदायों ने मिलकर ऋषभ जयन्ती मनाई। ऋषभदेव भगवान को किसी न किसी रूप में सभी धर्म मानते हैं—यह आपस विस्तृत रूप में यहाँ बताया।

सौंधवाड़ के अनेक गाँवों में त्याग, प्रत्याख्यान और धर्म-प्रचार हुआ।

समता के सागर

सं० २००७ का चातुर्मास करने के लिए आपके चरण कोटा की ओर बढ़ रहे थे। मार्ग में आपश्री रामगंज मंडी में रुके। प्रवचन होने लगे। उसी समय श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के एक आचार्य भी वहाँ पधारे। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों ने एक मंच से प्रवचन देने की प्रार्थना की। आपने सहर्ष स्वीकृति दे दी। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार्यश्री ने जैन दिवाकरजी महाराज की कुछ अनर्गल आलोचना की। उसके बाद आपका प्रवचन हुआ। आलोचना के प्रति आपने एक शब्द भी न कहा; केवल वीतराग वाणी ही सुनाई। आपके व्याख्यान से श्रोता बहुत प्रभावित हुए।

दोपहर को मुनि श्री मनोहरलालजी महाराज (मस्तरामजी) ने आपसे पूछा—'आपने खोटी आलोचना का उत्तर क्यों नहीं दिया ?' तो आपने फरमाया—'मुनिजी ! जनता वीतराग

↑ गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी महाराज के विहार का एक दृश्य

एक मंच पर प्रवचन करते हुए श्वे० मू० आचार्य श्री आनन्दसागरजी

↓ गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी म० एवं दिगम्बर आचार्यश्री सूर्यसागर जी।
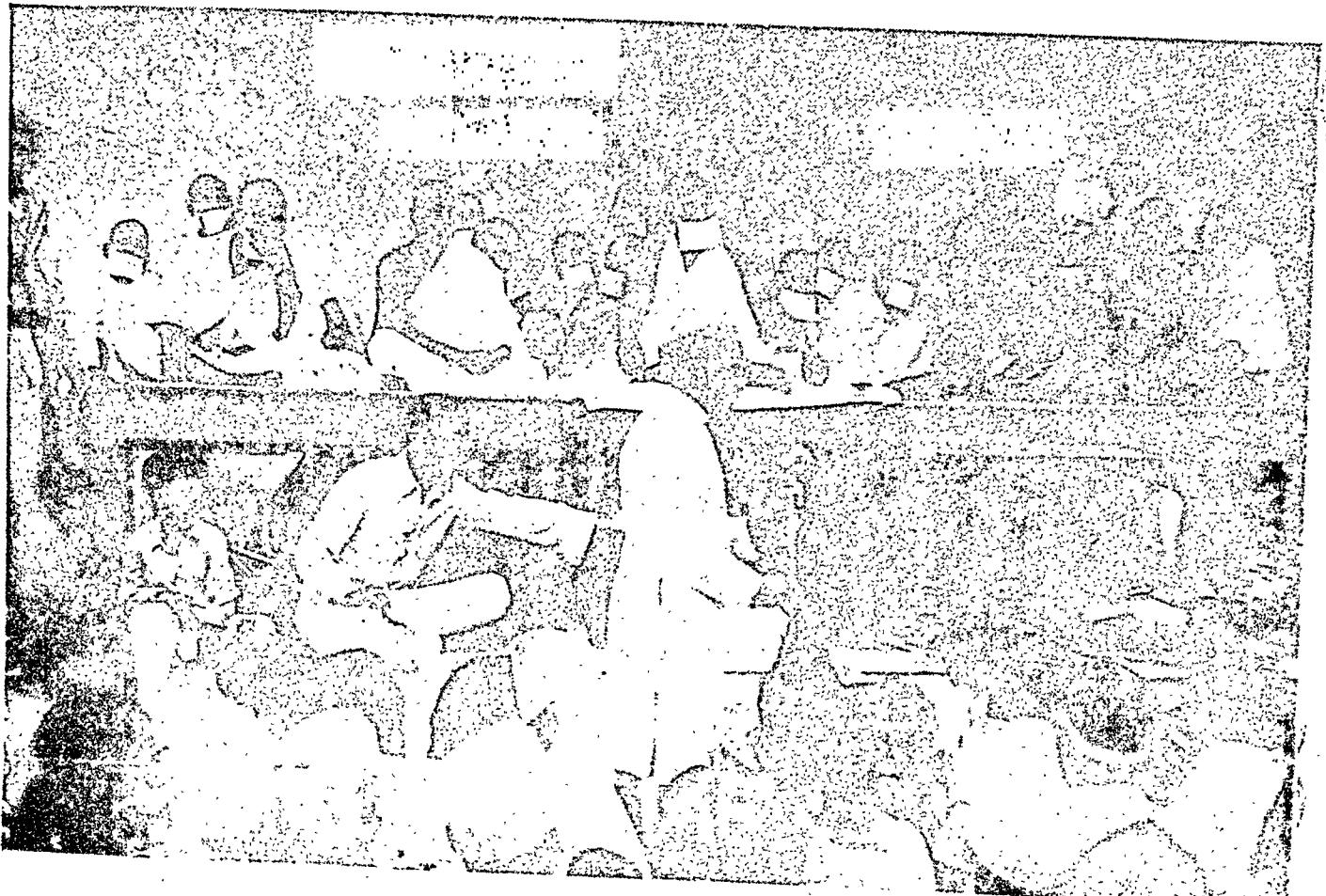
↑ नन्दभवन के सामने अपार जन-समूह गुरुदेव के पार्थिव शरीर का अन्तिम दर्शन करने उमड़ रहा है।

कोटा में स्थित श्री जैन दिवाकर जी महाराज के स्मारक का विहंगम दृश्य। ↓

वाणी सुनने के लिए आती है, राग-द्वेष की बातें सुनने नहीं। जब उनका मन निर्मल होगा तो वे अपने शब्दों के लिए खुद ही पश्चात्ताप करेंगे।'

कितनी समता थी जैन दिवाकरजी के मन-मस्तिष्क में !

दिगम्बर जैन आचार्य के साथ सम्मिलित व्याख्यान

झालरा पाटन—इस क्षेत्र में मुनिराजों का आगमन कम ही होता है। वृद्धावस्था होते हुए भी जैन दिवाकरजी महाराज पधारे। उनके दस व्याख्यान हुए। इससे वहाँ काफी जागृति आई। जैन-अजैन सभी लोगों ने काफी संख्या में प्रवचन लाभ लिया। त्याग प्रत्याख्यान भी हुए।

आप मॉडक पधारे। दिगम्बर जैन आचार्यश्री सूर्यसागरजी महाराज वहाँ पहले से विराजमान थे। उन्होंने कुछ श्रावकों द्वारा सम्मिलित व्याख्यान की इच्छा प्रगट की। आपने सहर्ष स्वीकृति दे दी। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्यश्री आनन्दसागरजी महाराज भी वहीं थे। सम्मिलित व्याख्यान होने लगे। इन व्याख्यानों का श्रोताओं पर बहुत अधिक अच्छा प्रभाव पड़ा। प्रवचन समाप्ति पर आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज ने आपसे कहा—

"जिस समय आप रामगंज मंडी में प्रवचन दे रहे थे उस समय मैं गोचरी हेतु निकला था। मेरी इच्छा थी कि यदि आप आमंत्रित करें तो मैं भी दो शब्द कहूँ।"

"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन संकोच का कारण यह रहा कि किसी अन्य दिगम्बर साधु ने हमारे साथ आप जैसा सद्व्यवहार नहीं किया था।"—आपश्री ने बताया।

इसके बाद तीनों संतों में स्नेहपूर्ण बातचीत होती रही।

जैन दिवाकरजी महाराज मंडला में एक भवन की दूसरी मंजिल में विराज रहे थे। आचार्यश्री सूर्यसागरजी महाराज नीचे से निकले। जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा—

"मैं तो बड़ी देर से आपकी प्रतीक्षा में था।"

आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज ने नीचे से ही उत्तर दिया—

"आप हमसे बड़े हैं, अब तो कोटा में ही मिलन होगा।"

अन्तिम चातुर्मास (सं० २००७) : कोटा—ऐक्य का आधार

इस चातुर्मास में तपस्वी श्री माणकचन्दजी महाराज ने ४२ उपवास किये। उस दिन भी तीनों सम्प्रदायों के आचार्यों का व्याख्यान सम्मिलित हुआ।

श्री मोहनलालजी गोलेच्छा हमीरगढ़ वालों की दीक्षा गुरुदेव के पास हुई। पत्नी और पुत्र तथा परिवार छोड़कर आपने दीक्षा ली।

सं० २००७ में कोटा में दिगम्बर जैन आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज, श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आनन्दसागरजी महाराज और जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज—तीनों का वर्षावास हुआ।

प्रत्येक बुधवार को सम्मिलित प्रवचन होते। तीनों संत परस्पर वात्सल्यभाव प्रदर्शित करते।

जैन दिवाकरजी महाराज एकता की कड़ियाँ जोड़ने में लगे।

कलकत्ता से तेरापंथ समाज के अग्रगण्य दानवीर सेठ सोहनलालजी दुग्गड़ दर्शनार्थ आए। तीनों संतों में सौहार्द देखकर हर्षविभोर हो गए। प्रसन्न होकर हृदयोद्गार व्यक्त किए—

"पूज्य महाराज श्री ! आप तीन संतों के मिलन से तीन दिशाओं में तो उजाला हो गया है,
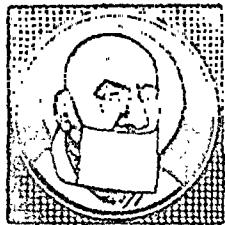
एक दिशा अभी बाकी है। यहाँ से आप तीनों ही जयपुर पधारें। मैं वहाँ आचार्यश्री तुलसी को लाने का पूरा-पूरा प्रयास करूँगा। यदि मैं सफल हो गया तो चारों दिशाएं जगमगा उठेंगी। जैन संघ के चारों सम्प्रदाय एक मंच पर आ जायेंगे और जिनशासन का बिगुल चारों दिशाओं में बज उठेगा।"

तीनों संतों ने भी जयपुर पधारने की भावना व्यक्त की।

लेकिन कौन जानता था कि दुग्गड़जी की भावना पूरी नहीं हो सकेगी। भवितव्यता कुछ और ही थी। कोटा वर्षावास जैन दिवाकरजी महाराज का अन्तिम चातुर्मास होगा और संघ ऐक्य की योजना धरी-की-धरी रह जायगी।

दिवाकरजी का ऊर्ध्वगमन

कोटा चातुर्मास पूर्ण होने में अभी १५ दिन शेष थे। आपकी नाभि के नीचे एक फुन्सी हो गई। पीड़ा बढ़ती गई। ज्वर भी हो गया। श्रद्धालुभक्तों ने चातुर्मास के बाद भी विहार न करने की प्रार्थना की। लेकिन आपका तन ही अस्वस्थ था; आत्मा नहीं। स्वस्थ-सबल आत्मा साधुचर्या में ढील नहीं आने देती।

चातुर्मास का समय पूरा होते ही कोटा नगर से विहार करके आप नयापुरा के नन्द-भवन में पधारे। यहाँ स्वास्थ्य और गिरा। लघुशंका परठते समय श्रीचन्दन मुनिजी को उसमें रक्त-बिन्दु दिखाई दिए। तुरन्त उपाध्याय श्री प्यारचंदजी महाराज को सूचित किया गया। उपाध्यायश्री ने डाक्टर बुलवाया। डॉक्टर मोहनलालजी ने पेट में फोड़े की आशंका की। कोटा श्रीसंघ चिन्तित हो गया। सभी संत सेवा में जुट गए, लेकिन रुग्णता बढ़ती गई। रुग्णता का समाचार बिजली के समान भारत भर में फैल गया। श्रद्धालुभक्त मोटर, रेल, विमान आदि के द्वारा आने लगे।

स्वर्गवास से तीन दिन पहले आपने उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज से दवाई लेने की अनिच्छा प्रगट की।

इस अवसर पर कई सन्त आपकी सेवा में तन-मन से लगे हुए थे। सेवामूर्ति तपस्वी श्री मोहनलालजी ने जो अग्लान भाव से सेवा की; वह चिरस्मरणीय रहेगी।

मार्गशीर्ष शुक्ला ९, रविवार की प्रातः बेला में पं० मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज, प्रवर्तक पं० श्रीहीरालालजी महाराज के परामर्श से जैन दिवाकरजी महाराज को उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने संथारा करवा दिया। कुछ मुनिगण शौच आदि शारीरिक कृत्यों से निवृत्त होने गए। उनके लौटने से पहले ही गुरुदेव ने शरीर त्याग दिया।

दिवाकर अस्त होता है, नीचे को गमन करता है और जैन दिवाकरजी महाराज के ज्ञानपुंज आत्मा ने ऊपर की ओर ऊर्ध्वगमन किया।

आपश्री के देह की अन्तिम यात्रा नन्दभवन से प्रारम्भ होकर नयापुरा, लाड़पुरा, सदर बाजार, घण्टाघर आदि स्थानों पर होती हुई स्वर्गीय सेठ केसरीसिंह जी बाफना की बगीची में उनकी छतरी के निकट चम्बल के तट पर पहुँची। अन्तिम यात्रा में १५-२० हजार से अधिक श्रद्धालुजनों की भीड़ थी। सभी ने श्रद्धा के पुष्प और आँसुओं का अर्घ्य दिया। मुनि श्री चौथमलजी महाराज का पार्थिव शरीर भस्म हो गया।

ऑल इण्डिया रेडियो पर आपके स्वर्गगमन का समाचार प्रसारित हुआ तो सबके मुख से ऐसे उद्गार निकले—'ऐसे सन्त सैकड़ों वर्षों में अवतरित होते हैं।'

जन-जन में व्याप्त संस्कार-स्मृति : एक झलक

आज के युग में शोक-संवेदनाएँ प्रगट करने का फैशन-सा हो गया है। विरोधियों के प्रति भी दो शब्द कहना आधुनिक शिष्ट और सभ्य समाज में आवश्यक-सा माना जाने लगा है, रीति-सी हो गई है यह, लेकिन वास्तविक संवेदना जन-हृदय का उद्गार होती है। ऐसी ही संवेदना स्मृति मौलाना नूरुद्दीन ने जैन दिवाकरजी के प्रति व्यक्त की थी। मौलाना मन्दसौर के निवासी थे और उनका पुत्र विक्टोरिया स्टेशन के पास बम्बई में घड़ीसाज का काम करता था। मौलाना एक बार बम्बई गए तो कांदावाड़ी जैन स्थानक के बाहर लगे मंडप को देखकर श्रावकों से पूछने लगे—

"क्या बाबा साहब जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज आने वाले हैं। उनका व्याख्यान कब होगा, कितने दिन रुकेंगे? मुझे बता दें तो मुझ नाचीज को भी सुनने का मौका मिल जाया करेगा।"

"उनका तो कुछ साल पहले कोटा में स्वर्गवास हो चुका है।" श्रावकों ने शोक-भरे शब्दों में बताया।

"या खुदा! यह तूने क्या किया?" मौलाना का शोकाकुल स्वर निकला—"ऐसी रूहानी ताकत हम से जुदा हो गई। काश! उस सच्चे फकीर का दीदार मुझे नसीब हो जाता। नेक दिल फरिश्ते तुझे मेरा सलाम! बार-बार सलाम!!"

कहते-कहते मौलाना की आँखें टपक पड़ीं, आवाज भर्रा गई। भारी कदमों से चले गए।

मौलाना की ओर श्रावकगण देखते ही रह गए।

यह थी वास्तविक संवेदना, जो इस्लाम धर्म के अनुयायी मौलाना के दिल से जुबान पर आ गई थी।

इसी प्रकार का प्रसंग पंजाबकेसरी प्रखरवक्ता श्रद्धेय श्री प्रेमचन्दजी महाराज के जीवन में सं० २००६ में आया। वे अपने शिष्य परिवार के साथ कुंथुवास की ओर गमन कर रहे थे। मध्यप्रदेश के एक जंगल में मार्ग भूल कर भटक गए थे। चारों ओर बीयावान जंगल था। नंगे पाँवों में काँटे चुभ रहे थे, लेकिन मुनिवर समता भाव से चल रहे थे। अचानक ही एक भील सामने आया और हाथ जोड़कर बोला—

"**मत्थएण वंदामि**' महाराज साहब! आप लोगों को कहाँ जाना है। इस बीहड़ जंगल में कैसे आ फँसे? मुझे बताएँ तो मैं आपको मार्ग पर लगा दूँ।"

वनवासी भील को इतनी शिष्ट भाषा बोलते देख श्रद्धेय मुनिजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपना गंतव्य स्थान 'कुंथुवास' बताया। भील बोला—

"बापजी साहब! वह रास्ता तो आप काफी दूर छोड़ आये हैं। चलिए, मैं बताता हूँ।"

भील आगे-आगे चल रहा था। श्रद्धेय श्री प्रेमचन्दजी महाराज ने पूछा—

"भील तू तो निर्जन वन में रहता है। लेकिन तेरे दिल में हम लोगों के प्रति इतनी सहानुभूति कैसे है? क्योंकि तुम लोग तो मांस-मदिरा आदि के सेवन करने वाले हो।"

"राम-राम केहिए बापजी! मांस-मदिरा का नाम भी मत लीजिए।"

मुनिगण और भी चकित रह गए। भील ने ही आगे कहा—

"बापजी! चौथमलजी महाराज ने मेरा जीवन ही बदल दिया। वे ही मेरे गुरुदेव थे। आप लोगों ने उनका नाम तो सुना ही होगा। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने शिकार, मांस-मदिरा का त्याग कर दिया है। अब खेती करके सुख-संतोषपूर्वक जीवन बिताता हूँ।"
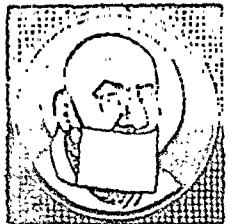
भील की बात सुनकर मुनिगण भाव-विह्वल हो गए।

इतना ही अन्तर है गगन में चमकने वाले दिवाकर और धर्मरूपी प्रकाश फैलाने वाले जैन दिवाकरजी महाराज में। गगन दिवाकर के अस्त होने पर चारों ओर अन्धकार फैल जाता है; लेकिन जैन दिवाकरजी महाराज के स्वर्गगमन के पश्चात् भी लोगों के हृदय में अन्धकार प्रवेश नहीं कर सका; जो शुभ संस्कार उस ज्ञान के प्रकाश पुंज ने लोगों के हृदय में भरे वे दमकते रहे, चमकते रहे।

शास्त्रीय शब्दों में व्यक्त करें तो हमारी भावना है—

इहं सि उत्तमो भन्ते, पच्छा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ॥

—पूज्यवर! इस लोक में आपका जीवन उत्तम है, परलोक में भी आपका जीवन उत्तम रहेगा और जो उत्तमोत्तम स्थान मोक्ष है, वहाँ भी आप कर्मरहित होकर जायेंगे।

दिवाकरोऽयम्

दिव्याकरो द्युतियुतोऽपि दिवाकरोऽयम्।
भव्याकरो विजित ज्ञान निशाकरोऽयम्॥
शिक्षाकरो हिमविचार सुधाकरो यम्।
विद्याधरो नरवरोऽपि दिवाकरोऽयम्॥
व्याख्यान-ज्ञान-जगतामधिकार स्वामी।
व्याख्यान-कोश-परितोष सुधारनामी॥
दिव्याकरो रुचिकरोऽत्र चतुर्थमल्लः।
सत्यार्थ-ध्यान-चरितार्थ विकासमल्लः॥

—श्रीधर शास्त्री

स्व० श्री जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज के सदुपदेशों से प्रभावित तथा प्रतिबोधित विशिष्ट शासक वर्ग तथा श्रीमंत जन
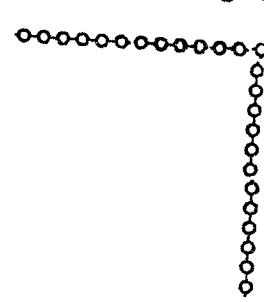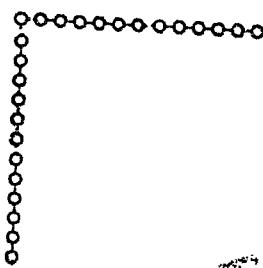
हिन्दू-कुल-सूर्य हिज हाइनेस महाराजाधिराज महाराणा सर फतहसिंह जी साहब बहादुर, जी.सी.एस.आई., जी.सी.आई.ई., जी.सी.व्ही. ओ. ऑफ उदयपुर (मेवाड़)

हिन्दू-कुल-सूर्य हिज हाईनेस महाराजाधिराज महाराणा सर भूपालसिंह जी साहब बहादुर के. सी. आई. ई. ऑफ उदयपुर (मेवाड़)

नवाब साहब श्री सर शेर मुहम्मदखाँ जी बहादुर, के. जी. सी. आई. ई. पालनपुर (गुजरात)

हिज हाइनेस महाराजा सर मल्हारराव बाबा साहेब पंवार, के. सी. एस. आई. देवास (मालवा)

श्रीमान राजा साहब अमरसिंहजी
बनेड़ा (मेवाड़)

मेजर सी. डब्ल्यू. एल. हार्वे चीफ मिनिस्टर
(अलवर)

गुरुदेव के अंग्रेज भक्त मि. एफ. जी. टेलर

राजराणा श्रीमान कुलेहसिंहजी साहब
बड़ी सादड़ी (मेवाड़)

श्रीमान राजराणा यशवंतसिंह जी साहब
देलवाड़ा (मेवाड़)
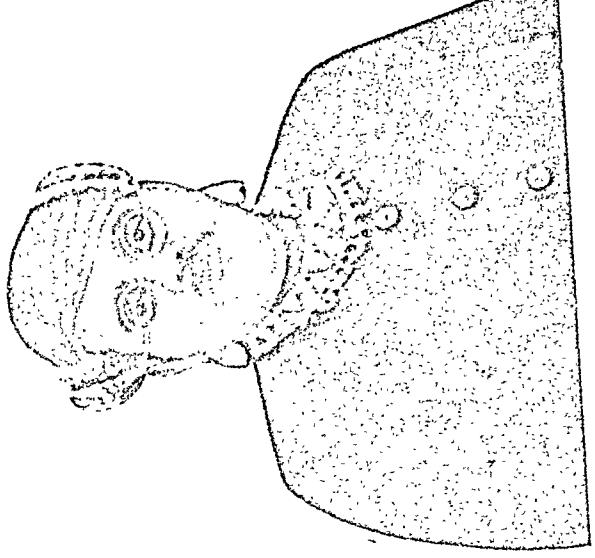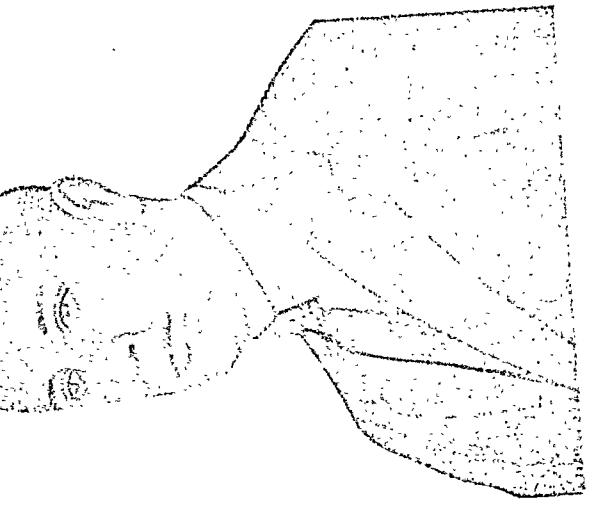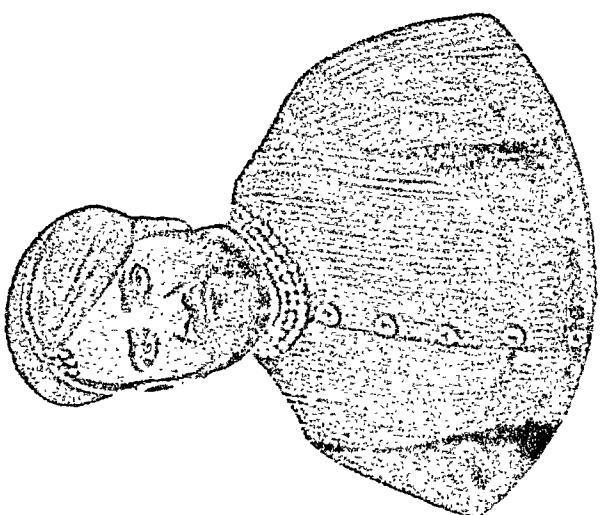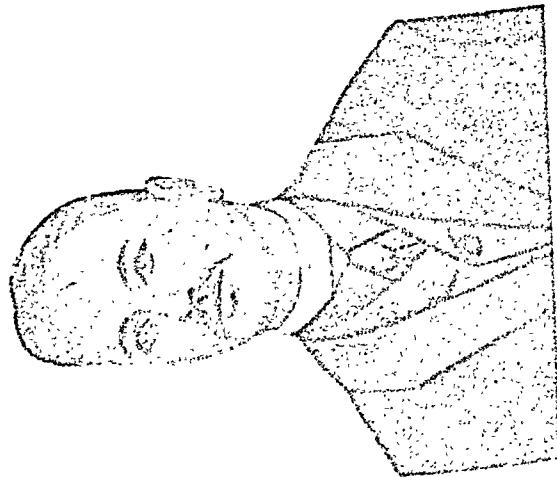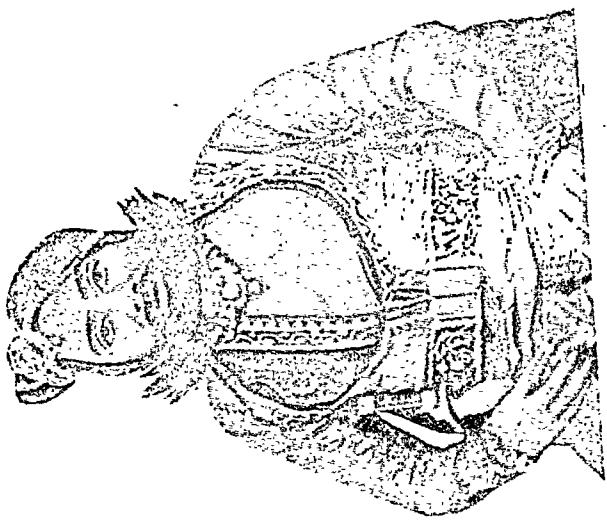
जैन दिवाकरजी महाराज
के
सम्पर्क में आए विशिष्ट व्यक्तियों की सूची

राणा-महाराणा

(१) हिन्दूकुल सूर्य उदयपुर नरेश महाराणा फतेहसिंहजी
(२) " " " श्री भूपालसिंहजी
(३) श्री हिम्मतसिंहजी, उदयपुर नरेश श्री फतेहसिंहजी के ज्येष्ठ भ्राता
(४) जोधपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंहजी, Lieutenant General, Sir, G. C. S. I., G. C. V. O., G. C. B., L. D. D., C. L., A. D. C., Kinight of Saint John of Jerusalem, Regent of Marwar State.
(५) रतलाम नरेश श्री सज्जनसिंहजी
(६) कोटा नरेश श्री हिम्मत बहादुरसिंहजी
(७) देवास नरेश (सीनियर) श्रीतुकोजीराव बाबा साहब पँवार
(८) देवास नरेश (जूनियर) श्री मल्हारराव बाबा साहब पँवार
(९) किशनगढ़ नरेश श्री मदनसिंहजी
(१०) बनेड़ा नरेश श्री अमरसिंहजी
(११) भिण्डर के महाराज श्री भूपालसिंहजी
(१२) बड़ी सादड़ी के राजराणा श्री दुलहसिंहजी
(१३) केरिया के महाराज श्री गुलाबसिंहजी
(१४) करजाली के महाराज श्री लक्ष्मणसिंहजी
(१५) पालणपुर के नवाब श्री शमशेरबहादुर खाँ
(१६) पालणपुर नवाब श्री शमशेर बहादुर खाँ के दामाद श्री जबरदस्त खाँ
(१७) बेडोला नरेश ठाकुर संग्रामसिंहजी
(१८) शिकारपुर (मारवाड़) के ठाकुर श्री नाहरसिंहजी
(१९) एकड़ा के ठाकुर श्री मोहनसिंहजी
(२०) ओछड़ी के ठाकुर श्री भूपालसिंहजी
(२१) पुठोली के ठाकुर श्री प्रतापसिंहजी
(२२) रोड़ाहेड़ा के ठाकुर श्री सज्जनसिंहजी
(२३) घटियावली के ठाकुर श्री शम्भूसिंहजी
(२४) बदनौर के ठाकुर श्री भूपालसिंहजी
(२५) भारोड़ी के ठाकुर श्री अमरसिंहजी तथा श्रीयशवन्तसिंहजी
(२६) कोरड़ी के ठाकुर श्री फत्तेसिंहजी
(२७) कोर के ठाकुर श्री घोकलसिंहजी
(२८) फतेहपुर के ठाकुर श्री कल्याणसिंहजी
(२९) मोखमपुर के ठाकुर श्री हमीरसिंहजी
(३०) पाली के ठाकुर श्री अभयसिंहजी और उनके छोटे भाई श्री मानसिंहजी

(३१) लसाणी के ठाकुर श्री खुमानसिंहजी
(३२) करेड़ा के ठाकुर श्री उम्मेदसिंहजी
(३३) पिपलोद के ठाकुर.........................
(३४) साहरंगी के ठाकुर जोरावरसिंहजी
(३५) नीमली के ठाकुर श्री महीपालसिंहजी और उनके भाई श्री राजेन्द्रसिंहजी
(३६) घटियावली के ठाकुर श्री यशवन्तसिंहजी और उनके काका श्री जालिमसिंहजी
(३७) कोशीथल के ठाकुर श्री पद्मसिंहजी तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जुवानसिंहजी
(३८) जावरा के ठाकुर...............
(३९) ताल के ठाकुर श्री उम्मेदसिंहजी
(४०) अरणोदा के ठाकुर श्री हिम्मतसिंहजी
(४१) अठाणा के ठाकुर रावत विजयसिंहजी
(४२) पारसोली के राव श्री रत्नसिंहजी (मेवाड़ाधीश के १६ जागीरदारों में से एक)
(४३) माटखेड़ी के राव श्री विजयसिंहजी
(४४) गोगूंदा के राव श्री पृथ्वीसिंहजी और उनके पौत्रश्री दलपतसिंहजी
(४५) बाहेड़ा के राव श्री नाहरसिंहजी और उनके सुपुत्र श्री नारायणसिंहजी
(४६) भगवानपुरा के रावत श्री सुजानसिंहजी
(४७) वाठरड़े के रावत श्री दिलीपसिंहजी
(४८) कुरावड़ के रावत श्री बलवन्तसिंहजी
(४९) बम्बोरे के रावत श्री मोड़सिंहजी
(५०) पारसोली के रावत श्री लालसिंहजी
(५१) सलुम्बर के रावत श्री ओमाड़सिंहजी
(५२) देवगढ़ के रावत श्री विजयसिंहजी (मेवाड़ाधीश के सोलह उमरावों में से एक—तीन लाख के जागीदार)
(५३) हमीरगढ़ के रावत श्री मदनसिंहजी
(५४) कोठारिया के रावत श्री मानसिंहजी
(५५) लूणदे के रावत श्री जवानसिंहजी
(५६) कानोड़ के रावत श्री केसरीसिंहजी
(५७) गेंता सरदार श्री तेजसिंहजी और उनके छोटे भाई श्री यशवन्तसिंहजी
(५८) कुनाड़ी के कप्तान श्री दौलतसिंहजी
(५९) नारायणगढ़ के जागीरदार श्री हफीजुल्ला खाँ
(६०) गलथनी रियासत के जागीरदार श्री केसरीसिंहजी देवड़ा
(६१) नन्दराय के जागीरदार...............
(६२) मोरवड़े के कुमार साहब श्री सरदारसिंहजी
(६३) दासफा परगना (मारवाड़) के कुंवर श्री चमनसिंहजी
(६४) कोठारी बलवन्तसिंहजी (उदयपुर स्टेट के प्रसिद्ध जागीरदार और महाराज के दीवान)

अधिकारी

(६५) श्री सी० एस० चैनेविक्स ट्रेन्स, सेटिलमेण्ट आफीसर तथा रेवेन्यू कमिश्नर मेवाड़
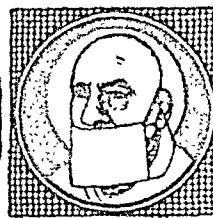
(६६) श्री एफ० जी० टेलर चित्तौड़ के अफीम विभाग के चीफ इंस्पैक्टर
(६७) अँग्रेज कर्नल (सेनाध्यक्ष)
(६८) मेजर सी० डब्लू० एल० हार्वे, चीफ मिनिस्टर, अलवर
(६९) दीवान बहादुर उम्मेदमलजी, लोढ़ा
(७०) जोधपुर स्टेट के दीवान के सुपुत्र श्री कान्हमलजी
(७१) सैलाना स्टेट के सरकार श्री दिलीपसिंहजी
(७२) श्री बालमुकुन्दजी भैया साहब, उज्जैन के सरसूबा राज्याधिकारी
(७३) कुंवर गोपाललालजी कोटिया (सुपुत्र श्री केसरीलालजी कोटिया, बूंदी)

विद्वान्

(७४) भुसावल के आनरेरी मजिस्ट्रेट मौलवी श्री खानबहादुरजी
(७५) जर्मन प्रोफेसर..................
(७६) स्याद्वादवारिधि पंडित गोपालदासजी बरैया (मुरैना निवासी)
(७७) आनरेरी मजिस्ट्रेट दानवीर सेठ कुन्दनमलजी कोठारी, ब्यावर
(७८) श्री किल्ला (चित्तौड़गढ़) के चारभुजाजी मन्दिर के महन्त श्री लालदास जी
(७९) श्री कन्नोमलजी सेशन जज, (धौलपुर निवासी)
(८०) सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् पं० लालन
(८१) श्री वाडीलाल मो० शाह, बम्बई

सेठ-साहूकार

(८२) राय बहादुर सेठ श्री छगनमलजी
(८३) सेठ दामोदरदासजी, राठी
(८४) सरसेठ हुक्मचन्दजी, इन्दौर
(८५) श्री अम्बादासजी द्रोसाशी (श्वेताम्बर जैन, स्थानक० कान्फ्रेन्स के जन्मदाता)
(८६) श्री लालचन्द जी कोठारी, ब्यावर
(८७) श्री सेठ स्वरूपचन्दजी भागचन्दजी, कलमसरा
(८८) श्री सेठ कालूरामजी कोठारी

[नोट—श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सम्पर्क में आये विशिष्ट व्यक्तियों की सूची बहुत लम्बी है। यहाँ तो कुछ नाम ही दिये जा सके हैं।] —सम्पादक
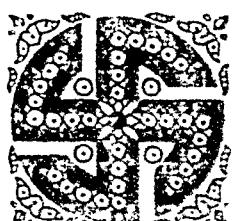
"मनुष्य जैसे आर्थिक स्थिति की समीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे अपने जीवन-व्यवहार की भी समीक्षा करनी चाहिए। प्रत्येक को सोचना चाहिए कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिए ? वर्तमान में कैसा है ? उसमें जो कमी है, उसे दूर कैसे किया जाए ? यदि यह कमी दूर न की गयी तो क्या परिणाम होगा ? इस प्रकार जीवन की सही-सही आलोचना करने से आपको अपनी बुराई-भलाई का स्पष्ट पता चलेगा। आपके जीवन का सही चित्र आपके सामने उपस्थित रहेगा। आप अपने को समझ सकेंगे।

ब्यावर, ८ सितम्बर १९४१ —**मुनिश्री चौथमलजी महाराज**

✡

"बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयों के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध में वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया-तले अंधेरा' की कहावत चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरों को देखती है, अपने-आपको नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यों पर तो बहस कर सकते हैं, मगर अपने को नहीं जानते।

ब्यावर, ८ सितम्बर १९४१ —**मुनिश्री चौथमलजी महाराज**

✡

'जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नहीं रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नहीं रह सकता और सूरज के साथ रात नहीं रह सकती, उसीप्रकार सत्य के साथ झूठ और झूठ के साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता। एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं ? इसी प्रकार जहाँ सत्य का तिरस्कार होगा, वहाँ झूठ का प्रसार होगा। —**मुनिश्री चौथमलजी महाराज**

हिज हाईनेस महाराजा श्री दिलीपसिंह जी साहब बहादुर, सैलाना (मालवा)

रावत जी साहब श्री केशरीसिंह जी कानोड़ (मेवाड़)

श्रीमान रायबहादुर नहारसिंह जी साहब बेवला (मेवाड़)

खान साहब सेठ नजरअली अलावख्स मिल (उज्जैन) के मालिक सेठ लुकमान भाई (उज्जैन)

दानवीर रायबहादुर सेठ कुन्दनमलजी कोठारी आनरेरी मजिस्ट्रेट, ब्यावर

श्री जैन दिवाकर जन्म शताब्दी महासमिति के कार्यकर्तागण

श्रीमान फकीरचन्दजी मेहता
(इन्दौर-भुसावल)

श्रीमान सौभाग्यमलजी कोचेट्टा
(जावरा)

श्रीमान कन्हैयालालजी नागौरी
(उदयपुर)

श्रीमान सुजानमलजी मेहता
(जावरा)
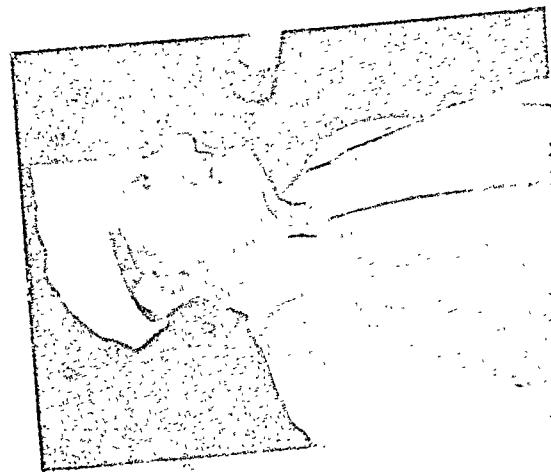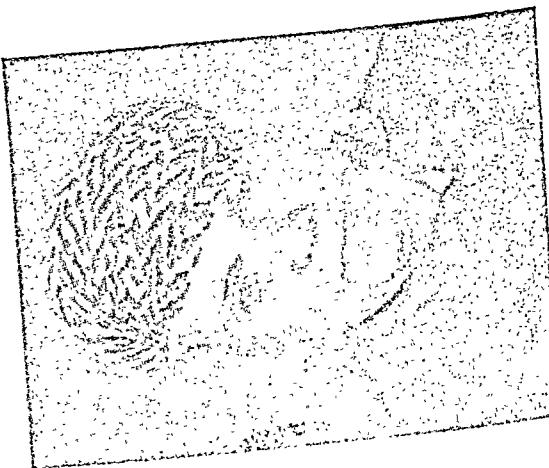
श्रीमान गेहरीलालजी मेहता
(उदयपुर)

श्रीमान चांदमलजी मारू
मन्दसौर (म. प्र.)

श्रीमान बापूलालजी बोथरा
रतलाम (म. प्र.)

घटनाओं में बोलता व्यक्तित्व

स्मृतियों के स्वर

श्री जैन दिवाकर-स्मृति-ग्रन्थ
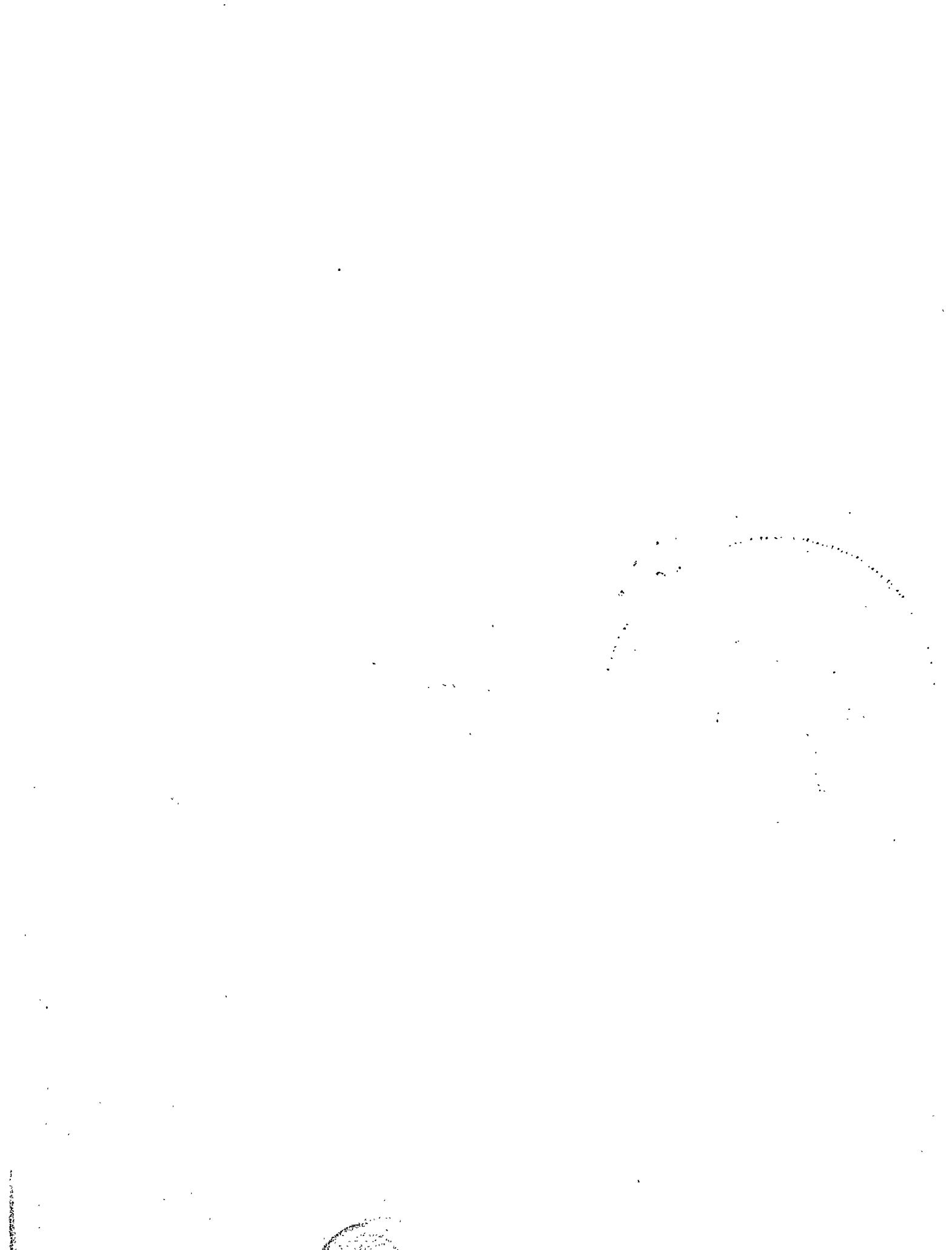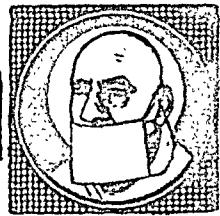
वाणी के देवता

☆ अशोक मुनि साहित्यरत्न

□

परम श्रद्धेय गुरुदेव जैन दिवाकर जी महाराज वाणी के जादूगर थे। उनकी वाणी श्रोताओं पर अजब प्रभाव छोड़ जाती थी, उनके स्वयं के अनुभव जब उनकी वाणी के द्वारा मुखर उठते थे तो श्रोताओं का मानस झकझोर देते थे और जीवन सुधारने को तत्पर कर देते थे।

जिनेन्द्र देव की वाणी जब बरसती थी तो वह खाली नहीं जाती थी, उस वाणी को सुनकर कोई न कोई प्राणी देशव्रती या सर्वव्रती बनता ही था। जिनेन्द्रदेव के दर्शन हमने नहीं किये, उनके श्रीमुख से वाणी नहीं सुनी किन्तु गुरुदेव के दर्शन किये हैं, उनकी वाणी सुनने का महिनों तक स्वर्णिम अवसर मिला है। उनकी वाणी से कई लोगों का हृदय बदला है, और अपने पापों का पश्चात्ताप करते देखा है। लोगों को करुणार्द्र हो आँखों से सावन-भादों बरसाते देखा है, हृदय प्रक्षालित करते देखा है। पापियों को जीवन सुधारते देखा है। वारांगनाओं को सन्नारी बनते देखा है। शिकारियों को शस्त्र फेंकते देखा है। मद्यपायी को बोतलें छोड़ते देखा है, बीड़ी-सिगरेट वालों को बण्डल और पेकेट फेंकते देखा है। सम्पन्न श्रेष्ठियों को वैरागी बनते देखा है। अधार्मिकों को धर्मशीतल छाया में आते देखा है। नास्तिकों को आस्तिक बनते देखा है।

वाणी के प्रभाव के कतिपय : चमत्कारी प्रसंग

इन्दौर का प्रसंग : संवत् १९८० की साल का चातुर्मास गुरुदेव का इन्दौर था, इन्दौर के इतवारी बाजार में सेठ हुक्मीचंदजी के रंग महल में गुरुदेव चातुर्मासस्थ विराजमान थे, व्याख्यान भी वहीं होते थे। इन्दौर की जनता में व्याख्यानों की खूब चर्चा थी और जनता भादों की घटा के समान उमड़ती थी। व्याख्यानोपरांत जनता जब स्थान से निकलती तो मार्ग ऐसा अवरुद्ध हो जाता कि वाहन रुक जाते थे।

व्याख्यान की महिमा सेठ हुक्मीचन्दजी तक भी पहुँची, सेठजी स्वयं जैन तत्वों के जानकार थे तथा दश लक्षणी पर्व पर प्रवचन भी करते। गुरुदेव का व्याख्यान सुनने एक बार सेठ जी आतुर बने और समय निकाल कर गुरुदेव के व्याख्यान में आये।

व्याख्यान धारा-प्रवाह चल रहा था। सेठजी भी उस वाणी-प्रवाह में अवगाहन करने लगे और हृदय पर उस वाणी का ऐसा असर हुआ कि उस वर्ष के दस-लक्षणी पर्व के प्रवचनों में कहने लगे कि प्रवचन सुनना हो तो चौथमलजी महाराज का सुनना चाहिए। उनका मैंने एक प्रवचन सुना है और एक ने ही मेरे हृदय पर गहरा असर किया है। अगर उनके दो-तीन प्रवचन और सुन लूं तो सम्भव है मुझे संसार छोड़ कर संयम-पथ पर लगना पड़े, उनकी वाणी में ऐसा ही प्रभाव है।

जोधपुर राजस्थान में जैन समाज का बड़ा क्षेत्र है। मध्य प्रदेश और राजस्थान में इतना बड़ा जैन समुदाय अन्यत्र मिलना कठिन है। यों जोधपुर का जैन समाज भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों, उप-सम्प्रदाय में बँटा हुआ है। गुरुदेव का संवत् १९८४ की साल का चातुर्मास जोधपुर था। जोधपुर में अन्य जैन-सम्प्रदायों के चातुर्मास भी थे, पर गुरुदेव के व्याख्यानों में जनता उमड़ पड़ती थी।

पर्युषण के दिन निकट आने वाले थे। लोगों ने अजैनों से अगता पलाने की बात छेड़ी, गुरुदेव ने स्पष्ट कहा—"जैनी अपना आरम्भ सम्भारम्भ छोड़े नहीं, अपना व्यापार बन्द करे नहीं, अपना धन्धा चालू रखकर दूसरों का धन्धा बंद कराने की आशा रखे यह कैसे सम्भव है ? दूसरों से त्याग की अपेक्षा रखने वालों को स्वयं भी त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।"

वाणी का वह जादुई प्रभाव पड़ा कि आपकी प्रेरणा से वहाँ सम्पूर्ण जैन समाज ने व्यापार बंद रखा। और आज भी प्रत्येक वर्ष गुरुदेव की वह वाणी अपना रंग दिखाती है अर्थात् अभी भी जोधपुर में पर्युषण में सम्पूर्ण जैन समाज का बाजार बंद रहता है। इसी का ही परिणाम है कि सेठों के साथ मुनीमों को तथा वेतन-भोगियों को भी धर्म-ध्यान करने का सहज अवसर मिलता है।

एक प्रसंग मेरा भी है—

संवत् १९९७ का गुरुदेव का जोधपुर चातुर्मास था। मेरी जन्मभूमि जोधपुर है और मेरा संसारी परिवार सनातनी है, इसलिए गुरुदेव के सम्पर्क का तो प्रसंग ही नहीं। हाँ, राम मंदिर या कृष्ण मंदिर में जाने के प्रसंग तो आते ही थे। मेरी छोटी उम्र थी और बचपन में स्वभाव चंचल रहता है। एक बार प्रातः मैं पुरानी धानमंडी में घनश्यामजी के मंदिर जा रहा था, मंदिर के पास एक अर्ध-विक्षिप्त व्यक्ति को हमउम्र बच्चे छेड़ रहे थे, मजाक उड़ा रहे थे। वह ज्यों-ज्यों उत्तेजित होता हम खुशियाँ मनाते। बचपन की उम्र, अज्ञान दशा और सत्संग का अभाव, क्या समझे दूसरों की पीड़ा को। वह वहाँ से हटकर मार्ग की ओर बढ़ता जा रहा था और हम उसे छेड़ते जा रहे थे। वह वहाँ से चलते-चलते गुरुदेव के व्याख्यान स्थल आहोर की हवेली में चला गया। हम भी उनके पीछे-पीछे हवेली में चले गये, वहाँ हजारों की मानव-मेदिनी गुरुदेव का व्याख्यान श्रवण कर रही थी।

मैंने पहली बार गुरुदेव को सुना, और सुनते ही नयन-श्रवण एवं मन उसमें रम गया। महात्मा तुलसीदास के शब्दों में—

धाये धाम काम सब त्यागे
मनहू रंक निधि लूटन लागे।

एक वाणी सुनी और पागल का पीछा छोड़ उस वाणी का चिन्तन करने लगा। वाणी का चस्का लगा और अब रोज व्याख्यान सुनने को जाने लगा। उस वाणी का ही प्रभाव था कि आज मैं जैनधर्म की पतितपावनी श्रमण दीक्षा प्राप्त कर उत्तम मार्ग को प्राप्त कर सका।

यह प्रसंग संवत् २००५ का है। उन दिनों गुरुदेव अपने शिष्य समुदाय के साथ जोधपुर का ऐतिहासिक वर्षावास चांदी हॉल के सामने संचेती बन्धुओं को हवेली में बिता रहे थे। व्याख्यान भी वहीं होते थे, क्योंकि हजारों व्यक्तियों के बैठने की वहाँ जगह थी। गुरुदेव के प्रभावपूर्ण व्याख्यानों की धूम मच गई। बाजारों में, गली, में घरों में एवं जनता में काफी चर्चा थी। उपदेशों को सुनने स्वतः ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण, तम्बोली, माली, मोची, मुसलमान आदि अनेक जाति वाले लाभ उठा रहे थे।

जीवनस्पर्शी व्याख्यानों की महक धीरे-धीरे वेश्याओं के मौहल्ले तक पहुँची। उन्हें ज्ञात हुआ कि श्री चौथमलजी महाराज के मर्मस्पर्शी व्याख्यान चाँदी हॉल के सामने होते हैं, हजारों नर-नारी व्याख्यान सुनने को उपस्थित होते हैं, बैठने के लिए जगह भी कठिनता से मिलती है, कोई भी जाति, कुल, परिवार वाला उस ज्ञान गंगा में पावन हो सकता है। वहाँ उपदेश सुनने की किसी को रोक-टोक नहीं है।

एक दिन अचानक वेश्याओं का समूह व्याख्यान में आया और व्याख्यान सुनने लगा, गुरुदेव की वाणी ने वह जादू दिखाया कि अब वेश्याएँ रोज व्याख्यान में आने लगी। कई वेश्याओं ने उस वाणी के प्रभाव से अपना जीवन ही बदल दिया। सदा-सदा के लिए वेश्यावृत्ति को त्यागकर सद्-गृहस्थ बन गईं। जोधपुर की इस ऐतिहासिक घटना को अभी काफी नर-नारी याद करते हैं।

ऐसा था गुरुदेव की वाणी का प्रभाव और ऐसे थे वे वाणी के जादूगर! जिस वाणी ने हजारों बुझते दीपक जला दिये, भटकती आत्माओं को कल्याण-पथ पर अग्रसर कर दिया, उस वाणी देवता गुरुदेव को शत-शत वन्दना!

☆

(१) वशीकरण मंत्र

☆ श्री रमेशमुनि 'सिद्धान्ताचार्य'

मानव स्वभाव बड़ा विचित्र होता है, पूछिये कैसे? वह अपने स्वच्छन्द स्वभाव, बहके हुए मन और अनियंत्रित इन्द्रियों पर लगाम लगाने की बात कभी सोचता ही नहीं है। हुई न विचित्र बात?

इससे भी विचित्र बात तो यह है कि वह दूसरों की स्वाधीनता पर नियन्त्रण और अंकुश लगाने के लिए सदैव तैयार रहता है। सत्पुरुषों और शुद्धात्माओं के मन को यह प्रसंग निरन्तर आन्दोलित करता रहता है।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का वर्षावास मन्दसौर (म० प्र०) में चल रहा था, बात आज से ५८ वर्ष पूर्व (सन् १९१८ ई०) की है। कहने की आवश्यकता नहीं, श्रोताओं की भीड़ इस कदर हुई कि—विशाल मण्डप में तिल धरने की जगह नहीं बची। सामायिक चिन्तन चल रहा था इतने में भीड़ को दूर हटाती हुई एक बुढ़िया, जो जैन समाज से सम्बन्धित नहीं थी, महाराज श्री के बिलकुल नजदीक पहुँच गई और कहने लगी—

"गुरुजी! आपके पास हजारों लोग आते हैं, आपकी बात मानते हैं आप जो कहते हैं उसे करने के लिए तैयार रहते हैं, आखिर इसका कारण क्या है कि—सभी आपके वश में हो जाते हैं? मुझे भी आप ऐसा वशीकरण मंत्र बता दीजिए, जिससे शान्ति मिले, क्योंकि भगवान का दिया हुआ मेरे पास सब कुछ है, केवल अन्दर की शान्ति नहीं है। सो, आपकी बड़ी कृपा होगी।"

महाराज श्री थोड़े से मुस्कराये और बोले—"माताजी! अन्दर की शान्ति को ढूँढ़ना बहुत ही अच्छा काम है। इसके लिए सबसे पहले आपको अपने क्रोध पर काबू पाना होगा।"

बात सुन बुढ़िया आश्चर्य में पड़ गई कि—'महाराज श्री कैसे यह बात जान गए कि—लोग मुझे चिढ़ाते हैं तब क्रोध में आकर मेरे मन में जो भी आता है, गालियों और श्राप की बौछार करती हूँ।'

थोड़ी देर रुककर महाराजश्री ने अपनी बात को और आगे बढ़ाते हुए कहना जारी रखा, "और दूसरी बात यह कि—गालियाँ बकना एकदम बन्द कर दो, तुम्हें यदि कोई चिढ़ावे भी तो मौन-धारण कर लिया करो; चिढ़ाने वाला स्वयं ठण्डा पड़ जायगा और आखिरी बात यह है कि—यदि कोई आपसे बातचीत करे तो उससे प्रेम-पूर्वक मीठे वचन बोला करो, सारी बेचैनी और परेशानी इस वशीकरण मंत्र से जाती रहेगी।"
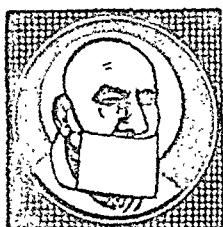
जादू की तरह महात्मा की मूल्यवान वाणी का प्रभाव उस वृद्धा के मन पर पड़ा।

देखा गया कि उस दिन के बाद लोगों के चिढ़ाने के बावजूद उसने कभी उबाल नहीं खाया; बल्कि प्रेमपूर्ण व्यवहार और वाणी की मिठास को नहीं छोड़ा और दो माह बाद जब महाराज श्री से वही वृद्धा मिली तो कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उसने सूचना दी कि—वह आपश्री द्वारा दिये गए वशीकरण मंत्र की साधना के द्वारा कैसे सुखी हो गई थी।

"इस मंत्र को कभी नहीं भूलना माँ! दिनोंदिन तुम शान्ति के पथ पर अग्रसर होती जाओगी।" गुरुवर्य ने अपना अनुभव-जन्य सन्देश सुनाया।"

क्यों न हम भी उस मंत्र से लाभ उठाएँ।

☆

(२) सन्त-वाणी का असर

☆ श्री रमेशमुनि, सिद्धान्ताचार्य

पूज्य गुरुदेव के व्याख्यान का मधुर प्रभाव हृदय-पटल पर कैसा अचूक होता था; उसका यह एक निदर्शन भी आनन्दकारी होगा।

गुरुदेव श्री उदयपुर में विराजमान थे। एक गरीब की झोंपड़ी से लेकर राजमहलों तक उनके व्याख्यान की चर्चा थी। व्याख्यान-श्रवण कर कतिपय व्यक्ति अपनी जीवन-दशा बदल चुके थे, बहुत से सन्मार्गी बन गए थे।

एक अँग्रेज अफसर का नौकर शाक-भाजी लेने बाजार जा रहा था, जन-समूह देखकर ठहर गया। महाराजश्री का प्रवचन चल रहा था। नौकर सुनने में तल्लीन हो गया, सुध-बुध भूल गया। यही नहीं, अब वह रोजाना का नियमित श्रोता बन गया, उसकी विविध प्रकार की बुरी आदतें स्वयमेव छूटती गईं, जीवन में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया। वह बड़ा शरीफ बन गया। इस परिवर्तन को देखकर मालिक अँग्रेज हैरत (आश्चर्य) में था।

"तुम्हारी बड़ी बुरी आदतें आखिर कैसे छूट गईं?" अँग्रेज साहब ने उस नौकर से पूछा—सकुचाते हुए उत्तर में नौकर बोला—"सर! यह जैनमुनि गुरु श्री चौथमलजी महाराज का प्रताप है, मेरे जीवन परिवर्तन का कारण दूसरा कुछ भी नहीं है। मैं आजकल उनका लेक्चर सुनता हूँ।"

महाराज श्री शौचार्थ जिस मार्ग से जाते थे उसी मार्ग पर उस अँग्रेज अफसर का बंगला था। एक दिन मुलाकात होने पर अँग्रेजी के साथ-साथ थोड़ी-थोड़ी हिन्दी और उर्दू मिलाकर वह अँग्रेज बोला—"सन्त जी, मेरा नाउकर बड़ा बादमाश था। मगर आपके प्रीचिंग्स को सुनकर उसका जिंदगानी में टैण्डिली हो गया है। अब मेरे को वह एक नेक चलन इन्सान माफिक लगता है। हम आपका ऐशानमंद है, थैंक्यू सर!"

दूर-दूर खड़े जिज्ञासु-जन देखते ही रह गये, एक संत की वाणी का कितना व्यापक और हृदयस्पर्शी असर है, जो हर सुनने वाले के अन्दर परिवर्तन की लहर पैदा कर देता है।

☆

अनुभूत-प्रसंग

☆ नरेन्द्र मुनि विशारद

(१) बीमारी मिट गई

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज विक्रम संवत् १९९३ के वर्ष में अपने शिष्य परिवार के साथ विचरते हुए आगरा शहर में पधारे।

चातुर्मास के दिन थे। लोहामण्डी जैन स्थानक में दर्शनार्थियों का तान्ता लगा हुआ था। विशाल आयोजन के तौर पर 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन सप्ताह' मनाया जा रहा था। उसी अवसर पर मारवाड़ के चोटेलाव (पाली) निवासी श्रीमान् रावतमलजी चौपड़ा अपने कुछ मित्रों के साथ दर्शन के लिए आगरा उपस्थित हुए।

विक्रम संवत् १९७२ के वर्ष में श्रीमान् चौपड़ाजी ने जैन दिवाकरजी महाराज को अपना गुरु बनाया। तभी से आप गुरुदेव के अधिक सम्पर्क में आये और अनन्य भक्त बने। पूर्ण निष्ठावान और श्रद्धावान् रहे। बीच में गुरु-दर्शन का सम्पर्क टूट-सा गया। काफी वर्षों के बाद गुरु-दर्शन कर रावतमलजी फूले नहीं समाये।

वंदना कर चौपड़ाजी बोले—"गुरुदेव ! बुरी तरह मैं बीमारी से पीड़ित हूँ। बड़ी मुश्किल से यहाँ तक आ सका हूँ, मन में एक ही उत्कण्ठा थी कि—मरता-पड़ता गुरुदेव का दर्शन करलूं। उसके बाद भले यह शरीर रहे या जाय। आज मैं धन्य हो गया। बहुत वर्षों की भावना आज सफल हुई।"

गुरुदेवश्री ने पूछा—"कैसी बीमारी है रावतमल जी ?"

"गुरुदेव ! क्या बताऊँ ? पसली में पानी भर जाता है, लगभग १२ वर्षों से। बार-बार पानी निकलवाया गया, फिर भी आराम नहीं हुआ। अब डाक्टरों ने भी हाथ खींच लिया है, इसका मतलब यही है कि अब मेरी जिन्दगी कुछ ही दिनों की है। आपके दर्शन हो गए। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं।"

गुरुदेव—रावतमलजी ! घबराना नहीं चाहिए। शरीर रोगों का घर है। बीमारी आती और जाती है, लो माँगलिक सुनलो—

> उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः,
> शोच्यांदशामुपगताश्च्युतजीवताशा।
> त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहा,
> मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥

भक्तामर स्तोत्र का ४५वाँ श्लोक सुनाकर माँगलिक पाठ श्रवण कराया। फिर गुरुदेव बोले —"घर जाने के बाद ४५ दिन तक इस श्लोक को १०८ बार सदैव जपना, आनन्द मंगल होगा।"

श्री रावतमलजी को उक्त गुरु-वचन की महान् उपलब्धि पर बेहद खुशी हुई। सानन्द घर आये। धीरे-धीरे बीमारी स्वतः ही अन्दर की अन्दर सूखती गई। फिर कभी भी बीमारी नहीं उभरी।
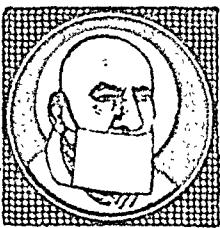
(२) अभिवृद्धि

सुश्रावक श्री रावतमलजी चोपड़ा ने हमें सुनाया—विक्रम संवत् १९९७ के दिनों में जैन दिवाकरजी महाराज चातुर्मास करने के लिए जोधपुर जाते समय पाली से विहार कर चोटेलाव पधारे। मुनियों के लिए आहार-पानी का प्रश्न बिल्कुल नहीं था। क्योंकि—गाँव में जैन परिवार के अलावा अन्य कई उत्तम परिवार गुरुदेव की वाणी के रसिक थे। वे आहार-पानी वहराने के लिए लालायित रहा करते थे।

प्रश्न था विना सूचना दिये आये हुए दो सौ दर्शनार्थियों का। माना कि सामान सामग्री की कमी नहीं थी। गाँव की दृष्टि से व्यवस्था करने वालों की और यातायात साधनों की अवश्य कमी थी। मैं कुछ क्षणों के लिए विचार में डूबा रहा—गुरुदेवश्री के पदार्पण से इस छोटे से गाँव में दर्शनार्थियों का मेला जुड़ा हुआ है पर इनके भोजन की व्यवस्था कैसे बनेगी ? चूंकि कार्यकर्त्ताओं की कमी है।

खैर, गुरुदेव यहाँ विराजमान है मुझे क्या चिंता। गुरुदेव के समीप आकर मैंने कहा—'गुरुदेव ! दर्शनार्थियों के भोजन की व्यवस्था एक समस्या बन गई है। धन की कमी नहीं, साधन की कमी है। कदाच् सामान घट गया तो क्या होगा ? पाली शहर भी दूर है मोटर की व्यवस्था है नहीं।

महाराजश्री—रावतमलजी ! क्या तुझे देव-गुरु-धर्म पर विश्वास नहीं है ? गौतम स्वामी की स्तुति और माँगलिक सुनो—आनन्द मंगल·······

घर आकर सोचा, भोजन नहीं, सभी को थोड़ा-थोड़ा नास्ता करवा दिया जाय, ऐसा विचार कर जो मौजूदा सामग्री थी उसे तैयार करवा दी। भोजन के लिए पंक्ति शुरू हुई। न मालूम गुरुदेव की क्या कृपा हुई कि—सभी पेट भर भोजन कर गए। उसके बाद पचास भाई और भोजन कर सकें उतनी सामग्री बची रही।

सभी के आश्चर्य का पार नहीं था। जबकि मूल में पचास भाई भोजन करे, केवल उतनी सामग्री थी। वह सामगी सारी ज्यों-की-त्यों बच गई। दो सौ भोजन कर गये वह सामग्री कहाँ से आई ? यह गुरुदेव ही जानें।

नोट—गुरुदेव श्री रमेश मुनिजी महाराज साहब आदि हम चारों मुनि चोटेलाव गए तब श्री रावतमलजी साहब चोपड़ा ने बड़ी श्रद्धापूर्वक उक्त दोनों प्रसंग हमें सुनाये।

(३) वाणी का अमिट असर

जैन दिवाकरजी महाराज की सरल सुबोध व्याख्यान-शैली सीधी श्रोताओं के मानस-पटल पर असर किया करती थी। फिर श्रोताओं को अपने आपको समझने में और जैनधर्म के सिद्धान्तों को समझने में काफी आसानी हो जाया करती थी।

सरल सुबोध व्याख्यान श्रवण कर जोधपुर निवासी एक मोची परिवार ने सहर्ष जैन धर्म स्वीकार किया। नियम-उपनियमों से उस परिवार को अवगत किया। नवकार महामंत्र, सामायिक और प्रतिक्रमण के स्वरूप को भी बताया। काफी दिनों तक गुरुदेव की ओर से उस परिवार को ठोस संस्कार मिलते रहे। ताकि भविष्य में यह इमारत धराशाही न होने पावे।

एक बार उसी परिवार का वह अगुआ भाई अपने जाति वालों की बरात में भूपालगढ़ पहुँचा। उस समय आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित वहीं विराजमान थे। तब वह जिनधर (मोची) भाई व्याख्यान में उपस्थित हुआ। और सन्ध्या के समय मुखवस्त्रिका आसन-पुंजनी आदि धार्मिक उपकरण लेकर प्रतिक्रमण करने के लिए महाराज श्री के सान्निध्य में पहुँचा तो मुनिमंडल को भारी आश्चर्य हुआ।

पूछा—तुम कहाँ के रहने वाले हो ?

ओसवाल तो मालूम नहीं पड़ रहे हो ?

—गुरुदेव ! मैं जोधपुर निवासी मोची परिवार का हूँ।

मोची और प्रतिक्रमण ? किसने दी यह प्रेरणा ?

"गुरुदेव ! जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज से मेरे सकल परिवार ने समकित रत्न स्वीकार किया है। अब नियमित रूप से प्रतिक्रमण करता हूँ। उन्हीं गुरुदेव का यह उपकार इस तुच्छ मानव पर भी हो गया है।"

सभी को बेहद प्रसन्नता इस बात में हुई कि विवाह में आया हुआ मोची अपनी मित्र मण्डली से अलग रह कर प्रतिक्रमण करने से चूका नहीं। नियमोपनियम की कितनी दृढ़ता ? उनके समक्ष प्रतिज्ञा करने वाले गडरिया प्रवाह में नहीं, किन्तु बहुत सोच-समझकर करते और करके उसमें दृढ़ रहते थे। उनकी दृढ़ता अनुकरणीय है।

समय की बात....

आज से लगभग ३५ वर्ष पूर्व ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए जनता को धर्मोपदेश कराते हुए पंडित रत्न श्री दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब मेवाड़ प्रदेश के ग्राम वोहेड़ा पधारे तो इस ग्राम में जैनियों का स्थानक नहीं था, न कोई पंचायती नोहरा ही। इस पर महाराजश्री को बड़ा विचार हुआ और यह फरमाया कि इस ग्राम में जाटों का चोरा, जणवोका चोरा, डांगियों का चोरा है, परन्तु महाजनों का गवोरा है।

इस पर सभी उपस्थित जैन भाइयों को बात चुभगई व उसी समय प्रण किया कि हम शीघ्र ही अपना स्थानक भवन बनायेंगे व उसी समय एक कच्चा मकान बनवाया गया व उसी प्रेरणा-स्वरूप ग्राम के श्रावकों व अन्य संघों के सहयोग से एक तिमंजिला भवन बना है जो सामायिक-संवर व विश्राम आदि के काम आता है।

यह थी दिवाकर जी महाराज साहब की प्रेरणा!

गणेशलाल धींग	छोगालाल धींग
सचिव	अध्यक्ष

(साधुमार्गी जैन संघ वोहेड़ा, जिला चित्तौड़गढ़ (राजस्थान))
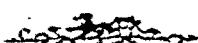
व्यक्तित्व की अमिट छाप

✡ श्री ईश्वर मुनिजी महाराज
(स्व० पूज्य गुरुदेव श्री सहस्रमलजी महाराज के सुशिष्य)

वीर प्रसवनी वसुन्धरा पर लाखों-करोड़ों मानव जन्म लेते हैं, वे सभी जन्म के साथ ही शुभाशुभ कर्म बांध कर आते हैं। उनमें शुभ नामकर्म वाले मानव तेजस्वी, ओजस्वी एवं प्रभाविक व्यक्तित्व के धनी होते हैं। उनका जगतीतल पर 'व्यापक प्रभाव होता है, जहाँ कहीं पर पहुँचते हैं उनकी यशकीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त होती चली जाती है। उनका नाम श्रवण करने मात्र से ही मानव का क्रोध एवं अभिमान ओले की तरह गल जाता है।

बात विक्रम संवत् २००६ की है मुझे दीक्षित हुए एक ही वर्ष हुआ था। स्थानकवासी समाज के एकीकरण के लिए सादड़ी (मारवाड़) में वृहत्साधु सम्मेलन की व्यापक तैयारियाँ चल रही थीं। पूज्य गुरुदेव श्री सहस्रमलजी महाराज भी अपनी शिष्य मण्डली सहित सम्मिलित होने के लिए पाली से विहार कर सादड़ी पधार रहे थे। मैं भी गुरुदेव के साथ था। मुन्डारा एवं वाली के मध्य में छोटा-सा गाँव आता है जहाँ अजैनों की बस्ती है। हम सभी मुनिवृन्द स्कूल के प्रांगण में ठहरे हुए थे। प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रिया से निवृत्त हुए ही थे कि एक व्यक्ति ने आकर क्रोध मिश्रित स्वर में पुकारा—

यहाँ कौन ठहरे हुए हैं ?"

अन्धेरे में उसकी मुखाकृति स्पष्ट नहीं दिखाई दे रही थी।

गुरुदेव ने अत्यन्त शान्त एवं मधुर स्वर में कहा—भाई ! हम जैन साधु हैं तथा अध्यापक की आज्ञा से यहाँ ठहरे हैं। जैन साधु का नाम सुनते ही उसने टार्च का प्रकाश किया, एवं हम सभी मुनिवरों को देखने लगा। तत्पश्चात् बोला—

आप किनके शिष्य हैं ?

गुरुदेव बोले—हमारे गुरु जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज हैं।

इतना सुनते ही वह अत्यन्त प्रसन्न होकर सभी मुनिवरों के चरणों में श्रद्धा युक्त वन्दन करने लग गया और बोला—मैं उदयपुर राज्य का रहने वाला राजपूत हूँ। मेरे भी गुरु जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज हैं, उन्होंने मुझे गुरु-मन्त्र दिया था एवं आजीवन मद्य-मांस भक्षण न करने की प्रतिज्ञा दिलाई थी जिसे मैं आज तक निभा रहा हूँ; उन्हीं की असीम कृपा के फलस्वरूप आज मैं थानेदार की पोस्ट पर कार्य कर रहा हूँ। आज मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ कि आज मेरे उपकारी गुरुदेव के शिष्यों का मुझे दर्शन-लाभ मिला। मैं यहाँ रात्रि निवास करने के लिए स्थान की तलाश में आया था किन्तु आप जैसे मुनिवरों का अनुपम संयोग मिल गया। अब अन्य जगह विश्राम करूँगा आप आनन्द से रहें।

यह था जैन दिवाकरजी महाराज का जन-मन में व्यापक प्रभाव।

☆

↑ श्री जैन दिवाकर जी म० की वृद्धजनों के प्रति असीम करुणा का जीवित प्रतीक
श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)

↓ श्री जैन दिवाकर स्मारक ट्रस्ट (कोटा) चिकित्सा केन्द्र
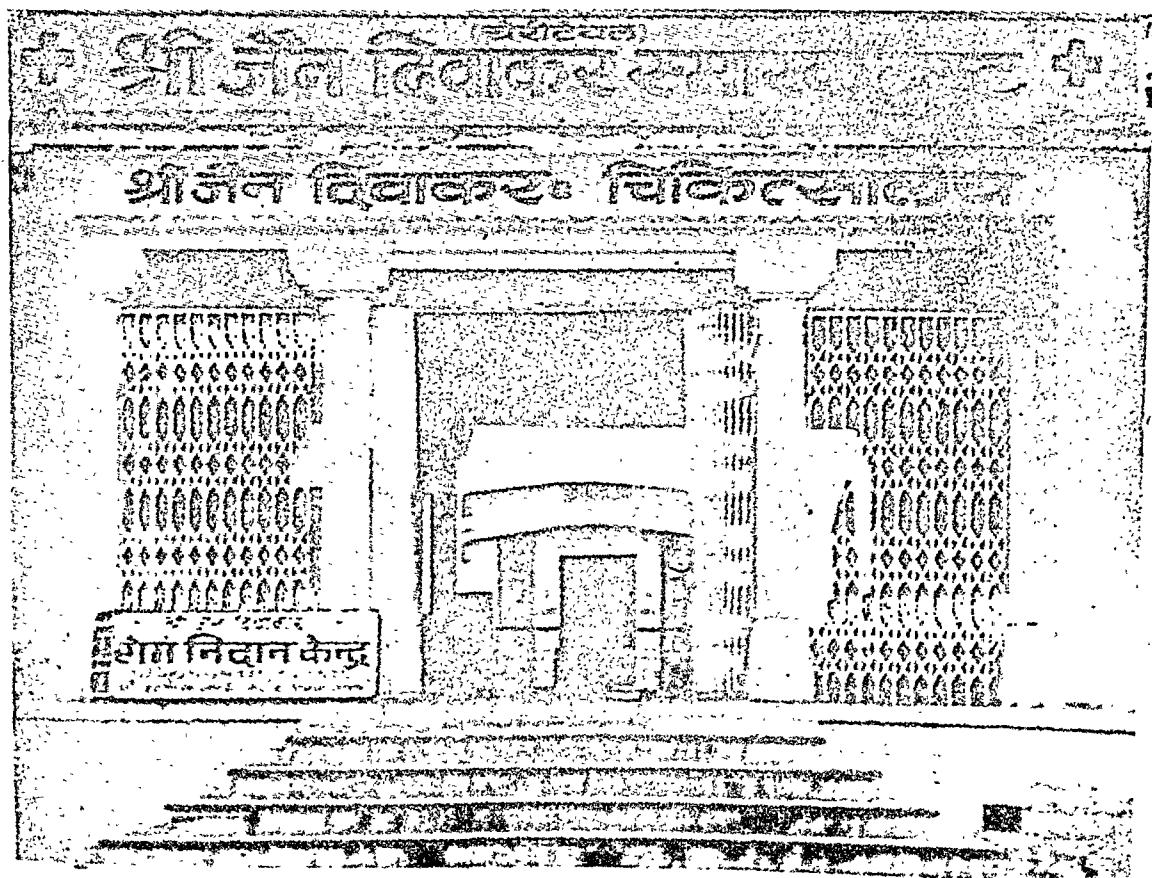
जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज की समाधि स्थल (कोटा)
पर लगा प्रशस्ति प्रस्तर
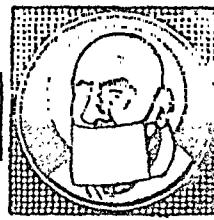
अन्तिम दर्शन

☆ कविरत्न केवल मुनि

जिस भूमि पर फूल खिलते हैं, जहाँ अपनी सौरभ लुटाते हैं वह वन-खण्ड भी 'उपवन' कहलाता है। जिस घोर जंगल या पर्वत कन्दरा में बैठकर साधक अपनी साधना में लीन होता है, जहाँ तप व ध्यान की अलख जगाता है, वह अरण्य भी 'तपोवन' के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। भगवान् महावीर ने जिस नगरी की पवित्र भूमि पर अपना अन्तिम प्रवचन दिया और देह-त्याग कर परम निर्वाण प्राप्त किया वह सामान्य पावापुरी आज 'पावा तीर्थ' के नाम से जग-विश्रुत है। इसी प्रकार आज 'कोटा' शहर भी एक पवित्र नगर के रूप में प्रसिद्ध हो रहा है। इस भूमि पर भारत के एक महान् सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने अपनी महायात्रा का अन्तिम पड़ाव लिया था। साधना-तपस्या-जनकल्याण की अनवरत लौ जलाते-जलाते वह ज्योतिपुंज इस नगर में अपनी अन्तिम प्रकाश किरण बिखेर कर देह का त्याग कर अमरलोक की ओर प्रस्थान कर गया था। उस ज्योति के अन्तिम दर्शन संसार को इस नगर में हुए थे, इसलिए कोटा नगर भी एक तीर्थस्थान की तरह इतिहास में सदा याद किया जायेगा।

उस महापुरुष की झोली में अमृत भरा था, जो भी उसके चरणों में आया, वह कभी खाली हाथ नहीं लौटा, अपनी शक्ति के अनुसार अमृत की दो-चार बूंदें प्राप्त कर कृतकृत्य होकर ही लौटा। हजारों लोह-जीवन कंचन हो गये थे। दया, करुणा, सदाचार और सात्विकता की भगीरथी वहती थी उस देव-पुरुष के सान्निध्य में। आज भी कुछ स्मृतियाँ मन को गुदागुदा रही हैं, जब मैं उस महापुरुष के अन्तिम दर्शनों के लिए लम्बा विहार कर कोटा पहुँचा था। सूर्यास्त से पहले ही पहुँच गया, पर तब तक जैन जगत् का वह धर्म सूर्य अस्त हो चुका था और मैं अस्ताचल की ओर गये सूर्यबिम्ब की सुनहरी आभा को ही एक टक देखता रहा, उदास ! विचारलीन !

वि० सं० २००७ का चातुर्मास गुरुदेवश्री की आज्ञा से रतलाम में किया था और चातुर्मास समाप्त कर दक्षिण की ओर जाने का विचार किया था।

उन्हीं दिनों मन्दसौर में मालवरत्न उपाध्याय श्री कस्तूरचंदजी महाराज विराजमान थे। उनके भ्राता पं० रत्न श्री केशरीमलजी महाराज का जयपुर में स्वर्गवास हो गया था। गुरुदेवश्री की आज्ञा हुई कि मैं पहले मन्दसौर जाकर उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज से गुरुदेव की तरफ से सुखसाता पूछकर सान्त्वना संदेश दूं।

मैं मन्दसौर पहुँचा। प्रातः कृत्य से निवृत्त हो दूध पीने के लिए बैठा था। पात्र जैसे ही मुँह के निकट लगाया कि बाहर से आवाज आई—'कोटा में गुरुदेवीश्री अस्वस्थ हैं।' संवाद सुनते ही दूध का पात्र नीचे रख दिया। बाहर आकर पूछा तो पता चला कि गुरुदेव का स्वास्थ्य काफी बिगड़ रहा है। मन क्षुब्ध हो गया, उस दिन दूध नहीं पिया।

कोटा से सुबह-शाम समाचार मिलते रहते थे कि डाक्टर-वैद्य आदि गुरुदेव की चिकित्सा कर रहे हैं, पर कोई लाभ नहीं है। श्री चांदमलजी मारु ने कहा—'गुरुदेव के दर्शन करने हों तो विहार कर जाओ। मार्ग में गुरुदेवश्री के समाचार आपको मिलते रहेंगे।' उसी समय पांच साधुओं ने कोटा की तरफ विहार कर दिया। दो तो उसी दिन पीपलिया मण्डी पहुँच गये। हम तीन सन्त पीछे रह गये। श्री इन्द्रमलजी मुनि चलने में कुछ ढीले थे।
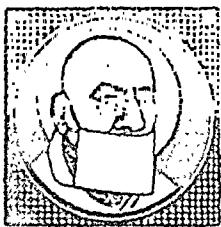
विहार करते हुए रामपुरा पहुँचे। करीब ग्यारह बजे वहाँ से विहार करने का विचार था, किन्तु रामपुरा श्रीसंघ ने रुकने का व एक व्याख्यान देने का बहुत आग्रह किया। रामपुरा श्रीसंघ साधु-सन्तों के प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखता है। पिछले वर्ष भी चातुर्मास की बहुत आग्रह भरी विनती उन्होंने की थी, पर कुछ कारणों से चातुर्मास न कर सके। संघ ने प्रार्थना की कि 'चातुर्मास न किया तो न किया, कम से कम एक व्याख्यान तो सुना दीजिये।' गुरुदेव के स्वास्थ्य की स्थिति के विषय में हमने संघ के अग्रगण्यों को समझाया कि अभी तो एक-एक मिनट का विलम्ब भी खटकने वाला है। हम गुरुदेव के दर्शनों के लिए तेजी से कदम-कदम बढ़ाये जा रहे हैं, उस स्थिति में व्याख्यान के लिए रुकना बहुत ही अटपटा लगता है। आखिर अनेक प्रकार से समझाने पर वे लोग मान गये और हम विहार करके गाँव के बाहर आये। वहाँ मांगलिक सुनाने के लिए जैसे ही रुके तो चित्तौड़ श्रीसंघ की बस उधर से आ पहुँची। वे लोग गुरुदेव के दर्शन कर वापस लौट रहे थे। उन्होंने बताया—'गुरुदेव की तबियत पहले से ठीक है।' बस, अब तो रामपुरा श्रीसंघ ने और भी आग्रह किया—'चलिए अब तो एक व्याख्यान सुनाकर ही विहार कीजिए।' किन्तु हम लोग वापस नहीं लौटे, और आगे बढ़ गये।

लम्बा विहार ! सड़क का कंकरीला मार्ग। मन में गुरुदेव के स्वास्थ्य की चिन्ता और शीघ्र पहुँचने की अकुलाहट। पर रास्ता तो काटे ही कटता था। रामगंज मण्डी पहुँचे, तब तक श्री इन्द्र मुनिजी के पाँव के तले घिस गये थे। चमड़ी छिल गई और खून टपकने लग गया। विहार की गति मन्द हो गई। आखिर साथी मुनि को छोड़कर कैसे आगे जायें। वहाँ पर एक छपा हुआ पर्चा मिला जिसमें लिखा था—'गुरुदेव को पहले से आराम है, चिन्ता जैसी कोई बात नहीं है। बाहर से दर्शनार्थ आने वाले भाई-बहन अपने साथ डाक्टर आदि लेकर न आवें, यहाँ व्यवस्थित चिकित्सा चल रही है।"

हम लोग मोडक होकर दर्रा स्टेशन पहुँचे। रात भर वहाँ विश्राम लिया। प्रातःकाल प्रतिक्रमण करने को उठे तो श्री इन्द्रमुनि जी ने कहा—मुझे एक स्वप्न आया है—काला साँप निकला है, अँधेरे में किसी को डस कर चला गया है। मैंने ऊपर से तो उनको समझाया, सान्त्वना दे दी। पर भीतर से मेरा मन आशंकित हो उठा। मन के एक कोने में एक तीखी अकुलाहट उठी—गुरुदेव ····पर फिर मन को शान्त किया—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। गुरुदेव का वरदहस्त अभी तो दीर्घकाल तक समाज एवं शिष्यों पर बना रहेगा····

सूर्योदय होने पर विहार करने की तैयारी की। सोचा—कल शाम को भी आहार नहीं लिया था और प्रातः भी कम ही हुआ था, अतः अभी कुछ मिल जाय तो लेकर सीधे चलते रहें, मंजिल पार कर मंडाने तक पहुँच जांय। प्रातः चार घरों में गये, पर संयोग ऐसा बना कि कहीं भी आहार-पानी का योग नहीं बना। साधु-जीवन की यही तो मौज है, 'कभी घी घना, कभी मुठी चना और कभी वह भी नहीं बना।' दर्रा स्टेशन से चल पड़े, मंडाने का मार्ग जिस मेन रोड से अलग होता था उस पर कुछ कदम आगे बढ़े ही थे कि कोटा की तरफ से एक कार आती हुई नजर पड़ी। लौट कर मेन रोड पर वापस आये कि कार वालों से गुरुदेव के कुछ समाचार पूछे। हमें देखकर कार भी रुकी, उसमें रतलाम वाले श्री बापूलाल जी बोथरा, श्री हस्तीमलजी बोरा आदि थे। वे उतरकर निकट आये और बताया कि गुरुदेव ने संथारा कर लिया है। आप जल्दी कोटा पहुँचिए।

'हम लोग जल्दी तो चल ही रहे हैं, मगर आखिर पाँव से चलने वाला कितना जल्दी

पहुँचेगा—मैंने कहा। कार वापस कोटा लौट गई। मैंने श्री सागर मुनि (पं० चम्पालालजी महाराज के सुशिष्य) से कहा—"गुरुदेव ने संथारा कर लिया है तो अब आज हम लोग भी आहार नहीं करें, और जल्दी से जल्दी कोटा पहुँचने की चेष्टा करें।"

सागर मुनि तैयार हो गये, पर इन्द्रमुनिजी से चला नहीं जा रहा था, वे पीछे आ रहे थे, उनको पीछे छोड़ा। कभी-कभी साथी को भी छोड़ देना पड़ता है, विशेष कार्य की सिद्धि के लिए। हम दोनों चलते गये। लगभग १५ मील चलने के बाद कसार गाँव आया। दो दिन से भूखे थे, पेट में आँटें पड़ने लगे, प्यास भी जोर की लग रही थी। सागर मुनि बोले—"अब तो चला नहीं जा रहा है। आहार न मिले तो कोई बात नहीं, पर पानी तो पीना पड़ेगा। प्यास से गला सूख रहा है।" हमने गाँव में प्रासुक पानी की गवेषणा की। पता चला श्वेताम्बर आचार्य श्री आनन्दसागरजी महाराज यहाँ ठहरे हुए हैं। इन्होंने भी कोटा में चातुर्मास किया और गुरुदेव के साथ एक मंच पर ही व्याख्यान दिया था। वे गुरुदेव के प्रति बहुत ही आदर व स्नेह भाव रखते थे, हम उधर ही गये। उनके दर्शनार्थ कोटा से रायबहादुर सेठ केशरसिंहजी बुधसिंहजी बाफना के परिवारजन आये हुए थे। सागर मुनि को एक स्थान पर बिठाकर मैं पात्र लेकर जल लेने उनके वहाँ गया। आचार्यजी भीतर ठहरे थे और रायबहादुर का परिवार बाहर बरामदे में ठहरा था। मुझे देखकर उन लोगों ने आहार-पानी के लिए विनती की। मैंने कहा—"बाई! गुरुदेव ने संथारा किया है, अतः हम आहार तो आज नहीं लेंगे, पर प्यास लगी है, और विहार करना है अतः प्रासुक पानी हो तो ले लेंगे।" सेठानी ने कहा—"महाराज! गुरुदेव का तो ८ बजे ही स्वर्गवास हो चुका है, हम लोग वहीं से तो आये हैं। पालकी निकलने की तैयारी हो रही है; हम भी वापस जाकर उसमें (शोभा-यात्रा में) सम्मिलित होंगे।"

सुनते ही मेरे हाथों के तोते उड़ गये। सवासौ मील की यह दौड़ आखिर निरर्थक हो गई। जिस कार्य के लिए चले थे, वह न हो सका। गुरुदेव के अन्तिम दर्शनों की अभिलाषा मन की मन में ही रह गई। मेरे सामने पांडव मुनियों का वह दृश्य घूम गया, जब वे भगवान नेमिनाथ के दर्शनों के लिए जा रहे थे और मार्ग में ही भगवान के निर्वाण का सम्वाद सुनकर स्तब्ध रह गये। उन्होंने भी आहार-पानी का त्यागकर संथारा स्वीकार कर लिया। हम लोगों में इतनी शक्ति नहीं थी, पर भक्ति तो थी, गुरुदेव के दर्शनों की तीव्र भावना थी। इसलिए स्वर्गवास का समाचार सुनकर हाथ-पाँव ठण्डे हो गये। मैं बिना पानी लिये ही लौट आया। अब पानी पात्र में नहीं, आँखों में उमड़ आया था। सागर मुनि को बताया तो उनकी भी आँखों में अश्रुधारा बहने लगी। एक महान उपकारी गुरु का वियोग हृदय को टूक-टूक कर रहा था। कुछ क्षण सुस्ताकर अब सोचने लगे—"अब क्या करें? कोटा पहुँचने पर भी गुरुदेव के दर्शन नहीं होंगे, और यहाँ बैठे-बैठे भी आखिर क्या करेंगे। चलना तो है ही, चलना ही जीवन है, रुककर कहाँ बैठना है।' मन का उत्साह तो ठण्डा पड़ चुका था पर फिर भी दोनों साथी भूखे-प्यासे उठे और सामान कन्धों पर लेकर चल पड़े कोटा की तरफ।

सुबह चले थे, अब दोपहर ढल रही थी, चलते ही रहे, पर चलने का अर्थ व्यर्थ हो गया, जिस लिए चले थे वह लक्ष्य बिन्दु ही सामने न रहा। इसलिए चलने में न उत्साह था, न आनन्द। पर चलना तो पड़ ही रहा था। यात्रा बीच में ही रोक दें तो वह यात्री कैसा! आखिर कोटा ५ मील रहा। तब कुछ अजैन लोग मिले। कहने लगे—"जल्दी जाओ! एक बहुत बड़े महात्मा की

शवयात्रा निकल रही है, बड़े धूमधाम से। हजारों आदमी साथ हैं, गाँव बाहर से वापस गाँव की ओर चली है, वहाँ से सेठ केसरसिंहजी की बगीची में दाह-संस्कार होगा।"

कोटा ज्यों-ज्यों नजदीक आ रहा था, विचारों की उथल-पुथल बढ़ रही थी। गुरुदेव के दर्शन तो अब स्वप्न रह गये। कदम-कदम पर उस दिव्य आत्मा की छवि आँखों में घूम रही थी, मन श्रद्धा से नत हो रहा था। लगभग आधा घंटा दिन रहा होगा कि हम नयापुरा बाबू गणेशलालजी के नन्द भवन में पहुँच गये। यहीं पर गुरुदेव का स्वर्गवास हुआ था। कुछ लोग दाह-संस्कार देखकर लौट रहे थे। उनके चेहरों पर छाई उदासी और व्याकुलता देखकर सहसा दिल भारी हो उठता था, वेदना की कसक और तीखी हो जाती थी। सहमे-सहमे कदमों से हम नन्द भवन की ऊपरी मंजिल पर पहुँचे। वहाँ उपाध्याय प्यारचन्दजी महाराज आदि श्रमण समुदाय उदास-सुस्त बैठा था। श्री प्यारचन्दजी महाराज की आँखों से तो अब तक भी गंगा-यमुना प्रवाहित हो रही थी। गुरु का वियोग शिष्य के लिए सर्वाधिक असह्य होता है। गुरु की सन्निधि में शिष्य को जो आनन्द, उल्लास और आध्यात्मिक पोषण मिलता है, वह अकथनीय है। गुरु-वियोग की गहन पीड़ा शिष्य की आँखों में घनीभूत रहती है, उसे कोई शिष्य ही पढ़ सकता है। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज की मानसिक वेदना, देखकर भगवान महावीर के परिनिर्वाण पर हुई गणधर गौतम की मनोवेदना की स्मृति होने लगी। प्राचीन आचार्यों ने भगवान महावीर और गणधर गौतम के अपूर्व स्नेह-सम्बन्धों का मार्मिक वर्णन किया है, जिसे पढ़कर आज भी हृदय रोमांचित हो उठता है और महावीर निर्वाण के बाद की गौतम-विलाप की कविताएँ मन को गद्-गद् कर डालती हैं। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज की भी कुछ वैसी ही स्थिति हो रही थी। गुरु का असीम वात्सल्य और शिष्य का सर्वोत्तम समर्पण भाव यह सम्बन्ध जिसने देखा, वही उनकी पीड़ा की मार्मिकता को समझ सकता था। हम जब वहाँ पहुँचे और वातावरण में तैरती गम्भीरता, उदासीनता से अभिभूत हुए तो आँखें स्वतः ही छलछला उठीं। गुरुदेव के अन्तिम दर्शनों की मन की अतृप्त प्यास बार-बार कसक बनकर मन को कचोट रही थी। पर खैर, इतना लम्बा विहार कर कम से कम स्वर्गवास के दिन वहाँ पहुँच गये।

तपस्वी मोहनलाल जी मुनि ने भी अत्यन्त निष्ठापूर्ण तन्मय होकर गुरुदेव की सेवा की थी। जिसने भी उनकी सेवा-भावना देखी वह प्रशंसा किये बिना नहीं रहा, वे भी आज उदास और वेदना पीड़ित थे। सभी सन्तों व आने वाले भक्तों की आँखों से अश्रु धार बह रही थी। यह देखकर मुंह से निकल पड़ता था—

दिवाकर उस पार है, छाया अन्धकार है।
सावन जलधर की तरह, बह रही अश्रु-धार है॥

प्रातः हुआ, सूर्य की किरणों ने अन्धकार की सघनता को तोड़ा, समय के विधान ने पीड़ा की सघनता भी कुछ कम की। दूसरे दिन मुनिवरों के साथ वार्तालाप हुआ तो मालूम हुआ कि गुरुदेव श्री ने अन्तिम समय में पूछा था—"केवल आ गया क्या ?"

गुरुदेव ने अन्तिम समय में मुझे याद किया यह जानकर हृदय भर आया। उनकी असीम करुणा और अपार कृपा का स्मरण होने पर आज भी मन-विभोर हो उठता है।

दोपहर को आचार्य सूर्यसागरजी महाराज नन्द भवन में पधारे। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी

महाराज को साश्रुनयन देखकर वे कहने लगे—'आप क्यों चिन्ता करते हैं ? श्री जैन दिवाकरजी महाराज का अधूरा कार्य हम लोग मिलकर पूरा करेंगे।' आचार्यजी के विशाल हृदय से निकले ये शब्द सभी के लिए सान्त्वनादायक सिद्ध हुए।

कोटा का वह चातुर्मास जैन इतिहास में अमर हो गया। गुरुदेवश्री के अन्तिम समय में पं० मेवाड़ भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज, प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज भी पहुँच गये थे। उन्होंने भी अन्तिम दर्शन-सेवा का लाभ प्राप्त कर लिया था। कोटा श्रीसंघ ने, बाबू गणेशीलाल जी ने तथा अन्य अनेक श्रावकों ने गुरुदेव एवं श्रमण वर्ग की सेवा तो तन-मन से की ही, दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों की भी तन-मन-धन से जो सेवा की उसे लोग आज भी स्मरण करते हैं। और कोटा नगरी को 'तीर्थ' की भाँति मानते हैं।

नजर भर देखा तो·······

☆ मोतीसिंह सुराना, भीलवाड़ा

वीर भूमि मेवाड़ की औद्योगिक नगरी भीलवाड़ा में एक बार पूज्य गुरुदेव का पदार्पण हुआ। उस समय पं० रत्न श्री नन्दलालजी महाराज, पं० रत्न श्री देवीलालजी महाराज, पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज अपने शिष्यों सहित पधारे थे। संयोग से यहाँ गुरुदेव के पास में तीन भागवती दीक्षाओं का भव्य आयोजन हुआ।

तालाब के किनारे पर बड़े मैदान में एक प्राचीन वट-वृक्ष के नीचे दीक्षा होना निश्चित किया गया। गुरुदेव उसी विशाल बरगद के नीचे ऊँचे पाट पर विराजमान थे। कई सन्त-सतियाँ भी पास में ही सुशोभित थे। भीलवाड़ा निवासियों के अलावा सवासौ गाँवों के ५ हजार नर-नारी रंगबिरंगे परिधानों से सुसज्जित होकर यह दीक्षा महोत्सव देखने आये थे। पूरा मैदान खचाखच भरा हुआ था। कुछ नौजवान और बच्चे उपयुक्त स्थान न मिलने से उसी पुराने वट-वृक्ष पर चढ़-कर दीक्षा-महोत्सव और मुनिदर्शन का आनन्द ले रहे थे।

अचानक उस वट-वृक्ष की एक विशाल भीमकाय शाखा, जिस पर कई व्यक्ति चढ़े हुए थे, जोर से चरमराई। उसके चरमराने का शब्द सुनकर नीचे बैठे नर-नारी घबरा उठे। सब के होश उड़ गये और एक भयंकर अनिष्ट की आशंका से कुहराम मच गया। उसी समय पूज्य गुरुदेव ने अपनी नजर ऊपर की ओर उठायी और जलद-गम्भीर ध्वनि से तीन बार शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!! उच्चारण किया। वट-वृक्ष की वह भीमकाय शाखा ज्यों-की-त्यों ठहर गई।

दीक्षा समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ। सब नर-नारी गुरुदेव का जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान के लिए प्रस्थान कर गये। सभी सन्तगण भी प्रस्थान कर चुके थे और देखते-देखते वह स्थान पूर्णतः मानव रहित हो गया। जब एक भी व्यक्ति उस वट-वृक्ष के नीचे नहीं रहा, तब वही भीमकाय शाखा जोर से चरमराहट करते हुए धराशायी हो गई।

इस आश्चर्यजनक अद्भुत चमत्कार से लोग दंग रह गये और गुरुदेव के चारित्र-बल की सर्वत्र मुक्त कण्ठ से प्रशंसा होने लगी। इस विचित्र दृश्य को अपनी आँखों से देखने वाले कुछ बड़े-बूढ़े लोग आज भी भीलवाड़ा में विद्यमान हैं, जो बड़े गर्व से इस घटना का वर्णन यदा-कदा करते रहते हैं।

☆
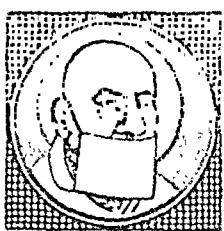
लोहामंडी सोनामंडी बन गई

☆ सोहनलाल जैन
(भूतपूर्व अध्यक्ष शहर कांग्रेस कमेटी, आगरा)

श्रद्धेय जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज सचमुच में एक महापुरुष थे।

सम्वत् १९९४ (सन् १९३६) में आप लोहामण्डी आगरा पधारे तथा यहाँ का चातुर्मास मनाया। जिस समय आप विहार करते हुए भरतपुर पधार गये थे तो लोहामण्डी से सेठ रतनलालजी जैन के नेतृत्व में आगरा के नवयुवकों का एक प्रतिनिधि मंडल भरतपुर से आगरा तक साथ-साथ आया था। मुनिजी के साथ उस समय चौदह संत थे। विशेष उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज सब कार्यों का नेतृत्व करते थे। चातुर्मास में विशेष रूप से 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' का हिन्दी-उर्दू में प्रकाशन लोहामण्डी, आगरा में ही हुआ। और निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह का आयोजन सर्वप्रथम यहीं पर किया गया। जिसमें भारत के कौने-कौने से हजारों नर-नारियों ने इस सप्ताह में उत्साह पूर्वक भाग लिया।

जैन दिवाकरजी महाराज के चातुर्मास में प्रत्येक दिन हिन्दू-मुसलमान आदि सभी धर्मों के अनुयायी सैकड़ों की संख्या में पधारकर मुनिजी के उपदेशों से लाभ लेते थे। मुनिजी की इतनी तेज आवाज थी कि बिना लाउडस्पीकर के ही शान्तिपूर्वक श्रोता प्रवचन का लाभ लेते थे। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर कितने ही मुसलमान तथा मांसाहारियों ने शराब व माँस का त्याग कर दिया था।

भगवान महावीर स्वामी के जीवन-चरित्र का अँग्रेजी में अनुवाद कराकर प्रकाशित किया गया। जैन रामायण का भी प्रकाशन यहीं से किया गया। जैन भवन लोहामण्डी में प्रातः ६ बजे से रात के १० बजे तक बराबर स्थानीय तथा बाहर के भाइयों का ताँता लगा रहता था। जैन दिवाकरजी महाराज के चातुर्मास में डाक-तार का इतना आदान-प्रदान होता था कि भारत सरकार को लोहामण्डी में जैन भवन के पास ही लोहामण्डी डाकघर की स्थापना करनी पड़ी जो अब तक कार्यरत है।

जैन दिवाकरजी महाराज के चातुर्मास में ही कुछ विशेष घटनाएँ उल्लेखनीय हैं।—सेठ रतनलाल जैन मीतल आगरा निवासी की सुपुत्री शीलादेवी जैन का सम्बन्ध साहू रघुनाथदास (धामपुर निवासी) के सुपुत्र महावीर प्रसाद गुप्ता के साथ हो गया था। इसी बीच में विवाह के कार्य में अड़चन आई; इसी सम्बन्ध में सेठजी को धामपुर जाना पड़ा। धामपुर से लौटते समय बरेली एक्सप्रेस बरहन और टूंडला के बीच में ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त हो गई। इसी ट्रेन से सेठजी आगरा आरहे थे। इस समाचार को सुनकर लोहामण्डी के जैन-अजैन भाइयों में बड़ी हलचल मच गई। जैन दिवाकर जी महाराज ने भाइयों को शान्त करते हुए घोषणा की कि सेठजी सकुशल हैं और स्टेशन पर दूसरों की सहायता कर रहे है बहुत से प्रेमी लोग कार से व डाक्टर सरकार अपनी एम्बुलेंस से घटनास्थल पर पहुँचे। जैसा जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा, वैसा ही सत्य पाया। उनके आशीर्वाद से ही शादी का भी संकट दूर हुआ और सकुशल विवाह का कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह के उपलक्ष में जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से सेठ रतनलालजी ने पुस्तकालय का महत्व समझा एवं पुस्तकालय के भवन का निर्माण करोया; जो आज तक वीरपुस्तकालय के रूप में जनता की सेवा कर रहा है। लाला मुंशीलालजी बाग अन्ता लोहामण्डी के सन्तान होकर मर जाती थी। ऐसा चार

वार हो गया था; गुरुदेव पधारे तब एक लड़का हुआ। उसे लालाजी ने जैन दिवाकरजी महाराज के चरणों में डाल दिया। महाराज साहब ने मांगलिक सुनाई। वह बालक अब श्रवणकुमारजी के नाम से है, इस समय ४२ वर्ष के हैं।

जैन दिवाकरजी महाराज ने चातुर्मास उठने के अन्तिम प्रवचन में आशीर्वाद के रूप में लोहामण्डी के सोना मण्डी के रूप में परिवर्तित होने की शुभकामना प्रकट की। कुछ ही दिनों के पश्चात् वास्तव में लोहामण्डी सोनामण्डी हो गई। यहाँ के जैन समाज में धन-धान्य की वृद्धि होती ही चली गई।

आगरा के चातुर्मास में ही लाला फूलचन्दजी जैन कानपुर निवासी तथा चौ० किशनलालजी कानपुर ने कानपुर में चातुर्मास की विनती की। कानपुर में चातुर्मास हेतु वहाँ जैन भवन की भी व्यवस्था नहीं थी और न अपने भाइयों के घर ही थे। यह विनती व्यक्तिगत आधार पर थी। यह विनती दिवाकरजी महाराज ने सेठ रतनलाल जैन तथा लोहामण्डी के भाइयों से सलाह करके स्वीकार कर ली। चातुर्मास के पश्चात् ही हाथरस से होते हुए शिष्य-मण्डली के साथ कानपुर पधार गये। हाथरस में श्रीचन्दन मुनिजी महाराज की दीक्षा धूमधाम से हुई।

मार्ग में जैनधर्म का उपदेश देते हुये दिवाकरजी महाराज ने लछमनदास बाबूराम की धर्मशाला में चातुर्मास मनाया। जोकि श्री फूलचन्दजी की ही धर्मशाला थी। इस कानपुर के चातुर्मास में निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह का भी कार्यक्रम बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। लाला फूलचन्दजी (कानपुर निवासी) ने स्वयं अपने आप ही पूरे चातुर्मास का व्यय वहन किया और ठहरने व भोजन का ऐसा प्रबन्ध किया कि स्थानकवासी जैन समाज के लिये एक आदर्श उपस्थित किया। जिसकी प्रशंसा दिवाकारजी महाराज के दर्शनार्थ आने वाले लोगों ने मुक्त-कंठ से की। उसी समय जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से जैन भवन की स्थापना की गई। लाला फूलचन्दजी जैन ने भवन बनाने के लिये अपना बहुत बड़ा भवन दे दिया जोकि "माता रुक्मिणी जैन भवन" खोआ बाजार, कानपुर के नाम से प्रसिद्ध है तथा साधु व साध्वियों के समय-समय पर चातुर्मास होते रहते हैं। एस० एस० जैन संघ की स्थापना भी उसी चातुर्मास में हुई थी जिसकी व्यवस्था सुचारु रूप से अब तक चल रही है। ✡

बाहुबलि सतयुग हुए,
प्रथम मल्ल पहिचान।
हनुमत श्री वज्रांग प्रभु,
द्वितीय मल्ल सुजान।
द्वितीय मल्ल सुजान,
तृतीय मल्ल सुभीम है।
चतुर्थ मल्ल श्रीदिवाकर,
विश्व श्रमण सुसीम है।

—सूर्यभानुजी डांगी—

अफीम भी गुड़ बन गया

☆ गणेशमुनि शास्त्री

मानवता के महा मसीहा, जैनदिवाकर संत महान् ।
सर्व हिताय सुखाय विरति का, जीवन जीया त्याग-प्रधान ।।
झोंपड़ियों से महलों तक की, जिनको श्रद्धा प्राप्त हुई ।
बनकर वही अनन्त लोक में, कीर्ति रूप में व्याप्त हुई ।।

× × ×

अफीमची ने कहा सेठ से, पैसे लो दो मुझे अफीम ।
किसे चाहिये ? कारण बतला, फिर हम देंगे तुझे अफीम ।।
रोगी को देते हैं देते— अफीमची को कभी न हम ।
गुस्सा करके चला गया वह, झूठा करता हुआ अहम् ।।
लाइसेन्स शुदा नर ही कर— सकता था इसका व्यापार ।
रखा सेठ के पास पुराना, जिससे कुछ करते उपकार ।।

× × ×

कोटा जाते हुए पधारे, सुवासरा—मंडी में आप ।
जैन दिवाकर संत चौथमलजी, का भारी पुण्य प्रताप ।।
मिश्रीमल जी ही मुखिया थे, इन ने ही सब किया प्रबन्ध ।
साधार्मिक सेवा से मिलता, धर्मोत्साह अपूर्वानन्द ।।

× × ×

आया हुआ पुलिस इन्स्पैक्टर, कभी जाँच के लिए यहाँ ।
अफीमची बदला लेने को, पहुँच गया है तुरत वहाँ ।।
सेठ अफीम बेचता है पर, लाइसेन्स न उसके पास ।
देखो, चलो, अभी पकड़ा दूं, जो न करो मेरा विश्वास ।।
अपनी उन्नति हो जाएगी, जो पकड़ूंगा ऐसे केस ।
अफीमची को साथ ले लिया, और ले लिए पुलिस विशेष ।।

× × ×

कहा इन्स्पैक्टर ने आकर, हमें तलाशी लेनी है ।
कहा सेठजी के लड़के ने, हमें तलाशी देनी है ।।
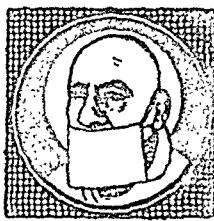
हम न अफीम बेचते केवल, गुड़ ही बेचा करते हैं।
किसी इन्स्पैक्टर से हम, नहीं कभी भी डरते हैं ॥
लगे तलाशी लेने लेकिन, कहीं न आई नजर अफीम।
रोग नाड़ में पकड़ा जाये, तो देता है दवा हकीम ॥

× × ×

गये हुए थे सेठ कथा में, और जहाँ बनता भोजन।
घटनास्थल पर जो देखा वह, कहा किसी ने जा फौरन ॥
सेठ गये गुरुदेव पास में, लेने अन्तिम मंगल पाठ।
स्थिति बतलाकर बोले गुरुवर ! भय ने मुझको खाया काट ॥
गुरु बोले सब अच्छा होगा, बैठो गिनो मन्त्र नवकार।
इससे बढ़कर और न कोई, हो सकता दुख में आधार ॥

× × ×

जिनमें भरी अफीम पुलिस को, नजर आ रहा गुड़ ही गुड़।
लगी सफलता हाथ नहीं जब, मन ही मन वे रहे सिकुड़ ॥
आई गंध अफीम की, किन्तु न मिली अफीम।
फैल हो गई पुलिस ने, जो सोची थी स्कीम ॥
क्षमा याचना कर गये, बोल रहे सब लोग।
गुड़ बन गया अफीम का, देखो मन्त्र प्रयोग ॥

× × ×

सुना सेठ ने सारा किस्सा, बोला श्रीगुरुवर की जय।
उठा जाप से गुरु-चरणों में, झुक गया, रहा न कुछ भी भय ॥
गुड़ कैसे बन गया बताओ, रखा हुआ था जहाँ अफीम।
यही धर्म का फल होता है, मीठा हो जाता है नीम ॥

× × ×

जैन दिवाकर जी के ऐसे,
कितने ही हैं पुण्य-प्रसंग।
"मुनि गणेश" शास्त्री देता है,
इनको नव-कविता का रंग ॥
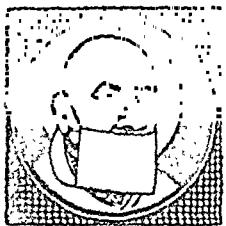
आध्यात्मिक-ज्ञान की जलती हुई मशाल

✡ श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज जैन समाज के एक तेजस्वी मनीषी मुनिराज थे। उनका बाह्य और आभ्यन्तर व्यक्तित्व हृदय को लुभाने वाला और मन को मोहने वाला था। ऊँचा कद, गौरवर्ण, भव्यभाल, ऊँची और उठी हुई नाक, पीयूष रस बरसाते हुए नेत्र-युगल, बड़े कान, लम्बी भुजाएँ, भरा हुआ आकर्षक भव्य मुखमण्डल, यह था दिवाकरजी महाराज का बाह्य व्यक्तित्व, जिसे देखकर दर्शक आनन्द-विभोर हो उठता था। वह कभी उनकी आकृति की तुलना स्वामी रामतीर्थ से करता और कभी विवेकानन्द से, कभी बुद्ध से, तो कभी श्रीकृष्ण से। बाह्य व्यक्तित्व जहाँ इतना आकर्षक था, वहाँ आन्तरिक व्यक्तित्व उससे भी अधिक आकर्षक था। वे एक सम्प्रदाय विशेष के सन्त होने पर भी, सभी सम्प्रदायों की महानता का आदर करते थे। स्नेह-सद्भावना के साथ उनमें मैत्री स्थापित करना चाहते थे। वे धर्मसंघ के नायक थे तथापि उनमें मानवता की प्रधानता थी। वे जन-जन के मन में सुसंस्कारों का सरसब्ज बाग लगाना चाहते थे। स्वयं कष्ट सहन कर दूसरों को आनन्द प्रदान करना चाहते थे। उनमें अपार साहस था, चिन्तन की गहराई थी, दूसरों के प्रति सहज स्नेह था। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व बहुमुखी था। उन्होंने व्यवहार-कुशलता से जन-जन के मानस को जीता था और संयमसाधना के द्वारा अन्तरंग को विकसित किया था। जो भी उनके निकट सम्पर्क में आता वह उनके स्वच्छ हृदय, निश्छल व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज श्रमण-परम्परा के एक ओजस्वी और तेजस्वी प्रतिनिधि सन्त थे। वे विशिष्ट व्याख्याता, अग्रणी ध्वजवाहक ही नहीं अपितु सर्वोपरि नेता थे। उन्होंने नवीन चिन्तन दिया। उनमें धर्म और जीवन के मर्म को समझने की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने जीवन को आचार की उत्कृष्टता, विचारों की निर्मलता और नैतिकता से सजाने की प्रेरणा दी। जातिवाद, पंथवाद, प्रान्तवाद से ऊपर उठकर उन्होंने मानव को महामानव बनने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने बताया—धर्म, संस्कृति और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जब तक ये तीनों खण्ड-खण्ड रहेंगे वहाँ तक जीवन में अखण्डता नहीं आ सकती।

मैंने सर्वप्रथम उनके दर्शन उदयपुर में सन् १९३९ में किये थे। मैं अपनी मातेश्वरी तीजबाई के साथ पहुँचा था; जिनका दीक्षा के पश्चात् महासती प्रभावतीजी नाम है। माताजी को आगम साहित्य व स्तोक साहित्य का गम्भीर ज्ञान है। उन्होंने दिवाकरजी महाराज से अनेक जिज्ञासाएँ प्रस्तुत कीं। माताजी ने पूछा—"अंगप्रविष्ट' और 'अंग-बाह्य' में क्या अन्तर है ?"

दिवाकरजी महाराज ने कहा—"जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य में अंग-प्रविष्ट श्रुत उसे माना है, जो श्रुत गणधर महाराज के द्वारा सूत्र रूप में रचा गया हो, तथा गणधरों के द्वारा प्रश्न करने पर तीर्थंकर भगवान् जिसका प्रतिपादन करते है और जिसमें शाश्वत सत्य रहा हुआ होता है। अंगप्रविष्ट सदा शाश्वत रहता है। कभी ऐसा नहीं कि वह नहीं था। वह नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है। वह था, और है तथा भविष्य में भी रहेगा। वह ध्रुव है; नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित और नित्य है ऐसा समवायांग और नन्दीसूत्र में स्पष्ट रूप से बताया गया है।

अंग-बाह्य वह है, जिसके अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर भगवान हैं, और जिस सूत्र के रचयिता

स्थविर हैं तथा जो बिना प्रश्न किये ही तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित है। तात्पर्य यह है कि अंग प्रविष्ट के प्ररूपक भी तीर्थंकर हैं और अंग-बाह्य के प्ररूपक भी तीर्थंकर हैं। पर मूल वक्ता एक होने पर भी संकलनकर्ता पृथक् होने से अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य ये भेद किये गये हैं।

माताजी ने पूछा—"मूल सूत्र' और 'छेदसूत्र' किसे कहते हैं ?"

दिवाकरजी महाराज ने उत्तर देते हुए बताया—"जिन आगमों में मुख्य रूप से साधु के आचार-सम्बन्धी मूल गुण—महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि का वर्णन हो और जो साधु-जीवन के लिए मूलरूप से सहायक बनते हों और जिनका अध्ययन सबसे पहले किया जाय वे 'मूलसूत्र' हैं। इसीलिए सबसे पहले साधु को दशवैकालिक सूत्र पढ़ाया जाता है। उसके बाद उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ाया जाता है।

" 'छेदसूत्र' प्रायश्चित्त सूत्र हैं। पाँच चारित्र में दूसरा चारित्र 'छेदोपस्थापनीय' है। दस प्रकार के प्रायश्चित्तों में छेद सातवाँ प्रायश्चित्त है। आलोचनार्ह प्रायश्चित्त से छेदार्ह प्रायश्चित्त सातवाँ प्रायश्चित्त है। ये सातों प्रायश्चित्त उस श्रमण को दिये जाते हैं जो श्रमण-वेष में होते हैं। और शेष तीन अन्तिम प्रायश्चित्त वेष-मुक्त श्रमण को दिये जाते हैं। छेद प्रायश्चित्त से उसके पूर्व के जितने भी प्रायश्चित्त हैं उनको ग्रहण किया गया है। इन्हीं प्रायश्चित्तों के साधक अधिक होते हैं। छेदसूत्रों के अर्थागम के प्ररूपक भगवान महावीर हैं। अन्य सूत्रों के रचयिता स्थविर भगवान हैं। छेदसूत्रों में एकसूत्र का दूसरे सूत्र से सम्बन्ध नहीं होता। सभी सूत्र स्वतन्त्र अर्थ को लिये हुए होते हैं। इसीलिए भी इन्हें छेदसूत्र कहा है।"

माताजी ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—"नन्दीसूत्र को मूलसूत्र क्यों कहा है ? उसमें तो चारित्र का कोई निरूपण नहीं है।" जैन दिवाकरजी महाराज ने समाधान दिया—"पाँच आचार में सबसे पहला आचार ज्ञान है। ज्ञान के बिना अन्य आचार का सम्यक् पालन नहीं हो सकता। नन्दीसूत्र में ज्ञान का निरूपण होने से इसे मूलसूत्र में स्थान दिया गया है।"

माताजी ने पूछा—"उत्तराध्ययन सूत्र में अकाममरण और सकाममरण का वर्णन है। इस अकाममरण और सकाममरण का तात्पर्य क्या है ?"

जैन दिवाकरजी महाराज ने उत्तर देते हुए कहा—"जो व्यक्ति विषय कषाय में आसक्त होने के कारण मरना नहीं चाहता, किन्तु आयु पूर्ण होने पर वह मृत्यु का वरण करता है, उसका मरण विवशता से होता है, अतः वह अकाममरण है। उसे दूसरे शब्दों में 'बाल-मरण' ही कहते हैं। सकाममरण वह है जिस व्यक्ति के मन में विषयों के प्रति आसक्ति नहीं है, जीवन और मरण दोनों आकांक्षाओं से मुक्त है, मृत्यु का समय उपस्थित होने पर भी जिसके अन्तर्मानस में तनिक मात्र भी भय का संचार नहीं होता, किन्तु मृत्यु के क्षणों को भी जीवन की तरह प्रिय मानकर आनन्दित होता है, संकटपूर्ण उन क्षणों में भी मन में संकल्प-विकल्प न कर पापों का परिहार कर, आत्म-साधना के लिए अशन आदि का परित्याग करता है, वह सकाममरण है। इसे 'पंडितमरण' भी कहते हैं। और यह मरण 'विरतिमरण' भी कहा जाता है।"

माताजी ने पूछा—"षडावश्यक में एक आवश्यक 'कायोत्सर्ग' है, और बारह प्रकार की निर्जरा में अन्तिम निर्जरा का नाम कायोत्सर्ग है। कायोत्सर्ग का शाब्दिक अर्थ काया का परित्याग है। काया का परित्याग कैसे किया जा सकता है ?"

जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा—"कायोत्सर्ग का अर्थ केवल काया का परित्याग नहीं है; कायोत्सर्ग का वास्तविक अर्थ है—'काया की ममता का त्याग'। उसकी चंचलता का विसर्जन है। कायोत्सर्ग में केवल श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म प्रवृत्ति रहती है, अन्य सभी प्रवृत्तियों का निरोध किया जाता है। कायोत्सर्ग खड़े होकर और बैठकर किया जा सकता है।"
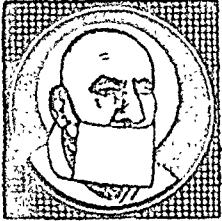
इस प्रकार माताजी ने दिवाकरजी महाराज से अनेक प्रश्न पूछे और योग्य समाधान पाकर वे बहुत ही प्रमुदित हुई। इन प्रश्नों के उत्तरों में दिवाकरजी महाराज का गम्भीर आगम-ज्ञान स्पष्ट रूप से झलक रहा है। संक्षेप में और सारगर्भित जो उन्होंने उत्तर दिये, वे उनकी विद्वत्ता के परिचायक हैं। मैं भी उनके उत्तर देने की शैली पर मुग्ध हो गया।

वि० सं० १९३९ में उदयपुर वर्षावास में माताजी सद्गुरुणी जी विदुषी महासती श्री सोहन कुंवरजी के साथ कभी-कभी मध्याह्न में दिवाकरजी महाराज जहाँ विराजे हुए थे, वहाँ जाती थीं और ज्ञान-चर्चा कर बहुत ही आह्लादित होती थीं।

उदयपुर में दिवाकरजी महाराज के प्रवचनों में सहस्राधिक व्यक्ति उपस्थित होते थे। जैनियों की अपेक्षा भी अजैनों की संख्या अधिक होती थी। हिन्दू, मुसलमान सभी लोग उनके प्रवचनों में उपस्थित होते और उनके प्रवचनों को सुनकर वे दुर्व्यसनों का परित्याग कर अपने जीवन को धन्य अनुभव करने लगते। वे वाणी के देवता थे। कब, कितना और कैसा बोलना चाहिए यह भी वे खूब अच्छी तरह से जानते थे। उनके प्रवचनों की यह विशेषता थी कि वे चाहे जैसा भी विषय लेते, उसे उतना सरल और सरस बनाकर प्रस्तुत करते कि श्रोता ऊबता नहीं, थकता नहीं। प्रवचनों के बीच में इस प्रकार सूक्तियाँ, उक्तियाँ और दृष्टान्त देते थे कि श्रोता आनन्द से नाचने लगता। और चुम्बक की तरह श्रोता को इस तरह से खींचते थे कि वह सदा के लिए उनके प्रवचनों को सुनने के लिए लालायित रहता। वे जिधर से विहार करके भी निकलते चाहे छोटे से छोटा भी ग्राम क्यों न हो, वहाँ लोगों की अपार भीड़ उनके प्रवचन सुनने के लिए एकत्र हो जाती। चाहे साक्षर हो चाहे निरक्षर, सभी उनके प्रवचनों को सुनकर अपूर्व तृप्ति का अनुभव करते। वे अपने प्रवचनों में सामाजिक-धार्मिक और जीवन-सम्बन्धी गूढ़ पहेलियों को इस प्रकार सुलझाते थे कि जन-जीवन ही बदल जाता। वे कभी-कभी कु-रूढ़ियों के परित्याग हेतु तीव्र व्यंग्य भी करते थे। राजस्थान में होली पर्व के अवसर पर कुछ अंध-श्रद्धालु लोग नग्न देव की उपासना करते हैं उनकी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ बनाकर उन्हें सजाते हैं। वे "ईलाजी" के नाम से विश्रुत हैं। दिवाकरजी महाराज का एक ग्राम में प्रवचन था। होली का समय होने से बाजार में ईलाजी को सजाकर रखे थे। इस अभद्र और अश्लील मूर्ति की उपासना करते हुए मूढ लोगों को देखकर उनका दिल द्रवित हो गया। उन्होंने प्रवचन में ही उपदेश देने के पश्चात् श्रोताओं से पूछा—कि ईलाजी आपकी किस पीढ़ी में लगते हैं? इस प्रकार कामोत्तेजक व्यक्ति की उपासना करना भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है। विकारवर्द्धक कोई भी देव के रूप में उपास्य नहीं हो सकते। आप सभी नियम ग्रहण करें कि हम इस प्रकार उपासना आदि न करेंगे। जो नियम ग्रहण नहीं करेगा वह उनका पुत्र कहलाएगा।

यह सुनते ही सभी श्रोताओं ने खड़े होकर नियम ग्रहण कर लिया। सदा सर्वदा के लिए उस ग्राम से ईलाजी को निष्कासित कर दिया। इस तरह प्रत्येक कुरीतियों पर वे सटीक आलोचना करते। अपने श्रोताओं को उन कुरीतियों के दुर्गुण समझाकर उनसे मुक्त करवाते। उनके निकट सम्पर्क में आने वाले अनेक क्षत्रियों ने तथा शूद्रों ने मांसाहार, मत्स्याहार और मदिरापान का त्याग किया। और हजारों ने शिकार जैसे दुर्व्यसन से मुक्ति पायी। अनेक महिलाएँ दुराचार के आधार पर अपना जीवन-यापन करती थीं, उन्होंने दिवाकरजी महाराज के प्रवचनों को सुनकर सदा के लिए अपना जीवन ही परिवर्तित कर दिया। वासना को छोड़कर वे उपासना करने लगीं।

यह था उनकी वाणी का चमत्कारी प्रभाव। मैंने उदयपुर में अनेक बार उनके प्रवचन सुने। उनकी वाणी में ओज था, तेज था। वे शेर की तरह दहाड़ते थे। वे केवल वक्ता ही नहीं चरित्र-सम्पदा के धनी थे। उनका चारित्र तेजोमय था। कथनी के पूर्व वे अपनी करनी का निरीक्षण करते थे। इसलिए उनके उपदेश का असर बहुत ही गहरा होता था, वह सीधा हृदय में पैठ जाता था। जो बात हृदय से निकलती है वही बात दूसरों के हृदय में प्रवेश करती है। दिवाकरजी महाराज के प्रवचनों की यही विशेषता थी।

मैंने परम श्रद्धेय महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज और उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के सन्निकट आर्हती दीक्षा ग्रहण की सन् १९४० में। उस समय दिवाकरजी महाराज अपने अनेक शिष्यों सहित जोधपुर का यशस्वी वर्षावास पूर्णकर मोकलसर पधारे। परमात्मा कहाँ है? इस विषय पर उनका मार्मिक प्रवचन हुआ। उन्होंने अपने प्रवचन में बताया कि आत्मा जब तक कर्मों से बद्ध है वहाँ तक वह आत्मा है, कर्मों से मुक्त होने पर वही आत्मा परमात्मा बन जाता है।

आत्मा परमात्मा में कर्म ही का भेद है।
काट दे गर कर्म तो फिर भेद है, न खेद है।

"अप्पा सो परमप्पा" कर्म के आवरण को नष्ट करने पर आत्मा का सही स्वरूप प्रगट होता है। वही परमात्मा है। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं। एक-एक आत्म-प्रदेश पर अनन्त कर्मों की वर्गणाएँ लगी हुई हैं जिसके कारण आत्मा अपने सही स्वरूप को पहचान नहीं पाता। जैसे एक स्फटिक मणि के सन्निकट गुलाब का पुष्प रख देने से उसकी प्रतिच्छाया स्फटिक मणि में गिरती है जिससे स्फटिक मणि गुलाबी रंग की प्रतीत होती है, पर वस्तुतः वह गुलाबी नहीं है। वैसे ही कर्मों के गुलाबी फूल के कारण आत्मा रूपी स्फटिक रंगीन प्रतीत हो रहा है। वह अपने आपके असली स्वरूप को भूलकर विभाव दशा में राग-द्वेष में रमण कर रहा है। परमात्मा बनने का अर्थ है, आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति। जब तक पर-भाव रहेगा, वहाँ तक पर-भाव मिट नहीं सकता जब तक स्व-दर्शन नहीं होता वहीं तक प्रदर्शन की इच्छा होती है। जैन धर्म का विश्वास प्रदर्शन में नहीं, स्व-दर्शन में है। उसकी सारी साधना-पद्धति स्वदर्शन की पद्धति है। आत्मा से परमात्मा बनने की पद्धति है।

इस प्रकार उनका मार्मिक प्रवचन सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। मध्याह्न में पूज्य गुरुदेवश्री के साथ मैं उनकी सेवा में पहुँचा। मैंने देखा वे उस वृद्धावस्था में भी कलम थामे हुए लिख रहे थे। उनकी लेखनी कागज पर सरपट दौड़ रही थी। हमें देखकर उन्होंने कलम नीचे रख दी और मुस्कराते हुए कहा—"आज का दिन बड़ा ही सुहावना दिन है। आज मुनिवरों से मिलकर हार्दिक आह्लाद हुआ है।"

मैंने निवेदन किया—"स्थानकवासी समाज में इतनी सम्प्रदायें पनप रही हैं जिनमें तनिक मात्र भी मौलिक भेद नहीं है। जरा-जरा से मतभेद को लेकर सम्प्रदायवाद के दानव खड़े हो गए हैं और वे एक-दूसरे को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। ऐसी स्थिति में आप जैसे मूर्धन्य मनीषियों का ध्यान उन दानवों को नष्ट करने के लिए क्यों नहीं केन्द्रित होता? इन दानवों ने हमारा कितना पतन किया है? हम एक होकर भी एक-दूसरे के दुश्मन बने हुए हैं। हमारी इस दयनीय स्थिति को देखकर आज का प्रबुद्ध वर्ग विचार कर रहा है कि ये धर्म-ध्वजी किधर जा रहे हैं? केशीश्रमण और गौतम के बीच में तो कुछ व्यावहारिक और ऊपरी सैद्धान्तिक मतभेद भी थे, पर स्थानकवासी समाज में तो जो इतनी सम्प्रदाय हैं उनमें किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं है। केशीश्रमण और
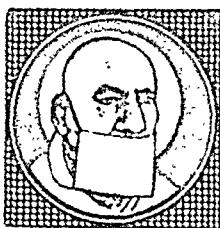
गौतम दोनों विभिन्न परम्पराओं के थे। उन्होंने मिलकर एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया। क्या हम ऐसा आदर्श उपस्थित नहीं कर सकते ? एक दिन सम्प्रदायें विकास का मूल रही होंगी, पर आज वे ही सम्प्रदायें विनाश का मूल बन रही हैं। निर्माण के स्थान पर हमारे मुस्तैदी कदम निर्वाण की ओर बढ़ रहे हैं। क्या आपका मानस इससे व्यथित नहीं है।"

दिवाकरजी महाराज ने कहा—"देवेन्द्र, तुमने मेरे मन की बात कही है। तुम जैसे बालकों के मन में भी ये प्रश्न कचोट रहे हैं—यह प्रसन्नता की बात है। जब हम छोटे थे, उस समय का वातावरण और था, तब सम्प्रदायवाद को पनपने की धुन अनेकों में सवार थी; हमारा विरोध होता था, हमारे प्रतिद्वन्द्वी हमारे को कुचलने को तुले हुए थे और हम उस विरोध को विनोद मानकर धर्म प्रभावना एवं उच्च चारित्र-पालन के साथ चलते थे। मैं इस सत्य तथ्य को स्वीकार करता हूँ कि हमारी पूज्य हुक्मीचन्द-सम्प्रदाय के दो विभागों ने काफी समाज को क्षति भी पहुँचाई है। यदि हम दोनों एक होते तो आज जितनी इस सम्प्रदाय ने धर्म की प्रभावना की है उससे कई गुनी अधिक धर्म की प्रभावना होती, इस सम्प्रदाय को अजमेर सम्मेलन में भी एक बनाने के लिए बहुत प्रयास हुआ। पर दुर्भाग्य है, हम एक बनकर भी बने न रह सके। आज मेरे मानस में ये विचार-लहरियाँ तरंगित हो रही हैं कि सम्प्रदायवाद को खतम कर एक आदर्श उपस्थित करूँ। मैं स्वयं किसी पद का इच्छुक नहीं हूँ। मैंने अपनी सम्प्रदाय के आचार्य पद को लेने के लिए भी स्पष्ट शब्दों में इनकारी कर दी। मेरी यही इच्छा है कि सम्पूर्ण जैन समाज एक मंच पर आये। सभी अपनी परम्परा के अनुसार साधनाएँ करते हुए भी कुछ बातों में एकता हो। स्थानकवासी समाज एक आचार्य के नेतृत्व में रहकर अपना विकास करें। मैं इस सम्बन्ध में प्रयास कर रहा हूँ। वह प्रयास कब मूर्त रूप ग्रहण करेगा यह तो भविष्य ही बताएगा।"

जैन दिवाकरजी महाराज के साथ दो दिन तक विविध विषयों पर वार्तालाप हुआ। मुझे यह लिखते हुए गौरव अनुभव हो रहा है कि उन्होंने अपनी सम्प्रदाय को कुछ समय के पश्चात् संगठन की भव्य-भावना से उत्प्रेरित होकर विसर्जित किया और पाँच सम्प्रदायों को एक रूप प्रदान किया। उन पाँच सम्प्रदायों में सबसे अधिक तेजस्वी और वर्चस्वी व्यक्तित्व दिवाकरजी महाराज का था, और साथ ही सबसे अधिक साधु-समुदाय भी दिवाकरजी महाराज का था, तथापि उन्होंने आचार्य पद को स्वीकार नहीं किया। यह थी उनकी महानता। जिस पद के लिए अनेक लोग लालायित रहते हैं उस पद को प्राप्त होने पर भी ठुकरा देना यह उनके उदात्त मानस का प्रतीक है।

जैन दिवाकरजी महाराज से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। उनके अनेक संस्मरण आज भी मेरे स्मृत्याकाश में चमक रहे हैं। मैं कंजूस की भाँति उन संस्मरणों को सहेज कर रखने में ही आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

जैन दिवाकरजी महाराज वक्ता थे, लेखक थे, कवि थे, चिन्तक थे, आगम साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे, समाज-सुधारक थे, संगठन के सजग प्रहरी थे। उनके जीवन में एक नहीं, अनेक विशेषताएँ थीं। जब भी उनकी विशेषताओं का स्मरण आता है, त्यों ही श्रद्धा से सिर नत हो जाता है। उनका स्मरण सदा बना रहे। मैं उनके मंगल आशीर्वाद से आध्यात्मिक धार्मिक साहित्यिक सभी क्षेत्रों में निरन्तर प्रगति करता रहूँ यही मंगल मनीषा है।
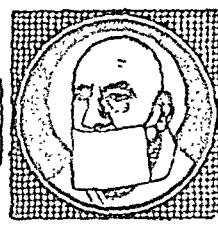
प्रेरणा पुञ्ज

☆ महासती श्री प्रभावतीजी

सारे नगर में एक विचित्र चहल-पहल थी। सभी के चेहरे खिले हुए थे। उनके मन में अपूर्व प्रसन्नता थी। मैंने अपनी सहेली से पूछा—"बहिन, आज इतना उल्लास क्यों है ? सभी लोग कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हैं ?"

सहेली ने बताया—"क्या तुझे पता नहीं ? आज जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज हमारे नगर में आ रहे हैं। यह उसकी तैयारी है। महापुरुषों का दर्शन और उनका सत्संग महान् भाग्य से मिलता है। एकक्षण का भी महापुरुषों का सत्संग जीवन का आमूल-चूल परिवर्तन कर देता है। एकक्षण काला-कलूटा लोहा पारस का स्पर्श करता है, तो वह चमकने लगता है। उसके मूल्य में परिवर्तन हो जाता है। वही जीवन की स्थिति है। महापुरुषों के संग से जीवन का रंग भी बदल जाता है। उसमें निखार आता है।" इसी पवित्र भावना से उत्प्रेरित होकर मैं भी अपनी सहेली के साथ जैन दिवाकरजी महाराज के स्वागत हेतु पहुँची। मैंने देखा एक विशालकाय, तेजस्वी चेहरा और उस पर आध्यात्मिक तेज लिए सन्त पुरुष सामने हैं। प्रथम दर्शन में ही मेरा हृदय श्रद्धा से नत हो गया।

उस समय मैं उदयपुर में स्थिरवास विराजी हुई परम विदुषी साध्वी रत्न सद्गुरुणी जी श्री सोहन कुंवरजी महाराज के पास धार्मिक अध्ययन करती थी। मेरा पुत्र धन्नालाल जो उस समय गृहस्थाश्रम में था, बाद में पं० रत्न देवेन्द्र मुनिजी बने और मेरी पुत्री महासती पुष्पावतीजी; वे दोनों भी सद्गुरुणीजी के पास धार्मिक अध्ययन करते थे। मैं सद्गुरुणी के साथ जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन सुनने पहुँची। उनके प्रवचन में एक अनूठी विशेषता थी कि सभी विचारधारा के लोग उपस्थित होते थे। उनकी वाणी में ऐसा गजब का अतिशय था कि सुनी-सुनायी बात भी जब वे कहते थे, तो ऐसा प्रतीत होता था कि बिलकुल नयी बात सुन रहे हैं। अपने विचारों को प्रस्तुत करने का ढंग उनका अपना था जिसमें श्रोता ऊबता नहीं था। वह यही अनुभव करता था कि प्रवचन जितना अधिक लम्बा हो उतना ही आनन्द की उपलब्धि होगी। आप सफल प्रवक्ता थे।

जैन दिवाकरजी महाराज प्रवक्ता के साथ एक सरस कवि भी थे। उनकी कविता में शब्दों की छटा, अलंकार आदि का अभाव था। पर वे सीधे, सरल और सहज हृदय से निकली हुई थीं। उसमें साधुता का स्वर मुखरित था, भावों का प्रभात था, विचारों का वेग था। यही कारण है आपकी सैकड़ों पद्य रचनाएँ लोगों को कण्ठस्थ हैं। वे झूमते हुए गाते हैं। मेरा अपना अनुभव है जिन कविताओं या पद्य-साहित्य में पांडित्य का प्रदर्शन होता है, सहज हृदय से जो नहीं निकली हुई होती हैं, उनका जन-मानस पर स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता।

दिवाकरजी महाराज का प्रवचन व कविताएँ ही सरल नहीं थीं, उनका जीवन भी सरल था। जो मन में था वही वचन में था और वही आचरण में भी। उनके जीवन में बहुरूपियापन नहीं था। उनका यह स्पष्ट मन्तव्य था कि सीधे बने बिना सिद्ध गति मिल नहीं सकती। उदयपुर के महाराणा फतेहसिंहजी और भोपालसिंहजी आपके उपदेशों से प्रभावित थे।

जैन दिवाकरजी महाराज के साथ मेरी जैनागम, जैनदर्शन को लेकर चर्चाएँ भी अनेक

बार हुई जिसमें उनका गम्भीर सैद्धान्तिक ज्ञान झलकता था। कठिन विषय को सरल और सरस शब्दों में वे प्रस्तुत करते थे जिससे प्रश्नकर्त्ता को वह विषय सहज ही समझ में आ जाता था।

यह बड़े हर्ष और गौरव का विषय है कि जैन दिवाकर शताब्दी वर्ष में उनसे सम्बन्धित अनेक कृतियाँ प्रकाश में आई हैं और अब स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। स्मृति-ग्रन्थ के माध्यम से एक साहित्यिक महत्त्वपूर्ण कृति प्रस्तुत की जा रही है। मैं उस स्वर्गीय ज्योतिपुन्ज क्रान्तदर्शी युगपुरुष के चरणों में अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करती हूँ और आशा करती हूँ कि उनका पवित्र जीवन हम सभी के लिए सदा प्रेरणा-पुञ्ज बना रहे।

क्या ये चमत्कार नहीं हैं ?

✡ श्री चांदमल मारू (मंदसौर)

गुरुदेव का वि० सं० १९९९ का चातुर्मास मन्दसौर में था। इसी वर्ष गाँधीजी के सान्निध्य में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का आरम्भ हुआ। मुझे तथा मेरे साथियों को पुलिस गिरफ्तार करके ले गयी। हमारे संघ-प्रमुख श्री मिश्रीलालजी बाफना ने गुरुदेव से इस सम्बन्ध में निवेदन किया। उन्होंने सहज ही कहा—'चिन्ता मत करो, सब आठ-दस दिन में छूटकर घर आ जाएँगे'। यही हुआ। हम लोग नवें दिन बिना शर्त के छोड़ दिये गये।

इसी चातुर्मास में एक और अविस्मरणीय घटना हुई। एक सहधर्मी भाई का इकलौता पुत्र, जिसकी उम्र करीब बीस साल रही होगी, डबलनिमोनिया में फँस गया। उसे गुरुदेव के पास मांगलिक सुनवाने ले गये। मैं भी साथ गया। सब दुखी थे, सब की आँखें डबडबाई हुई थीं; किन्तु गुरुदेव ने शान्तिपूर्वक मांगलिक सुनाया और कहा सब ठीक हो जायेगा। सबेरे वह स्वयं उठकर व्याख्यान में आ जाएगा। सारा वातावरण ही बदल गया। मैंने उचित दवा लाकर दी और कम्बल ओढ़ाकर सुला दिया। वह सो गया, और सवेरे व्याख्यान में आ गया।

इसी चातुर्मास में एक और प्रसंग इसी तरह का सामने आया। स्थानक में गुरुदेव विराजमान थे, उसके पीछे की गली में एक बाई भयंकर प्रसव-पीड़ा से कराह रही थी। डाक्टर, वैद्य, दाई, नर्स सब ने उपचार किया किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ, दर्द ज्यों-का-त्यों बना रहा। ऐसे खिन्न वातावरण में वहाँ खड़े एक भाई ने कहा कि एक कटोरी जल ले जाओ और गुरुदेव का अंगूठा छुआ लाओ और बाई को पिला दो। यही हुआ और दर्द बिजली की गति से भाग गया। प्रसविनी उठ बैठी। दूसरे दिन उसने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जो मुनिश्री चौथमलजी के व्यक्तित्व को उजागर करती हैं। वस्तुतः ये चमत्कार नहीं हैं, ये हैं उनकी आध्यात्मिक साधना से निर्मित निर्मल वातावरण के प्रभाव। उनकी साधना इतनी महान्, उज्ज्वल और लोकोपकारी थी कि चारों ओर का वातावरण, जहाँ भी वे जाते, रहते या प्रवचन करते थे; निर्मल, रुजहारी और आल्हादपूर्ण हो उठता था। वे महान् थे।

—※—

'क्या चौथमलजी महाराज पधारे हैं ?'

☆ श्री रिखबराज कर्णावट; एडवोकेट (जोधपुर)

मेरे गाँव भोपालगढ़ की बात है। लगभग पचास वर्ष पहले जब मैं बच्चा था प्रसिद्धवक्ता चौथमलजी महाराज पधारे। मुझे याद है सारा-का-सारा गाँव महाराजश्री के प्रवचन सुनने उमड़ पड़ता था। एक छोटे से गाँव में हजारों स्त्री-पुरुषों का अपना काम-धन्धा छोड़कर एक जैन मुनि का प्रवचन सुनने आ जाना एक असाधारण घटना थी। सैकड़ों अजैन भाई-बहिन अपने को जैन व महाराज के शिष्य कहलाने में गौरव अनुभव करने लगे थे। महाराजश्री की प्रवचन-सभा में गाँव के जागीरदार से लेकर गाँव के हरिजन बन्धु तक उपस्थित रहते थे। कुरान की आयतें सुनकर मुसलमान भाई धर्म का मर्म समझने में प्रसन्नता अनुभव करते थे। समस्त ग्रामवासियों का इस तरह का भावात्मक एकीकरण हो जाने का कारण महाराजश्री के प्रति सबकी समान श्रद्धा थी। अनेक वर्षों तक उनका प्रभाव बना रहा। जब कभी ग्रामवासी जैन लोगों को मुनियों के स्वागतार्थ जाते हुए भारी संख्या में देखते तो बड़ी श्रद्धा-भावना से पूछते, "कांई चौथमलजी बापजी पधारिया ?" (क्या चौथमलजी महाराज पधारे हैं ?)। इस प्रकार का अमिट प्रभाव प्रसिद्ध वक्ताजी ने अपने प्रवचनों से सर्वत्र पैदा किया था।

जोधपुर में महाराजश्री के दो चातुर्मास हुए। दूसरे चातुर्मास में मैं जोधपुर रहने लगा था। महाराजश्री के परिचय में भी आया। मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति को भी महाराजश्री ने, जो स्नेह प्रदान किया वह मेरे लिए अविस्मरणीय है। जोधपुर शहर में भी ऐसा वातावरण था जैसे सारा शहर महाराजश्री का भक्त बन गया हो। विशाल व्याख्यान-स्थल पर भी लोगों को बैठने की जगह मुश्किल से मिल पाती। हजारों नर-नारी, जिसमें सभी जातियों और सभी वर्गों के लोग होते थे, महाराजश्री का उपदेश सुनने बिला नागा आते थे। किसान, मजदूर और हरिजन भी इतना ही रस लेते थे जितना बुद्धिजीवी, सरकारी अहलकार एवं व्यापारी। महाराजश्री की प्रवचन-शैली इतनी आकर्षक एवं जनप्रिय थी कि उनके उपदेश का एक-एक शब्द बड़ी तन्मयता से लोग सुनते थे। उनके उपदेश का प्रभाव था कि हजारों राजकर्मचारियों ने रिश्वत लेने का त्याग किया। हजारों ने दारू-मांस छोड़ा। व्यापारियों ने मिलावट न करने की व पूरा माप-तौल रखने की प्रतिज्ञाएँ लीं। वेश्याओं ने अपने घृणित धन्धे छोड़े। कठोर-से-कठोर दिलवाले लोग भी उनके जादू-भरे वचनों से मोम की तरह पिघल जाते थे।

समाज-उत्थान के बड़े-बड़े काम भी उनके उपदेशों से हुए। अनेक विद्यालयों की स्थापना हुई। वात्सल्य-फण्ड स्थापित हुए। अनेक अगते कायम हुए। जोधपुर में सं० १९८४ से पर्युषण के दिनों में नौ दिनों तक सारे व्यापारियों ने अपना काम-काज बन्द रखकर धर्म-ध्यान के लिए मुक्त समय रखने का निर्णय लिया गया। यह निर्णय आज तक भी कायम है। सभी सम्प्रदायों के लोग इस निर्णय का पालन करते हैं।

वास्तव में जैन दिवाकरजी महाराज एक युग-पुरुष थे। उन्होंने जाति-पाँति के बन्धनों को तोड़ा, अस्पृश्यता का निवारण किया, व्यसन एवं बुराई में पड़े लोगों को निर्व्यसनी बनाया। शुद्ध समाज के निर्माण में उनका अद्भुत योगदान रहा। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व कभी भुलाया नहीं जा सकता।

☆
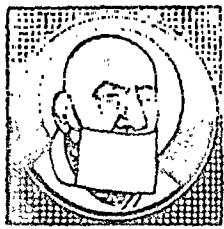
एक सत्य कथा—

जैसी करनी, वैसी भरनी

☆ श्रीमती गिरिजा 'सुधा'

माधू खटीक आज फिर बुरी तरह से ठर्रा पीकर पत्नी पर हाथ उठा बैठा था। गालियों का प्रवाह बदस्तूर जारी था। उस बेचारी ने आज सिर्फ यही कहा था पड़ौसिन से कि 'इन अन-बोले जीवों की हाय हमारा सुख-चैन छीनकर ही मानेगी। कितना कमाते हैं ये, पर पाप की लछमी में बरकत कहाँ ? तभी घर-खेंच मोची के मोची हैं हम।'

पाप की लक्ष्मी की बात सुनते ही माधू के तन-बदन में आग लग गयी। वह चीख उठा घरवाली की पीठ पर दो-चार मुक्के जमाकर—"·········बड़ी पुण्यात्मा बनी फिरती है। अरे खटीक बकरों का व्योपार नहीं करेंगे तो क्या गाजर-मूली बेचकर दिन काटेंगे हम अपने। खटीक वंश का नाम डुबोऊँगा क्या मैं माधो खटीक !" ·········और आग्नेय नेत्रों से उसे घूरता मूँछों पर बल देता पीड़ा से कराहती छोड़ वह बाहर चल दिया।

पत्नी उसकी सात पीढ़ियों को कोसती रही। थोड़ी देर बाद वह वापिस आया और बोला—"मैं बकरों को बेचने ले जा रहा हूँ। अभी तो बलि चढ़ाने वाले ऊपर-तरी पड़ रहे हैं। अच्छे दाम मिलने की उम्मीद है। दो तो बेच ही आता हूँ आज।"

आत्मव्यथा से कराहती पत्नी ने कुछ भी नहीं कहा और वह उसी क्षण बाहर हो गया। बकरों को बाड़े से लेकर वह आगरा के एक कस्बे की ओर चल दिया। चलते-चलते दोपहर हो गयी तो उसने बकरों को एक छायादार जगह में बैठा दिया और खुद भी सुस्ताने की गरज से एक पेड़ के पास जा टिका।

उधर आगरा की ओर से जैन सन्त श्रीचौथमलजी महाराज अपनी मण्डली के साथ कदम बढ़ा रहे थे। उन्होंने उसे सोते और पास में बकरों को चरते देखा, तो उनके मन में अनायास ही दया उमड़ आयी। उन्होंने मन-ही-मन उस कसाई को आज सही रास्ता बतलाने का निर्णय किया और आप भी वहीं वृक्षों की छाया में विश्राम करने लगे। जैसा कि स्वाभाविक था, कुछ ही देर बाद माधू नींद से जागा और बकरे लेकर चलने लगा।

तभी करुणामूर्ति श्रीचौथमलजी महाराज ने उससे पूछा—"क्यों भैया, इन्हें कहीं बेचने ले जा रहे हो क्या ?"

"बेचूंगा नहीं तो खाऊँगा क्या ?" वह एकदम रुखाई से बोला और चलने की तैयारी करने लगा।

महाराजश्री ने अपनी मधुर वाणी में उसको समझाते हुए कहा—"भाई, तू यह पापकर्म आखिर किसलिए करता है ? जीवन-निर्वाह के तो छोटे-बड़े अनेक साधन मिल सकते हैं। तुझे यह कहावत पता नहीं है क्या—'जैसी करणी वैसी भरणी ?' अरे, इस तरह मूक पशुओं की हिंसा करेगा तो उनकी हाय आखिर किस पर पड़ेगी ? दूसरों को दुःख देकर संसार में आज तक कौन सुखी हुआ है ? अब तुम यह सब पाप भी कर रहे हो और सुखी भी नहीं हो; हो क्या ? देखो, न तो शरीर पर अच्छे कपड़े हैं, न बढ़िया खाना-पीना मयस्सर है। फिर ऐसी पाप की कमाई के पीछे पड़े रहने में क्या सार है भैया ? सिर्फ पेट भरने के लिए क्यों पाप की गठरी बांध रहे हो; बोलो बाँध रहे हो या नहीं ?"

"महात्माजी ! मैं आपके सामने जरा भी झूठ नहीं बोलूँगा ! पर यह बात आपने सच ही कही है कि 'जैसी करनी, वैसी भरनी' । मैं सुखी जरा भी नहीं हूँ । आमदनी भी भरपूर है, वैसे, पर उसमें बरकत जरा भी नहीं है ।" माधू ने अपनी बात झिझकते-झिझकते भी कह ही डाली ।

महाराजश्री ने तभी अपना उपदेश आगे बरकरार रखते हुए कहा—"भाई, अब तुम समझ गये हो कि सुखी नहीं हो, इस धन्धे की कमाई में बरकत भी नहीं है, फिर इस धन्धे को छोड़ क्यों नहीं देते ? तुम्हें ध्यान है क्या कि सवाई माधोपुर के खटीकों ने ऐसा जघन्य पाप करना छोड़ दिया है । वे अब दूसरे धन्धों में लगे हुए हैं और ठाठ से अपनी रोटी कमा-खा रहे हैं, उनके घरों में आनन्द-ही-आनन्द है ।"

माधू खटीक को यह मालूम था, अतः वह बोला—"जी हाँ महात्माजी ! मुझे पता है कि वे दूसरे धन्धे में लग गये हैं । मैं भी इस धन्धे से पिण्ड छुड़ाना चाहता हूँ पर........।"

"पर ! क्या ?"—उन्होंने पूछा ।

"बात यह है गुरु महाराज कि मैं कोई धनवान आदमी तो हूँ नहीं, गरीब हूँ, जैसे-तैसे पेट पाल रहा हूँ । मेरे पास बत्तीस बकरे हैं । यदि ये बिक जाएँ तो इनकी पूंजी से मैं कोई-न-कोई छोटा-बड़ा धन्धा शुरू कर दूँगा । आप मेरा यकीन कीजिये प्रभो ! मैं कभी भी अपने प्रण से नहीं टलूँगा । पापी पेट भरने के लिए मैं किसी जीव को जरा भी नहीं सताऊँगा ।"

महाराजश्री ने श्रावकों से कहकर उसके बकरों के दाम दिलवा दिये । माधू खटीक का जीवन उस दिन जो बदला तो उसकी सारी आस्थाएँ ही बदल गयीं । जिन्दगी की रौनक बदल गयी । वह महाराजश्री के चरणों में गिर कर अपने कुकृत्यों के लिए क्षमायाचना करता अश्रु-बिन्दुओं से उनके चरण-कमल प्रक्षालित कर रहा था ।

हिंसा पर अहिंसा की इस विजय का सारे शिष्य एवं श्रावक-समुदाय पर बड़ा व्यापक प्रभाव हुआ । कोई गुनगुना उठा तभी—**संगः संतां किं न मंगलमातनोति**—

(सन्तों की संगति क्या-क्या मंगल नहीं करती ?)

माधू घर आया तो उसका आचरण बदला हुआ था । उसने एक छोटी-सी दुकान लगाकर पाप की कमाई से छुटकारा पाकर घर में बरकत करने वाली खरे पसीने की कमाई लाने की राह तलाश ली थी । उस राह पर बढ़ गया वह । अब उसकी पत्नी उस पर नाराज नहीं रहती । बदलती आस्थाओं के साथ वह उसकी सच्ची जीवन-संगिनी बन गयी है; हर पल प्रतिक्षण हीर-पीर की भागीदार ।

✡

पाँच मिनट में भीड़

✡ **सौभाग्यमल कोचट्टा (जावरा)**

नीमच की एक घटना का स्मरण मुझे है । बात वि० सं० १९९९ की है । गुरुदेव अपनी शिष्य-मण्डली के साथ नीमच पधारे थे । मैं भी उनके दर्शन-लाभ का लोभ नहीं रोक सका । दर्शनार्थ नीमच गया । वे चौरड़िया गुरुकुल में विराजमान थे । रात्रि में अपने अनुयायियों को अपनी अमृतवाणी का रसपान कराते रहे । प्रातःकाल विहार पर निकले । मैं भी साथ हो गया । चलते-चलते मैंने प्रश्न किया—"नीमच तो आपकी जन्म-भूमि है, फिर भी विहार में आपके साथ तीन-चार भक्तों से अधिक नहीं हैं ?" प्रश्न सुनकर वे दो मिनट ध्यानस्थ हो गये । मैं स्तब्ध देखता रहा । चारों ओर से जन-समूह उमड़ पड़ा । मुझे याद है अधिक-से-अधिक पांच मिनट में वहाँ एक हजार से अधिक भक्तों की भीड़ जमा हो गयी थी । मेरे लिए निश्चित ही यह एक अद्भुत-अपूर्व घटना थी ।

युग का एक महान् चमत्कार

✡ बापूलालजी बोथरा, रतलाम

जिस महान् विभूति का जन्म-शताब्दि-वर्ष सारे देश में मनाया जा रहा है, वह केवल जैन समाज का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत का एक असाधारण संतपुरुष था। भारत की जनता के नैतिक जीवन को ऊँचा उठाने और अहिंसा के प्रचार-प्रसार की दिशा में श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने जो योगदान किया है, वह अविस्मरणीय है। उन्होंने अपने अनूठे व्यक्तित्व और अपनी असाधारण वक्तृता से बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को प्रभावित किया और यथाशक्ति जीव-दया तथा अहिंसा का व्यापक प्रसार किया। सैकड़ों राजाओं और जागीरदारों ने जीव हिंसा-निषेध के पट्टे लिख कर उन्हें समर्पित किये। यह उस युग का एक महान् चमत्कार था। वस्तुतः वे मेरे परम आराध्य गुरु हैं।

जब मैं ९ वर्ष का ही था, तब उनसे मैंने गुरु-आम्नाय (सम्यक्त्व) ली थी। एक लम्बी अवधि के बाद जोधपुर-चातुर्मास में मैं उनके दर्शनार्थ गया था। तब मैं बीस वर्ष का तरुण था। पूरे ११ वर्षों के बाद मैंने यह दर्शन-लाभ किया था। गुरुदेव प्रवचन दे रहे थे। दस हजार से अधिक लोग एकटक, मन्त्र-मुग्ध उन्हें सुन रहे थे। व्याख्यान के बाद मैं भी उनके साथ-साथ चलने लगा। मार्ग में उन्होंने मुझसे पूछा—"बापू, थने याद है, संवत् १९८५ में गुरु-आम्नाय ली थी ?" इस आत्मीय स्वर ने मुझे नखशिख हिला दिया। ११ वर्ष के अन्तराल के बाद भी वे मुझे नहीं भूले थे। सैकड़ों लोगों के बीच चलते हुए उन्होंने मुझसे यह प्रश्न किया था। इस एक ही बात से मैं इतना अभिभूत हुआ कि फिर प्रतिवर्ष उनकी सेवा में उपस्थित होने लगा।

वि० सं० १९९६ से ही मेरा प्रयास रहा कि श्री जैन दिवाकरजी का एक चातुर्मास रतलाम कराऊँ। अपने प्रयत्न में मुझे सफलता मिली संवत् २००० में। उनका यह चातुर्मास संघ की एकता की दृष्टि से चिरस्मरणीय रहा। रतलाम के बाद संवत् २००७ में उनका चातुर्मास कोटा में हुआ। जैन-समाज की भावात्मक एकता के संदर्भ में यह चातुर्मास अद्वितीय रहा। इसके बाद ही वे उदर-व्याधि से पीड़ित हुए। १४ दिन उन्हें यह पीड़ा रही। मैं लगभग १२ दिन उनकी सेवा में अन्तिम क्षणों तक रहा। मुझे उनकी अन्तिम वन्दना का सौभाग्य मिला था।

श्री जैन दिवाकर-स्मृति-ग्रन्थ

जीवदया और सदाचार के अमर साक्ष्य

ऐतिहासिक दस्तावेज

जैनधर्म 'अहिंसाधर्म' के रूप में विश्व विश्रुत है। यद्यपि भारत के समस्त धर्म-प्रसारकों ने अहिंसा, दया, करुणा आदि पर बल दिया है, दया का प्रचार किया है, तथापि जितनी सूक्ष्मता, तन्मयता और निष्ठा के साथ जैनाचार्यों ने अहिंसा-करुणा का प्रचार किया है, वह तो अद्भुत है, अनिर्वचनीय है। जीवदया के लिए यहाँ तक कह दिया गया है—

जीववहो अप्पवहो,
जीवदया अप्पदया।

—जीव-वध आत्मवध है, जीवदया आत्म-दया है। किसी भी जीव को मारना अपने आपको मारना है, किसी जीव की रक्षा करना, अपनी आत्म-रक्षा है। इससे बढ़कर जीवदया की प्रेरणा और क्या होगी कि साधक अन्य जीवों की रक्षा व दया के लिए अपने प्राणों को बलिदान भी कर देता है, धर्मरुचि अणगार, मेघरथ राजा तीर्थंकर अरिष्टनेमि, तीर्थंकर पार्श्वनाथ और तीर्थंकर महावीर के अमर उदाहरण इतिहास के अमर साक्ष्य हैं।

भगवान महावीर से जब पूछा गया कि "आप (तीर्थंकर) उपदेश किसलिए देते हैं?" तो उन्होंने उत्तर दिया—"**सव्वजग-जीव-रक्खण दयट्ठयाए**"—जगत् के समस्त जीवों की रक्षा और दया के लिए ही मेरा (तीर्थंकरों का) प्रवचन होता है।"

भगवान् महावीर का पहला प्रवचन अहिंसा की महान् प्रतिष्ठा का प्रमाण है। मध्यम पावा में जहाँ हजारों पण्डित और हजारों-हजार यज्ञप्रेमी-जन विशाल यज्ञ मण्डप की रचना कर अगणित मूकपशुओं का बलिदान करने की तैयारी कर रहे थे, वहीं पर भगवान् महावीर ने अपना पहला प्रवचन दिया, जीव-हिंसा, प्राणिवध के कटु परिणामों की हृदयद्रावक चर्चा करके उन यज्ञ समर्थक पण्डितों के हृदयों को झकझोरा, जीवदया के सुप्तसंस्कारों को जगाया और जीवहिंसा से विरत कर अहिंसा की दीक्षा दी। लाखों प्राणियों को जीवनदान मिला। हजारों पशुओं की रक्षा हुई। करुणा की शीतल-धारा प्रवाहित हुई।

भगवान महावीर को आज भी संसार में सबसे बड़े हिंसा-विरोधी और जीवदया के प्रबल प्रचारक के रूप में याद किया जाता है।

भगवान् महावीर के पूर्व भी अनेक प्रभावशाली श्रमणों ने जीवहिंसा के निषेध और जीव-दया के प्रचार में महान् योगदान दिया।

श्रमण केशीकुमार ने प्रदेशी जैसे नास्तिक व हिंसक राजा को परम अहिंसक व दयालु बनाकर जीवदया का महान् कार्य किया था। महामुनि अनाथी श्रमण ने मगधपति श्रेणिक को शिकार व जीवहिंसा के दुष्परिणामों का बोध कराकर अहिंसा का परम उपासक बनाया था। तपोधन ऋषि गर्दभिल्ल ने संयति राजा को आखेट से त्रस्त मूक-जीवों की करुण-दशा का वर्णन कर उसका हृदय बदल दिया और जीवदया की भावना से ओतप्रोत कर उसे '**अभयदाया भवाहि**'—'समस्त संसार को अभयदान दो' का मंत्र दिया था।

भगवान् महावीर के बाद जब याज्ञिक हिंसा ने राज्याश्रय ग्रहण किया तो आचार्यों ने भी राजाओं को हिंसा से विरत कर अहिंसा की घोषणाएँ, अमारिपटह आदि के द्वारा जीवदया की भावना को सदा जीवित रखा।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने सम्राट् कुमारपाल को प्रबोध देकर देवी-देवताओं के समक्ष होने वाली नृशंस पशुहिंसा तथा मनोरंजन के लिए किया जाने वाला शिकार आदि हिंसक-प्रवृत्तियों को उपदेश के द्वारा प्रतिबन्धित करवाया और आचार्यश्री की प्रेरणा से सम्राट् ने अमारि घोषणाएँ कीं, राजाज्ञा से हिंसा को प्रतिबन्धित किया।

अन्य अनेक आचार्यों ने अपने-अपने क्षेत्रों में राजाज्ञाओं द्वारा इस प्रकार की सामूहिक हिंसाओं को रोकने के महान् प्रयत्न किये हैं।

सम्राट् अकबर के समय में आचार्य श्री हीरविजय सूरि ने अहिंसा और करुणा की शुष्क-धारा को पुनः जलप्लावित कर दिया था। स्थान-स्थान पर, पर्वतिथियों आदि पर पशुवध के निषेध की घोषणाएँ की गईं। जीवहिंसा पर सरकारी प्रतिबन्ध लगाये गये और अहिंसा की भावना जनव्यापी बनी।

यद्यपि भगवान् महावीर के पश्चात् भी प्रभावक आचार्यों ने जीवदया प्रचार में कोई कमी नहीं आने दी, पर जिस तीव्रता व व्यापकता के साथ शिकार, पशुबलि, प्राणिवध आदि प्रवृत्तियाँ बढ़ीं, उतनी व्यापकता के साथ उसका प्रतिबन्ध करने के प्रयत्न नहीं हुए। हिंसा, मद्य-पान, मांस-भक्षण आदि बुराइयाँ जनव्यापी बनती गईं, और इनके प्रतिकार के प्रयत्न अपेक्षाकृत कमजोर रहे।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जैन-जगत् में एक महाप्राण व्यक्तित्व का उदय हुआ जिसकी चारित्रिक प्रभा से भारत का पश्चिमांचल आलोकित हो उठा। वह महाप्राण व्यक्तित्व जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज थे। उनके अलौकिक प्रभाव, व्यापक प्रचार क्षेत्र व सर्वजनप्रियता का वर्णन पाठक पिछले पृष्ठों पर पढ़ ही चुके हैं। अहिंसा व दया के प्रचारहेतु उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था।

उन्होंने देखा कि जीवहिंसा, शिकार, पशुवध, बलि, मद्य-मांस सेवन आदि दुर्व्यसनों से यद्यपि अमीर-गरीब, राजा-प्रजा सभी ग्रस्त हैं, पर इन बुराइयों को प्रोत्साहन उच्च वर्ग से ही मिलता है। निम्न वर्ग तो विवशता की स्थिति में बुराई का आश्रय लेता है, पर उच्च वर्ग सिर्फ मनोरंजन, शान-शौक या परम्परा के नाम पर इन बुराइयों का पोषण करता है। फिर जनता का मनोविज्ञान तो '**यथा राजा तथा प्रजा**' रहा है। योगेश्वर श्री कृष्ण ने भी जनमानस की इसी मूल-वृत्ति को व्यक्त किया था—

यद्यदाचरति श्रेष्ठः लोकस्तदनुवर्तते।

बड़े आदमी जो आचरण करते हैं सामान्य लोग उसी का अनुसरण करते हैं। समाज के बड़े लोग, शासक या अधिकारी सुधर जायें तो छोटे या प्रजा-जन का सुधरना सहज है। इस नीति के अनुसार जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने समाज-सुधार या मानस-परिवर्तन का एक व्यापक तथा सामूहिक प्रयत्न प्रारम्भ किया था। वे जहाँ भी पधारते, वहाँ के उच्चवर्ग—शासक या श्रीमंत वर्ग को जीवदया, अहिंसा, सामाजिक वात्सल्य तथा शिकार-मद्य-मांस त्याग की व्यापक
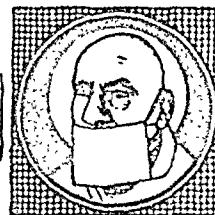
प्रेरणा देते और उनकी तरफ से आज्ञाएँ या घोषणाएँ प्रसारित की जातीं ताकि आम जनता उनसे प्रेरणा ग्रहण करे।

उस समय के शासक वर्ग में शिकार, मद्य-मांस, पशु-बलि आदि व्यापक बुराइयाँ थीं और उनका प्रतिषेध करने, उन्हें धीरे-धीरे समाज से मिटाने के लिए सामूहिक परिवर्तन की अपेक्षा थी। श्री जैन दिवाकरजी महाराज जहाँ भी जाते, उनके प्रवचनों से शासकवर्ग प्रभावित होते और आम रिवाज के अनुसार गुरु-चरणों में कुछ भेंट रखने की पेशकश करते, तब श्री जैन दिवाकरजी महाराज उनसे यही भेंट माँगते, "त्याग करो ! दया और सदाचार प्रचार में सहयोगी बनो।" आपश्री की प्रेरणा पाकर स्थान-स्थान पर ठाकुर-जागीरदार शासक, राजा, महाराजा आदि ने स्वयं, जीव-हिंसा, शिकार, मद्य-मांस सेवन का त्याग किया और प्रजा में भी कुछ विशेष पर्व दिवसों पर, जैसे पर्युषण, महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती, जन्माष्टमी, अमावस्या, आदि दिनों में हिंसा आदि की निषेधाज्ञाएँ प्रसारित कीं। भगवान महावीर के बाद २५०० वर्ष में इस प्रकार का सामूहिक प्रयत्न पहली बार हुआ था, जब गाँव-गाँव में इस प्रकार की अहिंसा-घोषणाएँ होने लगी थीं। जनता में जीवदया की प्रेरणाएँ जग रही थीं। एक अच्छा वातावरण बन गया था। अगर श्री जैन दिवाकर जी महाराज १०-२० वर्ष और विद्यमान रहते, तो सम्भवतः ये अमारिघोषणाएँ पूरे भारत में गूंज उठतीं।

राजस्थान, मालवा, मध्य प्रदेश के विभिन्न ठिकानों में हुई वे घोषणाएँ ऐतिहासिक महत्त्व के दस्तावेज हैं, जो युग-युग तक अहिंसा की गाथा को दुहरायेंगे, और जीवदया की प्रेरणा देंगे। आप पाठकों की जानकारी के लिए उन दस्तावेजों की अविकल प्रतिलिपियाँ अगले पृष्ठों पर प्रस्तुत हैं।
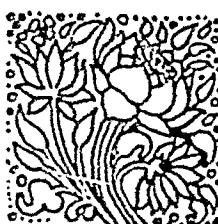
प्रतिलिपि—सनदें और हुक्मनामे

[आदर्श-उपकार : पुस्तक के अनुसार]

नम्बर १५२१

मानननीय महाराज चौथमलजी,

जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी की सेवा में !

राजेश्री ठाकरां जोरावरसिंहजी साहरङ्गी लिखी प्रणाम पहुँचे अपरञ्च आप विहार करते हुए हमारे गाँव साहरंगी में पधारे और धार्मिक व अहिंसा विषयक आपके व्याख्यान सुनने का मुझको भी सौभाग्य हुआ इसलिए मैंने इलाके में चरन्दे व परन्दे जानवरांन की जो शिकार आम लोग किया करते थे। उनकी रोक के वास्ते और मछलियों की शिकार धार्मिक तिथियों में न होने के दो सरकुलर नं० १५१९-१५२० जारी करके मनाई करदी है। नकलें उनकी इस पत्र के जरिये आपकी सेवा में भेजता हूँ कारण के यह आपके व्याख्यान का सुफल है। फक्त ता० २३-१२-२१ ई०

—ठाकरां साहरंगी

॥ श्री ॥

सरकुलर ठिकानां साहरंगी व इजलास राजेश्री ठाकरां जोरावरसिंहजी साहब—

ता० २३-१२-२१ ई०

नकल मुताबिक असल के

मोहर छाप

जो कि धार्मिक तिथि एकादशी, पुनम, अमावस्या, जन्माष्टमी और रामनवमी और जैन-धर्मावलम्बियों के पजूसनों में प्रगणे हाजा में शिकार मछलियों की कोई शख्श नहीं करे इसका इन्तजाम होना जरूर लि०

नं० १५१९

हुक्म हुआ के

मारफत पुलिस प्रगणा हाजा में उन तमाम लोगों को जो अक्सर शिकार मछली किया करते हैं मुमानियत करदी जावे के खिलाफ वर्जी करने वाले पर सजा की जावेगी। फक्त बाद कारवाई असल हाजा सामिल फाईल हो।

तारीख मजकुर

सही हिंदी में बहादुरसिंह

कामदार साहरंगी

सही हिंदी में ठाकरां

साहरंगी

॥ श्री ॥

सरकुलर ठिकाना साहरंगी वाइजलास राजेश्री ठाकरा जोरावरसिंहजी साहब।

तारीख २३-१२-२१ ई०

नकल मुताबिक असल के

मोहर छाप

नं० १५२०

जो के ठिकाने हाजा की हद में ऐसा कोई इन्तजाम नहीं है। जिसकी वजह से हर शख्स शिकार बे-रोक-टोक किया करते हैं। यह बेजा है इसलिए यह तरीका आयंदा जारी रहना ना मुनासिब है। लिहाजा

हुक्म हुआ के

आज तारीख से प्रगणे हाजा में विला मंजूरी ठिकाना शिकार खेलन की मुमानियत की जाती है। इत्तला इसकी मारफत पुलिस तमाम मवाजेआत के भवइयान या हवालदारान के जर्ये आम लोगों को करा दी जावे के कोई शख्स इसकी खिलाफवर्जी करेगा वह मुस्तेहक सजा के होगा। फक्त बाद काररवाई असल हाजा शामिल फाइल हो।

सही हिंदी में बहादुरसिंह
कामदार साहरंगी

सही हिंदी में ठाकरां
साहरंगी

॥ श्री रामजी ॥

श्री गोपालजी !

मोहर छाप
बोहड़ा

आज यहाँ जैन सम्प्रदाय के महाराज चौथमलजी ने कृपया व्याख्यान उपदेश किया। परमेश्वर स्मरण, दया, सत्य, धर्म जीव-रक्षा न्याय विषय पर जो प्रशंसनीय व पूरा हितकारी सर्वजनों के लाभदायक पूरा परमार्थ पर हुआ। आपके उपदेश से चित्त प्रसन्न होकर प्रतिज्ञा की जाती है कि—

(१) मादीन जानवरों की इरादतन शिकार न की जायगी।

(२) छोटे पक्षी चिड़ियाओं की शिकार करने की रोक की जायगी।

(३) मोर, कबूतर, फाबता (सफेद डेकड़) जो मुसलमान लोग मारते हैं न मारने दिये जायेंगे।

(४) पजूसणों में व श्राद्ध-पक्ष में आमतौर पर बेचने को जो बकरे आदि काटते हैं, उनकी रोक की जायगी।

(५) पजूसणों में कतई दारू की भट्टियाँ बन्द रखी जायेंगी।

सं० १९८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ५ सोमे।

(द०) नाहरसिंह

॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
वड़ी सादड़ी

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी ज्येष्ठ कृ० ६ को बड़ी सादड़ी में पधारे। कुछ समय व्याख्यान श्रवण होने से उत्कण्ठित हुआ अतएव महलों में पधार व्याख्यान दिया आपके धर्मोपदेश प्रभावशाली व्याख्यान से बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। मुनासिब समझ प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) पक्षी जीवों की शिकार इच्छा करके नहीं करेंगे।

(२) मादीन जानवरों की भी इच्छा करके शिकार नहीं की जायगी।

(३) तालाब में मच्छियाँ आडाँ आदि जीवों की शिकार विला इजाजत कोई नहीं कर सकेंगे। इसके लिए एक शिलालेख भी तालाब की पाल पर मुनासिब जगह स्थापित कर दिया जायगा।

हु० नंबर १५९४

मुलाजमान कोतवाली को हिदायत हो कि तालाब में किसी जानवर की शिकार कोई करने न पावे। यदि इसके खिलाफ कोई शख्स करे तो फौरन रिपोर्ट करें। आज के व्याख्यान में कितनेक जागीरदार हजूरिये आदि ने हिंसा वैगरह न करने की प्रतिज्ञा की है उम्मेद है वे मुवाफिक प्रतिज्ञा पाबंद रहेंगे। नकल उसकी सूचनार्थ चौथमलजी महाराज के पास भेज दी जावे। संवत् १९८२ ज्येष्ठ शुक्ला ३ ता० १३-६-१९२६

॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
बम्बोरा

जैन सम्प्रदाय के मुनिमहाराज श्री चौथमलजी के दर्शनों की अभिलाषा थी। वह आसाढ़ कृ० ९ को बंबोरे पधारे और कृष्णा १० रविवार को महाराज का विराजना बाजार में था। वहाँ पर सुवह ८ वजे से १० बजे तक श्री महाराज के व्याख्यान श्रवण किये। चित्त को आनन्द प्राप्त हुआ। मैं भी इस प्रभावशाली व्याख्यान से चित्त आग्रह होकर नीचे लिखी प्रतिज्ञा करता हूँ—

(१) मैं अपने हाथ से खाजरु, पाड़ा नहीं मारूँगा, न मच्छी मारूँगा।

(२) हमेशा के लिए इग्यारस के दिन मेरे रसोड़े में मांस नहीं बनेगा। न ही खाऊँगा। और बंबोरे में खटीकों की दूकानें व कलालों की दूकानें बन्द रहेंगी व कुम्हारों के अवाड़ा नहीं पकेगा। अगता रहेगा।

(३) नदी में भमर दो के नीचे से वड़ुवा तक कोई भी मच्छी नहीं मारेगा।

(४) इग्यारस के रोज बंबोरे में ऊँट पोठी नहीं लादने दिये जावेंगे।

(५) आपका बंबोरे में पधारना होगा उस रोज व वापिस पधारना होगा उस रोज अगता पलेगा यानी खटीकों की, कलालों की दूकानें वन्द रहेंगी व कुम्हार अबाड़ा नहीं पकावेगा। वगैरह वगैरह।

(६) सात वकरे अमरिये किये जावेंगे।

ऊपर लिखे मुजिब प्रतिज्ञा की गई है और मेरे यहाँ कितनेक सरदार वगैराओं ने भी प्रतिज्ञा की है जिसकी फेहरिस्त उनकी तरफ से अलग नजर हुई है। इति शुभम् सं० १९८२ अषाढ़

॥ श्री नर्तगोपालजी ॥

Banera, Mewar

राजा रञ्जयति प्रजा:

जैन मजहब के मुनि महाराज श्री देवीलालजी व श्री चौथमलजी महाराज बनेड़ा में वैशाख वदी ११ को पधारे। और श्री ऋषभदेवजी महाराज के मन्दिर में इनके व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने नजर बाग व महलों में भी व्याख्यान दिये आपके व्याख्यानों से बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ जिससे मुनासिब समझ कर प्रतिज्ञा की जाती है कि—

१—पजुसणों में हम शिकार नहीं खेलेंगे।

२—मादीन जानवरों की शिकार इरादतन कभी नहीं करेंगे।

३—चैत सुदी १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्म दिन होने से उस दिन तातील रहेगी ताकि सब लोग मन्दिर[1] में शामिल होकर व्याख्यान आदि सुनकर ज्ञान प्राप्त करें व नीज उस रोज शिकार भी नहीं खेली जावेगी।

४—खास बनेड़े व मवजिआत के तालावों में मच्छी आड़ वगैरह की शिकार बिला इजाजत कोई नहीं करने पावेगा। लिहाजा—

नं० ६७४५

जुमले सहेनिगान की मारफत महकमे माल हिदायत दी जावे कि वह असामियान को आगाह कर देवे कि तालावों में मच्छी आड़ वगैरह का शिकार कोई शख्स बिला इजाजत न करने पावे। खिलाफ इसके अमल करे, उसकी बाजाप्ता रिपोर्ट करे तातील बाबत हर एक महकमेजात में इत्तला दी जावे नीज इसके जरिये नकल हाजा मुनि महाराज को भी सूचित किया जावे। फक्त १९८० वैशाख सुदी २, ता० ६ मई सन् १९२४ ई०।

द० राजा साहब के

॥ श्री रामजी ॥

नकल

॥श्री हींगला जी ॥

हुकमनामा अज़ ठिकाना कोशीथल बाकै वैशाख सुदी १५ का जवानसिंह १९८०
नं० ५४

मोहर छाप

जो कि अक्सर लोग जानवरों को अपना पेट भरने के लिए शिकार खेल कर जीवहिंसा के प्रायश्चित्त को प्राप्त होते हैं इसलिए हस्ब उपदेश साधुजी महाराज श्री चौथमलजी स्वामी के आज की तारीख से मेहे हुक्मनामा खास कोशीथल व पटा कोशीथल के लिए जारी कर सब को हिदायत की जाती है कि शिकार खेल कर जीवहिंसा करने से पूरा परहेज करें। अगर कोई खास वजह पेश आवे तो मंजूरी हासिल करे। अगर इसके खिलाफ कोई करेगा और उसकी शिकायत पेश आवेगा तो उसके लिए मुनासिब हुक्म दिया जावेगा। इसलिए सबको लाजिम है, कि निगरानी करते रहें। और किसी के लिए बिला मन्जूरी शिकार खेलना जाहिर में आवे, तो फौरन इत्तला करें। फक्त

---

१ बनेड़े (मेवाड़) में जो भी श्वेताम्बर स्थानकवासी साधु जाते हैं वे सब ऋषभदेवजी के मन्दिर में ही ठहरते हैं। और चातुर्मास का निवास भी उसी मन्दिर में करते हैं। अतः व्याख्यान भी उसी मन्दिर में होता है। और सब श्रावक-गण सामायिक, प्रतिक्रमणादि तथा पौषध वहीं करते हैं। अतएव 'राजा साहिब' ने श्री महावीर स्वामी के जन्म दिन तातील रखने की जैन-दिवाकरजी से प्रतिज्ञा कर सब जैन लोगों को इजाजत दी कि मन्दिरजी में इकट्ठे होकर उस दिन व्याख्यान सुनकर ज्ञान प्राप्त करें।

॥ श्री रामजी ॥

श्री केरेश्वरजी !

मोहर छाप
लूणदा

आज यहाँ जैन सम्प्रदाय के महाराज चौथमलजी ने कृपया व्याख्यान उपदेश किया, जो प्रशंसनीय व पूरा हितकारी सर्व-जनों के लाभदायक पूरा परमार्थ पर हुआ। आपके उपदेश से चित्त प्रसन्न होकर प्रतिज्ञा की जाती है कि—

(१) छोटे पक्षी की शिकार करने की रोक की जाती है।

(२) वैशाख मास में खरगोश की शिकार इरादतन न की जायगी।

(३) मादीन जानवरों की इरादतन शिकार नहीं की जायगी।

(४) नदी गोमती व महादेवजी श्री केरेश्वरजी के पास श्रावण मास में मच्छियों की शिकार की रोक की जायगी।

सं० १९८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरुवार

(द०) जवानसिंह

॥ श्री एक लिंगजी ॥

॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
कुरावड़

जैन सम्प्रदाय के श्रीमान् महाराज श्री चौथमलजी का दो दिन कुरावड़ महलों में मनुष्य जन्म के लाभान्तर्गत अहिंसा, परोपकार, क्षमा, आदि विषयों पर हृदयग्राही व्याख्यान हुआ, जिसके प्रभाव से चित्त द्रवीभूत होकर निम्नलिखित प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) कुरावड़ में नदी तालाब पर जलचर जीवों की हत्या की रोक रहेगी।

(२) आपके शुभागमन व प्रस्थान के दिन यहाँ पर जीव-हिंसा का अगता रहेगा।

(३) मादीन जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(४) पक्षियों में सात जातियों के जानवरों के सिवाय दूसरे जाति के जीव की हिंसा नहीं की जावेगी। इन सातों की गिनती इस तरह होगा कि जिस तरह से इत्तफाक पड़ता जावेगा। वो ही गिनती में शुमार होंगे।

(५) भाद्रपद कृष्णा अष्टमी से सुदी पूर्णिमा तक खटीकों की दुकानें बन्द रहेंगी।

(६) श्राद्ध-पक्ष में पहले से अगता रहता है सो वदस्तूर रहेगा और इसमें सर्व हिंसा व खटीकों की दूकानें भी वन्द रहेंगी।

(७) प्रतिमास एकादशी दो, अमावस्या, पूर्णिमा को अगतो हमेशा सूँ रेवे है सो वदस्तूर रहेगा और खटीकों की दूकानें विल्कुल वन्द रहेगा।

(८) आश्विन मास की नवरात्रि में एक दिन।

(९) दरवाजे नवरात्रि में एक पाड़ो हमेशा वलिदान होवे वो वन्द रहेगा।

(१०) नवरात्रि में माताजी कारणीजी पांगलीजी के पाड़ा नहीं चढ़ाया जावेगा।

(११) दस वकरा अमरीया कराया जावेगा।

ऊपर लिखे मुआफिक अमलदरामद रहना जरूरी लिहाजा

हु० नम्बर २६३

नकल इसकी तामिलन कोतवाली में भेजी जावे। दूसरी नकल महाराज चौथमलजी के पास सूचनार्थ भेजी जावे। दूसरे सरदार वगैरों ने भी वहुत-सी प्रतिज्ञा की है। उसकी फेहरिस्त अलग है। संवत १९८३ असाढ़ कृष्णा १४।

॥ श्री रामजी ॥

श्रीरघुनाथजी

मोहर छाप
वेदला

जैन साधु २२ सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज का शुभागमन मगसिर कृष्णा ६ को वेदले हुआ। गाँव में व राज्यस्थान में तीन दिन व्याख्यान हुए। जिसमें प्रजा को व मुझे आनन्द हुआ। नीचे लिखे मुआफिक यहाँ भी अगते पलाये जावेंगे।

(१) पहले से यहाँ अगते रखे जाते हैं। फिर पजूसणों से मिति भादवा सुदी १५ तक अगते पलाये जावेंगे गरज के उदयपुर के मुजिब पूरे अगते पालेंगे।

(२) दोयम चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर जयन्ति पौष वदी १० श्री पार्श्वनाथ जयन्ति के अगते भी पलाये जावेंगे।

(३) श्री चौथमलजी महाराज के वेदले पधारना होगा तब भी आने व जाने की मिति का अगता पलाया जावेगा। ऊपर मुजिब हमेशा अमलदरामद रहेगा।

लिहाजा हु० नं० ३६०

महाफीज दफ्तर मुत्तला होवे कि यह अगते पलाये जाने का नोट दर्ज किताब कर लेवें। नामेदार इस माफिक अमल रखाने की काररवाई करे। नकल इसकी बतौर सूचनार्थ श्री चौथमलजी महाराज के पास भेजी जावे।

सं० १९८३ मिगसर बदी १२ ता० २-१२-१९२६ ई०

॥ श्री एकलिंगजी ॥ श्री रामजी ॥

सही

जैन सम्प्रदाय के पण्डित मुनि महाराज श्री चौथमलजी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर सुदी ४ को व्याख्यान ततोली पधारने पर सुना। व्याख्यान परोपकार व जीवन-सुधार के बारे में हुआ। जिसके सुनने से मुझको व रिआया को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है इस मुताबिक—

(१) तीतर की शिकार मेरे हाथ से नहीं करूँगा।

(२) बटेर लावा की शिकार मेरे हाथ से नहीं करूँगा।

(३) ग्यारस, अमावस, पूनम शिकार नहीं करूँगा। न ततोली पटे में करने दूँगा।

(४) स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी के आने के दिन व जाने के दिन अगता पाला जावेगा।

(५) पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म व चैत सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म होने से अगता रखा जावेगा।

(६) रामनवमी, जन्माष्टमी को भी अगता रक्खा जावेगा।

(७) नोरता में पाड़ा वध नहीं किया जावेगा।

सं० १९९० का मृगशिर सुदी ४

रामसिंहजी और जोरावरसिंहजी ने जीवन-पर्यन्त किसी जीव की हिंसा नहीं करने के त्याग किये और ठीकरे कुंवर अमरसिंहजी ने हिरण की शिकार नहीं करने के त्याग किये।

द० रूपा साहब ततोली

॥ श्री रामजी ॥

श्री महालक्ष्मीजी !

मोहर छाप
कानोड़

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी का हवा मगरी के महल में आज व्याख्यान हुआ। जो श्रवण कर बहुत आनन्द हुआ। अहिंसा धर्म का जो महाराज ने उपदेश किया वह पूर्ण सत्य और वेद सम्मत है, जिससे इस प्रकार प्रतिज्ञा की गई है।

(१) आपके पधारने व विहार करने के दिन अगता रहेगा।

(२) पच्चीस बकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(३) यहाँ के तालाब और नदियों में बिला इजाजत मच्छियें आम लोग नहीं मार सकेंगे।

(४) मादीन जानवरों की इरादतन शिकार नहीं की जायगी इसी तरह से पक्षियों के लिए विचार रक्खा जायगा।

हु० नं० १५१२

अगता पलने और मच्छियें मारने की रोक के लिए कोतवाली में लिखा जावे और २५ बकरे अमरिये कराने के लिए नाथूलालजी मोदी को मुतला किया जावे। नकल इसकी सूचनार्थ चौथमलजी महाराज के पास भेजी जावे संवत् १९८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ८ ता० १८-६-२६ ई०।

॥ श्री रामजी ॥

श्री गोपालजी !

मोहर छाप
भिण्डर

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी का भिण्डर पधारना होकर आज मीति असाढ़ कृष्णा ५ को महलों में धर्म व अहिंसा के विषय में व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव अच्छा पड़ा और मुझको भी इस प्रभावशाली व्याख्यान से बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) हिरन व छोटे पक्षियों की शिकार नहीं की जायगी।

(२) इन महाराज के आगमन व प्रस्थान के दिवस भिण्डर में खटीकों की दूकानें बन्द रहेंगी। उपरोक्त प्रतिज्ञाओं की पाबंदी रहेगी लिहाजा—

हु० नं० २३४२

खटीकों की दूकानों के लिए मुआफिक सदर तामील बाबत थानेदार को हिदायत की जावे। और नकल उसकी चौथमलजी महाराज के पास भेजी जावे। संवत् १९८२ असाढ़ कृष्णा ५ ता० ३० जून को सन् १९२६ ई०।

नं० १३

॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

रावतजी साहिब के हस्ताक्षर (अँग्रेजी लिपि में)

मोहर छाप
बाठरड़ा

Batharda
Udaipur
Rajputana

स्वस्ति श्री राजस्थान बाठरड़ा शुभस्थाने रावतजी श्री दलीपसिंहजी वंचनात् । जैन साधुमार्गीय २२ सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता स्वामी श्री चौथमलजी महाराज का शुभागमन यहाँ आसाढ़ विदी ३० को हुआ। यहाँ की जनता को आपके धर्म-विषयक व्याख्यानों के श्रवण करने का लाभ प्राप्त हुआ। आपका व्याख्यान राजद्वार में भी हुआ। आपने अपने व्याख्यान में मनुष्य जन्म की दुर्लभता, आर्यदेश में, सत्कुल में जन्म पूर्णायु सर्वाङ्ग सम्पन्न होने के कारणभूत धर्माचरण को बताकर धर्म के अंग स्वरूप क्षमा, दया, अहिंसा, परोपकार, इन्द्रिय-निग्रह, ब्रह्मचर्य, सत्य, तप, ईश्वर स्मरण भजन आदि सदाचार का विशद रूप से वर्णन करके इनको ग्रहण करने एवं अधोगति को ले जाने वाले हिंसा, क्रोध, व्यभिचार, मिथ्याभाषण परहानि विषय परायणता आदि दुराचारों को यथाशक्य त्यागने का प्रभावोत्पादक उपदेश किया जो कि सनातन वैदिक धर्म के ही अनुकूल है। आपके व्याख्यान सार्वदेशिक, सार्वजनिक, सर्व धर्म सम्मत किसी प्रकार के आक्षेपों रहित हुआ करते हैं। यहाँ से आपके भेंट स्वरूप निम्नलिखित कर्त्तव्यपालन करने की प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं।

१—हिंसा के निषेध में—

(१) नारी जानवर की आखेट इच्छा पूर्वक नहीं की जायगी।

(२) पटपड़ का मांस भक्षण नहीं किया जायगा।

(३) मोर कबूतर आदि पक्षियों की शिकार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं उनको रोक करा दी जायगी।

(४) नवरात्रि दशहरे पर जो चौगान्या वा माताजी के बलिदान के लिए पाड़े वध किये जाते हैं। वे अब नहीं किये जावेंगे।

(५) तालाब फूल सागर में आड़ें नहीं मारी जायेंगी।

२—निम्नलिखित तिथियों तथा पर्वो पर अगते रखाये जायेंगे। यानी खटीकों की दुकानें, कलालों की दुकानें, तेलियों की घाणियें, हलवाइयों की दुकानें, कुम्हारों के आवे आदि बन्द रहेंगे।

(१) प्रत्येक मास में दोनों एकादशी, पूर्णिमा का दिन।

(२) विशेष पर्वो पर जन्म अष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि वसंतपंचमी। चैत्र सुदी १३, ज्येष्ठ वदी ५।

(३) श्राद्ध पक्ष में।

(४) स्वामी श्री चौथमलजी महाराज के यहाँ आगमन व प्रयाण के दिन।

३—अभयदान में ५ पांच बकरों को जीवदान दिया जायगा।

उपरोक्त कर्त्तव्यों का पालन कराने के लिए कचहरी में लिख दिया जावे। इसकी एक नकल श्री चौथमलजी महाराज के भेंट हो और एक नकल समस्त महाजन पंचों को दी जावे। शुभ मिती सं० १६८२ का आसाढ़ सुदी ३।

*

॥ श्री चतुर्भुजजी ॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध उपदेशक मुनि महाराज श्री चौथमलजी का इस नगर बदनोर में सं० १९९० का मृगशिर कृष्णा सप्तमी को पधारना हुआ। आपके व्याख्यान गोविन्द स्कूल में मृगशिर कृष्णा ११ व १२ को श्रवण किये। अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्रोताओं को भी पूर्ण लाभ हुआ। आपका कथन बड़ा प्रभावशाली है। जहाँ कहीं आपका उपदेश होता है, जनता पर बड़ा भारी असर पड़ता है। यहाँ भी यह नियम किया गया है कि आसोजी नवरात्रि में पहले से पाड़े बलिदान होते हैं उनमें से आइन्दा के लिये दो पाड़े बलिदान कम किये जावें जिसकी पावन्दी रखाया जाना जरूरी है लिहाजा—

हु० नं० ४४४

के वास्ते तामील असल शरस्ते खास में व एक-एक नकल महकमे माल व हिसाब दफ्तर में दी जावे और यह एक नकल इसकी मुनि महाराज श्री चौथमलजी की भेंट की जावे। सं० १९९० का मृगशिर कृष्णा १२ मंगलवार तारीख १४ नवम्बर सन् १९३३ ईस्वी।

श्री एकलिंगजी !

॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
सुलम्बर

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज का भिण्डर की हवेली मु० उदयपुर में आज व्याख्यान हुआ वो श्रवण कर चित्त बड़ा आनन्दित हुआ। अहिंसा धर्म का महाराज श्री ने सत्य उपदेश दिया वह बहुत प्रभावशाली रहा। इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) श्रीमान् मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन सुलम्बर में आम अगता रहेगा।

(२) चैत्र शुक्ला १३ भगवान श्री महावीर स्वामी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता रहेगा।

(३) पौष कृष्णा १० भगवान पार्श्वनाथजी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता पलाया जावेगा।

(४) ✱नवरात्रि में पाड़ा को लोह होवे है सो हमेशा के वास्ते एक पाड़े को अमर्‌या किया जावेगा।

(५) मादा जानवर की शिकार जान करके नहीं की जावेगी।

(६) मुर्गा जंगली व शहरी, हरियाल, धनेतर, लावा, आड़ और भाटिया के अलावा दीगर पखेरू जानवरों की शिकार नहीं की जावेगी और जीमण में नहीं आवेगा।

(७) खास सुलम्बर में तालाव है उसमें विला इजाजत कोई शिकार न खेले। इसकी रोक पहले से है और फिर भी रोक पूरे तौर से रहेगी। —लिहाजा

हुक्म नं० ४१४

असल रोवकार हाजा सदर कचहरी में भेज लिखी जावे के मुन्दरजे सदर कलमों की पावन्दी पूरे तौर रखने का इन्तजाम करें और नकल इसकी सूचनार्थ श्रीमान् प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के भेंट स्वरूप भेजी जावे और निवेदन किया जावे के कितनेक जीव हिंसा वगैरा बातें आपके सुलम्बर पधारने पर छोड़ने का विचार किया जावेगा। फक्त सं० १९८३ मार्गशीर्ष कृष्णा ११ सोमवार ता० ३०-११-२६ ई०।

✱ नवरात्रि और दशहरे में जितने पाड़े मारे जाते हैं उनमें एक पाड़े की कमी की जावेगी। याने हमेशा के लिए एक पाड़े को अमर्‌या कर दिया जावेगा।
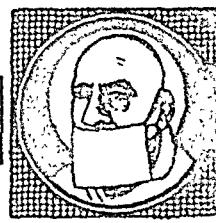
॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री आदि माताजी ॥

मोहर छाप
देलवाड़ा (मेवाड़)

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज के व्याख्यान उदयपुर के मुकाम बनेड़ा की हवेली में मिति आसोज सुदी १४ को श्रवण करने का सुअवसर हुआ। जब से यह इच्छा थी कि श्रीमहाराज का कभी देलवाड़े में पधारना हो और यहाँ की प्रजा को भी आपका व्याख्यान श्रवण करने का लाभ मिले। ईश्वर कृपा से श्री महाराज का यहाँ पर परसों पधारना हुआ और यहाँ की जनता को आपके धर्म-विषयक व्याख्यानों के श्रवण करने की अभिलाषा पूर्ण हुई तथा आज आपने कृपा कर राज्यद्वार में पधार जालिम निवास महल में व्याख्यान दिया। आपका फरमाना बहुत ही प्रभावशाली सर्वधर्म सम्मत रहा इसलिये नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

१—नीचे लिखी तिथियों पर यहाँ अगते रहेंगे।

(१) श्री चौथमलजी महाराज के यहाँ पधारने व वापिस पधारने के दिन।

(२) पौष वदी १० श्री पार्श्वनाथजी महाराज के जन्म दिवस के दिन।

(३) चैत सुदी १३ श्री महावीर स्वामीजी के जन्म दिवस के दिन।

(४) महीने में दोनों एकादशी अमावस तथा पूर्णिमा के दिन।

२—पक्षी जानवरों में लावा और जल के जानवरों में भाटिया की शिकार नहीं की जावेगी।

३—मादीन जानवर की शिकार इरादतन नहीं की जावेगी लिहाजा।

हु० नं० १६७३

असल कचहरी में भेज लिखी जावे कि नं० १ की कलमों की पाबन्दी पूरे तौर से रखाई जावे और नकल इसकी सूचनार्थ मुनि महाराज श्री चौथमलजी के पास भेजी जावे। संवत् १९८३ फागण सुदी ६, ता० ९-३-१९२७ ई०

॥श्री हींगलाजी॥ ॥ श्रीरामजी ॥

श्री जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनिजी महाराज श्री चौथमलजी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज पौष वदी १ को असीम कृपा करके कोसीयल को पवित्र कर व्याख्यान फरमाया। जिसके सुनने से दिलचस्पी हुई और निम्न भेंट की—

(१) ग्यारस, अमावस, पूनम महीने की सुदी ४ हर महीने की विदी ९ व श्रीमान् का पधारना होगा जिस दिन व वापस पधारे जिस दिन अगता रहेगा।

(२) तीतर पर गोली नहीं चलावेंगे।

(३) पाड़ो १ चोगानियो छूटे सो नहीं छोड़ागां।

सं० १९९० पौष विदी १

द० राजचन्द्रसिंह

मुकरिया यह शिवसिंह वल्द पदमसिंहजी ने भेंट नजर की

(१) साजरू, नीड़ा को लोह नहीं करूँगा।

(२) हिरण पर गोली नहीं चलाऊँगा। —शिवसिंह मु० ठिकाना कोसीयल

॥ श्री ॥

मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आज मिति पौष सुदी ७ सम्वत् १९९१ को वनेड़ि में पधारना हुआ। व्याख्यान सुन करके बहुत आनन्द हुआ। भेंटस्वरूप निम्नलिखित बातों प्रतिज्ञा-पत्र लिख करके महाराज श्री के नजर किया जाता है।

(१) जहाँ तक बन सकेगा महीने की दोनों एकादशी का व्रत (उपवास) वा अमाव के रोज एक वक्त भोजन किया जायगा।

(२) महीने की दोनों एकादशी माहवारी वा अमावस को अगता रक्खा जायगा।

(३) पौष विदी १० चैत सुदी १३ को अगता रक्खा जायगा।

(४) जन्माष्टमी, राधाष्टमी, संक्रान्ति, गणेश चौथ को अगता रक्खा जायगा।

(५) कार्तिक, श्रावण, वैशाख, अलावा पामणा परि के इन महिनों में अगता रक्खा जावेग

(६) शिकार इरादतन जरूरी के सिवाय नहीं की जावेगी।

(७) पर्यूषण हमेशा निभे जी माफिक निभाया जावेगा।

(८) एकादशी अमावस्या चड़स हलगाड़ी वगैरा बैलों से जोताई का काम नहीं लिया जावेग

(९) जो कुछ भी रकम मुनासिब होगा हर माह किसी नेक काम में लगाई जावेगा।

—भोपालसिंह वनेड़िया

॥ श्री लक्ष्मीनाथजी ॥

॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
मोही (मेवाड़)

जैन सम्प्रदाय के सुप्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी मह राज का राजस्थान मोही में आज भाषण हुआ। वह श्रवण कर चि बड़ा आनन्दित हुआ। अहिंसा विषयक जो श्री महाराज ने सत्य उपदे दिया वह प्रभावशाली ही नहीं प्रत्युत प्रशंसनीय एवं उपादेय रहा है। इसलिए नीचे लिखी प्रति की जाती है—

(१) चैत्र शुक्ला १३ भगवान् श्री महावीर स्वामी का जन्म दिन है सो हमेशा के लि आम अगता रहेगा।

(२) पौष कृष्णा १० भगवान श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आ अगता पलाया जावेगा।

(३) श्रीमान् मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन मोही आम अगता रहेगा।

(४) मादा जानवर की शिकार जानकर नहीं की जावेगी।

(५) कोई पखेरु जानवर की शिकार निज हाथ से नहीं की जावेगी न जीमण में काम आवेगा

(६) हरिण की शिकार नहीं की जावेगी, न जीमन में काम आवेगी।

(७) निज हाथ से कोई जीव हिंसात्मक कर्म नहीं किया जावेगा। अलावा श्रीजी हु के हुक्म के।

ऊपर लिखे मुआफिक पूरे तौर से अमल रहेगा लिहाजा

हुक्म नं० ८२

असल ही कचहरी ठि० हाजा में भेज कर लिखा जावे कि अमूरात मुन्दरजा सदर पाबन्दी बाबत खटीकान को हिदायत करा देना और नकल इसकी सूचनार्थ भेंट स्वरूप श्री चौथ मलजी महाराज की सेवा में भेजी जावे सं० १९८३ वैशाख कृष्णा १५ ता० १-५-२७ ई०
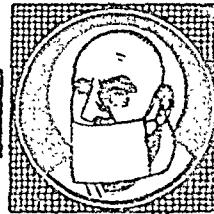
॥ श्री रामजी ॥

॥श्री एकलिंगजी॥

जैन-सम्प्रदाय के श्रीमान् प्रसिद्धवक्ता स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज गोगुन्दे पधारे और मनुष्य जन्म के लाभान्तर्गत अहिंसा परोपकार क्षमा आदि अनेक विषयों पर हृदयग्राही प्रभावशाली व्याख्यान हुए। जिनके प्रभाव से चित्त द्रवीभूत होकर श्रीमती माजी साहिबा श्री रणावत जी की सम्मति से जिन्होंने कृपा कर दयाभाव से यह भी फरमाया है कि इन प्रतिज्ञाओं की हमेशा, वाद मुनसरमात भी पावन्दी रखाई जावेगी। निम्नलिखित प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) तालाव पट्टे हाजा में मच्छियाँ आड़ा आदि जीवों का शिकार विला इजाजत कोई नहीं कर सकेंगे। इसके लिए एक शिलालेख भी तालाब की पाल (पार) पर मुनासिब जगह स्थापित कर दिया जायगा।

(२) छोटे पक्षी चिड़ियाँ वगैरा की शिकार करने की रोक की जावेगी।

(३) मोर, कबूतर, फाख्ता, न मारने दिये जावेंगे।

(४) पर्यूषणों में व श्राद्ध-पक्ष में आमतौर पर बकरे आदि वेचने को काटे जाते हैं उनकी रोक की जावेगी।

(५) आपके पधारने व विहार करने के दिन अगता रहेगा।

(६) विशेष पर्व जन्माष्टमी, रामनवमी, मकर संक्रान्ति, वसन्त पंचमी, शिवरात्रि, पौष वदी १० पार्श्वनाथ जयन्ति, चैत्र शुक्ला १३ महावीर जयन्ति और इनके अतिरिक्त हर महीने की ग्यारस, प्रदोष, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन बकरे आदि जानवर आमतौर पर वेचने को नहीं काटने दिये जावेंगे। इनके अलावा ठिकाने में जो-जो मामूली अगते पाले जाते हैं वे भी पलते रहेंगे।

(७) कुम्हार लोग श्रावण और भादवा में अवाड़े नहीं पकावेंगे।

(८) श्रीयुत स्वामीजी श्री चौथमल जी महाराज के शुभागमन में ग्यारह ११ बकरे इस समय अमरिया कराये जावेंगे।

हु० नं० १८०६

नकल इस माफिक लिख श्रीयुत स्वामी जी श्री चौथमलजी महाराज के सूचनार्थ भेजी जावे। और यह परचा सही के वहिड़ा में दरज होवे और इसमें मुत्तला थानेदार, जमादार, हवलदार को कहा जावे और साहेवलालजी को ये भी हिदायत हो कि शिलालेख कारीगर को तलव कर उससे लिखवा कर तालावों पर पट्टे हाजा में रुपाइ जावे। दर्ज रजिस्टर हो सं० १९८२ का मगसर सु० १३ तारीख १०-१२-२६ ई०

॥ श्री ॥

नम्बर २८

राजश्री कचेहरी ठि० नामली।

महाराज श्री चौथमलजी की सेवा में—

आज रोज नामली मुकाम पर जैन-सम्प्रदाय के पूज्य श्री मुन्नालाल जी महाराज की सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज के व्याख्यानों का लाभ हमें और प्रजा को मिला। उपदेश सुनकर बड़ी खुशी हासिल हुई। अतएव भेंटस्वरूप हम हमारे ठिकाने में हुक्म देते हैं कि मिति चैत सुदी १३ भगवान् महावीरजी का जन्म दिन है तथा पौष विदी १० भगवान् पार्श्वनाथजी का जन्म दिन है। यह दोनों दिवस हमेशा के लिए अगता याने (पलती) रक्खी जावेगा। फक्त तारीख २४ माहे जनवरी सन् १९३३ सं० १९८९।

—मान महीपालसिंह

मोहर छाप
पाली (मारवाड़)

श्रीमान् मुनि महाराज श्री श्री १००८ श्री चौथमलजी महार श्री का सेखेकाल पाली सं० १९८३ का ज्येष्ठ शुक्ला १४ चतुर्दशी पधारना हुवा और श्रीमहाराज ने उपदेश फरमायो तिण पर श्रीम हाकिम साहिब कुंवरजी श्री सवाईसिंहजी साहिब की मौजूदगी में शहर रा समस्त पंच ओसवा पोरवाल, माहेश्वरी, अगरवाल, फतेपुरिया, पुष्करणा ब्राह्मण और समस्त कोम भेली होय ने धर्म वृद्धिकरण सारु साल एक यानी मास १२ बारे में अगता चार नीचे मुजब राखणा मंजुर किया अग नहीं राखसी तो रूपिया ११ इग्यारा गुने-गारीरा देसी। मिती आषाढ़ कृष्णा ७ सप्तमी सम्व १९८३ रा तारीख २१ जून सन् १९२५ ई०।

(१) मिती चैत्र सुदी १३ श्री महावीर स्वामीजी रो जन्म दिन।

(२) मिती ज्येष्ठ सुदि ११ निर्जला इग्यारस।

(३) मिती भाद्रपद कृष्णा ८ श्री कृष्णचन्द्रजी रो जन्म दिन।

(४) मिती पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी रो जन्म दिन।

ऊपर लिखिया मुजब अगता चार जीवसाई सारा जणा पालसी, जरूरत माफक शहर दूकान एक-एक हरएक किश्मरा व्यौपारी री खुली रेवेला सो अपने व्यौपारिया से रजा लेक खोलेला जिणमें कोई धर्मादेरो कफन समझ कर व्यौपारी उणसु लेलेवेला और हुंडी चिट्ठीरी भुगता बन्द रेसी। पजूसणारा अगता सदा बन्दसु पाले है उणी तरह पलसी। इत्यलम्।

अज हकुमत पाली

आज यह नकल सरदारान की तरफ से श्री महाराज के पेश करने के लिए पेश हुई लिहाजा असल नकल श्रीमान् पूज्य मुनिवर श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज साहिब के चरण-कमलों में नजर हो। फक्त ता० २५-६-२७।

(सही) सवाईसिंह
हाकिम—पाली

✡

।। श्री एकलिंगजी ।। श्री रामजी ।।

जैन सम्प्रदाय के पण्डित मुनि महाराज श्री चौथमल जी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर सुदी ५ को व्याख्यान आमदला पधारने पर सुना। व्याख्यान परोपकार व जीवन-सुधार के बारे में हुआ। जिसके सुनने से मुझको व रियाया को बड़ा आनन्द हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है इस मुताबिक—

(१) तीतर व लावा बाटपड़ या जनावरा पर मैं बन्दूक नहीं चलाऊँगा।

(२) ग्यारस, अमावस, पूनम का पहले से ही अगता रहता है और अब भी अगता राखूंगा।

(३) स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी के आने के दिन अगता पाला जावेगा।

(४) पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म, चैत्र सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म है। इसलिए उस रोज अगता रखा जावेगा।

॥ श्री रामजी ॥

श्री एकलिंगजी !

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता महा मुनिश्री चौथमलजी महाराज का केरिया में वैशाख शुक्ला ५ पांचम सं० १९८४ में पधारना हुआ और ३ तीन दिन तक केरिया में विराज कर उपदेश दिया सो आपरा उपदेश सुनने से गाम को व मुझको वड़ा आनन्द हुआ। क्योंकि ऐसे महा मुनियों का पधारना बड़े सौभाग्य की बात है। इसलिए उपदेश के सुनने से नीचे लिखे मुजब प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) वैशाख महना आधा तो पहिले से ही शिकार खेलना छोड़ रखा है। अब आपका उपदेश सुनने से सम्पूर्ण वैशाख तक केरिया में रहूँगा जतरे शिकार कतई नहीं खेलूंगा।

(२) श्राद्ध पक्ष में तीतर पटपड़ खरगोश वगैरा नहीं मारूँगा।

(३) चैत्र शुक्ला १३ तेरस श्री महावीर स्वामी का जन्म व पौष कृष्णा १० दशम श्री पार्श्वनाथजी का जन्म होने से अगता हमेशा रखा जावेगा।

(४) चैत्र शुक्ला ९ नवमी का अगता रखा जावेगा।

(५) श्रीमान् मान्यवर चौथमलजी महाराज का जब केरिया पधारना होवेगा तब अगता रखा जावेगा और वापिस विहार करती वक्त भी रखा जावेगा।

(६) अमावश, पूनम, ग्यारस इन तिथियों का भी अगता रखा जावेगा।

(७) भादवा विद १२ से लगाय सुद ५ तक पजूसणा को अगतो हमेशा रखा जावेगा।

नकल इसकी स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज के सूचनार्थ भेंट की जावे और अगते पालने की हमेशा याद में राखी जावेगा। फक्त सं० १९८४ का वैशाख शुक्लो ६।

—द० गुलाबसिंह केरिया ✡

॥ श्री रामजी ॥

श्री चतुर्भुजजी

नं० १०
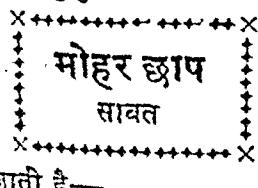
जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता श्री चौथमलजी महाराज का पधारना वैशाख शुक्ला ७ को निम्बाहेड़े हुआ और ८-९ को व्याख्यान हुए जिसमें प्रजा को व मुझको आनन्द हुआ। नीचे लिखे माफिक प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) शराब वैशाख में नहीं पीऊंगा।

(२) तीतर, बटेर, हरेल, धनतर ये वैशाख में शिकार नहीं की जावेगी और दूसरे शिकारियों को भी मना कर दिया जावेगा।

(३) पजूसण में अगते पाले जावेंगे। दुकानदार खटीक लोगों को हिदायत करदी जावेगा। ८ दिन उदेपुर में पलते हैं—वा माफिक।

(४) चेत शुक्ला १३ महावीर जयंति का व पोष विद १० के भी अगते पलाये जावेंगे।

(५) चौथमलजी महाराज का कभी पधारना होवेगा तो एक रोज आने का एक रोज जाने का अगता रखाया जावेगा।

(६) ११ के रोज तो पहले शिकार खेलना छोड़ रखा है मगर अमावस्या के रोज भी शिकार खेलना बन्द कर दिया जावेगा। सं० १९८४ का वैशाख शुक्ला ९

द० [illegible] पंचोली का श्री रावला हुकमनूं
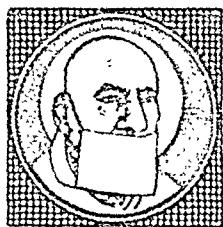
॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री रूपनारायणजी ॥

दस्तखत अँग्रेजी में
ठाकुर साहिब के

मोहर छाप
लसाणी (मेवाड़)

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज का लसाणी में यह तीसरी मरतबा पधारना हुआ। और इस मौके पर तीन दिन विराज कर जो उपदेश फरमाया उससे चित्त प्रसन्न होकर नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) परिन्दे जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(२) श्रावण व भाद्रव मास में इरादतन शिकार नहीं की जावेगी।

(३) मादिन जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(४) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(५) स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन अगता पलाया जावेगा।

(६) ग्यारस, अमावस्या के दिन शिकार जमीन में नहीं की जावेगी।

(७) श्रावण मास के सोमवारों को हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(८) श्राद्ध-पक्ष में पहले से शिकार की दुकान का अगता पलता है वह अब भी बदस्तूर पलेगा। इसके अलावा पजूसणों में भी शिकार की दूकान का हमेशा के लिए अगता रहेगा।

(९) मच्छी व हिरन की शिकार नहीं की जावेगी।

(१०) स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी का यहाँ पधारना हुआ इस खुशी में इस मरतबा ५ बकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(११) वैशाख मास में पहले से शिकार की रोक है उस माफिक अमल हमेशा के लिए रहेगा। लिहाजा—

हु० नं० ५९

नकल इसकी स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज के सूचनार्थ भेंट की जावे अगते पलाने की खटिकान को हिदायत कराई जावे। अमरिये बकरे कराने की नामेदार हस्व शरिस्ता काररवाई करे सं० १९८३ ज्येष्ठ कृष्णा ४ शुक्रवार ता० २० मई, सन् १९२७ ई०

७४ ॥ रामजी ॐ
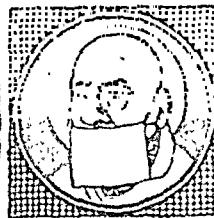
श्री चतुर्भुजजी
सही
ठाकुर साहिब की

जैन-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के मुखारविन्द का भाषण सुनने की इच्छा थी कि ईश्वर की कृपा से ता० २० मई सन् १९२७ ई० को पधारना हो गया। आपका उपदेश सुनकर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) कार्तिक, वैशाख महीने में शिकार नहीं खेली जावेगी बाकी महीनों में से प्रत्येक महीनों में ८ रोज के सिवाय शिकार वन्द रहेगी। अर्थात् २२ दिन शिकार वन्द रहेगी।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(३) स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन अगता पलाया जावेगा।

(४) प्रत्येक महीने की ग्यारस व अमावस के दिन शिकार जीमन में नहीं ली जावेगी।

(५) श्रावण मास के सोमवारों को हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(६) श्राद्धपक्ष में हमेशा अगता पलाया जावेगा और शिकार भी नहीं खेली जायगी।

(७) स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी का ताल पधारना हुआ इस खुशी में इस मर्तबा इस साल के लागत के आने वाले करीब ६०-७० सब वकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(८) पहले भी महाराज श्री से त्याग किये हैं वे वदस्तूर पाले जायेंगे।

(९) पजूसणों में कतई अगता पाला जावेगा।

लिहाजा हुक्म नम्बर १११

नकल इसकी स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी के सूचनार्थ भेंट की जावे और अगता पालन की खटिकान को हिदायत कराई जावे। अमरिये वकरे कराने की हस्व गरिस्ते काररवाई करने की हिदायत बीड़वान नाथू नाटी को की जावे। वि० सं० १९८३ का ज्येष्ठ कृष्णा ६ ता० २२ मई सन् १९२७ ई० रविवार।
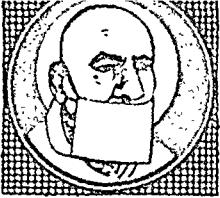
॥श्री रामजी ॥

॥ श्रीबाणानाथजी ॥

मोहर छाप
मेजा (मेवाड़)

मेजा—मेवाड़
ता० ४-५-२८

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज मेजे में सं० १९८४ के वैषाख शुक्ला १५ पधारे और सुबह व्याख्यान महलों में दो दिन हुआ जो श्रवण कर वहुत आनन्द प्राप्त हुआ। अहिंसा धर्म का जो महाराज ने सत् उपदेश दिया वह बहुत प्रभावशाली है इसलिए प्रतिज्ञा की जाकर नीचे लिखी तिथियों पर जीवहिंसा का अगता भी रहेगा।

(१) पौष कृष्णा १० श्रीपार्श्वनाथजी महाराज का जन्मदिवस के दिन।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्मदिवस के दिन।

(३) आपके पधारने व विहार करने के दिन अगता रहेगा।

(४) आपके शुभागमन में ११ ग्यारा बकरे इस समय अमरिया कराए जावेगा।

(५) यहाँ के तालाब में विना इजाजत मच्छिएँ आम लोग नहीं मार सकेंगे।

(६) आसोज शुक्ला ९ के दिन दश बकरों का वध होता है उसकी जगह पाँच को अभयदान दिया जावेगा।

(७) धर्मवीर श्रीमान् महाराज साहब सुरतसिंहजी के आज्ञानुसार हीरन की शिकार खुद के हाथ से नहीं की जाती, जिनके

(८) वैषाख शुक्ला १२ के जन्म दिवस के उपलक्ष में ५ पाँच बकरों को अभेदान दिया जावेगा।

हुक्म नं० २९५

असल हू वास्ते तामील के सरिस्ते में दिया जावे और एक नकल इसकी मुनि श्री चौथमलजी महाराज के भेंट की जावे। संवत् १९८४ का वैषाख शुक्ला १५

॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री चतुर्भुजजी ॥

श्री जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज का खेरावाद में ज्येष्ठ कृष्णा ३ सं० १९८४ को पधारना हुआ। आपके उपदेश से मुझे वड़ा आनन्द हुआ जिससे नीचे लिखे माफिक प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) चैत्र शुक्ला १३ को श्री महावीर जयन्ती होने से व पौष कृष्णा १० को श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिवस होने से अगता पलाया जावेगा।

(२) ग्यारस, अमावस, पूनम को शिकार का प्रयोग नहीं किया जावेगा।

(३) मैंने आज दिन तक शिकार नहीं की और अब भी नहीं करूँगा।

(४) श्री चौथमलजी महाराज का जिस दिन खेरावदा में पधारना होगा और वापिस विहार होगा उस दिन अगता रखा जावेगा।

सं० १९८४ का ज्येष्ठ कृष्णा ३

(द०) म० बागसिंह—खेरावदा
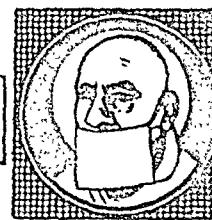
॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

जैन सम्प्रदाय के परम पूज्य प्रसिद्धवक्ता मुनिजी महाराज श्री चौथमलजी का वैशाख शुक्ला ६ शनीश्चर सं० १६८४ को भगवानपुरे में पदार्पण हुआ। आपका भाषण साम्प्रदायिक विवाद रहित अहिंसा ब्रह्मचर्यादि सरस भाषा में हृदयग्राही दृष्टान्तों युक्त साधारण गायन के सम्मेलन से सुशोभित होने के कारण जन-साधारण पर विशेष प्रभावशाली हुआ। और मैंने भी सुना तो अहिंसा वेद सम्मत है। जिससे निम्नलिखित प्रतिज्ञाओं के लिए यह विचार किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य निज के विचारों से, शारीरिक क्रियाओं को रोकने में स्वतंत्र है। तथापि यावज्जीवन प्रतिज्ञाओं का यथावत् निर्वाह होना दैवाधीन होने के कारण परतन्त्र भी है। प्रार्थना है ईश्वर निभावे।

(१) छर्रे से शिकार नहीं की जावेगी कि जिससे सहज ही में छोटे जीवों की हिंसा विशेष न होवे।

(२) भगवानपुरा पास के तालाब सरूपसागर में और झरणा महादेवजी के स्थान पर भगवानपुरे की सरहद की नदी में भी मच्छिएँ मारने की मनाई करादी जावेगी।

(३) पजूषणों में खटीक-कसाइयों को जीव हिंसा नहीं करने की हिदायत करादी जावेगा।

(४) शेर, चीते के सिवाय निज इच्छा से जहाँ तक पहचाना जा सके मादिन की शिकार नहीं की जावेगी।

(५) मच्छी की शिकार नहीं की जावेगी।

(६) मच्छी का गोस्त भी खाने के काम में नहीं लाया जायगा।

(७) चैत्र सुदि १३ व पौष विद १० के दिन अगता रखा जावेगा।

सं० १६८४ का वैपाख सुद ११

(सही) रा० सुजानसिंह, भगवानपुरा

॥ श्री ॥

जा० नं०
२४
१६-५-१६३५ ई०

Thikana Raipur H. S.

जैन सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मुनि श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन की हमें अत्यन्त आकांक्षा थी। ईश्वर की कृपा से आपका पदार्पण ता० १५-५-१६३५ ई० को रायपुर ग्राम में हुआ। आपके यहाँ दो बड़े प्रभावशाली व्याख्यान हुए। आपके द्वारा उपदेशामृत पान करके हम और हमारे यहाँ का कुल समाज अत्यन्त प्रसन्न हुआ। आप वास्तव में अहिंसावाद के प्रभावशाली व्याख्यान देने वाले महात्मा हैं। मैं महाराज श्री के भेंट स्वरूप निम्नांकित प्रतिज्ञाएँ करके प्रतिज्ञापत्र महामुनि को समर्पित करता हूँ।

(१) इस ग्राम में पर्यूषण पर्व व जन्माष्टमी पर धार्मिक अगते पाले जावेंगे।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से इन तिथियों पर भी धार्मिक अगते पाले जावेंगे।

(३) शराब एक दूषित पदार्थ है। इसका सेवन हम कभी आजन्म पर्यन्त नहीं करेंगे।

(सही अंग्रेजी में)
राय जयनाद सिंह

।।श्री चतुर्भुजजी।। ।। श्री रामजी ।।

नकल

मोहर छाप
बदनोर

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनिश्री चौथमलजी महाराज का व्याख्यान संवत् १९८४ का वैशाख कृष्णा १४ को सुबह गोविन्द स्कूल व तीसरे पहर को व वैशाख कृष्णा अमावस्या को भी गोविन्द स्कूल बदनोर में श्रवण किया। बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रोताओं को भी पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ। आप बड़े प्रभावशाली हैं। जहाँ कहीं आपका व्याख्यान होता है उसका जनता पर बड़ा असर होता है। यहां भी नीचे लिखे नियम किये जाते हैं—

नीचे लिखी तिथियों पर यहाँ अगते रहेंगे—

(१) पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी महाराज का जन्म दिवस के दिन चैत्र शुक्ला १३ श्रीमहावीर स्वामीजी के जन्म दिवस के दिन।

(२) यहाँ चांदरास के केशर सागर तालाब में मच्छी की हिंसा कोई न करे, इसकी रोक की गई है। लिहाजा—

हुक्म

के अमल वास्ते तामिल शिरस्ते में दिया जावे और एक नकल इसकी मुनिश्री चौथमलजी महाराज के भेंट की जावे। १९८४ का वैशाख कृष्णा अमावस्या, शुक्रवार ता० २० अप्रेल सन् १९२८ फक्त।

।। श्री चतरभुज जी ।। ।। श्रीरामजी ।।

साबत

श्री जैन-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनिजी श्री चौथमलजी महाराज के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर शुक्ला १४ तदनुसार ता० ३०-११-३३ ई० को असीम कृपा फरमाकर नांदेसमां जागीर को पवित्र कर व्याख्यान फरमाया जो जीव-सुधार व दया पर था, जिसके सुनने से बड़ी दिलचस्पी हुई। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) हिरण, खरगोश, नार, शुअर, मगर, बकरा, मेंढा के सिवाय किसी जानवर को मेरे हाथ से वध नहीं करूँगा।

(२) ग्यारस, अमावस, पूनम व श्रीमान् के पधारने व वापसी जाने के दिन अगता रहेगा।

(३) पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म व चैत्र सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म होने से अगता रहेगा।

(४) रामनवमी, जन्माष्टमी, कार्तिक, वैशाख, श्रावण, भादवा को अगता रहेगा।

(५) महीने में चार दिन के सिवाय शराब काम में नहीं लूंगा।

(६) इसी तरह काकाजी जयसिंह ने भी अपने हाथ से किसी जानवर को वध नहीं करेंगे। अपने दिली चाह से परस्त्रीगमन भी नहीं करेंगे। ऐसा नियम लिया।

सं० १९९० का मृगशिर सुदी १४ ता० ३०-११-३३ ई०

द० जयसिंह
द० नारायणसिंह

॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

नकल

मोहर छाप
हमीरगढ़

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज का हमीरगढ़ में व्याख्यान हुआ वह श्रवण कर चित्त बड़ा आनन्दित हुआ। हिंसा धर्म का जो महाराज ने सत्य उपदेश दिया वह बहुत प्रभावशाली रहा इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) श्रीमान् मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पधारने के रोज से वापिस विहार करने के रोज तक हमीरगढ़ में अगता रहेगा।

(२) चैत्र शुक्ला १३ भगवान् महावीर स्वामी का जन्म दिन हैं, सो उस रोज हमेशा के लिए अगता रहेगा।

(३) पौष कृष्णा १० भगवान् पार्श्वनाथजी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता पलाया जावेगा।

(४) दशरावे के दिन चोगान्यो पाड़ो नहीं मार्‌यो जावेगा।

(५) जंगल में छोटी शिकार पंखेरू हिरण वगैरा की शिकार नहीं किया जावेगा।

(६) पजूसणा में अगतो पलायो जावेगा।

(७) ई साल की फसल उनाले की लागत का बकरा करीब ३५-४० आवेगा वो सब अमरे करा दिये जावेगा लिहाजा।

हु० नम्बर ७४८

असल रूबकार हाजा कचहरी में भेजकर लिखी जावे के मुन्दरजे सदर कलमों की पाबन्दी पूरे तौर रखने का इन्तजाम करें। और नकल इसकी सूचनार्थ श्रीमान् प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के भेंट स्वरूप भेजी जावे। संवत् १९८४ का ज्येष्ठ विदि ५ शुक्रवार।

नकल हुक्म इजलासी महाराज तेजराजसिंहजी साहब सरकार गेंता ता० ८-१-३६ ई०

श्री राघवजी महाराज

मोहर छाप
गेंता

(सही अँग्रेजी में) नं० ४८७
तेजराजसिंह नकल है

अज इजलास श्री सरकार साहब, गेंता

ता० ८-१-३६

श्री चौथमलजी महाराज के फरमाने के मुआफिक कि श्री महावीर स्वामीजी के जन्म दिन चैत्र सुदी १३ व श्री पार्श्वनाथजी भगवान् जी के जन्म दिन पौष वदी १० को अगता पाला जावे लिहाजा ये बात महाराज की मन्जूर की जाती है।

हुक्म हुआ कि

तामील को कामदारी में जावे। और एक नकल महाराज को भेजी जावे। फक्त

—रामगोपाल
सरिश्तेदार

Page 266

Vol.
No.

NOTICE

Dated Jodhpur, the 18th February 1930.

2309 Sec. 2/7 It is hereby notified for general information that H Highness the Maharaja Sahib Bahadur has been pleased to approve of t suggestion of the Agta Committee in the matter of observance of Agt in the city of Jodhpur, that Agtas should be observed on two of the Paryusha dayr, Viz. Bhadwa Sudi 4th & Bhadwa Sudi 5th and on Janm-Ashtami by bu chers only. They will be paid a sum of Rs. 300/- for the above three Agt (Rs. 100/- per Agta.)

(Sd.) C. J. Windha
Vice President,
State Council Jodhpu

नोटिस

हर खास व आम को जरिये नोटिस हाजा इत्तला दी जाती है कि श्रीजी साहिब ने अगत कमेटी की राय जोधपुर शहर में अगते पालने बाबत मन्जूर फर्माया है। लिहाजा हस्ब जेल हुक्म दिया जाता है कि—

(१) जैन पजूषण पर्व में दो दिन याने भादवा सुदी ४ व भादवा सुदी ५ को अगते पाले जावें।

(२) वैष्णव धर्म के उत्सवों में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन अगता पाला जावे।

ये अगते केवल कसाई लोग पालेंगे और उनको मुआवजा फी अगते १००) रु० के हिसाब से राज्य से दिया जावेगा।

(Sd.) C. J. Windhaw
Vice President,
State Council Jodhpur.

☆

डाई छाप

Raja's Fort
Mainpuri
ता० १६-३-३७

श्री पूज्यवर श्री मुनि चौथमलजी महाराज मेरा प्रणाम स्वीकार हो—

मैं बहुत-बहुत धन्यवाद आपकी कृपा का करता हूँ कि आप कष्ट करके यहाँ पधारे। और उत्तम उपदेश सुनाये जिससे चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। सौभाग्य से आपके दर्शन हुए (बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता) अब आपकी आज्ञानुसार कुछ लेख सेवा में भेज रहा हूँ। उदेपुर व रतलाम के महाराजा लोग स्वतन्त्र हैं, वो कानून अपने यहाँ हर तरह की जारी कर सकते हैं। यहाँ विशेष अधिकार गवर्नमेण्ट का है। यह आपको विदित ही है। जहाँ तक मुमकिन होगा आपके उपदेश के मुआफिक कोशिश की जावेगी। विशेष क्या लिखूँ। कृपा बनाये रखिये।

राजा बहादुर राजा शिवमंगल सिंह

नकल रूबकार इजलास खास राज्य इन्द्रगढ़ वाके २३-१-३६

मोहर छाप
इन्द्रगढ़

(सही अँग्रेजी में)
कामदार इन्द्रगढ़

आज मुनि श्री चौथमलजी का उपदेश कोठी खास पर हमारे सामने हुआ। उसके उपलक्ष में मुनि महाराज की इच्छानुसार साल में दो तिथियों पौष बुदी १० व चैत्र सुदी १३ पर राज्य इन्द्रगढ़ में अगता यानी पशु-वध न किया जाना स्वीकार किया जाता है—

हुक्म हुआ

पुलिस निजामत व तहसील बारह गाँव को इत्तला दी जावे कि इस हुक्म की पाबन्दी होती रहनी चाहिए। एक नकल इसकी मुनि महाराज को दी जावे। कागज दर्ज रजिस्टर मुतफरकात माल होकर दाखिल दफ्तर हो।

(सही अँग्रेजी में)

[आवाराज]

श्री हुजूर की आज्ञानुसार आपको विनम्र सूचना दी जाती है कि आपकी इच्छानुसार चैत्र सुदी १३ को जहाँ तक श्रीमान् आवागढ़ नरेश का प्रभाव चल सकेगा जीवहिंसा रोकने की चेष्टा की जायगी। श्री स्वामी श्री चौथमलजी को विदित हो कि हमारा राज्य जमींदारी है। और हमको कानून बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इसलिए हुक्मन यह आज्ञा जारी नहीं की जा सकती। केवल प्रभाव से ही काम लिया जाना सम्भव है। ता० १-३-३७ ई०

॥ श्री ॥

मोहर छाप
भाटखेड़ी

नम्बर १३
ता० २८-३-३५

जैन सम्प्रदाय के जगत्वल्लभ जैन दिवाकर सुप्रसिद्ध वक्ता पण्डित प्रवर मुनि श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के दर्शनों की मेरे दिल में बहुत अभिलाषा थी। सौभाग्य से महाराज श्री का भाटखेड़ी में तारीख २६-३-३५ को पदार्पण हुआ और कचहरी में आपके दो दिन प्रभावशाली व्याख्यान हुए। उपदेशामृत सुनकर चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ। इसलिये मैं महाराज श्री के भेंट स्वरूप नीचे लिखी प्रतिज्ञाओं के विषय में यह प्रतिज्ञापत्र सादर नजर करता हूँ। इन प्रतिज्ञाओं का पूरी तौर से पालन सदैव होता रहेगा—

(१) इस ग्राम में पहिले से पर्यूषण पर्व व जन्माष्टम्यादि के धार्मिक अगते पाले जाते हैं उसी मुजब सदैव पाले जावेंगे।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से ये दो अगते भी अब आयन्दा सदैव पाले जावेंगे।

सदर प्रमाणे सदैव अमल रहेगा। शुभ मिती चैत्र कृष्णा ८ सं० १९९१ वि०

रावत विजयसिंह
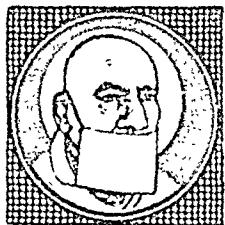
॥ श्री नाथजी ॥ ॥ श्री रामजी ॥

नकल हुक्म

अजतरफ पेशगाह श्रीमान् ठाकुर साहेब सरदारगढ़ मेवाड़ वाके असाढ़ विद ४ ता० ६-६-३६ ई० सं० १९९५

मोहर छाप
सरदारगढ़

आज दिन जैन सम्प्रदाय के मुनिराज श्री चौथमलजी महाराज साहब का व्याख्यान धर्म विषय में किले पर हुआ। भगवान् पार्श्वनाथजी का जन्म पौष विदि १० व भगवान् महावीर स्वामी का जन्म चैत्र सुदि १३ का होने से इन दोनों तिथियों पर अगता रखाने का परवाना रियासत से भी इनको हुआ है और महाराज साहब जब कभी यहाँ पधारें और वापस पधारे उस तारीख को भी अपने अगता रखना स्वीकार किया लिखा।

॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

जगद्वल्लभ जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित रत्न मुनिश्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज साहब का पदार्पण गाँव थाणा (मेवाड़) मिति ज्येष्ठ शुक्ला ४ सोमवार सं० १९९६ को हुआ। उस मौके पर श्रीमान् ठाकुर साहब राजश्री मदनसिंहजी साहब ठिकाना थाणा की तरफ से—

हमारा अहोभाग्य है कि ज्ञानाभ्यासी संतजी का पदार्पण हमारे गाँव में हुआ। आपने निहायत सरल भाषा में उपदेश दिया। आपका उपदेश गोश गुजार होते ही मेरी जनता के ज्ञान की झलक उमड़ उठी और मैंने हस्वजेल प्रतिज्ञा की—

(१) हिरन की शिकार कभी नहीं करूँगा।

(२) हिरन के अलावा भी रोज-सांवर व तीन किस्म के परंदे, पाँच किस्म के जानवरों पर गोली नहीं चलाऊँगा।

(३) मेरे यहाँ होलिका का एहड़ा[1] चढ़ता है सो हमेशा के लिए बन्द कर दिया है।

(४) मेरे भाई जीवनसिंहजी ने भी हमेशा के लिए जीवों का अभय-दान दिया कि अपने हाथ से कभी शिकार नहीं करेंगे।

(५) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से इन तिथियों पर धार्मिक अगते पाले जावेंगे।

(६) नवरात्रि पर सात बकरे देवताओं के चढ़ाये जाते हैं सो अब दो को अभयदान दिया गया सिर्फ पाँच बकरे काम में लाये जावेंगे।

(७) नानालाल धायभाई कामदार ठिकाना थाणा ने भी अपने हाथ से किसी जानवर को न मारने का त्याग किया अलावा इसके कार्तिक वैशाख में मांस का बिल्कुल त्याग किया।

उपरोक्त नियमों की पूरे तौर से पाबन्दी की जावेगी। आयन्दा मुनिराज के यहाँ पधारने पर अगता पलाया जावेगा।

ता० २२-५-३६ ई०

(द०) मदनसिंह थाणा

(द०) नानालाल धाभाई
कामदार ठिकाना थाणा (मेवाड़)

---

१ सौ-पच्चास सशस्त्र मनुष्य इकट्ठे होकर जंगल में जाते हैं वहाँ जिन्हें जो भी जानवर मिला उसे मार कर लाते हैं।

हुक्म

असल वास्ते तामिल कचहरी में भेज लिखा जावे के इन तारीखों को पटे भर अगते रखने की तामील करावें। फक्त.

(द०) ठाकुर साहब का
ता० ६-६-३९

हुक्म कचहरी

नं० २७७

वास्ते तामीलन पोलिस में लिखा जाकर नकल इतलान महाराज साहब चौथमलजी की सेवा में ईरसाल हो सं० १९९५ का असाढ़ विदी ४ ता० ६-६-३९

द० मीरजाअबदुलवेग
ता० ६-६-३९

☆

॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

मोहर छाप
कुंतवास

नं० ५१ रजीस्टर

पटा अज तरफ ठिकाना कुंतवास राजश्री माधोसिंहजी सगतावत (भाणावत) ई० मेवाड़, उदयपुर।

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी आज मिती कुंतवास में पधारना होकर विराजे और व्याख्यान हुवे' और मैं भी सेवा को हाजिर हुआ मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा करता हूँ।

पौष विदि १० श्रीपार्श्वनाथजी भगवान् का जन्म गांठ के दिन सालोसाल अगता पालेंगे। और पट्टा में पलावेंगे।

चैत्र सुदि १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्म गांठ दिन भी अगता पलेगा।

चौमासा में चार महिना सन्त विराजेगा अगता पालेंगे व पट्टा में पलावेंगे।

श्री महाराज साहब को पधारवो होवेगा और पाछो पधारवो होवेगा दोई दिन अगता पाला जावेगा।

अधिक महिना में हिंसा नहीं की जावेगा और कोई करेगा तो रोक कर दी जावेगा रोक रहेगा।

छोटा जानवर जो बच्चा है नहीं मारा जावेगा और दूसरों को भी पट्टा में नहीं मारने दिया जावेगा।

ऊपर लिखा कलमवार सही साबत रहेगा यह पट्टा लिख मुनि महाराज के सेवा में पेश हो सनद रहे। सं० १९९६ पौष सुदि ९ गुरुवार।

(द०) कामदार ठि० कुंतवास
श्री रावला हुकम से

☆

॥ श्री गोपालजी ॥ ॥ श्री रामजी ॥

नम्बर ११

द० महाराज मानसिंह

मोहर छाप
भीण्डर

सिद्ध श्री महाराजाधिराज महाराज श्री मानसिंहजी भीण्डर (मेवाड़) वचनातु जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आज महासुद १ शुक्रवार सम्वत् १९९६ तदनुसार तारीख ९ फरवरी सन् १९४० ई० को वाड़ी महलों में जीव दयादि अनेक विषयों पर व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव मेरे पर तथा मेरी जनता पर अच्छा पड़ा। मुझको महाराज का उपदेश बहुत प्रिय लगा। और व्याख्यान से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) इन महाराज के आगमन तथा प्रस्थान के दिन भीण्डर में आमतौर से सदैव अगता रखाया जावेगा।

(२) सिंह, चीता तथा सूअर के अतिरिक्त किसी जीव की हिंसा मैं नहीं करूंगा।

(३) चैत सुदि १३ जो श्री महावीर स्वामी का जन्म दिवस है और पौष विदि १० जो श्रीपार्श्वनाथ स्वामी का जन्म दिन है इन दोनों दिनों सदैव आम अगता रखाया जावेगा।

(४) आपके भीण्डर पधारने तथा विहार करने के दिन अमर्‌या कराया जावेगा।

(५) अधिक मास (पुरुषोत्तम मास) के अवसर पर तमाम महिना खटीकों की दुकानें बन्द रहेंगी।

उपरोक्त प्रतिज्ञाओं की पाबन्दी रहेगी।

सम्वत् १९९६ का महा सुद १ शुक्रवार ता० ९-२-४० ई०

(द०) जगन्नाथसिंह चौहान का श्री हुजूर का हुक्म से लिख्यो

॥श्री रामजी॥

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज खोड़ीप से नकूम पधारते थे बीच में भिडाणा (टोंक स्टेट) में १५ उपदेश होने से मेरे और मेरी रियाया पर बहुत अच्छा उपदेश का असर पड़ा जिस पर नीचे लिखी बातों पर पाबन्द रहेंगे :

(१) गांव भिडाणे में जीवहिंसा नहीं करूंगा औरों को भी जीवहिंसा नहीं करने दूंगा।

(२) शराब नहीं पीऊँगा।

(३) श्रावण में लिलोती नहीं खाऊँगा।

(४) श्रावण, कातिक, वैशाख इन महिनों में शिकार नहीं खाऊँगा।

(५) कुंवर हिम्मतसिंहजी साहब भी श्रावण, कातिक, वैशाख महिनों में जीवहिंसा नहीं करेंगे, शराब नहीं पीयेंगे श्रावण में लिलोती नहीं खाएंगे। एक दिन की छूट और पंखेरू जानवर की शिकार नहीं करेंगे।

इस प्रकार की पाबन्दी होती रहेगी। सं० १९९६ फागुण सुदी ८।

द० दीपसिंह का

द० कुं० हिम्मतसिंह का

द० चौ० नन्दलाल नलवाया का ठाकुर साहब व
कुंवर साहब का हुक्म से लिखा।
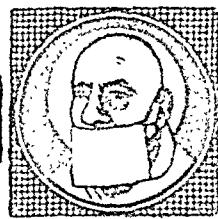
सिद्धश्री जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज हमारे गाँव बडोली पधारे। जिनके उपदेश सुनने से इस मुजब प्रतिज्ञा कि—

(१) हमारी कुलदेवी के नवरात्रि में कोई जीव हिंसा नहीं करांगा वलिक किसी भी दिन विलकुल बन्द रहेगा।

(२) हमारी तरफ से जानकर शिकार नहीं खेलेंगे। राजगत देवगत दूसरा का हुक्म की वात अलग है।

यह प्रतिज्ञा मैं व कुंवरजी भूपालसिंहजी करते हैं वह आपके भेंट रूप में है। सं० १९९६ का फागण सुदि १०।

द० पृथ्वीसिंह का

द० कुं० भोपालसिंह का

द० केसरीमल पटवारी गलुण्डवाला का ठाकुर साहव पृथ्वीसिंहजी कुंवर साहव भूपालसिंहजी का केवा से लिखा।

॥श्री एकलिंगजी॥

मोहर छाप
विनोता (टोंक स्टेट)

॥श्रीरामजी॥

नम्बर ८

सिद्ध श्री महाराजाधिराज महारावतजी साहेव श्रीमदनसिंहजी राजस्थान ठिकाना विनोता वचनातु।

जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आज फाल्गुन सुदि ६ शुक्रवार संवत् १९९६ तदनुसार तारीख १५ मार्च सन् १९४० ई० को जीव-दयादि अनेक विषय पर व्याख्यान हुआ जिसका प्रभाव मेरे पर तथा मेरी जनता पर अच्छा पड़ा मुझको महाराज का उपदेश बहुत प्रिय लगा और व्याख्यान से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आगमन तथा प्रस्थान के दिन विनोते में आम-तौर से अगता रखाया जावेगा।

(२) भादवा विदि ११ से सुदि १५ तक पर्यूषणों के दिनों में व श्राद्ध-पक्ष में कसावी दुकान का अगता रखाया जावेगा।

(३) पोष विदि १० जो श्रीपार्श्वनाथ स्वामी का जन्म दिन है और चैत्र सुदि १३ जो महावीर स्वामी का जन्म दिन है। इन दोनों दिन अगता रखाया जायगा।

(४) नवरात्रि के दिनों में ८ आठ वकरा और एक पाड़ा वलिदान होता है। उसमें से तीन बकरे कमी कर दिये गये।

(५) तेहवा तथा सुअर के अलावा जहाँ तक हो सकेगा जीव हिंसा मैं नहीं करूँगा।

राजगत देवगत के अलावा उपरोक्त प्रतिज्ञाओं की पाबंदी रहेगी। फक्त १५-३-१९४० मिति फागुण सुदि ६ सं १९९६।

द० मुसलमान पटवारी का श्रीजी हुजूर का हुक्म से।
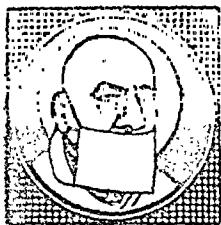
॥ श्री गोपालजी ॥

॥ श्री रामजी ॥

(द०) नहारसिंह का
(द०) कुंवर दौलतसिंह का

सिद्ध श्री ठाकुर साहेब श्री नहारसिंहजी कुंवर साहेब श्री दौलतसिंहजी करसाणा (टोंक) का वचनासुं—

जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आज महा सुदि ६ शनिवार संवत् १९९६ तदनुसार तारीख १७ फरवरी सन् १९४० ई० को रावले में जीव-दया आदि अनेक विषयों पर व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव मेरे तथा मेरी जनता पर अच्छा पड़ा। मुझको महाराज का उपदेश बहुत प्रिय लगा और व्याख्यान से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) इन महाराज के आगमन तथा प्रस्थान के दिन अगता रखाया जायगा और १३ तेरा बकरा अमर्‌या किया जावेगा।

(२) ग्यारस, अमावस के दिन बैल नहीं जोतने दिए जाएँगे व शिकार नहीं करेंगे, खटीकों की दुकान भी बन्द रहेगी।

(३) हमारे गाँव में नवरात्रि के दिनों में माताजी फुलबाई, लालबाई, चावंडाजी, शीतलाजी आदि के स्थान पर जीव हिंसा नहीं होगी; जब तक हमारा वंश रहेगां वहाँ तक पालन होगा।

(४) पर्यूषण पर्व में ८ आठों ही दिन अगता रहेगा मय खटीकों की दुकानें सहित।

(५) श्राद्ध-पक्षों में अगता रहेगा।

(६) ठाकुर साहेब व कुंवर साहेब झटके से जानवर नहीं मारेंगे।

(७) और हमारे गाँव में कोई भी जानवर व बैल वगैरह खसी नहीं करेंगे।

उपरोक्त प्रतिज्ञाओं की पाबन्दी हमेशा के लिए रहेगी। संवत् १९९६ का महा सुदि ६ शनिवार ता० १७-२-४० ई०

(द०) भैरूलाल मेहता का ठाकुर साहेब कुंवर साहेब तथा माँ साहेब के हुक्म से लिखा।

(द०) राणावत प्रतापसिंह

॥श्री परमेश्वरजी॥

द० कारुसिंह का

जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में ठाकुर कारुसिंहजी वामणियावाला की तरफ से नमस्कार मालूम होवे और अर्ज करे कि आज ता० २४-३-४० मिति चैत्र विदि २ सं० १९९६ के रोज आपके व्याख्यान सुने जिससे नीचे मुजब नियम धारण किया—

(१) नवरात्रि में जो जीव हिंसा होवे है ठीकाणा तथा दीगर जगा सो अब आयन्दा होगा नहीं—

(२) मैं अपने हाथ से कोई शिकार करूंगा नहीं।

यह पत्र मुनि श्री की सेवा में भेंट कर देवे सं० १९९६ चैत्र विदि २

द० सौभागमल जावरावाला

॥श्री॥

जावक नम्बर

७६०—११।४।४०

अज ठिकाना अठाना

मोहर छाप
अठाणा रि. ग्वालियर
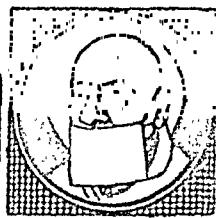
पट्टा

श्रीमान् स्वामिजी चौथमलजी साहब की सेवा में !

आज आपने कृपा करके अठाना पधारे और धर्मोपदेश सुनाया उससे हम बहुत प्रसन्न हुवे व इसी सिलसिले में आपने हमको यह उपदेश दिया कि आपकी जानिब से पौष विदि १० व चैत्र सुदि १३ को हिंसा न होना चाहिए यानी कोई जानवर वगैरह का शिकार या इस किस्म की दूकान न हो इसकी पाबन्दी रक्खी जावे तो बेहतर होगा। चुनांचे हस्ब फरमाने आपके आपकी आज्ञानुसार पाबन्दी रक्खी जावेगी लिहाजा यह पट्टा सेवा में पेश किया जाता है। ता—११-४-४०

हेड क्लार्क

सही अंग्रेजी में
सरदार रावत विजयसिंह ठिकानेदार
ठिकाना अठाना, ग्वालियर स्टेट
सही अंग्रेजी में
नायब कामदार

क्लार्क

॥ श्री एकलिंगजी ॥ ॥ श्री रामजी ॥

नम्बर ३६

पट्टा अजतरफ ठिकाना सीहाड़ राजे श्री भूपालसिंहजी
सक्तावत (असलावत) ई० मेवाड़—रा० उदयपुर

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी आज मिति सीहाड़ में पधारना होकर विराजें और व्याख्यान हुवे और मैं भी सेवा में हाजिर हुआ। मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा करता हूँ।

पौष विदि १० श्री पार्श्वनाथजी भगवान् की जन्म गाँठ के दिन सालोसाल अगता पलावेंगे और प्रगना में पलावेंगे।

चैत्र सुदि १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्म उस दिन भी अगता पलावेंगे।

चौमासा में चार महिना संत विराजेगा अगता पलावेंगे व प्रगना में पलावेंगे।

श्री महाराज साहेब को पधारवो होवेगा और पाछो पधारवो होवेगा दोई दिन अगता पाला जावेगा।

अधिक मास में हिंसा नहीं की जावेगा और कोई करेगा तो रोक कर दी जावेगा सो रोक रहेगा।

छोटा जानवर जो बच्चा है; नहीं मार्‌या जावेगा और दूसरे को भी पट्टा में नहीं मारने दिया जावेगा।

ऊपर लिख्या कलम वार सही साबत रहेगा। यह पट्टा लिख मुनि श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में पेश हो सनद रहे। सं० १९९६ का महा वदि ७ बुधवार।

(द०) खुमानसिंह सक्तावत श्री रावला हुक्म से लिखा।

॥ श्रीचतुर्भुजजी ॥ ॥श्रीरामजी॥

सही
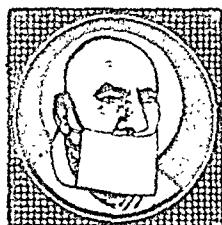
द० म० नहारसिंह

सिद्धश्री महाराज श्रीनहारसिंहजी वचनातु। जैनधर्म सम्प्रदाय के मुकटमणि आचार्य कुल कमल दिवाकर श्री पूज्यजी महाराज श्री श्री १०८ श्रीचौथमलजी साहब को पदार्पण शुभ मिति वैषाख विद १४ सं० १९९७ मारे गाँव मँगरोप में हुवो और धर्मोपदेश व्याख्यान गढ़ में हुवो जिसं मारा व जनता पर बहुत आच्छो प्रभाव पड्यो। मारी तरफ सूं नीचे लिख्या प्रमाणे धर्म पलाय जावेगा।

(१) वैषाख सुद १५ पूर्णिमा ही से हर पूर्णिमा को मैं व्रत कर एक वक्त भोजन करूँगा श्रीभगवान के गुणानुवाद की अमृतरूपी कथा श्रवण होगी।

(२) नवरात्रि में हमेशा से गढ़ पर माताजी के १ भैंसे का बलिदान होता है सो अब कतई बन्द रहेगा।

(३) एक माह में ५ रोज हमेशा हर माह के लिए शिकार खेलना, खाना, मदिरा-पान करना बिलकुल बन्द रहेगा।

(४) चैत्र सुदि १३ भगवान् महावीर के जन्म दिन और पौष विदि १० भगवान् पार्श्वनाथजी के जन्म दिन का पट्टे के सभी गाँवों में अगता रहेगा।

(५) पूज्यवर श्रीचौथमलजी महाराज के इस गाँव में आगमन और प्रस्थान के दिन का भी अगता रहेगा।

इस मुजब धर्म की पाबन्दी रहेगी। ॐ शांतिः शांतिः

सं० १९९७ वैशाख शुक्ला १ ता० ८-५-१९४० ई०

श्री रावला हुक्म से

केसरीलाल ओजा कामदार ठिकाना

॥श्री एकलिंगजी॥ ॥श्रीरामजी॥

मोजा वड़ोदा

पट्टे विजयपुर (मेवाड़)

श्रीमान् जैन दिवाकर स्वामिजी साहब श्री १०८ श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में।

आज आप घटावली पधारे व धर्मोपदेश सुनाया इससे बड़ी खुशी हुई। इस सिलसिले में पौष विदि १० श्रीपार्श्वनाथजी का जन्म दिन और चैत्र सुदि १३ श्रीमहावीर स्वामी का जन्म दिन होने से दोनों दिन किसी किस्म की हिंसा न होगी अगता रखा जायगा। और हो सका तो नवरात्रि में भी बलिदान की बजाय अमर्‌या कर देंगे। यह पट्टा सेवा में नजर है। सं० १९९६ चैत्र सुदि ७ ता० १४-४-४०

द० रतनसिंह शक्तावत

।।श्री एकलिंगजी।। ।।श्रीरामजी।।

श्रीमान् जैन दिवाकर स्वामिजी महाराज श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में।

आज आप कृपा करके घटावली पधारे और धर्मोपदेश सुनाया इससे हम बहुत प्रसन्न हुए व इसी सिलसिले में आपकी जानिव से मिति पौष विदि १० श्रीपार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिन होने से और चैत्र सुदि १३ श्री महावीर स्वामी का जन्म दिन होने से दोनों दिन किसी किस्म की हिंसा न होगी और अगता रखवाया जायगा। लिहाजा यह पट्टा सेवा में पेश है। सं० १९९६ चैत्र सुदि ७ ता० १४-४-४०

(द०) जगमालका ठिकाना घटावली

।।श्री एकलिंगजी।।श्री रामजी।।

द० लालखाँ का भालोट

सिद्धश्री ठाकुर साहब श्री लालखानजी श्री कुंवर साहब सुलतानखाँजी गाँव भालोट रियासत उदयपुर का वचनात नीचे लिखी कलमवार हरसाल के वास्ते है।

जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता श्री चौथमलजी महाराज का आज दिन फागुन सुदि ६ शुक्रवार सं० १९९६ तदनुसार तारीख १५ मार्च सन् १९४० ई० को गाँव बिनोते में व्याख्यान में ९ बजे पट्टा भेंट किया नीचे मुजब।

(१) मेरा गाँव में पधारवो वेगा जीदिन अगतो पारागा जावेगा।

(२) दो ग्यारस एक अमावस महिना में तीन दिन गाड़ी चलावागा नहीं।

(३) मारा जीवसुं कोई शिकार कर जानवर मारूँ नहीं और को भी मारने के लिए कहूँगा नहीं।

(४) और महिना में दो ग्यारस एक अमावस मारा हिम में जीव हिंसा होवा देवागा नहीं।

(५) पजूसण व श्राद्ध में कोई जीव हिंसा होवा देवागा नहीं गाँव में।

(६) गांव में नोरता में कोई बलिदान देवता के देवागा नहीं।

(७) मारा जीव के वास्ते चवदस आठम कोई लिलोती हरि वस्तु खाऊँगा नहीं।

(८) मारा जीवसुं श्रावण महिना में कोई शिकार खाऊँगा नहीं।

(९) पौष विदि १० चैत्र सुदि १३ दोई दिन मारा गांव में जीव हिंसा होवा देवागा नहीं।

ऊपर लिखी कलम नोई नजर कीधी सो मुं और मारी बस्ती का कुल इण पर पावन्दी से रहेगा। संवत् १९९६ फागुन सुदि ६।

द० नानालाल बोड़वत का ठाकुर साहब लालखानजी साहब व गाँव का पटेल पंचाका केवासुं लिखा।

✡
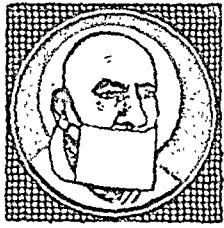
॥ श्री एकलिंगजी ॥ ॥ श्री रामजी ॥

नम्बर ३४

सिद्ध श्री राज श्री प्रतापसिंहजी ठीकाना जलोदा मेवाड़ वचनातु जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज का फाल्गुन सुदि १ सं० १९९६ दितवार तदनुसार ता० १० मार्च सन् १९४० ईस्वी को ठिकाने जलोदा में जीवदयादि अनेक विषयों पर व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव मेरे पर तथा मेरी जनता पर अच्छा पड़ा। मुझको श्री मुनिराज महाराज का उपदेश बहुत प्रिय लगा और व्याख्यान से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि–

(१) इन श्री मुनि महाराज के आगमन तथा प्रस्थान के दिन जलोदे में अगता रखाया जावेगा।

(२) श्राद्ध पक्ष में, पर्युषणों में व हर माह की ग्यारस, अमावस बीज, बारस, चारों सोमवार को अगता रखाया जायगा।

(३) भंवर बापु मानसिंह के जन्म गांठ पर बकरा अमर्या होगा एक साल का।

(४) चैत्र सुदि १३ जो श्री महावीर स्वामीजी का जन्मदिवस है और पौष विदि १० जो श्री पार्श्वनाथजी भगवान् का जन्म दिवस है सो इन दोनों माह की तिथि की याददास्ती ओसवाल जैन आकर ठिकाने में दिलाता रहेगा तो अगता पाला जावेगा।

ऊपर लिखे मुजब अगता की पावन्दी रखावांगा सं० १९९६ का मिति फागन सुदि ३ मंगलवार। (द०) मंगलसिंह कामदार ठिकाना जलोदा श्री रा० हु० से

॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥

मोहर छाप
खेजड़ला (मारवाड़)

ठाकुर सा राज श्री १०५ श्री भैरुसिंहजी ठिकाणा खेजड़ला परगना विलाड़ा (मारवाड़) मारा खास ठिकाणा में व पट्टारा गाँवों में चैत्र सुदि १३ व पौष विदि १० ने जीव हिंसारो अगतो रहसी। श्री १०५ श्री चौथमलजी महाराजरो उपदेश सुणियो जिणसु में सावण, भादवा में शिकार करसूं नहीं ने पट्टारा गाँव में भी जीव हिंसा होवण देसा नहीं ने महाराजरो पधार नो ठिकाणा में तथा पट्टारा गाँव में होसी उण दिन जीव हिंसा होसी नहीं। सम्वत् १९९७ रा काति सुद ४ रविवार ता० ३-११-४०। दस्तकत—मुथा करणराजरा छे श्री ठाकुर साहेब के हुक्म सु

(Sd.) Bhairu Singh, 3-11-40

॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥

मोहर छाप
साथीण (मारवाड़)

ठाकुर सा राज श्री १०४ श्री कालुसिंहजी ठिकाणा साथीण परगणा विलाड़ा (मारवाड़) मारे खास ठिकाणा साथीण व पट्टे के गाँव में चैत्र सुदि १३ व पौष विदि १० ने जीव हिंसा होसी नहीं अगता रहसी। श्री श्री १०५ श्री चौथमलजी महाराजरो उपदेश सुण्या जिणसु श्रावण, भाद्रवा में शिकार करसूं नहीं ने महाराज रो पधारनो ठिकाना में तथा पट्टारा गाँवों में होसी उणदिन जीव हिंसा होसी नहीं। सम्वत् १९९७ रा कार्ती सुद ४ रविवार ता० ३-११-४०।

दस्तकत—मुथा करणराजरा छे। श्री ठाकुर साहेब के हुक्म सु। (Sd.) Kalu Singh 3-11-40

॥ श्री ॥ श्री चारभुजाजी ॥ ॥ श्री करनीजी ॥

मोहर छाप
सीरियारी (मारवाड़)

नकल नम्बर ३४ सं० १९९६

स्वरूप श्री ठाकुरा राजश्री नाथूसिहजी कुंवरजी श्री खंगारसिंह जी लिखावता जैन स्वामीजी श्री चौथमलजी रो आगमन सीरियारी में हुवो तिणमुं कर अगता राखणा मंजूर किना पजूषणा में वैठता पजूषणा ने छमछरी जुमले दिन २ दोय तो पजूषणा में व स्वामीजी श्री चौथमलजी रो आगमन सीरियारी में होसी उण दिन ने वापिस विहार होसी उण दिन अगता राखिया जावसी । अगता अठे रेवे जिण माफिक राखिया जावेला । फक्त ता० १३ जून सन् १९४० मुताविक मिति ज्येष्ठ सुदि ६ संवत् १९९६ ।

द० गुमानसिंह
कामदार ठिकाना सीरियारी

☆

॥ श्री ॥
श्रीचारभुजाजी

[ठिकाना श्री बगड़ी टीकायत, जोधपुर स्टेट]

मोहर छाप
ठि० बगड़ी (मारवाड़)

स्वारूप श्री ठाकुर साहेव श्री भैरुसिहजी साहेव श्री सज्जनसिंहजी साहेव वचनायत जैन स्वामीजी श्री १०५ श्री चौथमलजी महाराज का आगमन जोधपुर में सं० १९९७ के चातुर्मास में हुआ और मैंने भी व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजब प्रतिज्ञा की है ।

(१) श्रावण मास में किसी जानवर की शिकार नहीं करूँगा और मेरे पट्टे के गाँवों में इस माह में कोई शिकार नहीं कर सकेगा ।

(२) पौष विदि १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँवों में कोई जीव हिंसा नहीं होगी ।

(३) चैत्र सुदि १३ को श्री महावीर भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँवों में कोई जीव हिंसा नहीं होगी ।

(४) भादवा सुदि १४ अनन्त चतुर्दशी का अगता पाला जावेगा ।

(५) श्री पूज्य स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गाँवों में आगमन और विहार होगा तब आगमन और विहार के दो अगते पाले जावेंगे ।

(६) पजूसनों में मेरे पट्टे के गाँवों में शिकार वगैरह व घाणी वगैरह चलाना विलकुल वन्द रहेगा व कसाई अपना पेशा नहीं करेंगे ।

उपरोक्त प्रतिज्ञा का सदैव के लिये पालन किया जावेगा ।[1]

संवत् १९९७ रा पौष विदि २ ता० १६ दिसम्बर सन् १९४०

(सही) भैरूसिह
ठाकुर साहव

---

१ **नोट**—उपरोक्त वातें मेरे पट्टे के गाँव चौकड़ी में पाली जायगी क्योंकि मैं वहीं रहता हूँ ।
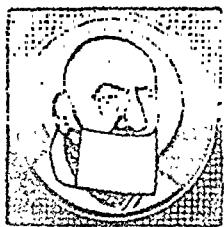
॥श्री नरसिंहजी॥ ॥श्री रामजी॥

सही

सिद्धश्री महाराज श्री शम्भूसिंहजी राजस्थान ठिकाना गुरला वचनातु।

श्री जैन सम्प्रदाय के पूज्यजी महाराज साहब श्री चौथमलजी साहब को पधारवो वैशाख सुदि १३ को हुआ व १४ दोई दिन व्याख्यान हुआ। जिपर मारी तरफ से त्याग किया जिरी तफसील—

(१) महाराज साहब श्री चौथमलजी बाईस सम्प्रदाय का पधारे व जावे दोई दिन जीव हिंसा नहीं होगी।

(२) श्रावण में शिकार नहीं खेलूंगा और न करूंगा। कार्तिक वैशाख में भी शिकार नहीं करूँगा। हिंसक पशु की बात अलग है।

(३) भादवा में पजूषण में जीव नहीं मारेंगे।

(४) परस्त्रीगमन के कतई त्याग।

(५) बारा महिना में दो बकरा अमरिया कराऊँगा।

(६) मैं अपनी जान में तालाब में मच्छी नहीं मारने दूंगा।

(७) पौष विधि १० व चैत्र सुदि १३ दो दिन जीव हिंसा नहीं करांगा।

(८) दशराया के दिन इस साल के लिए एक पाड़ो अमरियो करायो जावेगा।

(९) वैशाख श्रावण व कार्तिक में कोई देवी-देवता के पाड़ो बकरो नहीं मरेगा।

ऊपर लिखे मुजब अगता रख्या जावेगा। और ये सब सौगन्ध मारे लिए है यानि इमें लिख्या हुआ ने निभावणो मारी ही मोजूदगी तक है। संवत् १९९६ का वैशाख सुदि १४।

द० शम्भूसिंह

वही पाने २२-२३

मोहर छाप
गारासणी (मारवाड़)

स्वरूप श्री सर्वगुण निधान अनेक औपमा परम पूज्य श्री श्री १००८ श्री श्री जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता श्री श्री चौथमलजी महाराज साहेब की सेवा में अरज १ गाराणसी ठाकुर राठोर भीमसिंह शिवदान सीधोतरी मालुम होवे कि आपके व्याख्यान-उपदेश से मैंने अपनी खुस हो हस्वजेल प्रतिज्ञा की है जिसमें मैं और मेरी ओलाद पाबन्द रेवेगा।

(१) पौष विदि १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिन होने से मेरे पट्टे के गाँव में कोई शिकार नहीं होगी और अगता पाला जावेगा।

(२) चैत्र सुदि १३ को श्री महावीर भगवान् का जन्म दिवस होने से उपर मुजब अगता रहेगा।

(३) मेरे गाँव पजूसणां में शिकार और अगतो बहुत वर्षों से पाले जाते हैं उस मुआफिक ही बदसतुर हमेशा पाले जावेंगे।

(४) श्री पूज्यजी महाराज का पधारना मेरे गाँव होगा उस रोज और विहार होगा उस रोज अगता पाला जावेगा। सं० १९९७ रा मिती काती सुद १५ द्वितीया ता० १५-११-४०।

(सही) भीमसिंह ठाकुर
ठिकाना गारासणी

॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥
॥ श्री मुरलीधरजी ॥

मोहर छाप
चण्डावल (मारवाड़)

स्वस्ति श्री राव बहादुरजी ठाकुर साहब राजश्री गिरधारी-सिंहजी साहब कुंवरजी साहब श्री भोपालसिंहजी साहब वचनात लिखतं।

जैन स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज रो आगमन राणावास में संवत् १९९६ रा ज्येष्ठ सुदि ९ ने हुवो ने श्रीमान् राव बहादुरजी साहब ने श्री भंवरजी साहब गोविन्दसिंहजी साहब ने व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना तिणसुं श्रीमान् खुश होय इण मुजब अगता पलावण रो हुक्म फरमाया है सो चण्डावल पट्टा-रा गाँव अगता नीचे मुजब पलसी।

२ जैन पजूषणा में १ बैठता व १ छमछरी।

१ पौष विदि १० श्री पार्श्वनाथजी भगवान्‌जीरे जन्म दिवस ने।

१ चैत्र सुदि १३ श्री महावीर स्वामीजी भगवान्‌रो जन्म दिवस ने।

२ पूज्य महाराज श्री चौथमलजी रो आगमन व विहार जिण गांवा में होसी जद अगता पलसी।

६ उपर लिखिया हुवा दिनारा अगता इण मुजब पलसी।

१ शिकार व कसाईखाना बन्द रेसी। १ धाणियां अगता में बन्द रेसी।

१ कुम्हारा-रा नीवाव अगता में बन्द रेसी।

१ कन्दोईरी भट्टियाँ भी बन्द रेसी व गाड़ोलिया लुवार वगैरारी आरण बन्द रेसी।

उपर लिखिया मुजब अगता सदा बन्द पलसी। सं० १९९६ रा ज्येष्ठ सुदि ११ निरजला एकादशी वार सूरज ता० १५-५-४० द० चांदमल रा छे श्री राव बहादुरजी साहब रा हुक्म से।

भारतसिंह—कामदार ठिकाना श्री चण्डावल मुकाम राणावास

॥ श्री ॥

मोहर छाप
काणाणा (मारवाड़)

स्वारूप की ठाकुरां राजश्री साहब श्री विजयकरणसिंहजी साहब कुंवर साहब श्री शिवकरणसिंहजी वचनायत जैन स्वामी श्री १०५ श्री श्री चौथमलजी महाराज का आगमन काणाणा में संवत् १९९७ रा के फाल्गुन कृष्णा १० को यहाँ पर पधारना हुआ। व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजब प्रतिज्ञा की है।

१. श्रावण मास में किसी जानवर की शिकार नहीं करूँगा और मेरे पट्टे के गांवों में इस माह में कोई शिकार नहीं कर सकेगा।

२. पौष कृष्णा १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गांवों में कोई जीव हिंसा न होगी।

३. चैत्र शुक्ला १२ की श्री महावीर भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गांवों में जीव हिंसा नहीं होगी।

४. भाद्रव शुक्ला १४ को अनन्त चतुर्दशी का अगता पाला जावेगा।

५. श्री पूज्य स्वामी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गांवों में आगमन और विहार के दिन अगते पाले जावेंगे।

(सही) विजयकरणसिंह ठि० काणाणा
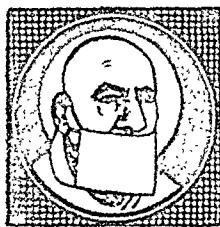
॥ श्री ॥

मोहर छाप
सराणा (मारवाड़)

स्वारूप श्री ठाकुरां राजश्री सरदारसिंहजी साहव कुंवर साहेब श्री जोरावरसिंहजी वचनायत जैन स्वामी श्री १०५ श्री चौथमलजी महाराज का आगमन काणाणा में संवत् १९९७ फागुण वदि १० को यहाँ पधारना हुआ। व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजब प्रतिज्ञा की है।

१. श्रावण मास में किसी जानवर की शिकार नहीं करूँगा और मेरे पट्टे के गांव में इस माह में कोई शिकार नहीं कर सकेगा।

२. भाद्रव वदि ८ शुक्ला १३-१४-१५ अगता पाला जावेगा।

३. काती विदि ३० पौष विदि १० की श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँवों में कोई जीव हिंसा नहीं होगी।

४. चैत्र सुदि १३ को श्री महावीर भगवान् का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गांवों में जीव हिंसा नहीं होगी।

५. श्री पूज्य स्वामी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गांवों में आगमन और विहार के दिनों अगते पाले जावेंगे।

उपरोक्त प्रतिज्ञा सदैव के लिए पाली जायगी।

सं० १९९७ रा फागुण विदि १० ता० २१।२।४१ (सही) सरदारसिंह

☆

श्री मुकन्दजी सहाय छे

॥ श्री ॥

रजिस्टर नं० ४५।३९-४०

मोहर छाप
रोहीट (मारवाड़)

स्वारूप श्रीमान् राव बहादुर करनल ठाकुर साहेब राज १०८ श्री दलपतसिंहजी साहेब कंवरजी श्री १०५ श्री विक्रमसिंहजी साहेब वचनातु जैन स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराजरो आगमन तारीख १-७-४० ने रोहाट खास में हुवो और इणरो धर्म उपदेशरो व्याख्यान सब सरदारों ने सुणायो जिस सुं सब सरदारों ने व पब्लिक ने बड़ी भारी खुशी हुई जिण पर श्रीमान् राव बहादुर साहेब ने हस्ब-जेल अगता अपना ठिकाना में नियुक्त करणरो फरमायो है।

(१) जैन पजूसण बैठता दिन और छमछरी दिन।

(२) पौष विदि १० ने।   (३) चैत्र सुदि १३ ने।

(४) पूज्य महाराज श्री चौथमलजी रण गांव में आगमन व विहार कराव उन दोनों दिन अगता पलावेंगे।

ऊपर मुजब दिनेंरा अगता पट्टा मट्टा भर में पालिया जावसी और शिकार वगैरा भी ऊपर मुजब अगता में करावसी नहीं। सं० १९९६ रा आषाढ़ विदि १२ मंगलवार ता० २-६-४०

द० शिवप्रसाद श्री रावला हुक्मसुं लिखियो छे
भागीरथजी ओज्झा, कामदार ठिकाना रोहट, (मारवाड़)

☆

॥ श्री ॥ ॥ श्री गुरुदेवायनमः ॥

स्वारूप श्री ठाकुर साहब राज श्री सवाईसिंहजी साहब वचनातु जैन स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज रो आगमन आज चोटीले हुवो संवत् १९९६ विक्रम मिति आषाढ़ विदि १० वार रवि ता० ३०–६–४० को श्रीमान् ठाकुर साहब सवाईसिंहजी ने धर्म उपदेश सुणियो तिणसुं श्रीमान् खुश होकर अगता पालना व पलावणा को हुक्म फरमायो है सो चोटोलारे गाँव में नीचे मुजब अगता पलसी—

(१) खुद ठाकुर साहब ग्यारस, अमावस, पुनम ने शिकार नहीं करसी।

(२) आम गाँव में चैत्र सुदि १३ ज्येष्ठ सुदि ११ भाद्रव विदि ८ पौष विदि १० शिकार, कसाई खानों, घाणियां, कुमारां का निवाव, आरण और कंदोइयां की भटियों वंद रेसी।

ऊपर लिखिया मुजब अगता सदा वंद पलसी। सं० १९९६ विक्रम आषाढ़ विदि १० रविवार ता० ३०-६-४०।

द० सवाईसिंह ✡

॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥

॥ श्री आदिनाथजी ॥

मोहर छाप

स्वारूप श्री महाराज साहेब श्री विजयसिंहजी साहब महाराज कुमार साहेब श्री रणवहादुरसिंहजी साहेब वचनायत जैन स्वामीजी श्री १०५ श्री श्री चौथमलजी महाराज का आगमन जोधपुर में सं० १९९७ के चातुर्मास में हुआ और मैंने व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजब प्रतिज्ञा की है।

(१) श्रावण मास में किसी जानवर की शिकार नहीं करूँगा और मेरे पट्टे के गाँवों में इस माह में कोई शिकार नहीं कर सकेगा।

(२) पौष विदि १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान् का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँव में कोई जीव हिंसा न होगी।

(३) चैत्र सुदि १३ को श्री महावीर भगवान् का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँवों में जीव हिंसा नहीं होगी।

(४) भाद्रव सुदि १४ अनन्त चतुर्दशी का अगता पाला जावेगा।

(५) श्री पूज्य स्वामी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गाँवों में आगमन और विहार होगा तब आगमन और विहार के दोनों अगते पाले जावेंगे।

उपरोक्त प्रतिज्ञा का सदैव के लिये पालन किया जावेगा। सं० १९९७ रा आसोज सुदि ५ ता० ६ अक्टूबर सन् १९४० ई०

—विजयसिंह महाराज साहेब

✡

संवत् १९९८ के चैत्र में जैन दिवाकरजी आहोर पधारे। कामदार साहेब एवं जोधपुर के जज शंभुनाथजी साहेब ने मुनि श्री का पब्लीक व्याख्यान कराया। आहोर ठाकुर साहेब उस समय वहाँ नहीं विराज रहे थे। जोधपुर थे। वहाँ से ठाकुर साहेब का सन्देश आया कि मैं जैन दिवाकरजी के उपदेश का लाभ नहीं ले सका इसका मुझे दुःख है। यहाँ आवश्यकीय कार्य होने से रुका हुआ हूँ, नहीं तो अवश्य वह इस समय आता आदि आदि—

मुनिश्री को आहोर ठाकुर साहेब ने भेंट स्वरूप में जीवदया का पट्टा लिख कर भेजा।

वहाँ से विहार कर जैन दिवाकरजी चण्डावल पधारे। चण्डावल ठाकुर साहेब ने एवं

कुंवर साहेब ने मुनिश्री का उपदेश श्रवण कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और भेंट स्वरूप में एक जीव दया का पट्टा कर देने का अभिवचन दिया।

वहाँ से जैन दिवाकरजी बूसी (मारवाड़) पधारे। ठाकुर साहेब ने उपदेश श्रवण का लाभ लिया और जीव दया का एक पट्टा कर देने का अभिवचन दिया।

वहाँ से मुनिश्री विहार कर संवत् १९९८ के चैत्र शुक्ला में बगड़ी सज्जनपुर (मारवाड़) पधारे। वहाँ के जागीरदार कुंवर साहेब ने दो वार उपदेश श्रवण का लाभ लिया और उस उपदेश से बहुत प्रसन्न हुए भेंट स्वरूप में एक जीव दया का पट्टा किया। ✡

॥ श्री ॥   **॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥**   ॥श्री मुकंद जी॥

मोहर छाप
आहोर (मारवाड़)

श्री जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता मुनिश्री चौथमलजी महाराज का चौमासा सम्वत् हाल में जोधपुर में हुआ और मैंने व्याख्यान और धर्मोपदेश सुनकर नीचे मुआफिक प्रतिज्ञा की है—

(१) हर साल के पौष सुदि १० को पारसनाथ भगवान् की जयन्ति।
(२) हर साल चैत्र सुदि १३ को भगवान् महावीर स्वामी की जयन्ति।
(३) पजुसन के आठ दिन तक।
(४) आपका आगमन और विहार आहोर पधारना होगा उस समय।

उपर मुजब मितियों में अगता आहोर खास व मेरे पट्टे के कुल गाँवों में रखा जावेगा।

सं० १९९८ रा चैत्र वदि ७   Sd. Rawat Singh ✡

॥ श्री ॥ श्री चार भुजाजी॥

मोहर छाप
ठि० बगड़ी (मारवाड़)

ठि० श्री बगड़ी टीकायत जोधपुर स्टेट स्वरूप श्री ठाकुरां साहेब श्री भैरूंसिहजी साहब कुंवर श्री सज्जनसिहजी साहब वचनायत जैन स्वामी श्री १०८ श्री चौथमलजी महाराज का आगमन बगड़ी में सं० १९९८ चैत सुदि १२ को हुआ और मैंने भी व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजब प्रतिज्ञा की है।

(१). श्रावण मास में किसी जानवर की शिकार नहीं करूंगा और मेरे पट्टे के गाँव में इस मास में कोई शिकार नहीं कर सकेगा।

(२) पौष वदि १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँव में कोई जीव हिंसा नहीं होगी।

(३) चैत सुदि १३ को श्री महावीर का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँव में कोई जीव हिंसा नहीं होगी।

(४) भादवा वदि ८ जन्माष्टमी को हमारे पट्टे के गांवों में कोई जीव हिंसा नहीं होगी।

(५) भादवा सुदि १४ अनन्त चतुर्दशी का अगता पाला जावेगा।

(६) श्री पूज्य स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गांवों में आगमन व विहार होगा तब पट्टे के गाँवों में अगता पलाया जावेगा।

(७) पजूषणों में मेरे पट्टे के गाँवों में शिकार वगैरा व घाणी चलाना बिल्कुल बन्द रहेगा व कसाई अपना पेशा नहीं करेगा।

उपरोक्त प्रतिज्ञा का सदैव के लिये पालन किया जावेगा। सम्वत् १९९८ मिति चैत सुदि १३

✡   द: बारठ शोलराज श्री कुंवर साहबरा हुक्म सुं

शाश्वत दिवाकर को
श्रद्धा का अर्घ्य
भक्ति भरा प्रणाम
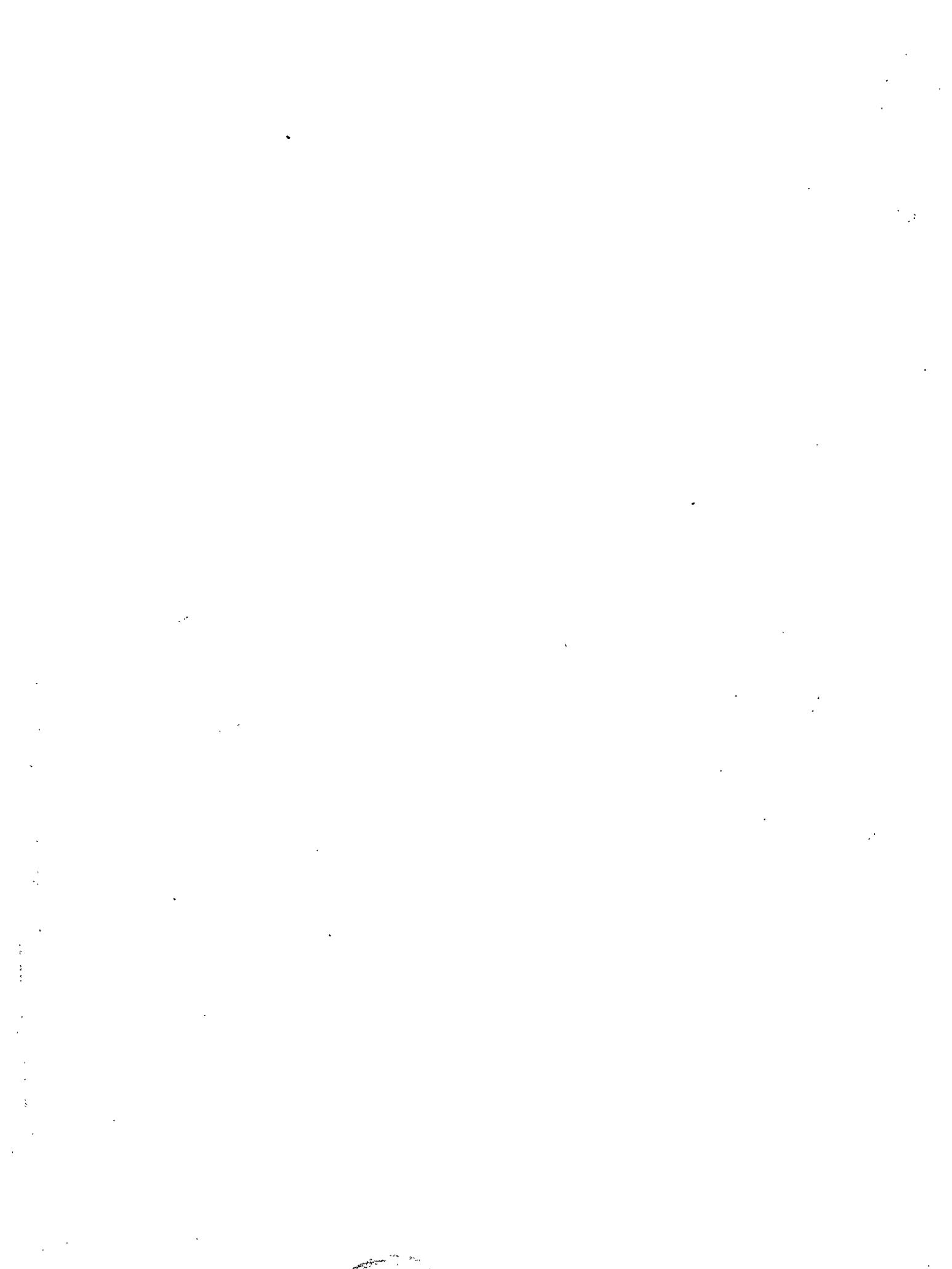
श्रद्धा का अर्घ्य : भक्ति-भरा प्रणाम

शताब्दी-पुरुष को प्रणाम !

✡ आचार्य श्री आनन्द ऋषि

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का व्यक्तित्व अद्भुत था। वे एक शताब्दी पुरुष थे। ईसा की उतरती उन्नीसवीं शताब्दी में उनका जन्म हुआ और चढ़ती बीसवीं शताब्दी में उनके साधक जीवन का विकास हुआ। उनका तपस्तेज, वाणी-वैभव और आध्यात्मिक बल शताब्दी के साथ-साथ निरन्तर चढ़ता ही गया। दो शताब्दियों पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ी है। इतना तेजस्वी, निर्भीक, निर्मल और मधुर, कोमल स्वभाव एक ही व्यक्ति में देखकर लगता है, प्रकृति कितनी उदार है, जिसे देती है, सब गुण दिल खोलकर देती है।

जैन समाज पर ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय व भारतीयेतर वर्ग पर भी उनके अगणित—असीम उपकार हैं। हजारों दलित-पतित जीवनों का उद्धार उन्होंने किया और उनको सन्मार्ग का बोध दिया। लाखों जीवन उनके पारस-स्पर्श से कंचन हो गये।

जीवदया, सदाचार-संस्कार-प्रवर्तन, तथा संघ एकता के हेतु किए गए उनके महनीय प्रयत्न इतिहास की एक यशोगाथा है।

मैं महाराष्ट्र-मध्यप्रदेश-राजस्थान-हरियाणा-पंजाब आदि प्रान्तों में विचरण करके आया, श्री जैन दिवाकरजी महाराज की सर्वत्र प्रशंसा सुनी, कहीं पर भी उनके विषय में अपवाद का एक शब्द भी नहीं सुना, उनके जीवन की यह बहुत बड़ी विशेषता है।

मैं अपनी असीम हार्दिक-श्रद्धा के साथ शताब्दी के उस महान् सन्त-पुरुष को प्रणाम करता हूँ।

हमारी सच्ची श्रद्धांजलि

✯ महामहिम उपराष्ट्रपति श्री ब० दा० जत्ती

मुनि श्री चौथमलजी महाराज के जन्म शताब्दी समारोह में उपस्थित होने का जो अवसर आपने मुझे दिया, उसके लिए मैं महोत्सव समिति को धन्यवाद देता हूँ। ऐसे अवसरों पर जब भी मैं हाजिर हुआ, सन्त-महात्माओं के सम्बन्ध में कुछ अधिक सुनने और जानने का मैंने लाभ पाया है।

आज से एक सौ वर्ष पहले मुनि श्री चौथमलजी का जन्म मध्यप्रदेश में नीमच नामक स्थान पर हुआ था। अठारह वर्ष की आयु में उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। अपने ५५ वर्ष के दीक्षा जीवन में उन्होंने भगवान महावीर के सत्य, अहिंसा, संयम और अपरिग्रह के असूलों को अपने जीवन में उतार कर, उनका जन-जन तक प्रचार-प्रसार किया। उसके लिए साहित्य लिखा, पद-यात्रायें कीं, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। वास्तव में उनका सारा जीवन आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में ही बीता। वह साधक थे, आध्यात्मिक उन्नति के लिए उन्होंने हमेशा समन्वय का सिद्धान्त अपने सामने रखा और इसके लिए संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी, मालवी आदि भाषाओं के ज्ञान से उन्होंने जैनधर्म ग्रन्थों, गीता, रामायण, भागवत, कुरान-शरीफ, बाइबल आदि धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन में लाभ उठाया।

सन्त-महात्मा तो अविराम सदासद्यः उस नदी के समान होते हैं जिनका जल सभी जगह निर्मल रहता है। सभी उसे पी सकते हैं। ऐसे पुरुष प्रत्येक दृष्टिकोण का सम्मान करते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि पर्वत की चोटी पर पहुँचने के लिए कई मार्ग हो सकते हैं, कई दिशाओं और मार्गों द्वारा उस चोटी पर पहुँचा जा सकता है।

हमारे देश के ऋषि-मुनियों, सूफी-सन्तों ने अपने चिन्तन, तप और अनुभव से समय-समय पर हमें जो चीजें बतायीं, उनका यही आशय रहा है कि सुख और शान्ति के लिए हमें उस तत्व को, जिससे यह मानव को स्थाई रूप में मिल सकते हैं, अपने भीतर खोजने की कोशिश करनी चाहिए। उसके लिए उन्होंने हमारे सामने महान् आदर्श रखे। अपने जीवन में इन जीवन मूल्यों को अपनाकर यह बताया कि मन, वचन और कर्म की साधना उच्च आदर्श जीवन के लिए कहाँ तक सम्भव है।

आज के युग में विज्ञान ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। मनुष्य को सुख-सुविधा के लिए भौतिक साधनों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इसके साथ विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में विनाश के जो अस्त्र-शस्त्र जुटा दिये हैं, यह दोनों चीजें विज्ञान ने मनुष्य को दीं। इससे वह ऐहिक सुख भी प्राप्त कर सकता है और आज तक मनुष्य ने जो कुछ हासिल किया है, अपने साथ उन सभी को खत्म भी कर सकता है। इसलिए विचारवान् व्यक्ति इस चीज को स्वीकार करते हैं कि मानव मात्र की रक्षा और कल्याण अहिंसक संस्कृति के विकास और उन्नयन द्वारा ही सम्भव है तथा जब तक मनुष्य अहिंसा के व्यापक और लोकोपयोगी अर्थ को समझ नहीं लेता, उसे पूरी तरह अपना नहीं लेता, स्थाई शान्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। दुनिया के लोगों में, परस्पर में सद्भावना और मैत्री पर जितना अधिक विश्वास दृढ़ होगा, अहिंसा का क्षेत्र उतना ही विस्तृत और बड़ा होता

हमारी सच्ची श्रद्धांजलि

☆ महामहिम उपराष्ट्रपति श्री ब० दा० जत्ती

मुनि श्री चौथमलजी महाराज के जन्म शताब्दी समारोह में उपस्थित होने का जो अवसर आपने मुझे दिया, उसके लिए मैं महोत्सव समिति को धन्यवाद देता हूँ। ऐसे अवसरों पर जब भी मैं हाजिर हुआ, सन्त-महात्माओं के सम्बन्ध में कुछ अधिक सुनने और जानने का मैंने लाभ पाया है।

आज से एक सौ वर्ष पहले मुनि श्री चौथमलजी का जन्म मध्यप्रदेश में नीमच नामक स्थान पर हुआ था। अठारह वर्ष की आयु में उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। अपने ५५ वर्ष के दीक्षा जीवन में उन्होंने भगवान महावीर के सत्य, अहिंसा, संयम और अपरिग्रह के असूलों को अपने जीवन में उतार कर, उनका जन-जन तक प्रचार-प्रसार किया। उसके लिए साहित्य लिखा, पद-यात्रायें कीं, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। वास्तव में उनका सारा जीवन आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में ही वीता। वह साधक थे, आध्यात्मिक उन्नति के लिए उन्होंने हमेशा समन्वय का सिद्धान्त अपने सामने रखा और इसके लिए संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी, मालवी आदि भाषाओं के ज्ञान से उन्होंने जैनधर्म ग्रन्थों, गीता, रामायण, भागवत, कुरान-शरीफ, बाइवल आदि धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन में लाभ उठाया।

सन्त-महात्मा तो अविराम सदासद्यः उस नदी के समान होते हैं जिनका जल सभी जगह निर्मल रहता है। सभी उसे पी सकते हैं। ऐसे पुरुष प्रत्येक दृष्टिकोण का सम्मान करते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि पर्वत की चोटी पर पहुँचने के लिए कई मार्ग हो सकते हैं, कई दिशाओं और मार्गों द्वारा उस चोटी पर पहुँचा जा सकता है।

हमारे देश के ऋषि-मुनियों, सूफी-सन्तों ने अपने चिन्तन, तप और अनुभव से समय-समय पर हमें जो चीजें वतायीं, उनका यही आशय रहा है कि सुख और शान्ति के लिए हमें उस तत्व को, जिससे यह मानव को स्थाई रूप में मिल सकते हैं, अपने भीतर खोजने की कोशिश करनी चाहिए। उसके लिए उन्होंने हमारे सामने महान् आदर्श रखे। अपने जीवन में इन जीवन मूल्यों को अपनाकर यह वताया कि मन, वचन और कर्म की साधना उच्च आदर्श जीवन के लिए कहाँ तक सम्भव है।

आज के युग में विज्ञान ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। मनुष्य को सुख-सुविधा के लिए भौतिक साधनों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इसके साथ विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में विनाश के जो अस्त्र-शस्त्र जुटा दिये हैं, यह दोनों चीजें विज्ञान ने मनुष्य को दीं। इससे वह ऐहिक सुख भी प्राप्त कर सकता है और आज तक मनुष्य ने जो कुछ हासिल किया है, अपने साथ उन सभी को खत्म भी कर सकता है। इसलिए विचारवान् व्यक्ति इस चीज को स्वीकार करते हैं कि मानव मात्र की रक्षा और कल्याण अहिंसक संस्कृति के विकास और उन्नयन द्वारा ही सम्भव है तथा जब तक मनुष्य अहिंसा के व्यापक और लोकोपयोगी अर्थ को समझ नहीं लेता, उसे पूरी तरह अपना नहीं लेता, स्थाई शान्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। दुनिया के लोगों में, परस्पर में सद्भावना और मैत्री पर जितना अधिक विश्वास दृढ़ होगा, अहिंसा का क्षेत्र उतना ही विस्तृत और बड़ा होता

जायेगा। अहिंसा का यही अर्थ है कि विश्व-बन्धुत्व की भावना अधिक समृद्ध हो, लोकोपकार के लिए सभी अपना योगदान दें और अच्छे गुणों को बढ़ायें। मानव मात्र के कल्याण का ख्याल रखें। जमाने के जो प्रश्न हैं, उन्हें विचारपूर्वक इन्सानी कदरों की प्रतिष्ठा द्वारा हल करने का प्रयास करें। आज भी दुनिया के सामने गरीबी, सामाजिक और आर्थिक असमानताओं आदि के मसले हैं। हमारा अधिक ध्यान इन चीजों का समाधान ढूंढ़ने की ओर होना चाहिए।

भगवान महावीर ने हमें सत्य, संयम, अहिंसा और अपरिग्रह के जो असूल बताए, मुनिश्री चौथमलजी का सारा जीवन इन्हीं की साधना और-प्रचार-प्रसार में बीता था। उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि समाज-सुधार और मानव-उत्थान का जो कार्य उन्होंने किया था, उसको आगे बढ़ावें और अपने आचार-विचार में रचनात्मक शक्ति का विकास कर दूसरों को प्रभावित करें।

इन्हीं शब्दों के साथ अब मैं मुनि श्री चौथमलजी महाराज को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

[जन्म शताब्दी महोत्सव दिनांक ५ नवम्बर को देहली में प्रदत्त भाषण
इसका सारांश अकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर भी प्रसारित हुआ।]

चौथमुनि चारु-चतुर

✯ श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

छप्पय

मृदु वाणी मतिमंत महाज्ञानी मनमोहक,
मद मत्सरता मार ममत्त मिथ्या मदमोडक ॥
मांगलीक मुख शब्द महाव्रती महामनस्वी,
मर्यादा अनुसार प्रचारक परम यशस्वी ॥
मुनि गुणी मुक्ता मणी, जन जीवन के हिय हारवर,
गंगा–सुत केसर–तनय चौथ मुनि चारु-चतुर ॥

कुण्डलिया

भरी जवानी में करी, हरी विषय की झाल।
मरि तिय फिर भी ना वरी, धरी शील की ढाल।
धरी शील की ढाल, काम कइ कीना नामी।
नहीं रति-भर चाह, पदवियें केइ पामी।
अध्यातिमकता पायके करी साधना हर घड़ी।
उत्तम लोक में चौथ ने सुन्दर यश झोरी भरी ॥
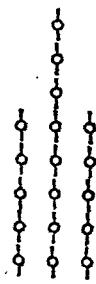
जग-वल्लभ जैन दिवाकर

☆ कविभूषण श्री जगन्नाथ सिंह चौहान 'जगदीश' साहित्यरत्न, भिण्डर (राज०)

दोहा

आकर आतम-ज्ञान के, भाकर भव्य महन्त।
चौथमल्ल मुनि पूज्य थे, जैन सिताम्बर सन्त॥
हिन्दू-मोमिन-जैन पै, चौथ संत की छाप।
मानव-धर्म महान् के, पूर्ण समर्थक आप॥
हलपति, धनपति, महीपति, सदा जोड़ते हाथ।
दत्तचित्त सुनते सभी, चौथ गुरुवर बात॥
'जैन दिवाकर' दिव्य थे, जगवल्लभ श्रीखण्ड।
दीक्षित कर सुरभित किये, जो थे अमित उदंड॥

सुन्दरी सवैया

अरहंत अराधक थे 'जगदीश' व साधक सम्यक् के अवरेखे।
सब धर्म गुणग्राहक थे अनुमोदक बोधक केवल ज्ञान के लेखे।
खल दानवता प्रतिरोधक थे भल मानवता प्रतिपादक पेखे।
हितकारक शुद्र-अछूत सुधारक, जैन दिवाकर चौथ को देखे॥

दोहा

'डीमो'[1]-सम वक्ता वड़े, मुनि 'दिनकर' संसार।
शुद्ध संस्कृति श्रमण का, किया विपुल विसतार॥
'जैन दिवाकर' की गिरा, सुनि स्वयं 'जगदीश'।
शीश झुकाते थे उन्हें, वड़े-वड़े अवनीश॥

घनाक्षरी

वाणी पर ध्यान देते यवन, ईसाई-हिन्दू
डालते प्रभाव युवा-उर अनुदार पै।
आदिवासी देवदासी शक्ति के उपासी आदि
प्रमुदित होते गुरु-विमल विचार पै।

---

१ प्राचीन ग्रीस का महान् वक्ता 'डिमोस्थिनिज' था। जिसकी टक्कर के भाषण देने वाले संसार में गिने-चुने व्यक्ति ही हुए हैं।

शपथ दिलाते हिंसा, मद्य, मांस, घूंस की तो
देते उपदेश उच्च आतम उद्धार पै।
संयम-नियम सदाचार का प्रचार कर
अमल किया था चौथमल वर्ण चार पै।

दोहा

'निर्ग्रन्थ प्रवचन भाष्य' को, 'धम्मपद'-'गीता' जान।
अन्तःकरण विशुद्ध का, नया निरूपण मान॥
जनमें थे रविवार को, दीक्षा ली रविवार।
रविदिवस गये स्वर्ग को, रविवासर 'रवि'प्यार॥
आगम-निगम-निधान थे, सम्पन्न शील नदीश।
चौथ संत की चरण-रज, शीश धरी 'जगदीश'॥
वहुत धर्म का वर्ष[1] तो, है यह भारतवर्ष।
आदर्श धर्म के योग्य तो, जैनधर्म उत्कर्ष॥

देखा मैंने....

☆ कविवर श्री अशोक मुनि

देखा मैंने संत रूप, सत्पथ दिखलाते मानव को
तपःअस्त्र से मार भगाते, पाप-पुंज के दानव को॥१॥
देखा मैंने वृद्ध-जनों में, वृद्धों-सी करते बातें
नवयुवकों में देखा, नव सामाजिक विप्लव फैलाते॥२॥
वच्चों में वचपन की स्मृतियाँ, देखा तन्मय हो कहते
वीर केशरी दृढ़-प्रतिज्ञ हो, कठिन परिषह भी सहते॥३॥
देखा मैंने कवि रूप, पद सरस ललित चुन-चुन धरते
व्याख्यानों में देखा वाग्मी, वन जन गण मोहित करते॥४॥
अर्हत दर्शन के प्रकाण्ड, पण्डित हो दर्शन समझाते
प्रभु स्मरण में देखा मैंने, व्यय करते पूरी रातें॥५॥
देखा "जैन दिवाकर" वनकर संघ सुमन को विकसाते
आत्म-लग्न से सत्य, अहिंसा को जीवन में अपनाते॥६॥
"अशोक मुनि" गुरुदेव चरण में, मेरा हो शत-शत प्रणाम
शत-शत वर्षों जिन-शासन में, रहे आपका अविचल नाम॥७॥

---

१ पृथ्वी के खण्ड को भी कहते हैं।

एक महकता जीवन पुष्प

☆ मालवरत्न उपाध्याय पं० श्री कस्तूरचन्दजी महाराज (रतलाम म० प्र०)

यह संसार एक विराट् उद्यान की भाँति है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के मानव रूपी पुष्प विकसित, पल्लवित होते रहते हैं। फूलों ही की भाँति कोई आकार में तो सुन्दर सुगठित होता है तो सुगुणों की सुगन्ध उनमें नहीं होती। कोई देखने में तो अप्रिय लगते हैं, पर उनमें चारित्रिक सुवास होती है। कोई गुलाब के फूल की भाँति देखने में सुन्दर व गन्ध में भी प्रियकारी होते हैं। गुलाब की तरह सुरभित जीवन संसार में कितने लोगों का होता है ? इने-गिने लोगों का। ऐसा जीवन जीने वाले मानव अपने जीवन में तो दूसरों को प्रफुल्लित-आनन्दित करते ही हैं, मरने के बाद भी उनकी उत्कृष्ट-चारित्र की महक लोगों के मन में सदा-सदा के लिए वस जाती है। जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन ही एक पूर्ण विकसित महकते गुलाब की भाँति था। अपने जीवनकाल में तो वे शीतल, सुरभित मलय की भाँति सारे देश में विचरते हुए अहिंसा, सत्य, प्रेम की धारा प्रवाहित करते ही रहे, पर स्वर्गवासी बनने के बाद भी आज उनके उच्चादर्श, सदुपदेश जन-जन के जीवन को मंगलमय बनाने में लगे हुए हैं।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के जीवन का उद्देश्य था—श्रमण संस्कृति की श्रेष्ठता को स्थापित करते हुए मात्र धर्म-प्रचार, यही नहीं वरन् ऊँच, नीच, छोटे-बड़े के भेदभाव को मिटाकर, जातिगत बन्धनों की जंजीरों में जकड़े समाज को व्यापक परिवेश देकर उन्हें यह समझाना कि कोई भी व्यक्ति मानव पहले है, बाद में जैन, हिन्दू, मुसलमान या हरिजन। सबसे बड़ा धर्म है—मानव-मात्र की सेवा करना, दीन-दुःखियों की सहायता करना, गिरते को ऊँचा उठाना। अपने इस पावन उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे जीवनभर सतत कार्य करते रहे; वे सफल रहे। यही कारण है कि उनके इन मानवता हितैषी कार्यों की वजह से, वे आज मात्र जैन समुदाय में ही नहीं वरन् समस्त वर्गों में पूजनीय-वन्दनीय व श्रद्धा के पात्र हैं।

आज हम उस मनस्वी महासन्त का जन्म शताब्दी वर्ष मना रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में अपनी एक नजर समाज-संसार पर भी डालें। क्या हम यह अनुभव करते हैं कि श्री जैन दिवाकर जी महाराज ने जिस समाज रचना की कल्पना की थी, उसे हम यथार्थता प्रदान कर सके हैं ? साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठकर सामाजिक उत्थान के साथ-साथ हमने दीन-दुःखी साधर्मी, भाई-बहनों के लिए क्या अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है ? इस मनीषी को अपने हृदयगत श्रद्धा सुमन अर्पित करने की दिशा में पहला कदम होना चाहिए—अपने दिलों में साधर्मी-वात्सल्य भाव को जागृत करना, एक भेदभाव मुक्त सुन्दर, आनन्दमय समाज का निर्माण करने के लिए प्रयास करना। यदि हम इस दिशा में पैर बढ़ायेंगे, तभी श्री जैन दिवाकरजी महाराज को अपनी वास्तविक श्रद्धांजलि समर्पित करेंगे।

औरों को बदलने के लिए, खुद को बदलना सीखो
शंकर बनना हो अगर, विष घूंट निगलना सीखो।
उजाले की परिभाषा न, मिलेगी किताबों में तुम्हें,
उसको पाने के लिए खुद, दीपक बन जलना सीखो।।

☆

वह, कालजयी इतिहास-पुरुष !

✡ उपाध्याय अमरमुनि, वीरायतन, राजगृह (बिहार)

जैन दिवाकर, जगद्वल्लभ श्री चौथमलजी महाराज वस्तुतः जैनसंघ रूपी विशाल आकाश के क्षितिज पर उदय होने वाले सहस्रकिरण दिवाकर ही थे। उनका ज्योतिर्मय व्यक्तित्व जैन-अजैन सभी पक्षों में श्रद्धा का ऐसा केन्द्र रहा है कि जन-मन सहसा विस्मय-विमुग्ध हो जाता है।

उनकी जनकल्याणानुप्राणित बोधवाणी राजप्रासादों से लेकर साधारण झोंपड़ियों तक में दिनानुदिन अनुगुंजित रहती थी। प्रवचन क्या होते थे, अन्तर्लोक से सहज समुद्भूत धर्मोपदेश के महकते फूलों की वर्षा ही हो जाया करती थी। परिचित हों या अपरिचित, गाँव हों या नगर, जहाँ कहीं भी पहुँच गये, उनके श्रीचरणों में श्रद्धा और प्रेम की उत्ताल तरंगों से गर्जता एक विशाल जन-सागर उमड़ पड़ता था। न वहाँ किसी भी तरह का अमीर, गरीब आदि का कोई भेद होता था और न जाति, कुल, समाज या मत, पंथ आदि का कोई अन्तर्द्वन्द्व ही। उनकी प्रवचन-सभा सचमुच में ही इन्द्रधनुष की तरह बहुरंगी मोहक छटा लिये होती थी।

श्री जैन दिवाकरजी करुणा की तो साक्षात् जीवित मूर्ति ही थे। इतने पर-दुःखकातर कि कुछ पूछो नहीं। अभावग्रस्त असहाय वृद्धों की पीड़ा उनसे देखी नहीं गयी, तो उनकी कोमल करुणावृत्ति ने चित्तौड़-जैसे इतिहास-केन्द्र पर वृद्धाश्रम खोल दिया। अनेक स्थानों पर पुराकाल से चली आती बलि-प्रथा बन्द कराकर अमारी घोषणाएँ घोषित हुईं। हजारों परिवार मद्य, मांस, द्यूत तथा अन्य दुर्व्यसनों से मुक्त हुए, धर्म के दिव्य संस्कारों से अनुरंजित हुए। शिक्षण के क्षेत्र में बालक, बालिका तथा प्रौढ़ों के लिए धार्मिक एवं नैतिक जागरण के हेतु शिक्षा-निकेतन खोले गए। मातृजाति के कल्याण हेतु कितनी ही प्रभावशाली योजनाएँ कार्यरूप में परिणत हुईं। बस, एक ही बात। जिधर भी जब भी निकल जाते थे, सब ओर दया, दान, सेवा और सहयोग के रूप में करुणा की तो गंगा बह जाती थी।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज शासनप्रभावक महतो महीयान् मुनिवर थे। अनेक आचार्यों से जो न हो सकी, वह शासनप्रभावना दिवाकरजी के द्वारा हुई है। जितना विराट् भव्य एवं ऊँचा उनका तन था, उससे भी कहीं अधिक विराट्, भव्य एवं ऊँचा उनका मन था; आज की समग्र संकीर्णताओं तथा क्षुद्रताओं से परे। संघ-संगठन के शत-प्रतिशत परखे हुए सूत्रधार। सम्प्रदाय विशेष में रहकर भी साम्प्रदायिक घेराबन्दी से मुक्त। अपने युग का यह इतिहास पुरुष कालजयी है। युग-युग तक भावी प्रजा अपने आराध्य की अविस्मरणीय जीवन-स्मृति में सहज श्रद्धा के सुमन अर्पण करती रहेगी और यथाप्रसंग अपने मन, वाणी तथा कर्म को ज्योतिर्मय बनाती रहेगी।

जन्म-शताब्दी के मंगल प्रसंग पर उनके प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व एवं कृतित्व को शत-शत वन्दन, अभिनन्दन !

✡✡

एक महकता जीवन पुष्प

✡ मालवरत्न उपाध्याय पं० श्री कस्तूरचन्दजी महाराज (रतलाम म० प्र०)

यह संसार एक विराट् उद्यान की भाँति है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के मानव रूपी पुष्प विकसित, पल्लवित होते रहते हैं। फूलों ही की भाँति कोई आकार में तो सुन्दर सुगठित होता है तो सुगुणों की सुगन्ध उनमें नहीं होती। कोई देखने में तो अप्रिय लगते हैं, पर उनमें चारित्रिक सुवास होती है। कोई गुलाब के फूल की भाँति देखने में सुन्दर व गन्ध में भी प्रियकारी होते हैं। गुलाब की तरह सुरभित जीवन संसार में कितने लोगों का होता है ? इने-गिने लोगों का। ऐसा जीवन जीने वाले मानव अपने जीवन में तो दूसरों को प्रफुल्लित-आनन्दित करते ही हैं, मरने के बाद भी उनकी उत्कृष्ट-चारित्र की महक लोगों के मन में सदा-सदा के लिए बस जाती है। जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन ही एक पूर्ण विकसित महकते गुलाब की भाँति था। अपने जीवनकाल में तो वे शीतल, सुरभित मलय की भाँति सारे देश में विचरते हुए अहिंसा, सत्य, प्रेम की धारा प्रवाहित करते ही रहे, पर स्वर्गवासी बनने के बाद भी आज उनके उच्चादर्श, सदुपदेश जन-जन के जीवन को मंगलमय बनाने में लगे हुए हैं।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के जीवन का उद्देश्य था—श्रमण संस्कृति की श्रेष्ठता को स्थापित करते हुए मात्र धर्म-प्रचार, यही नहीं वरन् ऊँच, नीच, छोटे-बड़े के भेदभाव को मिटाकर, जातिगत बन्धनों की जंजीरों में जकड़े समाज को व्यापक परिवेश देकर उन्हें यह समझाना कि कोई भी व्यक्ति मानव पहले है, बाद में जैन, हिन्दू, मुसलमान या हरिजन। सबसे बड़ा धर्म है—मानव-मात्र की सेवा करना, दीन-दुःखियों की सहायता करना, गिरते को ऊँचा उठाना। अपने इस पावन उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे जीवनभर सतत कार्य करते रहे; वे सफल रहे। यही कारण है कि उनके इन मानवता हितैषी कार्यों की वजह से, वे आज मात्र जैन समुदाय में ही नहीं वरन् समस्त वर्गों में पूजनीय-वन्दनीय व श्रद्धा के पात्र हैं।

आज हम उस मनस्वी महासन्त का जन्म शताब्दी वर्ष मना रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में अपनी एक नजर समाज-संसार पर भी डालें। क्या हम यह अनुभव करते हैं कि श्री जैन दिवाकर जी महाराज ने जिस समाज रचना की कल्पना की थी, उसे हम यथार्थता प्रदान कर सके हैं ? साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठकर सामाजिक उत्थान के साथ-साथ हमने दीन-दुःखी साधर्मी, भाई-बहनों के लिए क्या अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है ? इस मनीषी को अपने हृदयगत श्रद्धा सुमन अर्पित करने की दिशा में पहला कदम होना चाहिए—अपने दिलों में साधर्मी-वात्सल्य भाव को जागृत करना, एक भेदभाव मुक्त सुन्दर, आनन्दमय समाज का निर्माण करने के लिए प्रयास करना। यदि हम इस दिशा में पैर बढ़ायेंगे, तभी श्री जैन दिवाकरजी महाराज को अपनी वास्तविक श्रद्धांजलि समर्पित करेंगे।

औरों को बदलने के लिए, खुद को बदलना सीखो
शंकर बनना हो अगर, विष घूंट निगलना सीखो।
उजाले की परिभाषा न, मिलेगी किताबों में तुम्हें,
उसको पाने के लिए खुद, दीपक बन जलना सीखो॥

✡

वह, कालजयी इतिहास-पुरुष !

✡ उपाध्याय अमरमुनि, वीरायतन, राजगृह (बिहार)

जैन दिवाकर, जगद्वल्लभ श्री चौथमलजी महाराज वस्तुतः जैनसंघ रूपी विशाल आकाश के क्षितिज पर उदय होने वाले सहस्रकिरण दिवाकर ही थे। उनका ज्योतिर्मय व्यक्तित्व जैन-अजैन सभी पक्षों में श्रद्धा का ऐसा केन्द्र रहा है कि जन-मन सहसा विस्मय-विमुग्ध हो जाता है।

उनकी जनकल्याणानुप्राणित बोधवाणी राजप्रासादों से लेकर साधारण झोंपड़ियों तक में दिनानुदिन अनुगुंजित रहती थी। प्रवचन क्या होते थे, अन्तर्लोक से सहज समुद्भूत धर्मोपदेश के महकते फूलों की वर्षा ही हो जाया करती थी। परिचित हों या अपरिचित, गाँव हों या नगर, जहाँ कहीं भी पहुँच गये, उनके श्रीचरणों में श्रद्धा और प्रेम की उत्ताल तरंगों से गर्जता एक विशाल जन-सागर उमड़ पड़ता था। न वहाँ किसी भी तरह का अमीर, गरीब आदि का कोई भेद होता था और न जाति, कुल, समाज या मत, पंथ आदि का कोई अन्तर्द्वन्द्व ही। उनकी प्रवचन-सभा सचमुच में ही इन्द्रधनुष की तरह बहुरंगी मोहक छटा लिये होती थी।

श्री जैन दिवाकरजी करुणा की तो साक्षात् जीवित मूर्ति ही थे। इतने पर-दुःखकातर कि कुछ पूछो नहीं। अभावग्रस्त असहाय वृद्धों की पीड़ा उनसे देखी नहीं गयी, तो उनकी कोमल करुणावृत्ति ने चित्तौड़-जैसे इतिहास-केन्द्र पर वृद्धाश्रम खोल दिया। अनेक स्थानों पर पुराकाल से चली आती बलि-प्रथा बन्द कराकर अमारी घोषणाएँ घोषित हुईं। हजारों परिवार मद्य, मांस, द्यूत तथा अन्य दुर्व्यसनों से मुक्त हुए, धर्म के दिव्य संस्कारों से अनुरंजित हुए। शिक्षण के क्षेत्र में बालक, बालिका तथा प्रौढ़ों के लिए धार्मिक एवं नैतिक जागरण के हेतु शिक्षा-निकेतन खोले गए। मातृजाति के कल्याण हेतु कितनी ही प्रभावशाली योजनाएँ कार्यरूप में परिणत हुईं। बस, एक ही बात। जिधर भी जब भी निकल जाते थे, सब ओर दया, दान, सेवा और सहयोग के रूप में करुणा की तो गंगा बह जाती थी।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज शासनप्रभावक महतो महीयान् मुनिवर थे। अनेक आचार्यों से जो न हो सकी, वह शासनप्रभावना दिवाकरजी के द्वारा हुई है। जितना विराट् भव्य एवं ऊँचा उनका तन था, उससे भी कहीं अधिक विराट्, भव्य एवं ऊँचा उनका मन था; आज की समग्र संकीर्णताओं तथा क्षुद्रताओं से परे। संघ-संगठन के शत-प्रतिशत परखे हुए सूत्रधार। सम्प्रदाय विशेष में रहकर भी साम्प्रदायिक घेराबन्दी से मुक्त। अपने युग का यह इतिहास पुरुष कालजयी है। युग-युग तक भावी प्रजा अपने आराध्य की अविस्मरणीय जीवन-स्मृति में सहज श्रद्धा के सुमन अर्पण करती रहेगी और यथाप्रसंग अपने मन, वाणी तथा कर्म को ज्योतिर्मय बनाती रहेगी।

जन्म-शताब्दी के मंगल प्रसंग पर उनके प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व एवं कृतित्व को शत-शत वन्दन, अभिनन्दन !

✡✡

पवित्र प्रेरणा

☆ प्रवर्तक श्री अम्बालालजी महाराज

परम आदरणीय भारत प्रख्यात जगद्‌वल्लभ जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब की पावन स्मृति में आयोजित इस शताब्दी समारोह के अवसर पर मैं उस विराट लोकवल्लभ ज्योतिर्मयी चेतना के पवित्र चरणों में हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ।

जैन दिवाकरजी महाराज ने पूरे जीवन संयम-साधना करते हुए लोकमंगल की सर्जना की, जो युगयुग तक अविस्मृत रहेगी।

झौंपड़ी से लेकर राजमहलों तक जिनशासन की कीर्तिध्वजा लहराने वाले जैन दिवाकरजी महाराज को भुलाना असम्भव है।

जैन दिवाकरजी महाराज ने जैनधर्म को लोकधर्म का स्वरूप प्रदान किया, उन्होंने इस महान् वीतराग-मार्ग को महाजन समाज से अलग अन्य वर्ग के लोगों में इसे फैलाकर भारत में जैन-धर्म की व्यापक उपयोगिता को सिद्ध कर दिया।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने जिनशासन की सभी सम्प्रदायों के बीच सौजन्यता स्थापित करने का बड़ा काम किया। उन्होंने ऐसे समय में ऐक्य संगठन और पारस्परिक सहयोग का बिगुल बजाया जब चारों तरफ साम्प्रदायिक कट्टरता और खंडन-मंडन का वातावरण फैला हुआ था।

उनकी इस विशेषता को हमें वर्तमान सन्दर्भ में और अधिक उत्साह के साथ अपनाने की आवश्यकता है। जैन समाज के सभी फिरके तो परस्पर स्नेह और सहयोग पूर्वक रहे ही, साथ ही स्थानकवासी समाज को अपने भीतर मजबूत एकता की स्थापना कर लेना चाहिए।

हम बहुत अधिक बिखरे हुए हैं; यह बिखराव समाज के लिए घातक बन रहा है।

हमारा स्थानकवासी समाज केवल साधु-साध्वियों के सहारे टिका है। समाज को इनका ही आधार है अतः हमारा त्यागी वर्ग जितना अधिक चारित्रवान्, आचारनिष्ठ और शास्त्रानुगामी होगा उतना ही यह समाज प्रगति करेगा। यह ज्वलन्त सत्य है जिसे एकक्षण के लिए भी नहीं भुला सकते। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के पावन जीवन से हमें वही प्रचण्ड प्रेरणा मिले—ऐसी आशा करता हूँ। ☆

श्री जैनदिवाकरो विजयताम्

☆ उपाध्याय श्री मधुकर मुनि

धर्मोद्धार-परः सदा सुख-करो लोक-प्रियो यो मुनिः।
प्राप्तं येन यशः कृता च सततं संघोन्नतिः सर्वदा॥
यस्याऽऽनन्द-करा शुभा प्रियतरा श्री चौथमल्लाऽभिधा।
स श्री जैन-दिवाकरो विजयतां सिद्धिं च सम्प्राप्नुयात्॥
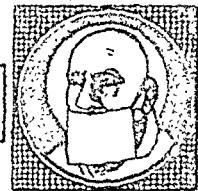
मुनिवर तुमने जन-मानस में, मनहर बीन बजाई

☆ रमाकान्त दीक्षित (भिवानी)

मुनिवर, तुमने जन-मानस में, मनहर बीन बजाई।
जप, तप, साहस, वल, संयम के, सपने टूट रहे थे,
पावन धर्म-ध्वजा को पामर, मिलकर लूट रहे थे,
धर्म-दिवाकर, तुमने बढ़कर, उनको फिर ललकारा,
हमें आज भी दिशा बताते, बनकर तुम ध्रुवतारा,
ग्राम-नगर की गली-गली में, रस की धार बहाई।
मुनिवर, तुमने जन-मानस में, मनहर बीन बजाई ॥

प्रेय मार्ग को छोड़ा तुमने, श्रेय मार्ग अपनाया,
नया उजाला दिया जगत् को, तम का तोम भगाया,
पतझड़ ने वगिया लूटी थी, फिर से फूल खिले हैं,
भेद-भाव के नाग लहरते, अब तो गले मिले हैं,
धर्म-नीति के गठबंधन पर, गूँज उठी शहनाई।
मुनिवर, तुमने जन-मानस में, मनहर बीन वजाई ॥

अब कुंठा, संत्रास, घुटन की, सिमट रही है माया,
ज्ञान-प्रदीप जलाकर तुमने, भ्रम का भूत भगाया,
जन-जीवन के अन्तर्मन का, दर्पण संवर रहा है,
घर के आँगन में खुशियों का, कुमकुम बिखर रहा है,
युग से भटक रहीं मानवता को, सीधी राह दिखाई।
मुनिवर, तुमने जन-मानस में, मनहर बीन वजाई ॥

मिला तुम्हीं से गौरव हमको, जीवन को परिभाषा,
अध्यात्म-गिरि पर चढ़ जाने को, जगती को नव आशा,
शाश्वत ज्ञान, कर्म, भक्ति को, तुम-सा पूत मिला जब,
चमके नभ में चाँद-सितारे, सुख का भान मिला तब,
दीपित तम का कोना-कोना, ऐसी ज्योति जगाई।
मुनिवर, तुमने जन-मानस में, मनहर बीन वजाई ॥

☆

जन-जन के हृदय मन्दिर के देवता...

✡ उपाध्याय श्री मधुकर मुनिजी

अभी सीमित युग ही बीत पाये हैं, जिन्हें स्वर्गवासी हुए। यदि युग पर युग भी बीतते जावेंगे, तो भी जिनका नाम यत्र-तत्र-सर्वत्र गूंजता रहेगा, वे थे अविस्मरणीय अभिधा वाले परम श्रद्धेय प्रसिद्ध वक्ता पूज्य जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज प्रबल पुण्य प्रकृति के धनी थे। इसलिए वे जन-जन के हृदय-मन्दिर के देवता बने हुए थे। साधारणजन से लेकर बड़े-बड़े जागीरदार व नरेश भी उनकी भक्त मंडली के सदस्य थे।

जब प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज प्रवचन-पट्ट पर विराजमान हो जाते और वहाँ पर उपस्थित जन-समाज की ओर उनका दक्षिण कर-कमल घूम जाता, तब आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष उनसे प्रभावित हो जाते थे और वे सब उनके बन जाते थे।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन सीधी-सादी भाषा में अतीव सुमधुर होते थे। उनके प्रवचनों का प्रभाव जितना साधारण जनता पर पड़ता था उतना ही विद्वत् समाज पर भी पड़ता था। उनके प्रवचन सुनकर सभी मंत्र-मुग्ध से बन जाते थे।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने प्राणि-हित और जन-हित के अनेक कार्य किये। यत्र-तत्र जीव हत्याएँ बन्द करवाई। पर्व के दिनों में अगते पलवाए। अनेक जागीरदारों से हत्या बन्द करने के पट्टे लिखवाये। ये कदम उनके सदा-सदा के लिए संस्मरणीय रहेंगे।

छोटी-छोटी जातियों पर भी उनका बहुत अच्छा प्रभाव था। तेली-तंबोली, घांची-मोची, हरिजन आदि जातियों के लोग भी उनसे पूर्णतः प्रभावित रहते थे। उनके प्रभाव में आकर उन लोगों ने आजीवन मांस-मदिरा शिकार आदि दुर्व्यसनों के प्रत्याख्यान किये। इससे अनेक प्राणियों को अभयदान मिला।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज एक सफल कवि भी थे। उनकी प्रायः सभी रचनाएँ सरल, सरस व सुमधुर बनी हुई हैं। उन्होंने अनेक चौपाइयों का निर्माण किया तथा विविध रागों में अनेक भजन भी बनाए। उनके प्रायः सभी भजन अतीव लोकप्रिय बने, लोक गीतों की तरह उनके भजनों की कड़ियाँ आज भी जन-जन के मुंह से निकलती रहती हैं।

यद्यपि श्री जैन दिवाकरजी महाराज के दर्शनों का लाभ मुझे अवश्य मिला था, परन्तु उनके सत्संग का लाभ मुझे यथोचित कभी नहीं मिल पाया। यह संयोग की बात है, फिर भी मेरे हृदय में उनके प्रति अपार श्रद्धा है।

आज उनकी जन्म-शताब्दी के स्वर्णमय सुअवसर पर उनके संयमी जीवन के श्रीचरणों में मेरी शत-शत श्रद्धांजलि समर्पित है।

✡

शत-शत तुम्हें वन्दन

✡ मुनि लाभचन्द्रजी (जम्मू तवी)

तुम थे संत महंत, तुम्हारा नाम सुनते जोश आता है।
रगों में हमारे अफसानों से, चक्कर खून खाता है॥

आपका नाम व आपका काम दोनों ही महान् थे। नाम जपने से निराशा शान्त होती है, आपके उपकार याद आते हैं।

आप जिनेश्वरदेव के मार्ग पर नर से नारायण बनने वाले अगणित साधकों में से एक हैं। आपने वह प्रकाश, वह आभास प्राप्त किया—जो अतीव कठिन था। आपने सारे जहान को रोशनी दी। शान्ति दी। मुझे भी श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सान्निध्य में काफी अर्से तक रहने का मौका मिला। कई बार कहा करते थे, लाभ मुनि ! तुमने बाल्यकाल में संयम-पथ लिया है, यह असीम पुण्योदय का फल है।

एक बार उनके साथ में देहली का वि० सं० १९९५ का चातुर्मास उठाकर लुहारासराय स्थानक पर चढ़ने वाले कलश के उत्सव में जा रहे थे। रास्ते में एक खेखड़ा गांव आया, एक जन्मांध बालक किसी के बहकाने पर जैन दिवाकरजी महाराज के समीप आकर अप्रासंगिक चर्चा करने लगा। गुरुदेव बोले—'आज तो तुम दूसरों के बहकावे में बहककर इस प्रकार बोल रहे हो, पर एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम्हारे दरवाजे पर बड़े-बड़े सेठों की कारें खड़ी रहेंगी।'

ठीक वही बात हुई। हम दो हजार आठ का देहली का चातुर्मास उठाकर लुधियाने की ओर देहली से बड़ौत कांधला होते हुए करनाल जा रहे थे तो देहली से बड़ौत जाने वाले मार्ग में वही खेखड़ा गांव पड़ा, एक भाई के मकान में ठहरे, वह बालक भी आया जिसे गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त था, कहने लगा—'महाराज ! मेरा विकास गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज की कृपा से हुआ है। मैं पामेस्ट्री हस्तरेखा विज्ञान का प्रखर ज्ञाता बना हूँ। प्रश्नकर्त्ता के हाथ की रेखाओं पर केवल अंगुली फेरकर सारा भविष्य बता देता हूँ। कई दिन तक सेठ लोग मेरे दरवाजे पर पड़े रहते हैं।'

हाँ तो उनकी वाणी ब्रह्म-वाक्य थी।

यह तो सुनिश्चित है कि श्रमण संस्कृति के जीवन विधायक श्रमण संत होते हैं।

श्री चौथमलजी महाराज श्रमण संस्कृति के संरक्षक, संवर्धक थे। उनकी वाणी में मधुरता थी, आँखों में प्यार था। जीवन में दुलार था। उनका जीवन-मन समाहित था। वे जीवन-साधना की परिधि में हमेशा अग्रसर रहते थे। वास्तव में उनकी जीवन-साधना समग्र रूप से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र से युक्त थी। जिनके विचारों में विश्वमंगल निहित था।

जिनके आनन पर रहती थी, मधुर हास्य की रेखा।
हर व्यक्ति ने कठिन समय में, आपको देवरूप में देखा॥
स्वयं सफलता ही उनकी, गोदी में खेला करती थी।
विजयश्री उनके मस्तक पर तिलक लगाया करती थी॥
उनके चरण चूमने अगणित जनता आती थी।
वो जीवन धन्य समझते थे जब थोड़ी-सी चरण-रज मिल जाती थी॥

ऐसे थे वे चारित्र चूड़ामणि, विश्वमंगल के प्रतीक श्री चौथमलजी महाराज। जिनकी साधना स्वयं के लिए तथा सर्वजनहिताय थी।

उन्होंने राजा से रंक तक की बात सुनी। झोंपड़ी से महल तक प्रभु महावीर के संदेश को फैलाया। जन-जन के मन को परखा। वे मानव-जीवन के चिकित्सक थे। दुःख-परेशानियों की व बीमारियों की औषधी उनके पास थी। लाखों का कल्याण किया, पीड़ा तथा चिन्ताएँ मिटाईं।

भगवान महावीर ने संत की कसौटी बतलाते हुए सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण भाव भाषा में कहा—

"दोहिं ठाणेहिं अणगारे संपन्ने अणादियं, अणवदग्गं, दीह मध्दं च उरंत संसारकतारं वीति एवज्जा तं जहा—विज्जाए चेव चरणेण चेव।"

—अर्थात दो महान् तत्त्वों के माध्यम से साधक इस अनादि-अनन्त चतुर्गति रूप संसार अटवी से पार हो जाते हैं। वे हैं ज्ञान और चारित्र।

श्री दिवाकरजी महाराज भी प्रभु के बताए हुए मार्ग पर एक दृढ़प्रहरी की भांति चले और अपनी मंजिल को निकट की। निरतिचार चारित्र की साधना में वे हमेशा संलग्न रहे। उनकी वाणी में एक ऐसा असरकारक जादू था, चमत्कार था कि मानो साक्षात् देवदूत हो; जिनके मन वाणी, काया में धर्म का रंग रम चुका था। उनका बोलना बैठना, सोना, सोचना सब धर्म के माध्यम से होता था।

श्रुतज्ञान के प्रगाढ़ अध्ययन-चिन्तन-मनन से वाणी को मुखरित होने की शक्ति उन्हें मिली थी। अर्थात् वे श्रुतज्ञान के ज्योतिर्धर थे।

जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़े वहाँ-वहाँ की वह भूमि स्वर्ग-सी बनी। धन्य बनी। जिस पर आपकी दृष्टि पड़ी वह कृत्य-कृत्य बना।

वे धर्म के दिवाकर तन की ज्योति से चाहे हमारे समाने नहीं हैं। पर उनके पवित्र जीवन की अमर ज्योति से आज भी प्रत्येक घट-घट आलोकित है।

आज भी हम स्वर्गीय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की पावन गाथाएँ सुनते हैं तो हृदय आनन्द से विभोर हो जाता है।

हे हृदयेश ! हे जीवनेश ! आप मानव ही नहीं महामानव थे।
वन्दन स्वीकार करो गुरुवर, आप तो जीवन के सृष्टा थे॥

युगप्रवर्तक श्री जैन दिवाकरजी महाराज

भण्डारी श्री पदमचन्दजी महाराज (पंजाब)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने मानव समाज को सदाचार और सुसंस्कार की ओर प्रेरित करने में एक अद्‌भुत कार्य किया था। ऐसा कौन मानव होगा, जो उनकी चरण छाया में पहुँचा हो, उनकी वाणी सुनी हो और उसका हृदय न बदला हो। पापी से पापी और पतित से पतित मनुष्य भी उनके सम्पर्क से पवित्र बन गये, धर्मात्मा बन गये ऐसे अनेक उदाहरण सुनने में आये हैं।

जैन इतिहास के ही नहीं, किन्तु सम्पूर्ण भारतीय इतिहास के इन २५०० वर्षों में ऐसे मनस्वी, तेजस्वी प्रभावशाली संत बहुत ही कम हुए हैं जिन्होंने युग की बहती धारा को अपनी वाणी से मोड़ दिया हो। असदाचार को सदाचार व कुसंस्कारों को सुसंस्कार में बदलना वास्तव में ही युग-प्रवर्तन का कार्य है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने यह ऐतिहासिक कार्य किया। अतः उन्हें एक युगप्रवर्तक महापुरुष कहा जा सकता है।

(लोकगीत की धुन पर रचित एक मेवाड़ी गीत)

गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो

✡ श्री मदन शर्मा, शिक्षक डूंगला, (राज०)

आज उजाली या रात,
मारो हिवड़ो हरषात,
जोड़ू कुण्या कुण्या हाथ,
टेकूं पगा मांही माथ,
कथ गाऊँ जामण जाया केशर लाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो ॥

म्हारो हिवड़ो हरषावे,
म्हारो मनड़ो गीत गावे,
मुरझ्या फूलड़ा ने खिलावे,
म्हारी आंतड़िया उचकावे,
गीत गाऊँ आज धर्म रा रुखाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो ॥

जैन दिवाकर री शान,
पंडित रतना री या खान,
जगद् -वल्लभ गुणगान,
नाम चौथमलजी महान्,
निकल्यो सूरज वो तेजरा तमाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो ॥

सम्वत् चोंतीसा मझधार,
कार्तिक तेरस ईतवार,
मालव देश के मंजार,
हुयो नीमच में अवतार,
धन-धन भाग वी भूमि पर रैवण वाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो ॥

सोलह साल में जब आये,
व्याह बेड़ी में बँधाये,
पूनमचंद लगन पठाये,
वरात प्रतापगढ़ में जाये,
बाई मानकुँवर सूं फेरा लेवण वाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो ॥

लिख्या विधाता रा लेख,
कुण फेरे जापे रेख,
पेर्यौ साधुवां रो भेख,
छोड़ चाल्या छाती टेक,
छोड्यो जग छोड्यो प्रेम घर वाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो ॥

श्रीमान श्री एक सौ ने आठ,
गुरू हीरालालजी रो ठाट,
जांसूं करी साँठ-गाँठ,
दीक्षा लीनी बैठा पाट,
सम्वत् वावन्या में लोच कीनो वाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो ॥

बोलता भाषा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी।
मालवी, गुजराती, राजस्थानी बोलचाल री॥

भण्या जैन-धर्म प्रमाण,
गीता, भागवत, पुराण,
वेद, उपनिषद्, रामा'ण,
बाइबल गुलिस्तां कुराण,

पंडितरत्न रो तुजरबो पावण वाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो॥

मीठी मीठी बोली सूं वी उपदेश झाड़ता।
हजारों श्रावक सुण आंख्यां न टमकारता॥

वाण्या, ब्रामण, कुम्हार,
खाती, अहीर, पाटीदार,
जाट, तेली ने लुहार,
ढेड़, बोला[1] नें चमार,

सभी सुणता व्याख्यान ज्ञान माला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो॥

प्रेमसुं गरीबां री झोंपड्या में जावता।
महलवाला भी वाने झोंपड्या ज्यूं भावता॥

झुक्या राजा रा दरबार,
जमींदार, जागीरदार,
नबाब ने नरेश सरदार,
काम्प्या धाड़ाती, गद्दार,

मेट्यो म्हूँ पणो—केई मुछाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो॥

राजस्थान पूरो देख्यो, गाँव-गाँव शोभावढ़ी।
भीलवाड़ा, चित्तौड़, कानोड़-बड़ी सादड़ी॥

उदयपुर ने जोधपुर, आमेर,
अलवर, नागोर, बीकानेर,
कोटा, ब्यावर ने अजमेर,
करली अरावली री सैर,

ठोकर खाता ने गडारे[2] लावण वाला रो।
गंगारामजी री आंख्याँ रा उजाला रो॥

अवे आगे मध्यदेश—मालवा में चालिया।
मन्दसौर, रतलाम, उज्जैन, इन्दौर देखिया॥

लखनऊ, आगरा ने कानपुर,
बम्बई ने पूना भी मशहूर,
दिल्ली, पालनपुर री ट्यूर,
घूम्या भारत में भरपूर,

घर-घर में ज्ञान रा दिवला जोवणवाला रो।
गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो॥

कोटा में चौमासो कीनो घणा सुख पावता।
दया न आई राम अस्या संत ने ले जावता।

सम्वत् साला मगसर मास,
नवमी रविवार भाई त्रास,
कीनो आप स्वर्गां वास,
आंख्यां आयो भादव मास,

दुनियां रोई भदुड़ाजल बहियो नेणनाला रो।
गंगारामजी रा आंख्यां रा उजाला रो॥

---

१ रेगर

२ रास्ते पर

सच्चे सन्त और अच्छे वक्ता

☆ उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी

महामनीषी मुनिपुंगव जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज स्थानकवासी जैन समाज के एक मूर्धन्य सन्तरत्न थे। वे ऐसे सन्त थे जिन्होंने अपना पथ अपने आप बनाया था। उन्होंने दूसरों के सहारे पनपना, बढ़ना उचित न समझकर अपने ही प्रबल पुरुषार्थ से प्रगति की थी। एक व्यक्ति पुरुषार्थ से कितना आगे बढ़ सकता है और अपने अनुयायियों की फौज तैयार कर सकता है, यह उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से बता दिया। वे जहाँ भी पहुँचते वहाँ विरोधी तत्त्व उनकी प्रगति के लिए बाधक बनता, पर विरोध को विनोद मानकर उसकी उपेक्षा करके बरसाती नदी की तरह निरन्तर आगे बढ़े, पर कभी भी कायर पुरुष की भाँति पीछे न हटे।

जैन दिवाकरजी महाराज सच्चे वाग्मी थे। वे जहाँ कहीं भी प्रवचन देने के लिए बैठ जाते, वहाँ धीरे-धीरे प्रवचनस्थल श्रोताओं से भर जाता। उनकी आवाज बुलन्द थी। उसमें ओज था, तेज था। शैली अत्यन्त मधुर थी और विषय का प्रतिपादन बहुत ही स्पष्ट रूप से करते थे। प्रवचनों में आगमिक रहस्यों के उद्घाटन के साथ ही समाज-सुधार, राष्ट्र-उत्थान व जीवन की पवित्रता किन सद्गुणों के कारण से हो सकती है, इन पर वे अधिक बल देते थे। अपने विषय के प्रतिपादन हेतु रूपकों का तथा संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू के सुभाषित, सूक्तियों, दोहे, श्लोक, शेर, गजलें और भजन का प्रयोग भी करते थे। उनके साथ उनके शिष्य ऐसे भजन-गायक थे, जो उनके साथ जब गाने लगते तो एक समाँ बँध जाता और श्रोता मस्ती से झूमने लगता। उनके प्रवचनों की सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे किसी का खण्डन करना कम पसन्द करते थे। समन्वयात्मक शैली से वे अपने विषय का प्रतिपादन करते थे। यही कारण है कि जैन मुनि होने पर भी उनके प्रवचनों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी धर्मावलम्बी बिना संकोच के उपस्थित होते और उनके उपदेशों को सुनकर अपने आपको धन्य अनुभव करते। मैंने स्वयं ने उनके प्रवचनों को सुना; मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि साक्षात् सरस्वती पुत्र ही बोल रहा है। वाणी में इतना अधिक माधुर्य था कि सुनते-सुनते श्रोता अघाता नहीं। प्रवचनों में ऐसी चुटकियाँ लेते कि श्रोता हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाता। वे सदा प्रसन्न रहते थे और अपने श्रोताओं को भी मुहर्रमी सूरत में देखना नहीं चाहते थे। उनका मन्तव्य था—"तुम खिलो, तुम्हारी मधुर मुस्कान के साथ संसार का साथ है, यदि तुम रोओगे तो तुम्हारे साथ कोई भी रोना पसन्द नहीं करेगा। हँसते हुए जीओ और हँसते हुए मरो। और उसका राज है विकारों को कम करना, वासनाओं को नष्ट करना और साधनामय जीवन व्यतीत करना। आप किसी जीव को न सताओगे तो आपको भी कोई न सताएगा। प्रसन्नता बाँटो।"

वे अपने प्रवचनों में सदा सरल और सरस विषय को लेना पसन्द करते थे। गम्भीर और दार्शनिक प्रश्नों को वे इस तरह से प्रस्तुत करते थे कि श्रोताओं के मस्तिष्क में भारस्वरूप न प्रतीत हों। वे मानते थे कि प्रवचन केवल वाग्विलास नहीं है, वह तो जीवन-निर्माण की कला है। यदि प्रवचन सुनकर श्रोताओं के जीवन में परिवर्तन न आया, उनका सामाजिक और गार्हस्थिक जीवन न सुधरा, तो वह धार्मिक व आध्यात्मिक-साधना किस प्रकार कर सकेगा? अतः जीवन को सुधारना आवश्यक है। आज जन-जीवन विविध प्रकार की कुरूढ़ियों से जकड़ा हुआ है। वह प्रान्तवाद, पंथ-वाद के शिकंजों में बन्द है, अतः उसका जीवन एक विडम्बना है। हमें सर्वप्रथम मानव को उससे

मुक्त करना है। उसके पश्चात् ही हम उसमें धर्म का वीज-वपन कर सकेंगे, आध्यात्मिक भावना पैदा कर सकेंगे।

जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन जीवन-निर्माण की पवित्र प्रेरणा देने वाले होते थे। यही कारण है कि उनके प्रवचनों को सुनकर हजारों व्यक्ति आध्यात्मिक-साधना की ओर अग्रसर हुए। हजारों व्यक्तियों ने मांस-मदिरा का परित्याग किया और हजारों व्यक्तियों ने सात्त्विक जीवन जीने का व्रत स्वीकार किया। कसाई जैसे क्रूर व्यक्ति भी अहिंसक बने। शूद्र कहलाने वाले व्यक्तियों ने नियम को ग्रहण कर एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया।

मैंने अपने जीवन में अनेक बार उनके दर्शन किये। उनसे विचार-चर्चाएँ कीं। मुझे सदा उनका स्नेहपूर्ण सद्व्यवहार प्रभावित करता रहा। वे वार्तालाप और चर्चा में कभी भी उग्र नहीं होते। वे सर्वप्रथम शांति से प्रश्न को सुनते और फिर मुस्कराते हुए उत्तर देते। उत्तर संक्षेप में और सारगर्भित होता। निरर्थक बकवास करना उन्हें पसन्द नहीं था।

प्रवचनों के साथ ही साहित्य निर्माण के प्रति भी उनकी सहज अभिरुचि थी। जब भी समय मिलता उस समय वे लिखा करते। कभी पद्य में, तो कभी गद्य में; दोनों ही विधाओं में उन्होंने लिखा। किन्तु गद्य की अपेक्षा पद्य में अधिक लिखा। उनका मन्तव्य था, पद्य साहित्य सहज रूप से स्मरण हो जाता है। उसमें लय होती है, उसको गाते समय व्यक्ति अन्य सभी को भूल जाता है। गद्य साहित्य पढ़ा जा सकता है, पर उसे स्मरण नहीं रख पाता। इसीलिए सन्त कवियों ने कविताएँ अधिक लिखीं।

उनका पद्य और गद्य साहित्य सच्चा सन्त-साहित्य है। उसमें भाषा की सजावट, बनावट और अलंकारों की रमणीय छटा नहीं है और न कल्पना के गगन में ही उन्होंने विचरण किया है। सीधी-सादी सरल भाषा में उन्होंने जीवन, जगत्, दर्शन, धर्म और संस्कृति के वे तथ्य और सत्य प्रस्तुत किये हैं कि पाठक अपने जीवन का नव-निर्माण कर सकता है।

जैन दिवाकरजी महाराज एक पुण्य पुरुष थे। वे जिधर से भी निकलते उधर टिड्डीदल की तरह भक्तों की भीड़ जमा हो जाती। उनके नाम में ही ऐसा जादू था कि जनता अपने आप खिंची चली आती। एक बार जो आपके सम्पर्क में आ जाता वह भुलाने का प्रयत्न करने पर भी आपको भुला नहीं पाता।

आपके जीवन से सम्बन्धित अनेक संस्मरण स्मृत्याकाश में चमक रहे हैं। दिल चाहता है कि सारे संस्मरण लिख दूँ। परन्तु समयाभाव और ग्रन्थ की मर्यादा को संलक्ष्य में रखकर मैं संक्षेप में इतना ही निवदेन करना चाहूँगा कि वे एक सच्चे सन्त थे, अच्छे वक्ता थे और समाज के तेजस्वी नेता थे। उन्होंने समाज को नया मार्ग-दर्शन दिया, चिन्तन दिया। ऐसे महापुरुष के चरणों में स्नेह-सुधा-स्निग्ध श्रद्धार्चना समर्पित करते हुए मैं अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ।
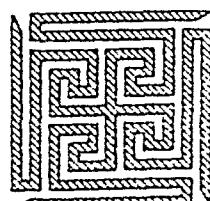
विश्व वन्दनीय जैन दिवाकर

☆ साध्वी कमलावती

श्रद्धेय जैन दिवाकरजी महाराज आज प्रत्यक्ष रूप से हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी उनके मुखारविन्द से निकली हुई अमृतवाणी जन-जन को जीने की सच्ची राह दिखा रही है। उनके सारगर्भित उपदेश जीवन को महान् बनाने की उत्तम औषधि हैं।

महामहिम जैन दिवाकरजी महाराज सर्वगुण सम्पन्न थे। विद्वत्ता के साथ-साथ धैर्यता, गम्भीरता, सरलता, समता, सहिष्णुता, विशालता, मृदुता, वात्सल्यभाव, करुणा आदि उनके सहज गुण थे। उनके दर्शन मात्र से रोगी रोग मुक्त हो जाते थे, उनके चरणोदक से असाध्य रोग भी नष्ट हो जाते थे, उनकी वाणी के प्रभाव से पतित भी पावन बनते थे। उनकी वाणी का प्रभाव सचमुच जादुई था, जोकि झोंपड़ी से लेकर राजमहलों तक को अपनी ओर आकर्षित किए हुए था।

पूज्य गुरुदेव तो एक ऐसे महापुरुष थे कि यदि उन्हें पारसमणि की उपमा दी जाय तो भी गलत होगी। क्योंकि कहा है—

लोहे को सोना करे, वो पारस है कच्चा।
लोहे को पारस करे, वो पारस है सच्चा॥

पारस का स्पर्श पाकर लोहा सोना बनता है। पर पारस नहीं; लेकिन गुरुदेव तो एक सच्चे पारस-पुरुष थे। जिनके चरणस्पर्श मात्र में ही पतित भी पावन बन जाता था एवं दुखी, असहाय मनुष्य भी अपने को सर्वप्रकार से सुखी अनुभव करते थे। लोहे को सोना नहीं, पारस ही बना देते थे, अर्थात् उसे भी अपना ही रूप दे देते थे।

जैन दिवाकरजी ने अपना ही रूप औरों को भी दिया—आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं—जैन दिवाकरजी की प्रतिभा को अक्षुण्ण बनाये रखने वाले, उनकी आन, मान और शान को कायम रखने वाले शान दिवाकर, प्रवचनकेशरी, कविकुलभूषण पण्डितरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज हैं, जोकि भारत के विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करके जन-जीवन में धर्मदीप प्रज्वलित कर रहे हैं। आपकी प्रेरणा से समाज के कई रचनात्मक कार्य प्रगति-पथ पर हैं। आप श्रद्धेय गुरुदेव की ख्याति में अभिवृद्धि करते हुए चार-चांद लगा रहे हैं।

अन्त में मैं हृदय की असीम आस्था के साथ विश्व-वन्दनीय जैन दिवाकरजी को शतशः प्रणाम करती हुई चन्द पंक्तियाँ लिखकर विराम लेती हूँ—

जयन्तियाँ उन्हीं की मनाते हैं, जिन्हें जय हार मिला है।
गद्दी पर उन्हीं को बिठाते हैं, जिन्हें अधिकार मिला है॥
जीवन के सफर में न जाने कितने मिले और बिछुड़े—
याद उन्हीं की करते हैं, जिनसे कुछ प्यार मिला है॥
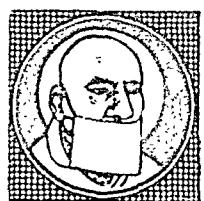
शतश: प्रणाम !

डॉ० शोभनाथ पाठक
एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत), पी. एच. डी. साहित्यरत्न (मेघनगर)

卐

जै—सा नाम दिवाकर वैसी दीव्य ज्योति अभिराम।
न—ही तुला पर कोइ गुरुतर, शतश: बार प्रणाम ।।
दि—या जगत को ज्ञान-धर्म, थाती अनुपम न्यारी।
वा—तावरण सुवासित करती, मुनिवर कृपा तुम्हारी ।।
क—रते हम गुणगान, गौरवान्वित जिससे संसार।
र—म्य रूप तप से है निखरा, सबको मिला संवार ।।
श्री—मुख से ज्ञानोदधि उमड़ा, जन-जन हित की वाणी।
चौ—रासी योनी बन्धन से, मुक्त हुए कई प्राणी ।।
थ—मा, पाप-अन्याय, अहिंसा-अपरिग्रह उफनाएँ।
म—हा पुरुष के प्रति, श्रद्धा सागर उर में नहीं समाए ।।
ल—क्ष्य जगत-कल्याण, धरा पर धर्म, कर्म उपकारी।
जी—वन भर युगबोध, वन्दना हो स्वीकार हमारी ।।
म—नुज मनुजता को परखे, संसार संवरता जाये।
हा—हाकार शमन हो जाए, आकुल हृदय जुड़ावे ।।
रा—ग-द्वेष, उन्माद-विषमता, कर वाणी से भागे।
ज—प-तप-योग-साधनाओं से, भाग्य हमारे जागे ।।
सा—नन्दित श्रद्धाञ्जलि अर्पित, करो इसे स्वीकार।
ह—म विनयानत वन्दन करते, सबका हो उद्धार ।।
ब—नी समन्वयमयी साधना, सुखी बने संसार।

धण्णो य सो दिवायरो

✡ श्री उमेश मुनि 'अणु'

धण्णा नीमचभूमी सा,
धण्णं तं उत्तमं कुलं।
धण्णो, कालोय सो जंमि,
जाओ मुणी दिवायरो ॥१॥

केसर – जणणी वीरा,
जाए स–प्पिय-णंदणो।
ठाविओ मोक्ख–मग्गंमि,
चोथमल्लो मुणी वरो ॥२॥

जिण – सासण – मगणे,
हुकुम - गच्छ - पंगणे।
उग्गओ हारओ जड्डं,
भत्त - कुल - दिवायरो ॥३॥

मंजुला सरला वाणी,
जण - मण - विआसगा।
जस्साहिणंदणिज्जा ऽऽसी,
धण्णोय सो दिवायरो ॥४॥

जण - भासाइ सत्तत्तं,
गीयं हिअय - हारियं।
कल्लाण - पेरगं जेण,
धण्णो य सो दिवायरो ॥५॥

सासण - रसिआ जेण,
कारिआ वहुणो जणा।
जणाण वल्लहो खाओ,
धण्णो य सो दिवायरो ॥६॥

पयावइव्व पत्ताइं,
वीरो सीसे घडीअ जो।
पहावगो सुधम्मस्स,
धण्णो य सो दिवायरो ॥७॥

कया कया सुकालम्मि,
णिप्फज्जइ जणप्पिओ।
वाणी-पहू जई सेट्ठो;
साहू धम्म - धुरन्धरो ॥८॥

वरिसाण सयं एयं,
जम्मस्स जस्स मंगलं।
कल्लाणं सरणं तस्स,
चेइअं - अणुणा कयं ॥९॥

नयनों के तारे

✡ श्री मूलमुनि जी

जैन जगत के पावन संत महान् थे।
जन-जन के प्यारे थे, नयनों के तारे थे॥
गंगाराम तात थे, केशरवाई मात के—
कुल उजियारे थे, नयनों के तारे थे ॥१॥
तज जग के जंजाल वे, गुरुवर हीरालाल से
महाव्रत धारे थे, नयनों के तारे थे ॥२॥
सब शास्त्रों का सार ले, वनकर गुण भंडार वे,
अघ हरनारे थे, नयनों के तारे थे ॥३॥
'मूल' दया की खान थे, प्रेम के वरदान थे।
कष्ट निवारे थे, नयनों के तारे थे ॥४॥

✡

श्रद्धा के सुमन

☆ श्री दिनेश मुनि

परमादरणीय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। यह आल्हाद का विषय है। दिवाकरजी महाराज स्थानकवासी समाज के एक वरिष्ठ सन्तरत्न थे। यद्यपि मैंने उनके दर्शन नहीं किये हैं, पर श्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज एवं साहित्य मनीषी श्री देवेन्द्र मुनिजी से उनके सम्बन्ध में सुना है और दिवाकरजी महाराज के सम्बन्ध में प्रकाशित पुस्तकें पढ़ी हैं। इसके आधार से मैं यह निस्संकोच लिख सकता हूँ कि वे एक वरिष्ठ सन्त थे। वे सच्चे दिवाकर थे। उनका प्रभाव राजा से लेकर रंक तक, हिन्दू से लेकर मुसलमान तक, साक्षर से लेकर निरक्षर तक समान रूप से था। उनके सत्संग को पाकर अनेक व्यक्तियों के चरित्र में निखार आया। अनेकों ने हिंसा और दुर्व्यसन जैसे जघन्य कृत्यों का परित्याग कर एक आदर्श-जीवन जीने की प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कीं। अनेकों ने मानवता का भव्य रूप जन-समस्त के समक्ष प्रस्तुत किया कि जिन्हें लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे वे भी पवित्र जीवन जीकर सच्चे मानव बन गए।

आज भी जन-मन के सिंहासन पर जैन दिवाकरजी महाराज आसीन हैं। लोग उन्हें श्रद्धा से स्मरण करते हैं। उन्होंने जिनशासन की अत्यधिक प्रभावना की। ऐसे महान् प्रभावक महापुरुष के श्रीचरणों में मैं श्रद्धा के सुमन समर्पित करता हूँ।

(१)

आपदाओं में कभी ना डगमगाये।
साधना संयम के तुमने गान गाये।
गगन में चमका "दिवाकर" जब।
धरा ने वन्दना के गीत गाये॥

(२)

जिन्दगी के जहर को अमृत बनाकर तुम पी गये हो।
शूल में भी फूल जैसे मुस्कुराकर तुम गये हो।
मौत बेचारी तुम्हें क्या छू सकेगी।
लाखों दिलों में प्यार बनकर बस गये हो॥

(३)

एकता और प्यार का पैगाम लाये।
धर्म के व्यवहार से जन-मन पे छाये।
साम्य, समता, सौम्य के आदर्श तुम।
युग-युगों तक कैसे कोई भूल पाये॥

☆

चंदनमल 'चाँद'
प्रधान मन्त्री—
भारत जैन महा-
मण्डल, बम्बई।
सम्पादक—
'जैन जगत'
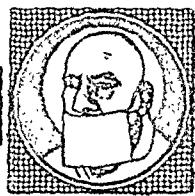
बहुमुखी प्रतिभा के धनी

☆ महासती श्री पुष्पावती, 'साहित्यरत्न'

जैन दिवाकर श्रीचौथमलजी महाराज बहुमुखी प्रतिभा के धनी, प्रसिद्धवक्ता, विचारक, सन्त-रत्न थे। मैंने सर्वप्रथम उनके दर्शन उदयपुर में किये और उनके प्रवचन भी सुने। उनके प्रवचनों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वे गम्भीर से गम्भीर विषय को इस तरह सरस शैली में प्रस्तुत करते थे कि श्रोता उस गम्भीर विषय को सहज ही हृदयंगम कर लेता। उनके प्रवचनों में जैन आगम के रहस्यों के साथ वैदिक-परम्परा के ग्रन्थों के सुभाषित, सूक्तियाँ, उक्तियाँ और उर्दू की शायरी तथा संगीत का ऐसा मधुर समन्वय होता था कि श्रोता कभी ऊबता नहीं, थकता नहीं था। कभी-कभी वे जैन लोक-कथाएँ, बौद्ध-कथाएँ, भी प्रस्तुत करते। उसमें सामाजिक रूढ़ियों पर, लोक धारणाओं पर करारे व्यंग्य होते जो तीर की तरह हृदय को भेदते। कभी वीर-रस की गंगा प्रवाहित होती तो कभी हास्यरस की यमुना बहने लगती और कभी शान्तरस की सरस्वती का प्रवाह प्रवाहित होता। वे वस्तुतः वाणी के जादूगर थे। उनके प्रवचनों में हिन्दू और मुसलमान, ईसाई, पारसी, सभी भेद-भाव को भूलकर उपस्थित होते और प्रवचन को सुनकर उनके हृदय के तार झनझनाने लगते। वे कहने लगते कि हमने जैन दिवाकरजी महाराज की जैसी प्रशंसा सुनी थी उससे भी अधिक उनका तेजस्वी व्यक्तित्व है। ये जैन साधु हैं, पर उनके प्रवचनों में मानवता की बातें हैं, कोई भी साम्प्रदायिक विचार-चर्चा नहीं है। सरिता की सरस-धारा की तरह उनकी वाणी का प्रवाह चलता रहता है अपने लक्ष्य की ओर। मैंने अनेक बार उदयपुर वर्षावास में उनके प्रवचन सुने। मैं स्वयं भी उनसे बहुत प्रभावित हुई। जैन दिवाकरजी महाराज की दूसरी विशेषता मैंने देखी कि वे एक ऊँचे साधक थे। नवकार महामंत्र के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। वे जीवन के कल्याण के लिए, विचारों की निर्मलता के लिए, हृदय की शुद्धि के लिए उसका जप आवश्यक मानते थे। एक दिन वार्तालाप के प्रसंग में उन्होंने मुझे बताया—कि नवकार मन्त्र का जाप सविधि किया जाय तो उसके जप का अपूर्व आनन्द आ सकता है। जप एक साँस में करना चाहिए। जप करते समय केवल एक पद को लेना चाहिए, साथ ही उस पद के रंग का भी चिन्तन करना चाहिए। जैसे **"नमो अरिहंताणं"** इस पद को लें। इस पद का वर्ण है श्वेत। इस पद का स्थान मस्तिष्क है जिसे योगशास्त्र में सहस्रार चक्र कहा है। उस समय श्वास की स्थिति अन्तर्कुम्भक होनी चाहिए। इसी तरह **"नमो सिद्धाणं"** पद को लेकर भी जाप किया जाय। सिद्धों का रंग लाल बताया गया है; ध्यान करते समय लाल रंग चिन्तन रूप में रहना चाहिए। जाप करते समय ललाट के मध्य भाग में ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। जिसे आज्ञा चक्र कहते हैं। सभी पद के ध्यान करते समय अन्तर्कुम्भक की स्थिति होनी चाहिए। **"नमो आयरियाणं"** पद का जप करते समय उसके पीले रंग की कल्पना करनी चाहिए उसका स्थान गला है जिसे विशुद्धि चक्र कहते हैं। हमारे आवेगों को यह स्थान नियन्त्रित करता है। **"नमो उवज्झायाणं"** इस पद का रंग नीला है, इसका स्थान हृदयकमल है। इसे मणिपूर चक्र कहते हैं। **"नमो लोए सव्व साहूणं"** इस पद का रंग कृष्ण है और इसका स्थान नाभि है। इस प्रकार एक-एक पद को लेकर जप करने से मन चंचल नहीं होता तथा ध्यान और जप का विशिष्ट आनन्द आता है।" मुझे अनुभव हुआ कि जैन दिवाकरजी महाराज इस सम्बन्ध के अच्छे ज्ञाता हैं।

मैं अपनी सद्‌गुरुणीजी विदुषी महासती श्री सोहनकुंवरजी महाराज के साथ अनेक बार

वर्षावास में आपश्री के दर्शन करने गयी। खाली गयी और ज्ञान की झोली भरकर लाई वे समन्वय के सजग प्रहरी थे। जैन समाज में एकता हो यह उनकी तमन्ना थी। यही कारण है कि उन्होंने सर्वप्रथम पहल की और ब्यावर में पाँच सम्प्रदायों का एक संगठन बना, पर उस समय पाँचों सम्प्रदायों में सबसे अधिक तेजस्वी व्यक्तित्व आपश्री का ही था, पर आपश्री ने कोई भी पद या अधिकार न लेकर और दूसरों को अधिकार देकर निस्पृहता का जो ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया वह अपूर्व कहा जा सकता है।

मैं उस स्वर्गीय महापुरुष के चरणों में अपने श्रद्धा के सुमन समर्पित करती हुई गौरव का अनुभव करती हूँ।

जिनके पद में....

—कवि श्री अशोक मुनि

जिनके पद में बीता मेरा प्यारा बचपन।
जिनके पद में प्राप्त हुआ महाव्रतों का धन ॥
जिनके पद में प्राप्त हुई थी विद्या रेखा।
जिनके पद में मैंने नूतन जीवन देखा ॥

जिनके पद सरसिज पर, मुग्ध बना दिन रैन।
वे सुरभित पद कहाँ गये, खोजें प्यासे नैन ॥

जिनके पद में होता था, सज्जन सम्मिलन।
जिनके पद में चमका था कइयों का जीवन ॥
जिनके पद में होता नव सामाजिक सर्जन।
जिनके पद में होता था नूतन आकर्षण ॥

जिनके पद में जन कई, कहलाते थे धन्य।
आज वे ही पद तज हमें, चले गये कहीं अन्य ॥

जिनके पद रज से, कइयों ने कष्ट मिटाया।
जिनके पद रज से, कइयों ने जीवन पाया ॥
जिनके पद रज से, कइयों ने अघमल खोया।
जिनके पद रज से, कइयों ने अन्तर धोया ॥

तीर्थराज उन पदों पर, भक्तों की थी भीड़।
"अशोक मुनि" उन पद विना नैना वरसे नीर ॥

एक क्रान्तदर्शी युगपुरुष

—राजेन्द्र मुनि शास्त्री

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के मैंने दर्शन नहीं किये। उनके स्वर्गवास के चार वर्ष पश्चात् मेरा जन्म हुआ। काश, यदि उस महापुरुष के दर्शन का सौभाग्य मुझे भी मिलता तो कितना अच्छा होता। वे लोग धन्य हैं जिन्होंने उस महापुरुष के दर्शन किये हैं, उनके प्रवचन सुने हैं, उनकी सेवा का लाभ लिया। मैंने श्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थानकेसरी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज साहब तथा साहित्य मनीषी श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज से उनके सम्बन्ध में सुना कि जैन दिवाकरजी महाराज एक बहुत ही तेजस्वी क्रांतदर्शी युगपुरुष थे। उन्होंने अपने दिव्य प्रभाव से, साधना से, अत्यधिक धर्म की प्रभावना की। ऐसे पुरुष वर्षों के पश्चात् होते हैं। जिनका व्यक्तित्व और कृतित्व इतना निखरा हुआ होता है कि वे जन-मानस का प्रतिनिधित्व करते हैं। अपने सदाचरण से एक ऐसा आदर्श उपस्थित करते हैं जिससे भूले-भटके जीवन-राही सही मार्ग पर चलने लगते हैं। उनकी वाणी में ऐसा अद्भुत तेज होता है कि उसके प्रभाव से जनता दुर्व्यसनों का सहज ही परित्याग कर देती है और ऐसा पवित्र जीवन जीने लगती है कि जिसे देखकर सहज ही आश्चर्य होता है।

मैंने सुना और पढ़ा है कि श्री दिवाकरजी महाराज के सम्पर्क को पाकर पतित से पतित व्यक्ति भी पावन बन गया; हिंसक व्यक्तियों ने हिंसा का परित्याग कर दिया और वे अहिंसक जीवन जीने लगे। शराबियों ने शराब पीना छोड़ दिया, वेश्याओं ने अपना अनैतिक व्यापार बन्द कर दिया तथा ठाकुर, राजा और महाराजाओं ने शिकार आदि खेलना बन्द कर दिया। यह थी उनकी वाणी की अद्भुत शक्ति। आज भी राजस्थान और मध्य प्रदेश के किसी भी ग्राम में चले जायें तो वहाँ पर आपको सहज रूप से लोगों के मानस में जैन दिवाकरजी के प्रति जो गहरी निष्ठा है वह सुनने को मिलेगी। काल का प्रवाह भी उनकी स्मृतियों को धुंधली नहीं कर सका है।

मुझे अपार प्रसन्नता है कि स्मृति-ग्रन्थ के माध्यम से मुझे भी उस सन्तरत्न के चरणों में अपने श्रद्धा के सुमन समर्पित करने का पवित्र प्रसंग प्राप्त हुआ है। मैं अपनी अनन्त श्रद्धा उनके चरणों में समर्पित करता हूँ।

☆

महायोगी को वंदन !

—श्री टेकचन्दजी महाराज, (चण्डीगढ़)

श्री चौथमलजी महाराज उस राजतन्त्र के युग में पैदा हुए जो पर्दानशीनी और घुटन का युग था। रजवाड़ा शक्ति का बोलबाला था। उस वक्त शाही महलों में, राजभवनों में परिन्दा भी पर नहीं मार सकता था। यही श्रीचौथमलजी महाराज का पुण्य प्रभाव था जो गुजरात में पालमपुर के नवाब, मेवाड़ में उदयपुर नरेश महाराणा फतहसिंह के राजभवन में प्रवेश किया और विलासों में डूबे राजा-रानियों को भगवान महावीर की वाणी का सन्देश सुनाया। उन्होंने गरीबों की झोंपड़ियों से लेकर राजमहलों तक अहिंसा की ज्योति फैलायी। उस महान् योगी महापुरुष के चरणों में कोटि-कोटि वंदन !

☆

☆ मुनि श्री कीर्तिचन्द्रजी 'यश' (शक्ति नगर, दिल्ली)
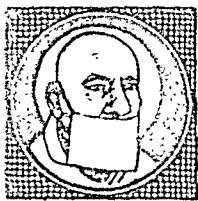
जैन-दिवाकर ज्योति

(१)

आप एक चमकते मोती थे,
आप एक जगमगाती ज्योति थे।
आप एक महकते हुए गुलशन थे,
आप एक जलती हिंसा को चुनौती थे ॥

(२)

तेज आँखों में, मुँह पे लाली थी,
शान्त मुद्रा, जवाँ रसीली थी।
क्या-क्या वतलाऊँ आपकी सिफ्तें,
आपकी हर अदा निराली थी ॥

(३)

सच्चे साधक थें, सत्यरक्षी थे,
सत्य वक्ता थे, आत्मलक्षी थे।
सीधा-सादा सा, सच्चा जीवन था,
आप मुनिराज ! शुक्लपक्षी थे ॥

(४)

जिनवाणी के आप अध्येता थे,
अनेक ग्रन्थों के आप प्रणेता थे।
सन्त निस्पृह थे, सच्चे साधु थे,
आप सच्चे समाज नेता थे ॥

(५)

तूने अन्धों को रोशनी वख्शी,
तूने दुनिया को ताजगी वख्शी।
तेरे फैजो-कदम के क्या कहने !
तूने मुर्दों को जिन्दगी वख्शी ॥

(६)

जगद्वल्लभ थे, सवके प्यारे थे,
सन्त-सतियों के तुम सहारे थे।
राजमहलों से झोंपड़ी तक में,
हमने चर्चे सुने तुम्हारे थे ॥

(७)

जैन दिवाकर, चौथमल मुनि,
आत्म-तेज की ज्योति चिरन्तन।
पुण्यमयी इस जन्म-शती पर;
स्वीकृत कर लीजे अभिनन्दन ॥

☆
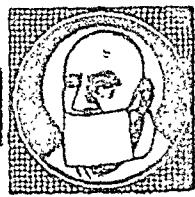
जैन दिवाकर : जग दिवाकर

✡ रतन मुनि
(मेवाड़ भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज के सुशिष्य)

जैनधर्म के प्रसिद्ध तथा सफल सिद्धान्तों पर चलकर जिन महामुनियों ने अपना उत्थान किया। जिनके उद्बोधन से सैकड़ों-हजारों बल्कि लाखों प्राणियों के जीवन में परिवर्तन आया। जन-जन में जिनके संयम की सौरभ सदा सुवासित रही, उन्हीं महान् सन्तों में से एक शताब्दि पूर्व-जन्म लेने वाले हमारे स्वर्गीय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज हुए हैं।

साधना के क्षेत्र में जिनकी आत्म-चेतना काफी सबल और सक्रिय तथा गतिशील थी। आज भी जिनके विमल विशुद्ध व्यक्तित्व की मनोहर झांकी जन-जन के हृदय में छाई हुई है।

आप एक सफल चरित्रकार भी हुए थे। कई भव्य सुन्दर, सरस, सारगर्भित तथा वैराग्य-रस से ओत-प्रोत चरित्र आपने बनाये हैं।

आपके प्रवचनों में उपनिषद्, रामायण, महाभारत, कुरान-शरीफ, धम्मपद, जैनागम तथा धर्म-सम्मत नीतियों का बड़ा ही सुन्दर विवेचन-युक्त ज्ञान का सागर लहराता था। यही कारण रहा है कि आपके उपदेशों को सुनने के लिए जैन ही नहीं ३६ ही कौम लालायित रहती थी।

आपकी वाणी का असर महलों से लेकर झोंपड़ी तक, राजा से लेकर रंक तक तथा सैकड़ों-हजारों राणा-महाराणा, जागीरदार, उमराव, इन्स्पेक्टर, एलकार, नवाब तथा अँग्रेजों पर पड़ा। जिन्होंने आपके सन्देशों से प्रभावित होकर जीवन-भर के लिए मद्य-मांस, शिकार, जूआ इत्यादि अनिष्ट व्यसनों के त्याग किये। ऐसी एक नहीं अनेक विशेषताएँ आपमें विद्यमान थीं। जिसके कारण आप प्रसिद्ध वक्ता, जगत्‌वल्लभ तथा जैन के ही नहीं जन-जन-मानस के दिवाकर बन गये। हालांकि.......मैंने आपके दर्शन तथा वाणी का लाभ नहीं लिया, फिर भी आपके इस दिव्य तेजस्वी प्रभाव ने मेरे अन्तर-हृदय को प्रभावित कर दिया।

आप एक सफल कवि, लेखक, सुवक्ता, चरित्रकार, सुगायक, सम्पादक, धर्मप्रचारक आदि इन सभी गुणों से भरे-पूरे थे।

जगत्‌वल्लभ प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर स्वर्गीय गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज के चरणों में श्रद्धा के साथ चन्द भाव-शब्द-सुमन अर्पित करता हूँ।

✡

श्रद्धा सुमन....

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज एक तेजस्वी समाज-सुधारक सन्त थे। उन्होंने अपना समूचा जीवन मानव-कल्याण में समर्पित कर दिया। उन्हें वस्तुतः जैन सन्त नहीं, बल्कि एक राष्ट्रसन्त के रूप में प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। मुनिश्री का हर पल राष्ट्र में व्याप्त असमानता, अव्यवस्था, अन्धविश्वास एवं अधार्मिक वातावरण को दूर करने में लगा था। ऐसे महामानव के चरण-कमलों में मैं अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाता हूँ।

—डॉ० भागचन्द्र जैन 'भास्कर'
—अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय

संत-परम्परा की एक अमूल्य निधि !

✯ मुनि श्री प्रदीपकुमार 'शशांक'

भारतीय जन-जीवन की पृष्ठभूमि के निर्माण में ऋषियों, मनीषियों और मनस्वी चिन्तकों का महान् योगदान रहा है। समय-समय पर सन्तों ने इस देश में ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की त्रिवेणी मानव-हृदय में प्रवाहित कर, जनमानस को आध्यात्मिक चेतना का अमूल्य अवसर प्रदान किया है। वैसे भी भारतवर्ष का लोक-जीवन सदैव धर्म एवं संस्कृति से आबद्ध रहा है। जिसमें श्रमण संस्कृति का भी अद्वितीय योगदान रहा है।

श्रमण संस्कृति सदैव आचार प्रधान रही है। जिसके संरक्षक प्रायः जैन सन्त रहे हैं, जिनका मुख्य ध्येय मोक्ष और साधना धर्म है। भारतीय इतिहास के शौर्यपूर्ण अनेक स्वर्णिम-पृष्ठ महातपस्वी नर-रत्नों की गौरव-गाथाओं से भरे हुए हैं।

आध्यात्मिक योगी, स्वनामधन्य, जैन दिवाकर स्वर्गीय श्री चौथमलजी महाराज जैन जगत की सन्त-परम्परा के एक अमूल्य निधि के रूप में श्रमण संघ को गौरव-प्रदाता एक महान् संत हुए हैं। निःसन्देह आपका भव्य-ललाट, ओजस्वी, तेजस्वी, यशस्वी, वचस्वी अनेकानेक सद्गुणों से ओत-प्रोत सत्य-सादगी की साकार मूर्ति रूप हुए। आपने जैन जगत् के दिव्य-भाल पर एक अनूठी आकर्षक व्यक्तित्व की अमिट छाप डाली। आपने अपने साधनाकाल में स्व-पर-कल्याण की बहुमुखी विराट् भावना को लेकर जो ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किए। उन्हें शब्द-जाल में बाँधना अशक्य है।

वस्तुतः वे जैन समाज के महान् सन्तरत्न थे। अन्त में मैं उनकी जन्म शताब्दी के पावन उपलक्ष्य के पावन प्रसंग पर उनके अमूर्त, अपार्थिव व्यक्तित्व को यह श्रद्धा का सुमन अर्धविकसित रूप में हार्दिक भावांजलि के स्वरूप में समर्पित कर अपने आप को धन्य एवं परम भाग्यशाली समझ रहा हूँ। ✯

श्रद्धा के दो सुमन

✯ संगीत प्रेमी, बाबा विजयमुनि

(गोरे गाँव, बम्बई)

पूज्य श्री चौथमलजी महाराज भारत के एक महान् सन्त थे। एक सम्प्रदाय के गुरु होकर भी आपने सब सम्प्रदायों का प्रेम अर्जित किया इससे स्पष्ट होता है कि आप एक सम्प्रदाय में रहकर भी साम्प्रदायिकता से ऊपर रहते थे।

आपकी संयम-साधना ने आपको जन-जन के आकर्षण का केन्द्र बना दिया। आपकी वाणी में अलौकिक प्रभाव था। आपका जीवन, वाणी तथा चारित्र के प्रभाव का एक प्रकार से संगम-स्थल था।

आपने भगवान महावीर के अहिंसा धर्म का चहुँमुखी प्रचार कर; जैन शासन की जो अनुपम सेवा की है उसकी स्मृति लोक-मानस में सदैव सुरक्षित रहेगी।

सोजत तथा जोधपुर में मुझे आपके भव्य दर्शन करने का सौभाग्य मिला। आपके व्यक्तित्व ने मुझे अति प्रभावित किया।

आपका दर्शन मेरे जीवन-क्षेत्र में दीक्षा के दृढ़ संकल्प का एक प्रकार से बीजांकुर बन गया। उस महान् मुनीश्वर के चरण-सरोजो में मैं अपने श्रद्धा के सुमन अर्पण करके सन्तोष करता हूँ।

प्रेम की हिलोरें उठीं...

✡ उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्रजी महाराज

जब तक देह में जीवन की ज्योति रही,
त्याग की प्रखर ज्योति जलती रही जगमग
अन्धकार आया नहीं वासना का पास कभी
दिवाकर घिरता है तम से कभी नहीं।
मूक पशुओं के प्रति
करुणा का झरना बहा
बस, ठौर-ठौर फूँका
दया का अमर शंख
बलिदान बन्द हुए, मांसाहार बन्द हुआ
विलासी राज-भवनों में
दया-शून्य सदनों में
गूँज उठा दया का
सब ओर सिंहनाद !
भूल कौन सकता है।
दया का प्रचार यह ?
जिधर भी निकल गये
जन-मानस में
प्रेम की हिलोरें उठीं,
श्रद्धा और भक्ति की।
राजा आए
ज्ञानी आए
मूढ़ आए
जो भी आए
सभी लोग
गद्-गद् हो गए
प्रेम में विभोर हो !
सीधी-सादी भाषा थी
सीधा-सादा उपदेश
किन्तु क्या वह जादू था,
जो भी हृदय में बैठ जाता था !
वाणी की मिठास
बस, मिसरी-सी घुली होगी,
जो भी सुन लेता
फिर भूल नहीं पाता था
बूढ़े, बाल, युवाजन
नर और नारी सब
मग्न ही बैठे रहते
झूम-झूम जाते थे !
सहस्र-सहस्र कण्ठ
जय-जय-जयकार करते.
गगन और भूमि तब
गूँज-गूँज जाते थे।

परोपकारी जीवन

परमप्रसिद्ध जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज के स्वर्गवास के समाचार से देहली में विराजमान जैनाचार्य पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज तथा उनके अनुयाइयों को परम दुःख हुआ। पूज्य जी ने उनके निधन को जैन समाज की एक महान् क्षति बताया। उन्होंने आगे दिवंगत आत्मा के पुनीत एवं आदर्श-जीवन की चर्चा करते हुए कहा कि गृहस्थावस्था में मैंने स्वतः उनसे उनके पद सीखे थे। उनका व्यक्तिगत जीवन परोपकार में रत रहा, उनके प्रभावशाली उपदेशों से जैन समाज का बड़ा कल्याण और जैनधर्म का व्यवस्थित प्रचार हुआ।

—स्व० आचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज

[स्वर्गवास के प्रसंग पर प्राप्त पत्र से]

प्रणाम, एक सूरज को

☆ डॉ० नेमीचन्द जैन
(संपादक—तीर्थंकर)

मुनि श्री चौथमलजी को श्रद्धांजलि अर्पित करना सचमुच एक बहुत कठिन कार्य है। वह इसलिए कि उनका सारा जीवन श्रमण-संस्कृति की उत्कृष्टताओं पर तिल-तिल न्योछावर था, वे उसके जीवन्त-ज्वलन्त प्रतिनिधि थे, उनका सारा जीवन उन लक्ष्यों की उपलब्धि पर समर्पित था जिनके लिए भगवान् महावीर ने बारह वर्षों तक दुर्द्धर तप किया, और जिन्हें सदियों तक जैनाचार्यों ने अपनी कथनी-करनी की निर्मलता द्वारा एक उदाहरणीय उज्ज्वलता के साथ प्रकट किया।

मुनिश्री असल में व्यक्ति-क्रान्ति के महान् प्रवर्त्तक थे, उन्होंने अहसास किया था कि समाज में व्यक्ति के जीवन में कई शिथिलताओं, दुर्बलताओं तथा विकृतियों ने द्वार खोल लिए हैं, और दुर्गन्धित नालियों द्वारा उसके जीवन में कई अस्वच्छताएँ दाखिल हो गयी हैं, अतः उन्होंने सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि इन दरवाजों को मजबूती से बन्द कर दिया, तथा नैतिकता और धार्मिकता के असंख्य उज्ज्वल रोशनदान वहाँ खोल दिये। इस तरह वे जहाँ भी गये, वहाँ उन्होंने व्यक्ति को ऊँचा उठाने का काम किया। एक बड़ी बात जो मुनि श्री चौथमलजी के जीवन से जुड़ी हुई है, वह यह कि उन्होंने जैनमात्र को पहले आदमी माना, और माना कि आदमी फिर वह किसी भी कौम का हो, आदमी है; और फिर आदमी होने के बाद जरूरी नहीं है कि वह जैन हो (जैन तो वह होगा ही) चूँकि उन्होंने इस बात का लगातार अनुभव किया कि जो नामधारी जैन हैं उनमें से बहुत सारे आदमी नहीं हैं।

क्योंकि वे इस बात को बराबर महसूसते रहे कि भगवान् महावीर ने जाति और कुल आधार पर किसी आदमी को छोटा-बड़ा नहीं माना, उनकी तो एक ही कसौटी थी—कर्म; कर्मणा यदि कोई जैन है तो ही वे उसे जैन मानने को तैयार थे, जन्म से जैन और कर्म से दानव व्यक्ति को उन्होंने जैन मानने से इनकार किया। यह उनकी न केवल श्रमण-संस्कृति को वरन् सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को एक अपूर्व देन है, इसीलिए वे भील-भिलालों के पास गये, पिछड़े और पतित लोगों को उन्होंने गले लगाया, उनके दुःख-दरद, हीर-पीर को जाना-समझा, उन्हें अपनी प्रीति-भरी आत्मीयता का पारस-स्पर्श दिया, और इस तरह एक नये आदमी को जन्मा। हो सकता है कई लोग जो गृहस्थ, या साधु हैं, उनके इस महान् कृतित्व को चमत्कार मानें, किन्तु मुनिश्री चौथमलजी का सबसे बड़ा चमत्कार एक ही था और वह यह कि उन्होंने अपने युग के उन बहुत से मनुष्यों को, जो पशु की बर्बर भूमिका में जीने लगे थे, याद दिलाया कि वे पशु नहीं हैं, मनुष्य हैं, और उन्हें उसी शैली-सलीके से अपना जीवन जीना चाहिये।

मनुष्य को मनुष्य की भूमिका से स्खलित होने पर जो लोग उसे पुनः मनुष्य की भूमिका में वापस ले आते हैं, सन्त कहलाते हैं।

मुनिश्री केवल जैन मुनि नहीं थे, मनुजों में महामनुज थे। वे त्याग और समर्पण के प्रतीक थे। निष्कामता और निश्छलता के प्रतीक थे। निर्लोभ और निर्वैर, अप्रमत्तता और साहस, निर्भीकता और अविचलता की जीती-जागती मूर्ति थे। क्या यह सच नहीं है कि ऐसा मनस्वी सन्त पुरुष हजारों-हजार वर्षों में कभी-कभार कोई एक होता है, और बड़े भाग्योदय से होता है।

मुनि यदि वह केवल मुनि है तो उसका ऐसा होना अपर्याप्त है, चूँकि मुनि समाज से अपना कायिक पोषण ग्रहण करता है, उसे अपनी साधना का साधन बनाता है अतः उस पर समाज का जो ऋण हो जाता है, उसे लौटाना उसका अपना कर्त्तव्य हो जाता है, माना समाज इस तरह की कोई अपेक्षा नहीं करता (करना भी नहीं चाहिये), किन्तु जो वस्तुतः मुनि होते हैं, वे समाज के सम्बन्ध में चिन्तित रहते है और उसे अपने जीवन-काल में कोई-न-कोई आध्यात्मिक-नैतिक खुराक देते रहते हैं, यह खुराक प्रवचनों के रूप में प्रकट होती है।

मुनिश्री चौथमलजी एक वाग्मी सन्त थे, वाग्मी इस अर्थ में कि वे जो-जैसा सोचते थे, उसे त्यों-तैसा अपनी करनी में अक्षरशः जीते थे। आज बकवासी सन्त असंख्य-अनगिन हैं, क्या हम इन्हें सन्त कहें ? बाने में भले ही उन्हें वैसा कह लें, किन्तु चौथमल्ली कसौटी पर उन्हें सन्त कहना कठिन ही होगा। जिस कसौटी पर कसकर हम मुनिश्री चौथमलजी महाराज को एक शताब्दि-पुरुष या सन्त कहते हैं, वास्तव में उस कसौटी की प्रखरता को बहुत कम ही सहन कर सकते हैं।

उन जैसा युग-पुरुष ही समाज की रगों में नया और स्वस्थ लहू दे पाया, अन्यों के लिए वह डगर निष्कण्टक नहीं है, कारण बहुत स्पष्ट है, उनकी वाणी और उनके चारित्र में एकरूपता थी; जो जीभ पर था, वही जीवन में था; उसमें कहीं-कोई दुई नहीं थी, इसीलिए यदि हमें उस शताब्दि-पुरुष को कोई श्रद्धांजलि अर्पित करनी है तो वह अंजलि निर्मल-प्रामाणिक आचरण की ही हो सकती है, किसी शब्द या मुद्रित ग्रन्थ या पुस्तक की नहीं। उस मनीषी ने साहित्य तो सिरजा ही, एक सांस्कृतिक सामन्जस्य स्थापित करने के प्रयत्न भी किये। इस प्रयत्न के निमित्त वे स्वयं उदाहरण बने, क्योंकि वे इस मरम को जानते थे कि जब तक आदमी स्वयं उदाहरण नहीं बनता, तब तक अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। अधिकांश लोग उदाहरण देते हैं, उदाहरण बन नहीं पाते; आज उदाहरण देने वाले लोग ही अधिक हैं, उदाहरण बनने वाले लोगों का अकाल पड़ गया है। लोग कथाएँ सुनाते हैं, और सभा में हँसी की एक लहर एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ जाती है, बात आयी-गयी हो जाती है, किन्तु उससे न तो वक्ता कुछ बन पाता है, न श्रोता।

प्रसिद्धवक्ता मुनिश्री चौथमलजी वक्ता नहीं थे, चरित्र-सम्पदा के स्वामी थे, उनका चारित्र तेजोमय था, वे पहले अपनी करनी देखते थे, फिर कथनी जीते थे; वस्तुतः संतों का सम्पूर्ण कृतित्व भी इसी में है, इसलिए क्रान्ति के लिए जो साहस-शौर्य चाहिये वह उस शताब्दि-पुरुष में जितना हमें दिखायी देता है, उतना उनके समकालीनों और उत्तरवर्तियों में नहीं। यही कारण था कि वे एकता ला सके और एक ही मंच पर कई-कई सम्प्रदायों के मुनिमनीषियों को उपस्थित कर सके, उनका यह अवदान न केवल उल्लेखनीय है वरन् मानव-जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। अग्न्यक्षरों में उत्कीर्णित उनका वह पुरुषार्थ आज भी हमारे सन्मुख एक प्रकाश-स्तम्भ की भाँति वरदान का हाथ उठाये खड़ा है उस कवच-जैसा जो किसी भी संकट में हमारी रक्षा कर सकता है। सब जानते हैं कि जब कोई आदमी महत्त्वाकांक्षाओं की कीच से निकल कर एक खुले आकाश में आ खड़ा होता है, तब लगता है कि कोई युगान्तर स्थापित हुआ है, युग ने करवट ली है, कोई नया सूरज उगा है, कोई ऐसा कार्य हुआ है, जो न आज तक हुआ है, न होने वाला है, कोई नया आयाम मानव-विकास का, उत्थान का, प्रगति का खुला है, उद्घाटित हुआ है।

मुनिश्री चौथमलजी इसी तरह के महापुरुष थे, जो महत्त्वाकांक्षाओं के पंक में से कमल खिलाना जानते थे। उसे किसी पर उलीचना नहीं जानते थे, वे चिन्तन के उन्मुक्त आकाश-तले अकस्मात् ही आ खड़े हुए थे और उन्होंने अपनी वरदानी छाँव से अपने समकालीन समाज को उपकृत—अनुगृहीत किया था।

हमारी समझ में शताब्दियों बाद कोई ऐसा सम्पूर्ण पुरुष क्षितिज पर आया जिसने राव-रंक, अमीर-गरीब, किसान, मजदूर, विकसित-अविकसित, साक्षर-निरक्षर, सभी को प्रभावित किया, सबके प्रति एक अभूतपूर्व समभाव, ममभाव रखा, कोई कुछ देने आया तो उससे दुर्गुण माँगे, धन-वैभव नहीं माँगा, व्यसन माँगे, असन या सिंहासन नहीं माँगा, विपदा माँगी, सम्पदा नहीं माँगी; उन्हें ऐसे लोग अपना सर्वस्व अर्पित करने आये जिनके पास शाम का खाना तक नहीं था, और ऐसे लोग भी सब कुछ सौंपने आये जिनके पास आने वाली अपनी कई पीढ़ियों के लिए भरण-पोषण था, किन्तु उन्होंने दोनों से, अहिंसा माँगी, जीव दया-व्रत माँगा, सदाचरण का संकल्प माँगा, बहुमूल्य वस्त्र लौटा दिये, धन लौटा दिया; इसीलिए हम संतत्व की इस परिभाषा को भी सजीव देख सके कि सन्त को कुछ नहीं चाहिए, उसका पेट ही कितना होता है? और फिर वह भूखा रह सकता है, प्यासा रह सकता है, ठण्ड सह सकता है, लू झेल सकता है, मूसलाधार वृष्टि उसे सह्य है, किन्तु यह सह्य नहीं है कि आदमी आदमी का शोषण करे, आदमी आदमी का गला काटे, आदमी आदमी को धोखा दे, आदमी आदमी न रहे। उसका सारा जीवन आदमी को ऊपर और ऊपर, और ऊपर, उठाने में प्रतिपल लगा रहता है। संतों का सबमें बड़ा लक्षण है उनका मानवीय होना, करुणामय होना, लोगों की उस जुबान को समझना जिसे हम दरद कहते हैं; व्यथा की भाषा कहते हैं। मुनिश्री चौथमलजी की विशेषता थी कि वे आदमी के ही नहीं प्राणिमात्र के व्यथा-क्षणों को समझते थे, उनका आदर करते थे, और उसे दूर करने का प्राणपण से प्रयास करते थे। आयें, व्यक्ति-क्रान्ति के अनस्त सूरज को प्रणाम करें, ताकि हमारे मन का, तन का और धन का आँगन किसी सांस्कृतिक धूप की गरमाहट महसूस कर सके, और रोशनी ऐसी हमें मिल सके जो अबुझ है, वस्तुतः मुनिश्री चौथमल एक ऐसे सूर्योदय हैं, जो रोज-ब-रोज केवल पूरब से नहीं सभी दिशाओं से ऊग सकते हैं।

✡

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

✡ प्रकाशचन्द जैन (लुधियाना)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की महानता व त्याग अनूठा था, सभी ने अपने को संजोया, सँवारा। उन्होंने गरीब-अमीर के दुःखों को देखा, परखा और उसके निराकरण का मार्ग बतलाया। एक शायर ने कहा है—

वे सन्त बने, वे महन्त बने
चढ़ती हुई भरी जवानी में।
वे शूर बने, वे वीर बने
जीवन के यकता थे, अपनी शानी में॥

✡

सफल जीवन का रहस्य

★ श्री रतन मुनि (चन्द्रपुर)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः—
ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

जन्म है वहाँ मृत्यु भी है, मृत्यु है वहाँ जन्म भी निश्चित है। चार अरब की मानवी दुनियाँ में हजारों मनुष्य प्रतिदिन जन्म लेते हैं और हजारों ही मृत्यु के मुख में प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन उनके जन्मने और मरने का कोई महत्त्व नहीं है। इन मनुष्यों में विरल मनुष्य ऐसे भी महत्त्वपूर्ण अवतरित होते हैं, जिनका जन्मना लाखों प्राणियों के कल्याण के लिए और परम ध्येय की पूर्ति के लिए होता है। वे जीते हैं, लेकिन अपने लिए नहीं, परमार्थ की सिद्धि के लिए। उनके जीने में एक निरालापन होता है। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण दीपक के समान तिल-तिल जल कर भी दुनियाँ में प्रकाश फैलाता है। ऐसे पुरुषों के लिए मृत्यु भी अमरता का वरदान बन जाती है।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराजः—

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जीवन भी सफलता की एक कथा है। उनका देहावसान भी जीवन का विश्राम है। जीवन में सफलता का अमृतपान किया और जन-मन में अध्यात्म जागृति का शंखनाद किया। जिसकी आज भी हजारों आदमियों में गूँज मौजूद है। युगों-युग तक उनकी साधना की सफल जीवन-गाथाएं गायी जाती रहेंगी।

१८ वर्ष की आयु में ही वैराग्य का किरमिची रंग चढ़ना और भौतिक सुखों को अपनी ओर आकर्षित करने में असफल पाना कम महत्त्व नहीं रखता। जिन चौथमलजी महाराज को पूर्ण यौवन में नारी का मादक मोह बाँधने में असमर्थ रहा और माता-बहनें-परिवार का वात्सल्य-भरा मधुर-प्रेम भी रोक न सका! उनकी गुणगरिमा का क्या व्याख्यान ?

उनके वैराग्य भाव को देखकर शास्त्रज्ञ महामुनि श्री हीरालालजी महाराज ने श्री चौथमलजी को दीक्षित किया तो सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र के सुमार्ग का बोध कराके जीवन को और प्रगाढ़ बना दिया।

गम्भीर व्यक्तित्व, प्रखर वक्तृत्व कला, निरहंकारता, निःस्पृहा और सहज-सरल स्वभाव, साम्प्रदायिक रूढ़ियों से निर्लिप्त, समन्वयात्मक विवेचन शैली, अद्भुत काव्य शक्ति आदि विशेषताओं के धनी थे। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सदुपदेश ने समाज को अनेक रचनात्मक प्रवृत्तियों में जोड़ दिया।

धर्म पर जो है फिदा, मरने से वो डरते नहीं।
लोग कहते मर गये, दरअसल वह मरते नहीं॥

★

विराट् व्यक्तित्व के धनी

☆ साध्वी श्री कुसुमवती

श्रमण-परम्परा में जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का व्यक्तित्व बहुत विराट् व उर्ज्जस्वल था। लघुवय में ही जब मैं साधना-पथ पर कदम बढ़ाने की तैयारी में थी। आपश्री के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त किया था। आपके ओजस्वी-तेजस्वी व्यक्तित्व से मैं अत्यधिक प्रभावित थी। यही कारण था कि मैं अपनी माँ मे प्रवचन श्रवण हेतु बार-बार उन्हें आग्रहित करती व उन्हें साथ लेकर प्रवचन-स्थल पर पहुँच जाती थी। आपश्री की सुमधुर वाणी का अमृत-पान कर मैं अपने आप को धन्य मानती थी।

साध्वी पद स्वीकार करने के पश्चात् भी मुझे कई बार आपश्री के ज्ञानगर्भित एवं मंगलमय प्रवचन सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। आपके प्रवचन में मुझे इतना आनन्द आता था कि मैं यही सोचती रहती कि प्रवचन पीयूष-धारा निरन्तर चलती रहे तो अच्छा! आपकी वाणी में तेज था। जब आप सभा के बीच में निर्भीक होकर बोलते उस समय ऐसा प्रतीत होता मानो सिंह की गर्जना ही हो रही है। झोंपड़ी से लेकर महलों तक आपकी जादुई वाणी का प्रभाव था। प्रत्येक व्यक्ति के जुबान पर आपका नाम सुनाई पड़ता था।

मैंने देखा, जब आप उदयपुर पधारते तो आपकी अगवानी करने हेतु महाराणा श्री फतेह-सिंहजी स्वयं पधारते और उस दिन सारे नगर में अमारिपटह उद्घोषित करवाते। "आज के दिन कहीं भी हिंसा नहीं होगी! कत्लखाने बन्द रहेंगे!" यह था आपका प्रभाव।

आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व में जैन समाज ही नहीं अपितु छोटे-छोटे ग्रामों की अबोध व अजैन जनता भी प्रभावित थी। आप जहाँ भी जाते वहीं एक मेला-सा लग जाता था। आपका ग्रामवासियों से बहुत प्रेम था। उनकी भावुकता से प्रभावित होकर कई दिनों तक आप ग्रामों में ही रहते। आपका दृष्टिकोण था कि ग्रामवासियों के नीतिपरक अनाज से जीवन में शुद्ध विचार रह सकते हैं और संयम-जीवन की आराधना-साधना भी सम्यक् प्रकार से हो सकती है।

आप मानवतावादी थे। किसी भी दुःखी प्राणी को देखकर आपका करुणाशील हृदय शीघ्र ही द्रवित हो उठता था। उनके दुःख को दूर करने हेतु आप सदा तत्पर रहते। अपने जीवन में हजारों मूक-प्राणियों को अभय-दान दिलवाया था। इस दृष्टि से आपको हम मानवता के महा-मसीहा भी कह सकते हैं।

ऐसे विराट् व्यक्तित्व के धनी महामहिम श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज के चरण-कमलों में उनकी जन्म शताब्दी वर्ष में पुण्य पलों में मैं हृदय की अनन्त आस्था के साथ श्रद्धा-कुसुम समर्पित करती हूँ।

☆

हे जन जागृति के दिव्य दूत!

—प्रो० श्रीचन्द्र जैन एम. ए., एल एल. बी. (उज्जैन)

जय जय जय श्री जैन दिवाकर।
आगम-ज्ञान-कोश, गुण सागर॥

हे तपः पूत ! हे अमर संत !
हे जन जागृति के दिव्य दूत !
हे संयम साधक ! जग प्रहरी !
हे सत्य सनातन ! विभु-विभूत !
तुम थे मानवता के प्रतीक।
तुम कल्पवृक्ष थे दीनों के।
तुम शरणागत के प्रतिपालक।
तुम ऋद्धि-सिद्धि थे हीनों के॥
तुम भ्रमितों के विश्वास वने।
हे महत् मनस्वी जीवन के।
जग का उन्माद सदा हरते।
मुनिराज ! स्वयं सेवक वन के॥
जग-वल्लभ ! प्रवल प्रवोधक थे।
हे पारस पुरुष ! पतित पावन।
हे सत्यान्वेषी ! संत प्रवर !
थे मनुहारों के सुख-सावन॥
जय प्रसरणशील ! दया सागर।
अभिनन्दनीय ! नयनाभिराम।
हे ज्ञान ज्योति ! हे मधुविहान !
थे परिपोषक घनश्याम श्याम॥
तुम खरे रहे खारे न वने।
ईमान वचाया जन-जन का।
तुम जिये सदा परहित में ही।
तुम में प्रतीक है कण-कण का॥
हे महामहिम ! आराध्य देव।
थे वाणी-जादूगर अनूप।
थे वक्ता प्रखर प्रताप धनी।
जयदेव ! कर्मयोगी स्वरूप॥

आलोक-पुंज ! मैत्री साधक।
थे सुरभित मंगलमय उदार।
थे ज्ञान-कर्म-भक्ती-संगम।
हे स्याद्वाद के कर्णधार !
जय-जय हे ज्ञान-गंग धारा।
जय जय जगती के ध्रुवतारा।
जय वोल रहा अम्वर सारा।
शोषक पापी तुमसे हारा॥
तुम सिद्ध रूप के समुपासक।
निर्ग्रन्थ ग्रन्थ के निर्माता।
साहित्य-मनीषी सद्वाग्मी।
उद्वेलित जग के प्रिय त्राता॥
तुम चन्दन थे वस इसीलिए।
तव पद-पंकज में तन जिनके।
वे भाग्यवान् हो गए सतत।
ज्यों वोधिवृक्ष वनते तिनके॥
युग पुरुष ! युगान्तर किया सदा।
चारित्र सम्पदा के स्वामी।
चिरजीवित हो इतिहासों में।
तुम तेजोमय थे निष्कामी॥
हे पतितोद्धारक ! समभावी।
वरदानी थे लघु मनुजों के।
तुमने अपनाए दलितों को।
रक्षक वनकर इन तनुजों के॥
आंधी तूफान डिगा न सके।
चट्टान चमेली वन महकी।
हे गौरवमयी ! विरत विधना।
सौ वार यहाँ श्यामा वहकी॥

मृदुल मेघ गर्जन सी वाणी। वाग्मी इन्द्रधनुष सी कविता॥
सत्यं शिवं सुन्दरं प्रतिमा। तेरी आलोकित गति सविता॥

☆

जैन दिवाकर दिव्य द्वादशी

☆ कविरत्न चन्दन मुनि, पंजाबी

(१)

जिनके जप के तप के आगे
झुकता गया जमाना।
जैन दिवाकर चौथमल की
मुश्किल महिमा गाना॥

(२)

जैन दिवाकर दया दिवाकर-
ही थे इक वह दुजे।
जिनके पावन चरण कमल को
प्रजा प्रेम से पूजे॥

(३)

नाम अमर है, काम अमर है
उनका जग के अन्दर।
निर्मल यशः कीर्ति से उनकी
गुंजित धरती-अम्बर॥

(४)

ज्ञान-ध्यान का दया-दान का
शुभ सन्देश दिया था।
दुष्कर्मों से दानव थे जो
मानव उन्हें किया था॥

(५)

अपना या वेगाना है यह
भेद नहीं था मन में।
राना-रंक सभी थे सम ही
उनके मधु जीवन में॥

(६)

सात्विक-आत्मिक उन्नति कारक
परिमित लेते भिक्षा।
श्रावक, श्रमण अनेक बनाये
दे करके हित शिक्षा॥

(७)

आतम-भेद खेदहर मिलता
मिलता पथ अविनाशी।
चातक-सी थी दुनियाँ उनकी
वचनामृत की प्यासी॥

(८)

शान्त, दान्त, निर्भ्रान्ति वड़े थे
गहरे आगम - वेत्ता।
दुनिया को हैं दुर्लभ ऐसे
न्याय—नीति के नेता॥

(९)

सफल आप थे वक्ता, लेखक
सफल आप इक कवि थे।
जन-जन के जो मन को मोहे
सत्य छिमा की छवि थे॥

(१०)

जब तक रहे जगत के अन्दर
चन्द्र सूर्य से साजे।
उत्तम संयम पाल अन्त में
जाकर स्वर्ग विराजे॥

(११)

जनम, निधन, दीक्षा तीनों को
सूरज वार सहाया।
वन तेजस्वी सूरज-से ही
दुनियां को दिखलाया॥

(१२)

पार अपार गुणों का उनके
"चन्दनमुनि" न पाता।
चारु-चरण में चार-पाँच ये
श्रद्धा सुमन चढ़ाता॥

सम्पूर्ण मानवता के दिवाकर

☆ मेवाड़भूषण मुनि श्री प्रतापमलजी

'दिवाकर' शब्द सूर्य, का प्रतीक रहा है। फलस्वरूप विराट् विश्व के विस्तृत अंचल में व्याप्त अन्धकार की इति करके जो यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रकाश से परिपूर्ण हजार किरणों को बिखेरता है, उसे दिवाकर नाम से पुकारा जाता है।

दिवाकर की तरह अनेक शिष्यों से सुशोभित एक सन्त-शिरोमणि भी कुछ वर्षों पहले मालवा, मेवाड़, मारवाड़ की पवित्र भूमि पर विचर रहे थे। जिनकी पीयूषवर्षी वाणी में जादू, बोली में एक अनोखा आकर्षण, चमकते चेहरे पर मधुर-मुस्कान, विशाल अक्षिकाएँ, सुलक्षणी भुजाएँ, गौर वर्ण एवं मनमोहक गज-गति चाल जिनका बाह्य वैभव था।

जिनकी ज्ञान-ध्यान-साधना में चुम्बकीय आकर्षण था, सहज में हजारों नर-नारी उपदेशामृत का पानकर अपने आपको सौभाग्यशाली मानते थे। जिनके अहिंसामय उपदेशों का प्रभाव राजमहलों से लेकर एक टूटी-फूटी कुटिया तक एवं राजा से रंक पर्यंत और साहूकार से चोर पर्यन्त व्याप्त था। जिन्होंने सैकड़ों-हजारों मानवों को सच्ची मानवता का पाठ पढाया, भूले-भटके राहगीरों को सही दिशा-दर्शन प्रदान किया, जन-जीवन में जिन-धर्म का स्वर बुलंद किया, छिन्न-भिन्न सामाजिक वातावरण में स्नेह-संगठन का उद्‌घोष फूंका और जैन समाज में नई स्फूर्ति, नई चेतना जागृत की। जिनके द्वारा स्थानकवासी जैन समाज को ही नहीं, अपितु अखिल जैन समाज को ज्ञान-प्रकाश, नूतन साहित्य एवं प्रेममैत्री की प्रबल प्रेरणा प्रदान की है। वे थे एकता के संस्थापक जैन जगत् के वल्लभ स्व० जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज।

इस जन्म शताब्दी वर्ष समारोह के पुनीत क्षणों में मैं भी अपनी ओर से उस महामनस्वी के चरणों में श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ। ☆

दिवाकर—एक आधार

☆ निर्मलकुमार लोढ़ा (निम्बाहेड़ा)

एक मुसाफिर बीहड़ जंगलों में मार्ग भूलकर, थका-मांदा, भूख से व्याकुल किसी सहायता की अपेक्षा से चला जा रहा है, अचानक मीलों दूर उस निर्जन वन में एक टिमटिमाते दीपक की रोशनी उसमें स्फूर्ति का संचार कर देती है। वह अपनी सारी कठिनाइयों को भूलकर उस नवीन सहारे की तरफ तीव्रगती से अग्रसित होने लगता है। ठीक उसी प्रकार हमारे देश, समाज, धर्म और मानवता पर संकट के बादल मँडराते रहे हैं और रहते हैं। इन संकटों को दूर करने हेतु समय-समय पर कुछ ऐसी पवित्र आत्माएँ भी हमारे बीच उपस्थित होती रहती हैं, जो हमारा जीवन का मार्ग-दर्शन करती हैं। सौभाग्य से इन्हीं महापुरुषों में लोकनायक जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज भी इस धरती पर अवतरित हुए और अपने दिव्य आलोक से जन-मानस के जीवन को नवीन दिशा प्रदान की। अन्धकार में भटकती हुई जनता को प्रकाश-पथ की ओर प्रस्फुटित किया।

जैन दिवाकरजी महाराज को जन्मे सौ वर्ष पूर्ण हो रहे हैं, परन्तु उनकी स्मृतियाँ आज भी जन-मानस के मन-मस्तिष्क में इतनी तरो-ताजा हैं कि मानो वह आज भी हमारे बीच प्रत्यक्ष विद्यमान हों। उन्होंने एकता के लिए जो पहल एवं कदम समाज हेतु उठाये थे, वे सदैव चिरस्मरणीय रहेंगे। सामाजिक ऐक्यता-सर्वधर्मसमभाव की हार्दिक विशालता को कभी भुलाया नहीं जा सकता। ☆

शत-शत प्रणाम

—श्री उदयचन्दजी महाराज 'जैन सिद्धान्ताचार्य' (रतलाम)

श्री जैन दिवाकर जी के चरणों में, शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।
इस शुभ शताब्दी के अवसर पर, गुरुवर को मेरा प्रणाम शत-शत प्रणाम ॥

कलियुग के मोह मलिन तम में, जनता जब भ्रांत विमूढ़ रही।
तब दिव्य ज्योति का दे प्रकाश, कर दिया नये युग का विकाश ॥१॥

नीमच नगरी में जन्म लिया, जननी थी केसर कीर्तिमती।
श्री गंगाराम थे पुण्य जनक, परिवार हुआ सब धन्य-धन्य ॥२॥

जब पूर्व जन्म के पुण्य उदय, अष्टादश पापों का होता क्षय।
तब हीरालाल गुरुदेव मिले, दीक्षित होकर हो गये निहाल ॥३॥

जैनागमों का अध्ययन किया, शारदा माँ का सुप्रसाद मिला।
व्याख्यान दान उपदेश दिया, जग में निज महिमा सुमन खिला ॥४॥

आध्यात्मवाद का कर प्रचार, सत् शिक्षा का करके प्रसार।
तब जैन ज्योति का कर विकास, निज नाम दिवाकर का प्रचार ॥५॥

राजा-महाराजा और रंक, सब जनता को उपदेश दिया।
धर्म-परायण शिक्षा देकर, सबके हिय में स्थान किया ॥६॥

जगह-जगह विचरण करके, निर्वेद मार्ग का कर प्रचार।
संसार ताप का शमन किया, अमृत का निर्झर वहा दिया ॥७॥

गुरुवर्य आपके चरणों में, नत मस्तक हो रहे आज।
कर पुण्य 'उदय' सब पर भव के, कृत-कृत हुए सब धन्य आज ॥८॥

अद्भुत योगी

—श्री मगन मुनि 'रसिक'

अद्भुत योगी जैन दिवाकर,
जगमग जग में चमके थे।
विरल विभूति जिनशासन में,
प्यारे अनुपम दमके थे ॥
जन-जन के थे वल्लभकारी,
महा महिम गुण वारे थे।
हृदयस्पर्शी ज्ञान अनूठा,
श्रमण-श्रेष्ठ सितारे थे ॥

भारत के महिपालों को,
अहिंसा का पाठ पढ़ाया था।
जो भूल गये थे मानवता,
सन्मार्ग उन्हें दिखलाया था ॥
गाँव-गाँव और नगर-नगर में
उपदेशामृत वरसाया था।
शुष्क हो गया था जनमानस,
पल्लवित सरस वनाया था ॥

आज देश के सभी भक्त-गण, गीत तुम्हारे गाते हैं।
अनुनय विनय-श्रद्धा-भक्ति युत, करवद्ध शीश झुकाते हैं ॥

धर्म-ज्योति को नमन !

—श्री मिश्रीलालजी गंगवाल, इन्दौर

परम श्रद्धेय मुनि श्री चौथमलजी महाराज की गणना इस युग के उन महान् सन्तों में है, जिन्होंने पीड़ित मानवता के क्रन्दन को सुना, समझा और उसके निदान में अपना जीवन अर्पित कर दिया। वे श्रमणधारा के तेजस्वी साधक थे। उनके उपचार के साधन भी अहिंसा-मूलक थे। उनका हृदय विशाल तथा कार्यक्षेत्र विस्तृत था। वे झोंपड़ी से लेकर महलों तक पहुँचते थे। उनकी दृष्टि में राजा-रंक, धर्म-जाति का भेद नहीं था। सबको समताभाव से वीरवाणी का अमृत-पान कराकर हजारों लोगों को भेदभाव बिना सन्मार्ग पर लगाने का मानवीय कार्य जिस निर्भयता और दृढ़ता से मुनिश्री ने किया, वह अलौकिक है। दुःखियों, पीड़ितों, पतितों और शोषितों के वे सहज सखा थे। उनके कष्टों से द्रवित होते थे। ज्ञानदान द्वारा उनके दुःखों को मिटाने का पुरुषार्थ करते थे।

पर-उपकार ही उनकी पूजा थी। जिसे वे सहज धर्म के रूप में जीवन भर करते रहे। 'तुलसीदासजी' ने कहा है—

"पर उपकार वचन, मन, काया
संत सहज स्वभाव खगराया।
संत विपट सहिता गिर धरणी
पर हित हेत इननकी करनी॥'

मुनिश्री के जीवन में संत का यह दिव्य चरित्र पग-पग पर भरा-पूरा नजर आता है। मुनिश्री जैन तत्त्वज्ञान के परम उपासक और साधक थे। प्रबल प्रवक्ता थे। उनकी ओजस्वी वाणी में मानव-मन की विकृतियों को नष्ट करने की अद्‌भुत कला थी। अहिंसा, मैत्री, एकता और प्रेम का सन्देश घर-घर फैला कर उन्होंने मानव-समाज और देश की अनुपम सेवा की। मनुष्यों में शुद्ध जीवन जीने की निष्ठा का स्नेह, वात्सल्य से अखंड दीपक जलाया। ऐसे निस्पृह तपस्वी साधु अध्यात्म-जगत् में विरले ही होते हैं। मुनिश्री की प्रथम जन्म-शताब्दी भारत भर में मनाई जा रही है इस रूप में हम उस महान संत को अपनी पूजा अर्पित कर रहे हैं। यह हमारा परम सौभाग्य है। शताब्दी के पावन-पुनीत अवसर पर मैं उस धर्म-ज्योति को अपनी आंतरिक श्रद्धा अर्पित करता हूँ। उन्हें शत-शत नमन करता हूँ।

समर्पित व्यक्तित्व

—श्री सुगनमलजी भंडारी, इन्दौर

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज अपने युग के महान् सन्त थे। जैन इतिहास में आपका धर्म-प्रचारक के रूप में अद्वितीय स्थान रहा है। चेहरे की प्रसन्न मुद्रा देखकर श्रोता का मंत्रमुग्ध हो जाना आपके चरित्र की मुख्य विशेषता रही है। यही कारण था कि तात्कालीन राणा-महाराणा, राजा-महाराजा, एवं समाज के अन्य वर्ग के लोगों पर आपके हितकारी वचनों का चमत्कारिक प्रभाव पड़ा। आपके सदुपदेश से बहुत से राजाओं और जागीरदारों ने अपने-अपने राज्यों में हिंसा-निषेध की स्थायी आज्ञाएँ प्रसारित कीं। मुनिश्री का सम्पूर्ण जीवन प्राणिमात्र की रक्षा के पवित्र उद्देश्य के प्रति समर्पित था।
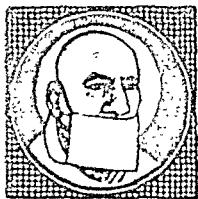
जगत्-वल्लभ मुनिश्री चौथमलजी का दृष्टिकोण सदैव व्यापक रहा है। उन्होंने राजा और रंक में भेदभाव न रखते हुए सभी श्रेणियों की जनता में भगवान् महावीर के सिद्धान्तों का समान रूप से प्रचार किया। मुनिश्री ने समाज में घृणास्पद समझे जाने वाले मोची, चमार, कलाल, खटीक और वेश्याओं तक को अपना संदेश सुना कर उनके जीवन को ऊँचा उठाने की दिशा में भगीरथ प्रयास किया। कितने ही हिंसक कृत्य करने वाले व्यक्तियों ने आपके उपदेशों से प्रभावित होकर आजीवन हिंसा का त्याग किया एवं कई लोगों ने शराब, मांस, गांजा, भांग तथा तम्बाकू नहीं सेवन करने की प्रतिज्ञाएँ कीं। इस प्रकार मुनिश्री ने अपने आपको धर्मोपदेश एवं जीवदया के महान् कार्य में लगा दिया।

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का शताब्दी-वर्ष हमारे जीवन का मंगलमय प्रसंग है। हमें चाहिये कि हम उनके आदेशों के अनुरूप मानव-जाति के कल्याणकारी दिशा में रचनात्मक कदम उठा कर उस महापुरुष के प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करें।

तेजस्वी पुण्यात्मा

—बाबूलाल पाटोदी, इन्दौर

परमपूज्य जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने सौ वर्ष पूर्व भारत भूमि में जन्म लेकर भगवान् महावीर के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने का जो कार्य किया, वह सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

उन्होंने धर्म-प्रचार हेतु जिस क्षेत्र को चुना, उसे आज की भाषा में पिछड़ा हुआ क्षेत्र कहते हैं। भगवान् महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व अपनी दिव्य ज्योति द्वारा उस समय व्याप्त कथित उच्चवर्णीय वर्गों द्वारा समाज में धर्म के नाम पर फैलाये जा रहे वितण्डावाद एवं हिंसा का मुकाबला निम्न से निम्न अर्थात् अन्तिम आदमी की झोंपड़ी तक जाकर करने को प्रोत्साहित किया। राज्यवंश में जन्म लेकर जिस महामानव ने भेद-विज्ञान प्राप्त कर आत्म-शक्ति को जागृत किया, स्वयं वीतरागी हुए व विश्व को विनाश से बचाया।

एक सौ वर्ष पूर्व जन्मे मुनिश्री चौथमलजी ने आदिवासियों के बीच जाकर उनसे मांस व शराब छुड़वाई तथा उन्हें मनुष्य बनने की प्रेरणा दी। मुनिश्री के समक्ष राजा एवं रंक का कोई भेद नहीं था। वे निस्पृह भाव से, समान रूप से समताभाव धारण किये हुए राजाओं और रंकों को भगवान् का उपदेश देते थे। सरल, मनोहारी, ओजस्वी वाणी जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को छूती थी, उनके उपदेश की शैली हृदयस्पर्शी थी। स्वयं त्याग कर दूसरों को प्रेरित कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य व्रत को झोंपड़ियों तक पहुँचाने वाले उस महान् तेजस्वी पुण्यात्मा का शताब्दी-महोत्सव मना कर हम स्वयं अपने कर्त्तव्य-पथ पर चलने को अग्रेषित हो रहे हैं।

पूज्य मुनिश्री के चरणों में मेरा शत-शत वन्दन !

अहिंसा-धर्म के महान् प्रचारक

—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर स्वर्गीय मुनिश्री चौथमलजी महाराज श्वेताम्बर स्थानकवासी शाखा से सम्बद्ध, वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्ध में एक महान् प्रभावक जैन सन्त हो गये हैं। सन् १८७७ ई० में नीमच (मध्यप्रदेश) में जन्मे और १८९५ ई० में मात्र १७-१८ वर्ष की किशोर वय में साधु-दीक्षा ग्रहण करने वाले इन महात्मा का ५५ वर्षीय सुदीर्घ मुनि-जीवन अहिंसा एवं नैतिकता
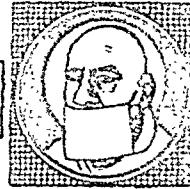
का जन-जन में प्रसार करने तथा जिनशासन की प्रभावना में व्यतीत हुआ। उत्तर भारत, विशेषकर राजस्थान एवं मध्यप्रदेश के प्रायः प्रत्येक नगर व ग्राम में पदातिक विहार करके उन्होंने निरन्तर लोकोपकार किया। उनकी दृष्टि उदार थी और वक्तृत्व शैली ओजपूर्ण, सरल-सुबोध एवं प्रभावक होती थी, छोटे-बड़े, जैन-अजैन, सभी के हृदय को स्पर्श करती थी। यही कारण है कि उस सामंती-युग में राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि के अनेक राजा, ठिकानेदार, जागीरदार, मुसलमान नवाब, कई अँग्रेज उच्च अधिकारी तथा जैनेतर विशिष्ट व्यक्ति भी उनके व्यक्तित्व एवं उपदेशों से प्रभावित हुए। छोटी जातियों—यथा मोची (जिनधर) जैसे लोगों में से अनेकों को मद्य-मांस-त्याग की महाराज ने प्रतिज्ञा कराई।

मुनि श्री चौथमलजी के दीक्षाकाल के ५१ वर्ष पूरे होने पर अब से ३१ वर्ष पूर्व रतलाम की श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति ने 'श्री दिवाकर अभिनन्दनग्रन्थ' प्रकाशित किया था, जिसमें महाराज साहब से सम्बन्धित सामग्री भी बहुत कुछ थी। हमारा भी एक लेख 'राज्य का जैन आदर्श' उस ग्रन्थ में प्रकाशित हुआ था। उसके तीन वर्ष पश्चात् ही, सन् १९५० ई० में मुनिश्री का ७३ वर्ष की आयु में निधन हो गया। उनके साधिक अर्धशताब्दीव्यापी महत्त्वपूर्ण कार्यकलापों को देखते हुए वह ग्रन्थ अपर्याप्त था। उनकी विविध साहित्यिक रचनाओं का भी समीक्षात्मक विस्तृत परिचय अपेक्षित था।

जिनधर्म की सार्वभौमिकता को जन-जन के हृदय पर अंकित करने के सद्प्रयासी मुनिश्री चौथमलजी महाराज की पुण्य स्मृति में इस शुभावसर पर मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

☆☆

उच्चकोटि के व्याख्यानदाता

—सेठ अचलसिंह, आगरा भू० पू० एम० पी०

श्री चौथमलजी महाराज उस जमाने में भारत के जैन समाज में विख्यात साधुओं में एक थे। आगरा समाज ने विनती करके आगरा में चातुर्मास के वास्ते आमंत्रित किया और आप यहाँ पधारे, आपका बड़ा स्वागत किया गया था। दिवाकरजी का बड़ा नाम था और वे बड़े अच्छे दर्जे के व्याख्यानदाता थे। आपका जीवन एकता, मैत्री, शान्ति, अहिंसा और वात्सल्य का अपूर्वशंखनाद था। आपके आगरा में कई सार्वजनिक व्याख्यान हुए। उनका आगरा की जनता पर मुख्यतया सन्त वैष्णव-संप्रदाय के लोगों पर जो जैनधर्म के बारे में भ्रांति थी, वह दूर हो गयी और बड़ा प्रभाव पड़ा।

उस समय लाउडस्पीकर नहीं था। आपके प्रतिदिन के व्याख्यानों में सैकड़ों आदमी जाते थे और सार्वजनिक व्याख्यानों में हजारों श्रोता होते थे, आपकी आवाज इतनी बुलन्द थी कि हर व्यक्ति तक आसानी से पहुँच जाती थी। उस जमाने में आगरा में दिवाकरजी के व्याख्यानों की बड़ी सोहरत थी। आपके प्रभाव से अनेक लोग जैनधर्म के अनुयायी बने।

मुझे भी उस समय श्री दिवाकरजी की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। ऐसे महान् आत्मा के चरणों में मेरा भक्तिभरा वन्दन!

☆☆

चौमुखी व्यक्तित्व के धनी

—पारस जैन (सिकन्द्राबाद)

भगवान् महावीर २५००वीं शताब्दी में जैन एकता, समन्वय एवं सम्प्रदायों में परस्पर सद्भावना का सुन्दर वातावरण निर्माण हुआ। साम्प्रदायिक विद्वेष अब अतीत काल की बात हो गयी है। इसका श्रेय उन सन्तों व सामाजिक कार्यकर्ताओं को है, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी एकता का नाद गुंजाये रखा। ऐसे ही विरल सन्तों में जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का नाम उल्लेखनीय है।

उस समय एक सम्प्रदाय के साधु दूसरे सम्प्रदाय के साधुओं के साथ मेल-मिलाप रखें, ऐसा वातावरण नहीं था। उस समय जैन दिवाकरजी ने दिगम्बर आचार्य श्री सूर्यसागरजी तथा श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्य श्री आनन्दसागरजी के साथ कई सम्मिलित कार्यक्रम किये। उस समय यह बड़ा ही कठिन साहस का कार्य था। इस प्रकार मुनिश्री के हाथों एकता का बीजारोपण हो गया, जो काल-प्रभाव के साथ आज एक सघन वटवृक्ष की तरह शान्ति व शीतलता की अनुभूति दे रहा है।

मुनिश्री चौमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। सरस्वती उनकी वाणी से प्रस्फुटित होती थी। मानवीय अहिंसा में उनकी प्रगाढ़ आस्था थी। अठारह वर्ष की उम्र में उन्होंने मुनि-जीवन स्वीकार किया। ५५ वर्षों तक कठिन साधनामय जीवन बिताया। साधना-काल में जो उपलब्धियाँ होती रहीं, उन्हें वे निरन्तर मानवकल्याण के लिए उपयोग करते रहे। उन्हें अपने जीवन-काल में ही अपरिमित प्रसिद्धि व प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी। उनका प्रभाव साधारणजन, श्रेष्ठिवर्ग तथा राज-परिवारों पर भी था। मेवाड़ के महाराणा, देवास नरेश तथा पालनपुर के नवाब आदि आपके परम भक्त थे।

मालवभूमि में मुनिश्री के रूप में विश्व को अद्भुत देन दी है। उनकी वाणी आज भी दिवाकर की तरह मानव-जीवन को प्रभावित करती है। ऐसी महान् आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

पतितोद्धारक सन्त

—भूरेलाल बया, उदयपुर

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के सान्निध्य में आने का मुझे जब भी सुयोग मिला, उनकी स्नेहसिक्त अनुग्रहपूर्ण दृष्टि रही और यह भी एक संयोग ही नहीं, जीवन की सुखद स्मृति रहेगी कि मुनिराजश्री के निधन से पूर्व कोटा में जब दर्शन हुए, तो वे बहुत आह्लादपूर्ण थे। जैन मुनियों में ऐसे प्रखर प्रवक्ता, पतितोद्धारक और व्यक्तित्व के धनी मुनिराजश्री का होना सारी जैन-परम्परा के लिए गौरव की बात है। उनकी चुम्बकीय वाणी भी कइयों के हृदय में गूँजती है और अंधेरे क्षणों में प्रकाश देती रहती है।

मैं इस महान् दिवंगत मुनिराजश्री के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

शुभकामनाएँ और प्रणाम

—द्वारिकाप्रसाद पाटोदिया, उदयपुर

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज के स्मृतिग्रन्थ की सफलता के लिए श्रीमान् महाराणा साहब (उदयपुर) अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करते हैं तथा उपस्थित आचार्य, साधु एवं साध्वियों की सेवा में अपना प्रणाम निवेदन करते हैं।

दुखियारों के परमसखा

यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि समन्वय के महान् प्रेरक जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की जन्म-शताब्दी मना रहे हैं।

महाराजश्री का जीवन एकता, मैत्री, शान्ति और वत्सलता की विजय का अपूर्व शंखनाद था। वे पतितों-दुखियारों के परमसखा थे। उनका जीवन पढ़ कर हमें मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। मैं हार्दिक सफलता चाहता हूँ। —प्रतापसिंह वेद, बम्बई (अध्यक्ष—'भारत जैन महामण्डल')

वात्सल्य के प्रतीक

दिल्ली में मुनिश्री चौथमलजी महाराज के चातुर्मास हुए। उस समय उनके कई वार प्रवचन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी वाणी द्वारा भगवान् महावीर के मुख्य-मुख्य आदर्श की व्याख्या सुनने को मिली। उनके व्याख्यान ओजस्वी और हृदयस्पर्शी होते थे। उनके प्रवचन खंडन-कुतर्क आदि से अछूते रहते थे। उन्होंने सदैव सामाजिक एकता और वात्सल्य को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। वे लोकैषणा से कोसों दूर थे। उन्होंने पद-प्रतिष्ठा आदि को महत्व नहीं दिया।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जीवन हमारे लिए प्रेरणा-स्रोत है। मैं अपने श्रद्धा सुमन उनके चरणों में समर्पित करता हूँ। —भगतराम जैन, दिल्ली

जाज्वल्यमान नक्षत्र

पूज्य जैन दिवाकरजी अपनी पीढ़ी के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। उनका जीवन स्वयं के लिए नहीं, मानवता के लिए उन्होंने जिया। जिन्होंने उन्हें देखा और उनका सान्निध्य प्राप्त किया, वे तो उनसे प्रेरणा प्राप्त करते ही हैं, परन्तु भावी पीढ़ियाँ भी उस प्रेरणामृत का पान करके लाभान्वित हों, इस दृष्टि से आप का प्रकाशन सफल और यशस्वी हो। —सुन्दरलाल पटवा, मन्दसौर

एकता-संवेदना-करुणा की त्रिवेणी

जैन दिवाकर पूज्य मुनिश्री चौथमलजी के दर्शनों का सौभाग्य तो मुझे नहीं मिला, किन्तु उनके कार्यों की सुवास एवं साहित्यसौरभ से आकर्षित अवश्य रहा हूँ। जैन एकता, मानवीय संवेदना और प्राणिमात्र के प्रति करुणा की त्रिवेणी उनके जीवन में थी।

उस सन्तपुरुष के चरणों में हार्दिक वन्दना करता हूँ। —चन्दनमल 'चांद', बम्बई

लोकोपयोगी मार्ग-दर्शन

भारतीय संस्कृति में सन्तों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने झोंपड़ियों से महलों तक पहुँच कर लोगों की धार्मिक एवं नैतिक जागृति की है। उन्हीं सन्तों की शृंखला में जैन दिवाकर, प्रसिद्ध वक्ता पूज्य श्री चौथमलजी महाराज भी हैं।

उनके दर्शन का मुझे लाभ नहीं मिला, किन्तु उनके कार्य और साहित्य आदि को पढ़ने तथा सुनने से उनका व्यक्तित्व बहुत ही ऊँचा मालूम हुआ। जो परिवर्तन शासन तथा कानून से मनुष्य के अन्तरंग में नहीं हो सका, वह उन महान् सन्त के लोकोपयोगी मार्गदर्शन से हुआ।

वे एक महान् ओजस्वी वक्ता भी थे। उन्होंने महाराष्ट्र की भूमि को पावन करके लोकोद्धारक उपदेश दिये, जिसके हम सब ऋणी हैं।

उन महान् पुण्यात्मा की जन्म-शताब्दी मनाने का निर्णय उचित और स्वागत योग्य है। उनके कार्य से लोगों की चारित्र्य शुद्धि हो और नैतिकता बढ़ती रहे, यही मेरी शुभकामना है।

—चन्द्रभान रूपचन्द डाकले, श्रीरामपुर (अहमदनगर)

जय बोलो जैन दिवाकर की

☆ श्री केवल मुनि

(तर्ज—जय बोलो महावीर स्वामी की)

जय बोलो जैन दिवाकर की, शान्ति समता के सागर की ।।टेर।।
माता केशर के नन्दन हैं, श्री गंगाराम कुल चन्दन हैं।
नीमच के नाम उजागर की···· ।।१।।
फूलों की सेज को दिया त्याग, जम्बू स्वामी जैसा वैराग।
दीक्षा-धारी गुण आगर की···· ।।२।।
कई जीवन बने शुद्ध निर्मल, नाली भी बन गई गंगा जल।
—से अमृत निर्झर की···· ।।३।।
बाजार-महल और पर्ण कुटी, जिनकी वाणी से गूँज उठी।
उस वाणी के जादूगर की···· ।।४।।
शदियों से संत ऐसे आते, जो सोया जगत जगा जाते।
जय करुणानिधि करुणा कर की···· ।।५।।
सम्प्रदायों के घेरे तोड़े, शदियों से बिछुड़े मन जोड़े।
गुरु चौथमल जी संगम कर की···· ।।६।।
जय जय जिन-शासन के सपूत, जय संघ ऐक्य के अग्रदूत।
जय 'केवल मुनि' ज्योतिर्धर की···· ।।७।।

☆

जैन जग के दिवाकर की····

☆ साध्वी श्री चन्दना 'कीर्ति'

(तर्ज—मेरा जीवन कोरा कागज···)

जैन जग के दिवाकर की जय बुलाइये।
भक्ति के दीपक हृदय में जगमगाइये··········
धन्य जननी, धन्य नगरी, धन्य है वह वंश।
कितना सुन्दर, कितना मोहक, खिला वह अवतन्श ।।
छा गई ऽऽ-२ खुशियाँ, वो खुशियाँ अब भी लाइये··········
माँ की ममता तोड़ी छोड़ा, पत्नि का भी प्यार।
मुक्ति-पथ के बने राही, तज दिया संसार ।।
नाम प्यारा-प्यारा चौथमलजी गुन गुनाइये··········
जगत्वल्लभ, प्रसिद्धवक्ता, गुणों के आगार।
बहुश्रुत, मुनिश्रेष्ठ, जन-जन के हृदय के हार ।।
आराध्य जन-जन के उन्हें, दिल में बिठाइये··········
अय दयालु ! अय कृपालु ! विश्व की ए शान !
आज तेरे दर्शनों को 'कमला' व्याकुल प्राण ।।
द्वार आई 'चन्दना' भव से तिराइये··········

मानवता की सेवा में निरत : मुनिश्री चौथमलजी

☆ दुर्गाशंकर त्रिवेदी (कोटा)

उनका जीवन सामाजिक एकता, मैत्री, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, अहिंसात्मक आचरण और सहज वात्सल्य की विजय का अपूर्व शंखनाद था।

वे वाग्मिता, यानी सहज वक्तृत्व कला के अद्भुत धनी थे, उनकी गुरु-गम्भीर वाणी में एक विरल किस्म की अपरिमित चुम्बकीय ऊर्जा व्याप्त थी, जो चित्त को सहज ही बींध लेती थी।

वे हिंसा, अशान्ति, वैर और अविश्वास की दुर्दम शक्तियों को पराजित करके 'एकला चलो रे' के मार्ग-दीप को संदीप्त कर चलने वाले युग-पुरुष थे।

पतितों, शोषितों, दीन-दुःखियों, पीड़ितों और तरह-तरह के कष्टों से संत्रस्त जन-सामान्य की पीड़ा-पूरित अश्रु-विगलित आँखों के आँसू पोंछने को सन्नद्ध अहर्निश सेवारत सन्त थे।

ये तथा ऐसे कितने ही प्रशस्ति परक वाक्यों की पंक्तियों के समूह जिस किसी आदर्श जैन सन्त के लिए लिखे जा सकते हैं; उनमें जैन दिवाकर सन्त श्रीचौथमलजी महाराज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समाज-सेवा को समर्पित ऐसा सत्यान्वेषी सन्त इस युग में दुर्लभ ही है। उन्होंने अपने अप्रतिम व्यक्तित्व के माध्यम से अज्ञानियों, अशिक्षितों, भूले-भटके संशयग्रस्त मनुष्यों के मन-मन्दिर में साधना और सच्चरित्रता का अखण्ड दीपक प्रज्वलित किया। विश्व-मंगल के लिए तिल-तिल समर्पित इस महामानव का व्यापक प्रभाव आज भी उसी तरह से कायम है। श्रद्धा का सैलाब जन-जीवन में उसी तरह उफनता नजर आता है उनके नाम पर!

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी, रविवार संवत् १६३४ को मध्यप्रदेश के नीमच नगर में जन्म लेकर श्री चौथमलजी महाराज ने १८ वर्ष की वय में ही बोलिया (मन्दसौर, मध्य प्रदेश) में श्री हीरालालजी महाराज से दीक्षा लेकर 'वसुधा; मेरा कुटुम्ब' की घोषणा की थी। जिसे आजीवन निभाकर आपने मानवोद्धार का मार्ग जन-जीवन में प्रशस्त किया। अपने जीवन के ५५ चातुर्मासों में आपने अपनी सहज बोधगम्य धाराप्रवाही अन्दर तक छूकर उद्वेलित करने वाली गुरु-गम्भीर वाणी द्वारा छोटे-बड़े, राव-रंक सबको अभिषिक्त किया। विभिन्न धर्मावलम्बियों के प्रति आपका सहज स्नेह इसी भावना का पोषक रहा है।

आपकी वक्तृत्व-शैली श्रोताओं को अपनी ओर खींचे बिना नहीं रहती थी। वह व्यक्तित्व को अन्दर से झकझोर कर रख दिया करती थी। श्रोता सोचने, करने की ऊहापोह में उलझकर कुछ कर गुजरने का साहस जुटा लिया करता था।

प्रसंग वि० सं० १६७२ का है। मुनिश्री पालनपुर में चातुर्मास कर रहे थे। आपके मार्मिक प्रवचनों की चर्चा नवाब तक पहुँची तो वह भी तारीफ को कसौटी पर कसने प्रवचन सुनने आया; और अभिरुचि जागृत हो उठने से बराबर आता ही रहा। चातुर्मास की समाप्ति पर एक दिन नवाब साहब एक बेशकीमती शाल महाराजश्री के चरणों में अर्पित करके बोले—"बराये करम, मेरा यह अदना-सा तोहफा कुबूल फर्मायें, मश्कूर हूँगा।"

चौथमलजी महाराज यह देखकर नवाब साहब से स्नेहपूर्वक बोले—'नवाब साहब, हम जैन

साधु हैं ! मर्यादित उपकरण रखते हैं। आज यहाँ, कल वहाँ, कभी जंगल में, तो कभी झोंपड़ी में, कभी महल में, तो कभी टूटे-फूटे मन्दिर में, मठों में रात गुजारनी होती है; इसलिए ऐसी कोई भी बहुमूल्य वस्तु हम नहीं स्वीकारते।"

नवाब साहब उनकी निर्लोभवृत्ति से और अधिक प्रभावित होकर बोले—"क्या मैं इतना बदकिस्मत हूँ कि मुझे खिदमत करने का मुतलक मौका भी किबला नहीं देंगे ?"

प्रसन्न मुद्रा में मुनिश्री बोले—"नहीं, आप जैसे नरेश बदकिस्मत नहीं भाग्यशाली हैं कि सत्संग में आपकी रुचि है। साधु चाहे वह भी किसी धर्म का अनुयायी हो, समाज को तो कुछ-न-कुछ देता ही है न ! आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो अपनी कुछ एक दुष्प्रवृत्तियाँ ही दे दीजिये। जीवन-पर्यन्त आप जीवों का शिकार और मद्य-मांसादि सेवन का त्याग कर दें।"

नवाब साहब ने मुनिश्री चौथमलजी महाराज के समक्ष तीनों का ही त्याग का अहद लिया। रियासत में महाराजश्री के प्रवचनों में आम जनता से रुचि लेने की अपील भी उन्होंने की। ऐसी थी उनकी वृत्ति जो सहज ही हृदय-परिवर्तन की भाव-भूमिका उत्पन्न कर दिया करती थी।

'कोई कवि बन जाए सहज सम्भाव्य है'—वाली स्थितियाँ जीवन में सामान्यतया बनती नहीं है। काव्य-प्रसव प्रकृति की अनुपम देन है। आपने इस सन्दर्भ में भक्तिरस के हजारों पद, उपदेशात्मक स्तवन और सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ कविताएँ, दोहे, कवित्त आदि लिखकर उन्हें जनसामान्य में पर्याप्त लोकप्रिय बना दिया था। आज भी मेवाड़, मालवा और हाड़ौती अंचलों में ऐसे लोग सैकड़ों की तादाद में मिल जाएँगे जिन्हें उनकी रचनाएँ कण्ठस्थ हैं। उनके सुधारमूलक गीत बहुत से समारोहों में आज भी गाये जाते हैं।

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी और मालवी के वे अधिकृत विद्वान् थे और अपने लेखन और प्रवचनों में इनका बराबर उपयोग किया करते थे। 'निर्ग्रन्थ प्रवचन', 'भगवान् महावीर का आदर्श जीवन', 'जम्बूकुमार', 'श्रीपाल', 'चम्पक', 'भगवान नेमिनाथ चरित्र', 'धन्ना चरित्र', 'भगवान् पार्श्वनाथ', 'जैन सुबोध गुटका' आदि अनेक गद्य-पद्य कृतियों का प्रणयन आपने किया।

इन साहित्यिक सांस्कृतिक-कृतियों पर किसी शोध-छात्र को कार्य करना चाहिये। शताब्दि-वर्ष में उनके साहित्य का अधिकाधिक एवं व्यवस्थित प्रचार-प्रसार होना चाहिये, उस पर चर्चा-गोष्ठियाँ आयोजित करना भी सामयिक होगा।

वे वाग्मिता के अन्यतम धनी थे। उनकी वाणी में श्रोताओं को उद्वेलित कर देने वाली अद्वितीय चुम्बकीय शक्ति थी। गहरे पैठ जाने वाली उपदेशात्मक प्रवृत्ति से अभिप्रेरित होकर उन्होंने अज्ञानियों, अशिक्षितों, भूले-भटकों, संशयग्रस्तों के मन में सच्चरित्रता और निष्ठा का अखण्ड दीपक प्रदीप्त किया।
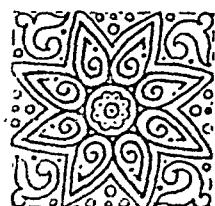
जीवित अनेकान्त

जो दीपक घर में ही प्रकाश करता है उसकी अपेक्षा खुले आकाश में प्रज्वलित स्व-पर-प्रकाशक दीपक का महत्त्व अधिक है।

❖ पं० नाथूलाल शास्त्री

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनिश्री चौथमलजी महाराज के प्रभावशाली प्रवचनों के श्रवण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। अभी उन्हें दिवंगत हुए २८ वर्ष हुए हैं। अपनी सुमधुर व्याख्यान-शैली द्वारा इस विशाल भारत में लगभग ५२ वर्षों तक धर्म का प्रचार-प्रसार उन्होंने किया है। उनकी विद्वत्ता, व्यक्तित्व एवं उपदेश से प्रभावित होकर अनेक राजा-महाराजाओं और जागीरदारों ने अपने राज्य में होने वाली पशु-पक्षियों, जलचरों आदि के बलिदान, शिकार आदि हिंसा-कार्यों को स्वयं व प्रजा द्वारा बन्द कराने की प्रतिज्ञा व हुक्मनामे निकाले गये। जोकि इसी ग्रन्थ में पृष्ठ १३३ से १७२ तक दिये गये हैं।

कहा जाता है कि सभी तरह के सांसारिक सम्बन्धों का परित्याग कर केवल आत्मकल्याण के लिए ही मुनि दीक्षा ली जाती है। पर इस उद्देश्य को मैं एकान्तिक मानता हूँ। जो दीपक घर में ही रहकर प्रकाश करता है उसकी अपेक्षा खुले आकाश में प्रज्वलित स्व-पर-प्रकाशक दीपक का अधिक महत्त्व है। साधुगण का भी स्वकल्याण के साथ लोकहित सम्पादन करना मणि-कांचन संयोग के समान है।

महाराजश्री न केवल प्रभावक वक्ता ही थे, वरन् प्रखर चिन्तक एवं कुशल लेखक भी थे। उनकी अनेकान्त आदि विषयों पर विद्वत्तापूर्ण रचनाएँ पढ़ने से उनके उच्च शास्त्रज्ञान, अनेकान्त तत्त्व के मनन एवं परिशीलन का परिचय मिलता है। आज से ३६ वर्ष पूर्व की उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अन्य दर्शनों की समालोचना के साथ अनेकान्त, नयवाद और सप्तभंगीवाद का विशद विवेचन है। विश्व-शान्ति के लिए 'जीओ और जीने दो' इस सिद्धान्त के अनुकरण की आवश्यकता है, उसी प्रकार दार्शनिक जगत् की शान्ति के लिए 'मैं सही और दूसरे भी सही' का अनुसरण अनेकान्त की खूबी है। हमारा कर्तव्य है कि हम दूसरे के विचारों को समझें, उसकी अपेक्षा को सोचें और तब अमुक नय से उसे संगतियुक्त स्वीकार कर लें। इस अनेकान्त को जीवन में उतारकर एक बौद्ध विद्वान् के शब्दों में 'घुमक्कड़ भगवान् महावीर' के समान महाराजश्री ने भी घुमक्कड़ और कष्ट-सहिष्णु बनते हुए धर्मोपदेश के साथ ही पिछड़े वर्ग में सहस्रों पुरुषों एवं महिलाओं को मद्य और मांस आदि दुर्व्यसनों का त्याग कराया तथा वेश्याओं को उनके व्यवसाय का परित्याग कराकर सदाचारपूर्ण जीवन की ओर प्रेरित किया। आपने सामाजिक कुरीतियों में भी सुधार कराकर समाज को आर्थिक कष्ट से मुक्ति दिलाई है।

कोटा में तीनों जैन-सम्प्रदायों के साधुओं का, जिनमें महाराजश्री भी सम्मिलित थे, एक साथ बैठकर प्रवचन देने की घटना अपनी विशिष्टता रखती है। वर्तमान में जैन संगठन का यह एक आदर्श उदाहरण है। इसी का अनुकरण उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी के इन्दौर चातुर्मास के समय हमने प्रत्यक्ष देखा है।

साधुपद की गरिमा सर्व प्रकार की दीवारों—सांप्रदायिक विचारों के परित्याग में ही है।
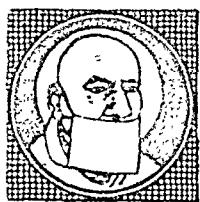
साधु वही धन्य है जो कर्तरिका (कैंची) के समान समाज को छिन्न-भिन्न न कर सूचिका (सुई) के समान जोड़ने का काम करता है। जैसे—'मारने वाले से बचाने वाला महान् है', उसीप्रकार तोड़ने वाले से जोड़नेवाला महान् है।' महाराजश्री इसके आदर्श उदाहरण थे। वे अत्यन्त सहृदय और उदार थे। करुणा उनके रोम-रोम से टपकती थी। उन्हें देखकर और सुनकर ऐसा मालूम पड़ता था मानो सर्वधर्मसमन्वयात्मक अनेकान्त का मूर्तिमान रूप हो।

☆

☆ मोतीलाल जैन कोटा

मानव मानव में भेद नहीं, करते थे जैन दिवाकर।
कोटि-कोटि वन्दन है तुमको, जगवल्लभ जैन दिवाकर।१।
मानवता के अमर पुजारी, धन्य धरा हुई तुमको पाकर।
श्रद्धा सुमन चढ़ाऊँ तुमको, जगदवल्लभ जैन दिवाकर।२।
काम-क्रोध-मद-लोभ न जिनको, सत्य-अहिंसा-अमरपुजारी।
वीतराग ! वंदन है तुमको, हे ! अखण्ड महाव्रतधारी।३।
धन मालव, धन राजपूताना, पावन-पद-परसे मुनीश।
अगता पाले हुक्म निकाले, नतमस्तक हुए अवनीश।४।
जीवनदान दिलाया तुमने, हिंसा के प्रवल तूफानों में।
ऊँच-नीच का भेद न पाया, तेरे पावन अरमानों में।५।
विश्व-बन्धु ! हे महामानव ! भव-तिमिर के तुम हो प्रभाकर।
कोटि-कोटि वंदन हम करते, जगद्वल्लभ जैन दिवाकर।६।
धन्य धरा तट चम्वल जिस पर, मुनि का हुआ महाप्रयाण।
पावन तीर्थ बना है कोटा, अभ्यागत सव करते बखान।७।
वर्ष सप्ताधिक सहस्रद्वय, चतुर्मास कोटा अनुकूल।
तेरे पावन पद की रज से, रोग भयंकर हुआ निर्मूल।८।
काती सुद तेरस के दिन, तिमंजिल से गिरा शिशु जवाहर।
गुरु-चरणों में हँसता पाया, मोती ने लाल जवाहर।९।
संघ ऐक्य के प्रेरक वन कर, पावन ध्येय फैलाया।
करी प्रशस्ति सकल संघों ने, मिलकर श्रमण संघ बनाया।१०।
रवि में जन्मे रवि में दीक्षित, रवि समाधिस्थ जैन दिवाकर।
अमर रहे यश-गाथा तेरी, जव लग चमकें चन्द्र-दिवाकर।११।

☆

श्री जैन दिवाकर जी

एक देवदूत की भूमिका में....

—हस्तीमल झेलावत (इन्दौर)

मुनिश्री चौथमलजी महाराज का एक धर्मप्रचारक के रूप में बहुत ऊँचा स्थान है। आपकी वाणी में अनुपम बल था। हजार-हजार श्रोता मन्त्रमुग्ध, मौन-शान्त बैठे रहते थे। चारों ओर सन्नाटा छा जाता था और अन्त में प्रवचन-सभाएँ गगनभेदी जयघोषों से गूंज उठती थीं। मुनिश्री के इस प्रभाव का कारण बहुत स्पष्ट था। वे जैन तत्त्व-दर्शन के असाधारण वेत्ता थे और उन्होंने जैनेतर धर्म और दर्शनों का भी गहन अध्ययन किया था। उनकी भाषा सरल-सुगम थी, और वे अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, जैन-अजैन का कोई भेद नहीं करते थे। उनके प्रभाव का क्षेत्र विस्तृत था। जैन मुनियों की शास्त्रोक्त मर्यादा के अनुरूप पैदल घूमते हुए उन्होंने भारत की सुदूर यात्राएँ कीं। मेवाड़, मारवाड़, मालवा तो उनकी विहार-भूमि बने ही; इनके अलावा वे दिल्ली, आगरा, कानपुर, पूना, अहमदाबाद, लखनऊ आदि सघन आबादी वाले बड़े शहरों में भी गये और वहाँ की जनता को अपनी अमृतोपम वाणी से उपकृत किया। आपके मधुर, स्नेहिल और प्रसन्न व्यक्तित्व ने अहिंसा और जीवदया के प्रसार में बहुत सहायता की।

जैन दिवाकरजी ने मानव-जाति के नैतिक और सांस्कृतिक उत्थान के लिए एक देवदूत की भूमिका निभायी। समकालीन राणे-महाराणे, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार सबने स्वयं को उनका कृतज्ञ माना और उनकी वाणी से प्रभावित होकर वह किया जिसकी ये कल्पना भी नहीं कर सकते थे। शराब छोड़ी, मांस-भक्षण का त्याग किया, शिकार खेलना बन्द किया और एक विलासी जीवन से हटकर सदाचारपूर्ण जीवन की ओर अग्रसर हुए। यह काम किसी एक वर्ग ने नहीं किया। चमार, खटीक, वेश्यावर्ग भी उनसे प्रभावित हुए और अनेक सुखद-जीवन की ओर मुड़ गये। अनेक उपेक्षित जातियों ने भांग-चरस, गांजा-तम्बाखू, मांस-मदिरा जिन्दगी-भर के लिए छोड़ दिये। उनकी करुणा और वत्सलता की परिधि इतनी ही नहीं थी, वह व्यापक थी; उसने न केवल मनुष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर मोड़ा वरन् उन लाख-लाख मूकपशुओं की जानें भी बचायीं जो शिकार, बलि और मांस-भक्षण के दुर्व्यसन के कारण मारे जाते थे। कई रियासतों और जागीरों के निषेधादेश इसके प्रमाण हैं।

मुनिश्री आरम्भ से ही मौलिक वक्तृत्व के धनी थे। आपने बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्या-विक्रय, हिंसा, मांसाहार, मदिरापान, शिकार, अनैतिकता—जैसी कुप्रथाओं और दुर्व्यसनों पर तो प्रभावशाली प्रवचन दिये ही; अहिंसा, कर्त्तव्य-पालन, गृहस्थ-जीवन, दर्शन, संस्कृति इत्यादि पर भी गवेषणापूर्ण विवेचनाएँ प्रस्तुत कीं। आपके सार्वजनिक प्रवचन इतने धर्मनिरपेक्ष और मानवतावादी होते थे कि उनमें बिना किसी भेदभाव के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी सम्मिलित होते थे। जैन साहित्य के साथ आपको कुरान-शरीफ, बाइबिल, गीता इत्यादि का भी गहन अध्ययन था अतः सभी विचारधाराओं के और सभी धर्मों के व्यक्ति आपके व्यक्तित्व और ज्ञान से प्रभावित होते थे। संक्षेप में, वे वाणी और आचरण के अभूतपूर्व संगम थे, कथनी-करनी के मूर्तिमन्त तीर्थ।

❋

उनका अविनाशी यश

✡ गेंदमल देशलहरा, गुण्डरदेही (म० प्र०)

स्वर्गीय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब ने अपने कठिन से कठिन तपस्या-उत्कृष्ट त्याग, संयममय जीवन द्वारा—जो देश के अनेक प्रान्तों में विहार कर अपने अमूल्य प्रवचनों एवं स्वरचित अनेक नैतिक भावपूर्ण स्तवनों द्वारा जो सेवा बजाई—उनकी तारीफ में मेरे पास शब्द नहीं जो कि वर्णन कर सकूँ।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने साधु जीवन में अनेक भारी कष्टों—परिषहों-बाधाओं को सहन करते हुए—जो समाज की भारी सेवाएँ कीं उनका हम कैसे मूल्याङ्कन करें ?

ऐसे आत्म समर्पित सन्तों का जीवन क्या एक ही जैन समाज के लिये ही होता है ? उनके द्वारा निर्ग्रन्थ-जिनवाणी देश को विभिन्न मतावलम्वी समाजों के लिये तो क्या ? जैसा कि मेरा विश्वास एवं अनुभव है—लोक-कल्याण व विश्व-कल्याण के लिये ही होता है। चाहे ऐसे सन्त कार्य करके चले जायँ—लेकिन उनके पश्चात् भी—इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने लायक अजर, अमर एवं स्मृति रूप में अविनाशी होता है।

वन्दना तुमको...

✡ श्रीमती सुधा अग्रवाल
एम० ए०, बी० एड्०, वाराणसी

हे मुनिवर तुमको शत प्रणाम।
हे गुरुवर तुमको शत प्रणाम।
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।१।

ज्ञानाधिदेव तुमको मानूँ।
मैं अमृत-सिंधु तुमको जानूँ।
तुमने दरसाया मोक्ष याम।
हे गुरुवर तुमको शत प्रणाम।२।

अध्यात्म-ज्ञान के प्रखर दीप।
तुमसे आलोकित सभी द्वीप।
अज्ञान-तिमिर के तड़िद्धाम।
हे मुनिवर तुमको शत प्रणाम।३।

हे शान्त-क्षमाधारी विधुवर।
तुम भक्त चकोरों के प्रियतर।
श्रद्धा नत होवें नाथ माथ।
हे मुनिवर तुमको शत प्रणाम।४।

अभिनन्दन

✡ श्रीमती कमला जैन (वीर नगर, दिल्ली)

संतजन विश्व की महान् विभूति होते हैं, ऐसी विभूति जो कभी नष्ट नहीं होती। जिसकी छत्र-छाया में प्राणीमात्र सुख और आनन्द का अनुभव करता है। संतों के चरण जहाँ पड़ते हैं, वहाँ की मिट्टी भी सोना उगलने लगती है। उनके तप-संयम की पावन सुगन्धि से दूर-दूर का वातावरण पावन और सुगंधित हो जाता है।

श्री चौथमलजी महाराज ऐसे ही महान् सन्त थे। जिन्होंने अपने तन, मन और वाणी से दुःखी मानव को सुख का पथ दिखलाया। जन-जन में अध्यात्म-जागृति उत्पन्न की। उनकी वाणी में जादू का सा प्रभाव था। उनके प्रवचनों को सुनकर कई दस्युओं और वेश्याओं ने अपना सुधार किया। राजाओं के राज-प्रासादों और भीलों की कुटियों में अहिंसा का प्रचार करना उन्हीं का कार्य था। कई विद्यालयों और वात्सल्य-फण्ड की स्थापना उन्हीं के उपदेशों द्वारा हुई।

समाज सुधार के लिये जो कार्य उन्होंने किया वह अनुपम है। परम्परा से चले आते अन्ध-विश्वासों और रूढ़ियों को उन्होंने समाप्त करवाया। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह जैसी कुप्रथाएँ सदा के लिये बन्द हो गईं। कन्या-विक्रय और मृतक-भोज बन्द हुये। समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का उनका भागीरथ प्रयत्न सदा स्मरणीय रहेगा।

उन्होंने गांव-गांव भ्रमण कर अपने कष्टों की परवाह न करते हुये जन-जन का कल्याण किया। उनके कई शिष्य बनें, जो आज भी उन्हीं की भाँति जन-जागरण करते हुये उनके नाम को जीवित रखे हुये हैं।

आज उनकी जन्म-शताब्दी पर, उस युग-पुरुष को स्मरण कर, उनके महान् कार्यों को स्मरण कर नतमस्तक वन्दन करते हैं, अभिनन्दन करते हैं।

भारत के नूर थे....

✡ पं० जानकीलाल शर्मा

मोह-ममता को छोड़ा साधु का बाना पहना।
काम, क्रोध, मद, लोभ जीतने में शूर थे॥
वाणी में ओजस्विता, तेजस्विता दिदार में थी।
कलह अशांति से, रहते सदा दूर थे॥
सरलता को सौम्यता को, रखते सदैव पास।
अधर्म को पापों को, करते चूर-चूर थे॥
जानकी शर्मा कहे, ज्ञानमयी दिवाकर।
जैन संघ के ही नहीं, भारत के नूर थे॥

✡
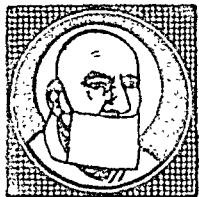
केवल स्मृतियाँ शेष

☆ श्री रामनारायन जैन, झांसी

आगरा से मेरा सम्बन्ध बहुत ही निकट का है क्योंकि वहाँ मेरे कुटुम्वी-जन भी हैं, और मेरी ससुराल भी है जिसके कारण जाना-आना लगा ही रहता है। संतों व साध्वियों के दर्शन होने का सौभाग्य प्राप्त होता ही है। मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि मैं सन्तों के परिचय में आ सका हूँ, और उनकी दिव्य वाणी भी सुनने को मिली है इस शृंखला में मैं जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के सम्पर्क में भी आया। उस समय मेरा विद्यार्थी जीवन था। मुनिश्री का आगरा चातुर्मास था।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का संघ उस समय आगरा में ही विराजमान था। पन्द्रह या बीस साधु-सन्त होंगे ही। श्री चौथमलजी महाराज का व्यक्तित्व कितना महान् था, यह किसी से छिपा नहीं है। जिन्होंने देखा है, वे भली-भाँति जानते हैं। चमकता-दमकता चेहरा, उन्नत ललाट, एकदम गौर वर्ण कितना आकर्षण और ओज था उनमें। स्थानक में व्याख्यान के समय स्त्री-पुरुषों का विशाल जमघट होता था। कितनी बुलन्द आवाज थी। वे विना लाउडस्पीकर के भी व्याख्यान जन-समुदाय के बीच भली-भाँति दिया करते थे। व्याख्यान के समय कितना शांत वातावरण, एकदम स्तब्धता-सी महसूस होती थी। उनकी पुण्याई बड़ी जबरदस्त थी जिसके कारण इतनी प्रसिद्धि पाई और जन-समुदाय उमड़ पड़ता था।

आगरा के चातुर्मास में व्याख्यान में श्री चौथमलजी महाराज ने कहा था कि आगरा की लोहामण्डी, लोहामण्डी न होकर सोनामण्डी है, वह वाणी सच सिद्ध हुई। उस समय लोहामण्डी में आर्थिक रूप से इनेगिने ही सम्पन्न व्यक्ति थे—आज जैसी स्थिति उस समय नहीं थी। श्री चौथमलजी महाराज शंका-समाधाम भी बड़ी उत्सुकता के साथ करते थे। उनका अध्ययन-चिंतन-मनन काफी गम्भीर था। सभी धर्मों की पुस्तकें उन्होंने पढ़ी थीं। भाषा पर उनका अधिकार था। उनके तर्क-वितर्क सुनने-समझने योग्य होते थे।

कानपुर में श्री चौथमलजी महाराज का चातुर्मास था वहाँ भी दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहाँ भी अपार जन-समूह था। उस समय कानपुर के कुछ लोहा व्यापारियों ने हृदय खोलकर चातुर्मास में बहुत बड़ा सहयोग दिया था। समाज-सुधार पर उनका विशेष ध्यान रहता था। कुरीतियों के निवारण में सदैव उनका सहयोग रहता था। उस समय सुनने में आता था कि श्री चौथमलजी महाराज ने सैकड़ों व्यक्तियों से मांस व शराब का त्याग करवाया है। उनके प्रवचन सुनने अमीर-गरीव सभी आते थे।

उस दिव्य सन्तपुरुष के चरणों में कोटि-कोटि वन्दना!

☆☆

दिवाकर

☆ मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'कमल'

हमारे अस्तित्व में
ढला हुआ है
एक और आकार !
जो हमें,
सौंपता है विशदता
हमें
अपनी अवस्थिति की चेतना से
परिपूर्ण करता है !
हम
अपनी शरीर सीमाओं से भी परे
और विस्तृत स्वयं को
महसूस करने लगते हैं।
हमारी श्रद्धा का
अनुकुम्भ है वह
भरता है हममें
अनुपमेयता !
हम एक-एक
अतिदिव्य हो उठते हैं
ऐसा अनूठा है
वह आकार
जो साकार नहीं
फिर भी हमारे अंतस की
गहराई में विद्यमान है।
'दिवाकर'
क्या सार्थक नाम दिया है
बीते हुए कल ने उसे !
आज भी
वह सूरज-सा
देदिप्यमान है !
आज भी वह हमें
निराशा के अंधकार से बचाता है !
आज भी हमारे जीवन को
आंदोलित करती है
उसकी अनुप्रेरणा !
एक कर्तव्य के दायरे में
रहकर भी
एक सिमटे हुए आकाश में
उदित होकर भी
कितना उदार था वह
कि उससे हर कोई
कुछ न कुछ पा सका !
सूरज,
जाति वर्ग के भेदों में
कभी नहीं पड़ता।
धनी, निर्धन राजा-रंक
उच्च निम्न
सभी सूरज से एक समान
लाभान्वित होते !
चमार, खटिक, हरिजन, वेश्या
किसे नहीं दी उसने दिव्यता।
अपनी भव्यता से उसने
राजाज्ञाएँ प्रसारित करवाईं
और पशुओं को
संरक्षण दिया।
वह यशःशरीर बन चुका है
वह स्थिरता का
एक मानदण्ड बन चुका है।
हमारे अस्तित्व में
ढल गया है सूर्य
उसने हमें सौंपी हैं
अपार सक्षमता !
आओ
हम दिवाकर की
उज्ज्वल परम्परा को
आगे और आगे
बढ़ाते चले जाएँ।

भाव-प्रणति

☆ श्री अमरचन्द लोढा, पाली
(राजस्थान)

पूजा व्यक्ति की नहीं होती, व्यक्तित्व की होती है। आकर्षण शब्दों में नहीं, उनके पीछे त्याग में होता है। दुनियां फूल नहीं, मकरन्द चाहती है। व्यक्तित्व के बल पर ही व्यक्ति विश्ववंद्य बनता है किन्तु व्यक्तित्व निखार के लिए अपेक्षित है—पुरुषार्थ, सहिष्णुता, आत्मानुशासन, वात्सल्य एवं उज्ज्वल चरित्र जैसे महान् गुणों की। इस प्रकार की श्रेष्ठ विशेषताओं को प्राप्त कर सामान्य मानव भी अलौकिक व्यक्तित्व सम्पन्न महामानव बन जाता है।

जब मैंने श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्यक्तित्व पर दृष्टिपात किया तो पाया कि वे लौकिक युग में—अलौकिक व्यक्तित्व के धनी महामानव थे। पूज्यश्री का विराट् व्यक्तित्व ज्ञान, दर्शन और चारित्र की पावन-त्रिपथगा से अभिस्नात था। आपका अनन्त प्रवाही व्यक्तित्व अपने आप में एक अपूर्व उपलब्धि थी।

पूज्य श्री बड़े प्रभावशाली और पुण्यवान् सन्त थे। गेहुँआ वर्ण, लम्बा कद, गठा हुआ शरीर, प्रशस्त ललाट और गोल-गोल चमकती वात्सल्य-भरी आँखें, यह था उनका प्रभावशाली बाह्य व्यक्तित्व। आपका व्यक्तित्व विविधताओं का पुञ्ज था। आप में जहाँ गुरुत्व की शासना थी वहाँ साधक की मृदुता भी थी। आप कवित्व की रस-लहरी में निमग्न रहते थे। आप जहाँ जन-जन को आकृष्ट करने वाले वाग्मी थे वहाँ एकान्तवासी मौन भी थे। आपके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से समाज को नया आलोक मिला। आपके अलौकिक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि आप बड़े-बड़े राणा, राजा-महाराजा, जागीरदार, दार्शनिक, साहित्यकार, उच्चाधिकारी व शिक्षा-शास्त्रियों के साथ वार्तालाप करने में जितना आनन्द लेते थे उतना ही आनन्द गरीब, अशिक्षित जनता, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई के साथ वार्तालाप में लेते थे। यही कारण था कि आपके प्रवचनों की आवाज मजदूर की झोंपड़ी से लेकर राजा-महाराजा के महलों तक पहुँची थी।

पूज्यश्री का चिन्तन संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं से बहुत दूर था। समन्वय आपके जीवन का मूल मन्त्र था। आपने इस मन्त्र को न केवल विचारों तक सीमित रखा, अपितु जीवन के हर व्यवहार में चरितार्थ भी किया था। आपके प्रवचनों में रामायण, बाइबिल और कुरान की आयतें सुना-सुनाकर जैन आगमों द्वारा समन्वय कर हजारों-लाखों लोगों को मन्त्र मुग्ध कर देते थे इसी का सुपरिणाम है कि जैन ही नहीं, अपितु अन्य धर्मावलम्बी भी आपको मानवता का मसीहा मानकर समादर करते थे। इन्हीं उदात्त भावनाओं के फलस्वरूप आपको 'जैन दिवाकर' की उपाधि से विभूषित किया।

आपश्री ने अलौकिक दिव्य प्रज्ञा के अनेक महत्त्वपूर्ण कल्पनाओं को मूर्त्तरूप दिया था। कई ज्ञान-साधना के संस्थान स्थापित किये थे। आपकी स्पष्टवादिता और उसमें झलकते चारित्र के तेज-पुञ्ज के सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति नतमस्तक हो जाता था। आपकी पुण्यवत्ता अद्वितीय थी। जो कार्य सैंकड़ों व्यक्तियों के परिश्रम और धन से भी सम्भव नहीं होता, वह उनकी पुण्यवत्ता से स्वयं ही हो जाया करता था। राजस्थान के विभिन्न रियासतों के नरेश और बड़े-बड़े जागीरदार आपके वर्चस्वी व्यक्तित्व और प्रवचनों से अत्यन्त प्रभावित हुये और उन्होंने अपनी-अपनी रियासतों एवं

जागीरी में शिकार वन्द, मांस वन्द एवं दारू वन्दी के पट्टे लिख दिये; जिसका पालन वर्तमान में भी हो रहा है।

पूज्यश्री ने कई संघों में फूट को मिटाकर आपस में वात्सल्य-भाव स्थापित किया। कई शहरों में अगते, पर्व दिनों में रखवाये जिसका पालन आज भी हो रहा है। पाली में चार अगते उनकी स्मृति को आज भी हरी करते हैं। यह था उनका अपूर्व पुण्यवाणी का प्रभाव।

आपश्री वेजोड़ प्रवचनकार थे। आपका प्रवचन का स्रोत जीवन-निर्माण की दिशा में प्रवाहित हुआ और उसने न जाने कितनी वंजर मनोभूमियों को उर्वरा में वदल दिया। वे आजीवन जैन शासन को विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करते रहे। उनके वहुमुखी रंग-विरंगे व्यक्तित्व के शीतल निर्झर से अनगिनत धारायें फूटीं, विविध दिशागामिनी वनीं जिनसे क्षेत्र, धार्मिक दृष्टिकोण से उर्वर और वीजापन के योग्य वन गये। विकास के अनेक आयाम स्वत: उद्घाटित हो गये। साधु-साध्वियों की वृद्धि हुई। विहार-क्षेत्र व कार्यक्षेत्र विस्तार पाने लगे।

आपश्री ने स्वयं उच्चकोटि का साहित्य और साहित्यकारों का सृजन किया था। आगम शोधकार्य आपकी अलौकिक मेधा और दूरदर्शिता का सुपरिणाम था। ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देने का प्रयास अज्ञ व्यक्ति की नक्षत्र गणना जैसा है। उनके आभावलय की तेजोमय रश्मियाँ युग-युग तक हमारे जीवन-पथ को प्रकाशित करती रहेंगी। उनकी अमिट छवियाँ चिरकाल तक हमारे हृदय-पटलों पर अंकित रहेंगी।

अत: उस ज्योतिर्मय दिव्यपुंज की इस जन्म शताब्दी पर हृदय की समस्त शुभ भावनायें श्रद्धाञ्जली रूप अर्पित कर, मैं अपने आपको धन्य और कृतकृत्य अनुभव करता हूँ।

☆

जैन दिवाकर अभिनन्दन है

—श्री विपिन, जारोली (कानोड)

जैन दिवाकर अभिनन्दन है।
जप-तप-संयम शम के साधक,
महा मुनीश्वर वन्दन है।
जैन दिवाकर अभिनन्दन है॥
श्रमण संस्कृति के उन्नायक,
सत्य-अहिंसा के चिर गायक,
मुक्ति-मार्ग के अमर पथिक तव, कोटि कोटि जन का वन्दन है।
जैन दिवाकर अभिनन्दन है।
राव-रंक के तुम उपदेशक,
शूद्र जाति के तुम उद्धारक,
मूक-प्राणियों के तुम रक्षक, जिनवाणी के जीवन-धन है।
जैन दिवाकर अभिनन्दन है।
प्रसिद्ध वक्ता, पण्डित, मुनिवर,
जैन-जगत के पूज्य दिवाकर
जन्म-शती पर गुरुवर तुमको, वन्दन है—अभिनन्दन है।
जैन दिवाकर अभिनन्दन है।

अपनी आप मिसाल थे...

—स्वामी नारायणानन्दजी

जय जय जय मुनिराज जैन जग के हितकारी,
स्वयं प्रेम साकार प्रेम के परम पुजारी।
रहे सुनाते सदा कथायें प्यारी प्यारी,
निज जीवन में किये प्रेम के चश्मे जारी।
जिन शासन के अग्रणी अतिशय हृदय विशाल थे।
जैन दिवाकर चौथमल अपनी आप मिसाल थे॥

निरत रहे वे सदा धर्म ही के विचार में,
था उनका विश्वास रूढ़ियों के सुधार में।
जीव दया ही सार समझ इस जग असार में,
लगे रहे सानन्द अहिंसा के प्रचार में।
सिद्ध संयमी सरल चित महा मनस्वी धीर थे,
पर्वत सम वे अटल थे सिंधु सरिस गम्भीर थे॥

बरसाते थे सुधा सदा निज प्रवचन द्वारा,
करते थे उपकार निरन्तर तन मन द्वारा।
प्राप्त किया सम्मान लोक में जन-जन द्वारा।
किया जगत-कल्याण तपस्वी जीवन द्वारा।
मिटा गये अज्ञान तुम सम्प के ज्ञान प्रकाश से,
आलोकित जग हो उठा अलि अविद्या नाश से॥

शास्त्रों का सिद्धान्त धर्म का मर्म बताया,
गुमराहों के लिए सत्य का पथ दिखलाया।
मानव, मानव-विश्व प्रेम पीयूष पिलाया,
स्नेह सलिल से सींच हृदय का सुमन खिलाया॥
कोमल चित करूणायतन राग रहित स्वच्छन्द थे,
धन्य-धन्य मुनिवर अमर आनन्दी आनन्द थे।

पूज्य पिलाते रहे सदा प्रेमामृत प्याले,
जागृत किया समाज खोल निद्रा के ताले।
साधु-मार्ग के सन्त अमित गुणवन्त निराले,
धन्य-धन्य मुनिराज परम पद पाने वाले।
सरावोर हो प्रेम में मुनि व्रत पूर्ण निभा गये,
भक्तों को कर मुदित मन आप मोक्ष पद पा गये॥

श्री जैन दिवाकर जी महाराज का समाज के प्रति योगदान

—चांदमल मारु, मन्दसौर
महामन्त्री अ० भा० जैन दिवाकर संगठन समिति
एवं जन्म शताब्दी महासमिति

अनेक बार यह देखा गया है कि मानव जहाँ अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए अग्रसर रहता है, वहाँ दूसरी ओर मानव ने अपने मनन-चिन्तन से वह अनुभव किया कि शारीरिक सुखों की उपलब्धि ही सब कुछ नहीं है। अतः ऐसी स्थिति में महान् सन्तों ने जगत् के कल्याण के लिए वास्तविक स्थिति को जनता के सामने रखा। उन महामुनियों ने अपने चिंतन के द्वारा जो उपलब्धियाँ प्राप्त कीं तथा अति सूक्ष्म दृष्टि से देखा उसे अपने विचार देकर जन-जन के समक्ष रखा।

आज के युग में धर्म के नाम पर अनेक व्यक्ति नाक-भौंह सिकोड़ने लगते हैं तथा धर्म को साम्प्रदायिकता का पुट देने लगते हैं। लेकिन वास्तविकता में ऐसी बात नहीं है। धर्म वह पवित्र सिद्धान्त है, जो मानव को मानव के पास लाकर मानवता सिखाता है। धर्म मानव को हिंसावृत्ति से दूर करके सही अर्थों में अहिंसावादी बनाता है तथा मानव बने रहने की शिक्षा देता है। आज संसार में सर्वत्र अशान्त वातावरण बना हुआ है, भ्रष्टाचार फैला हुआ है उसे एकमात्र धर्म ही दूर कर सकता है।

धार्मिक नियमों का उपदेश त्यागी, महान् सन्त ही दे सकते हैं और ऐसे ही सन्तों के उपदेश का प्रभाव भी जन-मानस पर पड़ सकता है। भारतवर्ष में प्रायः अनेक स्थानों पर ऐसे महान् सन्तों के योगदान से ही अहिंसा एवं सत्य धर्म का प्रचार-प्रसार होता रहा है। हमेशा यह बात देखी गई है कि महान् सन्तों का प्रादुर्भाव परोपकार के लिए होता है उनका अपना व्यक्तिगत कोई स्वार्थ नहीं होता।

ऐसे महान् त्यागी सन्तों में श्री जैन दिवाकर, जगत्वल्लभ, प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज की गणना की जाती है। वास्तव में जैनधर्म के प्रचार व प्रसार के लिए श्री जैन दिवाकर जी महाराज ने अपना सम्पूर्ण जीवन ही दे दिया था। श्री जैन दिवाकरजी महाराज की बाल्यकाल से ही बहुमुखी प्रतिभा रही है। बहुत छोटी अवस्था में ही अनेक भाषाओं के वे पारंगत हो गये थे। प्रायः देखा जाता है कि उपदेशक और गुरु योग्य व्यक्ति होता है, तो उसकी योग्यता का दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और सब ही समाज उसकी प्रतिभा का महत्व स्वीकार करता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज जैन सिद्धान्तों के पारंगत विद्वान् तो थे ही, अन्य दर्शनों के भी तलस्पर्शी जानकार थे। इसके साथ-साथ अच्छे वक्ता, सुलेखक, कवि, विद्याप्रेमी, धर्मरक्षक तथा से प्रबल परोपकारी भी थे। अपना जीवन उन्होंने दूसरों के कल्याण के लिये ही समर्पित कर दिया था। आपके प्रवचनों से श्रद्धालु आनन्द-विभोर हो जाते थे। ऐसा कोई भी प्रवचन नहीं होता जिसमें अनेक जीवों को अभयदान एवं अनेक त्याग प्रत्याख्यान नहीं होते।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज महान् अहिंसावादी महात्मा पुरुष थे। आपके समस्त गुणों का
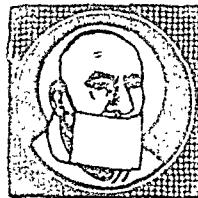
वर्णन करना लेखनी से बाहर है तथा अत्यन्त दुष्करत कार्य है, लेकिन आपका जीवन एवं कार्य संसार के प्राणियों के लिए प्रेरणादायक रहा है।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने सचमुच में अहिंसा व सत्य के सिद्धान्तों द्वारा जैनधर्म के प्रचार व प्रसार में योगदान तो दिया ही है, किन्तु इन महान् सन्त ने हजारों मील की पद-यात्रा करके राजा-महाराजा जागीरदार, सेठ एवं मध्यम वर्ग के लोगों को अपने व्याख्यानों से लाभान्वित किया है। इतना ही नहीं, असंख्य जीवों को अभयदान भी दिलवाया तथा अनेक राजा-महाराजा, जागीरदारों से अगते पलवाने के पट्टे भी लिखवाये।

अन्त में गुरुदेव के प्रति अपनी भावपूर्ण अश्रुपूरित श्रद्धांजली अर्पित करता हुआ समाज से निवेदन करता हूँ कि उनकी जन्म शताब्दी में उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण कर कार्य करने की ओर अग्रसर हो।

सद्धंजली

श्री रमेश मुनि शास्त्री
[उपाध्याय श्री पुष्करमुनि के सुशिष्य]

जीवरायो महारायो,
गुणाण रयणागरो।
साहाए तस्स संजाओ,
चोथमल्लो मुणीसरो।१।

समणसंघ सिंगारो,
सोमो ससीसमो सया।
धम्म - धुरंधरो धीरो,
धण्णो सो य तवोधणो।२।

सन्तो जिइंदियो दन्तो,
जिणसासण पंगणे।
सूरो सहस्सरस्सी सो,
उग्गओ निम्मलो अहो।३।

मंजुलं वयणं गीयं,
सरणं यावि मंगलं।
सज्झाणं जीवणं जेसा,
हिअयहारियं अहो।४।

जियमोह महामल्लो,
निस्सल्लो जणवल्लहो।
जइणागम विण्णू जो,
वाणीपहू पहावगो।५।

गुणीवराणं गुरु पोक्खराणं,
वुहाण सीसो य मुणी रमेसो।
सुभत्ति भावेण पुणो मुणिंदं,
अहं पि वन्दे सिरसा सुवीरं।६।

महामानव

☆ श्री अक्षयकुमार जैन, जोधपुर

महामानव नहीं होते हैं माता से पैदा
महामानव निर्माण होते
विश्व की कर्मशाला में !!
यूं तो इस जग में
कई जन्म लेते और चले जाते,
कुछ ऐसे भी महामानव होते हैं
जो कुछ देकर
अमरता पाते।
गुजर जाता है उनका जमाना
फिर भी हम जन्म लेने वाले
उन्हें याद करते,
उन्हीं के आदर्शों
और सिद्धान्तों को
जानकर,
अमरता की राह की ओर
अग्रसर होते !
ऐसा ही एक महामानव !
इस पुण्य भूमि पर
एक नया प्रकाश देकर,
'जैन दिवाकर' के नाम से
अपनी अद्भुत छवि से
'जगद्वल्लभ' बन कर
भव्यी जीवों को
सत्बोध दिया था।
विश्व में फिर से एक बार
जैन धर्म का मर्म बताकर,
भटके हुये पथिकों को,
राह पर लाकर;
कई राजाओं, महाराजाओं,
जमींदारों, जागीरदारों को
अहिंसा का उपदेश सुनाकर,
डंके की चोट के साथ

जैन धर्म के जयनाद से
एक नया
उद्घोष किया था।
जग वैभव तुम्हें
छल न सके,
विचारों को न
बदल सके,
तुम ऐसे जिनधर्म
मर्मी थे,
सच्चे अटल कर्मी थे,
पर-प्रकाशी
तुम्हारा जीवन था,
जिसे सच्चे दिल से
जीया था।
अनूठा चमत्कार
तुमने दिखलाया,
पत्थर दिल भी
आंसू ले आया।
जब विकराल मौत भी
तुम से हार गई,
तब मौत को
गले लगाया था।
जग का क्रम निभाया था,
प्रकृति ने भी
तुम्हारे लिये
अश्क बहाया था।
तुम्हारे, महा सुकर्मों से
आज याद तुम्हारी
जिन्दा है।
पढ़-सुनकर,
तुम्हारे जीवन को
पाखण्डी होते

शर्मिन्दा हैं।
नित्य तेरा
स्मरण मात्र करने से,
जन, जीवन
आच्छादित होता है,
तेरे आदर्शों से
एक मानव,
महा मानव बनने की,
राह पर,
अग्रसर होता है।
महामानव !
न कभी मरते,
साया बन
साथ है चलते।
निरुत्साह में
उत्साह बन,
नया पथ
दिया करते।
है यही आकांक्षा मेरी
कि हे ! पूज्य दिवाकर।
तुम-सम इस भूमि पर
फिर से एक नया
दिवाकर बना दो
या फिर,
तुम्हीं एक बार
फिर से
नव प्रकाश देकर,
दिवाकर के नाम को
"अक्षय" बना दो।

☆☆

वर समणो जिण दिवायरो

☆ प्राचार्य माधव श्री० रणदिवे; सतारा
(प्राकृत भाषा प्रचार समिति)

जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्मि।
अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मो त्ति विसेसिदो समणो॥

सिरीकुंदकुंदायरिएणं पवयणसारम्मि समणवरस्स जं वण्णणं कयं तं सव्वं सिरीचउहमलमुणिणो विसए सच्चं होइ। जया जुव्वणोज्जाणम्मि मणुस्सो सुहेण विहरइ विसयसुहम्मि रमइ य, तया चउहमल्लो संसाराओ विरत्तो जाओ। अट्ठारसमम्मि वरिसे सो सिरीहिरालालायरियसमीवे पव्वज्जइ। तेण अप्पमत्तेण मुणिधम्मो पालिओ।

सिरीचउहमलमुणी सत्त भासासु पारंगओ। आगमकुसलेण तेण सव्वधम्मसत्थाइं पढियाइं। महुरवाणीए धम्मोवएसं काऊण तेण अणेगा जणा आवज्जिया। जिणाणुयाई सावगसाविगाओ अन्ने वि इत्थीपुरिसा तस्स पावयाणं सोउं जिणठाणगंसि आगच्छंति।

सिरीचउहमल मुणी अप्पणो तवोतेएण अविरयसाहणाए य दिप्पंतो सूरो व्व पगासेइ। सो य रट्ठसंतो त्ति पसिद्धो। तेण जिपदिवायरपयं विभूसियं। अओ जिण-दिवायरो सिरीचउहमलमुणी नामेण सो जाणिज्जइ।

तस्स मुणिवरस्स सूरियस्स उवमा दिज्जइ। जहा सूरो अंधयारं नस्सइ, तहा तेण जणाणं अन्नाणंधयारो विणासिओ। जहा सूरो किरणेहिं पउमाइँ वियासेइ, तहा सो जिण दिवायरो सुवयणेहिं नरणारीकमलाइ पप्फुल्लं करेइ।

जिणदिवायरो तेयस्सी समणो। सो पंचसमिओ तिगुत्तो पंचेदियसंवुडो जियकसाओ दंसणणाण चारित्त समग्गो संजदो य। नमो तस्स जिण दिवायरस्स।

☆ श्री विजय मुनि 'विशारद'
[मेवाड़भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज के शिष्य]

[१]
दिव्य-दिवाकर दिव्य-विभूति,
विव्य-देशना पथ - दर्शक।
दिव्य तेजस्वी चौथमुनि जी,
बने जगत् में आकर्षक ॥

[२]
सुरभि युत शुभ सुमन चमन में,
खिलता है आनन्द दाई।
वैसे ही गुरुवर की महिमा,
जीवन में गौरव लाई ॥

[३]
नीर निरन्तर रहे प्रवाहित,
करता है सरसब्ज धरा।
धन्य-धन्य सुत गंगाराम है,
हीरालाल गुरुवर निखरा ॥

[४]
केशर पिसकर रंग देती है,
जिसको जग ने शुभ माना।
वैसे ही पंच महाशील से
अपनापन भी पहचाना ॥

[५]
मनुज अरे क्या महा मनुज थे,
उसमें भी थे महा मुनिवर।
सम्प्रदाय से मुक्त मनस्वी,
सफल-सबल शासक गुणिवर ॥

[६]
'नीमच' नगरी पुण्य पुंज है,
जहाँ जन्म गुरु ने पाया।
माता 'केशर' का मन फूला,
देख-देख कर हरषाया ॥

[७]
सम्वत् उन्नीसौ चौंतीस का,
सूर्योदय लेकर आया।
वंश चोरड़िया उज्ज्वल करने
दिवाकर ये प्रगटाया ॥

[८]
योग्य पिता के योग्य पुत्र थे,
शिक्षा का पाया शुभ योग।
मिला सुहाना संस्कारों का,
जिनको सुखदाई संयोग ॥

[९]
फाल्गुन शुक्ला दसमी चौपन,
मंगलकारी है प्रियकार।
रविवार की सुखद घड़ी में,
बने आप त्यागी अणगार ॥

[१०]
गुरु सेवा-भक्ति से पाया,
अतुल ज्ञान का जो नवनीत।
सरल सौम्य पाई आकृति—,
कोई नहीं होता भयभीत ॥

[११]
बने विज्ञ-विद्वान आप पर,
गर्व नहीं जिनको लवलेश।
सागर से गम्भीर आप थे,
महा मनस्वी मुनि महेश ॥

[१२]
जैनागम के ज्ञाता पूरे,
गीता - महाभारत जानी।
रामायण कुरान भागवत्,
पुरान गुलिस्तां-विज्ञानी ॥
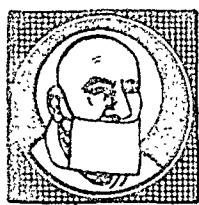
[१३]

संस्कृत - प्राकृत-हिन्दी - उर्दू,
गुजराती भाषा जानी।
राजस्थानी और फारसी,
मेवाड़ी के गुरु ज्ञानी ॥

[१४]

था उपदेश प्रभावी जिनका,
अद्‌भुत रस से भरा हुआ।
धर्मावलम्बी मानव का जहाँ,
सुन-सुन मानस हरा हुआ ॥

[१५]

महलों से कुटिया तक पहुँचा,
जैन दिवाकर का सन्देश।
'प्रसिद्ध वक्ता' कहलाये जो,
उदित हुआ जिन-पथ का सन्देश ॥

[१६]

सभी वर्ग जाति के बन्धु,
सुनते थे संदेश सदा।
छोड़ व्यसन बनते पावन,
वाणी में था स्नेह लदा ॥

[१७]

वक्ता थे गुरुदेव कवि थे,
लेखक भी थे गायक थे।
संतों के गुण से परिपूरित,
भक्तों के उन्नायक थे ॥

[१८]

चरित्रकार थे रचे आपने,
कई सुहाने महाचरित्र।
जिनको पढ़कर कइयों के,
मानस बन गये यहाँ पवित्र ॥

[१९]

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई—
में भी धर्म-प्रचार किया।
अधः ओर जाने वालों—
का; गुरु ने उद्धार किया ॥

[२०]

कई विरोधी आये थे बस,
उल्टा-सीधा ले अभियान।
गुरुदेव की तेजस्विता ने,
उनमें भी पाया सम्मान ॥

[२१]

झुके चरण में उनके मस्तक,
झूठ-कपट सब छोड़ दिया।
सम्यक् श्रद्धा मार्ग दिखाया,
आया उनमें मोड़ नया ॥

[२२]

कइयों ने दी भेंट आपको,
सप्त-व्यसन छोड़े मन से।
कइयों के पथ-सुपथ बने हैं,
कई सरसब्ज बने धन से ॥

[२३]

सुमन चमन से चला गया पर—
जग में छोड़ गया शुभ वास।
उपदेशों का नीर बहाया,
मिटा गया भवियों की प्यास ॥

[२४]

ऐसे जैन दिवाकर जग के,
महा दिवाकर कहलाये।
ऐसे गुरुवर के चरणों में
श्रद्धा सुमन चढ़ायें ॥

[२५]

स्मृति ग्रन्थ रहे हृदय बीच में,
पूज्यनीय बन जायेगा।
जय-जयकार रहेगी उसकी,
जो नित गुरु को ध्यायेगा ॥

✡✡

गुलाब-सा सुरभित जीवन

सौ० मंजुलाबेन अनिलकुमार बोटाद्रा, (इन्दौर)

[बी. ए., अध्यापन विशारद]

भारत संतों का देश है। अर्थात् भारत का गौरव, भारत की शोभा महान् विभूति, संत, महात्मा हैं। अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सत्साहित्य-अमृत वाणी रूप पराग से अनेक भवीजनों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और जिनवाणी के माध्यम से चारगति में फँसे अज्ञानी जीवों को बाहर निकालते हैं उनमें से आज अनेक सन्त इस अवनी पर नहीं हैं किन्तु उनकी सुरभि से उनके कार्यों से आज भी हमारा हृदय-विभोर हो जाता है।

गगन में सूर्य उदय होता है धरातल चमक उठता है। उद्यान में वृक्ष पर पुष्प विकसित होते हैं, वातावरण में सुगंधि भर देता है। मानव समाज भारतीय ऐसे ही नर-रत्नों से परिपूर्ण हो जाता है। जिन्होंने जीवन को तप, त्याग की साधना के पथ पर आगे बढ़ाया है। वहाँ समाज और धर्म को भी अलौकिक ज्ञान का ज्वलंत प्रकाश दिया है।

स्थानकवासी समाज का इतिहास ऐसे ही एक-दो नहीं, सैकड़ों सन्तों को आदरणीय, वंदनीय स्तुत्य जीवन और उनके ज्ञान का अलौकिक प्रभा से भरा है। उन्हीं महापुरुषों में हैं 'जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब।'

गुलाब अपना सर्वस्व अर्पण करके वातावरण को सुरभिमय बना देता है। अगरबत्ती स्वयं जलकर सारे वातावरण को शुद्ध बनाती है। उसी तरह सन्त स्वयं अपने लिये ही नहीं जीते, किन्तु अपने अलौकिक ज्ञान का प्रकाश से भव्यात्माओं के हृदय की अँधियारी गुफा में अज्ञान को नष्ट करते हैं और ज्ञान की ज्योति ज्वलित रखते हैं।

उस महान् आत्मा को जन्म शताब्दी के इस सुअवसर पर हम भावपूर्ण श्रद्धा व्यक्त किये बिना नहीं रह सकते। सच्ची श्रद्धा के पुष्प तो हम उनके गुणों को अपने जीवन में धारण करके ही चढ़ा सकते हैं। इस भावना से मैं श्रद्धा के मधुर क्षणों में उस विराट् आत्मा के प्रति अपनी भाव पूर्ण श्रद्धांजलि अर्पण करती हूँ।

पूज्य गुरुदेव जैन दिवाकर जी

—प्रकाशचन्द मारु (मंदसौर)

जैन दिवाकर-प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज साहब एक महान सन्त थे जिन्होंने इस भारत-भूमि में जन्म लेकर अपना समस्त जीवन विश्व-कल्याण के लिये एवं मानव-जाति की सेवा के लिए समर्पित कर दिया था।

महलों से लेकर झोंपड़ी तक के मानव को ज्ञानरूपी प्रकाश से देदीप्यमान करते हुए अनेक दुर्व्यसनों से छुड़ाकर हजारों जीवों को अभयदान दिलाया। गुरुदेव के सान्निध्य में स्वर्ण जयन्ति महोत्सव चित्तौड़गढ़ किले पर हुआ। वह उत्सव स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है।

अन्त में पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज साहब की जन्म शताब्दी पर उनके श्रीचरणों में अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

श्री गोपीकृष्ण व्यास, एम० ए०
साहित्याचार्य, नव व्याकरण शास्त्री, 'काव्यतीर्थ'

जैत्रं वृत्तमुपास्य विश्वविजयी योऽजायताऽखण्डिते
नव्ये भव्यपुराणके जगति सत्कीर्त्तिप्रभाभास्करः ॥
दिव्यश्वेत --सिताम्बरः सकलवागर्थप्रकाराग्रणीर्
वाग्वैदग्ध्यधनोऽत्र चौथमलजी जीव्याज्जनानां हृदि ॥१॥

कष्टं शिष्टजनेषु सूक्ष्मसुधिया सृष्टं प्रकृत्या यदि
रञ्जन्भञ्जयति स्म मिष्ट सुगिराऽनायासतोऽशेषतः ॥
प्रज्ञाप्रज्ञसमस्तमानवगणे यो मानवत्वं दधत्
सिन्धुस्रोत इवात्र चौथमलजी प्रोह्याज्जनानां हृदी— ॥२॥

द्वक्रोधं मतभेदजं व्यशमय द्वह्निन्तुराषाडिव
वन्द्योऽभूदत एव सर्वजगतः सत्सम्प्रदायैर्जनैः ॥
क्तान्तोऽर्चिः प्रतिपूजनार्थं विमलो धातुः सुवर्णोऽर्चितः
पण्ये पण्य जनैर्विविच्य सुवचोविद्वन्महार्घ्यो मणिः ॥३॥

डिण्डिन्नादमवादयड्डमरुणा वर्णाञ्शिवस्तान्त्रिकान्
तद्वद्यो न्यवदत्सदैव विबुधान्धर्मं परं श्रावकान् ॥
रम्यं बोधमवाप्य यः सुगुरु हीरालालतश्चा सप—
त्नद्वेषद्विपवारणार्थदमहिंसाख्यं व्रतं प्राणयत् ॥४॥

प्रापद्यो जनिमत्र केसर सुदेव्याः स्वर्णदीरामतोऽ-
तः सोऽभूद्विमलांशुचन्द्रपट घृत्संघस्य संस्थापकोऽ— ॥
स्मच्छब्दप्रतिपादितार्थनयविद्धौरेयतां सन्दधत्
रक्षार्थं प्रददौ सुकाव्यनयनं संधाय नव्यं सताम् ॥५॥

णीधातोस्तृचि जायते किमपि यद्रूपं स शब्दो महान्
यस्मै युक्तमदायि तेन जिनसामर्थ्येन जैनागमे ॥
गुण्यं पुण्ययुतं ततो मुखरितं वृत्तं च संघे महत्
रुष्टानप्यतिहर्षितान्प्रकुरुतेस्माध्यात्म शक्त्या यतः ॥६॥

देवा अप्यतिमानुषत्वगुणमाकर्ण्यास्य कर्णस्य तेऽ—
वश्यं गोचरमालभन्त परमक्षणो विवादं पुनः ॥

श्री अर्हत्कृपया विशामयितु मा जग्मुर्भुवं भावुकाः
चौर्यच्छद्ममनुष्यवेषमपिधायात्मीयतां द्यामिवाऽ— ॥७॥

थप्राचीनयुगे यथा भुवि सुराश्चित्रं चरित्रं गुरोः
मध्यं लोकमुपागतस्य परया भक्त्याऽऽप्तुमेवाक्षिभिः।
लब्धुं भूरि सुखं तथैव दिविषद्यूथोऽर्यगेहं ययौ
जीवाऽऽनन्त्यभवान्विविक्त पथगान्कैवल्यमाप्तुं सुखम् ॥८॥

मन्दं मन्दमसौ मधव्य वचनैरोवोढ हृव्यादवत्
हात्वाऽष्टादशवर्ष आयुषि गृहं दीक्षां गृहीत्वा मुनी— ॥
राष्ट्रेऽराजत भारते सशरदां षट्के मरुत्संयुते
जय्यं यस्य समस्त भूतलमनस्त्वासीद्वचो-गंगया ॥९॥

कीर्तिर्यस्य ससार सागरदिशां सीमानमुल्लङ्घ्य च
जग्ध्वा नीलतलं नभः खगतलेष्वाकाशते चन्द्रवत् ॥
यस्याभूच्चरितं सुगन्धिसुमनः कुन्दारविन्दे इव
होतेव भ्रमरान्द्विजान्यदवसङ्कृष्यस्थितं भूरिव ॥१०॥

गोपीकृष्ण कृतं वचः सुमनसां गुच्छं गले धारयेत्
पीनः स्यान्मनसि स्वयं स पुरुषः सत्सङ्गतौ भक्तिमान् ॥
कृत्वा सर्वशुभानि धर्मचरितान्यादाय पुण्यं वितृ—
ष्णः सज्ज्ञानरतः कुसङ्ग-विजयी विभ्राडिवाऽऽदीव्यति ॥११॥

✡✡

भावार्थ

ॐ अपने विजयशील चरित्र स्वरूप रथ पर आरूढ़ होकर जिसने नये और पुराने सभी वर्गों के मानव मन पर विजय प्राप्त की, और अपनी सच्ची कीर्ति-पताका फहराते हुए विश्वसाहित्य के गहन अध्ययन तथा विशिष्ट रूप से जैनागमाऽध्ययन द्वारा प्रखर वाग्मिता-धन प्राप्त कर विश्व के प्रवक्ताओं में अग्रस्थान-लाभ किया, वह श्री चौथमलजी महाराज जनमानस में निरन्तर जीवित रहें ॥१॥ जिसने, कदाचित् स्वभाववश शिष्टजनों के मन में कहीं कटुता आ गई तो उसे अपने सत्य और मधुर वचनों द्वारा इस प्रकार धो दिया जिस प्रकार सिन्धुनद का प्रवाह कीचड़ को धो देता है और जन-जन के मन को अनुरञ्जित करते हुए उन्हें मानवत्व का पाठ पढ़ाया वह श्री चौथमलजी महाराज सदा निर्मल गङ्गाजल की भांति प्रवाहित होते रहें ॥२॥

☆

☆ श्री गोपीकृष्ण व्यास, एम० ए०
साहित्याचार्य, नव व्याकरण शास्त्री, 'काव्यतीर्थ'

जैत्रं वृत्तमुपास्य विश्वविजयी योऽजायताऽखण्डिते
नव्ये भव्यपुराणके जगति सत्कीर्त्तिप्रभाभास्करः ॥
दिव्यश्वेत --सिताम्बरः सकलवागर्थप्रकाराग्रणीर्
वाग्वैदग्ध्यधनोऽत्र चौथमलजी जीव्याज्जनानां हृदि ॥१॥

कष्टं शिष्टजनेषु सूक्ष्मसुधिया सृष्टं प्रकृत्या यदि
रञ्जन्भञ्जयति स्म मिष्ट सुगिराऽनायासतोऽशेषतः ॥
प्रज्ञाप्रज्ञसमस्तमानवगणे यो मानवत्वं दधत्
सिन्धुस्रोत इवात्र चौथमलजी प्रोह्याज्जनानां हृदी— ॥२॥

द्वक्रोधं मतभेदजं व्यशमय द्वह्निन्तुराषाडिव
वन्द्योऽभूदत एव सर्वजगतः सत्सम्प्रदायैर्जनैः ॥
क्तान्तोऽर्चिः प्रतिपूजनार्थं विमलो धातुः सुवर्णोऽर्चितः
पण्ये पण्य जनैर्विविच्य सुवचोविद्वन्महार्घ्यो मणिः ॥३॥

डिण्डिन्नादमवादयड्डमरुणा वर्णाञ्शिवस्तान्त्रिकान्
तद्वद्यो न्यवदत्सदैव विबुधान्धर्मं परं श्रावकान् ॥
रम्यं बोधमवाप्य यः सुगुरु हीरालालतश्चा सप—
त्नद्वेषद्विपवारणार्थदमहिंसाख्यं व्रतं प्राणयत् ॥४॥

प्रापद्यो जनिमत्र केसर सुदेव्याः स्वर्णदीरामतोऽ-
तः सोऽभूद्विमलांशुचन्द्रपट घृत्संघस्य संस्थापकोऽ— ॥
स्मच्छब्दप्रतिपादितार्थनयविद्धौरेयतां सन्दधत्
रक्षार्थं प्रददौ सुकाव्यनयनं संघाय नव्यं सताम् ॥५॥

णीधातोस्तृचि जायते किमपि यद्रूपं स शब्दो महान्
यस्मै युक्तमदायि तेन जिनसामर्थ्येन जैनागमे ॥
गुण्यं पुण्ययुतं ततो मुखरितं वृत्तं च संघे महत्
रुष्टानप्यतिहर्षितान्प्रकुरुतेस्माध्यात्म शक्त्या यतः ॥६॥

देवा अप्यतिमानुषत्वगुणमाकर्ण्यास्य कर्णस्य तेऽ—
वश्यं गोचरमालभन्त परमक्षणो विवादं पुनः ॥

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज को सम्प्रदाय में न बाँधें

✰ श्री मानवमुनि (इन्दौर)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज इस युग के एक महान् राष्ट्रसन्त हो गये हैं, उन्होंने जैन समाज की एकता के लिए सभी सम्प्रदाय मुनिराजों को संगठित बनाने का प्रयास कोटा चातुर्मास में किया। यह बड़ा पुरुषार्थ का काम हुआ। वे जैन समाज के ही नहीं अपितु मानव समाज के कल्याण के लिए ही अवतरित हुए थे। उनके प्रवचन में जैनों के अलावा हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख तथा राजा-महाराजा, ठाकुर, जमींदार सब आते थे और एक साथ समान भाव से धर्मस्थान पर बैठते थे; किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं था।

धर्मोपदेश के प्रभाव से हजारों व्यक्तियों से शराब, मांस, पशुबलि का त्याग करवाया तथा लाखों पशुओं को अभयदान दिलाया।

भगवान महावीर के सिद्धान्तों को स्वयं के जीवन में अपनाया जिनके रग-रग में सत्य-प्रेम, करुणा, अहिंसा का भाव भरा था। जैन समाज का गौरव बढ़ाया। आज उनका नश्वर शरीर नहीं है, पर उनके समन्वय विचार आज भी अमर हैं।

जैन दिवाकरजी महाराज सम्प्रदाय के सन्त-सतियाँ उनके मानव समाज के कल्याणकारी कार्य को उठा लें तो विज्ञान युग में महान् क्रान्तिकारी कार्य होगा।

उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि श्रद्धा-भक्ति से अर्पित कर सकेंगे।

दिवाकर स्तुति

✰ श्री गौतम मुनि

(१)

इस धवल धरा पर जैन दिवाकर,
कल्प तरु सम पल्लवित हुए।
तमाच्छादित संसार बीच में,
आलोक पुंज सम उदित हुए॥

(२)

विमल था व्यक्तित्व जिनका,
निर्मल था संयम—महा!
आचार—था उज्ज्वल रविसम,
धैर्य धरती सा अहा!

(३)

मानवता के ये उद्धारक,
कैसे नर-नारी भूल पाएँगे।
एकता के अग्रदूत मनस्वी,
गौरव-गाथा गाएँगे।

जिन्होंने जनों के हृदय में मतभेद के कारण उमड़ते हुए तथा भड़कते हुए क्रोध को, अग्नि को इन्द्र की भाँति शान्त कर जगत में वन्दनीयता पाई और सभी सम्प्रदायों से आदर प्राप्त किया और सुवर्ण हीरे की भाँति जड़कर अतुल शोभा पायी वह श्री चौथमलजी म० जनमानस में जीवित रहें ॥३॥

जिस प्रकार शिवजी ने डमरू बजाकर पाणिनि मुनि को प्रबुद्ध किया ठीक उसी प्रकार श्रावकों को श्री जैन दिवाकरजी ने भी अपने उपदेशों से जागृत किया। अपने सद्गुरु श्री हीरालालजी महाराज से सद्बोध प्राप्त कर आत्म-द्वेषी हाथी रूपी मद को दूर करने के लिए अहिंसा महाव्रत स्वयं पालन करते हुए सर्वत्र अनुप्राणित किया। श्री जैन दिवाकरजी ने श्रीमती केसर देवी और श्री गङ्गारामजी से जन्म प्राप्त कर तथा अपने गुरुदेव से आशीर्वाद पाकर श्री श्वेताम्बर जैनसंघ के प्रमुख संचालक बने और आत्मज्ञान के प्रचार और प्रसारार्थ अति सुन्दर साहित्य का निर्माण किया, जिससे सङ्घ को अति सुदृढ़ बनाया ॥४॥५॥ उन्होंने अपने उदात्त और उदार अध्यात्म-ज्ञान के द्वारा माननीय नेता बनकर जैनागम को ऐसा मुखरित किया, जिससे कई सज्जन अपने रागद्वेष को सदा के लिए तिलाञ्जलि देकर आत्मानन्द विभोर हो उठे ॥६॥ उनके देवोपम यश को सुनकर देवलोक से देवता भी मनुष्य जैसा कपट वेष धारण कर अपनी आँखों के विवाद को मिटाने के लिए पृथ्वी पर आये और उनके दर्शन कर बहुत ही आनन्द लाभ किया ॥७॥८॥ उन्होंने अनन्त जन्मों से आ रहे जीवों को कैवल्य सुख की उपलब्धि का साधन उपलब्ध कराने की इच्छा से ही अपने अट्ठारहवें वर्ष की आयु में ही दीक्षा ग्रहण कर भारतराष्ट्र में ५५ वर्षों तक चन्द्रवत् प्रकाश करते हुए मीठे-मीठे वचनों द्वारा सन्मार्ग प्रदर्शित किया ॥९॥

श्री जैन दिवाकरजी महाराज की कीर्ति सातों समुद्रों और सातों आसमानों को पार कर चन्द्रमा की भाँति चमक रही है। उनका सुगन्धिमय सच्चरित्र गुलाब और मोगरे के पुष्पों की भाँति भँवरे रूपी श्रावकों के झुण्डों को आकर्षित करने में कुशल है ॥१०॥ गोपीकृष्ण द्वारा रचित इन श्लोक-सुमनों को गले में फूलों के हार की भाँति जो पहनेगा उसका मन मस्त हो जायगा तथा सत्सङ्गति का व्यसनी बनकर समस्त शुभकार्य करता हुआ कुसङ्ग का परित्याग कर स्वयं दिवाकर की भाँति चमकने लग जायगा ॥११॥

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज को सम्प्रदाय में न बाँधे

श्री मानवमुनि (इन्दौर)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज इस युग के एक महान् राष्ट्रसन्त हो गये हैं, उन्होंने जैन समाज की एकता के लिए सभी सम्प्रदाय मुनिराजों को संगठित बनाने का प्रयास कोटा चातुर्मास में किया। यह बड़ा पुरुषार्थ का काम हुआ। वे जैन समाज के ही नहीं अपितु मानव समाज के कल्याण के लिए ही अवतरित हुए थे। उनके प्रवचन में जैनों के अलावा हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख तथा राजा-महाराजा, ठाकुर, जमींदार सब आते थे और एक साथ समान भाव से धर्मस्थान पर बैठते थे; किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं था।

धर्मोपदेश के प्रभाव से हजारों व्यक्तियों से शराब, मांस, पशुबलि का त्याग करवाया तथा लाखों पशुओं को अभयदान दिलाया।

भगवान महावीर के सिद्धान्तों को स्वयं के जीवन में अपनाया जिनके रग-रग में सत्य-प्रेम, करुणा, अहिंसा का भाव भरा था। जैन समाज का गौरव बढ़ाया। आज उनका नश्वर शरीर नहीं है, पर उनके समन्वय विचार आज भी अमर हैं।

जैन दिवाकरजी महाराज सम्प्रदाय के सन्त-सतियाँ उनके मानव समाज के कल्याणकारी कार्य को उठा लें तो विज्ञान युग में महान् क्रान्तिकारी कार्य होगा।

उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि श्रद्धा-भक्ति से अर्पित कर सकेंगे।

दिवाकर स्तुति

श्री गौतम मुनि

(१)

इस धवल धरा पर जैन दिवाकर,
कल्प तरु सम पल्लवित हुए।
तमाच्छादित संसार बीच में,
आलोक पुंज सम उदित हुए॥

(२)

विमल था व्यक्तित्व जिनका,
निर्मल था संयम—महा!
आचार—था उज्ज्वल रविसम,
धैर्य धरती सा अहा!

(३)

मानवता के थे उद्धारक,
कैसे नर-नारी भूल पाएँगे।
एकता के अग्रदूत मनस्वी,
गौरव-गाथा गाएँगे।

अनुकरणीय आदर्श : शतशः नमन

☆ आचार्य राजकुमार जैन

एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत)

एच० पी० ए०, दर्शनायुर्वेदाचार्य

साहित्यायुर्वेद शास्त्री, साहित्यायुर्वेद रत्न

टेक्नीकल आफीसर (आयुर्वेद)

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद, दिल्ली

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज समाज की उन दिव्य विभूतियों में से है जिन्होंने आत्महित चिन्तन के साथ-साथ परहित की भावना से समाज को बहुत कुछ दिया है। वे करुणापुंज और दया के सागर थे। उनका हृदय विशाल और लोक-कल्याण की भावना से ओतप्रोत था। वे आधुनिक काल के एक ऐसे आध्यात्मिक सन्त थे जिनकी वाणी में गजब का माधुर्य और अद्भुत आकर्षण क्षमता थी। उनके चरित्र में विवेक और व्यवहार का ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण था जो अन्यत्र दुर्लभ ही देखने को मिलता है। सहजता और स्वाभाविकता उनके रोम-रोम में समाई हुई थी। यही कारण है कि उनके जीवन में, आचरण में या व्यवहार में आडम्बर और कृत्रिमता कहीं देखने को नहीं मिली। आध्यात्मिकता उनकी जीवन-संगिनी थी और वे उसमें ही रँगे हुए थे। उन्होंने अपने उपदेशों में केवल उन्हीं बातों को कहा जिनका उन्होंने स्वयं अनुभव किया और अपने आचरण में उतारा। उन्होंने मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता को समझते हुए संसार में नश्वरता के मध्य जीवन की सार्थकता और सफलता के उस केन्द्र बिन्दु को भी समझने का प्रयत्न किया, जिसका प्रतिपादन आप्त वाक्य में निहित है। यही कारण है कि वे समाज में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए सदैव जागृत और तत्पर रहे।

वस्तुतः वे न केवल समाज के लिए, अपितु मानवमात्र के एक अनुकरणीय आदर्श थे। उन्होंने समाज को बहुत कुछ दिया है और समाज ने उनके उपदेशों से बहुत कुछ ग्रहण किया है। उनके उपदेशों के द्वारा समाज को जो दिशा निर्देश प्राप्त हुआ है उसके लिए समाज उनका चिर-ऋणी रहेगा। वे समाज में रहते हुए भी जल में रहने वाले कमल की भांति अलिप्त रहे। मोह और परिग्रह को उन्होंने सदैव त्याज्य मानकर उससे विरत रहे। वे वास्तव में सन्त पुरुष थे, उनकी आत्मा महान् और उच्चतम गुणों के उद्रेक से आपूरित थी। ऐसे तपस्वी साधक को मेरा शतशः नमन है और उनके श्रद्धार्चन हेतु विनयपूर्वक कुसुमांजलि अर्पित है। ☆

जैन दिवाकर : दिवाकर का योग

☆ वैद्य श्री अमरचन्द जैन (बरनाला)

श्री जैन दिवाकरजी की उत्कृष्ट संयम तथा योग-साधना का जादू तो अकथनीय था। बड़े से बड़ा विरोधी आपके समक्ष नतमस्तक हो जाता था। आपके हृदय-मन्दिर में चर-अचर जीवों के लिए क्षमा-शान्ति की लहर लहरा रही थी।

आप इस धरा-धाम पर भानु भास्कर की भाँति उदय हुए। उसी तरह साधना-पथ ग्रहण कर चमके, प्रकाश किरणें बिखेरीं। अन्त में भानु भास्कर की भाँति अलोकमय हो गये। ☆

वन्दना हजार को....

—श्री विमलमुनि 'धर्म भूषण'

लाखों में नहीं थी वह दिव्य ज्योति आप में थी,
भक्तों के सुहृदय भवन में समाई है।
अथक परिश्रम से गाँव गाँव घूमकर,
घर घर जड़ जैन धर्म की जमाई है।
गद्य-पद्य ग्रन्थों द्वारा वीर वाणी का प्रचार,
किया झोंपड़ी से लेके राज-महलों माँई है।
"विमल" श्री जैन भानु हो गया अदृश्य आज,
उन्हीं के ज्ञान की रह गई यहाँ ललाई है॥

दिव्य ज्ञानवान मार्तण्ड मुनि चौथमल,
लेकर जन्म कियो काम उपकार को।
बोले या न बोले पर दर्शक इच्छते यही,
देखते सदा ही रहे इनके दीदार को।
श्रोताओं को छोड़ गये सुखों में तल्लीन हुए,
आप सा सुनावें कौन सुज्ञान संसार को।
मेरे देव होंगे जहाँ, वहीं पे स्वीकार लेंगे,
आशा है "विमल" मेरी वन्दन हजार को॥

दिव्य ज्ञान की खान

☆ श्री जीतमल चौपड़ा (अजमेर)

दिव्य ज्ञान की खान दिवाकर, दिव्य ज्ञान की खान ॥टेर॥
इस कलयुग में खूब बढ़ाई, जैन धर्म की शान ॥दिवाकर॥
जग जंजाल समझकर छोड़ा, किया आत्म-कल्याण।
हीरालालजी से गुरुवर से, खूब बढ़ाया ज्ञान ॥दिवाकर ॥१॥
देश-देश में विचर-विचर कर, तारे जीव महान।
राजा-राणाओं तक पहुँचे, वीर का ले फरमान ॥दिवाकर॥२॥
बड़े-बड़े लिख ग्रन्थ कविता, घर घर गुंजाया ज्ञान।
संघ ऐक्य योजना में फूंको, सबके पहले जान ॥दिवाकर ॥३॥
शोक ? शोक हा महा शोक है, कैसे करूँ बयान।
कोटा में उस महापुरुष ने कर दिया महा प्रयाण ॥दिवाकर॥४॥
मर कर के भी अमर रहेंगे, 'चौथ मुनि' गुणवान।
'जीत' शांतिमय हो आत्मा, यही विनय भगवान ॥दिवाकर॥५॥
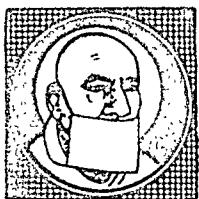
तप-त्याग की महान् ज्योति—

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

☆ श्री मदनलाल जैन [रावल पिण्डी वाले, जालन्धर (पंजाब)

महान् साधक तपोमूर्ति दिव्य ज्योति पुंज जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की शताब्दि मनाने का अभिप्राय यही है कि हम सब उनके महान् गुणों का अनुसरण करने की प्रेरणा लें। दिवाकरजी महाराज का जीवन विशेषताओं से युक्त था साधु समाज में संगठन एवं एकता की तीव्र तड़प उनके जीवन की महान् विशेषता रही है। दिवाकर प्रवर श्री चौथमलजी महाराज एक महान् त्यागी सन्त तथा सरल संयमी, मृदु सौम्य, सुख-दुःख से निरपेक्ष, परम सेवा-भावी युग प्रवर्तक थे। आपश्री के आलोकमय महान् जीवन का लक्ष्य सत्य-प्राप्ति और आध्यात्मिक विकास था। वे जीवन भर आचरण में पवित्रता, सात्विकता एवं उदार-भाव विकसित करने के लिए कषाय-भावों तथा दुर्गुणों से संघर्ष करते रहे। आपश्री ने लोक-कल्याण एवं समाज उत्थान और मानवता के विकास के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया था।

परम श्रद्धेय स्वर्गीय श्री दिवाकरजी महाराज के संयमी जीवन के सद्गुणों का कहाँ तक वर्णन करूँ? मेरी तुच्छ लेखनी में इतना बल ही कहाँ है, जो उस महान् आत्मा के दिव्य गुणों का चित्रण कर सके, फिर भी श्रद्धावश ज्योति-पुञ्ज-रत्न के प्रति कुछ अपने भाव लिख पाया हूँ, जो श्रद्धांजलि के रूप में उन्हें ही समर्पित हैं।

☆☆

हीरे की कनी थी

— मुनि श्री लालचन्द्रजी (जय श्रमण)

हीरे की कनी थी, 'मन' मोहन मनी थी जग,
चमत्कृति घनी थी मानो आभ बीज थी।
ख्याती की खनी थी "खूब" खूबी भी ठनी थी अति
जनता की मानी हुई सदा शुक्ल बीज थी।
'हुक्म दल' चौगुणों पुजाय 'वर्धमान' मिल्यो,
सुनते हैं काहू से न रीझ और खीज थी।
दो हजार सात मार्गशीर्ष सुद नौम आय,
कह दिया "दिवाकर चौथ" भुवि चीज थी॥

रिक्ता नवमी ने किया, पूर्णा वनन उपाय।
अवगुण रिक्ता "चौथ ग्रसि, रहि है अब पछताय।
सुद नवमी को था नहीं, शशि प्रकाश सन्तोष।
"चतुर दिवाकर" ले चली, पृथ्वी कर तम तोष॥

सार्थक नाम

☆ श्री अमरचन्द मोदी
(मन्त्री—'महावीर जैन नवयुवक संघ', ब्यावर)

स्वर्गीय जैन दिवाकर, जगत्‌वल्लभ, प्रसिद्धवक्ता, पूज्य गुरुदेव पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज साहब एक महान् तेजस्वी पुण्यात्मा संत थे।

आपने सूर्य के समान, ज्ञान रूपी प्रकाश से जैनधर्म को भारत के कोने-कोने में चमकाया अतः आप "जैन दिवाकर" कहलाये। आप अहिंसा, सत्य व क्षमा की दिव्य मूर्ति थे, आपकी यश-कीर्ति सारे जग में फैली अतः आप "जगत् वल्लभ" कहलाये। आपकी वाणी के प्रभाव से हजारों-लाखों जीवों को अभयदान मिला। आपके सदुपदेशों से हजारों-लाखों लोगों ने शराब, मांस आदि कुव्यसनों के त्याग किए। आपके व्याख्यान में जैन-अजैन, राजा, महाराजा आदि छत्तीसों कौम के लोग सम्मिलित होते थे, एक तरह से समवशरण की रचना देखने को मिलती थी अतः आप "प्रसिद्ध वक्ता" कहलाए।

आपका साहित्य उच्चकोटि का है जिसे पढ़कर मानव अपना जीवन उच्च व आदर्शमय बना सकता है। आपके द्वारा रचित कई भजन, आरतियाँ तो ऐसी हैं जो सार्वजनिक रूप से प्रातःकालीन प्रार्थना में घर-घर में बोली जाती हैं, जो जैन समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है, जैसे 'ॐ अरिहंताणं', 'जय गौतम स्वामी, 'साता कीजो जी शांतिनाथ प्रभु', 'ऋषभ कन्हैया लाला आदि। आप अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे अतः आप 'पंडित' कहलाए।

सदैव संघठन व प्रेम के हामी थे। आपका हृदय विशाल था, विनय और सहनशीलता आपके स्वाभाविक गुण थे अतः आप एक कुशल 'संत' कहलाये।

श्रद्धा की वह विराट् मूर्ति, विशिष्ट बुद्धिशाली, गम्भीरता का वह शान्त रत्नाकर सदैव जनता को लाभान्वित करता रहा, ऐसे पुण्यशाली संत के चरणों में नतमस्तक होता हुआ श्रद्धा के सुमन अर्पित करता हूँ।

"जब तक सूरज चांद रहेंगे, जैन दिवाकर याद रहेंगे।
गूँज रहा है नारा घर-घर, धन्य धन्य गुरु जैन दिवाकर ॥"

भक्त सहारे....

☆ श्री दिनेश मुनि

जैन दिवाकर उज्ज्वल तारे।
प्राण पियारे भक्त सहारे।
करुणा सागर मोहन गारे।
शरणागत को पार उतारे ॥१॥

नहीं निहारी छवि तुम्हारी।
नाम स्मरण है मंगलकारी ॥
सद्गुण क्यारी सौरभ न्यारी।
महिमा-भारी वाणी प्यारी ॥२॥

गुण-गरिमा का गान करूँगा।
पार कहाँ मैं पाऊँगा ॥
भक्ति नाव में चढ़ जाऊँगा।
भला क्यों न तिर जाऊँगा ॥३॥

जैन-दिवाकर-मुनि श्री चौथमल्लजित्प्रशस्तिः

✡ श्री नानालाल जवरचन्दजी रूनवाल, बी० ए०
[मन्त्री—संस्कृत परिषद, झाबुआ (मध्य प्रदेश)]

जयति भगवान् वीरो, जयति जिनशासनम् ।
सद्धर्मस्य प्रणेतारो जयन्ति मुनिपुंगवाः ।१।

मुनिश्चौथमल्लः सुधर्मोपदेष्टा, प्रजातः पुरे नीमचे ख्यातनाम्नि ।
पिता तस्य गंगायुतो रामसंज्ञस्तदम्वा च सुश्राविका केशराख्या ।२।

प्रभावोत्पादि वक्तृत्वं व्यक्तित्वमपि चाद्‌भुतम् ।
वाणी संमोहिनी तस्य शैली वाह्लाददायिनी ।३।

मेदपाट-महाराणा-श्रीमत्फतहसिंहजित् ।
कृतवान् दर्शनं तस्य श्रुतवान् धर्मदेशनम् ।४।

(भुजंग प्रयातम्)

अनेके नरेशास्तथामात्यवर्गाः, पुरश्रेष्ठिवर्याश्च विद्वद्वराश्च ।
सवर्णा अवर्णास्तथा मुस्लिमा वाऽभवन् भक्तिनम्रा जनानां समूहाः ।५।
गतो यत्र तत्रापि धर्मप्रचारोऽभवत् सर्ववर्गेषु वर्णेष्ववाधः ।
सभायां जना मन्त्रमुग्धाः प्रजाता मुनेः शीर्षकम्पेन सार्धं समस्ताः ।६।

(उपजातिवृत्तम्)

धर्मप्रचारेण च भूयसाऽसाववाप कीर्तिं विपुलां विशुद्धाम् ।
मान्योऽभवज्जैन दिवाकरेति वक्ता प्रसिद्धश्च जनप्रियश्च ।७।

मुनिसंघैक्यकार्यार्थं यत्नशीलोऽभवन्मुनिः ।
कृतवान् सम्प्रदायस्य विलीनीकरणं तथा ।८।
आयुषश्चान्तिमे वर्षे धर्माराधनतत्परः ।
कोटानाम्नि पुरेख्याते वर्षायां न्यवसन्मुनिः ।९।
तत्र संयुक्तरूपेण श्वेताम्बरैर्दिगम्बरैः ।
सम्मिल्य मनिभिः सार्धं कृतवान् धर्मदेशनाम् ।१०।
मुनिखाकाशनेत्राब्दे शुक्लपक्षेऽग्रहायणे ।
तत्रैवासौ दिवं यातो नवम्यां रविवासरे ।११।
रविवारे मुनेर्जन्म दीक्षापि रविवासरे ।
व्याख्यानमन्तिमं चैव स्वर्वासोऽपि च तद्दिने ।१२।

(उपजातिवृत्तम्)

यद्यप्यसावद्य न भौतिकेन देहेन भूलोकमलंकरोति ।
यशः शरीरेण विधास्यतीह स्थितिं स यावत् क्षितिचन्द्रसूर्याः ।१३।

(मन्दाक्रान्ता)

आदिष्टः सन्नजितमुनिना लेखनाय प्रशस्ते—
लोंके संघे सुविदितमुनेश्चौथमल्लस्य पद्यं ।
नानालालोऽर्पयति मुदितो ह्यंजलिं श्रद्दधानः
कांक्षन्नेषा भवतु भविकान् प्रेरयित्री सुमार्गे ।१४।

जैन दिवाकर : जग दिवाकर

✡ लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज'
एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत)

श्री जैन दिवाकरजी महाराज अहिंसा-सदाचार-अपरिग्रह के प्रबल प्रचारक थे। वे वाणी के एक ही जादूगर थे, उनकी वाणी में ओज था और देशना में मानव-जीवन दर्शन था। मानव धर्म की व्याख्या का, गूढ़ तत्वों के विवेचन का उनका अपना ढंग था। उनके बहुमूल्य विचारों का प्रवेश रंक से राजा तक के हृदय में निराबाध था। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अपनत्व और एकता-मूलक था।

जो कार्य भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष समारोह के सन्दर्भ में 'समणसुत्तं' के रूप में आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा से किया गया, उस कार्य की नींव की ईंट-बहुत पहले 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' के रूप में दिवाकरजी महाराज देश और समाज के सम्मुख जमा चुके थे। वे सही अर्थों में आत्मधर्मी, समाजधर्मी और राष्ट्रधर्मी साधु थे। वे साम्प्रदायिकता और जातीयता के स्थान में मानवता की ही आराधना करते थे। वे देश और समाज के निम्न चारित्रिक स्तर को अतीव उन्नत और उज्ज्वल स्तर पर देखने के लिए लालायित थे।

एक वाक्य में दिवाकर वस्तुतः दिवाकर थे।

श्रद्धार्चन

स्व० गुरुदेव जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की लोहामंडी श्रीसंघ (आगरा) पर विशेष कृपा रही है। सन् १९३७ ई. में आपका आगरा चातुर्मास एक ऐतिहासिक प्रवास रहा। यहाँ के श्रीसंघ की भावभरी भक्ति और कर्तव्यशीलता देखकर गुरुदेवश्री ने कहा था—"लोहामंडी सोनामंडी हो जायेगी।" गुरुदेवश्री की वह वाणी आज शत-प्रतिशत सफल हो रही है।

गुरुदेवश्री का आगरा में दो बार पधारना हुआ। यहाँ के प्रमुख श्रावक सेठ रतनलालजी जैन (मित्तल), श्री बाबूरामजी शास्त्री और सेठ कल्याणदासजी जैन (आगरा के भू. पू. मेयर) ने तन-मन-धन से गुरुदेव की सेवा की और धर्म-प्रचार में अपूर्व उत्साह दिखाया।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने, जैनधर्म को मानव धर्म बनाने का महान प्रयत्न किया था। उनके असीम उपकारों से न केवल जैन समाज, अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज सदा कृतज्ञ रहेगा। उस महापुरुष के प्रति हमारी कोटि-कोटि श्रद्धांजलि।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन श्री संघ, लोहामंडी, आगरा।

अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	मंत्री
जगन्नाथ प्रसाद जैन	पदमकुमार जैन	चन्द्रभान जैन
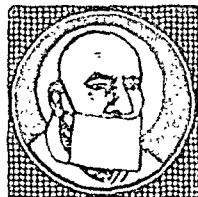
एक अद्‌भुत फूल था....

✡ महासती मधुबाला (नंदुरवार)

उपवन में हजारों फूल खिलते हैं, सभी के रंग-रूप, सौरभ अलग-अलग ! लेकिन जिस फूल की सुगन्ध सबसे अधिक लुभावनी, सबसे प्रखर होती है, जिसका सौन्दर्य सबसे विलक्षण होता है; दर्शकों का ध्यान उसी पर केन्द्रित होता है और लोग उसी फूल को लेने, देखने तथा घर में लगाने को लालायित रहते हैं।

संसार-उपवन में जिस मनुष्य में अद्‌भुत गुण-सौरभ परोपकार का माधुर्य और शील-सदाचार का सौन्दर्य कुछ विलक्षण होता है, संसार उसी की ओर आकृष्ट होता है और उसे ही अपने शीश व नयनों पर चढ़ाता है।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज एक ऐसे अद्‌भुत फूल थे जिनमें त्याग-वैराग्य, करुणा-वात्सल्य आदि का अपार सौरभ और सौन्दर्य था, संसार उपवन के वे एक अद्‌भुत फूल थे। जिन्हें युग-युग तक संसार याद करता रहेगा।

✡

ज्योतिमान गुरुदेव

—कविरत्न श्री केवल मुनि

(तर्ज—चुप-चुप खड़े हो)

जैन दिवाकर गुरुदेव ज्योतिमान थे।
बड़े पुण्यवान थे जी बड़े० ॥टेर॥
वृद्धापन में भी केहरी से ललकारते।
पापियों के अधर्मों के जीवन सुधारते॥
असरकारक उपदेश-रामबाण थे ॥१॥
नर-नारी दौड़े आते मानों कोई माया है।
मीठी-२ वाणी जैसे अमरत पिलाया है॥
हिन्द के सितारे प्यारे भारत की शान थे ॥२॥
दर्शन मिले कि रोम-रोम खुशी छा गई।
दया पालो ! कह दिया तो मानो निधि पा गई॥
त्यागी-दिव्य मूर्ति थे-करुणा की खान थे ॥३॥
शांति-प्रसन्नता का स्रोत सदा बहता था।
छोटे-२ गाँवों में भी मेला लगा रहता था।
चारों ओर पूजे जाते-देवता समान थे ॥४॥
जैन जैनेतर आज उनके लिये रोते हैं।
सैकड़ों वर्षों में कभी ऐसे साधु होते हैं।
अग्रदूत, संघ-ऐक्य योजना के प्राण थे ॥५॥
जय-२ प्यारे गुरुदेव याद आयेंगे।
तब-२ आँसुओं से नैन भर जायेंगे॥
कहाँ गये "केवल मुनि" देव वरदान थे ॥६॥

जैन दिवाकर पंच-पंचाशिका (पचपनिका)

(संस्कृत—वंशस्थ; हिन्दी-हरिगीतिका; रचयिता-मुनि श्री घासीलालजी महाराज)

✡

प्रणम्य देवादिनुतं जिनेशं तीर्थंकरं साञ्जलि-घासिलालः ।
वंशस्थ वृत्ते वितनोति लोकेष्वनाविलां चौथमलस्य कीर्तिम् ॥
मुनि घासिलाल जिनेन्द्र की करवन्दना विधि सर्वथा ।
विख्यात करता लोक में मुनि चौथमल की यशकथा ॥१॥

महात्मनां पुण्यजुषाम् शमीनां शृण्वन् यशः शुद्धमतिं लभन्ते ।
प्रसिद्धिरेषा जगतां हिताय प्रयत्नशीलं कुरुते मुनिं माम् ॥
है ख्यात जग में ऋषिजनों की यश सुनें मति शुद्धि हो ।
संयत बनाती है मुझे यह लोकहित की बुद्धि हो ॥२॥

ऋतुं वसन्तं समवाप्य वाटिका, विधुं यथा शारदपौर्णमासिका ।
व्यराजत प्राप्य तथा जगत्तलं दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
ज्यों पा वसन्त को वाटिका शरदिन्दु को राका निशा ।
त्यों चौथमल मुनिराज से सर्वजन राजित यशा ॥३॥

मही प्रसिद्धा खलु मालवाभिधा नृपैरभूद् विक्रमभोजकादिभिः ।
तथैव जाता धरणी नु धन्या दिवाकरश्चौथमलेन साधुना ॥
विख्यात मालव भूमि थी उन भोज विक्रमराज से ।
भूलोक धन्या वह हुई श्री चौथमल मुनिराज से ॥४॥

मुनि भविष्णुं जननी तनूद्भवं प्रसूय पूतं कुरुते कुलं स्वकम् ।
स्वकीय मात्रे स यश स्तदादिशद् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
मुनि भवि सुत को जन्म दे जो कुल पवित्र करे वही ।
यह यश दिया निजमातुको श्री चौथमल मुनिराज ही ॥५॥

पुरातनं पुण्यफले शरीरिणाम् सुखस्य हेतुर्य विना सदा भुवः ।
अनूभयल्लोकमिमं स्वजन्मना दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
था पूर्व संचित पुण्यफल संतत सुखों का हेतु था ।
भूषित किया निज जन्म से जो चौथमल मुनिराज था ॥६॥

महीविभूषा भुवनेषु मन्यते सभूषणा भारतवर्षतस्तु सा ।
अभूद् यदंशे स तु सर्व भूषणो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
है लोक में भूषण यही भारत विभूषित भूमि है ।
जंह चौथमल मुनिराज भव वह सर्वभूषण भूमि है ॥७॥

पिताऽभवद्धन्यतमो जनप्रियः गंगापुतोयःखलु राम नामकः ।
निरीक्ष्य लोकेषु सुकीर्ति मौरसं दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
था पिता गंगाराम नामक धन्य सुत को देखकर ।
भव लोक में विख्यात औरस चौथमल ज्यों दिनकर ॥८॥

अयं महात्मा सततं जिनप्रियो जिनेन्द्रवार्ता श्रवणोत्सुकः सदा।
देहात्मचिंतार्पित धीरजायत दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
था सतत जनप्रिय ये मुनि अर्हत कथा सुनता सदा।
देहात्मचितारत मनस्वी चौथमल मुनिराज था॥६॥

विनश्वरं पुष्कल कर्मसम्भवं देहं प्रपुष्णन् मुदमेति मानवः।
इति प्रचिंताज्वलनेन दीपितो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
दिन रात नश्वर देह के पोषण निरत जन हृष्ट है।
चिन्ता शिखा दीपित मुनीश्वर चौथमल अति श्रेष्ठ है॥१०॥

समुद्र मार्गाक्षिनवेन्दु वत्सर (१९३४) त्रयोदशी कार्तिक शुक्ल पक्षजे।
खेदिने केसरबाईतोऽभवद् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
उन्नीस सौ चौंतिस त्रयोदशि शुक्ल कातिक पक्ष में।
थे हुए केसरबाई के रवि दिन दिवाकर कक्ष में॥११॥

सनेत्रबाण ग्रहचन्द्रहायने (१९५२) शुभे सिते फाल्गुन पंचमी तिथौ।
व्रताय दीक्षां प्रयतो गृहीतवान् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
बावन अधिक उन्नीस सौ फागुन तिथी सित पञ्चमी।
ली थी मुनीश्वर चौथमल व्रत हेतु दीक्षा संयमी॥१२॥

न दुर्लभा नन्दन कानने गतिः, नचाप्य शक्यो जगतः सुखोद्भवः।
विवेद सम्यक्त्वमतिं सुदुर्लभां दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
दुर्लभ नहीं नन्दन गमन नहिं लोकसुख की प्राप्ति ही।
सम्यक्त्व पाना है कठिन श्री चौथमलजी मति यही॥१३॥

यथात्मपित्तादि वशाद् विलोक्यते, सितः पदार्थोऽपि हरिद्रारागवान्।
अलिस्तथैवेति विवेद सर्वथा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
ज्यों पित्त दूषित नेत्र से सित वस्तु पीला दीखता।
त्यों भ्रमजनों को सर्वथा यह चौथमल था दीपता॥१४॥

अयं महात्मा सकलेऽपि भारते स्वतेजसा धर्षित-दुर्गुणाशयः।
पद प्रणायेन मुदं समीयिवान् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
निज तेज धर्षित दुष्टजन को कर अखिल इस भुवन में।
दिनकर मुनीश्वर चौथमल सुख मानता पदगमन से॥१५॥

गुणानुरागं स्वजने समानतां समस्तशास्त्रेषु विवेचनाधियम्।
अवाप्तुमुत्को भवतिस्म सर्वदा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
समता जनों में राग गुण में शास्त्र में अनुशीलना।
को प्राप्त करने की सदा थी चौथमल की एषणा॥१६॥

दिनेन चाल्येन गुरोरुपासणादवाप्तविद्यागतशेमुषीधनः।
सविस्मयं लोकममुं चकार स दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
थोड़े दिनों में गुरु कृपा से प्राप्त विद्या थी घनी।
विस्मित जगत को कर दिया श्री चौथमल दिनकर मुनी॥१७॥

नयान्विता तस्य मुनः मतिः सदा दधार दिव्यां प्रतिभासभाङ्गणे ।
अतो जगद्वल्लभतामुपागतो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
थी सभा में प्रतिमा विलक्षण सर्वनय व्याख्यान में ।
अतएव जगवल्लभ बने श्री चौथमल सर्वलोक में ॥१८॥

गुरुर्गरिष्ठो विबुधाधिपाश्रयाद् बुधोवरिष्ठो वसुधाधिपाश्रयाद् ।
अनाश्रयेणैव बभूव पूजितो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
सुरराज आश्रय से वृहस्पति बुधवरिष्ठ नरेन्द्र से ।
आश्रय बिना पूजित हुए श्री चौथमल देवेन्द्र से ॥१९॥

गुणं गृहीत्वेक्षु रसस्य जीवनं प्रसून गन्धञ्च समेत्यराजते ।
परन्तु दोषोज्झित सद्गुणैरयं दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
पा पुष्प गन्ध विराजते जल इक्षु के माधुर्य से ।
पर चौथमल मुनिराज तो निर्दोष सद्गुण पुञ्ज थे ॥२०॥

स संशयस्थान् विषयान् विवेचयञ्जिनेन्द्र सिद्धान्त विदां समाजे ।
चकार सम्भाषण मोहितान्जनान् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
संदिग्ध पद व्याख्यान कर शास्त्रज्ञ जैन समाज में ।
भाषण विमोहन की कला थी चौथमल मुनिराज में ॥२१॥

अपंडितास्सन्त्वथवा सुपण्डिताः विवेकिनस्सन्त्व विवेकिनोऽथवा ।
स्वभावतस्तं सततं समेऽननमन् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरम् ॥
पण्डित अपण्डित या विवेकी सर्वजन सामान्य हों ।
थे भाव से करते नमन श्री चौथमल को नम्र हो ॥२२॥

नमस्कृतोऽपि प्रणतः क्षमापना-मयाचत प्राणभृतः सभावनः ।
विरोध बुद्धि व्यरुणत् स्वतो मिथो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
जन प्रणत थे पर वे सदा जन से करें याचन क्षमा ।
था विरोध नहीं परस्पर चौथमल में थी क्षमा ॥२३॥

यथास्वरूपं प्रविहाय कीटकाः विचिन्तनाद भ्रामररूपमद्भुतम् ।
समाश्रयन्ते यतिस्तथा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
ज्यों कीट अपना रूप तज चिन्ता निरत अलि रूप को ।
पाता यतन करते मुनि त्यों चौथमल निज रूप को ॥२४॥

तमः स्वरूपं सुजनैर्विगर्हितं विरागभूमि कुगतिं प्रगतंकम् ।
स्वकर्मरूपं कलयन् कदर्थय दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
तमरूप अति सज्जन विनिन्दित कुगतिप्रद वैराग्यभू ।
करते कदर्थन कर्म को श्री चौथमल मुनिवर प्रभू ॥२५॥

प्रकृष्ट तीर्थंकर दृष्टतत्पथाऽ थ्यागजनस्सर्वसुखं समेधते ।
इतोह सिद्धान्तमयालम्बत दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
श्रेष्ठ तीर्थंकर विलोकित पथगमन नर सुख मिले ।
कहते सदा यह चौथमल सिद्धान्त का अवलम्ब ले ॥२६॥
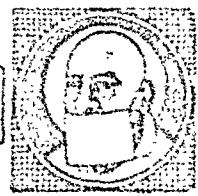
अप्राप्त वैराग्य जिनोक्त सत्पथ प्रयाण कामा बहवः सुशिक्षिताः ।
सुशिष्य लोका सततं सिषविरे दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरं ॥
पाकर विराग जिनेन्द्र नय में गमन करना चाहते ।
थे सुशिक्षित शिष्यगण मुनि चौथमल को सेवते ॥३६॥

निशीथिनी नाथ महस्सहोदरं विभ्राजते स्माम्बरमस्य पाण्डुरम् ।
जनाः स्ववाचो विषयं स्वकुर्वते दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरं ॥
थे निशाकर के सदृश अम्बर युगल शित शोभते ।
जन दिवाकर चौथमल मुनि के विषय में बोलते ॥३७॥

नभेदलेशोऽपि बभूव जातुचित्, प्रशासति स्थानकवासि मण्डलम् ।
जना न तस्मिञ्जहति स्म सत्पथं दिवाकरं चौथमले मुनीश्वरे ॥
जब जैन मण्डल शासते थे भेद नहीं किंचित कहीं ।
नहिं छोड़ते सन्मार्ग को वे चौथमल जब तक यहीं ॥३८॥

वणिग्जना न्याय्य पथानुवर्तनाद् प्रकामवित्तार्जित लब्ध सत्क्रिया ।
बभुः स्वधर्मेण गुरौ प्रशासके दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
थे वैश्यगण अतिशय धनी सत्कार पाते न्याय से ।
थे शोभित निज धर्म से श्री चौथमल जब ज्याय थे ॥३९॥

न दुःखदारिद्र्य भवायकश्चन प्रधर्षिता ज्ञानतमः समन्ततम् ।
उपास्य भक्तेह चरित्रशालिनम् दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
पाते न दुःख दरिद्रता चारित्र शाली जन सभी ।
अज्ञान नाशक चौथमल गुरु को नमन करते जभी ॥४०॥

चकार हिंसानृत - चौर्य - प्रवञ्चना कामरतांश्चमानवान् ।
जिनेन्द्र सिद्धान्त पथानुसारिणो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
चोरी अनृत हिंसा प्रवञ्चन काम चरत जो लोग थे ।
सब त्याग जिन पथ रत हुए जब चौथमल उपदेशते ॥४१॥

जना वदन्तिस्म मृदुस्वभावो नृदेहधारी सुरलोकनायकः ।
इहागतो धर्म प्रचार कारणाद्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
नर देहधारी देवनायक जैनधर्म पसार ने ।
आये यहाँ है लोग कहते चौथमल जग तारने ॥४२॥

कुरुध्वमाज्ञां मनुजाः ! कृपालोर्महेन्द्र देव प्रभु स्तेनु तस्य ।
जिनेश्वरस्येति दिदेश सर्वदा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
हे मनुज देव महेन्द्र युत जिनदेव की आज्ञा करो ।
थे चौथमल उपदेशते भवदुःख सागर से तरो ॥४३॥

अनित्यभूतस्य कलेवरस्य त्यजध्वमस्योपरमाय यातनाम् ।
समान स लोकानिति संदिदेश दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
नश्वर कलेवर मुक्ति हित निज त्याग दो सब यातना ।
दी दिवाकर चौथमल नरलोक को यह देशना ॥४४॥
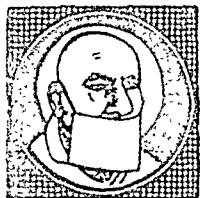
उदारभावो यतकायवाङ्मना निरीहतां स्वावपुषा प्रकाशयन् ।
जगद्विरागेण सदा विराजते दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
औदार्य युत मन वचन काया तन प्रकाश निरीहता ।
था जग विरति से सर्वदा श्री चौथमल मुनि सोहता ॥२७॥

जगत्प्रसिद्धा विविधाशयाजनाः समागताः श्रावक श्राविकादयः ।
मनोरथान् पल्लवितान् प्रकुर्वते दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
थे श्राविका श्रावक अनेकों विविध फल के आश में ।
करते मनोरथ सफल आ जन चौथमल के पास में ॥२८॥

मनोरथं कल्पतरुयथार्थिनां दुदोह भक्यागत शुद्धचेतसाम् ।
कुहेतुवादाश्रयिणामकीर्तिवो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
कल्पतरु सम भक्ति युत आगत जनों की कामना ।
पूरण किये श्री चौथमल पर था जिन्हें सद्भावना ॥२९॥

वचांसि तस्यां स्वगुरोः सभासदः विशिष्ट वक्तृत्वकलागुरोर्वचः ।
निशम्य नेमस्तम नन्यमानसा दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
वैशिष्ट्य युत उनके वचन सुन के सभासद प्रेम से ।
करते नमन थे कलागुरु मुनि चौथमल को नेम से ॥३०॥

कुमार्गगान् भिन्नमति न्न्यवेदय जिनेन्द्र सिद्धान्त व चोमिरीहिते ।
जिनेन्द्रवार्ताश्रयिणो व्यधापय दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
स्मृति हीन कुत्सित पथ प्रवृत्त जिनेन्द्र दर्शित मार्ग में ।
सिद्धान्त वचनों से मुनीश्वर आनते सन्मार्ग में ॥३१॥

विहारकालेकमनीयमाननं व्यलोकयन् भव्यजना हतावयम् ।
इत्येवमूचुः पथिदूरभागते दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
भव्य जन थे देखते कमनीय मुख मुनिराज के ।
थे लोग पछताते परस्पर चौथमल पथ साज के ॥३२॥

समाधिकाले निहितात्मवृत्तिमान् विभातिवाचस्पतिवत् सभास्थितः ।
इमं वदन्तीह जनाः परस्परं दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
गुरु सम सभा में शोभते थे योगयुत निज वृत्त थे ।
यों बोलते जन थे परस्पर चौथमल के कीर्ति थे ॥३३॥

उदीयमाने दिवि भास्करं जनो गुरून्पदार्थान् कुरुते समक्षम् ।
अणुस्वभावानपि तानवेदयद्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
गुरु वस्तु को जन देखते रवि जब उदित हो गगन में ।
पर सूक्ष्म को भी थे दिखाते चौथमल निज कथन में ॥३४॥

महाजना वैश्य कुलोद्भवा जनाः स्वकर्म बन्धस्य क्षयाय सन्ततम् ।
नेमुः प्रभाते विधिवद् व्रतेस्थिता दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
निज कर्म बन्ध क्षयार्थ सन्त वैश्य कुलभवभक्ति से ।
थे दिवाकर को सतत करते नमन अनुरक्ति से ॥३५॥

अप्राप्त वैराग्य जिनोक्त सत्पथ प्रयाण कामा बहवः सुशिक्षिताः ।
सुशिष्य लोका सततं सिषविरे दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरं ॥
पाकर विराग जिनेन्द्र नय में गमन करना चाहते ।
थे सुशिक्षित शिष्यगण मुनि चौथमल को सेवते ॥३६॥

निशीथिनी नाथ महस्सहोदरं विभ्राजते स्माम्वरमस्य पाण्डुरम् ।
जनाः स्ववाचो विषयं स्वकुर्वते दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरं ॥
थे निशाकर के सदृश अम्बर युगल शित शोभते ।
जन दिवाकर चौथमल मुनि के विषय में बोलते ॥३७॥

नमेवलेशोऽपि बभूव जातुचित्, प्रशासति स्थानकवासि मण्डलम् ।
जना न तस्मिञ्जहति स्म सत्पथं दिवाकरं चौथमले मुनीश्वरे ॥
जब जैन मण्डल शासते थे भेद नहीं किंचित कहीं ।
नहिं छोड़ते सन्मार्ग को वे चौथमल जब तक यहीं ॥३८॥

वणिग्जना न्याय्य पथानुवर्तनाद् प्रकामवित्तार्जित लब्ध सत्क्रिया ।
बभुः स्वधर्मेण गुरौ प्रशासके दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
थे वैश्यगण अतिशय धनी सत्कार पाते न्याय से ।
थे शोभित निज धर्म से श्री चौथमल जब ज्याय थे ॥३९॥

न दुःखदारिद्र्य भवायकश्चन प्रधर्षिता ज्ञानतमः समन्ततम् ।
उपास्य भक्तेह चरित्रशालिनम् दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
पाते न दुःख दरिद्रता चारित्र शाली जन सभी ।
अज्ञान नाशक चौथमल गुरु को नमन करते जभी ॥४०॥

चकार हिंसानृत - चौर्य - प्रवञ्चना कामरतांश्चमानवान् ।
जिनेन्द्र सिद्धान्त पथानुसारिणो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
चोरी अनृत हिंसा प्रवञ्चन काम चरत जो लोग थे ।
सब त्याग जिन पथ रत हुए जब चौथमल उपदेशते ॥४१॥

जना वदन्तिस्म मृदुस्वभावो नृदेहधारी सुरलोकनायकः ।
इहागतो धर्म प्रचार कारणाद्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
नर देहधारी देवनायक जैनधर्म पसारने ।
आये यहाँ हैं लोग कहते चौथमल जग तारने ॥४२॥

कुरुध्वमाज्ञां मनुजाः ! कृपालोर्महेन्द्र देव प्रनतं तस्य ।
जिनेश्वरस्येति दिदेश सर्वदा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
हे मनुज देव महेन्द्र नुत जिनदेव की आज्ञा करो ।
थे चौथमल उपदेशते भवदुःख सागर से तरो ॥४३॥

अनित्यभूतस्य कलेवरस्य त्यजध्वमस्योपरमाय वासनाम् ।
समान स लोकानिति संदिदेश दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
नश्वर कलेवर मुक्ति हित निज त्याग दो सब कामना ।
देते दिवाकर चौथमल नरलोक को यह देशना ॥४४॥

स्वकर्म सन्तान विराम प्राप्तये प्रयासमासादयति स्म सन्ततम् ।
शरीर - संपोषण कर्म संत्यज द्विवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
निज कर्म तन्तु विरामपाने यत्न मुनि करते सदा।
ये देह पोषण कर्म छोड़े चौथमल मुनि सर्वदा ॥४५॥

भजस्वधर्मंत्यज लौकिकैषणां जहीहि तृष्णां कुरु साधु सेवनम् ।
कथा प्रसङ्गेन जनानपादिशद्द्विवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
कर धर्म त्यागो लोक सुख तृष्णा विरत साधु भजो।
कहते सभा में चौथमल मुनि धर्महित सब सुख तजो ॥४६॥

जगत्पवित्रं कुरुते मुनेः कथा अतोहि भक्ति कुरुतादनारतम् ।
जगत्प्रिये साधु समाजसम्मते दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
जगपूत करती मुनिकथा अतएव भक्ति सदा करो।
जगत प्रिय अति साधु मानित चौथमल का पग धरो ॥४७॥

जिन प्रयातेन पथापरिव्रजन् समाचरल्लोक हिताय किन्न ।
कृतज्ञतां तत्र तनुष्व सन्ततं दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
जिन पथ गमन करता मुनीश्वर क्या नहीं जग हित किया।
सन्तत बनो मुनि कृत्यवित श्री चौथमल जो धन दिया ॥४८॥

जिनेन्द्र सिद्धान्त विवेचने रतः समस्त मेवागमयत् स्वजीवनम् ।
इयं ममानृण्ययुपैत्वतो मति दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
जिन नय विवेचन में मुनि जीवन समस्त विता दिया।
होने उऋण मुनि चौथमल से कृत्य मैंने यह किया ॥४९॥

भवाटवी सन्तमसापहारिणं जगन्नुतम्मोक्ष पथ प्रचारिणम् ।
विशुद्ध भावेन नयामि मानसे दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
गहन जग के ध्वान्त हरते मोक्ष पन्थ प्रचारते।
मानस विमल में चौथमल मुनि को सदा हैं मानते ॥५०॥

नमोऽस्तु तुभ्यं भुविपापहारिणे नमोऽस्तु तुभ्यं जनशर्मकारिणे ।
नमोऽस्तु तुभ्यं सुखशान्ति दायिने, नमोऽस्तु तुभ्यं तपसो विधायिने ॥
तुमको नमन जगतापहारी सौख्यकारी नमन हो।
तुमको नमन सुख–शान्तिदायी तपसो विधायी नमन हो ॥५१॥

नमोऽस्तु तुभ्यं जिनधर्मधारिणे नमोऽस्तु तुभ्यं सकलाघनाशिने ।
नमोऽस्तु तुभ्यं सकलर्द्धिदायिने नमोऽस्तु तुभ्यं सकलेष्टकारिणे ॥
तुमको नमन जिनधर्मधारी पापहारी नमन हो।
तुमको नमन सब ऋद्धिदायी इष्टकारी नमन हो ॥५२॥

कृपाकटाक्षेण विलोक्य स्वं जनं तनोतु वृत्ति जनतापहारिणीम् ।
स्व सप्तभंगीनय प्राप्त सन्मति दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
कृपा दृष्टि प्रदान कर निजलोक सब दुख हरे।
निज सप्तभंगी नीति से मुनि चौथमल सन्मति करे ॥५३॥

प्रसादमासाद्य मुनेरनारतं विधीयेत येन नुति विधानतः।
सुखं स मुक्त्वेह महीतलेऽखिलं परत्रचावाप्स्यति सौख्य सम्पदम् ॥
पाकर कृपा मुनि की सतत जो रीतिपूर्वक प्रार्थना।
करते सकल सुख भोग कर परलोक में सुख सम्पदा ॥५४॥

मुनेः श्री चौथमल्लस्य पञ्च पञ्चाशवात्मिका।
घासीलालेन रचिता स्तुतिर्लोक हितावहा ॥
घासीलाल मुनि रचित ये पढ़े विनय जो कोई।
सकल सुखों को प्राप्त कर लोक हितावह होइ ॥५५॥

दिवाकर श्रद्धांजलि

☆ श्री भँवरलाल दोशी, बम्बई

जैसे तपता सूर्य है, वैसे चमके आप।
नष्ट किया अज्ञानतम, काटा जन संताप ॥
दिवस रात को एकका, दिया सदा उपदेश।
वाणी अमृत तुल्य थी, मेटा जन मन क्लेश ॥
कवि रवि विद्वान थे, श्रमणों की थे शान।
रटे तुम्हारा नाम जो, पूर्ण हो अरमान ॥
चौ दिशा में आपने, किया धर्म-प्रचार।
थकना तो सीखे नहीं, जग-वल्लभ अणगार ॥
महावीर के नाम की, ध्वज फहराकर आप।
लगा दिए सुमार्ग पर, करते थे जो पाप ॥
जीवन ज्योति बुझकर, हुवा स्वर्ग में वास।
मगर तुम्हारा नाम ये, देगा सतत प्रकाश ॥
हाथ जोड़कर चरण में, आते दानव देव।
रात अवस्था में कभी, करते थे वो सेव ॥
जहाँ पड़ी थी चरण रज, हुआ मंगलानन्द।
कीर्ति यश फैलाकरे, जब तक सूरज चन्द ॥
जय-विजय हो आपकी, वन्दन शत-शत बार।
यही दास की आश है, करदो भव से पार ॥

☆☆

गीत

✰ श्री नवीन मुनिजी (मजल, मारवाड़)

(तर्ज—घर आया मेरा परदेशी……)

दिवाकर जग में छाया,
जन-जन ने मिल गुण गाया ।।टेर।।
नीमच नगरी का प्यारा
गंगा - केशर - का तारा
भाग्य सुहाना जो लाया ।।१।।
प्राची में ज्यों सूर्य खिला
"दिवाकर" त्यों हमें मिला
प्रसिद्धवक्ता पद पाया ।।२।।
संयम-में अनुरक्त वना
हर मानस था भक्त वना
धर्म-ध्वजा को फहराया ।।३।।
उपदेशों की अजव छटा
मानो बरसी मेघ घटा
जीवन सुन-सुन सरसाया ।।४।।
जैन - अजैन जिसे जाने
दिव्य गुणि जिनको माने
"नवीन" सुखद संघ कहलाया ।।५।।

✰✰

✰

श्री सुरेशचन्द जैन
(मंदसौर)

(तर्ज — मैं तो आरती उतारूँ रे……)

मैं तो पल-पल पुकारूँ रे, जय जैन दिवाकर की
सदा होवे जय-जयकार, महावीर शाला में
भक्तों के भरे हैं भण्डार, महावीर शाला में
सदा होते है मंगल-गान, प्यारे भारत में
पिता के प्यारे दुलार, चौथमल गुरुवर है-२
माता केशर के नन्द सुकुमार, चौथमल गुरुवर है
किया कोटा शहर को निहाल, चौथमल गुरुवर ने
—जिनको पुकारो रे, प्यारे भारत में……
सदा होती है सम भाव, जिनके जीवन-दर्शन में
संगठन का नहीं है अभाव, जिनके जीवन-दर्शन में
पाया श्रद्धा और स्नेह का भाव, जिनके शासन में-२
देखो हर घड़ी-२ नया चमत्कार, प्यारे गुरुवर में-२
जीवन में नया प्रकाश फैलाया, प्यारे गुरुवर में-२
जिनका नाम वड़ा प्रियकार, सारे शासन में-२
जिनके हृदय में ज्ञान का भण्डार, प्यारे गुरुवर में
जिनकी सदा होती है जय-जयकार सारे शासन में
चौथमल जन्म शताब्दि मनाओ रे……
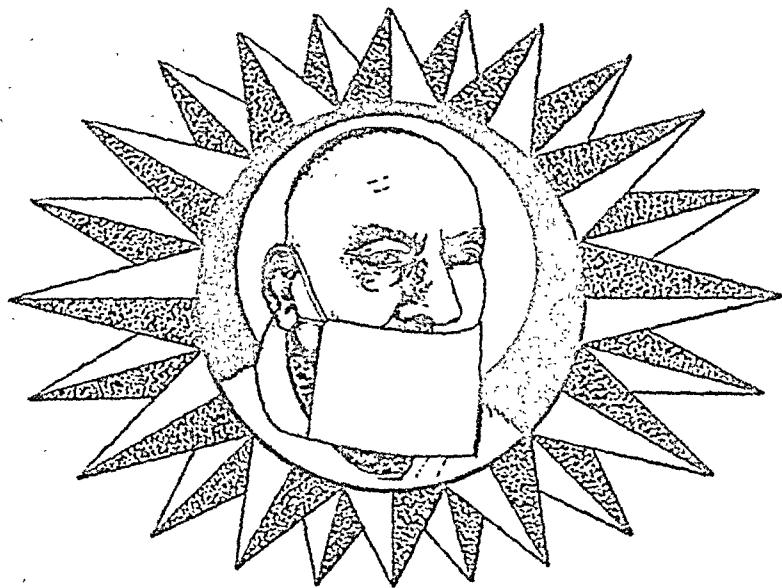
✰

श्री जैन दिवाकर
व्यक्तित्व
की
बहुरंगी किरणें

व्यक्तित्व की बहुरंगी किरणें

महामहिम जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

[अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के स्वर्णजयन्ती ग्रन्थ (सन् १९५६) में स्थानकवासी जैन-परम्परा के उन्नायक महामहिम जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का परिचय इन शब्दों में दिया गया है।]

जन्म-जन्मान्तर में संचित प्रकृष्ट पुण्य लेकर अवतरित होने वाले महापुरुषों में प्रसिद्ध व्याख्याता जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी महाराज का शुभ नाम प्रथम अंकित होने योग्य है। आपने अपने जीवन-काल में संघ और धर्म की सेवा एवं प्रभावना के लिए जो महान् स्तुत्य कार्य किये, वे जैन इतिहास में स्वर्ण-वर्णों में लिखने योग्य हैं। हमारे यहाँ अनेक बड़े बड़े विद्वान्, वैराग्यवान्, वक्ता और प्रभाविक सन्त हुए हैं, परन्तु जैन दिवाकरजी महाराज ने जो प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त की वह असाधारण है। राजा-महाराजा, अमीर-गरीब, जैन-जैनेतर सभी वर्ग आपके भक्त थे। उत्तर भारत और विशेषतः मेवाड़, मालवा तथा मारवाड़ के प्रायः सभी राजा-रईस आपके प्रभावशाली उपदेशों से प्रभावित थे। मेवाड़ के महाराणा आपके परम-भक्त रहे। पालनपुर के नवाब, देवास नरेश आदि पर आपकी गहरी छाप पड़ी। अपने इस प्रभाव से जैन दिवाकरजी महाराज ने इन रईसों से अनेक धार्मिक कार्य करवाये।

जैन दिवाकरजी महाराज अद्वितीय प्रभावशाली वक्ता होने के साथ उच्चकोटि के साहित्य निर्माता भी थे। गद्य-पद्य में आपने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया, जिनमें निर्ग्रन्थ प्रवचन, भगवान महावीर की जीवनी, 'पद्यमय जैन रामायण', मुक्ति-पथ आदि प्रसिद्ध हैं। आप द्वारा निर्मित पदों का 'जैन सुबोध गुटका' नाम से एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

संयोग की बात देखिए कि रविवार (कार्तिक शु० १३, सं० १९३४) को आपका जन्म हुआ, रविवार (फाल्गुन शु० ५ सं. १९५२) को आपने दीक्षा अंगीकार की और रविवार (मार्गशीर्ष शु० ९ सं० २००७) को ही आपका स्वर्गवास हुआ। सचमुच रवि के समान तेजस्वी जीवन आपको मिला। रवि के सदृश ही आपने ज्ञानलोक की स्वर्णिम किरणें लोक में विकीर्ण कीं और अज्ञानान्धकार का विनाश किया।

आपके पिता श्री गंगारामजी तथा माता श्री केसरबाई ऐसे सपूत को जन्म देकर धन्य हो गए। नीमच (मालवा) पावन हो गया।

चित्तौड़ में आपके नाम से 'श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम' नामक एक संस्था चल रही है। कोटा में आपकी स्मृति में अनेक सार्वजनिक संस्थाओं का सूत्रपात हो रहा है।

दिवाकरजी महाराज जैन संघ के संगठन के प्रबल समर्थक थे। अन्तिम जीवन में आपने संगठन के लिए सराहनीय प्रयास किये। दिगम्बर मुनिश्री सूर्यसागरजी, श्वे० मूर्तिपूजक मुनिश्री आनन्दसागरजी और आपके अनेक जगह सम्मिलित व्याख्यान हुए। यह त्रिपुटी सम्मिलित विहार करके जैन समाज में एकता का शंखनाद करने की योजना बना रहे थे, पर काल को यह सहन न हुआ। दिवाकरजी महाराज का स्वर्गारोहण हो गया। फिर भी आप स्थानकवासी सम्प्रदाय के श्रमण संघ की जड़ जमा ही गये।

निस्सन्देह जैन दिवाकरजी महाराज अपने युग के असाधारण प्रतिभाशाली-महान् सन्त थे। समाज आपके उपकारों को जल्दी भूल नहीं सकता।

☆ डा० नेमीचन्द जैन (इन्द
एम. ए., पी-एच.

[विरल होता है ऐसा कि धरती पर कोई विचक्षण प्रतिभा जन्मे और अपने युग को एक स्पष्ट समाज-दर्शन प्रदान करे, अपने समकालीन मनुज का नये सिरे से भाग्यविधान करे, उसके सुख-दुःख का साझेदार बने, अन्धविश्वासों को चुनौती दे, चमत्कार की अपेक्षा स्वाभाविकताओं, मौलिकताओं और तर्कसंगतियों में गहन आस्था रखे, तथा उनके लिए प्राणपण से सक्रिय हो, एवं धर्म को सुभीता न मान अपरिहार्य माने—इस संदर्भ में यदि मुझसे पूछा जाए कि ईस्वी सन् १८७५ और १९७५ के मध्य ऐसे विचक्षण समाज-शिल्पियों का सिरमौर कौन है, तो मैं गर्व से मस्तक उठाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का नाम लूंगा, जिन्होंने न केवल व्यक्ति का भाग्य निर्मित किया वरन् धर्म का नवसीमांकन भी किया और उसके लिए सर्वथा अछूते सेवा-क्षेत्र उद्घाटित किये।]

मुनिश्री चौथमलजी महाराज का जन्म उतरती उन्नीसवीं शताब्दी (ईस्वी) में हुआ, कि उनका व्यक्तित्व चढ़ती बीसवीं में प्रकट हुआ। इसी अवधि में यह भी स्पष्ट हुआ कि धर्म समाज दो अलग-अलग चेतनाएँ नहीं हैं, भारत में तो ये जुड़वां हैं। इस संदर्भ में धर्म को सामाजिक आचार-शास्त्र भी कह सकते हैं, जो एक तरह से सदाचार की ही एक रूपाकृति है। श्री चौथमलजी महाराज के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कोरमकोर धा सिद्धान्तों की बात नहीं की, अपितु धर्म मनुज को कितना सुखी, निरापद, निर्भीक, आश्वस्त निश्चिन्त निराकुल बना सकता है, इसे व्यवहार में सिद्ध किया। ऐसा शायद ही कोई विषय हो उनके प्रवचनों की उदार परिधि से बच पाया हो, वस्तुतः उनके विचार आँख उघाड़ने वाले पीढ़ियों में लोकमंगल का अलख जगाने वाले हैं, और धर्म को एक सुस्पष्ट रूप प्रदान करने वाले

मुनिश्री जीवन में अंधाधुंध, निरुद्देश्य या तर्कहीन ढंग से आचरण के पक्ष में नहीं हैं उसकी एक प्रांजल योजना और वस्तुपरक-निर्मम समीक्षा के हिमायती हैं। वे कर्मनिष्ठ हैं, अप्र हैं, दुर्द्धर कर्मयोगी है, और चाहते हैं कि जो धर्म के क्षेत्र में प्रविष्ट हो वह आँख पर पट्टी न ब सिर झुकाकर एक वन्दी, या गुलाम की भाँति हर विचार को स्वीकार न करे, विवेक की भूमि खड़े होकर विचार करे; इसीलिए उन्होंने व्यावर की एक सभा में ८ सितम्बर सन् १९४१ को
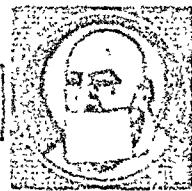
था—'मनुष्य जैसे आर्थिक स्थिति की समीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे अपने जीवन-व्यवहार की समीक्षा करनी चाहिये। प्रत्येक को सोचना चाहिये कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिये।' इस तरह वे चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति अन्धाधुंध आँख मूंद कर न चले, किन्तु सद्विवेक से काम ले, और अपने जीवन तथा आचरण की यथोचित समीक्षा-मीमांसा करे।

इतना ही नहीं, मुनिश्री एक स्वप्नद्रष्टा हैं, जिनकी भूमिका पर सदैव एक विदग्ध-ज्वलन्त सत्य प्रतिष्ठित रहता है। वस्तुतः कोई भी सत्य अपनी पूर्वावस्था में एक स्वप्न ही होता है। स्वप्न और सत्य के दो पृथक् संगीत हैं, जो एक महीन तार में परस्पर जुड़े हुए हैं, कुछ लोग सत्य का स्वप्न देखते हैं, और कुछ स्वप्न को सत्य का आकार देने के प्रयत्न करते हैं। वैज्ञानिक भी प्रखर स्वप्नद्रष्टा होते हैं और महापुरुष भी। एक पार्थिव सत्यों की खोज के स्वप्न देखता है और उन्हें आकृत करता है, दूसरा सामाजिक अथवा दार्शनिक सत्यों को लोक-जीवन में संस्थापित और प्रकट करता है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज एक मेधावी व्यवहार-पुरुष थे, उनकी कथनी-करनी एक थी। उन्होंने दूसरों को रोशनी या दिशा देने का अहंकार कभी नहीं किया वरन् इस तथ्य का पता लगाया कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम दूसरों को रोशनी देना चाहते हैं, और खुद घनघोर अन्धेरों से घिरे हैं, इसीलिए ब्यावर की एक सभा में ८ सितम्बर को उन्होंने कहा था—'बहुत से लोग ऐसे होते हैं, जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयों के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के बारे में वे एकदम अनभिज्ञ हैं, वे "दिये-तले अन्धेरा" की कहावत चरितार्थ करते हैं।'

उन्हें अपने राष्ट्र पर गर्व था। वे आत्माभिमानी थे। अपने गौरवशाली अतीत से उन्होंने अनवरत प्रेरणा ली। महापुरुषों के जीवन से उन्होंने अपने तथा समाज के जीवन को क्वणित-गुंजित किया, और फिर इस तरह सम्पूर्ण वातावरण को अपनी विचक्षणता से झनझना दिया, सुगन्ध से भर दिया। वे चाहते थे एक समरस और संतुलित समाज, एक ऐसा समाज जिसकी परिरचना में मानवमात्र के मंगल का संगीत अनुगुंजित हो। कहीं-कोई वैषम्य न हो, भेदभाव की दीवारें न हों, सब अपरम्पार बन्धुत्व के अटूट-अविच्छिन्न सूत्र में बन्धे हों, इसीलिए उन्होंने ब्यावर की ही एक सभा में ७ सितम्बर, १९४१ को कहा था—'आपका कितना बड़ा सौभाग्य है कि आपको ऐसे देश में जन्म मिला है, जिसका इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल है और देश के अतीतकालीन महापुरुषों के एक से एक उत्तम जीवन आज भी विश्व के सामने महान् आदर्श के रूप में उपस्थित हैं। इन महापुरुषों की पवित्र जीवनियों से आप बहुत कुछ सीख सकते हैं।'

मुनिश्री ने धन की प्रभुता को कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मनुष्य की सत्ता और महत्ता को सम्पत्ति से सदैव बड़ा माना; यह उनकी समग्र सामाजिक-नैतिक-सांस्कृतिक क्रान्ति का मेरुदण्ड है। उनकी दृष्टि में धन एक जड़ साधन है, साध्य मूलतः आत्मोत्थान है, लोकमंगल है, व्यक्तिमंगल है, इसीलिए उन्होंने कहा—'धन सुन्दर वस्तु है, जीवन महान् है। धन के लिए जीवन को बर्बाद कर देना कौवों के लिए चिन्तामणि को नष्ट कर देने के समान है।' इसी तरह धन के विशिष्ट चरित्र पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने अपने किसी प्रवचन में कहा है—'धन की मर्यादा नहीं करोगे तो परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। तृष्णा आग है, उसमें ज्यों-ज्यों धन का ईंधन झोंकते जाओगे, वह बढ़ती ही जायगी।

एक सनातन प्रश्न है आत्मा और शरीर के परस्पर सम्बन्ध का। दोनों जुदा हैं, एक नहीं

हैं। जैन-दर्शन का भेदविज्ञान यही कहता है। शरीर सीढ़ी है, आत्मा प्राप्य है, तन ससीम है, आत्मा अनन्त शक्तियों का भण्डार है। मुनिश्री ने स्पष्ट करते हुए कहा है—'आत्मा निर्बल होगी तो शरीर की सबलता किसी काम नहीं आयेगी। तलवार कितनी ही तेज क्यों न हो, अगर हाथ में ताकत नहीं है तो उसका उपयोग क्या है?' इसी रौ में उन्होंने कहा है—'यह शरीर दगाबाज है, बेईमान और चोर है। यदि इसकी नौकरी में ही रह गया तो सारा जन्म बिगड़ जाएगा अतएव इससे लड़ने की जरूरत है। दूसरे से लड़ने में कोई लाभ नहीं, खुद से ही लड़ो।' सन्त विदग्ध विचक्षण होते हैं, वे बिना किसी लिहाज के बोलते हैं, यहाँ हम मुनिश्री की साफगोई का स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं।

मुनिश्री मानव-एकता के मसीहा थे। वे जीवन में ऐसे आधारों की खोज करते रहे हैं जिनका अवलम्बन कर मनुष्यों को एक किया जा सके। वे मानते रहे कि मनुष्य सर्वत्र एक है। अस्पृश्यता कृत्रिम है, निर्मूल है, निर्वंश है। इसीलिए उन्होंने अपने प्रवचनों में मानव-एकता के क्रान्तित्व को समाविष्ट किया, यथा—'धर्म पर किसी का आधिपत्य नहीं है। धर्म के विशाल प्रांगण में किसी भी प्रकार की संकीर्णता और भिन्नता को अवकाश नहीं है। यहाँ आकर मानव-मात्र समान बन जाता है।' इसी तरह—"जैसे सूर्य और चन्द्र का, आकाश और दिशा का बँटवारा नहीं हो सकता उसी प्रकार धर्म का बँटवारा नहीं हो सकता। जैसे आकाश, सूर्य आदि प्राकृतिक पदार्थ हैं, वे किसी के नहीं हैं, अतएव सभी के हैं, इसी प्रकार धर्म भी वस्तु का स्वभाव है और वह किसी जाति, प्रान्त, देश या वर्ग का नहीं होता।"

उन्होंने धर्म को एक जीवन्त-ज्वलन्त अस्तित्व माना है। अगर कोई धर्म लोकमंगल को अपना लक्ष्य नहीं बनाता है तो मुनिश्री की दृष्टि में वह मुर्दा और निष्प्राण है, उसका कोई महत्व नहीं है। यह बात उन्होंने अपने प्रवचनों में कई बार कही है, यथा—"जो धर्म जीवन में कुछ भी लाभ न पहुँचाता हो और सिर्फ परलोक में ही लाभ पहुँचाता हो, उसे मैं मुर्दा धर्म समझता हूँ। जो धर्म वास्तव में धर्म है, वह परलोक की तरह इस लोक में भी लाभकारी अवश्य है। इसी धर्म की वर्गहीनता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था—'धर्म किसी खेत या बगीचे में नहीं उपजता, न बाजार में मोल बिकता है। धर्म शरीर से—जिसमें मन और वचन भी गर्भित है—उत्पन्न होता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। उसके लिए जाति-बिरादरी की कोई भावना नहीं है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल, क्षत्रिय हो या मेहतर कोई भी जाति का हो, कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है।' जैनों में भगवान् महावीर के बाद कोई भी जैन साधु इस तरह की वर्गहीन क्रान्ति का आह्वान नहीं कर सका, ऐसा आह्वान जिसे जनता-जनार्दन ने आदरपूर्वक अपना सिर झुकाकर स्वीकार किया हो। ऐसा लगता है कि युग-युगों की गतानुगतिकता ने इस संत के अत्यन्त विनम्रभाव से चरण-वन्दना की हो।

मुनिश्री चौथमलजी महाराज का चमत्कारों में कोई विश्वास नहीं था। वे किसी आकस्मिकता को दर्शन, या आस्था के रूप में नहीं मानते थे। कोई घटना हो, व उसमें कार्यकारण संगति तलाशते थे। उनकी विचक्षण प्रतिभा का आकस्मिकताओं और विसंगतियों से कोई सरोकार न था, आज अधिकांश साधु चमत्कार को ही अपनी सस्ती लोकप्रियता का आधार बनाते हैं, और उसी से अपनी प्रभावकता स्थापित करने का यत्न करते हैं, किन्तु चौथमलजी महाराज में यह बात नहीं है। चमत्कार उनके चरित्र का अंश नहीं है बल्कि दुर्द्धर साधना ही उन्हें हर क्षेत्र में प्रिय है। वहीं

उनकी उपलब्धियों का अत्यन्त विश्वसनीय साधन है। उन्होंने जो कहा वह चरित्र की वर्णलिपि में ही कहा। चमत्कारों के सम्बन्ध मे उनके विचार हैं—'बहुत से लोग चमत्कार को नमस्कार करके चमत्कारों के सामने अपने-आपको समर्पित कर देते हैं। वे बाह्य ऋद्धि को ही आत्मा के उत्कर्ष का चिह्न समझ लेते हैं, और जो बाह्य ऋद्धि दिखला सकता है, उसे ही भगवान् या सिद्ध पुरुष मान लेते हैं, मगर यह विचार भ्रमपूर्ण है। बाह्य चमत्कार आध्यात्मिक उत्कर्ष का चिह्न नहीं है और जो जानबूझकर अपने भक्तों को चमत्कार दिखाने की इच्छा करता है और दिखलाता है, समझना चाहिये कि उसे सच्ची महत्ता प्राप्त नहीं हुई है। इसी तरह उन्होंने कहा है कि 'मिथ्यात्व से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है।' यह स्वीकृति भी क्रान्ति का एक बहुत बड़ा आधार प्रस्तुत करती है। मात्र इतने को लोक-जीवन में प्रतिष्ठित करा देने से समग्र क्रान्ति संभव हो सकती है, और व्यक्ति तथा समाज को आमूल बदला जा सकता है।

इतना ही नहीं, मुनिश्री मानव-मन के अद्भुत पारखी भी थे। वे भलीभाँति जानते थे कि मनुष्य भावनाओं का एक संभावनाओं से हराभरा पुंज है। क्रोध और क्षमा—जैसी परस्पर विरोधी अनुभूतियाँ उसके चरित्र की संरचना करती हैं, इसीलिए उन्होंने कहा—"आत्मशुद्धि के लिए क्षमा अत्यन्त आवश्यक गुण है। जैसे सुहागा स्वर्ण को साफ करता है, वैसे ही क्षमा आत्मा को स्वच्छ बना देती है।" इसी तरह उन्होंने कहा है—'अमृत का आस्वादन करना हो तो क्षमा का सेवन करो। क्षमा अलौकिक अमृत है। अगर आपके जीवन में सच्ची क्षमा आ जाए, तो आपके लिए यह धरती स्वर्ग बन सकती है।'

× × ×

इस तरह यदि हम मुनिश्री चौथमलजी महाराज के प्रवचनों का अभिनन्दन करते हैं तो हमें जीवन के लिए कई प्रकाशस्तम्भ अनायास ही मिल जाते हैं। इन प्रवचनों में जीवन की सच्ची झलक मिलती है और मिलता है अशान्ति, विघटन, विसंगति, संत्रास, तनाव, क्रोध, राग-द्वेष, अन्धविश्वास इत्यादि से जूझने का अभूतपूर्व साहस, शक्ति, विश्वास और परम पुरुषार्थ।

परिचय एवं संपर्क सूत्र—
प्रखर चिन्तक तथा निर्भीक लेखक,
पत्रकारिता में यशस्वी : 'तीर्थंकर' मासिक के संपादक
६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया रोड, इन्दौर
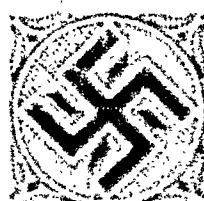
[जैन दिवाकर स्मृति निबन्ध प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त निबन्ध]

युग-पुरुष जैन दिवाकर जी महाराज

✡ प्रो० निजामउद्दीन (इस्लामिया कालेज, श्रीनगर)

संत असंतन्हि कै असि करनी ।
जिमि कुठार चंदन आचरनी ।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई ।
जिन गुन देइ सुगन्ध बसाई ।।
तातें सुर-सीसन चढत, जगवल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घर्नाहि, परसु-बदन यह दण्ड ।।
विषय अलंपट सील गुनाकर ।
पर दुख दुख, सुख सुख देखे पर ।।
सम अमूतरिपु विमद बिरागी ।
लोभामरष हरष भय त्यागी ।।

[रामचरितमानस उत्तरकाण्ड]

तुलसीदास ने उपर्युक्त पंक्तियों में संतपुरुष को चन्दन-सदृश माना है, जो अपने स्वभाववश काटने वाली कुल्हाड़ी को अपनी सुगन्ध से सुवासित करता है। संत विषय-निर्लिप्त, शील-सद्गुणाकार, पराये के सुख से सुखी तथा दुःख से दुःखी, समभाव रखने वाले, किसी से शत्रुता नहीं, मदविहीन वैराग्यवान्, लोभ-क्रोध-हर्ष-भय का परित्याग करने वाले होते हैं। 'जगद्वल्लभ', 'प्रसिद्धवक्ता', 'जैन दिवाकर' मुनिश्री चौथमलजी महाराज इसी प्रकार के लोकनायक संतात्मा थे। श्रमण संस्कृति की उत्कृष्टताओं तथा जिनेन्द्र महावीर के महान् लक्ष्यों-आदर्शों-उपलब्धियों के जीवन्त-ज्वलन्त प्रतीक थे। वाणी एवं चारित्र की एकरूपता द्वारा उन्होंने सामाजिक जीवन के कटाव-क्षरण को सफलता के साथ रोका, शैथिल्य तथा प्रमाद के मेघ-खण्डों को विदारित किया और सांस्कृतिक व नैतिक जीवन-क्षेत्र को अपनी सुनहली किरणों से संजीविनी प्रदान की। वह एक 'मर्देकामिल' थे—सम्पूर्ण पुरुष थे, भारतीय ऋषि-परम्परा के एक महान् संत थे—युगपुरुष थे। उनका व्यक्तित्व सर्वतोभद्र सर्वोदयी था।

जैन दिवाकरजी महाराज आगम की भाषा में—'**महुकुम्भे महुपिहाणे**'—मधुकुम्भ की भांति भीतर-बाहर चिर मधुर और '**णवणीय तुल्लहियया**'—नवनीत के समान कोमल हृदय थे। तेजोमय मुखमंडल, शांत मुद्रा, प्रशस्त भाल, आँखों में तैरती श्रमण संस्कृति की दिव्य ज्योति, हृष्ट-पुष्ट देह, गेहुँआ रंग, कर्मयोग के प्रेरक, निःस्पृही, वीतरागी, वाग्मिता व चारित्र के धनी, सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र में तप कंचन चरित्र, सामाजिक सौहार्द तथा समन्वय के उद्घोषक, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के (Co-existence) प्रचारक, मूक प्राणियों को अभयदान दिलाने वाले, अहिंसा की गंगा प्रवाहित करने वाले, धार्मिक सहिष्णुता और पतितोद्धार की ध्वजा फहराने वाले, पारदर्शिनी ज्ञानदृष्टि-सम्पन्न—यह था श्री चौथमलजी महाराज का विराट् व्यक्तित्व—सर्वथा युगपुरुष-सम्मत।

युगपुरुष उस महान् व्यक्ति को कहते हैं जो अपने लिए नहीं वरन् सम्पूर्ण युग के लिए, सकल प्राणियों के लिए जीता है—जीव-हित समर्पित होता है। सभी के लिए अहर्निश कल्याण-

कामना करता है। उसके जीवन-सरोवर में प्रेम, दया, करुणा, सत्य, अहिंसा, पर-कल्याण के सुरभित सरसिज विकसित होते हैं। वह सम्पूर्ण युग को अपनी कथनी-करनी की समता से प्रभावित करता है। राजमहल से लेकर दीन-रंक की झोंपड़ी तक में उनकी वाणी के दीप कर्ण श्रवणगोचर होते हैं। उसकी रसाई शूद्र-ब्राह्मण, हिन्दू-मुसलमान, आस्तिक-नास्तिक, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, देश-विदेश, गाँव-शहर, सर्वत्र अबाध रूप में होती है। वह सभी लोगों को, सम्पूर्ण मानव-समाज को— लोक को—युग को साथ लेकर चलता है—सम्पूर्ण युग को प्रभावित करता है—अपने गुणों—सद्विचारों व सत्कर्मों से सम्पूर्ण जनमानस को आन्दोलित करता है; उसे सोते से जगाता है। वही युगपुरुष का अभिधान धारण करता है। उसके सदुपदेश एक जाति या वर्ग विशेष के लिए नहीं होते वे सभी को ज्ञान-संयम की ऊष्मा-तेजस्विता प्रदान करते हैं। वस्तुतः वह व्यक्ति और लोक दोनों के संस्कारक होते हैं। अपनी वक्तृता व चरित्र-सम्पदा से अनुप्रेरित करता हुआ युगपुरुष क्रांतिपुरुष होता है और जनमानस में नूतन कल्याणमयी क्रान्ति का शंखनाद करता है। वह जाति या मनुष्य का सुधारक ही नहीं अपितु सर्जक भी होता है—मानवता की अभिनव सर्जना करता है। श्री चौथमलजी महाराज इसी प्रकार के मानव-सर्जक थे। उन्होंने दुर्जन को सज्जन, हिंसक को अहिंसक, दुश्चरित्र को सच्चरित्र, पापी को पुण्यात्मा, कामुक को संयमी, दुर्व्यसनी को शीलवान, निर्दय को सदय, क्रोधी को शान्त, कृपण को उदार, संकीर्ण-बुद्धि को विशाल-बुद्धि, सुषुप्त को जाग्रत बनाने का प्रशंसनीय कार्य किया और इस प्रकार समाज की नई रचना की—एक नए वातावरण का निर्माण किया। वह जीवन-मूल्यों के ह्रास को रोकने वाले थे तथा उनकी पुन-स्थापना करने वाले थे।
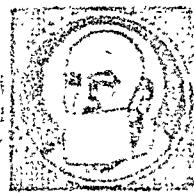
आध्यात्मिक सूर्योदय—

सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम्।

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ऐसे आध्यात्मिक सूर्य थे जिनके उदय होते ही अज्ञानांधकार विनष्ट हो गया, हृदय की कालिमा समाप्त हो गई, जनमानस में नई स्फूर्ति एवं परोपकार के कमल विकसित हो गये। धन्य है मालव-भूमि जिसने ऐसे आध्यात्मिक महापुरुष को प्रसूत किया। मालव-स्थित नीमच (मध्यप्रदेश) में संवत् १९३४ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को श्रीगंगारामजी के घर माता केसरबाई ने इस पुत्र रत्न को जन्म दिया। अल्पायु में ही उन्होंने कई भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनकी अध्ययनशीलता, कुशाग्रबुद्धि, संगीत-प्रेम तथा उत्तम सात्त्विक गुणों को देखकर लोग उनके 'महापुरुष' होने की कामना करते थे। किशोरावस्था को पहुँचते-पहुँचते उनके धार्मिक संस्कार प्रबल होने लगे। संवत् १९४७ में उनके बड़े भाई कालूराम पटवारी की अकस्मात् मृत्यु से उन्हें भारी आघात पहुँचा। उन्हें यह समझने में विलम्ब न लगा कि सब प्रकार के अनर्थ-अनिष्ट का मूल लोभ है—"लोहो मूलं अणत्थाणं।"

उनकी वैराग्यवृत्ति रात दिवस बढ़ने लगी। माता-पिता ने उनकी इस वैराग्य भावना को देखकर संवत् १९५० में प्रतापगढ़ (राजस्थान) के श्री पूनमचन्दजी की पुत्री मानकुँवर से उनका विवाह कर दिया। परन्तु यह क्या ? उनकी सुहागरात वैराग्यरात में बदल गई। स्वजन परिजन उन्हें [illegible] तथा व्यापार में मन लगाने का जितना आग्रह करते उतना ही अधिक वह वैराग्यभाव में डूबे रहते। उधर साधु-संतों के समागम ने उनके वैराग्य को और अधिक प्रखरता प्रदान की। भागवती दीक्षा सं० १९५२ फाल्गुन शुक्ला पंचमी को इन्दौर स्टेट के बोलिया ग्राम में [illegible]

स्थानकवासी परम्परा के गुरुदेव मुनिश्री हीरालालजी महाराज से १८ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की और पाँच महाव्रतों—"अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह" का अनुपालन पूर्ण निष्ठा के साथ करने लगे तथा क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायों को क्षीण करने में जुट गये। उनकी पत्नी ने उनका बहुत पीछा किया, परन्तु बाद में चलकर उसके मोह को भंग करने में वह सफल हो गए। उनके श्वसुर तो काफी दिनों तक बन्दूक का आतंक दिखाकर उनके पीछे पड़े रहे, परन्तु मुनिश्री का निर्भीक व्यक्तित्व इस प्रकार से आतंकित होने वाला न था। निर्लिप्त भाव से वह अपने मार्ग पर चलते रहे। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, गुजराती, राजस्थानी, मालवी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया था। इसके अतिरिक्त ३२ जैनागमों का तलस्पर्शी अध्ययन भी उन्होंने किया। साथ ही जैनेतर धर्मग्रन्थों—कुरान, बाइबिल, रामायण, गीता का भी पारायण किया। फिर **'पियंकरे पियवाई, से सिक्खा लद्धमरहई'** शास्त्रोक्ति के अनुसार श्री चौथमलजी महाराज ज्ञानालोक विकीर्ण करने लगे।

मुनिश्री चौथमलजी महाराज 'यथा नाम तथा गुण' थे। 'चौथ' से अभिप्रेत चार में स्थित होना अर्थात् 'सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र' और तप में लीन होना तथा 'मल' का अर्थ है—चारमल्ल—लोभ, क्रोध, मान, माया को पराजित करने वाला। इसलिए उनका नाम चौथमल साभिप्राय एवं सार्थक था। मुनिश्री कन्हैयालालजी महाराज 'कमल' के शब्दों में, "सर्वसाधारण की भाषा में 'चौथ' प्रतिपक्ष आने वाली एक तिथि है। जैनागमों में चरित्र को रिक्तकर कहा है। चरित्र की व्युत्पत्ति है—**'चयरित्तकरं चारित्तं'** अर्थात् अनन्तकाल से अर्जित कर्मों के चय, उपचय, संचय को रिक्त (निः शेष) करने वाला अस्तित्व चारित्र है। इस तरह चारित्र को चौथ तिथि के नाम से 'मल' अर्थात् धारण करने वाले बने श्री चौथमलजी महाराज।"

वाग्मिता के धनी—

सम्यक्त्वज्ञान संवलित श्री चौथमलजी महाराज एक सुविख्यात वक्ता थे—'सच्चे वक्ता' थे। सच्चे वक्ता इस अर्थ में कि जो कहते थे तदनुकूल आचरण भी करते थे—जो कहते थे वह जीते थे। जो उनके मन में होता था वही उनकी जिह्वा पर होता था, वही उनके व्यवहार में प्रवाहित होता था। जब वह प्रवचन फरमाते थे तो लोग मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते थे। उनकी वाक्शीलता में एक माधुर्य था, आकर्षण था। उनकी सभाएँ—प्रवचन-सभाएँ 'समवसरन' का दृश्य पैदा करती थीं। वहाँ 'सर्वधर्म समभाव' का सुखद वातावरण फैला होता था। जैन-अजैन सभी उनकी बातें सुनते थे। उनके प्रवचन सदैव धर्म-सम्प्रदायातीत होते थे। वह खण्डन की नहीं, मण्डन की शैली में बोलते थे। वह तोड़ने वाले नहीं थे, जोड़ने वाले थे, कैंची नहीं सुई थे जो पृथक् जोड़ों को सीती है—मिलाती है। वह सभी को एकता एवं समन्वय के सूत्र में बाँधने वाले थे। यही कारण था कि गाँव हो या शहर—सभी स्थानों पर हजारों की संख्या में लोग उनके उपदेश सुनने आते थे। उनकी लोकातिशायिनी वक्तृत्वकला के आधार पर चतुर्विध संघ ने उन्हें 'प्रसिद्ध वक्ता' की उपाधि प्रदान की थी। वह स्वयं ही एक शब्द-कथा थे। "उनकी वाणी में वस्तुतः एक अद्भुत-अपूर्व पारस-स्पर्श था, जो लौह चित्त को भी स्वर्णिम कांतिदीप्ति से जगमगा देता था। उनका प्रवचन अमृत हजार-हजार रूपों में बरसा था।" लोक-जीवन को प्रवुद्ध करने वाले उनके उपदेश राजा-महाराजाओं से लेकर अछूतों, भीलों, मजदूरों तक उनकी कल्याणमयी वाणी में निरन्तर पहुँचते रहे। श्री चौथमलजी महाराज जैसा वाक्विभूषण सरलता से नहीं मिलता। उनकी वाणी में भाव और प्रभाव दोनों थे। अतः विवेक-वाणी से प्रभावित होकर राजाओं-महाराजाओं ने हिंसा-

वृत्ति का परित्याग कर दिया था। जहाँ जाते लोग पलक-पांवड़े बिछा देते थे। एक युगपुरुष के समान उन्होंने आत्मीयता व निर्भीकता का मार्ग प्रशस्त कर व्यक्ति और लोक दोनों का संस्कार-परिष्कार किया। एक क्रान्तदर्शी महापुरुष के व्यक्तित्व की गरिमा उनकी वाग्मिता से प्रस्फुटित होती थी।
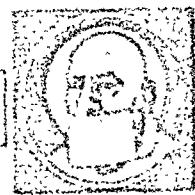
साहित्य-मनीषी

युगपुरुष साहित्य-मनीषी श्री चौथमलजी महाराज ने अपने साहित्य के द्वारा युग-भावना को परिष्कृत किया था। उन्होंने भक्तिरसाप्लावित तथा उपदेशात्मक स्तवनों, भजनों, लावणियों की रचना की थी, जैसे—आदर्श रामायण, कृष्ण-चरित्र, चम्पक-चरित्र, महाबल चरित्र, सुपार्श्व चरित्र आदि। उपर गद्य में भी कई अच्छे ग्रन्थों का प्रणयन किया था, यथा—(१) भगवान महावीर का आदर्श जीवन, (२) भगवान पार्श्वनाथ, (३) जम्बूकुमार, (४) 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' का सम्पादन। मुनि श्री संगीतमय भक्तिगीतों के कुशल रचनाकार शिल्पी थे। उनकी आरतियों तथा भक्तिगीतों की स्वरलहरी श्रोताओं की हृदयतन्त्रियों को अविलम्ब झंकृत कर देती थी। आज भी श्रद्धानिष्ठ व्यक्ति उनके भजनों-गीतों को बड़े भाव से गाते हैं। उनके शब्दों में एक अजीब जादू भरा है, वे सीधे हृदय पर चोट करते हैं। निःसन्देह वह एक महान् साहित्य-स्रष्टा द्रष्टा थे। 'गीता' और 'धम्मपद' सदृश उन्होंने 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' में आचारांग, सूत्रकृतांग, समवायांग, स्थानांग, प्रश्न-व्याकरण, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक सूत्रों से गाथाओं का सुन्दर चयन किया। यह ग्रन्थ १८ अध्यायों में विभक्त है जैसे षड्द्रव्यनिरूपण, कर्मनिरूपण, धर्मस्वरूप, आत्मशुद्धि, ज्ञानप्रकरण, सम्यक्त्वप्रकरण, धर्मनिरूपण, साधुधर्मनिरूपण, लेश्या-स्वरूप, कषायस्वरूप, मनोनिग्रह, स्वर्ग-नर्क-निरूपण और मोक्षस्वरूप आदि। 'समणसुत्तं' इसकी अगली कड़ी है। इसमें संकलित सूत्र सभी जैन-सम्प्रदायों को मान्य हैं।

'निर्ग्रन्थ प्रवचन' मुनिश्री की आत्मनिष्ठ अभिरुचि का प्रतिनिधित्व करता है, संकलित सम्पादित होते हुए भी ग्रन्थ उनके मौलिक विचारों को प्रतिबिम्बित करता है। 'ज्ञानप्रकरण' में लेखक की आत्मव्यथा परिलक्षित होती है। यहाँ 'उत्तराध्ययन' की कुछेक गाथाएँ संकलित हैं। आधुनिक युग में चरित्रहीनता की बाढ़ को निर्बाधित न बनाने—बाँध देने के लिए 'ज्ञानप्रकरण' उत्कृष्ट रचना है। 'ज्ञानप्रकरण' (८-१०) का यह अवतरित उद्धरण देखिये—

> इहमेगे उ मन्नंति, अपच्चक्खाय पावगं।
> आयरियं विदित्ताणं, सव्वदुक्खा विमुच्चई॥
> भणंता अकरेंता य, बंधमोक्खपइण्णिणो।
> वायाविरियमेत्तेण, समासासेन्ति अप्पयं॥
> न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं।
> विसण्णा पावकम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो॥

—अर्थात् कुछ लोग यह मानते हैं कि पाप-कर्मों का परित्याग किए बिना ही केवल आर्यधर्म को जान लेने से ही वे सब दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे, किन्तु जानते हुए भी आचरण नहीं करने वाले के बंध, बन्धन और मोक्ष के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ, केवल शब्दों से अपनी आत्मा को सान्त्वना देते हैं—अपने आपको पण्डित मानते हैं। ऐसे अज्ञानी पापकर्मों में फँसे रहते हैं, अज्ञानी के अनुरूप वे मूर्ख लोग यह नहीं जानते कि यह शब्द कौशल से युक्त भाषा उनकी रक्षा नहीं करेगी।

अवदान :—

एक युगपुरुष के रूप में जैन दिवाकरजी महाराज का सबसे बड़ा योगदान जैन-सम्प्रदायों को एक मंच पर समासीन करना था, भेदद्दष्टि समाप्त कर स्वस्थ दृष्टि उत्पन्न करनी थी। मत-वैभिन्य के स्थान पर मतैक्य स्थापित करना था। जातीय तथा साम्प्रदायिक भेदभाव की ऊँची-ऊँची दीवारों को तोड़ने का काम करना था। यह एक युगान्तरकारी, क्रान्तिकारी प्रयत्न व परिवर्तन था। अतः हम उन्हें संघ-एकता का अग्रदूत कह सकते हैं। संघ-संगठन के नव-निर्माण में उनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

एक महावीर जयंति के अवसर पर उन्होंने कहा था—"भगवान महावीर तो श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनों के ही आराध्य हैं, देवाधिदेव हैं। एक ही आराध्य के अनुयायी होने से सभी भाई-भाई हैं फिर मतभेद कैसा ?"

बात सं० १९७२ की है; मुनिश्री जोधपुर में चातुर्मास पूर्ण कर ब्यावर आये थे। उनके दीक्षा-गुरु कविवर श्री हीरालालजी महाराज भी वहाँ मौजूद थे। उन दिनों स्थानकवासी सम्प्रदाय भिन्न वर्गों में विभक्त था। सनातनधर्म हाईस्कूल में जैन दिवाकरजी महाराज ने 'प्रेम और एकता' पर ओजपूर्ण भाषण देकर ब्यावर संघ में एकता का बीजारोपण किया। उसके कई वर्षों बाद सं० २००६ में वहीं नौ सम्प्रदायों का—उनके प्रमुख सन्तों का सुखद मिलन हुआ। सभी अपने पूर्वपदों व पूर्वाग्रहों को छोड़कर संघ के एक महासागर में विलीन हो गये। साम्प्रदायिक एकता मानो उनके जीवन का एक मिशन था।

संघ की एकता को सुदृढ़ करने, उसे प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होंने एक बार कहा था—(i) समस्त प्रान्तों में विचरण करने वाले साधु-साध्वियों का एक स्थान पर सम्मेलन हो। (ii) साधुओं का समाचारी और आचार-विचार प्ररूपण एक हो। (iii) स्थानकवासी संघ की ओर से प्रमाणभूत श्रेष्ठ साहित्य का प्रकाशन हो। (iv) तिथियों का सर्वसम्मत निर्णय हो। (v) एक-दूसरे की निन्दा, अवहीलना, टीका-टिप्पणी, छिद्रान्वेषण-द्वेषाक्षेप आदि कभी न हो।

सं० १९८९ में अजमेर में वृहत्साधु-सम्मेलन हुआ। उसमें मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपने सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के दोनों सम्प्रदायों को एक करने का मांगलिक कार्य किया। सं० २००७ में मुनिश्री ने कोटा में वर्षावास किया। वहीं श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार्य श्री आनन्दसागरजी महाराज दिगम्बर सम्प्रदाय के मुनि आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज भी चातुर्मास कर रहे थे। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सत्प्रयासों से सभी प्रत्येक बुधवार को एक ही मंच से प्रवचन देते थे। समन्वयवादी दृष्टि सम्पन्न जैन दिवाकर जी महाराज ने इन भिन्न सम्प्रदायों में पारस्परिक सौहार्द की केसर-कलियाँ विकसित कर जनमानस को हर्षित किया था।

देशना-गंगा :—

युगपुरुष की दृष्टि अपने युग की प्रत्येक समस्या पर पड़ती है, वह युग-नाड़ी की धड़कनें सजग होकर सुनता है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपने युग की दशाओं, परिस्थितियों तथा समस्याओं को भलीभाँति देखा-समझा था, जीव-जगत् पर गहराई से चिन्तन किया था। वह धर्म-सहिष्णुता के पुरस्कर्ता थे। धर्म व जाति के नाम पर आपस में कोई द्वेष-वैर न रखे। एक स्थान

र कहा था—"विभिन्न धर्मों के अनुयायी होने के कारण द्वेष करने की क्या आवश्यकता है ? संसार
ा कोई भी धर्म द्वेष करना नहीं सिखलाता फिर भी धर्म के नाम पर द्वेष किया जाता है। वस्तुतः
र्म की आड़ लेकर द्वेष करना अपने धर्म को बदनाम करना है।" हम देख चुके हैं कि धर्म के
ाम पर जितना अधिक अत्याचार और विग्रह फैला है, पार्थक्य को पोषण मिला है उतना किसी
स्तु के नाम पर नहीं। एतावत जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा—

"धर्मात्मा बनो, धर्मान्ध न बनो।"

नारी—शक्ति का अवतार

जैन दिवाकरजी महाराज ने नारी-समाज के उत्थान व जागरण की ओर विशेष ध्यान दिया। एक बार अपने प्रवचन में उन्होंने फरमाया था—"बहिनो ! तुम अपने तेज को प्रकट करो, अपनी शक्ति को पहचानो। जिसने बलवान और शूरवीर पुरुषों को जन्म दिया है, वे अबला नहीं हो सकतीं। तुम शक्ति का अवतार हो। तुम्हारी आत्मा में अनन्त बल है।" उन्होंने स्त्री को पृथ्वी के समान क्षमाशील होने की कामना की, ताकि घर का कलह-विग्रह शान्त हो। पत्नी की गरिमा इस बात में है कि वह अपने दुराचारी पति को भी सदाचारी बनाये। इसमें सन्देह नहीं, यदि नारी अपनी महिमा-गरिमा को पहचाने तो कोई उसका शोषण नहीं कर सकता, कोई उसे भोग-विलास की सामग्री नहीं बना सकता। वेश्यावृत्ति को उन्होंने अत्यधिक सावद्य एवं अवधीरित कर्म माना था और उसका समूलोच्छेदन करने का बीड़ा उठाया था। मुनिश्री ने देख लिया था कि वेश्यावृत्ति मानव-जाति पर एक कलंक है। वेश्या का जीवन अपमान, घृणा, निन्दा, तिरस्कार, उपेक्षा का जीवन है। भला ऐसा घृणित अपमानित, तिरस्कृत, उपेक्षित जीवन जीना कौन नारी चाहेगी ? उन्होंने वेश्याओं के स्वाभिमान को जगाया—उनके भीतर छिपी गरिमाशील नारी को जगाया—सं० १९६६ में महाजपुर पहुँचकर मुनिश्री ने विवाहादि अवसरों पर आयोजित वेश्या-नृत्य को बन्द करा दिया। इस पर कुछ वेश्याओं ने इसे अपनी रोटी-रोजी की विकट समस्या समझा और मुनिश्री से शिकायत की कि हमारी तो आजीविका ही जाती रही। इस पर उन्होंने वेश्याओं को भी प्रबुद्ध किया—

"बहनो ! नारी जाति संसार में देवीस्वरूप होती है; उसका पद ममतामयी माता और स्नेहशील बहन जैसा गौरवशाली होता है। ऐसा महत्त्वपूर्ण पद पाकर कुत्सित कर्म करना, नृत्य-गान करना नारी जाति के लिए कलंक है। इस कलंकित जीवन को त्यागकर सात्त्विकवृत्ति धारण करो और नारीत्व की महिमा बढ़ाओ।"

परिणामतः सं० १९७० में पाली में उनके प्रवचनों से अनुप्रेरित होकर 'चंदनी' और 'पारी' नाम की वेश्याएँ सदाचारी, शीलवान बन गईं। 'सिकदारों' ने शील-व्रत-जीवन [illegible] लिया। सं० १९७६ में जोधपुर की 'फरसी' इस निकृष्ट धंधे को छोड़कर शीलव्रत धारकर नैतिक जीवन व्यतीत करने लगी। यह था उनकी देशना का प्रभाव।

परिग्रहवृत्ति

[illegible] उन्होंने [illegible] किया। उन्होंने [illegible] से, [illegible] से, [illegible] से, [illegible] ने, [illegible] की [illegible] नहीं [illegible]। [illegible]

पहली शर्त '**न्यायोपात्त धनः**' है, न्याय-नीति से धन कमाना ही श्रावक उचित समझता है।" ये थे मुनिश्री के भाव। आजकल परिग्रह और लूटखसोट में लोग लगे रहते हैं। मिलावट के विषय में उन्होंने कहा था—"मिलावट करना घोर अनैतिकता है। व्यापार-दृष्टि से भी यह कोई सफल नीति नहीं है। अगर सभी जैन व्यापारी ऐसा निर्णय करलें कि हम प्रामाणिकता के साथ व्यापार करेंगे और किसी प्रकार का धोखा न करते हुए अपनी नीति स्पष्ट रखेंगे तो जैनधर्म की काफी प्रभावना हो, साथ ही उन्हें भी कोई घाटा न हो।" मुनिश्री समाज में फैले भ्रष्टाचारों को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प थे। यह उनके एक युगपुरुष होने का प्रमाण है। उन्होंने समाज को प्रत्येक प्रकार के शोषण से मुक्त करने का प्रयास किया।

भारत में अभी तक पूर्णतः मद्य-निषेध न होने के कारण युवावर्ग में चारित्रिक दुर्बलता पनपती जा रही है। देश की गरीबी, अशिक्षा, बेकारी में मद्य का विशेष हाथ रहा है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा था कि यदुकुल और साथ ही द्वारिका का नाश करने वाली मदिरा ही तो है। लोक में निन्दा, परलोक में दुःख इसी के प्रताप से होता है। शराबी का घर तबाह हो जाता है। शराब सौभाग्य रूपी चन्द्रमा के लिए राहू के समान है। वह लक्ष्मी और सरस्वती को नष्ट करने वाली है। नाथद्वारे में श्रीनाथजी को ५६ भोग चढ़ाये जाते हैं मगर उसमें मदिरा नहीं होती।

पतितोद्धार व अन्त्यजों में अहिंसा :—

भारतीय समाज से अस्पृश्यता एक ऐसा कलंक है जो आज तक नहीं मिटा। उन्होंने जातिगत एकता और सामंजस्य पर विशेष बल दिया। एक सच्चे युगपुरुष के रूप में उन्होंने पतितों का उद्धार किया। उनकी मान्यता थी कि जैनधर्म यह नहीं मानता कि एक वर्ण जन्म से ऊँचा होता है दूसरा जन्म से नीचा होता है। जैन संस्कृति मनुष्यमात्र को समान अवसर प्रदान करने की हिमायत करती है। जैनधर्म अस्पृश्यता का विरोधी है, समानता का पक्षपाती है—"**समयाए समणो होइ**"—सभी को समान रूप से आत्मकल्याण की ओर प्रेरित करना है। गाँधीजी ने हरिजनों के उद्धार का बीड़ा उठाया था, उससे पूर्व ही श्री चौथमलजी महाराज ने 'पतितोदय' या 'पतितोद्धार' के कार्य को उठाया था। मुनिश्री ने अपने ओजपूर्ण भाषणों द्वारा अन्त्यजवर्ग की हिंसा मांस-मद्य-सेवन-वृत्ति को नष्ट किया। उन्हें अनेक दुर्व्यसनों से मुक्ति दिलाई। अनेक भील, खटीक अहिंसक बने।

राष्ट्रधर्म के प्रेमी :—

मुनिश्री ने आत्मिक धर्म के उत्कर्ष के लिए राष्ट्रधर्म को अपनाने पर विशेष बल दिया। एक योग्य नागरिक के नाते राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना ही राष्ट्रधर्म है और राष्ट्रधर्म का भलीभाँति परिपालन करने वाले ही अध्यात्मधर्म को—आत्मिकधर्म को अंगीकार कर सकते हैं। जो व्यक्ति राष्ट्रधर्म का अनुपालन नहीं कर सकता वह आत्मिक धर्म का भी आचरण नहीं कर सकता। सामाजिक पर्वों को भी उन्होंने राष्ट्रधर्म व आत्मिक धर्म की उन्नति में महत्वपूर्ण माना है। उन्हीं के शब्दों में—"राखी का कोरा धागा बाँधने से काम नहीं चलेगा। अगर रक्षाबन्धन को वास्तविक रूप देना है तो भाई, भाई की रक्षा करे, पड़ौसी की, गाँव-नगर की, राष्ट्र की रक्षा करे। जैसे दीपावली पर मकान का कूड़ाकचरा साफ करते हो और उसे साफ-सुथरा बनाते हो, इसी प्रकार आत्मा को भी, अपने चित्त को भी निर्मल स्वच्छ बनाओ। आत्मा को शुद्ध करो। अन्तस्तल में घुसे अन्धकार को नष्ट करने का उद्योग करो, भीतर की मलिनता को हटाओ।"

अहिंसा-ज्योति का प्रसार

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के अहिंसा-प्रसार को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना समीचीन होगा। सम्भवतः इस शताब्दी में अहिंसा का प्रसार-प्रचार जितना मुनिश्री ने किया उतना अन्य किसी महापुरुष ने नहीं किया। विज्ञान ने सब कुछ दिया परन्तु लोगों की सुबुद्धि में तनिक भी परिष्कार व उन्नति नहीं हुई। मनुष्य आज भी हिंसक पशु बना हुआ है। हिंसा में अशांति की भयंकर ज्वाला छिपी है। उन्होंने अनेक स्थानों पर अहिंसा व जीवदया पर मार्मिक भाषण दिये जिनसे प्रभावित होकर अनेक लोगों ने हिंसा का, शिकार करने का, मांसाहार का परित्याग कर दिया था। उदयपुर, अलवर, जोधपुर, शिकारपुर, किशनगढ़, करेड़ा, लाव, पटियावली, कोसीथल आदि जगहों के नरेशों, ठाकुरों ने हिंसा का परित्याग किया था। सं० १९८० इन्दौर में उनका मार्मिक भाषण सुनकर नजर मुहम्मद कसाई ने जीव-हत्या का त्याग कर दिया। पालनपुर (गुजरात) के नवाब सर शेरमुहम्मद खाँ बहादुर ने मुनिवर की धर्मचर्चा सुनकर उन्हें एक दुशाला भेंट करना चाहा, इस दान के बदले में उनसे अहिंसा का दान मुनिजी ने मांगा और इसके बाद नवाब साहब ने मांस-शराब को त्याग दिया। रतलाम और देवास तथा बनेड़ा आदि नरेशों ने—ठाकुरों ने उनके प्रवचनों से प्रभावित होकर जीवदया के परवाने निकाले। सन् १९३५ में उदयपुर के महाराणा फतेहसिंह जी व भूपालसिंहजी ने अहिंसा-प्रेम को अपनाया।

उन्होंने कहीं 'गौरक्षा' पर व्याख्यान दिया, तो कहीं बलिप्रथा को बन्द कराया। मन्दसौर में सं० १९७९ में जाकर कन्या-विक्रय, बालविवाह, वृद्धविवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन किया। उनकी दृष्टि से छोटी से छोटी बुराई तक नहीं छिपी थी। एक महापुरुष के रूप में समाज को धर्मपरायण बनाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया, शील और सदाचार का सर्वत्र प्रचार किया।

विदेशी प्रशंसक

जैन दिवाकरजी महाराज की समता, उदारता, निस्पृहता, मित्रता, सहिष्णुता, सत्यवादिता, कर्तव्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा, सच्चरित्रता का उपदेश सुनकर कुछ विदेशी भी काफी प्रभावित हुए। उदयपुर के रेजिडेन्ट कमिश्नर बेनफिल्ड ट्रेंच उनके बहुत प्रशंसक थे। ट्रेंच साहब की पत्नी ने मुनि जी के प्रवचन सुनकर बुरी आदतें छोड़ दी थीं। जैन विशेषज्ञ डा० [illegible] आदरपूर्वक प्रतिदिन उनके व्याख्यान सुनते थे। [illegible] ने तो शराब का सेवन ही छोड़ दिया था। चित्तौड़ के अफीम विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट एम० ओ० डेवर उनके प्रवचनों से विशेषतः प्रभावित थे। जैनधर्म के विषय में उन्होंने कहा था—"मेरा विश्वास है कि यह धर्म [illegible] होगा और संसार की ओर ले जाने वाला न होगा। [illegible] मनुष्य [illegible] कहेंगे।"

[illegible] भारत के पुनर्निर्माण में भौतिक समृद्धि के प्रयत्नों पर ही हम [illegible] किये हैं। आज सुख-शान्ति के स्थान में दुःख-अशांति बढ़ रहे हैं। [illegible]—मनुष्य [illegible] रहे हैं, [illegible] पीछे छोड़ रहे हैं—[illegible] हो रहा है। [illegible] 'मानव' [illegible] हो गया है। [illegible] भौतिक समृद्धि [illegible] का प्रतीक है, [illegible] और कुछ

नहीं । अमेरिका आदि भौतिकसमृद्धि-सम्पन्न देश कितने अशांत, व्याकुल, तनावग्रस्त हैं, यह सभी जानते हैं । मुनिश्री ने हमें भौतिक समृद्धि के साथ आत्मसमृद्धि का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया। हमारे नैतिक संस्कारों को प्रबुद्ध किया । किसी स्थूल योजना को साकारित करना सरल कार्य है, परन्तु नैतिक तथा चारित्रिक अमूर्त योजना को मूर्तरूप देना श्री चौथमलजी जैसे युगपुरुष का ही कार्य था ।

"वे युग को पहचानने वाले युगद्रष्टा थे, युग की धारा को मोड़ने वाले युग-पुरुष थे। जिन अन्ध-विश्वासों, कुरीतियों व सड़ी-गली परम्पराओं के दमघोंटू वातावरण में मानव-समाज छटपटा रहा था, जिन वेड़ियों को तोड़ते न बन रहा था और न निभाते—उन वेड़ियों को तोड़ डालने का आह्वान किया उन्होंने, आह्वान ही नहीं, मनुष्य में शक्ति व स्फूर्ति का प्राण फूंक कर उसे सत्य सादगी-सदाचार के मुक्त वायुमण्डल में जीने का अवसर प्रदान किया ।"

☆

परिचय व संपर्क सूत्र—
जैन धर्म व साहित्य पर विशेष रुचि तथा अध्ययन ।
चिन्तनशील लेखक,
प्राध्यापक—इस्लामिया कालेज, श्रीनगर
पता—साजगरी पोरा, श्रीनगर (काश्मीर)

☆
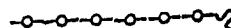
श्रद्धा-सुमन

☆ **आर्या श्री आज्ञावती** (चण्डीगढ़)

चौथमल मुनिराज की, महिमा का न पार ।
याद जिन्हें है कर रहा, सारा ही संसार ।।

पुण्यवान गुणवान थे, वक्ता कवि विद्वान ।
तप, जप,त्याग वैराग और विमल ज्ञान की खान ।।

जो भी आया चरण में, वड़े प्रेम के साथ ।
दया, दान की, ज्ञान की कही उसे ही वात ।।

मद्य, मांस औ द्यूत औ, चोरी और शिकार ।
छोड़ गए थे वहुत जन, वेश्या और परनार ।।

अनगिनती का कर दिया, ऐसे ही कल्याण ।
मिलते मुश्किल आजकल उनसे दया निधान ।।

गद्य-पद्य में आपने, रचे अनेकों ग्रन्थ ।
जैन दिवाकर की नहीं, महिमा का कुछ अन्त ।।

'आज्ञा' जो पंजाव की, लघु-सी आर्या एक ।
श्रद्धा के अर्पित करे, सात सुमन सविवेक ।।

ज्योतिवाही युगपुरुष : श्री चौथमलजी महाराज

-डॉ० नरेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी-एच० डी०
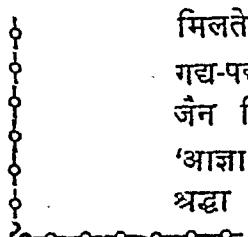
जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब का स्मरण करते ही मानस-पटल पर एक ऐसे दिव्य व्यक्तित्व का चित्र अंकित होता है जिसके मस्तिष्क में ज्ञान का अगाध समुद्र हिलोरें ले रहा हो, जिसके हृदय से अनुभव-सूर्य की अनन्त किरणें फूट रही हों, जिसके हाथों में गतानुगतिक समय-प्रवाह को रोकने की क्षमता हो, जिसके पैरों में पहलवान की सी मस्तानी चाल हो जिसके कण्ठ से उदात्तवाणी फूटती हो। सचमुच, इस दिवाकर ने बाह्य जगत् के अन्धकार को ही नहीं मिटाया वरन् अन्तर्जगत् में छाये निविड़ अन्धकार को भी तहस-नहस कर, ऊर्ध्वगामी चेतना का आलोक जन-जन में बिखेर दिया।

मुझे अपने बचपन की एक धुंधली स्मृति स्मरण आ रही है। कानोड़ के गांधी चौक में इस उत्तुंग ज्ञान हिमालय से प्रवचन-गंगा फूट रही है। उसके पावन शीतल स्पर्श से सबका मन आल्हादित है। क्या राजा, क्या रंक, क्या अमीर, क्या गरीब, क्या खटीक, क्या कलाल, क्या मोची, क्या चमार, सब उसकी वाणी के आकर्षण की डोर में खिंचे चले आ रहे हैं। व्यक्तित्व का अद्भुत प्रभाव वाणी का बेमिसाल चमत्कार।

दूसरी बाल-स्मृति उभरती है आदर्श उत्सव चित्तौड़गढ़ की, जब इस लोक-पुरुष की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती मनाई गयी थी। कानोड़ के विजय जैन पाठशाला के छात्र के रूप में मैंने उस अवसर पर चित्तौड़गढ़ के लाल किले के विशाल प्रांगण में 'महाराणा प्रताप' नाटक में अभिनय किया था! हजारों लोग इस उत्सव पर सम्मिलित हुए थे, इस युग-पुरुष को वन्दनाञ्जलि देने।

इतने वर्षों के बाद जब आज जैन दिवाकरजी महाराज के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने लगता हूँ, तो अनुभव होता है कि उस महान् व्यक्तित्व के आगे हमारा पैमाना उत्तरोत्तर छोटा पड़ता जाता है। उस अकेले व्यक्तित्व ने जो धार्मिक-सामाजिक क्रांति की, कई लोग और संगठन मिलकर भी उसके समानान्तर आज तक वह प्रगति नहीं कर सके हैं।

इस महापुरुष का जन्म उस समय हुआ जब भारतीय समाज अपने अस्तित्व को आकार दे रहा था और राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के पूर्व की उथल-पुथल जोरों पर थी। क्रांतिद्रष्टा इस संत ने आध्यात्मिकता और सामाजिकता के बीच पड़ी खाई को समझा, उसे देखा और पाटने का प्रयत्न किया। मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने अपने चारों ओर सम्प्रदाय की, वर्गभेद की छुआछूत की दीवारें खिंची हुई देखी। उनका मन तड़प उठा। उन्होंने जैनधर्म को जन-जन का धर्म बनाने का संकल्प किया और अपनी वाणी में आत्म-विश्वास और स्वाभिमान का ऐसा तेज भरा कि ऊँचो से ऊँची श्रेणी के राजा-महाराजा और निम्न से निम्न श्रेणी के व्यक्ति, चमार, कसाई, आदिवासी और आदरभाव से उनके उपदेश सुनने को आते। इस प्रकार उन्होंने जीवन शुद्धि और धर्म-क्रांति का प्रवर्तन किया।

संक्षेप में उनकी धर्मक्रांति के तीन मुख्य सूत्र हैं—

(१) जैन धर्म का सार्वजनीकरण।

(२) जीवन का शुद्धीकरण।

(३) धर्म का समन्वयीकरण।

(१) जैन धर्म का सार्वजनीकरण—मुनिश्री ने देखा कि जैन धर्म के जो तत्व जीवन के ...

लाने वाले हैं, वे सामने नहीं आ रहे हैं। वे भाषा की दुर्बोधता और भावों की शास्त्रीयता में कैद हो गये हैं। चन्द लोगों तक उनकी पहुँच रह गयी है और वह भी परिपाटी के रूप में। उन्हें लगा कि सबका हित करने वाली सरस्वती, जो सतत प्रवाहिनी रही है, एक तालाब में आकर रुँध गयी है। जन-जीवन से उसका सम्पर्क टूट गया है। यह सम्पर्क पुनः जुड़े, इसकी छटपटाहट मुनिश्री के दिल में थी। मुनिश्री अपने गृहस्थ-जीवन में वहाँ के निवासी थे जहाँ तुर्रा-कलंगी के निष्णात खिलाड़ी रहते थे। इन्होंने भी वह सुने थे उनकी आवाज में बुलन्दगी थी और कविता जोड़ने में वे दक्ष थे। जैन दीक्षा अंगीकृत करने के बाद जब उन्होंने शास्त्राभ्यास किया तो ऐसे अनेक कथानकों और चरित्रों से उनका परिचय हुआ जिनके उदात्त आदर्श-जीवन को उन्नत और कल्याणक बना सकते है। लोक-भूमि और लोक-धर्म से जुड़े हुए ऐसे कथानकों को मुनिश्री ने लोक-शैली के ख्यालों, लावणियों और चरितों में बाँधना, गूंथना और गाना शुरू किया कि लोग देखते और तरसते रह गये। बोलचाल की भाषा में गजब का बंध, शेरों-शायरी और गजल का जमता रंग, संघर्ष से गुजरते हुए अपने शील और सत्य की रक्षा में प्राणोत्सर्ग करते हुए चमकते चरित्र, मर्म को छूने वाली दर्द भरी अपील। साहित्य की संवेदना के धरातल से उठा हुआ, हृदय को विगलित करने वाला मर्म-स्पर्शी संगीत, जो जन-जन की रग-रग को छू गया।

(२) **जीवन का शुद्धिकरण**—मुनिश्री के जन्म की आविर्भावकालीन परिस्थितियाँ धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन के लिए अनुकूल थीं। आर्यसमाज, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए सक्रिय था। जैन समाज भी नानाविध कुरीतियों से ग्रस्त था। मुनिश्री ने जीवन-शुद्धि को धर्मचर्या का मुख्य आधार माना। उन्होंने देखा कि धर्म से शुद्धता और पवित्रता का लोप हो रहा है। सर्वत्र अशुद्धता और कथनी व करनी की द्वैतता का पाट चौड़ा होता जा रहा है। धर्म के नाम पर देवी-देवताओं के मन्दिर में पशुओं की बलि दी जा रही है। रक्त-रंजित हाथों से धार्मिक देवी-देवताओं को तिलक किया जा रहा है। मद्य, मांस और मादक पदार्थों के सेवन की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती जा रही है और यह सब इस भ्रामक धारणा के साथ कि इससे जीवन शुद्ध होता है, धर्म पवित्र होता है। सामाजिक शुद्धता के नाम पर बाल-विवाह, अनमेल विवाह, मृत्यु-भोज, कन्या विक्रय, दहेज जैसी घिनौनी प्रथाएँ चल पड़ी थीं। राजा-महाराजाओं में सप्त कुव्यसनों का सेवन चरम सीमा पर था। इसे उच्चता और मान प्रतिष्ठा का प्रतीक बना दिया गया था। मुनिश्री ने इस परिस्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार किया। आभिजात्य वर्ग और निम्न वर्ग को युगपत उद्बोधन देकर, उन्हें एक साथ बिठाकर सप्त कुव्यसनों का त्याग कराया। धर्म के नाम पर बलि चढ़ने वाले हजारों पशुओं को अभय दान दिया। सामाजिक कुरीतियों में फँसे हजारों लोगों को उबारा। इस प्रकार आत्मशुद्धि और जीवनशुद्धि का युगान्तरकारी महान् कार्य मुनिश्री ने सम्पादित किया।

(३) **धर्म का समाजीकरण**—धर्म, व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को रेखांकित करता है। धर्म की साधना व्यक्ति से आरम्भ होती है, पर उसका प्रभाव समाज पर परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से धर्म के दो स्तर हैं—व्यक्ति स्तर पर क्षमा, आर्जव, मार्जव, त्याग, तप, अहिंसा, अपरिग्रह, आदि की आराधना करते हुए सामाजिक स्तर पर ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, संघधर्म को परिपुष्ट और बलिष्ठ बनाया जाता है। सच पूछा जाए तो ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, और राष्ट्र-धर्म की सम्यक् परिपालना करने पर ही श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना संभव हो पाती है। इस बिन्दु पर धर्म समाज के साथ जुड़ता दिखाई देता है। पर कुछ विचारकों ने धर्म को एकान्त निवृत्तिमूलक मानकर उसे सामाजिकता से अलग कर दिया। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने इस अन्तर्विरोध

को पहचाना और धर्म के माध्यम से समाज सुधार के आन्दोलन को गति देकर धर्म के समाजीकरण की प्रक्रिया तेज की। उनकी प्रेरणा से कई ऐसी लोकोपकारी संस्थायें अस्तित्व में आयीं जिनसे लोक-सेवा और लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

आज भौतिक पिंड के रूप में मुनिश्री हमारे बीच नहीं हैं, पर उनकी वाणी, उनका प्रखर तेज और प्रेरणाशील व्यक्तित्व हमारी रग-रग में शक्ति, स्फूर्ति और उत्साह की चेतना भर रहा है। ऐसे ज्योतिवाही युगपुरुष को उनकी जन्म-शताब्दी पर शत-शत वन्दन-श्रद्धार्चन! ☆

परिचय व सम्पर्क सूत्र—
हिन्दी एवं जैन साहित्य के प्रमुख विद्वान्, समीक्षक तथा लेखक
सम्पादक—'जिनवाणी'
प्राध्यापक—हिन्दी विभाग, राज० विश्वविद्यालय, जयपुर
सी० २३५ ए० तिलकनगर, जयपुर।

☆☆

पर-भव सुख प्रबन्ध

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

ले संग खरचीरे-२, परभव की खरची लीधा सरसीरे ॥टेर॥
छल-कपट कर धन कमाई, छोड़ जमीं में धरसीरे।
सुन्दर महल बागने छोड़ी, जासो पड़सीरे ॥ १ ॥
आगे धन्धो पाछे धन्धो, धन्धो कर-कर मरसीरे।
धर्म सुकृत नहीं करे, परभव कांई करसीरे ॥ २ ॥
राजा वकील बेरिस्टर से, कर मोहब्बत तू संग फिरसीरे।
कौन छुड़ावे काल आय जब, चोटी पकड़सीरे ॥ ३ ॥
पांच कोस गामान्तर जावे, खरचीलेई निकलसीरे।
नया शहर है दूर, नहीं मनिआर्डर मिलसीरे ॥ ४ ॥
जोबन की गये ढलक पड़ो, बुढ़ापो आया उतरसीरे।
इस तन की तो होगी खाक, नहीं कछु निरखसीरे ॥ ५ ॥
धन की नारी होवी फोकनी, गाड़ी घर में धरसीरे।
मसाण भूमि में छोड़ जने, फिर कुटुम्ब बिछड़सीरे ॥ ६ ॥
लख चौरासी की घाटी करड़ी कैसे पार उतरसीरे।
सही सीर नहीं आगे थारी छाती धड़कसीरे ॥ ७ ॥
[illegible]
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, किया धर्म सुखसीरे ॥ ८ ॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

जैन दिवाकरजी महाराज ओजस्वी वक्ता भी थे। वाणी का चमत्कार उनके व्यक्तित्व की एक अन्यतम विशेषता थी। उनकी वाणी में, वस्तुतः एक अद्भुत-अपूर्व पारस-स्पर्श था, जो लौह-चित्त को भी कान्ति और दीप्ति से झिलमला देता था। उनकी प्रवचन-पीयूषधारा हजार-हजार धाराओं में प्रवाहित हुई थी। राजा-महाराजाओं से लेकर मजदूरों के झोंपड़ों तक उनकी कल्याणकर वाणी पहुँची थी और उसने अंधेरे में रोशनी पहुँचाई थी। उनकी भाषा में मधुराई थी, मंजुल और प्रभविष्णु मुखाकृति के कारण वे जहाँ भी गये सहस्र-सहस्र जनमेदिनी ने उनका अभिनन्दन किया, अपने पलक-पाँवड़े बिछा दिये। कई राजाओं ने उनके प्रवचन सुनकर अपनी-अपनी राज्य-सीमाओं में हिंसा रोकने का प्रयत्न किया। उनकी वत्सलता बड़ी वरदानी थी, इसीलिए अछूतों को गले लगाकर, जैनधर्म में उन्हें प्रवेश देकर उन्होंने एक ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत किया। यह था उनके पतितपावन व्यक्तित्व का प्रभाव।

उनकी साहित्य-साधना भी अनूठी थी। दिवाकर-साहित्य में से काव्य-साहित्य खूब लोकप्रिय हुआ। जनता-जनार्दन के कण्ठ में आज भी उसकी अनुगूँज है।

मैंने मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशों में भी विहार किया। वहाँ भी स्थान-स्थान पर उनकी कीर्ति-कथाएँ सुनीं। मेरे ख्याल से उनके जीवन की सब से बड़ी उपलब्धि एक यह भी है कि मैंने उनके विषय में कोई अपवाद नहीं सुना।

जब मैंने कोटा में उनके देहावसान का दुःखद संवाद सुना, तब मेरे मन को बहुत चोट लगी। शीघ्र ही हम सब ब्यावर में पुनः एकत्रित हुए। आचार्य होने के नाते मेरी उपस्थिति अत्यन्त अपरिहार्य थी। उनके प्रति मेरी अगाध श्रद्धा है। जब मैं कोटा गया तब उनकी पुण्य-सुरभित स्मृति में 'दिवाकर जैन विद्यालय' चलाने की प्रेरणा देकर आया था। विद्यालय मेरी उपस्थिति में ही खुल गया था, प्रसन्नता है कि वह विकासोन्मुख है और यथेष्ट उन्नति कर रहा है।

जगत के खेल में

(तर्ज—ख्याल की)

थारो नरभव निष्फल, जाय जगत के खेल में ॥ टेर ॥
सुन्दर के संग सेज में सोवे, रात दिवस तू महल में।
इतर लगावे फूल सुंघावे, जावे बाग की सैल में ॥ १ ॥
कभी होता साथ संग में, बैठे मोटर रेल में।
मौत पकड़ ले जावे तुमको, हुवा नहीं [illegible] फैल में ॥ २ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] आया, रहा [illegible] जेल में।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में, [illegible] [illegible] फेल में ॥ ३ ॥
थारे [illegible] की संग [illegible], [illegible] [illegible] जेल में।
चौथमल [illegible] किया [illegible], इन्दौर [illegible] शहर में ॥ ४ ॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

एक सम्पूर्ण संत पुरुष

✡ श्री केवल मुनि

✡ उन्होंने बड़ी गम्भीरता से कहा—"पाँच सौ घर के सिवाय जो लोग यहाँ बसते हैं, हरिजन-आदिवासी से लेकर मेवाड़ के महाराणा तक, वे सब हमारे हैं।'

✡ उनके प्रति राजे-महाराजे, ठाकुर-जागीरदार, सेठ-साहूकार जितने अनुरक्त थे, उतने ही निरक्षर किसान, कलाल, खटीक, मोची, हरिजन आदि भी।

'सहस्रेषु च पंडित:' की सूक्ति के अनुसार हजार में कहीं, कभी एक पंडित होता है; और ज्ञानी तो लाखों में कोई एक विरला ही मिलता है, क्योंकि ज्ञानी ज्ञान की जो लौ ज्योतित करता है, वह उसकी जीभ पर नहीं होती, जीवन में होती है और कुछ इस विलक्षणता से होती है कि लाख-लाख लोगों का जीवन भी एक अभिनव रोशनी से जगमगा उठता है। भगवान् महावीर के सिद्धान्तानुसार ज्ञानी अहिंसा की जीवन्त मूर्ति होता है। संस्कृत में एक श्लोक है—

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्वं, क्षमा दया सर्वजनप्रियत्वं।
निर्लोभ दाता भयशोकहर्ता, ज्ञानी नराणां दश लक्षणानि॥

उक्त श्लोक में ज्ञानी के दस प्रतिनिधि लक्षण गिनाये गये हैं। ये वस्तुतः एक सम्पूर्ण संत-पुरुष के लक्षण हैं। जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज सम्पूर्ण सन्तपुरुष थे। वे ज्ञान के अथाह, अतल सिन्धु थे। मैं उनका शिष्य रहा हूँ। मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा है। मैं जानता हूँ कि वे किस तरह प्रतिपल समाज के उत्थान में समर्पित थे। वे दिवाकर थे, उन्होंने जहाँ भी, जिसमें भी, जैसा भी अँधियारा मिला, उससे युद्ध किया। अज्ञान का अँधियारा, रूढ़ियों का अँधेरा, दुर्व्यसनों का अंधेरा, छुआछूत और भेदभाव का अँधेरा—इन सारे अंधेरों से वे जूझे और उनके प्रवचन-सूर्य ने हजारों लोगों के जीवन में रोशनी का खजाना खोला। वे परोपकारी पुरुष थे, उनका जीवन तिल-तिल आत्मोत्थान और समाजोदय में लगा हुआ था।

क्रोध उनमें कम ही देखने में आया उनके युग में साम्प्रदायिकता ने बड़ा वीभत्स रूप धारण कर लिया था। लोग अकारण ही एक दूसरे की निन्दा करते थे; और आपस में दंगा-फसाद करते थे। बात इस हद तक बढ़ी हुई थी कि लोग उनके गाँव में आने में भी एतराज करते थे, जैसे गाँव उनकी निज की जागीर हो, किन्तु दिवाकरजी महाराज ने बड़े शान्त और समभाव से इन गाँवों में विहार किया। उदयपुर का प्रसंग है। गुरुदेव वहाँ पहुँचे तो लोगों ने कहा—'यहाँ हमारे ५०० घर हैं, आप कहाँ जा रहे हैं ?" उन्होंने बड़ी गहराई से कहा—'५०० घर के सिवाय जो लोग यहाँ बसते हैं हरिजन-आदिवासी से लेकर मेवाड़ के महाराणा तक वे सब हमारे हैं।' सर्प की तरह फन उठाये क्रोध का इतना शान्त उत्तर यदि कोई दे, तो आप उसे क्रोधजयी कहेंगे या नहीं ?

वैराग्य तो आपको विवाह से पहले ही हो गया था। वह उत्तरोत्तर समृद्ध होता गया।

भरी तरुणाई में रूपवति पत्नी की रेशम-सी कोमल राग-रज्जु को काटना क्या किसी साधारण पुरुष का काम है ? उनका सुहागरात न मनाना और पत्नी को जम्बूस्वामी की तरह संयम-मार्ग पर लाना एक इन्द्रियजयी की ही पहचान है। संयमावस्था में तो वे आत्मचिन्तन और स्वाध्याय में ही व्यस्त रहते थे, निन्दा, विकथा और अनर्गल-व्यर्थ की बातों की ओर उनका लक्ष्य ही नहीं था। कोई कभी-कभार आया भी तो उससे स्वल्प वार्तालाप और जल्दी ही पूर्ण विराम। ऐसा नहीं था उनके साथ कि घंटों व्यर्थ की बातें करते और अपना बहुमूल्य समय बर्बाद करते। साधु-मर्यादा के प्रति वे बड़े अप्रमत्त भाव से प्रतिपल चौकस रहते थे। कदम-कदम पर आत्मोदय ही उनका चरम लक्ष्य होता था।

उन्होंने रसना-सहित पाँचों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की थी। वे रात तीन बजे उठ जाते थे। सुखासन से बैठकर माला फिराते, चिन्तन करते, प्रतिक्रमण करते। लगभग तीन-चार घण्टे उनके इसी आराम में व्यतीत होते थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा—'गुरुदेव ! आप इतनी जल्दी उठ जाते हैं तो कभी नींद का झोंका तो आ ही जाता होगा ?' बोले—'कभी नहीं।' दिन में भी, यदि पिछले कुछ समय की बात छोड़ दें तो, वे कभी सोते नहीं थे। ७४ वर्ष की आयु में भी ३-४ घण्टे निरन्तर जप-ध्यान-चिन्तन-प्रतिक्रमण करना और नींद को एक पल भी अनिमिष न होने देना आश्चर्यजनक है। ऐसा सुयोग, वस्तुतः किसी आत्मयोगी को ही सुलभ होता है।

क्षमा की तो वे जीती-जागती मूर्ति ही थे। उन्होंने कभी किसी के प्रति वैर नहीं किया। कोई कितनी ही, कैसी ही निन्दा क्यों न करे, वे उस सम्बन्ध में जानते भी हों, फिर भी कोई द्वेष या दुर्भावना या प्रतिकार-भावना उनके प्रति नहीं रखते थे। जो भी मुनि उनसे मिलने आते थे उन सबसे वे हृदय खोलकर मिलते थे; जिनसे नहीं मिल पाते थे उनके प्रति कोई द्वेष जैसी बात नहीं थी। लोग कहते पता व्यक्ति वन्दना नहीं करता, तो गुरुदेव एक बड़ी सटीक और सुन्दर बात कहा करते थे—'उनके वन्दन करने से मुझे स्वर्ग मिलने वाला नहीं और वन्दन नहीं करने से वह छीना जाता नहीं। मेरा आत्मकल्याण मेरी अपनी करनी से ही होगा, किसी के वन्दन से नहीं।' स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य सूक्ति है यह।

दया के तो वे मानो अवतार ही थे। करुणासिन्धु गुरुदेव दया और उपकार के लिए इतने संकल्पित थे कि उन्हें अपनी बढ़ी हुई अवस्था का भी ध्यान नहीं रहता था। नीमच (राजस्थान) में जेठ की भर दुपहर में जब लू चल रही थी, आसपास के दूर-दूर से कुछ किसान-मजदूर और ग्रामवासी प्रवचन सुनने एकत्रित हुए। प्रवचन सुनना है [illegible] की यह इच्छा जानते ही आप तैयार हो गये। यदि मुझे उस समय कोई कहता तो मैं धूप, धूल और लू देखकर मना कर देता, किन्तु गुरुदेव करुणासिन्धु थे, वे कैसे रहते ? उन्होंने बड़े वात्सल्यपूर्वक व्याख्यान दिया। [illegible] नहीं करता। [illegible] की बातों से व्याख्यान छोटा नहीं किया। इन लोगों को भी उनके प्रवचन में कुछ-न-कुछ नया मिल ही जाता था। व्याख्यान के बाद एक साधु ने प्रश्न किया—'धूप और धूल की आँधियों के कारण आपको [illegible] और प्यास लग रहा है। अगर [illegible] को प्रवचन न करते तो क्या था ?' गुरुदेव बोले—'एक व्यक्ति हूँ मांस, शराब, तम्बाकू, जुआ आदि छोड़ दे तो एक व्याख्यान से कितना लाभ [illegible] है। [illegible] मैं [illegible] उपकार ?'

गुरुदेव निर्भीकवक्ता थे। [illegible] थे। [illegible]

साहूकार जितने अनुरक्त थे, उतने ही अपढ़ किसान, कलाल, खटीक, मोची, हरिजन आदि भी थे। सभी कहते—गुरुदेव की हम पर बड़ी कृपा है, बड़ी मेहरबानी है। हर आदमी यह समझता था कि गुरुदेव की उस पर बड़ी कृपा है। कई लोग कहा करते—'राणाजी के गुरु होकर भी उन्हें अभिमान नहीं'। उनके सम्पर्क में आने वाले ऐसे अनेक व्यक्ति थे, जो अनुभव करते थे कि 'मुझ पर गुरुदेव का अत्यधिक स्नेह है।'

पंजाब-केसरी पंडितरत्न श्री प्रेमचन्दजी महाराज ने अपना एक अनुभव सोजत सम्मेलन के व्याख्यान में सुनाया था। जब वे रतलाम का भव्य चातुर्मास सम्पन्न कर उदयपुर होते हुए राणावास के घाट से सीधे सादड़ी मारवाड़ होकर सोजत के लिए पधार रहे थे, तब उन्हें जिस रास्ते से जाना था वह कच्चा था, गाड़ी-गडार थी, सड़क नहीं थी, माइलस्टोन भी नहीं थे। कहे दो कोस तो निकले तीन कोस, कहे चार कोस तो निकले छह कोस, ऐसा अनिश्चित था सब कुछ। आपने कहा—एक गाँव से मैंने दोपहर विहार किया। अनुमान था कि सूर्यास्त से पहले अगले गाँव में पहुँच जाएँगे, किन्तु गाँव दूर निकला। सूर्यास्त निकट आ रहा था। पाँव जल्दी उठ रहे थे मंजिल तक पहुँचने के लिए उत्कण्ठित। ऐसे में एक छोटी-सी पहाड़ी पर खड़ा आदिवासी भील मेरी ओर दौड़ा। मैंने समझा यह भील मुझे आज अवश्य लूटेगा। सुन भी रखा था कि भील जंगल में लूट लेते हैं। उसे आज सच होते देखना था; फिर भी हम लोग आगे बढ़ते रहे। भील सामने आकर बोला—'महाराज वन्दना'! पंजाब-केसरीजी बोले—'मैं आश्चर्यचकित रह गया यह देख कि झोंपड़ी में रहने वाला एक भील, जिसे जैन साधु की कोई पहचान नहीं हो सकती, इस तरह बड़े विनय-भाव से वन्दना कर रहा है।' जब उससे पूछा तो बोला, 'महाराज मैं और किसी को नहीं जानता, चौथमलजी महाराज को जानता हूँ।' उस भील की उस वाणी को सुनकर उस महापुरुष के प्रति मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक गया। मेरी श्रद्धा और प्रगाढ़ हो गयी। सोचने लगा—'अहा, झोंपड़ी से लेकर राजमहल तक उनकी वाणी गूँजती है, यह कभी सुना था; आज प्रत्यक्ष हो गया।' भील बोला—'महाराज! दिन थोड़ा है। गाँव अभी काफी दूर है। आज आप मेरी झोंपड़ी पावन करें। 'महाराज, मेरी झोंपड़ी गन्दी नहीं है। मैंने मांस-मदिरा-शिकार सब छोड़ दिया है। अब वह पवित्र है। आपके चरणों से वह और पवित्र हो जाएगी।' मैंने कहा—'भाई, तेरी झोंपड़ी में इतना स्थान कहाँ, और फिर जैन साधु गृहस्थ की गृहस्थी के साथ कैसे रह सकते हैं।' भील ने कहा—महाराज, हम सब बाहर सो जाएँगे। आप झोंपड़ी में रहना।' उसकी इस अनन्य भक्ति से हृदय गद्गद हो गया; मैंने कहा—'अभी मंजिल पर पहुँचते हैं। तूने भक्तिभाव से रहने की प्रार्थना की, तुझे धन्यवाद। उन जैन दिवाकरजी महाराज को भी धन्यवाद है, जिन्होंने तुम लोगों को यह सन्मार्ग बताया है।'

एक उदाहरण पं० हरिश्चन्द्रजी महाराज पंजाबी ने भी सुनाया था। उन्होंने कहा—जब, जोधपुर में पंडितरत्न श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज का चातुर्मास था, व्याख्यानस्थल अलग था और ठहरने का स्थान अलग। व्याख्यान-स्थल पर कुछ मुनि पं० शुक्लचन्दजी महाराज के साथ जाते थे और अन्य मुनिगण ठहरने के स्थान पर भी रहते थे। व्याख्यान-समाप्ति के बाद कुछ भाई-बहिन मुनियों के दर्शन के लिए ठहरने के स्थान पर जाया करते थे। व्याख्यान के बाद प्रतिदिन एक बहिन सफेद साड़ी पहनकर आती थी और बड़े भक्तिभाव से तीन बार झुककर सभी मुनियों को नमन करती थी। एक दिन पं० हरिश्चन्द्र मुनि ने पूछा—'तुम व्याख्यान सुनने, दर्शन करने आती हो, श्रावकजी नहीं आते।' इस पर पास खड़े श्री शिवनाथमलजी नाहटा ने कहा—'महाराज,

बने रहे। एक दिन उन्हें चिन्तित देख मैंने विनयपूर्वक पूछा—'गुरुदेव, आपको चिन्ता ?' उन्होंने कहा—'मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं है। उस ओर से मैं निश्चित हूँ। चिन्ता समाज और संघ की ही मुझे है।' मैंने पुनः निवेदन किया—'आपने तो बहुतों का उपकार किया है। कई पथभ्रष्टों को उज्ज्वल राह दी है, कइयों को सुधारा है; समाज और संघ के उत्थान के लिए आपने अथक प्रयत्न किया है। आपको तो प्रसन्न और निश्चिन्त रहना चाहिये। आपकी यह प्रसन्नता अन्यों को उद्बुद्ध करेगी, उनका छल-कपट धोयेगी, उन्हें नयी ऊँचाइयाँ देगी।"

मैंने प्रतिपल अनुभव किया कि उनका चारित्र उनकी वाणी थी और वाणी उनका चारित्र था। वे वही बोलते थे जो उनसे होता था, और वही करते थे जिसे वे कह सकते थे। कथन और करनी का ऐसा विलक्षण समायोजन अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी में एक विशिष्ट मन्त्र-मुग्धता थी। कैसा ही हताश-निराश व्यक्ति उनके निकट पहुँचता, प्रसन्न चित्त लौटता। 'दया पालो' सुनते ही कैसा भी उदास हृदय खिल उठता। उसे लगता जैसे कोई सूरज उग रहा है और उसका हृदय-कमल खिल उठा है, सारी अँधियारी मिट रही है, और उजयाली उसका द्वार खटखटा रही है। कई बार मैं यह सोचता कि फलाँ आदमी आया, गुरुदेव ने कोई बात न की, न पूछी और कितना प्रसन्न है ! ! ! जैसे उसकी प्रसन्नता के सारे बन्द द्वार अचानक ही खुल गये हैं। ऐसी विलक्षण शक्ति और व्यक्तित्व के धनी थे जैन दिवाकरजी महाराज। उस त्यागमूर्ति को मेरे शत-शत, सहस्र-सहस्र प्रणाम !
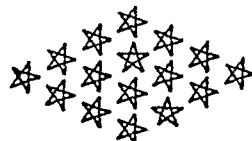
कटुक वाक्य-निषेध

(तर्ज—पनजी मूँडे बोल)

छोड़ अज्ञानीरे-२ यह कटुक वचन समझावे ज्ञानी रे ॥टेर॥
कटुक वचन द्रौपदी बोली, कौरव ने जब तानी रे।
भरी सभा में खेंचे चीर, या प्रकट कहानी रे ॥१॥
कटु वचन नारद ने बोली, देखो भामा राणी रे।
हरि को रुखमण से ब्याव हुओ, वा ऊपर आणी रे ॥२॥
ऐवंता ऋषि ने कटु कह्यो या, कंश तणी पटराणी रे।
ज्ञान देख मुनि कथन कर्‌यो, पिछे पछताणी रे ॥३॥
बहू सासु से कटु कह्यो, हुई चार जीव की हानी रे।
कटु वचन से टूटे प्रेम, लीजो पहचानी रे ॥४॥
थोड़ो जीनो क्यो कांटा बीणो, मति वैर बसाओ प्राणी रे।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, बोलो निर्वद्य वाणी रे ॥५॥
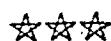
—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

☆☆☆

जैन दिवाकरजी महाराज की कुछ यादें

❀ (स्व०) श्री रिषभदास रांका

जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय में स्व० श्रीचौथमलजी महाराज का नाम बहुत आदर के साथ स्मरण किया जाता है, स्थानकवासी समाज के वर्तमान इतिहास में उनका कार्य स्वर्णाक्षरों में लिखने जैसा है, वे स्थानकवासी समाज की श्रमण-परम्परा में 'जैन दिवाकर' के रूप में सुप्रसिद्ध रहे हैं।

दीक्षा के बाद जैन दिवाकरजी महाराज ने न केवल जैनधर्म, बल्कि दूसरे धर्मों का भी गहरा अध्ययन किया। यही कारण है कि उनके व्याख्यानों का प्रभाव जैनेतर जनता पर भी काफी पड़ता था। भाषा सरल और सुबोध होती थी इस कारण अपढ़ तथा ग्रामीण भाई भी आपके व्याख्यानों को आसानी से समझ लेते थे।

दिवाकरजी महाराज सही मानों में धर्म को समझते थे और यही कारण है कि वे धर्म-स्थानकों में जातीयता और वर्णवाद को पनपने नहीं देते थे, उनके प्रवचनों में मनुष्य मात्र को बेरोक-टोक प्रवेश मिलता था। आज हमारे कलाल, खटीक, मेघवाल, मोची, हरिजन, आदि ऐसे मिलते हैं जो दिवाकरजी महाराज का स्मरण बड़ी श्रद्धा से करते हैं। दिवाकरजी महाराज ने उन लोगों में से मांस-मदिरा के व्यसन को दूर किया, उनके चरित्र को सुधारा। इसका परिणाम यह हुआ कि वे लोग आर्थिक दृष्टि से सुधर गये, मांस-मदिरा के सेवन से इन लोगों का जीवन जो पहले नर्क तुल्य रहता था वह अब इतना सुन्दर और व्यवस्थित हो गया कि देखते ही बनता है। यह सब दिवाकरजी महाराज की वाणी और चरित्र का ही प्रभाव है। हमारी दृष्टि में तो सैकड़ों शिष्य बढ़ाने और लम्बे-लम्बे लेक्चर देने की अपेक्षा किसी के जीवन का निर्माण करना अधिक महत्त्व रखता है। भारतीय धार्मिक परम्पराओं में निचले वर्ग की इतनी उपेक्षा हुई है कि उसके दुष्परिणामों से जैन वर्ग भी नहीं बच सका है। दिवाकरजी महाराज ने इस ओर ध्यान दिया और अछूतोद्धार तथा पतितोद्धार का बीड़ा उठाया, यह उनकी समाज-साधना थी।

ऐसे समाज-साधक में साम्प्रदायिकता और रूढ़ि-पूजकता नहीं रह सकती, वह तो मानवता का उपासक बन जाता है। सामाजिक कुरीतियों के प्रति भी उसमें दर्द होता है; क्योंकि वे कुरीतियाँ समाज को हानि करती हैं। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनुविवाह, मोसर, आतिशबाजी, वेश्यानृत्य, फिजूलखर्ची आदि पर वे विशेष जोर देते थे।

समाज की उन्नति में साम्प्रदायिकता की भावना भी एक बाधक तत्त्व है। इसीलिए कोटा में दिगम्बर आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज और मूर्तिपूजक आचार्य श्री आनन्दसागरजी महाराज के साथ एक स्थान पर बैठकर साम्प्रदायिक विरोध [illegible] की वृद्धि करने का कार्य प्रारम्भ किया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने समूचे जैन समाज को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया, [illegible]

[illegible] समाज सुधार के आर्थिक दृष्टि से भी उनका विचार महत्त्वपूर्ण था। [illegible]

बूढ़े तथा असमर्थ लोगों के प्रति वे काफी संवेदनशील थे। जिनका वृद्धावस्था कोई सहारा नहीं होता, उनका जीवन भी शांति और धार्मिक वातावरण में बीते, इसलिए उन्होंने एक चतुर्थाश्रम की स्थापना की जो आज चित्तौड़ में चल रहा है।

महावीर-वाणी का अधिक से अधिक प्रचार और प्रसार हो यह उनकी हार्दिक इच्छा थी। महावीर-वाणी में वह शक्ति है जो संसार की अशांति को निर्मूल कर देती है। इसलिए उन्होंने 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' जैसे मूल्यवान् ग्रन्थ का सम्पादन किया।

वे हृदय से साफ, स्पष्ट और शुद्ध थे, अपनी कमजोरियों को व्यक्त करने में वे कभी नहीं हिचकिचाते थे। एक बार स्व० सेठ राजमलजी ललवाणी ने जब उनसे पूछा कि 'महाराज! आप लोग भगवान् जिनेन्द्र की वाणी का ही रसपान कराते हैं, केवली की वाणी ही सुनाते हैं, फिर भी हम लोगों पर आपकी बात का असर क्यों नहीं होता?' तब दिवाकरजी महाराज ने एक प्राचीन कथा के उदाहरण द्वारा समझाया कि 'भाई, तुम भी बन्धन में और हम भी बन्धन में, अब कौन किसको बन्धन से मुक्त करे—हम भी राग-द्वेष के विकारों से कहाँ मुक्त हैं?' हम दावे के साथ कह सकते हैं कि ऐसी बात निरहंकारी और शुद्ध साधक ही कह सकता है, और जो शुद्ध होता है, उसकी वाणी का, चरित्र का और शरीर का सुपरिणाम सामने वाले पर हुए बिना नहीं रह सकता।

आज यद्यपि दिवाकरजी महाराज हमारे बीच नहीं हैं, पर वे जो कार्यरूप स्मृतियाँ छोड़ गए हैं उनको आगे बढ़ाना ही उनका हमारे बीच विद्यमान रहने का प्रमाण होगा।

परिचय :

[समस्त जैन समाज के प्रिय नेता व कर्मठ कार्यकर्ता, तटस्थ विचारक, लेखक :
'भारत जैन महामण्डल के प्राण प्रतिष्ठापक' गत दिसम्बर में स्वर्गवासी]

☆

मनः शुद्धि प्रयत्न

(तर्ज—या हसीना बस मदीना करबला में तू न जा)

इस तन को धोए क्या हुवे, इस दिल को धोना चाहिए।
बाकी कुछ भी ना रहे, बिलकुल ही धोना चाहिए ॥टेर॥
शिल्ला बनावो शील की, और ज्ञान का साबुन सही।
प्रेम पानी बीच में, सब दाग खोना चाहिये ॥१॥
व्यभिचार हिंसा झूठ चोरी, काम-क्रोध-मद-लोभ का।
मैल बिल्कुल ना रहे, तुम्हें पाक होना चाहिये ॥२॥
दिल खेत को करके सफा, और पाप कंकर को हटा।
प्रभू नाम का इस खेत में, फिर बीज बोना चाहिये ॥३॥
मुँह को धोती है बिल्ली, स्नान की कव्वा करे।
ध्यान बक कैसा धरे, ऐसा न होना चाहिए ॥४॥
गुरु के प्रसाद से, कहे चौथमल सुन लीजिये।
झूठे गौहर छोड़ कर, सच्चे पिरोना चाहिये ॥५॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

बूढ़े तथा असमर्थ लोगों के प्रति वे काफी संवेदनशील थे। जिनका वृद्धावस्था कोई सहारा नहीं होता, उनका जीवन भी शांति और धार्मिक वातावरण में बीते, इसलिए उन्होंने एक चतुर्थाश्रम की स्थापना की जो आज चित्तौड़ में चल रहा है।

महावीर-वाणी का अधिक से अधिक प्रचार और प्रसार हो यह उनकी हार्दिक इच्छा थी। महावीर-वाणी में वह शक्ति है जो संसार की अशांति को निर्मूल कर देती है। इसलिए उन्होंने 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' जैसे मूल्यवान् ग्रन्थ का सम्पादन किया।

वे हृदय से साफ, स्पष्ट और शुद्ध थे, अपनी कमजोरियों को व्यक्त करने में वे कभी नहीं हिचकिचाते थे। एक बार स्व० सेठ राजमलजी ललवाणी ने जब उनसे पूछा कि 'महाराज! आप लोग भगवान् जिनेन्द्र की वाणी का ही रसपान कराते हैं, केवली की वाणी ही सुनाते हैं, फिर भी हम लोगों पर आपकी बात का असर क्यों नहीं होता ?' तब दिवाकरजी महाराज ने एक प्राचीन कथा के उदाहरण द्वारा समझाया कि 'भाई, तुम भी बन्धन में और हम भी बन्धन में, अब कौन किसको बन्धन से मुक्त करे—हम भी राग-द्वेष के विकारों से कहाँ मुक्त हैं ?' हम दावे के साथ कह सकते हैं कि ऐसी बात निरहंकारी और शुद्ध साधक ही कह सकता है, और जो शुद्ध होता है, उसकी वाणी का, चरित्र का और शरीर का सुपरिणाम सामने वाले पर हुए बिना नहीं रह सकता।

आज यद्यपि दिवाकरजी महाराज हमारे बीच नहीं हैं, पर वे जो कार्यरूप स्मृतियाँ छोड़ गए हैं उनको आगे बढ़ाना ही उनका हमारे बीच विद्यमान रहने का प्रमाण होगा।

परिचय :

[समस्त जैन समाज के प्रिय नेता व कर्मठ कार्यकर्ता, तटस्थ विचारक, लेखक : 'भारत जैन महामण्डल के प्राण प्रतिष्ठापक' गत दिसम्बर में स्वर्गवासी]

मनः शुद्धि प्रयत्न

(तर्ज—या हसीना बस मदीना करबला में तू न जा)

इस तन को धोए क्या हुवे, इस दिल को धोना चाहिए।
बाकी कुछ भी ना रहे, बिलकुल ही धोना चाहिए ॥टेर॥
शिल्ला बनावो शील की, और ज्ञान का साबुन सही।
प्रेम पानी बीच में, सब दाग खोना चाहिये ॥१॥
व्यभिचार हिंसा झूठ चोरी, काम-क्रोध-मद-लोभ का।
मैल बिल्कुल ना रहे, तुम्हें पाक होना चाहिये ॥२॥
दिल खेत को करके सफा, और पाप कंकर को हटा।
प्रभू नाम का इस खेत में, फिर बीज बोना चाहिये ॥३॥
मुँह को धोती है बिल्ली, स्नान को कव्वा करे।
ध्यान बक कैसा धरे, ऐसा न होना चाहिए ॥४॥
गुरु के प्रसाद से, कहे चौथमल सुन लीजिये।
झूठे गौहर छोड़ कर, सच्चे पिरोना चाहिये ॥५॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

श्री जैन दिवाकर स्मृति-निबन्ध प्रतियोगिता में तृतीय पुरस्कार योग्य घोषित निबन्ध

समाज सुधार के अग्रदूत : जैन दिवाकरजी महाराज

□ मुनिश्री नेमिचन्द्रजी

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज का आलम्बन और सहयोग लिए बिना सुखपूर्वक जी नहीं सकता, न ही आध्यात्मिक, नैतिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभ्युदय कर सकता है। साधारण गृहस्थ की बात जाने दीजिए, महान् से महान् साधु-सन्त, तपस्वी, त्यागी भिक्षु एवं संन्यासी भी समाज के सहयोग के बिना अपनी जीवनयात्रा अथवा संयमयात्रा सुखपूर्वक नहीं कर सकते। उन्हें भी पद-पद पर समाज का सहारा लेना पड़ता है। चाहे वे अकेले अलग-अलग घोर जंगल, जनशून्य बीहड़, या गुफा में ही एकान्त में जाकर साधना करें उन्हें भी समाज के कुछ न कुछ सहयोग की आवश्यकता रहती है। इसीलिए भगवान् महावीर ने स्थानांगसूत्र (स्थान ५, ३-३) में धर्माचरण करने वाले साधक के लिए ५ सहायकों का आश्रय लेना बताया है—(१) षट्कायिक जीव, (२) गण, (३) शासक, (४) गृहपति और (५) शरीर।[1]

इस पर से आप अनुमान लगा सकते हैं कि उच्च साधकों को भी अपनी धर्ममय जीवनयात्रा के लिए मानव-समाज ही नहीं, प्राणिमात्र के तथा विशिष्ट लोगों के आश्रय की कितनी आवश्यकता रहती है!

समाज में अशुद्धियों का प्रवेश

मनुष्यों का समूह ही समाज कहलाता है। समाज जब बनता है, तब उसको संगठित और सुव्यवस्थित करने वाले का उद्देश्य पवित्र होता है। मनुष्य पशुता और दानवता से ऊपर उठकर मानवता को धारण करे, शुद्ध धर्मप्रधान जीवन बिताए, अपने जीवन को शुद्ध और पवित्र रखकर उच्च भूमिका पर पहुँचे, यही समाज निर्माता महापुरुषों का उद्देश्य होता है, लेकिन धीरे-धीरे बाद में समाज में कुछ विकृतियाँ घुस जाती हैं। वातावरण, परिस्थिति, पारस्परिक प्रभाव, कुसंग एवं कुविचार-संसर्ग के कारण समाज में कई दुर्व्यसन एवं दूषण प्रविष्ट हो जाते हैं। कई बार गृहस्थ-समाज के नेताओं की असावधानी या उपेक्षा के कारण अथवा अदूरदर्शिता के कारण कई कुरूढ़ियाँ समाज में प्रचलित हो जाती हैं, कई बार समाज में खोटी प्रतिक्रियावश कई व्यक्ति चोर, डाकू, वेश्या, जुआरी या हत्यारे आदि भयंकर राक्षस-से बन जाते हैं। कई बार समाज की लापरवाही के कारण कई व्यक्ति अनैतिक कार्यों को करने लग जाते हैं। समाज में अहंकार के पुजारियों की रस्साकस्सी से कई बार फूट, मनमुटाव और वैमनस्य की आग भड़क उठती है, जो सारे समाज की शान्ति को भस्म कर देती है। ये और इस प्रकार की बुराइयाँ ही समाज की गन्दगी हैं। ये धीरे-धीरे समाज में प्रविष्ट होकर समाज के स्वच्छ वातावरण को गन्दा बना देती हैं। समाज में इस प्रकार की गन्दगी बढ़ जाने के कारण समाज अशुद्ध और दूषित होता जाता है। ऐसे समाज में सज्जन व्यक्ति का साँस लेना अत्यन्त कठिन हो जाता है। सत्ता, पद और धन का अहंकार समाज का त्रिदोष है। इन तीनों में से किसी भी एक के अहंकार के कारण समाज में बुराइयाँ पनपती हैं और

---

१ "धम्मस्स णं चरमाणस्स पंच णिस्साट्ठाणा पण्णत्ता, तंजहा-छक्काया, गणे, राया, गाहावती, सरीरं।"
—स्थानांगसूत्र स्थान ५, ३-३ सूत्र १९२

वह समाज भ्रष्ट, दूषित और गन्दा हो जाता है। यह सड़ान (अशुद्धि) कभी-कभी सारे समाज को ले डूबती है। ऐसे गन्दे समाज में सुख-शान्ति के लिए खतरा पैदा हो जाता है।

सज्जन और सन्त क्या करें ?

ऐसी स्थिति में सज्जन और साधु-सन्त क्या करें ? क्या वे उस दूषित होते हुए समाज को उपेक्षा भाव से टुकुर-टुकुर देखते रहें या वहाँ से भागकर एकान्त जनशून्य स्थान में चले जाएँ अथवा जहाँ हैं, वहीं रहकर समाज को बदलने, शुद्ध करने, उसमें सुधार करने का प्रयत्न करें ? या समाज को अपने दुष्कर्मों के उदय के भरोसे छोड़कर किनाराकसी करें ?

वास्तव में देखा जाए तो सज्जनों और साधु-सन्तों का कर्तव्य है, उनका विशेष दायित्व भी है कि वे समाज को विकृत होने या अशुद्ध होने से बचाएँ। अगर वे वहाँ से भागकर या समाज को अपने कर्मोदय के भरोसे छोड़कर समाज के प्रति उपेक्षा करते हैं तो उसका परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे वह समाज इतना गन्दा और बुराइयों से परिपूर्ण हो जाएगा। उस समाज में भी ऐसे भयंकर घातक लोग पैदा हो जाएँगे कि साधु-सन्तों को जीना भी दूभर हो जाएगा। उनको धर्मपालन करने में भी पद-पद पर विघ्न-बाधाएँ आएँगी। साधु-सन्त भी कोई आसमान से नहीं उतरते, वे भी गृहस्थसमाज में से ही आते हैं। अगर समाज बिगड़ा हुआ एवं अपराधों का पिटारा होगा तो साधु-सन्त भी वैसी ही मनोवृत्ति के प्रायः होंगे। समाज में अगर उद्दण्डता, उच्छृंखलता, असात्त्विकता आदि दोष होंगे तो वे ही कुसंस्कार एवं दुर्गुण साधुसमाज में आए बिना न रहेंगे।

चारों ओर आग लगी हो, उस समय अपने कमरे में बैठा-बैठा मनुष्य यह विचार करे कि मैं तो सहीसलामत हूँ, यह आग अभी मुझसे बहुत दूर है। बताइए, ऐसा स्वार्थी और लापरवाह मनुष्य कितनी देर तक सुरक्षित रह सकता है ? वह कुछ समय तक भले ही अपने-आपको सुरक्षित समझ ले, किन्तु अधिक समय तक वह वहाँ सुरक्षित नहीं रह सकेगा। आग की लपलपाती हुई ज्वालाएँ उसके निकट पहुँच जाएँगी और उसे अपने स्थान से झटपट उठकर उस आग को बुझाने एवं आगे बढ़ने से रोकने के लिए प्रयत्न करना होगा। वह एक मिनट भी यह सोचने के लिए बैठा नहीं रह सकता कि यह आग कहाँ से आई है ? कैसे पैदा हुई ? इस आग को लगाने में किसका हाथ है ? उसने यह आग क्यों लगाई ? आदि। उस समय समझदार आदमी यह सब सोचने के लिए नहीं बैठा रहता। वह दूर से आग को आती देखकर उसे आगे बढ़ने से रोकने का प्रयत्न करेगा। वह सोचता है कि अगर मैंने इस आग को बुझाने में जरा-सी विलम्ब किया या तनिक भी लापरवाही या उपेक्षा की तो थोड़ी ही देर में यह आग मेरे मकान, परिवार, शरीर और सामान को भस्म कर देगी, मेरी शान्ति को जबर्दस्त खतरा पहुँचाएगी, मेरी शारीरिक एवं मानसिक सुख-शान्ति को भी भस्म कर देगी। फिर तो धर्मध्यान मुझसे सैकड़ों कोस दूर भाग जाएगा और मैं आर्त्तध्यान एवं रौद्रध्यान के झूले में झूलता रहूँगा।

यही बात समाज में चारों ओर फूट, वैमनस्य, चोरी, दुर्व्यसन, शिकार, जुआ, कुरूढ़ियों, कुरीतियों और अतिस्वार्थ आदि बुराइयों या विकृतियों की आग लग जाने पर एकान्त में अलग-थलग निश्चिन्त होकर बैठे रहने, गैर-जिम्मेवार या लापरवाह बनकर चुपचाप देखते रहने या उस स्थान से दूर भागने का प्रयत्न करने वाले साधु-सन्तों के विषय में कही जा सकती है। समाज में चारों ओर बुराइयों की आग लगी हो, उस समय साधु-सन्त कर्तव्यविहीन या उत्तरदायित्व से रहित होकर क्या महीनों और वर्षों तक यही सोचता रहेगा कि यह बुराई की आग कहाँ से आई ? किस

दुष्कर्म का फल है ? यह किसने पैदा की ? यह क्यों लगाई गई ? आदि। अथवा बुराइयों की उस आग को तत्काल बुझाने का भरसक प्रयत्न करने के बदले यही बौद्धिक या वाचिक व्यायाम करता रहे कि मैं क्या कर सकता हूँ ? एक जीव या एक द्रव्य दूसरे जीव या दूसरे द्रव्य का क्या कर सकता है ? सभी अपने-अपने कर्मों के फलस्वरूप दुःख पाते हैं, बुराइयों में फँसते हैं ? कौन किसको सुधार सकता है ? अथवा अमुक व्यक्ति, समाज, वर्ग, धर्मसम्प्रदाय, जाति, ईश्वर, अवतार या धर्म-प्रवर्तक आदि निमित्तों को कोसता रहेगा, उन्हें इन बुराइयों के फैलाने में जिम्मेदार ठहरा कर, या समाज में फैली हुई बुराइयों या दोषों का टोकरा उन पर डालकर स्वयं को या अपनी उपेक्षा को जरा भी उत्तरदायी नहीं मानेगा ?

बुराइयों की आग को आगे बढ़ने से रोकने या बुझाने का प्रयत्न न करने से साधुवर्ग के जीवन में क्या संकट आ सकता है ? इसका अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है ? समाज की बुराई की वह उपेक्षित आग बहुत शीघ्र ही साधुवर्ग के दैनिक जीवन में प्रविष्ट हो सकती है, गृहस्थवर्ग की फूट या धर्मसंघ की वह फूट, वह वैमनस्य अथवा ईर्ष्या-द्वेष की आग साधुवर्ग पर अतिशीघ्र असर डाले बिना नहीं रहती। जहाँ भी संघ में फूट की आग लगी है, वहाँ उस संघ के समर्थक तथा विरोधी दोनों पक्ष के साधुसन्तों में आपसी कषाय, राग-द्वेष, ईर्ष्या, मिथ्या-आरोप-प्रत्यारोप, एक-दूसरे को बदनाम करने की वृत्ति ने जोर पकड़ा है। वीतरागता के उपासक साधुवर्ग के चरित्र को इस आग ने अपनी तेजी से आती हुई लपटों ने झुलसा कर क्षत-विक्षत कर दिया है। आए दिन इस प्रकार के काण्ड देखने-सुनने में आते हैं। गृहस्थवर्ग में प्रचलित जातीय या सामाजिक कुरूढ़ि का असर साधुवर्ग पर भी पड़ा है और साधुवर्ग उसी कुरूढ़ि की आग में स्वयं झुलसता और सिद्धान्त को झुलसाता नजर आया है।

अतः सिद्धान्तवादी साधु-समाज में बुराइयों की आग फैलते देखकर कभी चुपचाप गैर-जिम्मेवार एवं अकर्मण्य बनकर सिर्फ उपाश्रय या धर्मस्थान की चहारदीवारी में बन्द होकर बैठा नहीं रह सकता; क्योंकि वह जानता है कि जिस समाज में वह रहता है, उसमें किसी भी प्रकार की विकृति प्रविष्ट होने पर राष्ट्र और समाज की तो बहुत बड़ी हानि है ही, उसके मन पर भी राग-द्वेष की लपटें बहुत जल्दी असर कर सकती हैं, उसे भी क्रोध और अभिमान का सर्प डस सकता है, इससे चारित्र की तो क्षति है ही, किन्तु धीरे-धीरे उसकी सुखशान्ति को भी क्षति पहुँच सकती है। इसलिए समाज-कल्याण एवं परोपकार की दृष्टि से, अथवा समाज की शुद्धि करके उसमें धर्म का प्रवेश कराने की दृष्टि से भी तथा अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जीवनयात्रा निर्विघ्न एवं निराबाध परिपूर्ण करने की दृष्टि से भी समाज में प्रवर्द्धमान इन बुराइयों की आग को तत्काल रोकने या बुझाने का प्रयत्न करना ही हितावह है। समाज-सुधार का प्रत्येक कदम साधुवर्ग के लिए स्व-पर-कल्याणकारक है।

जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता महामहिम श्री चौथमलजी महाराज इस तथ्य-सत्य से भलीभाँति अवगत थे। अवगत ही नहीं, वे समाज में प्रचलित बुराइयों को देखकर अपने प्रवचनों में उन बुराइयों पर कठोर प्रहार करते थे और समाज को उन बुराइयों से बचाने का भरसक प्रयत्न करते थे। वे अपनी आँखों के सामने प्रचलित बुराई से आँखें मूँद कर अन्यत्र पलायन नहीं करते थे। इसे वे साधुवर्ग की कायरता और दकियानुसीपन समझते थे। वे समझते थे कि दूषित वातावरण में साधुवर्ग की साधना सुचारु रूप से चल नहीं सकती। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' इस आदर्श के अनुसार समाज के प्रति करुणार्द्र होकर सामाजिक शुद्धि के लिए वे प्रयत्नशील रहते थे। वे पैदल
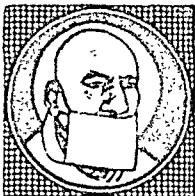
विचरण का एक उद्देश्य यह भी मानते थे कि साधु जन-जन के सम्पर्क में आकर, उसकी नब्ज टटोल कर हृदयस्पर्शी उपदेश द्वारा जनता का जीवन परिवर्तन करे। वे जन-जीवन में व्याप्त कुप्रथाओं, हानिकारक कुरूढ़ियों एवं फूट तथा वैमनस्य को मिटाने में अपनी पूरी शक्ति लगा देते थे।

यहाँ हम उनके द्वारा समाजसुधार के रूप में कुछ युगान्तरकारी प्रयत्नों का दिग्दर्शन करते हैं, जिससे पाठक भलीभाँति समझ सकें कि जैन दिवाकरजी महाराज के पावन हृदय में समाज-सुधार की कितनी प्रबल प्रेरणा जागृत थी !

वैमनस्य और फूट को मिटा कर रहे

समाज में फूट सबसे अधिक घातक है, वह समाज के जीवन को अशान्त बना देती है और विकास के प्रयत्नों को ठप्प कर देती है। जिस समाज या जाति में वैमनस्य की विषाक्त लहर व्याप्त हो जाती है, उसकी शिक्षा-दीक्षा, सुसंस्कार एवं विकास की आशाएँ धूमिल पड़ जाती हैं, प्रायः ऐसा समाज हिंसा—मानसिक हिंसा, असत्य एवं दुर्व्यसनों की ओर झुककर अपने लिए स्वयं पतन का गहरा गर्त खोदता रहता है।

विक्रम संवत् १९६९ की बात है। जैन दिवाकरजी महाराज अपनी शिष्यमण्डली सहित विचरण करते हुए हमीरगढ़ पधारे। वहाँ कतिपय वर्षों से हिन्दू छीपों में वैमनस्य चल रहा था। परिस्थिति इतनी नाजुक हो गई थी कि उनमें परस्पर प्रेमभाव होने की आशा ही क्षीण हो गई थी। अनेक सन्तों ने इस मनमुटाव को मिटाने का भरसक प्रयत्न कर लिया, मगर दोनों पक्षों के दिलों की खाई और अधिक चौड़ी होती गई। आपश्री का हमीरगढ़ में पदार्पण सुनकर छीपों ने अपनी मनोव्यथा-कथा आपके समक्ष प्रस्तुत की। आपने एकता पर विविध युक्तियों और दृष्टान्तों से परिपूर्ण जोशीला भाषण दिया। इसका प्रबल प्रभाव दोनों ही पक्षों पर पड़ा। दोनों ही पक्ष के अग्रगण्य लोग सुलह के लिए तैयार हो गए। वैमनस्य का मुँह काला हो गया। दोनों पक्षों में परस्पर स्नेह-सरिता बहने लगी।

इसी प्रकार माहेश्वरी और महाजनों में भी पारस्परिक वैमनस्य कई वर्षों से चला आ रहा था। आपने दोनों दलों को ऐसे ढंग से समझाया कि दोनों में पुनः आत्मीयता बढ़ी और दोनों स्नेहसूत्र में आबद्ध हो गए।

चित्तौड़ में ब्राह्मण जाति में आपकी ईर्ष्या के कारण तनातनी बढ़ गई थी। उसके कारण जाति में दो पार्टियाँ हो गईं। एक पार्टी वाले दूसरी पार्टी वालों से बात करने से भी नफरत करते थे। जैन दिवाकरजी महाराज के समक्ष चित्तौड़ चातुर्मास में यह विकट समस्या प्रस्तुत की गई। आपश्री के अविश्रान्त प्रयत्नों से दोनों पार्टियाँ एक हो गईं। जाति में पड़ी हुई छिन्न-भिन्नता मिट गई। चित्तौड़ के हाकिम साहब ने इस ऐक्य की खुशी में सबको प्रीतिभोज भी दिया।

गंगरार में अनेक जातियों में परस्पर मनमुटाव चल रहा था। आपके पदार्पण का समाचार सुनकर सम्बन्धित लोगों ने अपने वैमनस्य की आपबीती सुनाई। आपने करुणार्द्र होकर प्रबल प्रेरणा दी, जिससे उनमें पड़ी हुई फूट विदा हो गई। सबके हृदय में स्नेह-सद्भाव का झरना बहने लगा।

इन्द्रगढ़ का मामला तो बहुत ही पेचीदा था। वहाँ ४० वर्षों से ब्राह्मण जाति में फूट अपना आसन जमाए हुए थी। इस वैमनस्य को मिटाने के लिए अनेक प्रयत्न हुए, पर सब व्यर्थ ! इन्द्रगढ़-नरेश तक ने इस वैमनस्यपूर्ण कलह को मिटाने के लिए दोनों पक्षों के अग्रगण्यों से जोर देकर कहा, तब भी वे तैयार न हुए। आखिर वि० सं० १९९२ का चातुर्मास कोटा में सम्पन्न

करके जैन दिवाकरजी महाराज इन्द्रगढ़ पधारे ! जनता आपके प्रवचन सुनने के लिए बरसाती नदी की तरह उमड़ती थी। ब्राह्मण जाति के दोनों पक्षों के सदस्य आपके प्रवचन सुनने आते थे। एक दिन एकता और स्नेह पर जोशीला प्रवचन देते हुए आपने प्रवचन के दौरान ही सभा में उपस्थित ब्राह्मणों से पूछा—"आप लोग प्रेम चाहते हैं या संघर्ष ?" आपके प्रवचन से प्रभावित मुखिया लोग सहसा बोल उठे—"इस संघर्ष ने तो हमारा सत्यानाश कर दिया है, हम तो प्रेम और ऐक्य चाहते हैं।"

"अगर एकता चाहते हैं तो पुराने वैर की आग को आज, अभी यहीं पर बुझा दें। एक-दूसरे से क्षमा माँगकर प्रेमपूर्वक मिलें।"

देखते ही देखते पूरी सभा में परस्पर क्षमा के आदान-प्रदान से मधुर एवं मंगलमय वातावरण हो गया।

इसी तरह जहाजपुर, पोटला, सांगानेर आदि में सर्वत्र आपकी प्रेरणा से वैमनस्य दूर हुआ। पाली श्रीसंघ में अनेक प्रयासों के बाद भी एकता नहीं हो पा रही थी, किन्तु वि० सं० १९९० में जब आप पाली पधारे तो आपके संघ-ऐक्य पर हुए जोशीले प्रवचनों से पालीसंघ के अग्रगण्य लोगों के हृदय डोल उठे और संघ में एकता की लहर व्याप्त हो गई।

इस प्रकार जहाँ-जहाँ भी आपने फूट, वैमनस्य, अलगाव एवं संघर्ष देखा, प्रेरक सदुपदेश देकर दूर किया।

वैवाहिक कुरूढ़ियाँ बन्द कराईं

विवाह गृहस्थ-जीवन में मंगल प्रवेश का द्वार है। विवाह के साथ समाज में कई कुरूढ़ियाँ एवं कुरीतियाँ प्रचलित हो जाती हैं, एक बार उनका पालन, भविष्य में घातक होने पर भी उस परिवार को उनके पालन के लिए बाध्य करता रहता है। कुरूढ़ियों के पालन के कारण समाज के मध्यमवर्गीय परिवार की कमर टूट जाती है। वर्षों तक या कई परिवार तो पीढ़ियों तक उठ नहीं पाते। अतः जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से ऐसी कई कुरूढ़ियाँ बन्द हो गईं।

जैन दिवाकरजी महाराज का जब जहाजपुर पदार्पण हुआ, तब वहाँ का समाज कन्या-विक्रय, विवाहों में वेश्यानृत्य, मदिरा पान, आतिशबाजी आदि कुरीतियों में बुरी तरह फँसा हुआ था। इन्हीं कुरीतियों के कारण वहाँ के जैनेतर लोगों में परस्पर मनमुटाव था। एक-दूसरे के पास बैठकर परस्पर विचार विनिमय करने से कतराते थे। आपश्री ने वहाँ समाज-सुधार पर इतने प्रभावशाली प्रवचन दिये कि जनता मन्त्रमुग्ध हो गई और अनेकता के अँधेरे को चीर कर प्रेम के उज्ज्वल प्रकाश से सराबोर हो गई। फलतः आपके सदुपदेशों से प्रभावित होकर वहाँ के माहेश्वरी, दिगम्बर जैन एवं अन्य अनेकों लोगों ने परस्पर प्रेम भाव से विचार विनिमय करके उपर्युक्त अनेक कुरूढ़ियों तथा दुर्व्यसनों का त्याग किया।

चित्तौड़ में समाज-सुधार पर हुए आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर ओसवालों और माहेश्वरियों ने अपने-अपने समाज में कन्याविक्रय, पहरावणी आदि कई कुरीतियों का परित्याग किया। साथ ही उन्होंने अपनी जाति में यह घोषणा करवा दी कि 'जिस भाई के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए अर्थव्यवस्था नहीं हो, उसे जाति के पंचायती फण्ड से ४०० रुपये तक कर्ज के रूप में बिना ब्याज के दिये जाएँगे।'

पशुबलि निवारण का प्रयास

धर्म के नाम पर देवी-देवताओं के आगे की जाने वाली पशुबलि भी एक भयंकर कुरूढ़ि है,

घोर हिंसा है, अधर्म है। जैन दिवाकरजी महाराज ने इस कुरूढ़ि को भी बन्द कराने के लिए प्रयास किया था। गंगापुर में जब आप विराज रहे थे, उस समय उज्जैन के सरसूबेदार बालमुकुन्दजी आपके दर्शनार्थ आए और उन्होंने आपसे प्रार्थना की—'महाराज! कोई सेवा हो तो फरमाइए।' आपश्री ने अहिंसा-प्रचार की प्रेरणा देते हुए कहा—"आप उज्जैन के उच्च अधिकारी हैं। आप वहाँ देवी-देवताओं के नाम पर होने वाली पशुबलि को बन्द कराने की भरसक कोशिश करें।" उन्होंने इसके लिए पूर्ण प्रयास करने की स्वीकृति दी।

इन्दौर में आपके व्याख्यानों से प्रभावित होकर वहाँ के डिस्ट्रिक्ट सूबेदार ने विभिन्न स्थानों पर देवी देवताओं के आगे होने वाली पशुबलि बन्द कराई। जिसके फलस्वरूप १५०० पशुओं को अभयदान मिला। हिंसाजनक कुरूढ़ि को दूर करने का यह कितना प्रबल कदम था!

अस्पृश्यता का कलंक मिटाया

अस्पृश्यता भारतीय संस्कृति और समाज का सबसे बड़ा कलंक है। जैनधर्म तो अस्पृश्यता को मानता ही नहीं, फिर भी पड़ौसी धर्म के सम्पर्क से कुछ जैनों में यह कलंकदायिनी कुप्रथा घुस गई। वे इस बात को भूल जाते हैं कि जैनधर्म के उच्च साधकों में हरिकेश चाण्डाल, मैतार्य भंगी, यमपाल चाण्डाल आदि अनेक पूजनीय व्यक्ति हो चुके हैं। किसी भी जाति, वर्ण और धर्म-सम्प्रदाय का व्यक्ति सदाचार का पालन करके अपनी आत्मा को पवित्र और उच्च बना सकता है। जैन दिवाकरजी महाराज ने भी अस्पृश्य, पतित और नीच कहे जाने वाले कई लोगों को अहिंसक बनाया है और दुर्व्यसनों का त्याग करा कर उन्हें धर्ममार्ग पर चढ़ाया है।

परन्तु अस्पृश्यता का भयंकर रूप तो तब प्रकट होता है, जब किसी निर्दोष व्यक्ति पर झूठा कलंक लगा कर उसे अस्पृश्य घोषित कर दिया जाता है, उसके साथ मानवता का व्यवहार भी नहीं किया जाता।

बड़ी सादड़ी में कुछ स्त्रियों ने अन्य स्त्रियों पर मिथ्या कलंक लगा कर उन्हें अस्पृश्य करार दे दिया। समाज में उसको लेकर काफी वैमनस्य फैला। अनेक सन्तों के प्रयास से भी वह झंझट न मिटा। आखिर जैन दिवाकरजी महाराज के प्रभावशाली सदुपदेश से वह झंझट निपट गया। समाज का वह मनोमालिन्य सदा के लिए मिट गया।

बुनकर भी पवित्रता के पथ पर

मध्य प्रदेश में विचरण करते हुए आपश्री राजगढ़ पधारे। बुनकरों में मांस एवं मद्य का दुर्व्यसन लगा हुआ था। आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर उन्होंने जीवन-भर के लिए मांस-मदिरा का त्याग कर दिया।

खटीकों ने मद्यपान का त्याग किया

पिपलिया गाँव के खटीकों में मद्यपान का भयंकर दुर्व्यसन लगा हुआ था। इसके कारण वे धन, धर्म और तन से बर्बाद हो रहे थे। आपश्री का जोशीला प्रवचन ४०० से अधिक खटीकों ने सुना। शराब के दुर्गुण और अपनी बुरी हालत सुनकर खटीक एकदम जागृत हो गए। उन्होंने आपश्री के समक्ष आजीवन शराब न पीने की शपथ ले ली।

खटीकों का तो मद्यपान के त्याग से सुधार हुआ, पर निहित-स्वार्थी शराब के ठेकेदार को आर्थिक हानि हुई। उसने आबकारी इन्स्पेक्टर से शिकायत की। वह भी ठेकेदार का समर्थक बन

कर जैन दिवाकरजी महाराज के पास खटीकों की शिकायत लेकर पहुँचा। आपश्री ने उसे साफ-साफ सुना दिया कि 'जनता को शराब पिलाकर उसके तन, धन और धर्म को नष्ट करना तथा उसकी जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करना उचित नहीं।' इंस्पैक्टर निरुत्तर होकर चला गया।

इस प्रकार आपने समाज की जड़ों को खोखला करने वाले मद्यपान का दुर्व्यसन अनेक लोगों को छुड़ाकर समाज को धर्म दृष्टि से सशक्त बनाया।

खटीकों को अहिंसा-पथ पर लगाया

खटीक अन्त्यज जाति में गिने जाते हैं। वे मालवा, मेवाड़ आदि में काफी फैले हुए हैं। इनका मुख्य धन्धा पशुओं को खरीदना, कसाइयों के हाथ बेचना या स्वयं उन्हें मारकर उनके अंगों मांस आदि को बेचना था। जैन दिवाकरजी महाराज का ध्यान इन लोगों की ओर गया। उन लोगों के पिछड़ेपन का कारण भी महाराजश्री की दृष्टि में छिपा न रह सका! अब तो आपश्री जहाँ भी पधारते खटीक परिवारों को अहिंसक बनने का उपदेश देते और आपके उपदेश उनके झटपट गले भी उतर जाते तथा वे अपना पूर्वोक्त पैतृक-धन्धा छोड़ देते।

वि० सं० १६७० में जब आप भीलवाड़ा पधारे तो आपके उपदेश से ३५ खटीक परिवारों ने अपना पैतृक-धन्धा छोड़कर अहिंसक जीवन विताने का संकल्प ले लिया।

सवाई माधोपुर में भी आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर ३० खटीक परिवारों ने अपना हिंसक धन्धा छोड़कर सात्त्विक धन्धे (कृषि, मेहनत-मजदूरी आदि) अपना लिए। हिंसक धन्धे छोड़ने के बाद उनका जीवन सब प्रकार से सुखी हो गया। इसका असर अन्य खटीकों पर भी पड़ा। उन्होंने भी पुस्तैनी हिंसक धन्धा छोड़कर जीवकोपार्जन के लिए सात्त्विक साधन अपना लिए।

वि० सं० १६७१ में आगरा वर्षावास सम्पन्न करके जब आपके चरण मालव प्रदेश की ओर बढ़ रहे थे, तब कोटा से कुछ आगे एक खटीक को आपने प्रतिबोध दिया और अपने जाति के अहिंसक बनने पर सुखी एवं सम्पन्न हुए भाइयों का अनुसरण करने के लिए कहा तो उसने सरल हृदय से महाराजश्री की बात को स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार नसीराबाद (छावनी), सोजत आदि कई गाँवों के खटीकों ने अहिंसावृत्ति अंगीकार की।

समाजशुद्धि का यह कार्य कितना मूल्यवान है? आपके करुणार्द्र हृदय ने अनेक कष्ट सह कर इन पिछड़ी जाति के लोगों के जीवनपरिवर्तन कर दिये।

मोचियों के जीवन की कायापलट

गंगापुर के मोचीजाति में जैन दिवाकरजी महाराज ने मानवता की ज्योति जगाई। मोची-जाति के अनेक लोग आपके उपदेशों से प्रभावित होकर शुद्ध शाकाहारी अहिंसक बन गए। उन्होंने शराब, मांस, जीवहिंसा आदि दुर्व्यसनों का त्याग कर दिया। कई मोची तो जैनधर्म का पालन कर रहे हैं। गंगापुर के जिनगरों (मोचियों) के द्वारा स्वीकृत अहिंसावृत्ति का प्रभाव पाली, रेल-मगरा, पोटला, जोधपुर आदि क्षेत्रों के मोचियों पर भी पड़ा। उन्होंने भी मांस, मद्य जीवहिंसा आदि दुर्व्यसनों से विरत होकर सात्त्विक जीवन अपना लिया।

भीलों द्वारा हिंसा का त्याग

मेवाड़ के आदिवासी गिरिजन भील कहलाते हैं। ये भोले, भद्र और सरल होते हैं। महाराणा प्रताप के वनवास के समय ये अत्यन्त सहायक रहे हैं। वि० सं० १६६६ में जैन दिवाकरजी
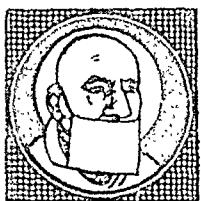
महाराज जब उदयपुर से विहार करके 'नाई' गाँव पधारे, तव वहाँ आपका उपदेश सुनने के लिए तीन-चार हजार भील एकत्रित थे। आपने मेवाड़ी भाषा में भीलों को लक्ष्य करके उपदेश दिया, उससे भीलों के हृदय में हिंसा के प्रति अरुचि हो गई। उन्होंने आपके उपदेश तथा आपके निर्मल चरित्र व लोकोपकारी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ लीं—

(१) वन में अग्नि नहीं लगाएँगे।

(२) किसी भी नर-नारी को कष्ट नहीं देंगे।

(३) विवाह आदि प्रसंगों पर भी पशुओं का वध नहीं करेंगे।

मामा के यहाँ से पशु आते हैं, उन्हें भी अभयदान देंगे। वि० सं० १९८२ में जव आपश्री नन्दवास पधारे, वहाँ के भीलों ने भी जंगल में आग न लगाने की प्रतिज्ञा ली।

चमार मांस-मदिरा त्याग पर दृढ़ रहे

जैन दिवाकरजी महाराज जिस वस्तु का त्याग कराते थे, उस वस्तु से होने वाली हानियाँ तथा उसके त्याग से होने वाले लाभ को खूब अच्छी तरह समझा देते थे, ताकि भय और प्रलोभन की आँधी आने पर भी वह अपने त्याग पर डटा रह सके।

ऐसी ही एक घटना केसूर ग्राम में हुई। केसूर में उस समय सैलाना, महीदपुर, उज्जैन, रतलाम आदि ६० क्षेत्रों के चमार गंगाजलोत्सव पर एकत्रित हुए थे। स्थानीय श्रावकों ने आपसे चर्मकार बस्ती में पधारकर चमार लोगों को उपदेश देने की प्रार्थना की। दयालु महाराजश्री उनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर वहाँ पधारे और दो व्याख्यान दिये। उनका जादू-सा असर हुआ। आपके व्याख्यान के वाद चर्मकारों की एक विशेष मीटिंग हुई, जिसमें पचलूनी, वडलावदा, खाचरोद एवं वड़नगर के पंच भी सम्मिलित हुए। सबने दीर्घदृष्टि से विचार करके सभी उपस्थित लोगों को जैन दिवाकरजी महाराज के समक्ष आजीवन मांस-मदिरा का त्याग करवाया और स्वयं किया। इसके पश्चात् आजीवन मांस न खाने और मद्यपान न करने का ६० गाँवों के चमारों की ओर से पंचों ने इकरारनामा लिखकर दिया। उसमें इस प्रतिज्ञा का भंग करने वाले के लिए जाति की ओर से वहिष्कार तथा दण्ड का निश्चय भी लिखा गया।

इसके पश्चात् शराव के ठेकेदार तथा सरकारी अधिकारियों ने इन मद्यत्यागी चमारों को वहुत डराया, धमकाया, जवर्दस्ती प्रतिज्ञा भंग करने का प्रयत्न किया, लेकिन चमार अपनी प्रतिज्ञा से एक इंच भी न डिगे। त्याग पर इतनी दृढ़ता के कारण गुरुदेव के द्वारा दिये गए ज्ञान और व्यक्तित्व का ही प्रभाव था।

कसाइयों का हृदय-परिवर्तन

वि० सं० १९८० में आपका चातुर्मास इन्दौर था। एक दिन 'जीवदया' पर आपका प्रभावशाली सार्वजनिक प्रवचन हुआ। प्रवचन में 'नजर मुहम्मद' नामक एक प्रसिद्ध कसाई भी उपस्थित था। प्रवचन का उस पर इतना तीव्र प्रभाव पड़ा कि प्रवचन में ही खड़े होकर उसने घोषणा की—"मैं इस भरी सभा में कुरान-शरीफ की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से कदापि किसी जीव की हिंसा नहीं करूँगा।" कसाई के इस आकस्मिक परिवर्तन से सारी सभा चकित हो गई। सव ने उसे धन्यवाद दिया और जैन दिवाकरजी महाराज का अद्भुत प्रभाव देखकर उनके प्रति सव नतमस्तक हो गए।

इसी प्रकार अहमदनगर आदि कई क्षेत्रों में आपके उपदेशों ने कसाइयों का जीवन-परिवर्तन कर दिया।

चोर का जीवन बदला

समाज में चोरी का धन्धा उसे रसातल एवं पतन की ओर ले जाने वाला है। चोर का परिवार कभी सुख-शान्ति से जी नहीं सकता, न ही समाज में उसकी प्रतिष्ठा होती है।

जलेसर (उ० प्र०) में जैन दिवाकरजी महाराज का प्रवचन चोरी के दुष्परिणामों पर हो रहा था। श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। प्रवचन पूर्ण होते ही एक व्यक्ति सहसा खड़ा हुआ और करबद्ध होकर कहने लगा—"महाराज! मुझे चोरी का त्याग करा दीजिए। आज से मैं आजीवन चोरी जैसा निन्दनीय कर्म नहीं करूंगा।" आपश्री ने उसके क्रूर चेहरे पर पश्चात्ताप की रेखा देखी, आँखें सजल होकर उसकी साक्षी दे रही थीं। आपने क्षणभर विचार करके उसे चोरी न करने का नियम दिला दिया।

उपस्थित जनता उस भूतपूर्व चोर, डकैत और क्रूर व्यक्ति का अकस्मात् हृदयपरिवर्तन देख कर चकित थी। सबने उसके त्याग के प्रति मंगलकामना प्रगट की।

पर यह सब चमत्कार था, जैन दिवाकरजी महाराज के हृदयस्पर्शी प्रवचन का ही!

कैदियों द्वारा भविष्य में दुष्कर्म न करने का वचन

कैदी भी कोई न कोई अपराध करके स्वयं जीवन को गंदा बनाते है और समाज में भी गंदा वातावरण फैलाते हैं। जैन दिवाकर जी महाराज समाज शुद्धि के इस महत्त्वपूर्ण पात्र का भी ध्यान रखते थे, जहाँ भी अवसर मिलता, वे कैदियों के हृदय तक अपनी बात पहुँचाते थे। वि०सं० १९८४ की घटना है। चित्तौड़ के मजिस्ट्रेट को कैदियों की दयनीय एवं पतित दशा देख कर दया आई। आपकी प्रभावशाली वक्तृत्वशक्ति से वह परिचित था। एक दिन उसने आपसे कैदियों के जीवन-सुधार के लिए उपदेश देने की प्रार्थना की। आपने प्रार्थना स्वीकृत की और कैदियों के समक्ष इतना प्रभावशाली प्रवचन दिया कि उनके हृदय हिल उठे। सबने पश्चात्तापपूर्वक साश्रुपूर्ण नेत्रों से संकल्प व्यक्त किया—"हम भविष्य में कदापि ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे, जिससे हमारे या दूसरे का कोई अपकार हो। हम सदैव सत्पथ पर चलेंगे।"

देवास जेल में भी कैदियों को इसी तरह उपदेश दिया था, एवं कई त्याग करवाये थे।

सचमुच समाज की सर्वतोमुखी शुद्धि के लिए आपके ये प्रयत्न आपके पतितपावन विरुद को उजागर कर देते हैं।

वेश्याओं का जीवनोद्धार

'वेश्यावृत्ति सामाजिक जीवन के लिए एक कलंक है, पतन का द्वार है, यह जितना शीघ्र समाज से विदा हो, उतना ही समाज का कल्याण है।' जैन दिवाकरजी महाराज इस विषय पर गहराई से चिन्तन करते थे और समाज को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाने के लिए वेश्यावृत्ति को मिटाना आवश्यक समझते थे। जहाँ भी आपको अवसर मिलता था, आप इस दुर्वृत्ति को बन्द करने का संकेत करते थे।

वि० सं० १९९६ में जैन दिवाकरजी महाराज चित्तौड़ आदि होते हुए जहाजपुर पधारे। वहाँ विवाह आदि अवसरों पर वेश्याओं के नृत्य का रिवाज था। महाराजश्री ने अपने प्रवचनों में

इस कुरीति पर कड़ा प्रहार किया। फलतः सभी जैन-वैष्णवों ने वेश्यानृत्य की कुरीति का सदा-सदा के लिए त्याग कर दिया।

वेश्याओं ने समाज का यह निर्णय सुना तो उन्हें बहुत बड़ा धक्का लगा, उन्हें लगा कि हमारी आजीविका ही छिन गई है। अतः एक दिन जब जैन दिवाकरजी महाराज शौचार्थ पधार रहे थे, तब कुछ वेश्याओं ने साहस बटोरकर आपश्री से कहा—'मुनिवर! आपने वेश्यानृत्य बंद करा दिया, इससे तो हमारी रोजी छिन गई। अब हम क्या करें आप ही हमें मार्ग बताइए।"

आपने महिलाजाति के देवीस्वरूप, मातृ-पद का गौरव बता कर वेश्याओं के दिमाग में यह बात जचा दी कि अश्लील नृत्य-गान आदि कुत्सित एवं कलंकित कर्म को छोड़कर सात्त्विकवृत्ति से जीवनयापन करना ही श्रेष्ठ है।" अतः वेश्याओं ने आपकी प्रेरणा पाकर अपने कलंकित जीवन का परित्याग करके श्रमनिष्ठ सात्त्विक जीवन जीने का संकल्प किया।

वि० सं० १९८० में पाली में वेश्यावृत्ति पर आपने अपने प्रवचनों द्वारा कठोर प्रहार किये, तब वहाँ की 'मंगली' और 'बनी' नाम की वेश्याओं ने वेश्यावृत्ति को तिलांजलि देकर आजीवन शीलव्रत धारण कर लिया 'सिणगारी' नाम की वेश्या ने एक-पतिव्रत स्वीकार किया।

वि० सं० २००५ के जोधपुर वर्षावास में आपके प्रवचन सुनने के लिए अनेक वेश्याएँ (पातरियाँ) आती थीं। आपके प्रवचनों से अनेक वेश्याओं के हृदय में ऐसी ज्ञानज्योति जगी कि उन्होंने इस निन्द्य एवं घृणित पेशे को सर्वथा तिलांजलि दे दी। कुछ वेश्याओं ने मर्यादा निश्चित कर ली।

यह था जैन दिवाकरजी महाराज का समाज-सुधारक एवं पतित-पावन होने का ज्वलन्त प्रमाण।

मृतक-भोज की कुप्रथा का त्याग

मृतकभोज समाज की आर्थिक स्थिति को कमजोर करके समाज के मध्यम या निम्नवर्ग के लोगों को जिंदगीभर कर्जदार करके उन्हें अभिशप्त करने वाली कुप्रथा है। जिस समाज में यह कुप्रथा प्रचलित है, वहाँ धर्म-ध्यान के बदले आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान में ही प्रायः वृद्धि होती देखी गई है।

समाज-सुधार के अग्रदूत श्री जैन दिवाकरजी महाराज ऐसी ही अनेक सामाजिक कुप्रथाओं से होने वाली हानियों से पूरे परिचित थे। अतः कई जगह आपने उपदेश देकर इस कुप्रथा को बंद कराया।

घोड़नदी और अहमदनगर में अनेक लोगों ने मृतकभोज में सम्मिलित न होने तथा न करने का नियम लिया।

समाज को स्वधर्मी वात्सल्य की ओर मोड़ा

समाज में दान के प्रवाह को सतत जारी रखने तथा कुरूढ़ियों और कुरीतियों में तथा दुर्व्यसनों में होने वाली फिजूलखर्ची को रोककर उस प्रवाह को स्वधर्मी वात्सल्य की ओर मोड़ने का अथक प्रयास किया। स्वधर्मी वात्सल्य की आपकी परिभाषा सहधर्मी भाई-बहन को एक वक्त भोजन करा देने तक ही सीमित नहीं थी। अतः आप साधर्मी भाई-बहनों को तन, मन, धन एवं साधनों से सब तरह से सहायता करने की अपील किया करते थे।

वि० सं० १९८८ का बम्बई चातुर्मास पूर्ण करके आप नासिक की ओर बढ़ रहे थे।

नासिक से कुछ दूर, सड़क के किनारे एक छोटे-से मकान में एक अत्यन्त फटेहाल जैन परिवार रहता था। उसकी दयनीय दशा देखकर आपश्री चुपचाप नहीं बैठे। नासिक पहुँच कर अहमदनगर निवासी श्री ढोंढीरामजी को स्वधर्मी की करुण-दशा का चित्रण करके पत्र द्वारा सूचित किया। उन्होंने अपना मुनीम तुरन्त भेजा। उन्होंने अहमदनगर चातुर्मास में आपके समक्ष प्रतिज्ञा ली थी कि मैं अब मौसर (मृतक-भोज) नहीं करूँगा तथा ५ हजार का फंड साधर्मी-सहायता के लिए करता हूँ; उसमें से उक्त भाई को जीवन-साधन देकर आश्वस्त किया।

यह था समाज के उपेक्षित एवं असहाय व्यक्तियों के लिए सहायता की प्रेरणा देकर समाज को अधार्मिक एवं निष्ठुर होने से बचाने का दीर्घदर्शी सत्प्रयत्न !

शासकों के जीवन का सुधार

प्राचीन काल में शासक समाज-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता था। 'राजा कालस्य कारणं' यह उक्ति शासक की युग निर्मात्री शक्ति की परिचायिका है। शासक उस युग में समाज का नेता माना जाता था। अगर शासक का जीवन धर्ममय एवं नैतिक न हो, तो जनता पर भी उसका गहरा और शीघ्र प्रभाव पड़ता था। इस बात को मद्दे नजर रखकर जैन दिवाकरजी महाराज ने उस समय के अधिकांश शासकों की रीति-नीति, परम्परा और व्यसन-परायण जिंदगी को बदलने का निश्चय किया। प्रायः शासकों के जीवन में मांसाहार, शिकार, सुरा और सुन्दरी आदि दुर्व्यसन प्रविष्ट हो चुके थे।

आपने जगह-जगह शासकों को अपनी वक्तृत्वशक्ति के बल पर धर्म, साधुसंत और परमात्मा के प्रति श्रद्धालु बनाया, उनके जीवन को नया मोड़ दिया। उनके जीवन में अहिंसा की लहर व्याप्त की। उनसे त्याग (हिंसा त्याग, व्यसन त्याग आदि) की भेंट स्वीकार की। फलतः मेवाड़ के महाराणाओं से लेकर मारवाड़, मालवा आदि के छोटे-बड़े राजा, राव, रावत, ठाकुर, जागीरदार आदि तक आपका पुण्यप्रभाव बढ़ गया। उनमें इतनी जागृति आ गई कि उनकी विलासिता एवं ऐय्याशी काफूर हो गई। सुरा-सुन्दरी, शिकार और मांसाहार के दुर्व्यसनों को उन्होंने तिलांजलि दे दी और जनता की सेवा के दायित्व की ओर ध्यान देने लगे। जनता की चिकित्सा, शिक्षा, न्याय, आवास, अन्नवस्त्र आदि समस्याओं को सुलझाने में लग गए।[1] जैन दिवाकरजी महाराज ने स्वयं कष्ट (परिषद) सहकर भी शासकों के जीवन-सुधार के लिए अथक प्रयास किया। वास्तव में आपने समाज के उस युग में माने जाने वाले अग्रगण्यों को सुधार कर समाज को काफी अंशों में पतन और दूषणों से बचा लिया। आपकी इस महती कृपा के लिए समाज युगों-युगों तक आपका चिर-ऋणी रहेगा।

आपके उपदेशों में समाज को बदलने की महान् शक्ति

सचमुच आपके उपदेशों में समाज की कायापलट करने की महान् शक्ति थी। मेघ की शीतल-सौम्य जलधारा की तरह आपकी पतितपावनी समाज-स्वच्छकारिणी वचनधारा झोंपड़ी से लेकर महलों तक बिना किसी भेदभाव के सर्वत्र समानभाव से बरसती थी। आप जहाँ राजा-महाराजाओं और शासकों का ध्यान उनकी बुराइयों की ओर खींचते थे, वहाँ पतितों, पददलितों, उपेक्षितों एवं पिछड़े लोगों को भी उनमें व्याप्त अनिष्टों की ओर से हटाकर नया शुद्ध मोड़ देते थे।

---

१ 'आदर्श उपकार' पुस्तक में इसका विस्तृत वर्णन पढ़िए

आपके प्रवचनों से कितने ही शासकों, सेठ-साहूकारों एवं नेताओं आदि ने सुरा-सन्दरी, शिकार, मांसाहार, फूट, कुरुढ़ियाँ आदि का त्याग किया। वहाँ कितने ही चमारों, मोचियों, हरिजनों, गिरिजनों, खटीकों वेश्याओं, चोरों आदि ने अपने दूषित जीवन को छोड़कर सन्मार्ग ग्रहण किया। हजारों लोगों ने फूट और वैमनस्य का कुपथ छोड़ कर प्रेम और ऐक्य का सन्मार्ग अपनाया। समाज-सुधार के आपके उपदेशों को हजारों लोगों ने क्रियान्वित कर दिखाया। कितने ही शराबियों ने शराब छोड़ी, कई मांसाहारियों ने मांसाहार छोड़ा, कई हिंसकों ने जीववध का त्याग किया, कई चोरों जुआरियों, बदमाशों या वेश्याओं ने अपने-अपने दुर्व्यसनों को तिलांजलि दी और सात्त्विक सन्मार्ग अपनाया। आपके प्रवचनों से कई कुमार्गगामी, पापी और पतित-आत्माओं की जीवन दिशा बदली। कहाँ तक गिनाएँ आपके जीवन में समाज-सुधार के लिए एक से एक बढ़कर हजारों उपलब्धियाँ थीं। ऐसे समाज-सुधार के अग्रदूत को कोटि-कोटि कण्ठों से धन्यवाद और लक्ष-लक्ष प्रणाम !

बदनामी मत ले !

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

मती लीजे रे-२, वदनामी कितनो जीणो प्राणी रे ॥टेर॥

ली वदनामी राजा रावण, हरी राम की राणी रे।
स्वारथ भी कुछ हुवा नहीं, गई राजधानी रे ॥१॥

दियो पींजरे वापने रे, कंश अनीति ठानी रे।
विरोध करीने मर्‍यो हरि से, हुई उसी की हानी रे ॥२॥

ली वदनामी कौरवाँ ने, नहीं वात हरि की मानी रे।
पाँडवों की जीत हुई, महाभारत वखानी रे ॥३॥

ली वदनामी बादशाह ने, गढ़ चित्तौड़ पर आनी रे।
हाथ न आई पदमणी, गई नाम निशानी रे ॥४॥

वासन तो विरलाय जावे, वासना रह जानी रे।
तज घुमराई लीजे भलाई, या सुखदानीरे ॥५॥

धर्म ध्यान से शोभा होवे, सुधरे नर जिन्दगानी रे।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, धन जिनवानीरे ॥६॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

विश्वमानव मुनि श्री चौथमलजी महाराज

✡ स्व० पं० 'उदय' जैन

अर्द्ध शताब्दी पूर्व की बात है। हम छोटे बच्चे थे। सुनते थे—श्री चौथमलजी महाराज पधारे हैं। जैन-अजैन सभी उनकी अगवानी कर रहे हैं, जय बोल रहे हैं, व्याख्यान सुन रहे हैं, त्याग-प्रत्याख्यान कर रहे हैं और यह भी सुनते थे कि अमुक राजा, अमुक महाराजा, अमुक राणा, अमुक महाराणा, अमुक ठाकुर, अमुक रावत, अमुक नवाब और अमुक सामन्त, अमुक अमीर, अमुक उमराव उनके दर्शन कर प्रसन्न हुए हैं, प्रभावित हुए हैं। शिकार छोड़ी है और अगते पलवाने प्रारम्भ किये हैं। अमुक निम्न समझी जाने वाली जाति ने उनको अपना गुरु माना है। उसने शराब पीनी छोड़ी है, मांस खाना छोड़ा है। अमुक गांव में वर्षों से चले आ रहे धड़े मिटे हैं और अमुक जाति उनकी भक्त बनी है।

समय था, चारों ओर श्री चौथमलजी महाराज के नाम की धूम मची थी। शिष्य पर शिष्य बन रहे थे। यद्यपि वे अपनी सम्प्रदाय के आचार्य नहीं थे, लेकिन आचार्य के समान शोभित हो रहे थे। उन्हीं के आदेश पाले जा रहे थे, उन्हीं की पूजा हो रही थी और उन्हीं के गुण-गान गाये जा रहे थे। न हो आचार्य और न मिले उपाध्याय पद, फिर भी सभी कुछ थे। वे बेताज के सन्त-सिरोताज थे। उनकी मुनि-मण्डली के बादशाह-सम्राट् थे। उनका संगठन श्री 'चौथमलजी महाराज की सम्प्रदाय' के नाम से मशहूर था।

मालव प्रदेश और मेवाड़ उनका अनन्य उपासक था। जिधर विहरते, उधर उनके भक्तों की भीड़ जम जाती थी। जहाँ बोलते, वहाँ भक्तगण आ जमते और जब तक बोलते, उनकी तरफ बिजली की भाँति खिंचे हुए जमे रहते, एक टक निहारते और उन्हीं की सुनते थे। उनका भाषण बन्द और जनसमूह तितर-बितर। दूसरा कोई भी बोले—जनता सुनना पसन्द नहीं करती थी।

क्या था उनकी वाणी में ? और क्या था उनके शरीर के भाषणस्थ आसन-पीठ में जिससे कि जनता उनकी ओर ही खिंची रहती थी ? उनका दीदार, उनका शरीराकार, उनका समवसरण-स्थ अमोघ वर्षण और उनकी दिव्य ललकार तथा उनकी संगीत की पीयूषसनित फटकार-ये ही तो उनके आकर्षण के कारण थे, ये ही उनके प्रसिद्धि के साधन थे और ये ही उनके भक्ति के अंग थे।

शिष्य-समुदाय के साथ उनकी एक संगीत की झंकार हजारों को जन-मेदिनी को मोहित कर लेती थी, झुमा देती थी, मस्त बना देती थी और असर डालकर हृदय-परिवर्तन कर देती थी। उनकी संगीत की ध्वनि मुँह से उच्चरित होते ही उनका शिष्य-समुदाय उसे तत्काल उठा कर, उसको संवर्धमान करती हुई हृदय वीणा के तार झंकृत कर देती थी। वह ध्वनि, वह वाणी और वह उद्गीथ सरस्वती की वीणा की तान एक बार मानव मन को मोहित कर, उस ओर आकर्षित कर लेती थी। ऐसा आकर्षण कि जन-मन की श्रुतेन्द्रियजनित श्रवण-शक्ति आस-पास के गगनभेदी आवाजों की तरफ से भी बहरी बना देती थी। कितना ही शोर मच रहा हो, कितने ही ढोल और बाजे बज रहे हों, कितने ही गगनभेदी नारे लग रहे हों, लेकिन जब तक उस सुरीले-संगीत की ध्वनि-लहर बहती रहती, किसी का कान-किसी का ध्यान उधर नहीं जाता था। यह थी उस महामुनि श्री चौथमल जी महाराज की वाणी की विशेषता, जिसको उनके भक्तगण भी नहीं साध सके और न पा ही सके।

क्या मुनि श्री चौथमलजी महाराज प्रसिद्ध वक्ता थे ? यह एक प्रश्न मेरे दिमाग में

उद्‌भवित हुआ। प्रसिद्ध वक्ता तो उस समय भी बहुत थे और आज भी बहुत हैं, लेकिन वे सिर्फ वक्ता ही नहीं थे—वे थे वाणी के उद्‌गीय ब्रह्मनाद। संगीत और भाषण का जहाँ उत्कट सम्मिश्रण हो, उसे हम सिर्फ वक्ता या प्रसिद्ध वक्ता कहें, यह स्वयं के शब्दों को लज्जित करना है। मैं कहूँगा—**मुनिश्री चौथमलजी वास्तविक ब्रह्मनाद का उद्‌घोषक प्रख्यात संगीतज्ञ, कविराज तथा व्याख्यान वाचस्पति व्याख्याकार थे।**

मुनि श्री चौथमलजी महाराज जैनियों और उनके भक्तों के ही नहीं थे—वे विश्व मानव के थे। उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर हम चाहते हैं कि भगवान महावीर के संघ का एक कीर्ति-स्तम्भ स्थापित करें। यह कीर्तिस्तम्भ पत्थर का नहीं, कार्य रूप अमर याद का स्थापित करें। हमारा शताब्दी मनाना तभी सार्थक होगा जबकि हम उनकी दिव्य वाणी और उनके दिव्य उद्‌घोष का उपयोग कर, वीर शासन के सैकड़ों टुकड़ों में बँटे इन साम्प्रदायिक अंगों को संगठित करने का कार्य हाथ में लें।

परिचय :

[जैन समाज के एक निर्भीक चिन्तक, शिक्षाशास्त्री और तन-मन-धन से सेवार्थ समर्पित। मेवाड़ की अनेक शिक्षण-संस्थाओं के प्रतिष्ठाता; दो वर्ष पूर्व स्वर्गवासी]

तप का महत्व

(तर्ज—या हसीना बस मदीना, करबला में तू न जा)

यह कर्म दल को तोड़ने में, तप बड़ा बलवान है।
काम दावानल बुझाने, मेघ के समान है ॥टेर॥

काम रूपी सर्प कीलन, मंत्र यह परधान है।
विघन घन तम-हरण को, तप जैसे भानु समान है ॥१॥

लब्धि रूपी लक्ष्मी की, लता का यह मूल है।
नन्दिषेण विष्णु कुंवर का, सारा ही बयान है ॥२॥

वन दहन में आग है, और आग उपशम मेघ है।
मेघ हरण को अनिल है, और कर्म को तप ध्यान है ॥३॥

देवता कर जोड़ के, तपवान के हाजिर रहे।
वर्धमान प्रभु तप तपे, उपना जो केवलज्ञान है ॥४॥

गुरू के प्रसाद से, करे चौथमल ऐसा जिकर।
आमोसही ऋद्धि मिले, यही स्वर्ग सुख की खान है ॥५॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

चौथमल : एक शब्दकथा

"चौथ हर पखवाड़े हमारा द्वार खटखटाने वाली एक तिथि है। सामान्य जन इसे 'चौथ' कहता है। ज्योतिष में 'चौथ' को रिक्ता कहा गया है। जैनागमों में चारित्र को रिक्तकर कहा है। इस तरह 'चौथ' और 'चारित्र' निर्जरा और निर्मलता के जीते-जागते प्रतीक हैं।

✡ मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
[आगम अनुयोग प्रवर्तक, प्रसिद्ध आगम विद्वान्]

मैंने स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन बृहत्साधु सम्मेलन के अवसर पर अजमेर में किये थे। यद्यपि सीमित शब्दों में उनके असीमित साधुत्व का अंकन सम्भव नहीं है तथापि जन्मशताब्दि-वर्ष के इस पुनीत प्रसंग पर उस महान् व्यक्तित्व का कुछ पंक्तियों में परिचय लिखना मेरे स्वयं के तथा अन्य मुमुक्षु सुधीजनों के लिए श्रेयस्कर है।

१. सर्व साधारण की भाषा में 'चौथ' प्रतिपक्ष आने वाली एक तिथि है। ज्योतिष की भाषा में 'चौथ' रिक्ता तिथि है। जैनागमों में चारित्र को रिक्तकर कहा है। चारित्र की व्युत्पत्ति है—**'चयरित्तकरं चारित्तं'** अर्थात् अनन्तकाल से अर्जित कर्मों के चय, उपचय, संचय को रिक्त (निःशेष) करने वाला अस्तित्व चारित्र है। इस तरह चरित्र को 'चौथ' तिथि के नाम से 'मल' अर्थात् धारण करने वाले हुए श्री चौथमलजी महाराज।

२. मोक्ष के चार मार्गों में चौथा मार्ग है तप। तप आत्मा के अन्तहीन कर्ममल की निर्जरा करने वाला है—**'भवकोडी संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ'**। इस तरह तप की आराधना का सूचक नाम धारण करने वाले थे स्व० चौथमलजी महाराज। आपने तथा आपके तपोधन अन्तेवासियों ने बाह्याभ्यन्तर तपाराधनापूर्वक मुक्ति की राह का अनुसरण कर अपना नाम चरितार्थ किया।

३. पाँच महाव्रतों में चौथा महाव्रत ब्रह्मचर्य है। यह महान् व्रत ही ब्रह्म (आत्मा) को परमब्रह्म (परमात्मा) में उत्थित करने वाला है। विश्व में यही सर्वोत्तम व्रत है। इसकी आराधना में सभी व्रतों की आराधना सन्निहित है। यह शेष महाव्रतों का कवच है, मूल है—**'पंचमहव्वय सव्वयं मूलं'**। इस मूल महाव्रत के नाम से अपने नाम को सार्थक करने वाले थे स्व० श्री जैन दिवाकरजी महाराज।

४. धर्म के चार प्रकारों में चौथा धर्म 'भाव' है, जिसका गौरव विश्वविदित है। इसके बगैर शेष तीनों धर्म निष्फल हैं। तीर्थंकर नाम की निष्पत्ति 'भाव' से ही होती है और आत्मशोधन का मूलमन्त्र भी 'भाव' ही है; 'भाव' से ही अनन्त आत्माएँ मुक्त हुई हैं। 'भाव' की यह डगर अजर-अमर है। समुन्नत लोक-जीवन का आधार भी यही 'भाव' है। उदाहरणार्थ, गोदामों में माल भरा है। ब्याज और किराये के बोझ से व्यापारी का मन उदास है। वह प्रतिपल भाव की प्रतीक्षा में दूरभाष की ओर टकटकी लगाये बैठा है। घंटी आते ही चोंगा उठा लेता है। अनुकूल समाचार सुनकर चेहरा खिल उठता है। केवल हाथ-पैर ही नहीं उसका सारा बदन उत्साहित और सस्फूर्त हो उठता है। यह है बाजार-भाव की करामात। यह हुई लौकिक भाव की बात, किन्तु औपशमिक

आदि लोकोत्तर भाव तो आत्मा को ज्ञानादि निज गुणों से सम्पन्न, समृद्ध करने वाले हैं। चतुर्थ भावधर्म की स्मृति अनुक्षण बनी रहे इसीलिए 'चौथमल' नाम आपको मिला और तदनुसार आपने भाववृद्धि की अमर उपलब्धि द्वारा अपना नाम चरितार्थ किया।

चौदह गुणस्थानों में चौथा गुणस्थान सम्यक्त्व है। आत्मा को बोधि या सम्यक्त्व की उपलब्धि इसी गुणस्थान में होती है। जैसे बीज की अनुपस्थिति में वृक्ष आविर्भूत नहीं होता, वैसे ही बोधि के बिना शिव-तरु का प्रादुर्भाव भी संभव नहीं है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान, ज्ञान नहीं है, चारित्र चारित्र नहीं है। इस चौथे गुणस्थान को धारण कर वे सामान्य जन से सम्यक्त्वी चौथमल बने और उत्तरोत्तर आरोहण करते गये। उनके पदचिह्न अमर हैं, उनका कृतित्व अमर है, व्यक्तित्व अमर है, और उन्होंने ज्ञान तथा समाज-सेवा की जिस परम्परा का निर्माण किया है, वह अमर है।

मुझे स्मरण है कि एक दिन किसी जैनेतर ग्रामवासी ने मुझसे पूछा था क्या आप चौथमलजी महाराज के चेले हैं? उसके इस प्रश्न से मैं श्रद्धाभिभूत हो उठा। मैंने कहा—'हाँ'। बातचीत से पता चला कि उसने अपने गाँव में उनका कोई प्रवचन सुना था, जिसका प्रभाव अभी भी उसके मन पर ज्यों-का-त्यों था। ऐसे सवाल राजस्थान के कई ग्रामवासियों ने मुझसे किये हैं। अतः यह असंदिग्ध है कि वे कभी न अस्त होने वाले सूरज थे, जिसकी धूप और रोशनी आज भी हमें ओजवान और आलोकित बनाये हुए है। किंवदन्तियों-सा जन-जनव्यापी उनका व्यक्तित्व अविस्मरणीय है।

सत्संग की महिमा

(तर्ज—या हसीना बस मदीना करबला में तू न जा)

लाखों पापी तिर गये, सत्संग के परताप से।
छिन में बेड़ा पार हो, सत्संग के परताप से ॥टेर॥

सत्संग का दरिया भरा, कोई न्हाले इसमें आनके।
कट जायें तन के पाप सब, सत्संग के परताप से ॥१॥

लोह का सुवर्ण बने, पारस के परसंग से।
लट की भँवरी होती है, सत्संग के परताप से ॥२॥

राजा परदेशी हुआ, कर खून में रहते भरे।
उपदेश सुन ज्ञानी हुआ, सत्संग के परताप से ॥३॥

संयति राजा शिकारी, हिरन के मारा था तीर।
राज्य तज साधु हुआ, सत्संग के परताप से ॥४॥

अर्जुन मालाकार ने, मनुष्य की हत्या करी।
छः मास में मुक्ति गया, सत्संग के परताप से ॥५॥

इलायची एक चोर था, श्रेणिक नामा भूपति।
कार्य सिद्ध उनका हुआ, सत्संग के परताप से ॥६॥

सत्संग की महिमा बड़ी है, दीन दुनियां बीच में।
चौथमल कहे हो भला, सत्संग के परताप से ॥७॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

संतों की पतितोद्धारक परम्परा और मुनिश्री चौथमलजी महाराज

श्री अगरचन्दजी नाहटा (बीकानेर)

विश्व अपनी गति से चल रहा है। उसमें सदा अच्छे और बुरे दोनों तरह के लोग रहते हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि इस संसार में सब अच्छे ही लोग रहते हों, बुरा कोई नहीं रहता हो। ऐसा भी कभी नहीं हुआ कि सब बुरे ही हों, अच्छा कोई नहीं हो। यह संसार ही द्वन्द्वात्मक है। इसमें अच्छी-बुरी घटनाएँ घटती ही रहती हैं। ज्ञानी लोग दोनों बातों में नहीं उलझते; वे न दुःख में उद्विग्न होते हैं न सुख में मस्त। वे दुःख को भी सुख मान लेते हैं और सुख में भी दुःख की परछाईं देखते रहते हैं। इसलिए तटस्थ हो जाते हैं। दोनों स्थितियों में समत्व भाव रखने लगते हैं। अच्छाई भी रहेगी, बुराइयाँ भी रहेंगी क्योंकि संसार में सदा से यही होता आया है, यही होता रहेगा। स्वयं तटस्थ हो जाना समत्व को प्राप्त कर लेना बहुत बड़ी और ऊँची स्थिति है। ऐसे व्यक्ति वीतरागी परमज्ञानी, परमानन्दी, परमपुरुष परमात्मा और लोकोत्तम पुरुष कहलाते हैं।

उत्तम पुरुष वे हैं, जो बुराइयों को दूर करने और अच्छाइयों को विकसित करने का प्रयत्न करते हैं। स्वयं भी अपने दोषों के निवारण व गुणों के उत्कर्ष में लगे रहते हैं और दूसरों को भी मार्ग-प्रदर्शन करते हुए लोगों की बुराइयों में कमी आये और अच्छाइयाँ बढ़ती रहें, दोष मिटते जायं गुण प्रगट होते जायँ ऐसे प्रयत्न में लगे रहते हैं। और ऐसे व्यक्तियों की बहुत आवश्यकता भी है।

तीर्थंकरों की परम्परा में आचार्यों, मुनियों, साधु-साध्वियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई; वे स्व-कल्याण के साथ पर-कल्याण भी करते रहे। यद्यपि वे पूर्ण वीतरागी नहीं बने अतः राग और द्वेष उनमें अभी सी है। पर वे विषयों के राग से हटकर धर्मानुराग, भक्तिराग जैसी प्रशस्त राग की भूमिका में आ जाते हैं। पापियों से वे घृणा नहीं करते, वे पाप से घृणा करते हैं इसलिए पापियों पर करुणा व अनुकम्पा बरसाते हैं। जिससे वे पापों को छोड़कर धर्मी बन जाते हैं। आज का य अब का पापी कल और क्षणभर बाद ही धर्मी बन जाता है। ऐसा आत्म-विश्वास उनमें होता है। इसीलिए महापुरुषों ने कहा है कि हृदय-परिवर्तन होते देर नहीं लगती। तुम किसी को पतित समझकर घृणा न करो और उस पतित को ऊँचा उठाकर अपने समान बनालो और वह यदि अपने से ही आगे बढ़ जाता है तो प्रसन्नता का अनुभव करो यही करुणाभावना व प्रमोदभावना का सन्देश है। मैत्री भावना अपने समान बनाने की प्रेरणा देती है। मित्र के दुःख-सुख में भागी रहना ही मैत्री है। सदा उसकी हित-कामना करें, यही मित्र धर्म है। माध्यस्थ भावना से घृणा का भाव समाप्त किया जाता है। दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति के प्रति भी हम द्वेष-भाव न रखें। अपने भरसक प्रयत्न करने के बाद भी यदि कोई नहीं सुधरता है तो भी अपने में द्वेष-भाव न उभरने दें। इन चारों भावनाओं से सारे संसार के मनुष्यों के साथ यथायोग्य बर्ताव किया जाता रहे तो स्व-पर-कल्याण निश्चित है।

हमारे साधु-साध्वियों ने सदा तीर्थंकरों के उपदेश को स्वयं अपनाने और दूसरों को अपनाने की प्रेरणा देने का निरन्तर प्रयास किया है। अहिंसा आदि महाव्रतों के पालन में वे सदा तत्पर

रहते हैं और हिंसा के निवारण में भी सदा प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने पतितों के उद्धार में अपना जीवन लगाया व खपाया है। ऐसे ही उदात्त भावना वाले और कर्मठ धर्म-प्रचारक मुनिश्री चौथमल जी महाराज हुए हैं जिनकी जन्म शताब्दी उनके शिष्यों और भक्तों के द्वारा बड़े जोरों से व अच्छे रूप में अभी वर्ष भर तक मनाई जा रही है।

प्रत्येक व्यक्ति गुण और दोषों का पुँज है। अनेक अच्छाइयों और विशेषताओं के साथ उसमें कुछ बुराइयाँ व कमियाँ भी रहती हैं। पूर्ण गुणी तो परमात्मा माना जाता है। मनुष्यमात्र भूल का पात्र होता है, पर जो व्यक्ति भूल को भूल मान लेता है और उस भूल को सुधारने व मिटाने की भावना रखता है, तदनुकूल पुरुषार्थ करता है; वह अवश्य ही दोषों को मिटाकर गुणों को अच्छे परिमाण में प्रगट कर लेता है। उस गुणी व्यक्ति द्वारा दूसरों के गुणों का विकास का प्रयत्न भी चलता रहता है जिससे उनके सम्पर्क में आने वाले हजारों व्यक्ति उनके ज्ञान और चारित्र से प्रभावित होकर जीवन में नया मोड़ लाते हैं। पापी से धर्मी बन जाते हैं, पतित से पावन बन जाते हैं। ऐसे व्यक्ति जन-जन के पूज्य और श्रद्धा के केन्द्र बन जाते हैं। जनता के लिए स्मरणीय व उपासनीय बन जाते हैं। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने भी अपने जीवन में कुछ ऐसे विशिष्ट कार्य किये जिससे वे आज भी स्मरणीय बने हुए हैं।

जैनधर्म अहिंसा प्रधान है। तीर्थंकरों ने जिस सूक्ष्मता के साथ अहिंसा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया व साथ ही अपने जीवन में आचरित किया वह विश्वभर में अनुपम है, अद्वितीय है। जैन मुनियों को भी यथाशक्य उस महान् अहिंसा धर्म का पालन करना होता है। वे जब चारों ओर हिंसा का बोलबाला देखते हैं हिंसा का साम्राज्य उनके अनुभव में आता है, तो उनकी सहज करुणा प्रस्फुटित हो उठती है। उनकी अनुकम्पा उन्हें उद्वेलित करती रहती है जिससे हिंसा निवारण के प्रयत्न में उनकी गति-प्रगति होती है और बढ़ती जाती है। केवल जीवों को मारना ही हिंसा नहीं है उनको कटु वचन से क्षोभित करना भी हिंसा है। दूसरा चाहे मरे या न मरे, अपने मन में मारने का भाव लाना, कटुता एवं क्रूरता के परिणाम हो जाने से भी हिंसा होती है। और इस दृष्टि से देखा जाय तो सभी में हिंसा का भाव कमबेसी रूप में है ही। और उसके निवारण का प्रयत्न करना भी उतना ही आवश्यक है, अन्यथा यह विश्व टिक नहीं सकता। एक-दूसरे के वैर-विरोध और हिंसा-प्रतिहिंसा में संहार-चक्र से सब दुनिया समाप्त हो जायेगी। पापों और दोषों से मनुष्य का जो पतन हो रहा है उससे बचाया न जाय तो संसार पापियों से भर जायगा, दोषों से आपूरित हो जायगा। इसलिए सन्तजन सदा अपने उपदेशों से पतितों का उद्धार करते रहे हैं। हमें धर्ममार्ग पर प्रवर्तित करते रहे हैं। उन गिरे हुओं को ऊँचा उठाने में प्रयत्नशील रहे हैं और इसी प्रयत्न सुपरिणाम है कि भूले-भटके अज्ञानी और पापी प्राणियों का उद्धार सदा होता रहा है व होता ा। क्योंकि महापुरुषों की वाणी सदा सात्विक प्रेरणा देती रहती है। जैन मुनियों का तो जीवन ा ही आदर्श एवं उच्च रहता है। अतः उनके सम्पर्क में आने वालों पर उनका सहज और गहरा ाव पड़ता है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज भी ऐसे ही उच्च आदर्शों का जीवन जीने वाले थे। की वाणी में चमत्कारिक प्रभाव था; कथनी के साथ करनी भी तदनुरूप थी। ज्ञान व चारित्र का ा था, हृदय में अनुकम्पा और करुणा के भावों की किलोलें उठती रहती थीं, लहरायमान होती ी थीं। इससे अनेक स्थानों में अनेक व्यक्तियों ने सत् प्रेरणा प्राप्त की और अपने जीवन को ा एवं आदर्श बनाया। दोषों में कमी की व गुण प्रगटाये।

जन्मते ही कोई प्राणी पापी व दुष्ट नहीं होता; पूर्व संस्कार अवश्य कुछ काम करते हैं। पर

आसपास का वातावरण और दूसरों के सम्पर्क से उसमें अच्छाइयों और बुराइयों का प्रगटन होता है। अच्छे-बुरे संस्कार पनपते और बढ़ते रहते हैं। आगे चलकर जिस गुण या दोष का दृढ़ीकरण हो जाता है, अधिक पुष्टी व प्रोत्साहन मिलता है उसी के कारण उसका जीवन सदाचारी व कदाचारी, दुष्ट व शिष्ट, पापी व धर्मी बन जाता है। आसपास के वातावरण व संगत के प्रभाव से बहुत बार मनुष्य की सात्विक वृत्तियाँ दब जाती हैं और बुरी वृत्तियाँ उभर आती हैं। पर अच्छी वृत्तियों का एकदम लोप नहीं होता, वे छिपी हुई भीतर विद्यमान रहती हैं। इसलिए अच्छे वातावरण और संगति से वे पुनः जागृत की जा सकती हैं और सन्त-जन यही काम करते हैं।

सन्तों का प्रभाव दो कारणों से अधिक पड़ता है। एक तो उनका जीवन पवित्र होने से बिना कुछ कहे भी उनके दर्शन मात्र से दूसरों के मन में सद्भाव जागृत होने लगते हैं। वे जब उनके जीवन के साथ अपने जीवन की तुलना करते हैं, तो उन्हें आकाश-पाताल-सा अन्तर दिखाई देता है। अतः मन में प्रेरणा उठती है कि ऐसे सन्त-जन का सहयोग मिला है तो अवश्य ही कुछ लाभ उठाया जाय जिससे अपना जीवन भी ऊँचा उठ सके। दूसरा प्रभाव उनकी ओजस्वी व सधी हुई वाणी का पड़ता है क्योंकि उनके एक-एक शब्द के पीछे साधना मुखरित है। स्वाध्याय, ध्यान, तप और सद्भावनाओं के निरन्तर चिन्तन से उनके शब्दों में—वाणी में एक अजब-गजब की शक्ति उत्पन्न होती है जिसे सुनने वाले हृदय को वे शब्द वेधते चले जाते हैं। हृदय में एक कम्पन व आन्दोलन-सा होने लगता है। उस समय वह सन्तजन जो भी त्याग आदि के उपदेश देते हैं उसका बहुत गहरा असर होता है और वर्षों की बुरी आदतें एक क्षण में छोड़ देने की शक्ति और साहस श्रोता में टूट पड़ता है। बड़ा आश्चर्य होता है कि बहुत बार प्रयत्न करने पर भी बुरी आदतों और व्यवहारों को वह छोड़ नहीं पाया था, आज एकाएक उन्हें कैसे छोड़ दिया। इस तरह कल के पापी आज के धर्मी बन जाते हैं। मुनि श्री चौथमलजी ने भी मानव की कमजोरियों को बड़ी गहराई से पहचाना, उसके अन्तर में जो अच्छाइयाँ छिपी पड़ी हैं उनका निरीक्षण व अनुभव किया। बहुत बार के अभ्यास और आदतों के कारण जो मानव की सद्वृत्तियाँ सुप्त पड़ी हैं, गुप्त पड़ी हैं, दब गई हैं उनको पुनः प्रगट करने में सन्तों की वाणी जादू-सा काम करती है। मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने जो मानव-हृदय के पारखी थे। अपने हृदय की पुकार से आन्तरिक करुणा के श्रोत से जहाँ-जहाँ जिस-जिसमें जो-जो खराबियाँ देखीं उन्हें सुधारने का भागीरथ प्रयत्न किया। इसी के फलस्वरूप वे हजारों-हजारों व्यक्तियों को राजा से लेकर रंक तक के विविध प्रकार के मानव हृदयों को आन्दोलित करते, मथते और उसके फलस्वरूप जो नवनीत या सार-सर्वस्व उन्हें प्राप्त होता उनकी तेजस्वी मुखमुद्रा और तेजस्वी वाणी से अनेक व्यक्तियों ने चिरकालीन अभ्यस्त बुराइयों को तिलांजलि दी। मांसाहारियों ने मांस छोड़ा, मांस भक्षण न करने का नियम लिया। शराबियों ने शराब छोड़ी, शिकारियों ने शिकार करना छोड़ा। वेश्याओं तक के दिल में परिवर्तन हुआ। जिनके हाथ खून में लगे रहते थे, मांस खाना ही नहीं, बेचना जिनका व्यवसाय था उन कसाइयों, खटीकों आदि ने भी अपने बुरे कामों को छोड़ने का संकल्प किया। मोची आदि अनेक नीची गिनी जाने वाली जातियों में अच्छे संस्कारों का वपन हुआ। यह कोई मामूली चमत्कार नहीं है।

एक भी व्यक्ति सुधरता है तो उनका परिवार कुटुम्बी-जन और आसपास के लोग सहज ही सुधरने लगते हैं। जिस तरह कुसंगति से खराब वातावरण से मनुष्य में अनेक दोष व खराबियाँ आने लगती हैं। उसी तरह अच्छे वातावरण व संगति से उनमें सद्भावनाओं के गुल भी खिलने लगते हैं। यह जरूर है कि बुराइयाँ, खराबियाँ सहज हैं, अच्छाइयाँ कष्ट साध्य हैं। क्योंकि पानी

ढलाव की ओर जाने में देर नहीं लगती सहज स्वाभाविक गति से प्रबल वेग से वह नीचे की ओर बहने लगता है और उसी जल को ऊँचाई की ओर ले जाने में विशेष प्रयत्न करना पड़ता है; उसी तरह बुरी आदतें तो देखा-देखी स्वयं घर कर जाती हैं। पैर जमा लेती हैं, पर उनको उखाड़ने में, मिटाने में बहुत समय व श्रम लगता है। पर यह संतजनों का ही प्रभाव है कि उनकी संगति व वाणी के प्रभाव से बड़े-बड़े पापियों के दिल में अजब-गजब का प्रभाव बढ़ता है और वे क्षणभर में सदा के लिए उन पापों से निवृत्त हो जाते हैं, छोड़ देते हैं और धार्मिक तथा सात्त्विक वातावरण में आगे कूच करने लगते हैं। मुनिश्री चौथमलजी महाराज के जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग पाये जाते हैं जिससे अनेक व्यक्तियों ने अनेक बुराइयों को उनके उपदेश से छोड़ दिया और वे धार्मिक बन गये।

हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि एक भी व्यक्ति को पापों से छुड़ाकर धर्म में नियोजित करने वाला बहुत बड़े पुण्य का भागी बनता है। अज्ञान और मिथ्यादृष्टि से मनुष्य विवेकहीन बन कर पापों का शिकार हो जाता है। अतः उसे सद्‌बोध व सम्यग्दृष्टि देने वाला महान् उपकारी होता है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि होने के बाद मनुष्य में एक गहरा परिवर्तन होने लगता है वह भव-भीरू या पापभीरू बन जाता है। बहुत बार बुरी बातें छोड़ नहीं पाता; पर इसका उसके मन में बड़ा दुःख होता है कि 'मुझे यह नहीं करना चाहिए फिर भी मैं यह कर बैठता हूँ। यह मेरी बहुत बड़ी कमजोरी है अतः मैं इन बुरी प्रवृत्तियों से छुटकारा नहीं पा रहा हूँ। मेरा वही दिन, वही घड़ी सार्थक होगी जब मैं इनसे निवृत्त हो जाऊँगा। जब तक वैसा नहीं हो पा रहा हूँ। तब तक मेरे अशुभ कर्मों का बंध हो रहा है और उसके बुरे परिणाम मुझे भुगतने ही पड़ेंगे अतः जल्दी से जल्दी इन बुरी बातों को छोड़ दूं।' ऐसा उसके मन में बार-बार आता रहता है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्या-दृष्टि में यही सबसे बड़ा अन्तर है कि दोनों प्रवृत्तियाँ तो करते हैं, पर मिथ्यादृष्टि गाढ़ आसक्ति-पूर्वक करता है, बहुत बार उनके भावी दुष्परिणाम को नहीं सोचता और कई बार तो अच्छी समझ-कर करता रहता है। और सम्यग्दृष्टि में एक ऐसा विवेक जागृत होता है जिसे वह अच्छी को अच्छी व बुरी को बुरी ठीक से समझता है तथा बुरी करते हुए उसके मन में चुभन रहती है, पश्चात्ताप रहता है, उसको छोड़ देने की भावना रहती है। कम से कम रूखे-सूखे परिणाम से क्या करूं करना पड़ता है, छोड़ सकूँ तो अच्छा है; इस तरह के भाव उसके मन में रहते हैं।

सद्‌गुरु का लक्षण और कार्य ही यह है कि वह शिष्य या भगत के अज्ञान को मिटाता है। ज्ञान और विवेक जागृत करता है। गुरु की स्तुति करते हुए प्रायः यह श्लोक बोला जाता है—

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया।
नेत्रमुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

—अर्थात् अज्ञान रूपी अन्धकार जिनके हृदय-आँखों पर छाया हुआ है, गुरू ज्ञान की शलाका से उस अन्धकार को मिटा देते हैं। ज्ञाननेत्र खोल देते हैं। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अनेक अज्ञा-नियों के ज्ञान-नेत्र खोले। अज्ञान के कारण जो पथ-भ्रष्ट हो गये थे उन्हें सही और सच्चा मार्ग दिख-लाया। अब ज्ञान-नेत्र खुल जाने से वे स्वयं अच्छे-बुरे का निर्णय करने में समर्थ हो गये। यह उनका बहुत बड़ा उपकार मानना चाहिये। क्योंकि अनेक पाप अज्ञान के कारण होते हैं। जब तक उन्हें उन बुरी प्रवृत्तियों का सही ज्ञान नहीं होता उसके दुष्परिणामों की उन्हें जानकारी नहीं होती तब तक वे उन पापों से निवृत्त नहीं हो पाते। दूसरों की देखादेखी और अपने चिरकालीन अभ्यास

के कारण वे पुनः-पुनः उन बुरी आदतों को करते रहते हैं, उनसे लिप्त बने रहते हैं, उन्हें छोड़ नहीं पाते; जब सद्गुरु या सन्त-जन के सम्पर्क व समागम का सुअवसर उन्हें पुण्ययोग से प्राप्त होता है, तब वे सचेत व जागरूक हो जाते हैं और बुरी बातों को छोड़ने का तत्काल निर्णय कर बैठते हैं। वे उन सन्तों का जितना भी उपकार माने थोड़ा है जिनकी कृपा से उनका हृदय परिवर्तन होता है वे बुरी बातों को छोड़ने में समर्थ बन जाते हैं। जिनसे उनका जीवन पतनोन्मुखी हो रहा था, शराब आदि से उनका बेहाल हो रहा था और उनके पारिवारिक-जनों, स्त्री-बच्चे आदि को भी उसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ रहे थे। क्योंकि शराब का एक ऐसा नशा मनुष्य के मस्तक पर छा जाता है कि अपनी सुध-बुध खो बैठता है। अकरणीय कार्य करते हुए उसे तनिक भी मान नहीं होता। आर्थिक दृष्टि से बड़े परिश्रम से कमाए हुए द्रव्य की रोज बर्बादी होती है, घर वालों के लिए वह दो समय का पूरा अन्न भी नहीं जुटा पाता। स्त्री बेचारी तंग आ जाती है बहुत बार उसे मार खानी पड़ती है। गालीगलौज तो रोज की जीवनचर्या-सा बन जाता है। बच्चों को दूध नहीं मिल पाता। वे पाठ्यक्रम की पुस्तकें खरीद करने के लिए भी पैसा नहीं जुटा पाते। अर्थात् शराबी का असर एक व्यक्ति पर नहीं सारे परिवार पर पड़ता है अतः शराबी का शराब पीना छुड़ा देना उसके परिवार भर में शान्ति की वृद्धि करना है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज के उपदेश से अनेक शराबियों ने शराब पीना छोड़ दिया यह उनके जीवन का बहुत ही उज्ज्वल पक्ष है।

प्राचीन काल से यह मान्यता चली आ रही है कि *'यथा राजा तथा प्राजा'*। इसलिए हमारे अनेक आचार्यों और मुनियों ने राजाओं को सुधारने का भी पूरा ध्यान रखा और उनको उपदेश देकर मांस-मदिरा, शिकार, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, जूआ आदि दुर्व्यसनों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। क्योंकि शासक का प्रजा पर बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ता है। एक शासक के सुधरने पर उसके जी-हजुरिये व अधिकारीगण भी सुधरने लगते हैं। बहुत बार शासकगण राज्य भर में कसाईखाने बन्द रखने, मद्य-निषेध आदि के आज्ञापत्र घोषणा जारी कर देते हैं जिससे हजारों पशु-पक्षियों की हिंसा बन्द हो जाती है उन्हें अभयदान मिलता है। ऐसी हमारी उद्घोषणाएं समय-समय पर अनेक राजाओं, ठाकुरों आदि ने जैनाचार्यों व मुनियों के उपदेश से करवायी थीं उनके सम्बन्ध में मेरा एक शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हो चुका है।

मुसलमानी साम्राज्य के समय भी विशेषतः सम्राट् अकबर को अहिंसा व जैनधर्म का उपदेश देकर ६-६ महिने तक उसके इतने विशाल शासन में गोवध, पशुहत्या आदि का निवारण किया जाना बहुत ही उल्लेखनीय व महत्वपूर्ण है। तपागच्छीय श्री हीरविजय सूरि खरतरगच्छीय श्रीजिन-चन्द्रसूरि तथा श्रीशान्तिचन्द्र, भानुचन्द्र, जिनसिंह सूरि विजयसेन सूरि, आदि जैनाचार्यों तथा मुनियों के उपदेशों का सम्राट् अकबर व जहांगीर आदि पर इतना अच्छा प्रभाव पड़ा था कि उन्होंने स्वयं अपने मांसाहार की प्रवृत्ति को बहुत कम कर दिया था और कई दिन तो ऐसे भी निश्चित किये गये थे जिस दिन वे मांसाहार करते ही नहीं थे। आशाली अष्टानिका और पर्युषणों के १० दिन सर्वथा जीवहिंसा बन्द करने के फरमान अकबर ने अपने सभी सूबों में भिजवा दिये थे, इतना ही नहीं खंभात के कई समुद्र व कई तालाबों में मच्छियों को भी न मारने के फरमान जारी कर दिये गये थे। शासन प्रभावक जिनप्रभसूरि आदि के प्रभाव से मौहम्मद तुगलक ने जैन तीर्थों की रक्षा आदि के फरमान जारी किये और स्वयं शत्रुंजय आदि तीर्थों की यात्रा की। अर्थात् एक शासक को धर्मोपदेश देकर सुधार दिया जाए तो इससे जीवदया आदि का बहुत बड़ा काम सहज ही

करवाया जा सकता है। इस परम्परा को भी मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने अच्छे रूप में आगे बढ़ायी। उनकी जीवनी में हम यह पाते हैं कि अनेक राजाओं, ठाकुरों, जागीरदारों, जमींदारों को उन्होंने धर्मोपदेश देकर उनको व उनके परिवार को मांसाहार मदिरापान आदि से मुक्त किया और उनके राज्य में जीवहिंसा निषेध की घोषणा करवायी। उदयपुर महाराणा आदि उनके काफी भक्त वन चुके थे। राजा हो चाहे रंक, जो पापों में लिप्त हैं वे पतित की श्रेणी में ही आयेंगे और उनका सुधार उद्धार करना अवश्य ही वहुत महत्व का कार्य है। जिसे मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने काफी अच्छे रूप में किया।

हिन्दुओं में तो दयाधर्म का प्रचार करना फिर भी सहज है क्योंकि जीवदया के संस्कार उन्हें जन्मघुटी की तरह मिलते रहे हैं। पर किसी मुसलमान को प्रभावित करके मांसाहार छुड़ाना या पशुहत्या निवारण करना अवश्य ही एक कठिन कार्य है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने कई मुसलमानों को भी अपना भक्त बनाया। श्री केवल मुनिजी लिखित जैन दिवाकर ग्रन्थ के पृष्ठ १२० में कुछ महत्वपूर्ण ऐसे प्रसंग दिये हैं जिन्हें पढ़कर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं कुशल वक्तृत्व का पता चलता है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि खान साहव सेठ नजर अली अलावक्स मिल के मालिक सेठ लुकमान भाई ने ५ हजार का नुकसान सहन कर एक दिन के लिए तपस्वी मयाचन्दजी महाराज की तपस्या के उपलक्ष्य में आरम्भ-समारम्भ वन्द रखा। इतना ही नहीं जिस समय मोहर्रम का त्योहार पड़ रहा था इस त्योहार के ३० दिन तक मुसलमानों में वहाँ जातिभोज होता था जिसमें मांस-भक्षण उनकी परम्परानुसार चलता था। दो दिन तो वीत ही गये थे, पर जैन मुनि की तपस्या की वात सुनकर लुकमान भाई ने कहा कि मुझे क्या मालूम था कि कोई जैन साधु तपस्या कर रहे हैं, नहीं तो दो दिन भी मांसाहार न करवाता, अब तीसरे दिन तो मीठे चावल ही वनवाऊँगा, सात्विक भोजन ही कराऊंगा। इस्लाम धर्म के अनुयायी होते हुए भी उनके ये शब्द मुनि श्री चौथमलजी महाराज के प्रवचनों के प्रति श्रद्धा के सूचक हैं। उनके इस कार्य से १०० वकरों को अभयदान मिला। उज्जैन में यह अहिंसा का प्रचार व पशुओं को अभयदान का ऐतिहासिक कार्य आपश्री के प्रयत्न से ही संभव हुआ था। देवास में आपका प्रवचन ईदगाह में भी हुआ। प्रवचन से प्रभावित होकर काजी साहव ताज्जुवद्दीन ने मांस, शराव, परस्त्रीगमन आदि का त्याग कर दिया। और भी अनेक स्थानों में मुसलमान आपके प्रवचनों में आकर आपके प्रवचनों को सुनकर बड़े प्रभावित होते व कई तो आकर आपके भक्त वन गये।

वदनौर में जोधा खटीक व जीवनखाँ मुसलमान ने जीवनपर्यन्त मांसभक्षण तथा जीवहिंसा त्याग का नियम लिया और भी अनेक मुसलमान भाइयों ने अहिंसावृत्ति अपनायी।

वेश्याओं को समाज में वहुत पतित माना जाता है उनका भी मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने उद्धार किया। आपके व्याख्यानों को सुनकर 'मगनी' तथा 'वनी' नाम की वेश्याओं ने आजीवन शीलव्रत पालने की प्रतिज्ञा की और 'सणगारी' नाम की वेश्या ने एक पतिव्रत का संकल्प लिया। अनेक स्थानों में उस समय वेश्यानृत्य का प्रचार था उसे आपने वन्द करवाया व वेश्याओं के कलंकित जीवन को वदल डाला। जोधपुर में कई पातरियों ने आपके उपदेश सुनकर अपने घृणित पेशे को विल्कुल तिलांजलि दे दी।

साधारण मनुष्य की अपेक्षा कैदियों का जीवन अधिक पतित होता है क्योंकि वे किसी वड़े अपराध के कारण ही सजा पाकर जेलों में जाते हैं। उनको उपदेश देकर सुधारना और उनका

हृदय-परिवर्तन करना बहुत कठिन व महत्वपूर्ण कार्य है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने उन पतितों के उद्धार का भी प्रयत्न किया। उसके बाद तो जेलों में जाकर बंदियों को उपदेश देने का कार्य अनेक मुनियों ने किया, पर अब से ५१ वर्ष पहले इस कार्य का श्रीगणेश मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने किया। जैन दिवाकर ग्रन्थ के पृष्ठ १८५ में लिखा है—"वि० सं० १९८४ की घटना है, चित्तौड़ के एक मजिस्ट्रेट को बंदियों की दशा देखकर दया आयी और मुनिश्री की प्रभावशाली वाणी से उनके जीवन में सुधार हो इसलिए निवेदन किया। महाराजश्री ने कैदियों को जो उपदेश दिया उससे उन सभी के हृदय में पश्चात्ताप की अग्नि जलने लगी। साश्रु नयन उन सबने संकल्प व्यक्त किया कि हम भविष्य में ऐसा कोई काम नहीं करेंगे जिससे हमारा तथा किसी दूसरे का अपकार हो। देवास में भी जेल में कैदियों को आपने उपदेश दिया एवं पाप-कार्यों के त्याग करवाये।

पालनपुर के नवाब आपसे प्रभावित होकर मूल्यवान दुशाले आदि कुछ भेंट करना चाहते थे तो आपने उनसे कहा कि यदि आप भेंट देना ही चाहते हैं, तो शिकार, शराब व मांसाहार का त्याग करें। आपकी निस्पृहता से प्रभावित होकर उन्होंने उसी समय इन वस्तुओं का त्याग कर दिया। इसी तरह धानेरा के नवाब के दामाद जबरदस्तखाँ ने भी आपके उपदेश से प्रभावित होकर कई जानवरों के शिकार न करने की प्रतिज्ञा स्वीकार की।

समाज में मोचियों को काफी नीचा माना जाता है। उनको कोई छूते नहीं थे क्योंकि वे पशुओं की खाल का कार्य करते हैं तथा मांस-मदिरा पीते हैं। उनके घरों में चमड़े की गन्ध बनी ही रहती है। आपने उन मोचियों को भी शराब, मांस, जीवहिंसा आदि दुर्व्यसनों से मुक्त किया। गंगापुर के मोचियों ने आपकी वाणी सुनकर हमेशा के लिए मांस-मदिरापान का त्याग कर दिया। रेलमगरा के ६० परिवारों ने मांस-मदिरा का त्याग किया। इसी तरह अनेक स्थानों में उन्होंने केवल मांस-मदिरा का त्याग ही नहीं किया वरन् जैनधर्म को स्वीकार कर, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियायें भी करने लगे। चमार भी बहुत नीची जाति के माने जाते हैं। पर आपके प्रभाव से ६० गाँवों के चमारों ने मांस-मदिरा का त्याग कर दिया। इसी तरह कसाई, खटीक, भील आदि निम्न श्रेणी के तथा पतित माने जाने वाले लोगों को दुर्व्यसनों से मुक्त कर आपने हजारों व्यक्तियों, परिवारों का उद्धार किया।

भगवान का जो पतित पावन विशेषण है उसे मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपने जीवन में सार्थक करके पतितोद्धारक बने। उनके अनुकरण यदि हमारे अन्य साधु-साध्वी करें तो लाखों व्यक्तियों का उद्धार हो जाय व जैन शासन की बड़ी प्रभावना हो। ☆

परिचय एवं पता :

जैनधर्म, इतिहास एवं साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान्
अनुसंधाता तथा लेखक।
पता—नाहटों की गुवाड़, बीकानेर
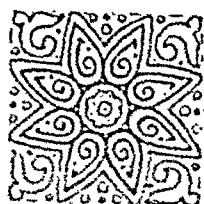
बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी

श्री अजितमुनि 'निर्मल'

भारतीय संस्कृति की अन्तरात्मा है—'निर्ग्रन्थ श्रमण साधना'। इस निर्ग्रन्थ श्रमण साधना के आराधक वे अनिकेतन अनगार-सन्त-महात्मा हैं, जो **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** के प्रति सर्वात्मना समर्पित हैं। ये सन्त-महात्मा अपनी महिमामयी चर्या एवं वाणी, आचार और विचार द्वारा युगबोध कराते रहे हैं। अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से युगपुरुष के विरुद से विभूषित हुए हैं तथा अशन-वसन, वासन-आसन-सिंहासन, धन-धान्य से विहीन होने पर भी राजा से लेकर रंक तक के आदरणीय रहे हैं और हैं। उनमें से हम यहाँ एक ऐसे ही युगसन्त के व्यक्तित्व के आलेखन का प्रयास कर रहे हैं।

हमारे प्रयास के केन्द्र बिन्दु श्रद्धास्पद महामुनिप्रवर हैं—'श्री जैन दिवाकरजी महाराज'। यद्यपि नामतः वे 'मुनिश्री चौथमलजी महाराज' कहलाते थे, लेकिन जब उनकी जीवन-पोथी के पन्ने पलटते हैं। मानवीय मानस के स्वरों को सुनते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अहर्निश जिन सिद्धान्तों के अनुरूप जन-समाज के कल्याण की कामना से ओतप्रोत रहने के कारण वे भावतः "जैन दिवाकर" थे और जैन दिवाकर शब्द सुनते ही हमारे मस्तक उस युगपुरुष के प्रति श्रद्धा, भक्ति, वन्दना अर्पित करने के लिए स्वतः स्वयमेव नत हो जाते हैं।

युगपुरुष अपने अध्यवसाय, प्रयत्न पुरुषार्थ से स्व-पर-जीवन का निर्माण करते हैं। जन्म कब हुआ, कहाँ हुआ, माता-पिता कौन थे, पारिवारिक-जन कौन-कौन थे? इत्यादि उनकी महिमा के साधन नहीं हैं और न वे इनका आश्रय लेकर अपने कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होते हैं। उनका लक्ष्य होता है—**'स्ववीर्य गुप्तः हि मनो प्रसूति'**। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ऐसे ही एक युगपुरुष हैं, उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहु आयामी है और जिस आयाम से भी हम उनका दर्शन करते हैं, मूल्यांकन करते हैं, तो उसमें एक अनूठेपन, दीर्घदर्शिता, लोकमंगल आदि-आदि की प्रतीति होती है। आइये! आप भी उन आयामों में से कुछेक पर दृष्टिपात कर लें।

साम्प्रदायिक वेष : असाम्प्रदायिक वृत्ति

श्री जैन दिवाकरजी महाराज संयम-साधना के लिए स्थानकवासी जैन-परम्परा में दीक्षित हुए थे। अतः उनको स्थानकवासी जैन-परम्परा का सन्त कहा जाता है। लेकिन उनका मानस, विचार, वृत्ति इस वेष तक सीमित नहीं थी। उनके लिए वेष का उतना ही उपयोग था जितना हम-आपकी आत्मा के लिए इस वार्तमानिक शरीर का। उनकी दृष्टि तो इस वेष से भी परे थी। वे **"गुणाः पूजा स्थानं न च लिंगं न च वयः"** के हिमायती थे। इसलिए उनमें वेष का व्यामोह हो भी कैसे सकता था?

समाज और सम्प्रदाय दोनों का समान आशय है। लेकिन दोनों के दृष्टिकोण में थोड़ा-सा अन्तर है। समाज विविध आचार-विचार प्रणालियों वाले मनुष्यों का समूह है और सम्प्रदाय एक प्रकार के आचार-विचार, श्रद्धा-विश्वास वाले मानवों का समूह। इस प्रकार समाज और सम्प्रदाय में व्याप्त-व्यापक की अपेक्षा भेद है, किन्तु लक्ष्य एक है। तब बहुमत की उपेक्षा करके सिर्फ इने-गिनों मानवों के समूह को अपने कृतित्व के लिए चुन लेना और उसी को उपादेय मान

लेना, एक प्रकार का अभिनिवेश पूर्ण विचार है। इसीलिए श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने साम्प्रदायिकता का व्यामोह दूर करने का अनवरत प्रयास किया। उन्होंने सम्प्रदायवाद से दूर रहने का सदैव आह्वान किया। सम्प्रदायवाद का विषैला अंकुर कब, कैसे और कहाँ फूटता है? इसकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा था—

"समाचारी में जरा-सा अन्तर देखकर आज दूसरों को ढीले होने का प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है और इसी बहाने उच्चता का ढोल पीटा जाता है। मानो एक सम्प्रदाय तभी ऊँचा सिद्ध हो सकेगा जब दूसरों को नीचा दिखाया जावे। दूसरे को नीचा दिखाकर अपनी उच्चता प्रगट करने वालों में वास्तविक उच्चता नहीं होती। जिसमें वास्तविक उच्चता होगी वह अपनी उच्चता प्रगट करने के लिए किसी दूसरे की हीनता साबित करने नहीं बैठेगा। अतएव जब कोई साधु दूसरे साधु की हीनता प्रगट करता हो, उसे ढीला बताता हो, अपने आचार-विचार की श्रेष्ठता की डींग मारता हो तो समझ लीजिये उसमें वास्तविक उच्चता नहीं है।" —'दिवाकर वाणी' पृष्ठ १२४

उक्त कथन में श्रद्धेयप्रवर श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने उस मर्म का उद्घाटन किया है, जो मानव जाति को अलग-अलग दायरों में बाँटता है। उन दायरों को सच्चा यथार्थ मानकर दूसरों को अपमानित करने की नई-नई तरकीबें सोची जाती हैं। दूसरे धर्मानुयायियों की ओर दृष्टिपात न करके यदि हम श्रमण भगवान महावीर के अनुयायी अपने को देखें, तो पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है, कि अपने-अपने दायरों से आगे बढ़ने में धर्म संकट मानते हैं। साथ ही दूसरों की गर्हा-निन्दा कैसे की जाये? इन उपायों के ताने-बाने जुटाते रहते हैं।

सम्प्रदायवाद के दुष्परिणामों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने कहा था—"सम्प्रदायवाद का ही यह फल है कि आज एक सम्प्रदाय का साधु दूसरे सम्प्रदाय के साधु से मिलने में, वार्तालाप करने में एवं मिल-जुलकर ध्यान करने में पाप समझता है। एक साधु दूसरे साधु के पास से निकल जायेगा, मगर बातें नहीं करेंगे। दूसरों से बात करने में पाप नहीं लगता है, परन्तु अन्य सम्प्रदाय के साधुओं से बातचीत करने में पाप लगता है। कैसी विचित्र कल्पना है। कितनी मूर्खता है।"

× × ×

"जो साधु शास्त्रोक्त साधु के गुणों से युक्त हैं तो उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करो, फिर यह मत सोचो कि यह हमारे सम्प्रदाय के हैं अथवा भिन्न सम्प्रदाय के हैं। सद्गुणों की पूजा करो, अवगुणों की पूजा से बचो। साम्प्रदायिकता का मलीन भाव मिथ्यात्व की ओर घसीट ले जाता है।"

—दिवाकर वाणी, पृष्ठ १२३

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने सम्प्रदायवाद की हानियों, बुराइयों को सिर्फ वचनों द्वारा ही प्रगट नहीं किया और न 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के अनुरूप लोकरंजन अथवा जन-साधारण में अपना प्रभाव जमाने के लिए विचार व्यक्त किये। किन्तु स्वयं उनका मानस इस प्रकार की बाड़ाबन्दी को पसन्द नहीं करता था। उन्होंने सम्प्रदायवाद का उन्मूलन करने के लिए सक्रिय कदम उठाया और ऐसे समय में उठाया जब साम्प्रदायिक मान्यताओं को लेकर शास्त्रार्थ आयोजित किये जाते थे और सत्य निर्णय के नाम पर वितंडावाद का आश्रय लेने में भी किसी को हिचकिचाहट नहीं होती थी। ऐसी विपरीत एवं विकट परिस्थिति में भी आप अपने पथ से, श्रम से, उद्देश्य से विचलित नहीं हुए और जिसके फलस्वरूप आज के युग में लगभग २६-२७ वर्ष

पूर्व कोटा (राजस्थान) में जैन धर्मान्तिर्गत स्थानकवासी मूर्तिपूजक और दिगम्बर मुनिराजों के एक पाट पर बैठकर प्रवचन हुए।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के श्रमण एवं श्रावकों का एक साथ मिलना और महावीर देशना का प्रवचन श्रवण करना कुछ लोग औपचारिकता समझें, तो उनके लिए इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है, लेकिन जो विन्दु में सिन्धु के दर्शन करने वाले हैं और जो **'जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ'** के अनुयायी हैं, वे ही इसका मूल्यांकन कर सकते हैं। श्री जैन दिवाकरजी महाराज द्वारा बोया बीज अब विशाल वटवृक्ष का रूप धारण करने की ओर उन्मुख है और सम्प्रदायवाद के गहन गर्भगृहों में भी प्राणवायु एवं प्रकाश-ज्योति झिलमिलाने लगी है।

जीवन-निर्माता !

मानव जब जन्म लेता है, तब वह इन्सान होता है, हैवान नहीं; देव होता है, दानव नहीं। देवत्व उसके अन्तर में वास करता है। लेकिन बुद्धि-विकास के साथ युगीन वातावरण के कारण वह अपने देवत्व को भूल जाता है। वह दूसरों को चाहे नुकसान करे या न करे। लेकिन अपने मानवत्व को तो वह एकदम हार ही बैठता है। दुर्व्यसनों की कारा में पड़कर उस गुफा में छलांग लगाता है, जहाँ पर उसे दुःख, दैन्य का साम्राज्य मिलता है।

युगदृष्टा श्री जैन दिवाकरजी महाराज को यह दृश्य प्रतिदिन अपने विहार काल में देखने को मिलते थे। उन्होंने गम्भीरता से अध्ययन किया। एक विचार बार-बार उनके मन में चक्कर लगाता रहता था, कि गाँवों में बसे भारत की इस स्थिति का कारण क्या है ? धार्मिक आस्थाओं में विश्वास करने वाले ग्रामवासियों में ऐसी कौनसी कमी है कि शुद्ध प्राकृतिक वातावरण होने पर भी ये भोले-भाले शुद्ध हृदय अशुद्ध हो रहे हैं। पवित्र जीवन की आकांक्षा रखते हुए भी अपवित्रता में अपने आपको डुबो रहे हैं। इस गम्भीर चिन्तन से वे इस निष्कर्ष पर आये, कि भले ही व्यक्तिगत रूप से अपने जीवन का निर्माण करने के लिए अग्रसर हो गया हूँ, लेकिन जब तक आस-पास का वातावरण शुद्ध नहीं होगा, तो मेरी साधना में आंशिक असफलता रहेगी। अतः मेरा अनुभव स्व के लिए ईष्ट होने के साथ-साथ पर को भी कल्याणप्रद होना चाहिए। बस ! एक निश्चय किया, कि मैं **"तिन्नाणं तारयाणं"** श्रमण भगवान महावीर का लघुतम अदना अनुगामी शिष्य हूँ और उक्त विशेषण गत भावों को स्पष्ट करने का जब यह अवसर स्वयमेव प्राप्त हो गया है, तो अब मुझे चूकना योग्य नहीं है।

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने निश्चय को मूर्त्त रूप देना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उन्होंने इस आभिजात्य वर्ग को सम्बोधित किया, जो जागीरदार, ठाकुर, उमराव, राणा, राजा आदि के रूप में ग्रामीण जनता पर शासन करता था और साधारण जन तो 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत का अनुसरण करने वाले होते हैं। अतएव यदि राजा परोपकारपरायण, व्यसन मुक्त, सदाचारी, नैतिक एवं न्यायपूर्वक शासन करता है, तो प्रजा की भी वैसी ही प्रवृत्ति व आचार-विचार होते हैं।

श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज का विहार-क्षेत्र ग्रामीण भारत था ही और अब विचार-क्षेत्र भी वही बन गया। अतः जहाँ भी जाते, वहीं भोली-भाली जनता को उसकी वाणी में जीवन का मूल्य समझाते और आभिजात्य वर्ग को उसके कर्त्तव्यों का बोध कराते थे।

"कौन जानता है, कि आज के तुम्हारे दुर्व्यवहार का फल कब और किस रूप में तुम्हें

भोगना पड़ेगा ? इस जन्म के वैर का बदला न मालूम किस जन्म में चुकाना पड़े। अतएव शक्ति और सत्ता आदि के अभिमान में मत भूलो। सदा सोच-समझकर प्राणीमात्र के प्रति स्नेह और दया की ही भावना रखो।"

× × × ×

"जिन भले आदमियों को इहलोक और परलोक न बिगाड़ना हो, समाज में घृणा और नफरत का पात्र न बनना हो, धर्म से पतित न होना हो, अपने कुटुम्ब, परिवार वालों के लिए भारभूत और कालरूप न बनना हो, अपने बाप-दादों की इज्जत को धूल में न मिलाना चाहते हो, अपनी सम्पत्ति का स्वाहा न करना चाहते हों और अपनी प्यारी सन्तान को संकट के गहरे गड्ढे में नहीं डालना चाहते हो, तो मदिरापान से सदैव दूर-बहुत दूर ही रहना चाहिए। जो मनुष्य मोरियों में पड़ा-पड़ा दुनिया का तिरस्कार ओढ़ने से बचना चाहता है और अपने जीवन को सर्वनाश से बचाना चाहता है उसे मदिरापान की बुरी आदत को शुरू ही नहीं करना चाहिए।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति

समय-समय पर निकले इसी प्रकार के हृदयोद्‌गारों ने सभी को प्रभावित किया। जिसका परिणाम यह हुआ, कि समकालीन राजा-महाराजाओं ने, अमीर-उमरावों ने, सेठ-साहूकारों ने वह सब किया। जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। उन्होंने विलासी जीवन छोड़कर सदाचार पूर्ण जीवन की ओर अग्रसर होने का स्वेच्छा से निश्चय किया और इस प्रकार के जीवन निर्माण के लिए शराब छोड़ी, मांस भक्षण का त्याग किया, शिकार खेलना बन्द किया। क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व की सही मायने में स्थापना की। साथ ही अनुगामी प्रजा ने भी वैसा ही जीवन बिताने की प्रतिज्ञा की। चमार, खटीक आदि अछूत समझे जाने वाले प्रभावित हुए और अनेक सुखद जीवन की ओर बढ़ गये। वे तो सम्भवतः हों या न हों, लेकिन उनकी सन्तानें नैतिक जीवन को व्यतीत करते हुए इस पुण्य पुरुष का सश्रद्धा अवश्य स्मरण करती हैं। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के इस विचार कण ने आज इतना व्यापक रूप ले लिया है कि भाल नल कांठा प्रयोग, वीरवाल प्रवृत्ति, धर्मपाल प्रवृत्ति जैसी व्यसन मुक्ति की अनेक प्रवृत्तियाँ अपने-अपने क्षेत्रों में जीवन-निर्माण के लिए कार्य कर रही हैं।

कंस भायणं व मुक्कतोए

गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी महाराज महामानव थे। महामानव वही कहलाते हैं जिनकी करुणा परिधि स्व तक सीमित न होकर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' को स्पर्श करती है। जिनका जीवन लक्ष्य आत्म-कल्याण ही नहीं, साथ में जनकल्याण भी होता है। वह मानवता के प्रति न्योछावर हो जाता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज की जीवन-पोथी में यही सब तो अंकित है। वे जहाँ भी गये, ग्राम और नगर, महल और झोंपड़ी, धनी और निर्धन, पढ़े-लिखे और अनपढ़ों को समान रूप से मानवता का बोध कराते थे। सभी यही कहते हैं कि 'गुरुदेव की हम पर बड़ी कृपा है।' पिछड़ी मानी जाने वाली जातियों के व्यक्ति कहते हैं कि 'आज जो कुछ भी हम हैं, दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदली है तो इसके निमित्त यही महाराज हैं। राजाओं के गुरु एवं बड़े-बड़े धनपतियों को नत-मस्तक होने पर भी इनमें अभिमान नहीं है,' और अपनी हृदयांजलि अर्पित करते हुए 'जगद्-वल्लभ' का उच्चारण करने लगते हैं। जो उनकी वाणी से प्रभावित थे और सैद्धान्तिक विचारों को जानने के इच्छुक रहते थे, उन्हें 'प्रसिद्ध वक्ता' कहकर अपनी मनोभावना व्यक्त करते हैं। जैन बन्धुओं के मानस में वो 'जैन दिवाकर' के रूप में अंकित हैं। सभी अपनी-अपनी भावना से

भावोद्गार व्यक्त करते थे। यदि इन सबको संक्षेप में कहा जाय, तो 'मुझ पर गुरुदेव का अत्यधिक स्नेह है' जैसा वाक्य ही पर्याप्त होगा।

इन सब विशेषणों से विभूषित श्री जैन दिवाकरजी महाराज जहाँ-कहीं भी पहुँच जाते थे, वहीं पर ही लोग गीतों में अपने विचारों को व्यक्त कर देते। लेकिन ये इतने निर्लिप्त थे कि आत्म-मंथन की गहराई में डूब जाते और चिन्तन करते कि इस गुणानुवाद से मैं अभिभूत तो नहीं हो गया हूँ, 'प्रभुता पाय काहि मद नाहिं' की कालिमा ने आवृत्त तो नहीं कर लिया? वे कविताओं या व्यक्त विचारों को सुनकर इतने उदासीन से हो जाते थे कि उसकी छाया मुखमुद्रा पर भी झलक उठती थी और न ऐसा कुछ संकेत करते जिससे वक्ता या अन्य को दुःख हो, लेकिन स्वयं विचारों में इतने डूब जाते कि 'कहीं ये विशेषण मेरी साधना में व्याघात न डाल दें, ये अनुकूल उपसर्ग मुझ मुनि पद से चलित न कर दें।'

शासन की सेवा और संघ की अनुशासन-व्यवस्था के सन्दर्भ में जब चतुर्विध संघ ने सर्वानुमति से यह निर्णय कर लिया कि आपश्री आचार्य पद ग्रहण करें और एक स्वर से आचार्य पद पर आसीन होने की सानुरोध प्रार्थना की। अपने निर्णय को प्रगट किया तो अवाक् से रह गये और बड़े ही निष्पक्ष भाव से कहा—"गुरुदेव की दी हुई मुनि पदवी से बढ़कर और पदवी नहीं है। यही बहुत है और इसके योग्य बन जाऊँ, यही मेरी साधना का लक्ष्य है। अब और क्या चाहिये।" इस वाणी में न तो मनुहार की आकांक्षा थी, न खुशामद कराने की बू और न अपने प्रभुत्व व सम्मान कराये जाने का प्रदर्शन था। इसी तरह के और भी अनेक प्रसंग आये, लेकिन ये महात्मा तो '**कंस भायणं व मुक्कतोए**' जैसे निर्लिप्त बने रहे।

भारंडे चेव अप्पमत्ते—हम-आप मानव शरीर को धारण किये हुए हैं। लेकिन हमें यह यों ही नहीं मिला है। न जाने किन अनन्त काल के पुण्य-प्रयासों एवं साधनाओं के फलस्वरूप असंख्य योनियों को पार करने जन्म लेने के पश्चात् इस पड़ाव पर आकर अपने पूर्ण विकास की ओर अग्रसर होने का अवसर पाया है। कोई भी व्यक्ति लाखों-करोड़ों की धनराशि देकर, यहाँ तक कि चक्रवर्ती भी अपने छह खण्ड के राज्य को देकर भी मानव-जन्म को खरीद नहीं सकता है और न इसका मुकाबला देव-जीवन ही कर सकता है। इसीलिए यह अनमोल है, इसका सही मूल्य वे ही व्यक्ति कर सकते हैं, जो सदा सावधान हैं। क्षणमात्र का भी प्रमाद नहीं करते हैं, जो सदा जागृत रहते हैं। जिनके विवेक-चक्षु खुले रहते हैं। प्रत्येक क्षण किसी न किसी कर्तव्य में लगे रहते हैं और एक कर्त्तव्य पूरा होने पर दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे, इस प्रकार प्रतिक्षण कर्त्तव्य-पालन में निरन्तर व्यस्त रहते हैं।

हमारे पूज्य जैन दिवाकरजी महाराज का यही तो जीवन-लक्ष्य था। प्रारम्भ से लेकर अवसान-पर्यन्त के समग्र जीवन में ऐसा कोई बिन्दु नहीं है, जब प्रमाद की परछाईं भी दिखे। युवावस्था की तरह वृद्धावस्था में भी जब शरीर थक जाता है, कुछ आराम चाहता है, तब भी स्वाध्याय जप, तप, चिन्तन, लेखन, प्रतिक्रमण में अप्रमत्त भाव से लीन रहने के साथ-साथ परकल्याण के प्रति समर्पित थे। उन्हें अपना कर्त्तव्य करने में समय बाधक नहीं होता था, न मौसम की चमकती धूप या कड़कड़ाती शीत लहर व्यवधान डाल पाती थी। इसके लिए स्वयं उन्हीं के कुछ सशक्त विचार सूक्तों को पढ़िये—

"जैसे कोई अन्धी औरत चक्की पीसती जाती है और ज्यों-ज्यों आटा चक्की से बाहर निकलता जाता है, त्यों-त्यों पास में खड़ा कुत्ता उसे खाता जाता है, वैसे ही जो साधक प्रमाद में

पड़ जाता है तो, उसकी साधना भी व्यर्थ हो जाती है। अतएव भगवान का फरमान है कि साधक को क्षणभर के लिए भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति भाग ४

वे बहुश्रुत !

बहुत से शास्त्रों को जानने वाला, बहुश्रुत का शब्दार्थ है। लेकिन यथार्थतः वही महापुरुष बहुश्रुत जैसे पावन पद पर विराजमान होने का अधिकारी है, जो स्वदर्शन और परदर्शन का मर्मज्ञ हो, आत्मा-परमात्मा, जीव-अजीव, स्वर्ग नरक, लोक-परलोक, द्रव्य-तत्त्व आदि के सम्बन्ध में अपनी क्या श्रद्धा, विश्वास, ज्ञान दृष्टि है ? अन्य दार्शनिक परम्परायें क्या मान्यताएँ रखती हैं ? इन मान्यताओं के पीछे कौन-सी दृष्टि है ? इन सब का ज्ञाता ही वास्तव में बहुश्रुत है।

हमारे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ऐसे ही बहुश्रुत महर्षि हैं। उन्होंने साधना के प्रारम्भ काल से ही शास्त्रों के अध्ययन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया था। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, उर्दू, फारसी आदि समकालीन भाषाओं का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त कर जैन आगमों के अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, गीता, कुरान आदि का अनुशीलन भी किया। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखित बहुत से ग्रन्थों के विशेष अंशों की जानकारी प्राप्त की। इस व्यापक अध्ययन का परिणाम यह हुआ कि स्वदर्शन और परदर्शनों का तुलनात्मक विश्लेषण करने की वे अपूर्व योग्यता प्राप्त कर सके। जैन और जैनेतर दर्शनों के गूढ़ रहस्य उनसे अनजाने नहीं रहे। जिन व्यक्तियों ने उनके प्रवचन सुने हैं वे भली-भाँति जानते हैं कि अपने विवेचनीय विषय को सर्वजन सुलभ बनाने के लिए दूसरे धर्मों-दर्शनों की अनेक युक्तियों, उदाहरणों को प्रस्तुत करते थे। जिससे जैन बन्धु तो लाभान्वित होते ही थे, लेकिन उनकी अपेक्षा जैनेतर जनता पूर्ण उत्साह, उल्लास, श्रद्धा के साथ प्रतिलाभित होती थी। यही कारण है कि जन्मजात मांस, मच्छी, मद्य पायी, चोर जैसे व्यक्तियों ने प्रगट में अपने दोषों का वर्णन करके संस्कार-नीति सम्पन्न जीवन बिताना प्रारम्भ किया था।

संगम तीर्थ

दो पवित्र जीवनदायिनी नदियों के एक-दूसरे में मिलकर एक रूप होने के स्थान को लोक में संगम तीर्थ कहते हैं। जैसे वर्तमान में गंगा और यमुना के मिलन स्थान से प्रयाग का दूसरा नाम संगम तीर्थ भी है। इसी तरह हमारे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज भी एक संगम तीर्थ हैं। उनमें अहिंसा और करुणा की ऐसी अजस्रधारा मिली हुई थी कि जिनकी शीतलता में प्राणिमात्र का तन-मन पुलक उठता था। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की अहिंसा और करुणा परिधि थी। वे अपने प्रत्येक कार्य का मूल्यांकन अहिंसा और करुणा की दृष्टि से करते थे। वे अपने प्रत्येक कार्य में यह देखते थे कि किसी के मन को आघात न पहुँचे, दूसरे का अहित न हो और सदैव इस प्रयत्न में लगे रहते थे कि सबका भला हो !

संघ समर्पित

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज यह भली-भाँति जानते थे कि व्यक्तित्व चाहे जितना भी महान् हो, लोगों के समूह आगे-पीछे घूमें और स्वागत सम्मान में पलक पाँवड़े भी बिछा दें, फिर भी समष्टि के सन्मुख उसका महत्त्व कम ही है। कोई भी व्यक्ति संगठन, समूह, संघ से ऊपर नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने संघ-संगठन के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने का
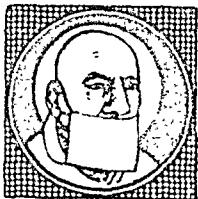
आह्वान किया था, अपने इस आह्वान के अनुसार सर्वप्रथम अपने आपको समर्पित किया था। जिसकी प्रतीति निम्नलिखित प्रसंग से हो जाती है—

ब्यावर में पाँच स्थानकवासी श्रमण सम्प्रदायों ने एक संघ की स्थापना की थी। इनके प्रमुखों ने अपनी-अपनी पदवियों-सम्प्रदायों को छोड़कर एक आचार्य की नियुक्ति की थी। जिन पाँच सम्प्रदायों का विलय हुआ था। उनमें से तीन में पदवियाँ नहीं थीं और दो में थीं। दो में से भी इस सम्प्रदाय में पदवियाँ अधिक थीं। अपने प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने अपने प्रिय शिष्य उपाध्याय पंडितरत्न श्री प्यारचन्दजी महाराज को भेजते हुए अपना संदेश भेजा था—"पदवी एक ही आचार्य की रखना, अन्य आचार्य-पद न रखना और यह पदवी श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को देना। यदि अलग-अलग पदवी दोगे, तो त्याग अधूरा रहेगा। अतः त्याग सच्चा और वास्तविक करना।"

इसके बाद का जो प्रसंग है उसमें ही आपश्री के संघ समर्पित जीवन की भावना साकार रूप लेती है कि सम्मेलन सम्पन्न करके जब श्री उपाध्यायजी महाराज लौटे और सब विवरण सुना तो अत्यन्त हर्ष विभोर हो गये। इस अवसर पर किसी ने कहा—"गुरुदेव! अपने सम्प्रदाय की सब पदवियों के त्याग से चार तो यथास्थान बने रहे, हानि अपनी ही हुई है।" तब आपने उसे बड़ी उदारता एवं सरलता से समझाते हुए कहा—"त्याग का भविष्य अतीव उज्ज्वल है। आज का यह बीज कल वटवृक्ष का रूप धारण करेगा। आज का यह बिन्दु कल सिन्धु बनेगा। दृष्टि व्यापक और उदार रखनी चाहिये। तेरा-मेरा क्या समष्टि से बड़ा होता है? व्यक्ति से समाज बड़ा होता है और समाज से संघ। संघ के लिये सर्वस्व अर्पण कर दोगे तो कोई परिणाम निकलेगा, पदवी तो इसके आगे बहुत नगण्य है।"

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने अपनी वचनलब्धि से जो अभिव्यक्त किया था, वह भविष्य में यथार्थ के धरातल पर प्रगट हुआ और उसकी परिणति हुई—श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के रूप में! जिसमें एक आचार्य के नेतृत्व में श्रमण वर्ग आज अपनी साधना में रत है एवं आत्म कल्याण करने के साथ-साथ जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियों के लिये यथायोग्य निर्देश करता है।

स्वाध्याय-ध्यान योगी!

पूज्यश्री जैन दिवाकरजी महाराज की ख्याति प्रसिद्ध वक्ता के रूप में थी और आपका नाम ही 'प्रसिद्ध वक्ता' पड़ गया था। यह उनका बाह्य रूप था, लेकिन जिन्होंने उनके अन्तरंग को देखा है, वे जानते हैं कि उनके जीवन में स्वाध्याय और ध्यान साकार हो उठे थे। अपने दैनंदिनी कार्यों से जब भी और जितना भी अवकाश मिलता था तब दिन को स्वाध्याय, विविध ग्रन्थों का अध्ययन अथवा किसी न किसी ग्रन्थ की रचना में संलग्न रहते। रात्रि के समय जब सभी सोये हुए होते, तब ध्यान-साधना में लीन रहते थे। अन्तेवासी श्रमण वर्ग दिन हो या रात्रि, सदैव ध्यानस्थ देखते तो उन्हें आश्चर्य होता कि आपश्री नींद लेते हैं या नहीं, और लेते भी हैं, तो कब? सदा ही जप-तप स्वाध्याय, ध्यान में लीन।

उक्त दोनों प्रकार की साधनाओं का परिणाम था कि आपश्री ने आगम, बौद्ध और वैदिक साहित्य का गम्भीरता से अनुशीलन किया था। आपको हजारों गाथायें, श्लोक, सूक्तियाँ कण्ठस्थ थीं प्रवचन के समय उन्हें प्रस्तुत करके श्रोताओं के मानस में एक नई किरण, नई अनुभूति जाग्रत कर देते थे।
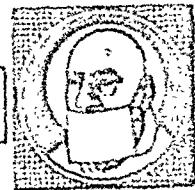
जन्मजात 'विरागी'

"पूत के लक्षण पालने में।" माता-पिता ने बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया बड़ा किया और योग्य वय सम्पन्न होने पर विवाह-सूत्र में बाँध दिया। इस आशा से कि विराग का बिरवा राग के वेग में अपने आप ही निर्मूल हो जायेगा। उन्होंने तो अपने विचारों से ठीक ही किया था कि बड़े-बड़े महर्षि भी रमणी की रमणीयता में रम गये, तो यह युवा दारा की कारा को कैसे उलांघ सकता है? लेकिन यौवन की अमराई में राग की कोयल नहीं कूजी सो नहीं कूजी। अन्त में तोड़ सकल जग द्वन्द-फन्द आतमलीन कहाये। राग हारा और विराग जीता।

आपश्री की आकांक्षा तो यही थी कि पत्नी भी साथ में प्रव्रज्या ले और प्रथम मिलन के अवसर पर भी यही भावना प्रदर्शित की थी। लेकिन पत्नी नहीं समझी। कारण यही था कि तब काल परिपाक नहीं हुआ था जिससे विरोध की वेल तो बढ़ाती रही, परन्तु विराग के बीज को नहीं बोया और जब समय आया, तो सचोट बोलों ने विचार बदल दिये। दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदल गई। वे बोल हैं—

"हमारा सांसारिक सम्बन्ध तो जन्म-जन्मान्तर में कितनी ही बार हुआ होगा, परन्तु धार्मिक सम्बन्ध नहीं हुआ और यह मनुष्यभव दुर्लभता से ही प्राप्त होता है, अतएव जैसे मैं साधु बन गया हूँ, वैसे तुम भी साध्वी हो जाओ, क्षणिक सांसारिक सुख को सर्वस्व मानकर अमूल्य और दुर्लभ मनुष्य जीवन को गँवा नहीं देना चाहिये। संसार असार है। उसमें कोई किसी का सदा का साथी नहीं और आत्म-कल्याण जो कि मनुष्य जीवन का वास्तव में सार्थक्य माना जाता है, वह भी उसमें नहीं है। परलोक की बात तो दूर रही, परन्तु इसी लोक में ही माता-पिता, भाई-बहिन, पति, पुत्र कोई सहायक नहीं होते। इसलिये योग्य लगे तो मेरा कहना मानकर तुम भी साध्वी बन जाओ।"

इस सार गर्भित कथन का परिणाम यह हुआ कि जो बात वर्षों पहले सम्भव हो जानी चाहिये थी, वह अब सम्भव हुई। पत्नी भी पति की अनुगामिनी बन गयी। धार्मिक सम्बन्ध जोड़ कर अटूट आत्मीय सम्बन्ध जोड़ लिया।

समाज-सुधारक

जैन मुनि की दीक्षा का मुख्य ध्येय आत्म-साधना है। लेकिन जिस क्षण यह दीक्षा ली जाती है, उसी समय से व्यक्ति के साथ सामाजिक निर्माण, धार्मिक प्रभावना और धर्म सेवा के कार्य भी बिना किसी प्रकार की प्रतिज्ञा लिये अपने-आप जुड़ जाते हैं। या फिर यों कह सकते हैं कि जैन श्रमण अपनी चर्या के द्वारा जो आदर्श अभिव्यक्त करते हैं, वह समाज-धर्म प्रभावना के रूप ले लेते हैं। अपनी पद-यात्रा और पंच महाव्रतों का बाना पहनकर ग्राम-ग्राम को उद्बोधन देते हुए, जो जागृति का शंखनाद करते हैं। उससे उनकी निस्पृह समाज सेवा सदैव स्मरणीय बनी रहती है।

पूज्यश्री जैन दिवाकरजी महाराज भी ऐसे ही एक सन्त शिरोमणि थे। उन्होंने अपने प्रवचनों के माध्यम से धर्म-बोध कराया, समाज को कर्त्तव्य का ज्ञान कराया और उसकी सही सार्थकता बतलाई, तो उससे ऐसा वातावरण बना कि पहले जन जैन बना और जैन बनकर अपने सामाजिक दायित्व की ओर अग्रसर हुआ।

मानवाकृति धारण करने वाले प्राणियों का समूह समाज नहीं है, लेकिन समग्र जीवन्त चेतना का संगठन है। यह संगठन यों ही संज्ञा देने के लिये प्राप्त नहीं हुई है और न ही इसे खण्डित करने का किसी को अधिकार है। इसी सूत्र को ध्यान में रखकर पूज्य श्री जैन दिवाकरजी

महाराज ने मानवीय आत्मा के दर्शन किये। उसमें बैठी हुई कुरीतियों, कुवासनाओं और कुवृत्तियों को परिमार्जित करने के लिये प्रस्थान किया। वे जहाँ भी गये, वहीं सर्वप्रथम मानव-मानव के बीच जुदाई पैदा करने वाले कारण अहं और उसके निमित्त धन के त्याग की सीधी-साधी भाषा बोली कि—"आप श्रीमन्त हैं और श्रीमन्ताई के अहम् में पड़ौसी को भी नहीं जानते तो यह प्रदर्शन व्यर्थ है। यदि श्रीमन्त हैं, तो समय पर परमार्थ कर लो! जिससे स्वार्थ भी सध जाये। यदि ऐसा भी नहीं कर सकते, तो उन रीति-रिवाजों की लीक न डालो जो दिनों-दिन बढ़ती हुई साधारण व्यक्ति को अपने जाल में जकड़ लेते हैं। उन कुप्रदर्शनों को वन्द कर दो। जो प्रजा के नैतिक पतन के कारण हैं।" इसी प्रकार समय-समय पर और भी अनेक प्रकार से मानव को उसके कर्त्तव्य का बोध कराते हुए जब और जहाँ कहीं भी किसी कुरीति-रिवाजों को देखते, तो उसके उन्मूलन के लिये प्रवचनात्मक उपदेश-आदेश देकर सन्मार्ग का दर्शन कराते थे।

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज का युग अंधश्रद्धा बहुल था। अंध-विश्वासों के वश होकर न मालूम कितने भैरों-भवानी को पूजता रहता था। इसे पूजने के निमित्त बिना किसी विचार के वह सब करने में तत्पर हो जाता था, जो मानवता को कलंकित करता था। ऐसे और भी अनेक कारण थे, जिससे मानव समाज अपने आप में अशांत था। पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने इन सब का समाधान किया। दिशा दी और दशा बदल दी। यही कारण है कि समय का अन्तराल बढ़ने पर भी उन्हें एक समाज सुधारक के रूप में माना जाता है। वे जहाँ भी गये, वहीं भिक्षा मांगी बुराइयों की और प्रतिदान में दिया मानवीय, ओज, तेज, आस्था, विश्वास!

समग्र आयामों का समवाय

पूर्वोक्त के अतिरिक्त सहस्र रश्मि पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज के और भी अनेक आयाम आलेख्य हैं। लेकिन यहाँ पर एक महान् जैनाचार्य के निम्नलिखित बोलों के पुण्य स्मरण होते ही विराम लेना उचित है—

"गुन समुद्र तुम गुन अविकार।
कहत न सुर गुरु पावै पार॥

अतएव समग्र आयामों का पुंजीकरण करके इतना ही प्रस्तुत करते हैं कि—

उनका व्यक्तित्व जागतिक था। किसी एक समाज या क्षेत्र अथवा राष्ट्र तक सीमित नहीं था। वे श्रमण थे, उनके कृतित्व में ग्रन्थि नहीं थी और ग्रन्थि हो भी कैसे सकती थी। जब वे स्वयं ग्रन्थि का भेद न करके निर्ग्रन्थ हुए थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति की मौलिकता के अनुरूप जहर पिया, अमृत बाँटा। उन्होंने सीमा में रहकर अनहद काम किया और जो किया, वह चिरस्थायी है। इस दृष्टि से उनके व्यक्तित्व को समग्र क्रान्ति के लिये समर्पित कहा जाये, तो सम्भवतः हम उनके सही मूल्यांकन के निकटतम पहुँचने में आंशिक रूप से सफल हुए हैं। उन्होंने अपनी चारित्रिक निर्मलता पूर्वक जनपद विहार करके अंध-विश्वासों, रूढ़ियों और परम्पराओं में धँसी मानवता को निर्मल बनाया है।

इस समग्रता का अवलोकन करने के पश्चात् भी यदि हमारी अंजलियाँ नहीं उठती हैं। साथ ही उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रेरणा नहीं लेते हैं, तो यह हमारा दुर्भाग्य माना जायेगा। क्या हम अभागे रहे! नहीं, तो आइये! अपने दिये से प्रकाश लें और प्रयास करें, उस विश्व को प्रकाश में लाने का, जो अँधेरे, अनिश्चय और संदेह से परावृत्त होकर क्लान्त-भ्रांत है। ☆
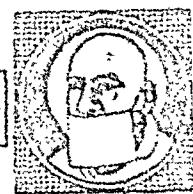
लोकचेतना के चिन्मय खिलाड़ी मुनिश्री चौथमलजी महाराज

डॉ० महेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी-एच० डी०

मुनिश्री चौथमलजी महाराज लोकचेतना के जबर्दस्त सचेतक थे। उनकी वाणी जन-कल्याणी थी इसलिए महल-मालिया से लेकर सड़क पर सोने वाले सभी उनके मानलेवा थे। वे अमीरों की राह और गरीबों की आह; दोनों को अपनी दोनों आँखों की ओलखाण देते थे। अपने उपदेशों में वे प्रत्येक वर्ग, धर्म, जाति-पाँति से ऊपर उठकर समुन्नत मानवता की बात कहते थे। मनुष्य के मर जाने से भी अधिक खतरनाक वे मनुष्यता की मौत मानते थे अतः उनके सारे उपदेश मानवता के चरम विकास को प्रकाशित करने वाले होते थे।

उन्हें गरीबों, पीड़ितों, असहायों और दलित-पतितों से अधिक लगाव, अधिक सहानुभूति और अधिक स्नेह-संबल था, परन्तु उच्च सम्पन्न समृद्धवर्ग से उन्हें कतई घृणा नहीं थी। घृणा यदि थी तो कुवृत्ति और कुकर्म से, चाहे वह ऊँचे तपके में व्याप्त हो, चाहे नीचे तपके में। वे चाहते थे ऊँचे लोग अपने हिये की आंख खोलकर निम्न वर्ग को अपनापा दें। इनकी हीनता को अपनी शालीनता दें। इनकी दीनता को अपना डाव और दान दें। इनकी जिह्वा को अपना पान दें। इनकी झुकी हुई झोंपड़ियों को अपने नेत्रों का पानी दें। अपने दरीखाने की बैठक दें। चौराहे का चिराग दें और वह सब कुछ दें जिसकी इन्हें जरूरत है और जिसकी वे अधिकता लिए हैं। वे अपने विसर्जन को इनका सर्जन मानें। मुनिश्री ने यही सब कुछ किया अपने उपदेशों के माध्यम से; अपनी पदयात्राओं के माध्यम से और अपने मेल-मिलाप के माध्यम से।

वे जानते थे कि यदि यह नहीं किया गया तो मनुष्य-मनुष्य का अन्तराल इतना अधिक बढ़ जायगा कि छोटे वर्ग का अस्तित्व पशुता के समकक्ष पहुँच जायगा और मनुष्यता एक मजाक बनकर रह जायगी। इसलिए उन्होंने लोकचेतना का सहारा लिया। लोक के मूल्य और उसके अस्तित्व को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने पाया कि लोक की श्री और शक्ति में, उसके संस्कार और सौंदर्य में वे सब भाव विभूतियाँ विद्यमान हैं, मगर उनका अहसास कराने वाला कोई नहीं है। यदि इनमें निहित सुप्त भाव जग गये तो इनका अभाव काफी हद तक दूर किया जा सकता है।

अतः उन्होंने अपने उपदेशों में लोक के उन चरित्रों को अस्तित्व दिया जो ज्ञात होते हुए भी अज्ञात बने हुए थे। जो बार-बार बोले जाते हुए भी अबोले थे। कई चरित्र, कई आख्यान, कई कथाएँ, गाथाएँ पुण्य के प्रताप की, सत्य और सदाचार की, शास्त्रों की, लोकजिह्वा की, समाज संस्कारों की, व्रतकथाओं की; इन सबको उन्होंने पुनर्जीवन दिया, प्रतिष्ठा दी, गीत दिया, संगीत दिया, नया बोल और कढ़ाया दिया, लोक का जीवन-रस दिया और इन सबके माध्यम से समग्र मानवता को, मनुष्यता की एक ऊर्ध्वगामी चेतना-गंगा की लहर नीचे से ऊपर तक और ऊपर से नीचे तक सबने समान भावभूमि पर पुलिया दी।

लोक की यह भावभूमि दीक्षा ग्रहण करने के पहले से ही, कहिये तो बचपन से ही, उनमें पैठी हुई थी। क्योंकि नीमच में अच्छे खिलाड़ी थे ख्यालों के; ख्यालों में भी तुर्राकलंगी ख्यालों के। एक अजीब किस्सा है इन ख्यालों के प्रचलन का, प्रारम्भ होने का। इनके मूल में भी संत ही रहे।
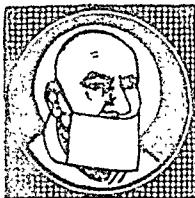
इनके मूल में ही क्या—आध्यात्म, योग और प्रेम की पीर के संदेश को जनता-जनार्दन में यदि किसी ने असरकारी रूप में प्रचारित-पारित किया तो वे संत ही थे, पहुँचे हुए संत।

तुकनगीर एक हिन्दू संत और शाहअली एक मुसलमान फकीर। दोनों ने लोककथावार्ता वार्तों-गाथों को लेकर जनगीतों की रचना करते, हाथों में चंग पर गाते चल पड़े, लोकवस्ती में और इनके साथ जुड़ता गया लोक। गाने-बजाने-नाचने वालों का एक समूह तैयार होता रहा। पर ये तो दोनों पहुँचे हुए संत थे। धीरे-धीरे इनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि अपने निवासस्थान चंदेरी (मध्यप्रदेश) के महाराज ने इन्हें अपने दरबार में याद किया। दोनों पहुँचे और अपनी आपसीखी गायकी सुनाई। महाराज इन्हें सुन इतने अत्यधिक प्रसन्न हुए कि सम्मानस्वरूप तुकनगीर को अपने मुकुट का तुर्रा और शाहअली को कलंगी भेंट कर दी।

फिर क्या था ! महाराज की छाप ने इन्हें और लोकप्रिय कर दिया। आसपास इनका सम्मान बढ़ने लगा। लोग श्रद्धा और भक्ति के वशीभूत हो इनके पास आने-उमड़ने लगे। दोनों अपनी लावणियाँ बनाते, ख्याल गायकियाँ गाते तो होते-होते इनके भक्तों, शिष्यों ने भी इनकी इस बेल को गाँव-गाँव घर-घर पहुँचा दिया। इसका प्रचार और इतनी जबर्दस्त लोकमान्यता रही कि मध्यप्रदेश से उठी यह लहर ब्रज-उत्तरप्रदेश और राजस्थान में भी उसी हरावलता के साथ फैली। नीमच में तो इसके खास अखाड़े कायम हुए। अच्छे खिलाड़ी उस्ताद लेखक और शौकिया लोगों ने इन ख्यालों की मण्डलियाँ तैयार कीं और एक होड़-सी मच गयी।

मुनिश्री चौथमलजी महाराज की जन्मभूमि नीमच इन्हीं ख्यालों के अच्छे खिलाड़ियों का घर था। एक विषय कविता का कोई छेड़ देता कि तत्काल उसका उत्तर उसी विषय, काव्य, छंद लहजे में देना होता था। इस तरह के प्रतिस्पर्धात्मक अखाड़े, लावणी दंगल चलते रहते। सत्य हरिश्चन्द, राजा भरथरी जैसे सत्य वैराग्यमूलक कथानक ख्यालों में खूब चलते और सराहे जाते थे। रात-रातभर ये ख्याल चलते जिन्हें देखने के लिए आसपास के गाँव के गाँव उमड़ पड़ते थे।

सम्भव है लोकजीवन में प्रचलित इन्हीं वैराग्य-भावना प्रधान ख्यालों, घटना किस्सों ने अपरोक्ष रूप से मुनिश्री को गृहस्थ-जीवन से उठाकर संन्यास-जीवन, संत-साधु जीवन की ओर प्रेरित किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। फलतः १८ वर्ष की उम्र में ही वे साधु बन गये।

साधुजीवन अंगीकार करने के पश्चात् भी इनका मन जन-जन की कल्याणकामना की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर जनता की भाषा और जनता में गाई जाने वाली लयों को, तर्जों को अपनाया। फलतः इन्होंने लोकजीवन प्रचलित जैसे—"घूंसो, जला, मीरां थारे कांई लागे गोपाल, रावण को समझावे राणी, तरकारी लेलो मालन आई बीकानेर की, बेटी साहूकार की थांपे चंवर दुरै छै जी राज, मनवा समझ म्हारा वीर;" जैसी तर्जों में विविध जैनचरित नायकों की ख्याल जीवनियाँ लिखीं, जो धर्मप्रेमी जनता में अधिक लोकप्रिय हुई। वे अब तक लोककण्ठों में प्रचलित धुनों, गीतों तथा कथा आख्यानों से परिचित हो चुके थे।

वे इसको भलि-भाँति जानते थे कि जनता की भाषा में दिया हुआ उपदेश जनता के हृदय तक पहुँचेगा।

मुनिश्री अपने व्याख्यानों में इन चरित्रों का सस्वर वाचन-गायन करते तब श्रोता-समुदाय पूरा का पूरा मुनिश्री के साथ अपने गायक स्वर मिलाता झूम उठता और चरित्र के साथ आत्मसात

हो जाता। कई लोग ऐसे मिल जायेंगे जिनके मन पर उनकी गायक वाणी का आज भी वही स्वर सौन्दर्य पैठा हुआ है। कितनी मीठी तेज और ऊँची साफ गायकी थी उनकी ! क्या तर्जें निकालते और गायन बनाते थे वे ! जनजीवन की समग्र भावनाओं को जैसे प्रत्येक अक्षर पंक्ति गायकी में वे जड़ देते थे।

एक नमूना देखिये—

उनकी चंपक चरित्र नामक प्रकाशित कृति का :

दोहा—वर्द्धमान शासन पति, तारण तिरण जहाज।
नमन करी ने विनवुं, दीजो शिवपुर राज ॥
गौतम गणधर सेवतां, सकलविघ्न टल जाय।
अष्ट सिद्ध नव निधि, मिले, पग-पग सुख प्रकटाय ॥

× × × ×

अरे करुणा दिलधारी करण उपकारी चंपक सेठजी ॥टेर॥
देश मनोहर मालवो सरे, नगरी बड़ी उज्जैन।
राजा राज करे जहाँ विक्रम, प्रजा में सुख चैन ॥१॥
बावन भैरू चौसठ योगीनी, सिफरा नदी के तीर।
महा काल गणपति हर सिद्धि सहायक आग्यो वीर ॥२॥
उसी नगर में जीवो सेठ रहे, धन भर्‍या भंडार।
मुल्कां में दुकाना उसकी, बड़ा है नामूनदार ॥३॥
सेठानी है धारिणी सरे, पतिव्रता सुखमाल।
चंपक कुँवर है विद्या सागर, शशि सम शोभे भाल ॥४॥

मुनिश्री चौथमलजी महाराज के शिष्यों के शिष्य एवं अन्य मुनियों पर भी वर्तमान में उन्हीं की तर्ज शैली में इस प्रकार की रचनाओं में लीन है। इन शिष्यों में मूलमुनि रचित श्री समरादित्य-चरित्र तथा व्यवहारी रतनकुमार-चरित्र, मुनि रमेशकुमारजी का वीरभान उदयभान चरित्र, हजारीमलजी महाराज साहब का सती कनकसुन्दरी चरित्र उल्लेखनीय है।

लोकगायकी की इस परम्परा में मुनिश्री ने जैन-चरित्रों की रचना कर न केवल उन्हें सामान्य आम जनता के लिए शिक्षाप्रद ही बनाया, अपितु लोकानुरंजन द्वारा लोकशिक्षण का एक जबर्दस्त द्वार भी सदा के लिए खोल दिया जिससे जैनधर्म केवल जैनों के रहने से बच गया। मुनिश्री की देन जितनी समाज को रही, साहित्य और सांस्कृतिक इतिहास को भी उससे कम नहीं रही। वे हर संदर्भों में जीवन व समाज को स्वस्थ भावभूमि और जीवनीशक्ति प्रदान करने वालों में एक अगुआ संत के रूप में स्मरण किये जाते रहेंगे।

[परिचय व सम्पर्क सूत्र—
राजस्थानी लोककला के विश्रुत मर्मज्ञ विद्वान्
निदेशक—भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर]

☆

[सृजनधर्मा सत्पुरुष द्वारा सत्प्रेरित स्वयंसेवी संगठनों का परिचय]

✡ कविरत्न श्री केवलमुनि

समाज-सुधार, उसके निर्माण और समाज में उच्च एवं मंगलकारी कार्य सतत होते रहे, इसके लिए मानव विभिन्न संस्थाओं का निर्माण करता है। संस्थाओं की संस्थापना के प्रमुख उद्देश्य होते हैं—समाज में किसी कल्याणकारी कार्य तथा प्रवृत्तियों को चालू रखना और उसे उन्नत एवं सुसम्बद्ध बनाना।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज भी संस्थाओं के महत्त्व से परिचित थे। वे संघीय एकता, सामूहिकता, सहकारिता के लाभों से परिचित ही नहीं, उसके सुफल में विश्वास रखते थे। वे जानते थे कि लोकोपकार के कार्य अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता। उसके लिए संस्थाओं की, सामाजिक संगठनों की आवश्यकता होती है और संस्थाएँ ही उसे सुचारु रूप से चिर काल तक कर सकती हैं। संस्थाएँ व्यक्ति के विचारों को अमर बना देती हैं। आपश्री की प्रेरणा से अनेक समाज-सेवी संस्थाओं का निर्माण हुआ। जिनमें से कुछ ये हैं।—

बालोतरा में जैन मण्डल

विक्रम सम्वत् १९७१ में श्री जैन दिवाकरजी महाराज बालोतरा पधारे। उस समय तक वहाँ के निवासी सभा आदि के विचार से पूरे जानकार नहीं थे। उसकी स्थापना एवं संचालन के नियमों की तो उन्हें कल्पना भी नहीं थी। बालोतरा निवासी व्यक्तिगत रूप से श्रद्धालु थे, धर्म-क्रियाएँ भी कर लेते थे और कोई साधु-साध्वी आ जाता तो उसके प्रवचन सुन लेते बस यहीं तक उनका धार्मिक जीवन था। संघ बनाकर किसी साधु को लाना, उसका चातुर्मास कराना—आदि बातों की ओर उनकी रुचि न थी।

जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने प्रवचनों में ये सब बातें बताईं। संस्था-निर्माण की प्रेरणा दी और उसके लाभ बताए। इस लाभप्रद बात को लोगों ने समझा और बालोतरा में जैन मंडल की स्थापना हुई।

जैन वीर मंडल, ब्यावर

ब्यावर में जैनों की घनी आबादी है, किन्तु सम्प्रदायगत भेद-भाव का रंग भी कुछ गहरा है। जैन दिवाकरजी महाराज का (सम्वत् १९८२) चातुर्मास वहीं हुआ। उनकी प्रेरणा से युवा-शक्ति सम्प्रदायगत भेदभावों से कुछ ऊपर उठी और उन्होंने जैन वीर मण्डल की स्थापना की

चातुर्मास में बाहर से आने वाले दर्शनार्थियों के आवास-भोजन की व्यवस्था, सार्वजनिक प्रवचनों का आयोजन तथा उनकी शान्ति-व्यवस्था तथा तपस्वीरत्न श्रीमयाचन्दजी महाराज के ३७ उपवासों की तपःपूर्ति उत्सव की व्यवस्था सुचारु ढंग से जब इस मण्डल और उसके सदस्य युवकों ने की, तब नगर के आबाल-वृद्ध सभी जैन भाइयों ने इस संस्था का महत्त्व समझा। वे इसके कार्यों की सराहने लगे। उन्होंने सोचा—'यदि इस संस्था की स्थापना नहीं हुई होती तो युवकों की शक्ति निर्माणकारी कार्यों में कैसे लगती।'

पीपलोदा में दो संस्थाएं

विक्रम सम्वत् १९८२ में जैन दिवाकरजी महाराज का आगमन पीपलोदा में हुआ। वहाँ के निवासियों में भक्तिभावना बहुत थी। किन्तु दो बातों का अभाव था—प्रथम, संघ व्यवस्था अच्छी नहीं थी और दूसरी भावी पीढ़ी में जैनत्व को सुरक्षित रखने वाली संस्था का अभाव। संघ व्यवस्था के लिए एक मण्डल की आवश्यकता थी और जैनत्व की रक्षा पाठशाला से हो सकती थी। गुरुदेव ने स्थानीय श्रावक समाज को इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रेरणा दी।

श्रावक-समाज ने सर्वप्रथम **'श्री जैन महावीर मण्डल'** की स्थापना की। इसके बाद परम उदार समाज हितैषी दीवान साहब के कर-कमलों से सम्वत् १९८३ में चैत सुदी ८ मंगलवार के शुभ मुहूर्त में **जैन पाठशाला** की स्थापना हुई। इसके व्यय के लिए उसी समय कुछ फंड भी एकत्रित हुआ।

जैन महावीर मण्डल, उदयपुर

उदयपुर सारे मेवाड़ का केन्द्र है। यह जैनों का भी विविधरंगी क्षेत्र है। महाराणा जी की गुरुदेव के प्रति भक्ति के कारण जैन दिवाकरजी महाराज का सारे मेवाड़ में डंका बज गया। महाराजश्री ने यहाँ के जैनों को सांप्रदायिकता के दलदल से निकालने हेतु एक संस्था के निर्माण की प्रेरणा दी। उदयपुर में शीघ्र ही जैन महावीर मण्डल की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य रखा गया—जैन शासन का भविष्य उज्ज्वल करना और युवा पीढ़ी में जैनत्व के संस्कार भरना, तथा आकृष्ट भावुक लोगों एवं बाहर से आये दर्शनार्थियों की उचित सेवा एवं देखभाल करना।

जब आपश्री के चातुर्मास के दौरान ब्यावर निवासी रायबहादुर सेठ दानवीर श्री कुन्दनमलजी, उनके सुपुत्र श्री लालचन्दजी तथा पूरा परिवार आपके दर्शनार्थ आया तो वे जैन महावीर मण्डल की सेवा देखकर बहुत प्रभावित हुआ और धर्ममन्दिर आदि के लिए धनराशि भेंट की। इस मण्डल ने कई बार जैन दिवाकरजी महाराज के सार्वजनिक प्रवचन भी कराए और बाहर से आये दर्शनार्थियों की भी उचित सेवा की।

गोगुंदा में जैन पाठशाला

उदयपुर चातुर्मास के पश्चात् जैन दिवाकरजी महाराज गोगुंदा पधारे। वहाँ अपने प्रवचनों से आपने स्थानीय श्रावकों का ध्यान जैनत्व की रक्षा हेतु एक पाठशाला की स्थापना की ओर आकर्षित किया। तदनुसार जैन पाठशाला की स्थापना हुई और स्थायी फंड एकत्रित कर इसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बना दी गई।

जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम

उत्तम साहित्य के प्रकाशन के लिए साहित्य-प्रकाशक समिति अथवा संस्था का होना
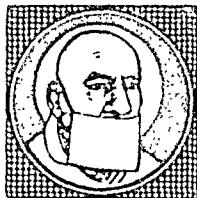
आवश्यक प्रतीत हो रहा था। इस कार्य को रतलाम के श्रावकों ने जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति की स्थापना करके पूरा किया। जैन दिवाकरजी महाराज एवं अन्य मुनिगण जिस साहित्य की रचना करते थे वह यहाँ से प्रकाशित होता था। विक्रम सम्वत् १९८३ में जब ब्यावर निवासी सेठ कुन्दनमलजी जैन दिवाकरजी महाराज के दर्शनार्थ उदयपुर आये तो ५२०० रुपये का एक सुन्दर भवन खरीदकर इस संस्था को दिया।

अब तक इस संस्था से सैकड़ों छोटी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें गद्य-पद्य में चरित्र जीवनियाँ हैं और भजन-स्तवन भी। पहले निवेदन, पुण्यभूमि, रतलाम टाइम्स आदि पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती रही थीं किन्तु अब उनका प्रकाशन बन्द हो चुका है।

रतलाम की अन्य संस्थाएं—

जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से रतलाम में अन्य कई संस्थाओं ने भी जन्म लिया। इनमें **श्री जैन महावीर मंडल** और एक **जैन पाठशाला** भी स्थापित हुई।

जैन पाठशालाओं की स्थापना—

जैन दिवाकर जी महाराज का उद्‌घोष था—'जैनो! सोचो-समझो और युग को पहिचानो। भावी संतति में जैन धर्म के संस्कारों को जागृत करने तथा समाज को नैतिक दृष्टि से उन्नत और समृद्ध बनाने हेतु जैन पाठशालाओं की स्थापना अति आवश्यक है। इसमें लगाया हुआ धन सार्थक होता है। शिक्षण का बीज ज्ञान वट-रूप में फलेगा।'

आपके इस उद्‌घोष का अनुकूल प्रभाव पड़ा। जैनियों ने अपने-अपने क्षेत्र में पाठशालाओं की स्थापना का निश्चय कर लिया। फलस्वरूप रायपुर (बोराणा), देलवाड़ा, सनवाड़, गोगूंदा, नाई, सोनई (महाराष्ट्र), इन्दौर, अहमदनगर आदि स्थानों में जैन पाठशालाएँ खुलीं। महाराष्ट्र में सोनई से जैन पाठशाला की लहर शुरु हुई तो गाँव-गाँव में फैल गई। जहाँ-जहाँ जैन दिवाकर जी महाराज के चरण पड़े, पाठशालाएँ खुलती गई हैं। आपकी प्रेरणा से इन्दौर में **मध्यभारतीय जैन सम्मेलन** हुआ। उसमें गाँव-गाँव मे पाठशालाएँ खोलने का प्रस्ताव पारित हुआ। इस प्रस्ताव से भी पाठशालाओं की स्थापना के कार्य को गति मिली।

महावीर मंडलों की स्थापना

जैन दिवाकरजी महाराज का विचार था जैन लोग पारस्परिक सम्प्रदायगत मतभेदों को भूलकर एक हों और समाज सेवा के कार्य में जुटें। इसीलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर महावीर मंडलों की स्थापना कराई। अमलनेर में जब तीनों संप्रदायों (दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी) ने सम्मिलित रूप से महावीर जयन्ती मनाई तो वहाँ श्री महावीर मंडल की स्थापना हुई। इसी प्रकार, फालणा, इन्दौर आदि स्थानों पर भी श्री महावीर मंडल बनाये गये।

जोधपुर में महिला आश्रम

जोधपुर-जैन बहुल क्षेत्र है। यहाँ धर्म भावना भी अधिक है। जैन दिवाकरजी महाराज के उपदेशों से वहाँ की महिलाओं के धार्मिक संस्कारों में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इन धार्मिक संस्कारों में दृढ़ता कायम रखने और महिलाओं को सुशिक्षित करने के लिए महिला आश्रम की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। सर्वप्रथम इसके लिए एक भवन खरीद लिया गया। वहाँ महाराजश्री का प्रवचन रखा गया। व्याख्यान में आपश्री ने महिला जीवन, उसके महत्व और उनकी पारिवारिक तथा सामाजिक जिम्मेदारियों पर सर्वांगपूर्ण प्रकाश डालते हुए महिला आश्रम की उपयोगिता बताई। महिलाओं पर तो इसका प्रभाव पड़ा ही, पुरुष वर्ग भी बहुत प्रभावित

हुआ। तत्काल महिला आश्रम की योजना बनी और इसके संचालन के लिए ५००० रुपये का वचन भी दिया गया। इस प्रकार जोधपुर में महिला आश्रम की स्थापना सुन्दर ढंग से हो गई।

यादगिरी का पुस्तकालय

पुस्तकालय पुस्तकों का ही नहीं, ज्ञान का भी भंडार होता है। यह सर्व-साधारण के ज्ञानोपार्जन के लिए सर्वाधिक उपयोगी साधन है। इसकी उपयोगिता और जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से यादगिरी श्री संघ ने सर्वसाधारण के लिए एक पुस्तकालय की स्थापना की।

अहमदनगर में ओसवाल निराश्रित फंड

अहमदनगर चातुर्मास के अवसर पर जैन दिवाकरजी महाराज ने निर्धन और निराश्रित स्वधर्मी भाइयों की सहायता हेतु श्रावकों को प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप स्थानीय संघ ने 'ओसवाल निराश्रित फंड' की योजना बनाई। इस परोपकारी कार्य हेतु उदार हृदय दानी सज्जनों से १५,००० रुपये भी प्राप्त हो गए।

मन्दसौर में समाज-हितैषी श्रावक मंडल

वि० सं० १९९९ के मन्दसौर चातुर्मास के दौरान आपकी प्रेरणा से पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज-सम्प्रदाय के हितैषी मंडल की स्थापना हुई। इसका संक्षिप्त नाम 'समाज हितैषी श्रावक मंडल' है। सं० २००१ में उज्जैन में इस मण्डल का अधिवेशन भी हुआ। मण्डल को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध और सुदृढ़ बनाने के लिए कार्यकर्ताओं ने हजारों रुपये का चन्दा भी इकट्ठा किया।

चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम

जैन दिवाकरजी महाराज का चातुर्मास (वि० सं० २००० का) चित्तौड़गढ़ में था। वहाँ आपने श्रावकों को प्रेरणा देते हुये फरमाया—'समाज के वृद्धों, अपाहिजों की सेवा करना पुण्य का कार्य है। इनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। ये परिवार के ही नहीं, समाज के भी महत्वपूर्ण अंग हैं। वृद्धावस्था में इनकी अध्यात्म-साधना, चिन्तन-मनन एवं अन्य धार्मिक क्रिया-कलापों के लिए समुचित साधन जुटाना समाज का कर्तव्य है।'

आपके इन वचनों से समाज में जागृति आई। चतुर्थ वृद्धाश्रम की स्थापना हुई। इस कार्य के लिए जब जैन दिवाकरजी महाराज का २००२ का चातुर्मास इन्दौर में था तब राय बहादुर सेठ कन्हैयालालजी भुगनचन्दजी भंडारी ने एवं समाज के दानवीर श्रीमन्तों एवं सामान्य सद्गृहस्थों ने मुक्तहस्त से दान देकर २०००० रु० एकत्र करके संस्था की जड़ मजबूत की।

इस संस्था ने आर्थिक सहायता देकर अनेक वृद्धों का भरण-पोषण किया और उनकी अध्यात्म-साधना हेतु समुचित साधन जुटाए हैं।

आज भी चित्तौड़ किले पर यह संस्था अपना पुनीत सेवा कार्य कर रही है।

ये और इस प्रकार की विविध संस्थाएँ जो आपश्री की प्रेरणा से प्रारम्भ हुईं, अपने-अपने क्षेत्र में कार्यशील हैं। इनके द्वारा समाज का बहुमुखी कार्य हो रहा है।

ये संस्थाएँ वे पौधे हैं, जिनकी जड़ें जैन दिवाकरजी महाराज रूपी सूर्य की धूप से सुदृढ़ हो रही हैं, जिनके पत्ते और डालियों एवं टहनियों पर उनके नाम का प्रकाश पड़ रहा है। ये ऐसे स्मारक हैं जो आपकी स्मृति को स्थायी रखकर भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को भी ज्ञान और सेवा का प्रकाश दिखाते रहेंगे और देते रहेंगे जैन दिवाकर रूपी दिवाकर के समान प्रेरणा!

❋❋

भारत के एक अलौकिक दिवाकर

☆ श्री मनोहर मुनि 'कुमुद' (बम्बई)

इस गगनमण्डल पर दिवाकर का उदयास्त अनन्त बार हो चुका है। क्षितिज पर इसका शुभागमन इस धरती पर दिव्य प्रकाश लेकर आता है और अस्ताचल की ओर इसका प्रयाण धरती पर अन्धकार का गहनावरण डाल देता है किन्तु महापुरुष एक ऐसा दिवाकर है कि जब इस संसार में उसका उद्‌भव होता है तो वह अपने साथ दिव्य संस्कार का अनन्त प्रकाश लेकर आता है। जब तक वह इस दुनिया में रहता है तब तक वह लोकमानस के सचेतन धरातल पर अपने जीवन के तप, त्याग, सत्य, संयम, माधुर्य, मैत्री, सौहार्द, स्नेह तथा उपदेश वाणी की प्रकाश किरणें विखेरता रहता है, किन्तु जब वह इस नश्वर जगत से मृत्यु अस्ताचल की ओर महाप्रयाण करता है तब भी वह इस धरा पर अपने पावन एवं पुनीत आदर्शों का एक अनन्त प्रकाश छोड़कर जाता है। आकाश के उस दिवाकर में और धरती के इस दिवाकर में यही अन्तर है। यह अन्तर भी कोई कम नहीं है। यह वह अन्तर है जो एक को लौकिक और दूसरे को अलौकिक बना देता है।

सूर्य सदैव पूर्व दिशा में उदित होता है और पश्चिम में अस्त हो जाता है। किन्तु चेतन सूर्य के लिए ऐसा कोई नियम नहीं है। महापुरुष इस धरती पर किसी भी दिशा से प्रकट हो सकता है। उसके लिए दिशा का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उस दिशा मुक्त दिवाकर का अस्त इस धरती पर कहीं भी हो सकता है वस्तुतः तत्त्व दृष्टि से देखा जाये तो दुनिया में महापुरुष का अस्त कभी होता ही नहीं। क्योंकि उसके सजीव आदर्श लोक-मानस में ज्ञानालोक के रूप में सदैव उदित रहते हैं। केवल इस धरातल पर चर्म-चक्षुओं के लिए उसका दर्शन न होना ही उसका अस्त है। जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज इस धरती के एक ऐसे ही ज्ञान एवं चारित्र के प्रकाशमान दिवाकर थे। आपका उदय मध्यप्रदेश के नीमच नगर में हुआ और आपके पार्थिव शरीर का अस्त कोटा की धरती पर हुआ किन्तु आपका पुण्य स्मरण हर हृदय-गगनाङ्गन में जैन दिवाकर के रूप में आज भी उदित है। दुनिया के मन से वह कभी अस्त नहीं हुआ। अवश्य उस व्यक्तित्व में कुछ वैशिष्ट्य होगा। नहीं तो दूसरों के मन में सूर्य बनकर चमकना कोई साधारण बात नहीं है। गंगाराम की आँखों का तारा और केसरादेवी के कुल का दीपक आगे चलकर जैन दिवाकर बन जायेगा। प्रकृति के इस गुप्त रहस्य को कोई नहीं जानता था। दुनिया में जीव कर्म से बँधा हुआ चला आता है और मृत्यु के आने पर चला जाता है। आने और जाने में कोई विशेषता नहीं। मानव इस धरती पर अपने जीवन-काल में रहता किस तरह से है उसके व्यक्तित्व का सारा रहस्य इस तथ्य पर ही आधारित रहता है। केवल जीवनयापन मात्र जीवन का कौशल नहीं है। मानव अपने साथ मोह लेकर आता है और सारी उमर वह अपने मन, वचन और काया के कर्म-जाल से उस मोह का सिंचन करता रहता है। स्व-सुख से बँधा हुआ जीव केवल मोह को ही बढ़ाता है और मोहशील व्यक्ति जीवन-भर दुःख और कर्मबन्ध के रूप में उस मोहवृक्ष के कटु-फल भोगता रहता है। किन्तु कभी पूर्व जन्म के पुण्योदय से व्यक्ति के अन्तरङ्ग में सद्ज्ञान का जन्म होता है। ज्ञान जीवन की वह मंगल वेला है जिस वेला में मानव के मिथ्या मोह का उपशमन होने लगता है। उसे अपनी आँखों के सामने अपनी आत्मा का दिव्य प्रकाश एवं शाश्वत सुख नजर आने लगता है। वह जगत के समस्त चेतन एवं अचेतन सम्बन्धों के नागपाश से मुक्त होने के लिए अधीर हो जाता है। चित्त की इस विरक्त दशा को शास्त्रीय भाषा में वैराग्य कहा जाता है।

श्री चौथमलजी महाराज के हृदय में एक ऐसा ही सच्चा एवं पक्का वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे त्याग के शिखर पर चढ़ने के लिए बेचैन हो उठे। वैराग्य और त्याग के बीच में संघर्ष की एक विकट घाटी साधक को पार करनी पड़ती है। जिसके हृदय में लगन एवं धैर्य का जितना अधिक वेग होता है उतनी ही जल्दी वह उस विषमस्थल से आगे निकल जाता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के जीवन-चरित्र के अध्ययन से मालूम होता है कि उन्हें भी त्याग-पथ के पथिक बनने के लिए एक ऐसा ही घोर संघर्ष का सामना करना पड़ा। स्मरण रहे कि व्यक्ति को विराग की भूमिका पर आने के लिए सबसे पहले अपने ही हृदय के मोह-पिशाच से लड़ना पड़ता है। इस संघर्ष में वर्षों भी बीत सकते हैं किन्तु जब साधक इस द्वन्द्व युद्ध में पूर्ण विजयी होता है तभी वह ज्ञानगर्भित-वैराग्य की उच्च भूमिका पर आरोहण करता है। इसके पश्चात् त्याग की चोटी पर पहुँचने के लिए साधक के जीवन में बाह्य जगत के मोहक सम्बन्धों का संघर्ष शुरू होता है। इस संघर्ष में कभी वर्षों लग जाते हैं और कभी यह कुछ दिनों में भी समाप्त हो जाता है। जो साधक अपने भीतरी मोह पर विजय पा लेता है उसके पगों में अपने मोह की स्वर्ण शृङ्खला कोई नहीं डाल सकता। साधना एवं संयम पथ के लिए स्वयं को सहमत करने की अपेक्षा इस मार्ग का अनुगामी बनने के लिए दूसरे बन्धुओं की सहमति प्राप्त करना अधिक दुष्कर नहीं होता। वैराग्य की चट्टान से दुनिया के किसी मोह को टकराने की हिम्मत नहीं हो सकती। बन्धुओं का मोह वैराग्य से टकराता नहीं, केवल झूठे प्रलोभन दिखलाकर फुसलाता है। किन्तु ज्ञानी किसी फुसलाहट से नहीं आता। श्री चौथमलजी महाराज के जीवन पृष्ठ देखने से ज्ञात होता है कि वह प्रयत्न करने पर भी किसी प्रलोभन-जाल में नहीं फँसे। उनका विवाह भवितव्यता की इच्छा-पूर्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। उसके लिए उनकी अपनी कोई इच्छा व कामना नहीं थी। जो भ्रमर फूल की पांखुड़ी के निकट पहुँच कर भी उसके कोमल एवं कमनीय स्पर्श से अनभिज्ञ रहे वह भ्रमर कितना निस्पृह होगा। श्री चौथमलजी महाराज एक ऐसे ही निस्पृह वैरागी थे। उनके अग्रज और पिता के निधन ने उनके वैराग्य को और भी परिपुष्ट कर दिया। जीवन की अमंगल घटनाओं से माँ केसर का मन दुनिया से विरक्त हो चुका था। जो स्वयं विरक्त हो जाये वह दूसरों के लिए बन्धन नहीं बन सकता। जो माँ स्वयं साधिका बनने के लिए तत्पर हो उसका जीवन अपने साधक पुत्र के लिए कभी बाधक नहीं बन सकता। पुत्र के स्वरों में माँ ने अपने स्वर मिलाये। श्री चौथमलजी महाराज एक आचारनिष्ठ गुरु की खोज में निकल पड़े। जो हृदय के अज्ञानतम को मिटाकर जीवन में सत्य का चमत्कृत प्रकाश बिखेर सके वही गुरु के सिंहासन पर समासीन होने के योग्य होता है। गुरु जीवन का चतुर-चितेरा तथा एक कुशल कलाकार माना जाता है। योग्य को योग्य की ही खोज होती है। और वह उसे निस्सन्देह प्राप्त हो ही जाता है। आखिर श्री चौथमलजी महाराज को आशुकवि श्री हीरालालजी महाराज के दर्शन हुए। यह दर्शन श्री चौथमलजी महाराज की खोज की चरम अन्तिम सीमा थी। वस्तुतः यह दर्शन गुरु और शिष्य का एक प्रकार से मधुर मिलन था। कभी-कभी जन्म-जन्म के बिछुड़े हुए हृदय बहुत ही रहस्यपूर्ण ढंग से मिल जाते हैं। संस्कारों का पारस्परिक आकर्षण अद्भुत एवं अचूक होता है। पूज्य श्री हीरालालजी महाराज के चरणों को पाकर मोक्षार्थी श्री चौथमलजी महाराज के तृषातुर नयनों को अनुपम सुखानुभूति हुई। हृदय गुरु-चरणों में समर्पित होने के लिए व्याकुल हो उठा। आपकी जैनेन्द्री दीक्षा की उत्कण्ठा-नदी में प्रबल वेग आ गया।

दीक्षा केवल वेश परिवर्तन नहीं, बल्कि त्याग के महापथ पर जीवन का समर्पण है; आत्मा के

अनन्त लोक में माया-विमुख मन का आनन्दमय प्रवेश है। दीक्षा केवल बाह्याचार का आग्रहण ही नहीं है। बल्कि समता योग की साधना के लिए विषय-कषाय का विसर्जन है। दीक्षा का उद्देश्य महाव्रतों का मात्र प्रदर्शन नहीं बल्कि चरित्ररत्न का सम्यक् परिपालन एवं जीवन का ऊर्ध्वीकरण है। कोई व्यक्ति दीक्षा को भूल से सुविधावाद न समझ ले। यह तो व्रतों की असिधारा पर साधक का प्रफुल्ल मन से अनुगमन है। हर्षमय प्रयाण है।

श्री चौथमलजी महाराज संयम की इस सुतीक्ष्ण असिधारा पर चलने के लिए कटिबद्ध थे। वे किसी मंगल सुअवसर की उत्सुक हृदय से प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु विधि के लेख अमिट होते हैं। विधाता उनके दीक्षा-पथ पर अवरोध के काँटे बिखेर रहा था। उनके ससुर श्री पूनमचन्दजी का विरोध प्रत्येक संघ को सोचने के लिए बाध्य कर देता था। पुत्री का मोह उन्हें ऐसा करने के लिए विवश कर रहा था। वह ससुर से असुर नहीं बना। उसका विरोध उचित था कि अनुचित मैं इस समीक्षा में उतरना नहीं चाहता किन्तु एक बात अवश्य कहूँगा कि दीक्षा के उपरान्त उसका विरोध उपेक्षा बनकर अवश्य रहा होगा क्योंकि वह प्रतिकार नहीं बना। मोह बड़ा नीच और पतित होता है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए गजसुकुमार और सोमिल का एक उदाहरण ही पर्याप्त है। किन्तु चरित-नायक के जीवन-चरित्र के पवित्र पृष्ठों से ज्ञात होता है कि दीक्षा के उपरान्त रुष्ट ससुर ने आपको किसी भी उपसर्ग से आतंकित नहीं किया। शायद दिवाकर की कुछ रश्मियाँ उसकी तमसावृत्त हृदय गुहा में पहुँच गई हों और उसने आपके निष्काम त्याग का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया हो। त्याग से बड़ा संसार में कोई बल नहीं। उसके सामने कभी पाषाण भी नवनीत पिण्ड बनकर पिघल जाता है।

आपके त्याग मार्ग को ग्रहण करने के मंगल क्षणों की शोभा को तो कुछ ही आँखों को देखने का अवसर मिला। क्योंकि आपकी दीक्षा व्यर्थ के आडम्बर से एकदम मुक्त रही। किसी साधक की दीक्षा-शोभा हजारों हृदयों को वाह-वाह करने को विवश कर देती है। किन्तु जीवन-साधना किसी को भी आकृष्ट नहीं कर पाती और किसी साधक की दीक्षा बड़े ही साधारण रूप में सम्पन्न होती है किन्तु वह साधक अपने साधना-बल से संघ में एक असाधारण व्यक्तित्व बन जाता है और उसके आध्यात्मिक जीवन की अलौकिक शोभा जन-मानस को आश्चर्यचकित कर देती है। सर्ववन्दनीय पूज्य श्री चौथमलजी महाराज भी जैन शासन में एक ऐसे साधक थे जिनकी दीक्षा साधारण किन्तु आत्म-साधना असाधारण थी।

आत्म-साधना साधु जीवन का सबसे ऊँचा लक्ष्य है। आत्म-साधना का उद्देश्य है आत्म-गुणों का उत्तरोत्तर विकास तथा अन्ततः पूर्णता की उपलब्धि। विकास के लिए बाधक कारणों को हटाना आवश्यक होता है। जैनधर्म की दृष्टि में कषाय साधना-पथ का सबसे बड़ा विघ्न है। कषाय का पूर्ण विजेता अरिहन्त है। जैनधर्म कषाय पर विजय पाने की एक साधना सारणी है। श्रावक तथा श्रमण कषाय पर विजय पाने वाले केवल साधक मात्र हैं।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज भी अपने आपको अरिहन्त मार्ग का एक साधक ही समझते थे। जो अपने को साधक मानता है वह अवश्य उत्तरोत्तर विकास करता है और एक दिन संसार में महान् व्यक्तित्व का स्वामी बन जाता है। श्री चौथमलजी महाराज भी गुरु की चरण-छाया में रहकर आत्म-साधना करने लगे और एक दिन जैन शासन की शान बन गये। जैन शासन में चरित्र का सम्यक् परिपालन ही आत्म-साधना है। किन्तु वह ज्ञान के बिना सफल नहीं होती।

मंजिल पर पहुँचने के लिए चरणों में वेग, हृदय में उत्साह तथा आँख में ज्योति ये तीनों अपेक्षित हैं। ठीक इसी तरह आत्म-सिद्धि पाने के लिए जीवन में चारित्र, हृदय से वैराग्य तथा ज्ञान का सम्यक् प्रकाश ये तीनों तत्त्व आवश्यक माने जाते हैं। आपका जीवन इन तीन तत्त्वों का एक त्रिवेणी संगम था। आप आत्मज्ञानी तो थे ही इसके साथ-साथ आप एक उच्चकोटि के विद्वान् भी थे। जैन मुनि होने के नाते से आपने जैनागमों का गहन अध्ययन किया। यह एक प्रकार से आपके अपने परम कर्तव्य का परिपालन मात्र था। यह तो अहिंसा धर्म की तरह आपके जीवन का परम धर्म था। किन्तु अन्य धर्मों के ज्ञानोपवन के कमनीय फूल चुनकर आपने अपने ज्ञानाञ्चल में संग्रहीत किये। यह आपकी ज्ञान साधना का विशेष अंग था। आपका ज्ञान केवल वाणी-विलास या बुद्धि का चमत्कार बनकर नहीं रहा। आपने उसे चिन्तन के द्वारा आत्मसात् भी किया। यह ज्ञान फिर आपके अन्तरङ्ग में अनुभूति के रूप में प्रगट हुआ। ज्ञान और अनुभूति का मधुर मिलन किसी भी साधक के जीवन में किसी अन्य जन्म की साधना के परिणामस्वरूप ही होता है। विद्वान् और ज्ञानी बनने के बाद आप एक कुशल प्रवचनकार भी बने। देखा गया है कि कुछ लोग विद्वान् तथा ज्ञानी तो खूब होते हैं, किन्तु अपने अन्तरङ्ग की बात दूसरे के अन्तरङ्ग में नहीं उतार सकते। किन्तु आप अपनी बात दूसरों के हृदय में उतारने में खूब प्रवीण थे। प्रकृति ने आपको इस प्रवचनपटुता के अलौकिक गुण से भी खूब विभूषित किया था। आपकी धर्मसभा एक समवसरण के रूप में लगती थी। आपकी ज्ञानगंगा में आत्म-स्नान करके सभी धर्मावलम्बियों को आत्म-सन्तोष मिलता था। आपके विराट् अध्ययन ने आपके चिन्तन को विराट् बना दिया था। यही कारण था कि सभी धर्मों के लोग आपकी प्रवचन सभा की शोभा बनकर बैठते थे। झोंपड़ी के किसान व मजदूर, अट्टालिका के सेठ-साहूकार तथा राज-भवनों के शहनशाह सभी आपकी वाणी का अमृतपान करने के लिए आतुर रहते थे। उस अलौकिक दिवाकर की ज्ञान रश्मियाँ हर छोटे-बड़े के मन को आलोक से भर देती थीं। कुछ विदेशी विद्वान् भी आपके व्यक्तित्व से आकृष्ट थे। उन्हें भी आपका उपदेशामृत-पान करने में आनन्द आता था। आपकी सद्प्रेरणा से बुनकर, मोची, चमार, खटीक आदि कितने ही कुसंस्कारी जनों ने अपने हृदय को आपके चरणों में समर्पित कर सदा के लिए सन्मार्ग ग्रहण कर लिया। आप अस्पृश्यता को भारत के माथे का कलंक समझते थे। आप जहाँ भी जाते थे वहाँ 'मानव-मानव एक समान' का नारा लगाकर साम्यभाव की मन्दाकिनी बहा देते थे।

शासक प्रजा पर शासन करते हैं, किन्तु आप शासकों के हृदय पर भी शासन करते थे। आप निरतन्द्रु वीर थे, किन्तु मूक-पशुओं का करुण-क्रन्दन सुनकर आप अधीर हो जाते थे। अभय-दान का अभियान आपके इस कारुणिक हृदय का ही एक सुपरिणाम था। आप अपने युग के एक महान् शासन प्रभावक मुनीश्वर थे। संघ ऐक्य की योजना में आपका सहकार अविस्मरणीय एवं अद्वितीय रहेगा। संगठन समाज की रीढ़ है। आपके इस उपदेश से शासन की जड़ों को काफी बल प्रदान किया। कितने ही सामाजिक उपकार आपके जीवन के कीर्तिमान बनकर इस भारत-वसुन्धरा की शोभा बढ़ा रहे हैं। दिवाकर उदित होकर आखिर अस्त भी होता है। वह अलौकिक दिवाकर भी पार्थिव शरीर के रूप में एक दिन दुनिया की नजरों से ओझल हो गया। किन्तु उसके चिन्तन एवं चारित्र का दिव्य प्रकाश उसके साहित्य के अमर पृष्ठों तथा इस धरती के विस्तृत वक्षस्थल पर युगों-युगों तक बना रहेगा।

परिचय :

[भारत के पूर्वांचल में अनेक वर्षों से धर्मप्रभावना।
स्व० आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज के योग्य विद्वान् शिष्य, ओजस्वी वक्ता।]

सामाजिक समता के स्वप्नद्रष्टा

श्री जैन दिवाकर जी

☆ उदय नागोरी,
बी० ए०, जै० सि० प्रभाकर

रत्नगर्भा वसुन्धरा के अनमोल रत्नों में जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज साहब का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैचारिक क्रान्ति के सूत्रधार, महान् उद्बोधक, दिव्य विभूति जैन दिवाकरजी महाराज ने वर्षों पूर्व समाज को वैविध्यपूर्ण दीवारें तोड़ने का उद्घोष किया। बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी दिवाकरजी महाराज ने दिवाकरवत् अपनी ज्ञानरश्मियाँ जन-जन को सुलभ कीं तथा अपना नाम (उपाधि) सार्थक किया। सीमित दायरों से दूर रहकर इस ज्योतिपुंज ने अपने संयम, साधना व ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित की जिससे न केवल अज्ञानान्धकार दूर हुआ वरन् लक्षाधिक लोगों की जीवन-दिशा ही बदल गई।

जैन दिवाकरजी महाराज यद्यपि जैन सम्प्रदाय से (स्थानकवासी परम्परा) जुड़े हुए थे, पर वे इससे बंधे नहीं। वे तो प्रकाशस्तम्भ थे, जहाँ वर्ण, वर्ग, जाति, रूप आदि में विभक्त समाज उनसे प्रेरणा पाकर नवजीवन पा सके। कथनी और करनी का भेद दूर कर आपने अपेक्षाकृत कमजोर उपेक्षित व शोषित वर्ग को गरिमा प्रदान की। उनके प्रवचनों में अभूतपूर्व समभाव दृष्टिगोचर होता था क्योंकि वहाँ राजा व रंक, निरक्षर व साक्षर, हरिजन व श्रेष्ठि जब मन्त्रमुग्ध होकर प्रवचन श्रवण करते थे। जिन्हें हम पतित, अछूत व शूद्र मानते हैं उन्हें भी वे बड़ी आत्मीयता से जीवन-उत्थान का मार्ग बतलाते थे।

मानव धर्म

दिवाकरजी महाराज की दृष्टि में मनुष्य को मनुष्य रूप में प्रतिष्ठित करना ही धर्म है। उनका संकल्प था कि सच्चे मानव के भीतर छिपे असंस्कार, क्रूरता, कदाचार व कटुता को अनावृत्त कर दिया जाय। जैन वही हो सकता है जो सच्चा मानव है। यही मानवधर्म है।

जैनेतर तत्त्वों व सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान् व इन्द्रधनुषी भाषाओं के ज्ञाता मुनिश्री चौथमल जी महाराज ने युगानुकूल विचार ही नहीं दिए, ५५ वर्षावासों की सुदीर्घ अवधि में व्यावहारिक-नैतिक विषयों पर हजारों गवेषणापूर्ण प्रवचन दिए। जब देश में राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक चेतना का दौर था, दिवाकरजी महाराज ने भी सुप्त समाज को जाग्रत किया और मानवीय दृष्टि प्रदान की। उन्होंने समग्र मानव समाज के साथ समानता व भ्रातृत्व का भाव रखने का सन्देश दिया।

धार्मिक उदारता

जैन दिवाकरजी महाराज ने कभी किसी धर्म का खण्डन नहीं किया। इसी सहिष्णुता के कारण उनके व्याख्यानों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, आर्यसमाजी समभावपूर्वक आनन्द लाभ करते थे। सच्चे धर्म का आदर्श बताते हुए आपने समता समाज का क्रान्तदर्शन किया—

"मनुष्य को धर्म मत-मतान्तरों के विवाद में न फँसकर कर्तव्य-पालन की ओर लक्ष्य रखना चाहिए। धर्म का उच्च आदर्श तो आत्मोन्नति एवं लोकसेवा है।"

"दीन-दुःखियों का दुःख निवारण करना बहुत बड़ा धर्म है।"

"धर्म की आड़ लेकर द्वेष करना अपने धर्म को बदनाम करना है।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति भा०११, पृ० ६७

"धर्म के विशाल प्रांगण में किसी भी प्रकार की संकीर्णता व भिन्नता को अवकाश नहीं है।"

—तीर्थंकर चौ० ज० अंक २६

—धर्म उसी का है जो उसका आचरण करता है।

—दि० दि० भा० १३, पृ० ६२

—धर्म वस्तु का स्वभाव है और वह किसी जाति, प्रान्त, देश या वर्ग का नहीं होता।

—दि० दि० भा० १८, पृ० १८५

कितनी स्पष्ट, मधुर व विशाल दृष्टि थी दिवाकरजी महाराज की। वह भी परतन्त्रता के उस युग में जहाँ दुहरी शासन सत्ता की मार के आगे जनता त्रस्त थी। किन्तु महामानव दिवाकर जी महाराज को तो एक नई भूमिका व नई प्रक्रिया में मानव धर्म का सन्देश देना था। क्या जादू था उनकी वाणी में—वह तो श्री आलिम हाफिज (सवाई माधोपुर) की आत्मा से पूछें क्योंकि वह जैनत्व से ओतप्रोत था। उसने जैनधर्म स्वीकार कर अपना शेष जीवन तप पूर्वक व्यतीत किया था।

बम्बई (कांदावाड़ी) के स्थानक के सम्मुख शोकाकुल मौलाना की ये बातें क्या पुरानी हो सकती है? जब उसे दिवाकरजी महाराज के स्वर्गवास की प्रथम सूचना वर्षों बाद मिली तो वह बोल उठा—

"या परवरदिगार! यह क्या हुआ? ऐसी रुहानी हस्ती हमसे जुदा हो गई। काश! उस सच्चे फकीर का दीदार मुझे नसीब हो जाता।"

दिवाकरजी महाराज किसके है? किसके नहीं? वे सबके हैं, सबके लिए है। जहाँ भेद की दीवारें ढह जाएं, वहीं सच्चा धर्म है। ये क्षण परमानन्द के हैं।

धर्म के नाम पर विभेदक रेखाएँ न्यूनतम हों तभी धर्म-ज्योति का प्रकाश केन्द्रित होकर अधिक तेजी से प्रज्वलित होगा—यह मानते हुए एक नई दिशा दी दिवाकरजी ने—

"धर्मात्मा बनो, धर्मान्ध नहीं" —दि० दि० भा० ५, २३८

धर्म का स्वरूप, मान्यता प्रकार में अन्तर होने पर भी एक ही रहता है।

—दि० दि० भा० २, पृ० १८८

समता का मसीहा

भारतीय संस्कृति की आधार-शिला त्याग, अहिंसा व समता पर टिकी हुई है। धर्म संयम, ज्ञान, आचार का विश्लेषण कर समतावादी दृष्टिकोण दिया दिवाकरजी महाराज ने। जैन दृष्टि से समतावान आत्मा ही श्रमण है।[1] अतः वर्ग-विहीन समता रहित समाज बनाने वाले दिवाकरजी महाराज सही अर्थ में प्रथम थे। समाज-सेवा की नव दिशा इस सत्यान्वेषी सन्त ने, अपनी भक्ति,

१ समयाए समणो होइ।

पतितों, शोषितों, दीन-दुःखियों व पीड़ितों की पीड़ा हरण करने में केन्द्रित की। उनकी दृष्टि में जैन-जैनेतर, अमीर-गरीब, राजे-महाराजे, ठाकुर-उमराव, खटीक, मोची, हरिजन, कलाल में कोई भी भेद नहीं था। मानव मात्र की कल्याण भावना लेकर आप सर्वजन प्रिय बने।

उदयपुर का प्रसंग है। जब लोगों ने कहा कि हमारे यहाँ ५०० घर हैं तो उन्होंने बड़ी गहराई से कहा—

"५०० घर के सिवाय जो लोग यहाँ बसते हैं, हरिजन-आदिवासी से लेकर मेवाड़ के महाराणा तक वे सब हमारे हैं।"

—तीर्थंकर नव०, दिस० ७७।१०२

यही कारण है कि इनका सन्देश महलों में हो या झोंपड़ियों में, गांवों में हो या नगरों में—समान रूप से गुंजायमान है। जीवन में वास्तविक समता लाने का अथक प्रयास कर दिवाकरजी महाराज ने सिद्ध कर दिया कि आदमी केवल आदमी है।

लेकिन यह समभाव कहाँ से आयगा? यह तो आत्मानुभूति से सम्भव है। जब हमारी आत्मा यह समझ ले कि 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' ही समानता का आधार है तो फिर कहाँ है दुःख, कहाँ है भेद? उन्होंने बताया—

"समभाव ही आत्मा के सुख का प्रधान कारण है। समभाव उत्पन्न हो जाने पर कठिन से कठिन कर्म भी सहज ही नष्ट हो जाते हैं।"[1]

"समता के शान्त सरोवर में अवगाहन करने वाला अपने समभाव के यन्त्र से समस्त शब्दों को सम बना लेता है।"[2]

दिवाकरजी महाराज का समता रूपी मन्त्र इतना प्रभावशाली था कि जैन समाज में वैमनस्य दूर हुए तथा संगठन व ऐक्यता का वातावरण बना। यही नहीं अनेक स्थानों पर अजैन समाज भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। कतिपय उदाहरण ज्ञातव्य हैं—

हमीरगढ़ में ३६ वर्षों से हिन्दू छीपाओं में पारस्परिक वैमनस्य था। आपके सदुपदेश से दो दलों में माधुर्य का संचार हुआ और परस्पर मिलन भी।

गंगरार व चित्तौड़गढ़ के ब्राह्मण समाज में जाति की तड़ें (दरारें) थीं, जो मिटकर एकाकार हुए।

संक्षेप में कहें तो दिवाकरजी महाराज ने एक मानस तैयार किया, जिससे लोगों की दृष्टि उदार बनी। एक-दूसरे के प्रति पक्षपात व द्वेष न हो एतदर्थ उनका संदेश विचारणीय है—

"पक्षपात पूर्ण मानस उचित-अनुचित का विवेक नहीं कर सकता।"

—दि० दि० भा० ५/८७

"द्वेषी का दिल कभी आकुलता-रहित नहीं होता।" —दि० दि० भा० ११/९३

"तुम दूसरे का बुरा चाहकर अपना ही बुरा कर सकते हो।"

—दि० दि० भा० ११/९६

मनुष्य, सर्वप्रथम मनुष्य

आज का मानव सभ्य, सुसंस्कृत एवं शिक्षित होते हुए भी स्वयं को विस्मृत किये हुए है। वह अपना व दूसरों का परिचय ऊपरी तौर पर ही प्रस्तुत करता है जबकि आवश्यकता है अपने

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भा० १९, पृ० ५१

२ दिवाकर दिव्य ज्योति भा० २, पृ० २४०

को वास्तविक रूप में समझने की। मनुष्य और कुछ बाद में है, सर्वप्रथम तो वह मनुष्य ही है।

व्यक्ति समाज का एक अंग है। यदि वह अपने आपको समाज-स्रोत से नहीं जोड़ सके, अपने सबको समाज के रूप में परिणित न कर सके, तो उसका कोई महत्व नहीं है। अतः व्यक्ति का महत्व व अस्तित्व इस बात पर निर्भर है कि वह अपने स्व को समाज-हित के लिए कितना विराट् बना सकता है। यह विराट दृष्टि दिवाकरजी महाराज ने दी। जब मानव मानव ही है, तो उसमें भेद-भाव की रेखाएँ क्यों?

सामाजिक समता के मन्त्रदाता श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने को उच्च वर्ग के मानने वालों को स्पष्ट शब्द में बताया है कि—

"*यह अछूत कहलाने वाले लोग तुम्हारे भाई ही हैं। इनके प्रति घृणा-द्वेष मत करो।*"

—'तीर्थंकर' चौथमलजी अंक (तथा दि० दि० ११/९८), पृ० ३०

"*जूतों को बगल में दबा लेंगे, तीसरी श्रेणी के मुसाफिरखाने में जूतों को सिरहाने रख कर तो सोयेंगे मगर चमार से घृणा करेंगे?*" यह क्या है?

—तीर्थंकर चौथ० विशे० ३१

"*भाइयो! तुम्हें जातिगत द्वेष का परित्याग करके मनुष्य मात्र से प्रेम करना सीखना होगा। मानव मात्र को भाई समझ कर गले लगाना होगा।*" —दि० दि० ११/९९

समता और व्यवहार

यदि समता की बात सिद्धान्त तक ही रहे और व्यवहार में प्रकट न हो तो वह निरर्थक है। चूंकि सभी प्राणियों को सुख प्रिय है, कोई दुःख नहीं चाहता और सभी जीना चाहते हैं। परन्तु यह कैसे सम्भव है? एक का सुख दूसरे का दुःख। यदि कोई इसीलिए दुखी है कि उसके पड़ौसी सुखी हैं तो इसका अन्त नहीं। अतः होना चाहिए विषमता का।

व्यवहार में समता से तात्पर्य यह है कि हम ऐसे कार्य नहीं करें जो किसी के लिए भय, दुःख, क्लेश का कारण बने। यदि कोई शोषण करता है, अधिक लाभ हेतु अनुचित साधन प्रयोग करता है और कहे कि वह समता का उपासक है तो कौन इसे सत्य समझेगा?

अतः नैतिक धरातल तैयार कर जैन दिवाकरजी महाराज इस ओर भी अभिमुख हुए। उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के शोषण व मिलावट जैसे विषयों पर अपनी बातें स्पष्ट कीं। वे तो अपने जमाने से भी आगे थे। उनकी दृष्टि ही अनूठी थी—

"जो स्वामी अपने आश्रितों से लाभ उठाता है, किन्तु उनको समान नहीं बनाता, वह स्वार्थी है।"

—दि० दि० ८, २५८

"सच्चा श्रावक कभी अन्याय से धन कमाने की इच्छा नहीं करता।"

—दि० दि० १-१६१

"व्यापार को भी जनता की सेवा का साधन मानकर जो चले वही आदर्श व्यापारी है। ऐसा व्यापारी अनुचित मुनाफा नहीं लेता, चीजों में मिलावट नहीं करता, धोखा नहीं देता।"

—दि० दि० १६/२६१

"मिलावट करना घोर अनैतिकता है।" —**तीर्थंकर चौ० ज० विशेषांक, पृ० ३४**

चूंकि अर्थ ही अनर्थ का मूल है, व्यक्ति अपनी नैतिकता को ताक में रखकर अधिकाधिक लाभ की आशा में लोभ की ओर बढ़ता है। सच भी है लाभ लोभ को बढ़ाता है। इस प्रवृत्ति की ओर इंगित कर दिवाकरजी महाराज ने असंख्य लोगों को नया प्रकाश दिया।

हृदय-परिवर्तन और समता

हिंसक, धूर्त, शिकारी और यहाँ तक कि कसाई, खटीक, भील आदि अपनी आसुरी वृत्तियाँ भूल गए इस दिवाकर के प्रकाश में। इसके मूल में हमारे चरितनायक की वाणी का माधुर्य था जो सहसा अपनी ओर आकृष्ट कर लेता। आपने अनेक नरेशों को उद्बोधन दिया एवं क्षेत्रीय परिसीमा में हिंसा न हो ऐसे प्रयत्न ऐतदर्थ प्रस्तर-अंकित लेख आज भी प्रमाण है।

कतिपय उदाहरण सिद्ध करते हैं कि दिवाकरजी महाराज ने अपने समता सिद्धान्त के बल पर हृदय-परिवर्तन की सफल प्रक्रिया अपनाई है। गंगापुर (मेवाड़) के मोचियों ने अपना जीवन ही बदल दिया था। सर्वश्री अमरचन्दजी, कस्तूरचन्दजी व तेजमलजी के नाम उल्लेख्य हैं जिन्होंने दुर्व्यसनों का त्याग कर शुद्ध जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया। पोटला ग्राम के मोचियों व रेगरों को सद्बोध देकर भी दिवाकरजी महाराज ने अभूतपूर्व कार्य किया। जब दृष्टि बदली तो जीवन ही बदल गया।

केसूर गाँव में इकट्ठे होकर ६० गाँवों के चमार पंचों ने मांस-मदिरा का त्याग किया। यह आशातीत प्रयास था। उसी परम्परा में अनेक उदाहरण सम्मुख हैं—

सं १९८० इन्दौर के नजर मुहम्मद कसाई द्वारा हिंसा त्याग की प्रतिज्ञा।

सवाई माधोपुर के खटीकों द्वारा जघन्य कार्य बन्द किया गया।

सं० १९६६ नाईग्राम (उदयपुर) में ३-४ हजार भीलों द्वारा हिंसा त्याग की प्रतिज्ञा।

सं० १९८२ नन्दवास के भीलों द्वारा वन में आग न लगाने की प्रतिज्ञा।

सं० १९७० भीलवाड़ा—३५ खटीकों द्वारा पैतृक धन्धे का त्याग।

यह था समता का प्रभाव और जादू।

सदाचार परिवर्तन में समता

दिवाकरजी महाराज ने किसे प्रभावित नहीं किया ? समाज की नशों में व्याप्त वेश्यावृत्ति पर प्रवचन दिये तो उनके जीवन में सदाचार का प्रवर्तन हुआ।

सं १९६९—जहाजपुर

वेश्या-नृत्य के दोषों पर प्रकाश डाला तो वेश्याओं को आत्मग्लानि हुई और उन्होंने अपना व्यवसाय परिवर्तन कर दिया।

सं० १९८० पाली

मंगनी व बनी नामक दो वेश्याओं ने आजीवन शील पालन की प्रतिज्ञा की और सिणगारी ने एक पुरुषव्रत का संकल्प लिया। —**जैन दिवाकर, पृ० १९६**

यही हाल था जोधपुर में। सं० २००५ का वर्षावास। वहाँ की वेश्याओं (पातरियाँ) द्वारा अपने घृणित पेशे को तिलांजलि दी गई।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि शताब्दी पुरुष जैन दिवाकरजी महाराज का समता-सरल प्रभाव डालने लगा था। उनके व्याख्यान श्रवण कर लाखों लोगों ने अपना जीवन बदला। समता-समाज की सच्ची तस्वीर बनाने वाला चितेरा पार्थिव रूप में आज भले ही नहीं है, उनके उपदेश आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। आवश्यकता है हम इन पर आचरण करें।
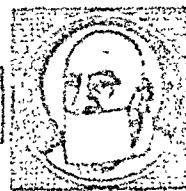
श्रमण-परम्परा में श्री जैन दिवाकरजी— महाराज का ज्योतिर्मय व्यक्तित्व

आचार्य राजकुमार जैन

आरम्भ से ही भारतीय संस्कृति के मूल में समानान्तर दो विचार-धाराएँ प्रवाहित होती रही है—एक वैदिक विचारधारा और दूसरी श्रमण विचारधारा। वैदिक विचारधारा ने भारत में वैदिक संस्कृति को जन्म दिया तो श्रमण विचारधारा ने श्रमण संस्कृति के उद्भव में अपनी प्रवृत्ति की उद्भावना की। श्रमण विचारधारा या श्रमण संस्कृति ने जहाँ आन्तरिक शुद्धि और सुख-शान्ति का मार्ग बतलाया, वहाँ ब्राह्मणों अथवा वैदिक संस्कृति ने बाह्य सुख-सुविधा और बाह्य शुद्धि को विशेष महत्त्व दिया। श्रमणों अथवा श्रमण-परम्परा ने जहाँ लोगों को निःश्रेयस एवं मोक्ष का मार्ग बतलाया ब्राह्मणों ने वहाँ लौकिक अभ्युदय के लिए विभिन्न उपाय अपनाकर लोगों का मार्ग-दर्शन किया। श्रमण विचार-धारा ने व्यक्तिगत रूप से जहाँ आत्म-कल्याण की भावना से लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया तथा "जिओ और जीने दो" के व्यावहारिक रूप में विश्व को अहिंसा का सन्देश देकर प्राणिमात्र के प्रति समता-भाव का अपूर्व आदर्श जन-सामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया वहाँ दूसरी ओर ब्राह्मण वर्ग ने वर्ण-व्यवस्था के द्वारा न केवल समाज में फैली अव्यवस्था अपितु विभिन्न सामाजिक विरोधों को दूर कर धार्मिक मान्यताओं एवं क्रिया-कलापों को द्रुमूल किया। श्रमण वर्ग सदा अपनी आत्मा का निरीक्षण करने के कारण अन्तर्दृष्टि बना रहा, जबकि ब्राह्मण वर्ग ने शरीर के संरक्षण एवं पोषण को विशेष महत्त्व दिया। श्रमण संस्कृति जहाँ भौतिकता से स्वयं को हटा कर आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करती रही, वहाँ वैदिक संस्कृति विविध क्रियाकाण्डों की ओर जन-सामान्य को आकृष्ट करती रही। श्रमण-परम्परा ने जहाँ अपने त्याग, तपश्चरण एवं आत्म-संयम के द्वारा समाज के सम्मुख अनेक आदर्श उपस्थित किए वहाँ वैदिक संस्कृति से अनुप्राणित ब्राह्मण परम्परा अपने विधि-विधान के द्वारा समाज को गहरी परिस्था को आपूरित करती रही। जहाँ श्रमण विचार प्रवाह अपनी अहिंसक प्रवृत्तियों के द्वारा यथार्थ के धरातल को अभिसिंचित करता रहा, वहाँ ब्राह्मण समुदाय जीवन में कर्मकाण्ड की अनिवार्यता को निरूपित करते हुए व्यावहारिक कार्य-कलापों से जीवन को पूर्ण बनाता रहा। आत्मा और शरीर, आदर्श और विधान, ज्ञान और आचरण, सिद्धान्त और प्रयोग तथा निश्चय और व्यवहार के इस अभूतपूर्व सम्मेलन से ही भारत की सर्व लोक-कल्याणकारी संस्कृति का निर्माण हुआ है और इसी के परिणामस्वरूप इसे चिरन्तन स्थिरता प्राप्त हुई है।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि श्रमण-परम्परा ने अभ्युदय और निःश्रेयस का मार्ग-प्रशस्त करने वाली जिस गरिमामय संस्कृति का निर्माण किया है उसने भारतीय जन-जीवन के मानसिक धरातल को इतना उर्वर बना दिया है कि आध्यात्मिकता उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गई है। इसी का यह परिणाम है कि चिरकाल तक जनमानस में धार्मिक सहिष्णुता का भाव जागृत करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई अपितु वह तो स्वतः ही लोगों के अन्तःकरण में उद्भूत हुआ। श्रमण-परम्परा ने समाज और देश को आत्मकल्याणोन्मुख जिस मार्ग पर चलने की प्रेरणा और शिक्षा दी उसका उद्देश्य अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों को जाग्रत कर समाज को निवृत्ति की ओर प्रेरित करना था। श्रमण संस्कृति में साधु और सन्तों की एक लम्बी परम्परा है जिसने अनुकरणीय आदर्श

द्वारा जो आदर्श प्रस्तुत किए वे चिरकाल तक के लिए अक्षुण्ण और उपादेय बन गए। श्रमण वस्तुतः अपने ज्ञान और आचरण के द्वारा जन-मानस पर ऐसा अद्भुत प्रभाव डालते हैं कि उसे अपनी कुप्रवृत्तियाँ स्वतः ही घृणित प्रतीत होने लगती हैं। श्रमण की वाणी में जो ओज पूर्ण एवं तेजस्वी देशना होती है उसे क्षुद्र मानव मात्र का अन्तःकरण अपनी प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में लेकर जब आत्मालोचन का प्रयास करता है तो स्वतः ही उसे अपनी हीनता और कलुषित वृत्तियों का अहसास होने लगता है। वह वास्तविकता के निकट पहुँचता जाता है और हेय और एवं उपादेय का अन्तर स्पष्टतः जानने व समझने लगता है। यहीं से उसके आचरण एवं व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है। श्रमण का आचरण स्वतः ही मनुष्य को अनुकरण की प्रेरणा देता है, फिर यदि श्रमण की वाणी उपदेश रूप में मुखरित होती है तो मनुष्य पर उसका प्रभाव क्यों नहीं पड़ेगा।

परम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय श्री जैन दिवाकरजी महाराज श्रमण-परम्परा की उन दिव्य विभूतियों में से एक हैं जिन्होंने भगवान जिनेन्द्र देव के पथ का अनुसरण करते हुए मानव-कल्याण को ही अपने जीवन में प्रमुखता दी। ज्ञान-साधना के द्वारा उन्होंने जहाँ अपनी आत्मा को उन्नत एवं विकसित किया वहाँ अपने सदुपदेशों द्वारा उन्होंने अनेकानेक मनुष्यों को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग का अनुगामी बनाया। जिसे उन्होंने अपने जीवन में उतारकर स्वतः अनुभव किया। उसका ही उन्होंने दूसरों को आचरण करने का उपदेश दिया। लोगों के मन-मस्तिष्क पर इसका अनुकूल प्रभाव पड़ा और बुराइयाँ उनके जीवन से स्वतः ही दूर भागने लगी। मानव-जीवन में बुराइयों का प्रवेश जितना सरल है उनको निकालना उतना ही दुष्कर है। किन्तु जिसने एक बार भी श्री जैन दिवाकरजी महाराज साहब का प्रवचन सुना उसके जीवन से बुराइयों का पलायन स्वतः ही होने लगा।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज केवल समाज की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण देश की एक महान्, दिव्य एवं अलौकिक विभूति थे। उनका व्यक्तित्व अभूतपूर्व था जिसमें अद्भुत सहज आकर्षण क्षमता थी। वे श्रमण संस्कृति के महान् उपासक, भारत वर्ष के एक असाधारण सन्त और विश्व के अद्वितीय ज्योतिपुंज थे। इस देश की जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने, जीवन को सादगी पूर्ण बनाने, विचारों में उच्चता लाने और अहिंसा का प्रचार-प्रसार करने में उन्होंने जो योगदान किया है वह असाधारण एवं अविस्मरणीय है। उनकी असाधारण एवं विलक्षण प्रतिभा ने न जाने कितने गिरे हुए लोगों को उठाया और उनके पथ-भ्रष्ट जीवन को उन्नत बनाया। उनकी सहज स्वाभाविक सरलता ने न जाने कितने कण्टकाकीर्ण जीवन को सरल और मधुर बनाकर जीवन में पुष्पों की वर्षा की। अपने जीवन से हताश और निराश अनेक साधनहीन असहाय लोगों ने आप से प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त कर पुनर्जीवन प्राप्त किया। आपके उपदेश की एक विशेषता यह थी कि वह वर्ग विशेष के लिए न होकर जन-सामान्य के लिए था।

गुरुदेव एक महामना थे, उनका व्यक्तित्व अनोखा, प्रखर और कतिपय विशेषताओं से युक्त था। उनके विचार उन्नत और प्रगतिशील थे। विचारों की उच्चता, आचरण की शुद्धता, जीवन की सरलता और सादगी ने आपके व्यक्तित्व को प्रखर और बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न बनाया। उनका हृदय इतना विशाल था कि विश्व के प्राणिमात्र के प्रति असीम करुणा का निवास उनके हृदय में विद्यमान था। यह एक वस्तुस्थिति है कि जिन महापुरुषों के विशाल हृदय में विद्यमान करुणा "स्व" से ऊपर उठकर "पर" तक पहुँच जाती है उसका जीवन लक्ष्य भी अधिक व्यापक एवं उन्नत हो जाता है। उसकी करुणा समाज और देश के सीमा-बन्धन को लांघ कर विश्व के

प्राणिमात्र के प्रति असीम रूप से व्याप्त हो जाती है। पूज्य गुरुदेव की भी यही स्थिति थी। यही कारण था कि उनका जीवन ध्येय मात्र आत्म-कल्याण तक ही सीमित नहीं रहा और वह जन-कल्याण के साथ-साथ प्राणि कल्याण तक व्याप्त हो गया। विश्व की सम्पूर्ण मानवता उनकी कल्याण भावना की परिधि में समाहित हो गई। मनुष्य मात्र में उन्होंने कभी भेदभाव पूर्ण दृष्टि नहीं अपनाई। यही कारण है कि समाज के प्रत्येक वर्ग ने उनकी अमृतमयी वाणी का लाभ उठाया। उनके व्यापक दृष्टिकोण के कारण संकीर्णता, साम्प्रदायिकता एवं संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर उठकर वे सदैव जनमानस को आन्दोलित करते रहे और मानवीय मूल्यों को उनमें प्रतिष्ठापित करते रहे।

वे एक ऐसे महामानव थे जो सम्पूर्ण मानवता के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित थे। किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित होकर उन्होंने समाज के निम्न, पीड़ित, दलित और उपेक्षित वर्ग के लोगों के नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक उत्थान के लिए अपने सदुपदेश एवं आह्वान के द्वारा जो क्रान्तिकारी कार्य किए हैं, वे इतिहास के पृष्ठों में चिरकाल तक सुवर्णाक्षरांकित रहेंगे। उन्होंने समाज की पीड़ित मानवता के तमसाच्छन्न पथ को अपने उपदेश-आलोक के द्वारा न केवल आलोकित किया; अपितु अन्यान्य बाधाओं के निराकरण में अद्वितीय चमत्कार पूर्ण घटनाओं के द्वारा अपनी अन्तःशक्ति का प्रयोग किया। उनके कार्यों में सर्वत्र मानवीय शक्ति ही विद्यमान थी। कहीं दैवी शक्ति या अमानुष वृत्ति की झलक दिखाई नहीं दी। इससे उन्होंने यही सिद्ध किया कि मानवीय आन्तरिक शक्ति का विकास साधारण मनुष्य को भी सर्वोच्चता के शिखर पर आरूढ़ कर देता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि समस्त मानवीय प्रवृत्तियाँ सदाशय पूर्ण, सात्त्विकता युक्त एवं सदिच्छा से प्रेरित हों। स्वार्थ का उनमें नितान्त अभाव हो और परहित का उदात्त दृष्टिकोण उनमें समाहित हो। अज्ञान, मिथ्याज्ञान, अशिक्षा एवं कुरीतियों से ग्रस्त जन-मानस में उन्होंने अपनी ज्ञान-रश्मियों के द्वारा जो आलोक प्रसारित किया उसने न जाने कितने लोगों के जीवन में क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन ला दिए। समाज के अविकसित कमलों के लिए वे सूर्य की भांति एक अद्वितीय पुरुष थे। समाज को एक नई दिशा और आलोक दृष्टि देने के कारण जनता जनार्दन ने उन्हें "जैन दिवाकर" के नाम से सम्बोधित किया। सूर्य की भांति अन्धकार दूर कर आलोक देने के कारण वे "दिवाकर" हुए और अहिंसामय संयम पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए मार्ग निर्देश देने के कारण वे "जैन दिवाकर" कहलाए। जैन शब्द का प्रयोग संकुचित साम्प्रदायिक भाव में न कर उसके व्यापक अभिप्राय में करना ही अभीष्ट है। जन्मना ही कोई जैन नहीं होता; अपितु उत्कृष्ट कर्म, संयमपूर्ण जीवन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना ही "जैनत्व" का प्रतिपादक है।

भारत में जैन आचार और विचार ने जिस संस्कृति विशेष को जन्म दिया वह सात्त्विकता, पवित्रता, शुद्धता एवं दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण अतिश्रेष्ठ एवं उत्तम मानी गई। उसने जन-मानस को जो दिशा दृष्टि प्रदान की उससे मनुष्य आत्म-हित के द्वारा अक्षय सुख व शान्ति का अनुभव करने लगा। इस संस्कृति में ही जब श्रमण धर्म और उसके आचार-विचार का जो विश्लेषण पूर्वक अभिनिवेश हुआ तो चिरन्तन सत्य के रूप में अभ्युदय एवं निःश्रेयसपरक वह संस्कृति 'श्रमण संस्कृति' के नाम से अभिहित हुई। श्रमण संस्कृति के स्वरूप निर्माण, अभ्युत्थान एवं विकास में श्रमणों एवं श्रमण-परम्परा का जो अद्वितीय योगदान है उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। श्रमण शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करने की दृष्टि से कहा गया है—'श्राम्यति तपः खिद्यते इति श्रमणः।' अर्थात् जो स्वयं तपश्चरण करता है, श्रम करता है वह 'श्रमण' कहलाता है।

अतः श्रमण शब्द का अर्थ है सभी प्रकार के अन्तः-बाह्य परिग्रह से रहित जैन साधु। श्रमण संस्कृति में मानवता के वे उच्चतम आदर्श, आध्यात्मिकता के वे गूढ़तम रहस्यमय तत्व एवं व्यवहारिकता के वे अकृत्रिम सिद्धान्त निहित हैं जो मानव-मात्र को चिरन्तन सत्य की अनुभूति व साक्षात्कार कराते हैं। मानवता के हित साधन में अग्रणी होने के कारण यह वास्तव में सच्ची मानव संस्कृति है और इस मानव संस्कृति के अनुयायी, परिचालक, उद्घोषक एवं विश्लेषक रहे हैं हमारे प्रातः स्मरणीय गुरुदेव जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्री जैन दिवाकर जी ने श्रमण-धर्म, श्रमण-आचार-विचार एवं श्रमण-परम्परा का पूर्णतः परिपालन एवं निर्वाह किया। अतः श्रमण-संस्कृति एवं श्रमण-परम्परा में उनका अद्वितीय स्थान है।

वर्तमान शताब्दी में श्रमण आचार-विचार का निष्ठा एवं विवेकपूर्वक परिपालन करने के कारण श्री जैन दिवाकरजी महाराज को श्रमण-परम्परा में विशिष्ट महत्व एवं अद्वितीय स्थान प्राप्त है। अतः यहाँ संक्षेपतः श्रमण एवं श्रामण्य की चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। "**श्रमणस्य भावः श्रामण्यम्**" अर्थात् "श्रमण के भाव को ही श्रामण्य" कहते हैं। संसार के प्रति मोह-ममता, राग-द्वेष के भाव का पूर्णतः त्याग करना अथवा संसार के समस्त अन्तः-बाह्य परिग्रहों से रहित होकर पूर्णतः संन्यास ग्रहण करना और संयमपूर्वक साधु-पथ का अनुकरण करना ही "श्रामण्य" कहलाता है। इसमें किसी भी प्रकार के विकार के लिए रंचमात्र भी स्थान नहीं है और आचरण की शुद्धता एवं अन्तःकरण की पवित्रता पूर्वक संयमाचरण को ही विशेष महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार का अकृत्रिम एवं विशुद्ध आचरण करने वाला जैन साधु ही श्रमण होता है। उसके विशुद्धाचरण में बतलाया गया है कि वह पंच महाव्रतों का पालक एवं राग-द्वेषोत्पादक समस्त सांसारिक वृत्तियों का परित्यक्ता होता है। वह निष्कर्म भाव की साधना से पूर्ण एकाग्रचित्तपूर्वक आत्मचिन्तन में लीन रहता है। आडम्बरपूर्ण व्यवहार एवं क्रिया-कलापों का उसके जीवन में कोई स्थान नहीं होता और वह आत्महित साधन के साथ मानवता के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित रहता है।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज एक साधनारत महान् जैन साधु थे और पूर्ण निष्ठापूर्वक वे साधुवृत्ति का आचरण करते थे। इस दृष्टि से उन्होंने अपने जीवन में कभी शिथिलाचार नहीं आने दिया। अनेक बार उन्हें अपने जीवन में भीषण परिस्थितियों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ा। किन्तु वे न तो कभी विचलित हुए, न कभी घबड़ाये और न ही कभी अपने आचरण को रंचमात्र भी दूषित होने दिया। इस प्रकार वे सही मायने में एक उच्चकोटि के साधक होने के कारण श्रमण थे। श्रमणत्व उनकी रग-रग में व्याप्त था और श्रमण धर्म उनके आचरण में झलकता था। जिन लोगों को उनके दर्शन-लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उन्होंने वास्तव में श्रमणत्व की एक जीती-जागती प्रतिमा के दर्शन किए हैं। कमल की भाँति सदैव खिला हुआ उनका मुखमण्डल उनके अभूतपूर्व सौम्य भाव को दर्शाता था। उनके चेहरे पर विद्यमान अद्वितीय तेज उनके साधनामय संयमपूर्ण जीवन का साक्षी था। उन्होंने अपने साधनामय जीवन के द्वारा एक सच्चे श्रमण का जो आदर्श उपस्थित किया है सुदीर्घकाल तक उसका उदाहरण मिलना सम्भव नहीं है। अपने हृदय की विशालता और उस विशाल हृदय में व्याप्त मानवता के प्रति असीम करुणा का ऐसा विलक्षण धनी चिरकाल तक देखने को नहीं मिलेगा।

वे एक युग पुरुष थे और इसके साथ ही वे युग द्रष्टा भी थे। उन्होंने जीवन के यथार्थ के साथ ही मानवीय मूल्यों एवं वर्तमान में हो रहे उसके ह्रास को भी समझा था। वे स्वयं अनुभव करते थे कि जीवन की जटिलताओं से घिरा हुआ निरीह मानव आज कितना हताश और आर्त

स्वयं के जीवन के प्रति कितना निराश है। उसके अन्धकारावृत्त मार्ग को प्रकाश पुंज से आलोकित करने वाला कोई नहीं है। आज मनुष्य इतना स्वार्थान्ध हो रहा है कि स्वार्थ साधन के अतिरिक्त उसे और कुछ भी रुचिकर प्रतीत नहीं होता। ऐसी स्थिति में परम करुणामय मानवता-सेवी सन्त पुरुष श्री जैन दिवाकरजी महाराज का अन्तःकरण भला कैसे चुप रहता। उन्होंने उस निरीह मानवता का पथ आलोकित करने का संकल्प किया और सर्वात्मना इस कार्य में संलग्न हो गए। उनके कार्यक्षेत्र की यह विशेषता थी कि वे झोंपड़ी से लेकर महलों तक पहुँचते थे। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान थे और राजा-रंक तथा धर्म-जाति का कोई भेद नहीं था। सभी को समताभावपूर्वक वीर वाणी का अमृतपान करा कर बिना किसी भेदभाव के सन्मार्ग पर लगाने का दुरूह कार्य जिस निर्भयता और दृढ़ता से मुनिश्री ने किया वह अलौकिक एवं अविस्मरणीय है। इस बात के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं कि दुःखियों, पीड़ितों, पतितों और शोषितों के वे सहज सखा थे। दलितों का उद्धार उनकी एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी और उनका कष्ट देखकर वे शीघ्र ही द्रवित हो जाते थे। मुनिश्री यद्यपि स्वयं परिग्रह रहित एक साधु थे, किन्तु ज्ञान दान के द्वारा वे दुःखियों के दुःख दूर करने का सहज पुरुषार्थ करते थे। उनके पुरुषार्थ में एक विशेषता यह थी कि उसका तात्कालिक परिणाम दृष्टिगोचर होता था। उन्होंने धर्म-प्रचार हेतु जिस क्षेत्र को चुना उसमें पिछड़ापन अत्यधिक रूप से व्याप्त था और निम्न वर्ग के लोगों का ही उसमें अधिकांशतः निवास था। आदिवासियों के बीच भी उन्होंने अपने पुरुषार्थ को सार्थक बनाया और लोगों के जीवन-स्तर में सुधार किया। उन्होंने उन लोगों को मनुष्य बनने और मनुष्य की भाँति जीने की प्रेरणा दी।

आत्म-साधना के पथ पर आरूढ़ होकर निरन्तर पाँच महाव्रतों का अखण्ड रूप से पालन करने वाला, दस धर्मों का सतत अनुचिन्तन, मनन और अनुशीलन करने वाला बाईस परीषहजय तथा रत्नत्रय को धारण करने वाला शुद्ध परिणामी, सरल स्वभावी अपनी अन्तर्मुखी दृष्टि से आत्म-साक्षात्कार हेतु प्रयत्नशील तथा श्रमणधर्म को धारण करने वाला साधु ही श्रमण कहलाता है और निज स्वरूपाचरण में प्रमाद नहीं होना उसका श्रामण्य है। श्रमण सदैव राग-द्वेष आदि विकार भावों से दूर रहता है। क्योंकि ये विकार भाव ही मोह-ममता एवं कटुता-ईर्ष्या के मूल कारण हैं जिनसे सांसारिक बन्धन होने के साथ ही जीवन में पारस्परिक कलह एवं लड़ाई-झगड़ा की सम्भावनाओं-घटनाओं को प्रोत्साहन मिलता है। उपर्युक्त विकार भावों से श्रमण की आत्म-साधना में निरन्तर बाधा उत्पन्न होती है और वह अपने लक्ष्य एवं कल्याण-पथ से विचलित हो जाता है। इसी प्रकार क्रोध-मान माया-लोभ ये चार कषाय मनुष्य को सांसारिक बन्धनों में जकड़ने वाले तथा अनेक प्रकार के दुःखों को उत्पन्न करने वाले सुदृढ़ मनोविकार हैं। आत्म-कल्याणेच्छु साधक श्रमण सदैव इन कषायों का परिहार करता है, ताकि वह अपनी साधना एवं लक्ष्य साधन के पथ से विचलित न हो सके। मन पर संयम और विषयाभिमुख इन्द्रियों के पूर्ण नियन्त्रण पर ही श्रमण साधना निर्भर है। आत्म-साधक श्रमण के श्रामण्य की रक्षा के लिए उपर्युक्त राग-द्वेष आदि विकार भाव तथा क्रोध आदि चार कषायों का परिहार करने हेतु इन्द्रियों का तथा मन का नियमन नियन्त्रण आवश्यक है।

श्रमण के जीवन में संयम एवं तपश्चरण के आचरण का विशेष महत्व है। उसका संयम पूर्ण जीवन उसे सांसारिक सुविधाओं की ओर अभिमुख होने से रोकता है और तपश्चरण उसकी कर्म-निर्जरा में सहायक होता है। संयम के बिना वह तपश्चरण की ओर अभिमुख नहीं हो सकता और तपश्चरण के बिना उसको मुक्ति सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में मोक्ष प्राप्ति हेतु आत्म-

साधन का उसका ध्येय अपूर्ण रह जाता है। अतः यह सुनिश्चित है कि संयम धर्म का पालन तपश्चरण का अनुपूरक है। इस विषय में आचार्यों ने तप की जो व्याख्या की है वह महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। आचार्य उमास्वामी के अनुसार, "इच्छानिरोधो तपः"—अर्थात् इच्छाओं का निरोध करना तप कहलाता है। तप का यह लक्षण संयम और तप के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। क्योंकि इच्छाएँ और वासनाएँ इन्द्रिय जनित होती हैं। उनका विरोध करना ही संयम कहलाता है और तत्पूर्वक या उसके सान्निध्य से विहित क्रिया विशेष ही तपश्चरण है।

मनुष्य की सभी इन्द्रियाँ भौतिक होती हैं, अतः उन इन्द्रियों से जनित इच्छाओं और वासनाओं की अभिव्यक्ति सांसारिक व भौतिक क्षणिक सुखों के लिए होती है। उन इच्छाओं और वासनाओं को रोक कर इन्द्रियों को स्वाधीन करना, संसार के प्रति विमुखता तथा चित्तवृत्ति की एकाग्रता ही संयम का बोधक है। इस प्रकार के संयम का चरम विकास मनुष्य के मुनित्व जीवन में ही सम्भावित है। अतः संयम पूर्ण मुनित्व जीवन ही श्रामण्य का द्योतक है।

श्रमण-परम्परा के अनुसार आपेक्षिक दृष्टि से गृहस्थ को निम्न एवं श्रमण को उच्च स्थान प्राप्त हैं। किन्तु साधनों के क्षेत्र में निम्नोच्च की कल्पना को किंचिन्मात्र भी प्रश्रय नहीं दिया गया है। वहाँ संयम की ही प्रधानता है। इस विषय में उत्तराध्ययन में भगवान के निम्न वचन मननीय एवं अनुकरणीय है—अनेक गृहत्यागी भिक्षुओं की अपेक्षा कुछ गृहस्थों का संयम प्रधान है।" इस प्रकार एक श्रमण में संयमपूर्ण साधना को ही विशेष महत्व दिया गया है। श्रमण-परम्परा के अनुसार मोह रहित व्यक्ति गाँव में भी साधना कर सकता है और अरण्य में भी। कोरे वेश परिवर्तन को श्रमण-परम्परा कब महत्व देती है? साधना के लिए मात्र गृहत्याग या मुनिवेश ही पर्याप्त नहीं है, अपितु तदनुकूल विशिष्टाचरण भी महत्वपूर्ण है एवं अपेक्षित है। अपने विशिष्टाचरण एवं आसक्ति रहित त्याग भावना के कारण ही श्रमण को सदैव गृहस्थ की अपेक्षा उच्च एवं विशिष्ट माना गया है।

इस प्रकार के श्रामण्य के प्रति उदात्तचेता एवं धर्म-सहिष्णु पूज्यवर श्री चौथमलजी महाराज का तीव्र आकर्षण प्रारम्भ से ही रहा है। श्रमण धर्म के प्रति उनके हृदय में शुरू से ही गहरी आस्था थी और अन्ततः वे उस पथ के अनुयायी बने रहे। उनके व्यक्तित्व में एक विलक्षण प्रतिभा थी, जो उन्हें हिताहित विवेकपूर्वक कर्त्तव्य बोध कराती रहती थी। अतः विवाहोपरान्त जब उनका आत्म-विवेक जाग्रत हुआ तो सर्वप्रथम उन्होंने अपनी माता से जिन-दीक्षा लेने की अनुमति लेनी चाही। माता को अपने पुत्र में वैराग्य भाव की प्रबलता देख कर पहले तो हर्ष हुआ किन्तु वे चाहती थीं कुछ काल और वैवाहिक जीवन का सुखोपभोग करने के उपरान्त यदि वह वैराग्य लेता है तो अधिक अच्छा है। लेकिन वैराग्योन्मुखी पुत्र के दृढ़ निश्चय के सामने माता की एक नहीं चली और अन्ततः उन्हें अनुमति देनी पड़ी। उनके वैराग्य धारण करने और जिन दीक्षा लेने का समाचार त्वरित रूप से समाज में फैल गया। कुछ तथाकथित बुद्धिजीवियों ने जो स्वयं को समाज के कर्णधार मानते थे। इसे केवल भावना में वह जाना मात्र समझा और उनके निकट आकर बोले—"हमें मालूम हुआ है कि तुम जैन साधु बनने जा रहे हो। क्या जैन साधु बनने में ही अपना हित और कल्याण समझते हो? हमारी समझ में साधु-जीवन बिताना भारी भूल है। आज जबकि पैसा, परिवार और पत्नी के लिए दुनिया मिट रही है, तुम इन्हें छोड़ना चाहते हो। तुम्हें तो सहज में ही सभी सामग्री प्राप्त हुई है। फिर उसे इस प्रकार छोड़ना कौन-सी बुद्धिमानी है?

भोग किए बिना प्राप्त सामग्री का परित्याग कर स्वर्ग पाने की अभिलाषा में तुम भटक रहे हो, वास्तव में तुम गलत मार्ग का अनुसरण कर रहे हो। मित्रता के नाते हमारी तो सीधी व साफ राय है कि तुम दीक्षा लेने का विचार त्याग दो।"

इसके प्रत्युत्तर में वैराग्योन्मुखी श्री चौथमलजी ने कहा—"मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि जब धर्माचरण को गलत मान लिया जाता है, तो बताइये श्रेष्ठ मार्ग फिर कौन-सा है? क्या व्यसन, दुराचरण, लूट-खसोट, छल-कपट, धोखा-धड़ी, बेईमानी का मार्ग अपनाना अच्छा है? आपकी दृष्टि में साधु बनकर 'स्व-पर' का कल्याण करना बुरा है, तो क्या मैं दुराचारी, लंपटी, झूठा और ठग बन कर जीऊँ? ब्रह्मचारी और परमार्थी बनकर जीने की अपेक्षा आपकी दृष्टि में संसार की वृद्धि और स्वार्थ का पोषण करना अधिक अच्छा है। मेरी समझ में आप लोगों को अपने विचारों की शुद्धि करनी चाहिए। ऐसे मलिन विचारों के लिए मेरे जीवन में कोई स्थान नहीं है।"

वैराग्यानन्दी आत्म-साधनोन्मुख श्री चौथमलजी के मुख से इस प्रकार स्पष्ट उत्तर सुनकर वे सभी लोग निरुत्तर हो गये और भीगी बिल्ली की तरह वहाँ से खिसक लिए।

इस प्रकार वे श्रामण्य-पथ की ओर उन्मुख और कालान्तर में उस पर अग्रसर हुए। यद्यपि असाधारण विलक्षण प्रतिभा तो उनमें प्रारम्भ से ही विद्यमान थी, सुप्रसिद्ध संत श्री हीरालालजी महाराज साहब का शिष्यत्व स्वीकार कर श्रमण धर्म को अंगीकार करने एवं सक्रिय आत्म-साधना-पूर्वक स्व तथा पर कल्याण के प्रति अपना जीवन सदा-सर्वदा के लिए अर्पित करने के उपरान्त उस प्रतिभा में और अधिक असाधारणता एवं विलक्षणता उत्पन्न हो गयी। आपका तेजस्वी व्यक्तित्व और भी अधिक प्रखर हो गया और आपका सन्देश जन-जन तक पहुँचकर उन्हें सन्मार्ग पर अग्रसर करने लगा। उन्होंने वस्तुतः धर्म के मर्म को समझा और उसे सर्वजन सुलभ कराया। आज के युग में जबकि लोगों को धार्मिक उपदेशों से अरुचि होती है, आपके उपदेशों में इतना चित्ताकर्षण होता था कि सहस्रों लोग अनायास ही खिंचे चले आते थे। आपके उपदेश इतने सुरुचिपूर्ण, सारगर्भित और मानस को आन्दोलित करने वाले होते थे कि सुदीर्घकाल तक उनकी छाप मानस-पटल पर अंकित रहती थी। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिले हैं जो आपके उपदेशों की प्रभावकारिता को सुस्पष्ट करते हैं। व्यसनरत, कुमार्गगामी और भ्रष्ट आचरण वाले अनेक व्यक्ति आपके प्रभाव-पूर्ण सदुपदेशों से प्रभावित हुए। आपके उपदेशों ने उन लोगों को ऐसा प्रभावित किया कि सहज ही उनका हृदय परिवर्तन हो गया और आजीवन उन्होंने सदाचरण की प्रतिज्ञा ली। शराबियों ने शराब छोड़ी, जुआरियों ने जुआ खेलना छोड़ा, डाकुओं ने अपने पापों पर पश्चात्ताप किया। इस प्रकार हृदय-परिवर्तन की अनेक घटनाओं के उदाहरण हमारे सामने हैं।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज स्थानकवासी थे और स्थानकवासी समाज में उनकी लोकप्रियता अतिशय थी। तथापि यह एक निर्विवाद तथ्य है कि वे समन्वयवाद की एक आदर्श मूर्ति और समन्वयकारी महान् संत थे। यह सच है कि उनकी दीक्षा स्थानकवासी पंथ में हुई थी, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र केवल स्थानकवासी समाज तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु सम्पूर्ण जैन समाज को उन्होंने अपने आह्वान और सन्देश का माध्यम बनाया। वे एक उदार दृष्टिकोण के महान समन्वय प्रभावशील साधु थे। यह उनके सामञ्जस्यपूर्ण दृष्टिकोण का ही परिणाम था कि लगभग [illegible] वर्ष पूर्व कोटा (राजस्थान) में विभिन्न विचारधारा एवं सम्प्रदाय के साधु मुनिराज एक ही मंच पर

आसीन हुए। वह वास्तव में एक आह्लादकारी अद्‌भुत दृश्य था। मुनिश्री श्रमण-धारा के एक तेजस्वी साधक थे जो सर्वतोभावेन मानवीय मूल्यों एवं उच्चादर्शों के प्रति समर्पित थे। अहिंसामूलक उनकी सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ मानवीय हित साधन हेतु समता भावपूर्वक होती थीं। उन्होंने ऊँच-नीच में भेद-भाव न रखते हुए सभी वर्गों के लोगों में समान रूप से भगवान महावीर की अमृतवाणी और श्रमण धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया। उन्होंने समाज में घृणास्पद समझे जाने वाले मोची, चमार, कलाल, खटीक आदि निम्न जाति के लोगों तक अपना सन्देश पहुँचाया तथा उन्हें शराब, गांजा, मांग, तम्बाकू आदि के व्यसन से छुटकारा दिलाकर मांस-भक्षण और जीवहिंसा न करने की प्रेरणा दी। उन्होंने उन लोगों के जीवनस्तर को उन्नत बनाने और समाज में स्वाभिमानपूर्ण प्रतिष्ठित स्थान दिलाने के लिए जो भगीरथ प्रयास किया वह इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरांकित रहेगा। आपके पावन सन्देश एवं उपदेश से प्रेरणा लेने वालों में वेश्यावृत्ति त्यागने वाली महिलाओं का भी एक वर्ग है।

आप श्रमण परम्परा के एक ऐसे सूर्य हैं जिसने समाज को आलोक दिया, दिशा दृष्टि प्रदान की और अपने सत्साहित्य के द्वारा प्रेरणाप्रद सन्देश दिया। विभिन्न स्थानों पर आयोजित अपने चातुर्मास काल में उन्होंने अपने सदुपदेशों के माध्यम से असंख्य लोगों का उद्धार किया। उनका जीवन इतना संयत, सदाचारपूर्ण एवं आडम्बरविहीन रहा कि उसने प्रायः सभी को प्रभावित किया। उन्होंने अहिंसा आदि का पालन इतनी सूक्ष्मता एवं सावधानी से किया कि उसे देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। उनके व्रत-नियम कठोर होते हुए भी उदात्त थे। वे यद्यपि वाक्पटु थे और उनकी वाणी एवं वक्तृत्व शैली में गजब का सम्मोहन था, फिर भी उनकी वक्तृता में वाक्पटुता की अपेक्षा जीवन का यथार्थ ही अधिक छलकता था। एक ओर जीवन को ऊँचा उठाने वाला और नैतिकता का वोध कराने वाला उनका सन्देश और दूसरी ओर उनका अनुकरणीय आदर्शमय जीवन लोगों के हृदय पर गजब का प्रभाव डालता था। श्रमण सूर्य—श्री जैन दिवाकरजी की जीवनी एवं उनके जीवन के प्रेरक पावन प्रसंगों को पढ़ने से उनकी प्रवचन शक्ति एवं आकर्षण युक्त अद्‌भुत व्यक्तित्व का वोध तो सहज ही हो जाता है। मांस-मदिरा जैसे दुर्व्यसनों में फँसे हुए सैकड़ों-हजारों लोगों ने उनकी जादू भरी दिव्य वाणी से प्रभावित होकर सदा के लिए उन व्यसनों को छोड़ दिया—यह कोई साधारण वात नहीं है। जैन लोग यदि उनकी ओर आकृष्ट होते हैं तो इतना आश्चर्य नहीं होता, किन्तु जैनेतर जन उनके प्रभावशाली चुम्बकीय आकर्षण से बिंधकर उनकी वात सुनता है और उस पर आचरण करता है तो सहज ही आश्चर्य होता है। यह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का ही परिणाम था कि तत्कालीन अनेक राजा-महाराजा उनके चरणों में नतमस्तक हुए और उन्होंने अपनी रियासतों में जीवहिंसा निषेध के आदेश जारी किये। इस प्रकार उनके प्रभाव से अनेकानेक निरीह पशु-पक्षियों को अभयदान मिला। उन्होंने मानव जाति के नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए दिव्यता विभूषित एक देव दूत की भूमिका का निर्वाह किया। उन्होंने प्राणिमात्र की जो सेवा की है वह अविस्मरणीय है। हम चिरकाल तक उनके जीवन से, जो स्वयं ही एक दिव्य सन्देश है प्रेरणा लेते रहेंगे और सन्मार्ग पर चलने का उपक्रम करेंगे। उनका पावन सन्देश एवं अलौकिक ज्योतिःपुंज शताब्दियों तक हमारा पथ प्रदर्शन करता रहेगा।

ऐसी अमर विभूति हमारे लिए सदा सर्वदा वन्दनीय है। उनके चरणों में शतशः वन्दनपूर्वक हमारा नमन है।

पीड़ित मानवता के मसीहा श्री जैन दिवाकरजी

—श्री राजीव प्रचंडिया बी० ए०, एल-एल० बी०
(अलीगढ़)

भारतवर्ष सन्तों का देश है। सन्त-परम्परा अर्वाचीन नहीं है। इस परम्परा का आदिम रूप प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतों में आज भी सुरक्षित है। संतों की वाणी गंगाजल की तरह पवित्र तथा जल प्रवाह की भांति गत्यात्मक है। ठहराव का परिणाम गंदगी तज्जन्य दुर्गन्ध है जबकि बहाव में सातत्य गति तथा निर्मलता है। मनुष्य को मनुष्य की भूमिका में वापिस ले आते हैं वे वस्तुतः सन्त कहलाते हैं।[1] सन्त व्यक्ति को अज्ञान से ज्ञान के धरातल पर ले जाने में सक्षम होता है। प्रश्न है—ज्ञान क्या? "ज्ञायते अनेन् इति ज्ञानं" अर्थात् जिससे जाना जाय वह ज्ञान है। प्रत्येक क्षण में ज्ञान विद्यमान रहता है और ज्ञान को जानने वाला व्यक्ति सचमुच ज्ञानी कहलाता है, पंडित कहलाता है। आचारांगसूत्र के अनुसार—'खणं जाणाहि पंडिए' अर्थात् जो क्षण को जानता है, वह पंडित है, सन्त है और महान् है।

सन्त-परम्परा में जैन सन्त का अपना अलग स्थान है। उनकी दैनिकचर्या दूसरे सन्तों से सर्वथा भिन्न है। उनकी अपनी एक जीवन शैली है। इसी से वे जन-जन में समादृत हैं। जैन सन्त सदैव पद-यात्री होते हैं। वर्षाऋतु के चार महीने एक स्थान पर जिसे चातुर्मास या वर्षावास कहा जाता है। इस अवधि में उनके तत्त्वावधान में धर्म की प्रभावना हुआ करती है। वे मूलतः अपरिग्रही और गुणों के उपासक होते हैं। उनके सदाचरण से समाज में सत्य अहिंसा जैसे उदात्त गुणों का संचार हुआ करता है। फलस्वरूप—पाँच पाप—काम, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि से सामाजिक विमुक्त रहता है।

श्रमण-परम्परा अर्थात् जैन-परम्परा की सन्त शृंखला में जैन दिवाकर पूज्य श्री चौथमल जी महाराज का स्थान शीर्षस्थ है। तर्कणा-शक्ति के मनीषी मधुकर मुनि जी महाराज के शब्दों में—"जैन दिवाकरजी महाराज सच्चे वक्ता थे, वाग्मी थे।" उनकी कथनी और करनी एक रूपा थी, अस्तु उनकी वाणी में बल था, प्रभाव था और था ओज। गीता में स्पष्ट लिखा है कि "जीवन के सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने की जो कला या युक्ति है, उसी को योग कहते हैं।" श्री जैन दिवाकरजी महाराज इस कला से सुपरिचित थे। वे योग-क्रिया में पारंगत थे। वे 'यथा नाम तथा गुण' थे। वे सचमुच जैनजौहर थे। समभावी थे, सम्यग्दृष्टि जीव थे। श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री के शब्दों में, "वे कैंची नहीं, सुई थे, जिनमें चुभन थी, किन्तु दो दिलों को जोड़ने की अपूर्व क्षमता थी।" समाज को संकीर्णता से उदारता की ओर ले जाने में सचमुच जगद्वल्लभ जैन दिवाकर जी महाराज ने अपना सारा जीवन लगा दिया है। वे अपने लिए नहीं, सदैव दूसरों के लिए जिए। वे सचमुच दिवाकर थे। सूर्य जो चराचर संसार को प्रतिदिन एक नया जीवन देता है, स्फूर्ति उत्पन्न करता है उसी प्रकार जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने समाज को एक नई चेतना दी है, स्फूर्ति दी है।

समाज का यदि विस्तार से अध्ययन किया जाय तो समाज को मूलतः दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। एक तो उच्चस्तरीय समाज और दूसरा निम्नस्तरीय समाज। उच्च समाज में

१—आचारांगसूत्र, सम्पादक—[illegible], [illegible] ७२, पृष्ठ ७।

तात्पर्य है सवर्णजाति का समुदाय और निम्नस्तरीय जाति से अभिप्राय है निम्न वर्ण का वर्ग, अन्त्यज समाज अर्थात् भील, आदिवासी, हरिजन, चमार, मोची, कलाल, खटीक, वेश्याएँ आदि का वर्ग। जब उच्च समाज गर्त की ओर जाने लगता है, धर्म से विमुख हो जाता है, हिंसा, मांस, मद्यसेवन, दुराचार आदि दुर्व्यसनों में फँस जाता है, तब वह सहज ही पतित समाज की संज्ञा पा जाता है। दोनों समाजों के उत्कर्ष के लिए श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने स्थान-स्थान पर जाकर दिव्य-देशना दी, उन्हें अपने अस्तित्व का बोध कराया। जो कार्य राजनीतिक दल करने में प्रायः असफल रहे हैं, वह कार्य जैन दिवाकरजी महाराज ने अपनी वाक्-पटुता से अपने चारित्र्य से अन्त्यज तथा पतित दोनों समाजों को सुधारने का प्रशंसनीय प्रयास किया और वे उसमें काफी सीमा तक सफल हुए। वास्तव में वे सच्चे समाज सुधारक थे, अन्त्योद्धारक तथा पतितोद्धारक थे। पूज्य दिवाकरजी महाराज एक में अनेक थे। अद्‌भुत थे।

वाणी के जादूगर श्री जैन दिवाकरजी महाराज मानव-हृदय के पक्के पारखी थे। करुणा और दया से उनका हृदय सदा आप्लावित रहता था। तभी तो भीलों के हृदय में महाराजश्री के वक्तव्य को सुनकर व्याप्त हिंसा की भावना अहिंसा में परिवर्तित हो गई। मांस-मदिरा आदि पाँच मकारों को चोरी, डकैती, हत्या, परस्त्री अपहरण आदि को त्यागना भीलों ने सहर्ष स्वीकार किया। राजस्थान में स्थित नाई गाँव में भील जाति ने महाराजश्री से निवेदन किया—"महाराज श्री! हम लोग हिंसा-त्याग की प्रतिज्ञा लेने को तत्पर हैं, किन्तु हमारी विनय है कि यहाँ के महाजन भी न्यूनाधिक तोलने की प्रवृत्ति का त्याग करें।[1]

महाजनों ने भी बात स्वीकार की। महाराज श्री के सत्संग और वाणी की प्रभावना से तत्क्षेत्रीय भील-समूह में जीवन्त परिवर्तन हुए।

यह कथन अपने में सत्य है कि 'वाणी चरित्र की प्रतिध्वनि होती है।' जैसा चारित्र्य होता है—व्यक्ति में, वैसी ही उसकी वाणी मुखरित होती है, जो प्रभावशाली, जन-कल्याणकारी होती है। ऐसी ही कुछ बातें श्री जैन दिवाकरजी महाराज में देखने को मिलती है। जो वे कहते हैं, करते हैं अस्तु, उनका प्रभाव जन-जन में पड़ता है, तभी तो मध्य प्रदेश के अन्तर्गत पिपलिया गाँव में अपने वक्तव्य से लगभग ४०० से अधिक खटीकों[2] को मदिरा का त्याग कराने में आप सफल हो सके। आपने मदिरा के दुर्गुणों को इस प्रकार से बताया कि व्याख्यान सभा में उपस्थित खटीक समुदाय ने उसी समय शराब न पीने का दृढ़ संकल्प किया। वस्तुतः यह बड़ी बात है।

नारी का अनमोल गहना उसका शील होता है। दोहापाहुड में स्पष्ट कहा है—**'शीलं मोक्खस्स सोवाणं'**—अर्थात् शील ही मोक्ष का सोपान है। शील के अभाव में कोई भी नारी पनप नहीं सकती है। उसका विकास नहीं हो सकता है। नारी का नारीत्व शील संयम पर निर्भर करता है। समाज का अपकर्ष और उत्कर्ष नारी पर निर्भर है; क्योंकि नारी समाज का एक अभिन्न अंग है। पतित नारी अथवा वेश्या-समुदाय, समाज को रसातल पर ले जाती है। वस्तुतः ऐसी नारी का जीवन भोग का जीवन होता है, योग का नहीं। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता है, वह दूसरों के संकेत पर कठपुतली की भाँति अपना जीवनयापन करती है। अस्तु वेश्याओं को समाप्त

---

१ जैन दिवाकर, कविरत्न श्री केवलमुनि, पृष्ठ १६१।

२ जैन दिवाकर, श्री केवलमुनि, पृष्ठ १६४।

करने की अपेक्षा वेश्यावृत्ति को दूर करने का दृढ़ संकल्प आपने किया और पाली, राजस्थान में संवत् १९८० में आपके ओजस्वी वक्तव्यों से प्रभावित होकर 'मंगनी' और 'बनी' नामक वेश्याओं ने आपके समक्ष आजीवन शीलव्रत पालने की प्रतिज्ञा की तथा 'सिणगारी' नामक वेश्या ने तो एक पुरुषव्रत का संकल्प लिया।[1] सचमुच जगद्वल्लभ श्री दिवाकरजी महाराज का यह कार्य ऐतिहासिक है।

गिरे वातावरण को ऊपर उठाने में महाराजश्री ने स्थान-स्थान पर जाकर लोगों को प्रभाव पूर्ण तथा रोचक दृष्टान्तों के माध्यम से उनके अंदर सुप्त भावनाओं को जागृत किया। जीने की कला दी। सच्चे सुख का मार्ग बताया। सचमुच वे सच्चे अर्थों में क्रांतिकारी थे और थे एकता-समता के जागरूक प्रहरी। उन्होंने ऊँच-नीच के भेद-भाव की अन्तर रेखा को समाप्त करने का अथक प्रयत्न किया। उनके वक्तव्य से प्रभावित होकर मोची समाज के श्री अमरचन्दजी, कस्तूरचन्दजी तेजमलजी आदि कई परिवारों ने शराब, जीवहिंसा, मांस आदि दुर्व्यसनों का त्याग करके जैनधर्म को अंगीकार किया।[2]

अनेक उदाहरण सामने आते हैं, जहाँ पर व्यक्ति महाराजश्री के सम्पर्क में आते ही धर्ममय हो जाते थे, धार्मिक बन जाते थे क्योंकि महाराजश्री स्वयं जीते-जागते धर्मालय थे। मानस-पटल पर पड़े अज्ञानरूपी पर्दे जीर्ण-शीर्ण हो जाते थे। निश्चित ही यह दिवाकरजी महाराज की थी—अद्भुत तेजस्विता और व्याप्त उनमें ओजस्विता।

संवत् १९८० में महाराज श्री चौथमलजी महाराज का चातुर्मास मध्यप्रदेश में स्थित इन्दौर नगरी में होना सुनिश्चित हुआ था। व्याख्यानधर्मा में महाराजश्री का 'जीव-दया' पर सुन्दर, रोचक ढंग से प्रभावशाली प्रवचन हो रहा था। उनकी प्रवचन शैली से आकर्षित होकर नजर मुहम्मद कसाई ने प्रवचन में ही खड़े होकर अपने निम्न उद्गार व्यक्त किए हैं—"मैं इस भरी सभा में कुराने-शरीफ की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से ही कभी भी, किसी भी जीव की हिंसा नहीं करूँगा।"[3] इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि महाराजश्री की वक्तव्य शैली कितनी मधुर थी। सचमुच उनकी वाणी में ज्ञान की गोमती प्रवाहित थी और थी मिश्री की सी मिठास।

"उपदेश देना सरल है, उपाय बताना कठिन है" यह कथन कवीन्द्र रवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ जी टैगोर का निश्चित ही किसी सीमा तक सार्थक है, सही भी है। जैसा कि आज प्रायः देखा जाता है कि वक्ता अपने अर्थ-गर्भित शब्दों के सहज से सदा सुन्दर व्याख्यानशैली से कथा-उपकथाओं के माध्यम से श्रोतृ मण्डली को मन-मुग्ध भी कर देता है, किन्तु अन्ततोगत्वा वह सब निरर्थक होता है। ऐसे वक्तव्य से श्रोता, जैसा वक्तव्य से पूर्व था वैसा ही बाद में रहता है अर्थात् निष्फल कोरा। उसके हाथ कुछ नहीं आता। वास्तव में चित्त की सच्चरित्रता ही व्यक्ति को महान बनाती है, उसकी वाणी को प्रभावशाली बनाती है। निश्चय ही सच्चे सन्त का अन्तः-करण उसकी वाणी हुआ करती है जो किसी व्यक्ति की जीवन दिशा बदल देती है। ऐसे ही सन्त थे जैन दिवाकरजी महाराज थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे अपनी अद्भुत कला में इतने निष्णात थे कि वे उपदेश के

१ जैन दिवाकर, श्री केवलमुनि जी, पृष्ठ ९९।
२ वहीं, पृ० ११७।
३ जैन दिवाकर, श्री केवलमुनि, पृष्ठ १७१।

साथ-साथ व्यक्ति में समाहित अमानवीय तत्त्वों से बचने के उपाय का मार्ग भी बताते थे। कोरी कथाओं का उनमें अभाव था, जो कुछ वे कहते उसके पीछे उनका जीवन-अनुभव होता था।

जैन दिवाकर महाराज श्री प्रायः प्रचलित ज्वलन्त समस्याओं पर अपना सरल किन्तु सरसता से ओत-प्रोत शैली में वक्तव्य दिया करते थे। वे जन-जन में धर्म की बातों को बताते थे, साथ ही उन पर अमल करने के लिए बल भी देते थे।

क्या कुछ कहा जाए, क्या कुछ लिखा जाय, ऐसे सन्त के विषय में जिसने सम्पूर्ण जीवन दीन-दुखियों, पतितों के उद्धार में खपाया हो। साथ ही जिसने अन्त्यज तथा पतित समाज के अनगिनत व्यक्तियों को जीने का एक नया दिन दिया, एक नई रात दी और दिया एक नया रूप। सचमुच समाज में व्याप्त विषाद पूर्ण वातावरण में समाज को ऐसे महापुरुष की अत्यन्त आवश्यकता थी, आवश्यकता है और रहेगी।

—राजीव प्रचंडिया बी० ए०, एल-एल० बी०
पीली कोठी, आगरा रोड,
अलीगढ़ २०२००१

बोगी रिजर्व करदी है

उदयपुर प्रवास के समय वहाँ के स्टेशन मास्टर की धर्मपत्नी गुरुदेव के व्याख्यान सुनने आती थी। एकदिन स्टेशन मास्टर भी आये। उन्हें पता लगा कि महाराज साहब यहाँ से अमुक दिन प्रस्थान करके चित्तौड़ की तर्फ जायेंगे।

एक अन्य दिन दोपहर के समय स्टेशन मास्टर पुनः आये और निवेदन किया—"स्वामीजी ! यहाँ से चित्तौड़ तक के लिए एक डिब्बा (बोगी) आपके और आपके शिष्यों के लिए मैंने रिजर्व कर दिया है, आप आनन्द से जाइए। आगे का प्रबन्ध और कोई कर देगा।"

गुरुदेव ने उन्हें बताया—"हम किसी प्रकार की सवारी नहीं करते, पैरों में जूती का भी प्रयोग नहीं करते। पैदल और नंगे पाँवों ही पूरे देश का पर्यटन करते हैं।" सुनकर स्टेशन मास्टर को बड़ा आश्चर्य हुआ। आपके तप व त्याग से वे इतने प्रभावित हुये कि घर पर गोचरी के लिए ले गये। उनकी धर्मपत्नी ने आरती सजाकर रखी थी। गुरुदेव के पहुँचते ही आरती उतारने लगी और स्टेशन मास्टर साहब रुपयों की वर्षा करने लगे ! गुरुदेव ने रोका, और समझाया—हमारा स्वागत करना हो तो त्याग की आरती कीजिए, भक्ति, श्रद्धा का सुफल है—जीवन में कुछ न कुछ सत्संकल्प लेना।

—श्री केवल मुनि

समाज सुधार की दिशा में श्री जैन दिवाकर जी के युगान्तरकारी प्रयत्न

सदियों से फूट तथा कुरीतियों की कारा में बन्द मानव को एकता तथा प्रगति का मुक्त वातावरण प्रदान करने की बोलती कहानी।

✤ श्री केवल मुनि

सामाजिक कुप्रथाएँ, कुरीतियाँ भी एक प्रकार की बुराई है, एक गन्दगी है, उनका स्वभाव है कि वे धीरे-धीरे समाज के स्वच्छ वातावरण में प्रवेश करती है, उसे मैला करती है। जब गन्दगी बढ़ जाती है तो समाज का वातावरण दूषित हो जाता है। भले-सज्जन पुरुषों को सांस लेने में भी कठिनाई होने लगती है। तब उनके सुधार की आवश्यकता अनुभव की जाती है।

साधक भी जिस समाज में रहता है, उससे सर्वथा निर्लिप्त नहीं रह सकता है। दूषित वातावरण में उसकी साधना की चर्या सुचारु रूप से नहीं चल पाती। दूसरे साधक का स्वभाव ही परोपकारी होता है। इसीलिए तो वह पैदल विचरण करता है ताकि जन-जाति के संपर्क में आकर वह उसकी नब्ज को पहचाने और फिर हृदय-स्पर्शी उपदेश द्वारा उसको जीवन दिशा दे सके। संत का मार्ग हृदय परिवर्तन का मार्ग है। वह जन-जीवन में व्याप्त कुप्रथाओं, कुरीतियों, हानिकारक परम्पराओं तथा फूट एवं वैमनस्य को मिटाने में अपनी शक्ति लगा देता है।

जैन दिवाकरजी महाराज को तत्कालीन समाज में फैली कुप्रथाएँ दृष्टिगोचर हुईं। उन्होंने इन सबको समाप्त कर डालने का सफल प्रयत्न किया, अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व और चमत्कारी वक्तृत्व से समाज को आन्दोलित किया, उचित मार्ग-दर्शन दिया। उन्होंने समाज को युगानुरूप प्रेरणा देकर उन्हें सुधारों की ओर प्रवृत्त कर स्वच्छ जीवन बिताने हेतु प्रेरित किया।

मन-मुटाव और फूट को विदा—

फूट सदा ही विनाशकारी है और एकता निर्माणकारी। [illegible] समाज एकता के अर्थ में [illegible] ही माना जाता है। अन्य बुराई को भी तब तक दूर नहीं किया जा सकता, जब तक कि समाज में एकता भावना न हो। जैन दिवाकरजी महाराज जहाँ भी पधारे, उन्होंने एकता को सर्व-प्रथम महत्त्व दिया।

जैन दिवाकरजी महाराज का चातुर्मास सं० १९६६ में [illegible] में [illegible]। वहाँ कुछ वर्षों से हिन्दू लोगों में परस्पर कलह चल रहा था। अनेक सन्तों ने भी प्रयत्न कर लिये, किन्तु वैमनस्य दूर न हुआ। लोगों ने अपनी समस्या आपश्री के सम्मुख रखी। आपश्री एक ही प्रवचन से [illegible] वर्षों का वैमनस्य दूर हो गया।

इसी प्रकार [illegible] और [illegible] में भी वर्षों पुराना वैमनस्य दूर हुआ। दोनों पक्षों को आपने [illegible] हो गया।

[illegible] में [illegible]

रखी गई। आपकी प्रेरणा से वैमनस्य सौमनस्य में बदल गया। चित्तौड़ के हाकिम साहब ने इस एकता की खुशी में प्रीति-भोज भी दिया।

चित्तौड़ चातुर्मास के बाद जब आप **गंगरार** पधारे तो वहाँ भी कई जातियों के मध्य चल रहे संघर्ष को नष्ट किया।

गंगरार से आपश्री का पदार्पण जहाजपुर में हुआ। वहाँ के जैनेतर समाज के मध्य चल रहे द्वन्द्व की आपकी ही प्रेरणा से इतिश्री हुई।

इन्द्रगढ़ के ब्राह्मण समाज में ४० वर्ष से फूट अपना अड्डा जमाए हुई थी। एकता के अनेक प्रयास हुए किन्तु सब विफल रहे। इन्द्रगढ़ नरेश भी इस द्वेष-कलह को न मिटा सके। दोनों दलों के मुखियाओं को जब इन्द्रगढ़ नरेश ने अपने समक्ष बुलाकर आपसी कलह मिटाने की बात कही तो उन लोगों ने दो-टूक जवाब दे दिया—अन्नदाता ! आप और कुछ भी कहें, सिर माथे है, इस बात के लिए मत कहिए।" नरेश चुप हो गये।

सं० १९९२ का चातुर्मास कोटा में सम्पन्न कर गुरुदेवश्री इन्द्रगढ़ पधारे। प्रवचनों में विशाल जनमेदिनी उमड़ पड़ती थी। ब्राह्मण-समाज के दोनों दल के ही सदस्य व्याख्यान में आते थे।

एक दिन एकता, संगठन तथा प्रेम का प्रसंग उपस्थित कर गुरुदेवश्री ने प्रवचन सभा में ही उन लोगों से पूछा—आप लोग संघर्ष चाहते हैं या एकता ?

दोनों दल के मुखिया, जो प्रवचन से गद्गद हो उठे थे—सहसा बोल पड़े—"महाराज! संघर्ष से तो हम बरबाद हो गये, अब तो एकता चाहते हैं।"

गुरुदेव का संकेत पाकर दोनों दल के मुखिया खड़े हुये, गुरुदेव के निकट आये। गुरुदेवश्री ने मधुर हृदयस्पर्शी शब्दों में कहा—"अगर एकता चाहते हो तो पुराने वैरद्वेष को आज, अभी, यहीं पर समाप्त कर डालो और हाथ जोड़कर एक-दूसरे से माफी माँगो, प्रेम पूर्वक मिलो।"

लोग विस्फारित नेत्रों से देखने लगे। दोनों पार्टी के नेताओं पर जैसे सम्मोहन हो गया हो, वे हाथ जोड़कर एक-दूसरे से माफी माँगने लगे और परस्पर गले मिले। क्षणभर में तो जैसे पूरी सभा एक दूसरे से माफी माँगकर गले मिलने लगी। सर्वत्र एक मधुर वातावरण छा गया और असम्भव प्रतीत होने वाला कार्य सम्भव क्या, साक्षात् हो ही गया। पूरी सभा में प्रेम की वर्षा हो गई।

इस दृश्य से प्रभावित होकर राज्य के मन्त्रीजी ने नरेश को बम्बई तार भेजा—'यहाँ पर एक ऐसे जैन साधु आये हैं जिनकी वाणी में जादू है। ब्राह्मण समाज का झगड़ा उन्होंने मिटा दिया है।'

नरेश ने चकित होकर वापस तार दिया—'साधुजी को रोको, मैं आ रहा हूँ।' और इन्द्रगढ़ नरेश ने आकर गुरुदेव के दर्शन किये, अपनी बाग वाली कोठी में प्रवचन कराये।

गुरुदेवश्री झाबुआ की ओर जा रहे थे, मार्ग में पड़ा 'पारे' गाँव। वहाँ भी फूट का साम्राज्य था। आपके उपदेशामृत से एकता की रसधारा बह पड़ी। फूट-राक्षसी का पलायन हो गया।

संवत् १९७९ में मालवा प्रदेश से पुनः **गंगरार** पधारे। वहाँ दो जातियों की पारस्परिक गुटबन्दी आपकी प्रेरणा से ही समाप्त हुई।

सांगानेर में माहेश्वरी लोगों का वैमनस्य आपश्री की प्रेरणा से मिटा।

पोटला में माहेश्वरी लोगों की दलबन्दी आपके ही द्वारा समाप्त हुई।

पाली संघ में बहुत दिनों से वैमनस्य चला आ रहा था। अनेक सन्तों के प्रयास भी एकता

न करा सके। आपश्री का पदार्पण वहाँ सं० १९९० में हुआ। लोगों ने समझा अब एकता स्थापित हो जायगी। एकता पर बल देते हुए आपने कई व्याख्यान भी दिए, किन्तु इच्छित परिणाम न निकला। आपश्री वहाँ से चलकर रामस्नेही आश्रम पधारे। यह आश्रम पाली नगर से कुछ दूर है। जनता वहाँ भी आपका प्रवचन सुनने पहुँची। प्रवचन इतना जोशीला था कि जैनों के दिल हिल उठे। पाली संघ में प्रेम की गंगा बह आई। श्री मिश्रीमलजी मुनोत ने भी इस कार्य में बहुत सहयोग दिया।

एकता स्थापित होने के बाद पाली संघ आपको पुनः नगर में ले आया तथा वहाँ आपके दो प्रवचन और हुए।

मनमाड के संघ का मनोमालिन्य भी आपके सदुपदेशों से दूर हुआ।

रतलाम चातुर्मास (१९८५ विक्रमी) पूर्ण करके आप छबीवरनावर पधारे। वहाँ ओसवाल-समाज में पुराना वैमनस्य था। आपके सद्प्रवचनों से वह धुल गया और सभी एकता के सूत्र में बंध गये।

इसी प्रकार जहाँ-जहाँ भी समाज में, चाहे वह जैन रहा हो अथवा जैनेतर, वैमनस्य, फूट, अलगाव आदि आपके सदुपदेशों से दूर हुआ। यह आपके ओजस्वी वक्तृत्व और प्रभावशाली व्यक्तित्व का चमत्कार था।

रूढ़ियों और कुरीतियों पर प्रहार

समाज के सुधार हेतु कुरीतियों और रूढ़ियों को मिटाना आवश्यक है। सामाजिक जीवन को ये रूढ़ियाँ विषाक्त करती हैं और उसे अधःपतन की ओर प्रेरित करती हैं। जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से ऐसी अनेक रूढ़ियों का विनाश हुआ।

जैन दिवाकरजी महाराज जब जहाजपुर पधारे तो वहाँ का समाज वेश्यानृत्य, मदिरापान, कन्या-विक्रय आदि कई घातक रूढ़ियों से ग्रस्त था। आपके सदुपदेश से दिगम्बर जैन, माहेश्वरियों और अनेक लोगों ने इन रूढ़ियों को त्याग दिया।

चित्तौड़ में आपके व्याख्यानों से प्रेरित होकर ओसवाल और माहेश्वरियों ने अपने-अपने समाज में पहरावणी, कन्याविक्रय आदि कुरीतियों को त्यागा और साथ ही यह व्यवस्था भी की कि जिस भाई के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए धन न हो, उसे पंचायती फण्ड से ५०० रुपये तक कर्ज के रूप में बिना ब्याज के दिया जाय।

धर्म के नाम पर हिंसा एक भयंकर रूढ़ि है। इसमें धर्म, पुण्य का जामा पहनाकर पशु-बलि की जाती है। जैन दिवाकरजी महाराज ने इस कुप्रथा को भी बन्द कराने का प्रयास किया। जब आप नागपुर में विराजमान थे तब उज्जैन के राव सूबेदार आपके दर्शनार्थ आये। उन्होंने सेवा करवाने की प्रार्थना की तो आपश्री ने अहिंसा की प्रेरणा देते हुए कहा—'आप उज्जैन के उच्च अधिकारी हैं। वहाँ देवी-देवताओं के नाम पर होने वाली हिंसा को बन्द करा सकें तो कितना अच्छा हो।' उन्होंने इस कार्य को करने का वचन दिया।

रतलाम में करणी देवी के सम्मुख प्रतिवर्ष होने वाली एक पाड़े की बलि को बन्द करवाया।

अस्पृश्यता निवारण

अस्पृश्यता भारतीय समाज और विशेष रूप से हिन्दू समाज का बहुत बड़ा कलंक है। जैन धर्म तो अस्पृश्यता को मानता ही नहीं। वह तो मनुष्य की आत्मिक पवित्रता के सिद्धान्त को मानता है, कोई भी व्यक्ति किसी भी जाति और कुल का हो, सदाचार और सद्गुणों का आचरण करे तो पवित्र

कर सकता है और धर्म का अधिकारी वन सकता है। अपनी इस मान्यता के अनुसार सदा से ही जैन सन्तों ने इस कलंक को मिटाने का प्रयास किया है। अस्पृश्यता का सवसे भयंकर दूषित रूप तव प्रकट होता है जव किसी निरपराध पर झूठा दोष मढ़कर उसे अस्पृश्य करार दे दिया जाता है। और उसे मानवीय धरातल से भी नीचे गिरा दिया जाता है।

ऐसा ही एक मामला बड़ी सादड़ी में हुआ। कुछ स्त्रियों ने अन्य स्त्रियों पर अस्पृश्य होने का झूठा कलंक लगा दिया। समाज में मन-मुटाव हो गया। अनेक सन्तों के प्रयास से भी यह वखेड़ा न निवट सका। इसे सुलझाने का श्रेय भी जैन दिवाकरजी महाराज को प्राप्त हुआ। उनके सदुपदेश से यह वखेड़ा निपट गया और समाज का मनोमालिन्य दूर हुआ।

इन्दौर में आपके व्याख्यानों से प्रभावित होकर वहाँ के डिस्ट्रिक्ट सूवेदार ने विभिन्न स्थानों पर वलि-प्रथा वन्द कराई। परिणामस्वरूप १५०० पशुओं को अभयदान मिला। धर्म के नाम पर हिंसा की कुरीति को दूर करने का यह कितना शक्तिशाली कदम था।

संवत् १९७९ में आप विचरण करते हुए मन्दसौर पधारे। वहाँ जनकपुरा वजाजखाना आदि स्थलों पर समाज सुधार सम्वन्धी प्रवचन हुए। परिणामतः स्थानीय पोरवाल वन्धुओं ने कन्या-विक्रय न करने का संकल्प किया। ओसवालों में वहुत से सुधार हुए। वाल-विवाह, वृद्ध-विवाह जैसी कुप्रथाएँ सदा के लिए वन्द कर दी गई।

महागढ़ में आपश्री के एक ही व्याख्यान से कन्या-विक्रय की कुप्रथा सदा के लिए समाप्त हो गई।

गौरक्षा और विद्या प्रचार

महाराजश्री ने देवास में एक दिन 'धन के सदुपयोग' पर व्याख्यान दिया और दूसरे दिन 'गौरक्षा' तथा 'विद्या' पर प्रवचन इतने प्रभावशाली थे कि लोगों ने इन कार्यों के लिए धन का त्याग करके उसका सदुपयोग किया। नारियों ने अपने गहने तक उतार दिये। यह धन के सदुपयोग का ज्वलन्त उदाहरण है।

माँडल में आपश्री के उपदेश से लोगों ने झूठी गवाही देने का त्याग किया।

विधवाओं के कर्तव्य की ओर संकेत

विधवाएँ कभी-कभी भावावेग में, या विवश होकर अपने शील को खण्डित कर लेती हैं। कुशील आचरण के परिणामस्वरूप जव नाजायज सन्तान का जन्म होता है तो वह घवरा जाती हैं। समाज में अपयश के भय से वह अपने नवजात शिशु को भी निर्दय होकर अरक्षित ही यत्र-तत्र कूड़ा-कर्कट पर डाल आती हैं।

ऐसे ही एक घटना रायपुर (वोराणा) में जैन दिवाकरजी महाराज के समक्ष आई।

वैशाख वदी ५ का दिन था। एक सद्यःजात शिशु लोगों को भैंरोजी के चवूतरे पर मिला। वालक मरणासन्न था। हाकिम ने उसकी जाँच की। शिशु वहीं लाया गया जहाँ आपश्री प्रवचन दे रहे थे। शिशु को इस दशा में देखकर आपका हृदय भर आया। लोगों में कानाफूसी होने लगी। जव विश्वास हो गया कि वालक किसी विधवा का है तो आपने 'विधवा के कर्तव्य' पर एक जोशीला और सारगर्भित भाषण दिया। इसमें विधवाओं को अपने शील पर दृढ़ रहने की प्रेरणा दी। शारीरिक भूख को दवाने के लिए आत्मचिन्तन करने का उपाय वताया।

यदि सभी विधवाएँ आपके मार्ग पर चलें तो भ्रूणहत्या और शिशुहत्या आदि जैसे निंद्य कर्मों का समूल नाश हो जाय।
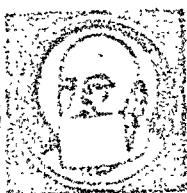
जोधपुर में ओसवाल यंगमेन्स सोसाइटी की कार्यकारिणी के आग्रह पर आपश्री ने १८ जनवरी, १९२५ को 'सामाजिक जीवन' पर एक व्याख्यान दिया। प्रभावित होकर कई सज्जनों ने विविध त्याग किये। सभा के सैक्रेटरी रायसाहब किशनलाल बाफणा ने निम्न प्रतिज्ञाएँ लीं—

(१) अपने स्वार्थ के लिए और किसी प्रकार की इच्छा से झूठ नहीं बोलूँगा।
(२) अपने और दूसरे सम्बन्धीजनों के मरण पर १२ दिन से अधिक शोक नहीं मनाऊँगा।
(३) बारह महीनों में २४ दिन के सिवाय सदैव शील व्रत पालूँगा।
(४) अपनी रक्षा के सिवाय दूसरों पर कभी क्रोध और ईर्ष्या नहीं करूँगा।

इनके सुपुत्र असिस्टेण्ट सर्जन डा० अमृतलाल जी ने निम्न प्रतिज्ञाएँ लीं—

(१) आज से जोधपुर नगर के ओसवाल भाइयों की चिकित्सा के लिए फीस नहीं लूँगा।
(२) चौपड़, शतरंज आदि खेलों में समय बरबाद नहीं करूँगा।
(३) वृद्ध विवाह में सम्मिलित नहीं होऊँगा।
(४) प्रतिमास २० दिन शीलव्रत का पालन करूँगा।
(५) स्वदेशी चमड़े के जूतों के सिवाय चमड़े की अन्य चीजों का प्रयोग नहीं करूँगा।

पाली में आपके प्रवचन को सुनकर हाकिम साहब सम्पतचन्दजी ने निम्न प्रतिज्ञाएँ कीं—

(१) जीवनपर्यन्त प्रतिमास एक बकरे को अभयदान देना।
(२) धूम्रपान का जीवन भर के लिए त्याग (आप २४ वर्ष से धूम्रपान करते थे)।
(३) महीने में २५ दिन ब्रह्मचर्य का पालन करना।

जोधपुर सं० १९८४ में एक बहुत बड़ी बात हुई। गुरुदेव ने पर्युषण के दिनों में व्यापार बन्द कर धर्माराधना करने का उपदेश दिया जो लोगों के हृदय में उतर गया। गुरुदेव ने कहा—"कुम्हार, धोबी, तेली आदि जातियाँ पर्युषण में अपना धन्धा बन्द रखती हैं और आज महाजन अपना धन्धा चालू रखते हैं यह यहाँ का रिवाज है। पर्युषणपर्व का महत्त्व समझते हो तो आठ दिन, संवत्सरी, को हो तो ६ दिन तक व्यापार नहीं करना।" पूरी जैन समाज ने पर्युषण में अपना व्यापार बन्द कर दिया वह अभी तक चालू है। इतने बड़े नगर में इतनी बड़ी संख्या में लोगों के होते हुए इस तरह व्यापार बन्द रखना साधारण बात नहीं है उस महापुरुष का प्रभाव है। आज भी अधिकांश लोग इसका पालन करते हैं।

आगोली में ओहदा अब्दुल करीम ने बकरा ईद के अतिरिक्त जीव-हिंसा का त्याग किया। इसी प्रकार का त्याग पीरबख्श और रहीमबख्श ने भी किया।

जोधपुर घासमण्डी में श्रावण सुदी १४-१५ को महाराजश्री के व्याख्यान कन्या-विक्रय पर हुए। सभी लोगों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। एक स्वर से सभी श्रोताओं ने संकल्प किया—'कन्या-विक्रय जैसा निंद्य कर्म कभी नहीं करेंगे और यहाँ तक कि ऐसा करने वालों से भोजन व्यवहार भी बन्द कर देंगे।' ओसवाल व श्री माहेश्वरी परिवारों ने ऐसी ही प्रतिज्ञा की। अन्य लोगों ने जुआ न खेलने, बीड़ी न पीने आदि का दृढ़ संकल्प किया।

[illegible] काम हुए

जोधपुर में जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचनों से प्रभावित होकर लोगों ने [illegible] न करने का निश्चय किया। कुछ लोगों ने यह कहा कि यदि [illegible] के [illegible] [illegible] बन्द न हो तो [illegible] पर [illegible] करेंगे।

अहमदनगर में भी आपके उपदेश को सुनकर कई लोगों द्वारा [illegible] न [illegible] की प्रतिज्ञा ली गई।

अभयदान

पिप्पलगाँव में एक भाई ने आपके उपदेश सुनकर अपने बकरे कसाई को न बेचने की प्रतिज्ञा ली। (उस भाई के यहाँ सैकड़ों बकरे रहते थे जिन्हें वह कसाई के हाथ वेचा करता था।)

छोटे-से गाँव बेलवण्डी के नररत्न आवा साहब संपतराव ने 'अपने गाँव में जीवहिंसा न होने देने' की प्रतिज्ञा ली।

जैन दिवाकरजी महाराज सतारा में व्याख्यान दे रहे थे। एक आदमी उधर से चूहेदानी में बहुत से चूहे लेकर निकला। पूछने पर मालूम हुआ—'इन चूहों को मार डाला जायगा।' आपश्री ने श्रोताओं को इन चूहों की रक्षा की प्रेरणा दी। रावसाहब मोतीलालजी मुथा तथा सावाराम सीताराम बाजारे ने उस व्यक्ति को समझा-बुझाकर चूहों को अभयदान दिलाया।

स्वधर्मी वात्सल्य

विक्रम संवत् १९८७ का जैन दिवाकरजी महाराज का चातुर्मास अहमदनगर में था। वहाँ अपने प्रवचनों में 'स्वधर्मी वात्सल्य' का महत्व बताया। मोसर न करके यह पैसा सार्धमियों की सेवा में लगा रहे तो आपके धन का सदुपयोग है।

अहमदनगर के बाद गुरुदेव का चातुर्मास बम्बई में हुआ। १९८८ में बम्बई का चातुर्मास पूर्ण कर आप नासिक पधार रहे थे। नासिक से कुछ दूर पर सड़क के किनारे एक छोटे से मकान के बाहर एक भाई खड़ा था। उसको बहुत कम दिखाई देता था। वह सड़क पर चलने वालों से पूछ रहा था—"हमारे महाराज आने वाले हैं तुमने देखे क्या?" थोड़ी दूर पर गुरुदेव अपने शिष्यों के साथ पधार रहे थे।

एक साधु को पूछने लगा। साधु ने कहा—'गुरुदेव पधार रहे हैं।' उसने अपनी भाभी को आवाज दी वह भी बाहर आई। उनके फटे कपड़े और गिरी हुई अवस्था देखकर सभी का हृदय भर गया। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज और हम अन्य सन्त लोग उसके घर गये। घर में खाने की खास सामग्री का अभाव था—दो-चार बर्तन पीतल के थे।

नासिक पहुँच कर अहमदनगर के श्रीमान् ढोढीरामजी को उस भाई की करुणाजनक दशा के वर्णन का पत्र दिया। और स्वधर्मी बन्धुओं की सहायता की प्रेरणा दी।

ढोढीराम जी ने अहमदनगर चातुर्मास में गुरुदेव के समक्ष मोसर नहीं करने का संकल्प किया। ५०००) रु० स्वधर्मी भाइयों की सेवा के लिए निकाले थे, उन्होंने अपना मुनीम भेजकर उस भाई को कपड़े व खाने की सामग्री आदि दिलाई तथा उसकी सहायता व्यवस्था की।

नासिक श्रीसंघ ने भी स्वधर्मी भाइयों को सहायता देना अपना सर्वप्रथम कर्तव्य माना।

× × ×

वास्तविकता यह है कि श्री जैन दिवाकरजी महाराज की प्रतिभा सर्वतोमुखी और दृष्टि विशाल थी। उनसे समाज का कोई दोष-कलंक छिप नहीं पाता था। वे कुरीतियों, रूढ़ियों और कुप्रथाओं के विनाश के लिए सदैव सचेष्ट रहते थे। वे जहाँ भी गए उन्होंने समाज-सुधार के प्रयत्न किये, लोगों को दुर्व्यसन छोड़ने की प्रेरणा दी।

अस्पृश्यता, धर्म के नाम पर हिंसा, कन्या-विक्रय, मृतकभोज, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह आदि कुरीतियों की बुराइयों को बताया और लोगों को इनके त्याग की ओर उन्मुख किया।

समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए गुरुदेव द्वारा किये गए भागीरथ प्रयत्न चिर-स्मरणीय रहेंगे। देश के सामने जो समस्याएँ आज मुँह बाए खड़ी हैं, उनके प्रति गुरुदेव ने समाज को पूर्व में ही सजग कर दिया था।

समाज-सुधार में संत-परम्परा एवं श्री जैन दिवाकरजी महाराज

✲ श्री चतुर्भुज स्वर्णकार, शिक्षक
एम० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न (हिन्दी-अर्थशास्त्र)

विश्व के मानचित्र में एशिया महाद्वीप के दक्षिण में त्रिभुजाकार भूभाग पर जहाँ राम और कृष्ण ने जन्म लिया, वहीं भगवान महावीर और बुद्ध ने भी अपने जन्म को साकार किया। वर्तमान युग में इसी पावन-धरा पर युगपुरुष महात्मा गांधी ने संसार को मानवता का बोध पाठ दिया।

भारत एक विचित्र देश है, संसार का शिरोमणि, जगद्गुरु मानव सभ्यता और संस्कृति का जन्मदाता, जहाँ विभिन्नता में एकता, और एकता में भी विभिन्नता के दर्शन होते हैं। इस राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध की जन्म-भूमि में विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान होता रहा है। किन्तु भारतीय संस्कृति अपनी अक्षुण्णता को आज भी बनाये हुए कायम है। जिस प्रकार महासागर में चारों ओर से सरिताओं का नीर आता रहता है और सागर सभी सरिताओं को अपने में समाये रहता है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति भी महासागर की भाँति अपनी गम्भीरता, महानता एवं अक्षुण्णता बनाये हुए है।

भारत की पावन-धरा पर जहाँ ऋषियों और महात्माओं ने, मुनियों और महन्तों ने, साधुओं और सन्तों ने जन्म लेकर अपने ज्ञान के प्रकाश को संसार में विकीर्ण किया और अन्धकारमय जगत् को प्रकाशमान बनाया। "भरात् इत भरोति" दिनता चाहे ज्ञान की हो, चाहे अन्न या वस्त्र की हो या चाहे आवास की हो, यहाँ उनके साधु-सन्तों और गरीबों ने दिनता की खाई को सदैव पाट कर उनका सिद्धान्त की रक्षा की।

भारत कृषि प्रधान देश गिना जाता है, किन्तु इस ऋषि-प्रधान देश में अनेक धार्मिक मत-मतान्तर, धर्म-सम्प्रदाय उत्पन्न हुए, पनपे और नामशेष हुए और कुछ आज भी अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं—और विश्व शान्ति और मानवता की स्थापनार्थ सतत् प्रयत्नशील है। भारत में तीन धर्मों का महत्त्व रहा है—(१) वैदिक धर्म, (२) जैन धर्म और (३) बौद्ध धर्म। प्राचीनता की कसौटी पर कौनसा धर्म प्रथम स्थान में आता है इसकी चर्चा के लिए यहाँ अवकाश नहीं है। किन्तु सभी धर्मों का प्रमुख सिद्धान्त "अहिंसा परमो धर्मः" ही आज आधार के रूप में मौजूद है। आज भी इन धर्मों की शाखाओं-प्रशाखाओं के अन्तर्गत विश्व-कल्याण या मानव-कल्याण का परहितार्थ का कार्य किया जाता है। इस राम और कृष्ण की पावन धरा पर, महावीर की कर्मभूमि पर, गौतम और गांधी की कर्मभूमि पर अनेक ऐसे सन्त-महात्मा, साधु-सन्यासी, ऋषि-मुनि हुए हैं जिन्होंने अनेक [illegible] का पुनर्जीवन कर मानव धर्म का लोक धर्म की [illegible] कर, नये सामाजिक मूल्य एवं नये आदर्शों को उपस्थित कर लोक-मंगल और लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

[illegible] विभिन्नताएँ [illegible] है, उनकी [illegible] और [illegible] में विषमताएँ रही हैं। [illegible] में [illegible] का अभाव [illegible] है, [illegible] और [illegible] में विषमता है और कुरीतियों का एक युग [illegible] हो जाती है, तब [illegible] आध्यात्मिक और सामाजिक

कोढ़ को छिन्न-भिन्न करने हेतु समय-समय पर धर्म के नाम अलग-अलग सम्प्रदाय बनते रहे हैं, बन रहे हैं और बनेंगे भी।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब भी इस वसुन्धरा पर पापाचार चरमसीमा को लांघ गया, जब धरती माता पाप के भार से संत्रस्त हो उठती है, जब पाशविक प्रवृत्तियां समाज में जन्म ले लेती हैं, जब धर्म और न्याय का गला घोंटा जाता है, जब चारों ओर भीषण रक्तपात, हत्या, लूटमार और अग्निकाण्ड के दृश्य दिखाई देने लगते हैं, तभी इन विषैली प्रवृत्तियों का दमन करने, सुख-शान्ति एवं समृद्धि का सन्देश देने मानव कल्याणार्थ महापुरुषों का जन्म होता है।

जब वैदिक धर्म के कर्मकाण्डों ने समाज में अन्धविश्वास और रूढ़ियों, गलत परम्पराओं को जन्म दे दिया; तब इसी धरती पर माता त्रिशला की गोद में भगवान महावीर ने जन्म लेकर सत्य और अहिंसा का शंखनाद गूंजाया। आधुनिक युग में जब झूठ-कपट, छल-छद्म एवं शोषण का भूत समाज में ताण्डव नृत्य करने लगा, तब इसी पवित्र भूमि पर महात्मा गाँधी ने जन्म लेकर महावीर और बुद्ध के सत्य एवं अहिंसा के माध्यम से मानवता का संदेश पहुँचाया।

यह दृश्यमान संसार द्वन्द्वों का अजायबघर है। संसार द्वन्द्वमय है और द्वन्द्व ही संसार है। जीव-अजीव, जंगम-स्थावर, अन्धकार-प्रकाश, सुख-दुख, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि द्वन्द्वों का जहाँ खेल होता है वहीं संसार है। इस अनन्त संसार रूप समरभूमि में कभी पुण्य का प्राधान्य होता है तो कभी पाप का। कभी दुनिया में सुख-शान्ति का साम्राज्य होता है तो कभी भयंकर ताण्डव नृत्य। कभी गगन से देवगण सुमनवष्टि करते हैं, तो कभी धरती माँ की छाती पर बम के गोले बरसते हैं। कभी शान्ति का निर्झर प्रवाहित होता है, तो कभी रक्त की सरिता भी बहती है।

जब चारों ओर इस द्वन्द्वात्मक दृश्य के बीच मानव दानव बनकर अपना अस्तित्व कायम करना चाहता है, तब कोई न कोई महापुरुष मानवता की रक्षार्थ माँ धरती की गोद में जन्म लेकर मानवता का संदेश देते हुए अवतरित होता है।

समाज एवं राष्ट्र निर्माण में सदा तीन शक्तियों का प्रभुत्व रहा है—(१) **मातृ-शक्ति**—जिसके द्वारा पारिवारिक जीवन को संस्कारवान बनाया जाता है वह जीवन की आधारशीला नारी है। इसलिये भारतीय ऋषियों ने प्रथम सूत्र "मातृ देवो भव :" को दिया है। भगवान महावीर से लेकर वर्तमान युग तक नारी जाति के विकास एवं प्रगति हेतु कई कार्य हुए हैं। (२) **जन-सेवक-शक्ति**—इसके माध्यम से समाज एवं राष्ट्र में न्याय-नीति और सत्यनिष्ठा की स्थापना प्रचार एवं प्रसार का दायित्व सम्पन्न होता है। (३) *सन्त-शक्ति*—समाज एवं राष्ट्र में संस्कृति, सभ्यता एवं धर्म की स्थापना तथा रक्षा का काम साधु-सन्तों का होता है।

संसार में प्राणी मानव जन्म लेकर संसार रूपी सागर की यात्रा पूर्ण करता है। किन्तु ऐसे भी कुछ मानव होते हैं, तो स्व-पर-हित करके ही अपना जीवन सफल बना लेते हैं। जीवन उन्हीं का सफल है, जिन्होंने अपने इस जीवन को प्राप्त कर आध्यात्मिक खोज में बिताया है, जिसने संसार-चक्र में जन्म लेकर अपने वंश की, अपने समाज एवं देश की, अपने धर्म और संस्कृति की सेवा की हो।

ऐसे ही पुरुषरत्नों में, सन्तों की शृंखला में एक बालक ने आज से सौ वर्ष पूर्व—वि० सं० १९३४ के कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी रविवार को नीमच (मालवा) निवासी श्री गंगारामजी

ओसवाल की धर्मप्राण अर्द्धांगिनी केसरबाई की कोख से जन्म लेकर, कौमारावस्था में विवाहोपरान्त इस भौतिक संसार से एक झटके से अपने आप को अलग कर जन-समाज के उत्थान के लिये अपने जीवन को मानव सेवा में समर्पित कर दिया, वही बालक जन्म से "चौथमल" नाम से अभिहित किया जाने लगा और इसी 'चौथमल' को 'यथा नाम' तथा गुण—के आधार पर जैन सम्प्रदाय में जैन 'दिवाकर' मुनि के रूप में, सन्त के रूप में एक सच्चे तपस्वी, साधक, धर्मोपासक के रूप में पूजा गया और जिसके—सदुपदेशों से मानवता ने राहत की साँस ली। क्योंकि जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने समय के समाज को देखा, परखा और उसमें व्याप्त विषमताओं को दूर कर मानवीय मूल्यों को स्थापित किया।

सन्त का जीवन गंगा की पवित्र-धारा की तरह गतिशील एवं प्रवाहमय होता है। संत का चरण दिशा-परिवर्तन का सूचक होता है। सन्त की दिव्यदृष्टि दिवाकर की भाँति तमोनाशिनी होती है। सन्तों का हास-परिहास प्राणी मात्र के लिये प्राणवायु का द्योतक होता है। सन्तों का जीवन हित के लिये समर्पित जीवन होता है। जैन दिवाकर सन्त श्री चौथमलजी महाराज का जीवन भी इस दृष्टि से खरा उतरता है। श्री दिवाकरजी महाराज ने समाजोत्थान के लिये आजीवन पैदल भ्रमण कर जन-मानस को सन्मार्ग की दिशा दी।

सन्त का जीवन साधना, सेवा, समर्पण और सद्गुण का पुंज होता है। यही उनकी संस्कृति का द्योतक होता है। वह अपनी मँजी हुई आत्मा से दूसरों की आत्मा को माँजता है, संस्कारवान बनाता है। जैन सन्त मुनिश्री दिवाकरजी महाराज का जीवन भी साधना, सेवा और समर्पण का योग था। सन्त दिवाकरजी महाराज ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण से दो आचार्यों को—दो से चार और चार से आठ इसी क्रम से परस्पर बन्धुत्व की भावनाओं को जन्म दिया और विभिन्न विचार-धाराओं के सन्तों को एक मंच पर एकत्रित कर अपने समन्वयकारी दृष्टिकोण को सार्थक किया। सन्त समाज एवं राष्ट्र में व्याप्त विषमताओं को नष्ट करने हेतु यावज्जीवन प्रयत्नशील रहता हुआ अपनी 'इह लीला' समाप्त कर देता है और अपने अनुयायियों के लिए कल्याण कार्य का मार्ग प्रशस्त करता है। सन्त दिवाकरजी महाराज ने भी अपने जीवन को इसके लिए समर्पित किया था।

अतः आजन्म सन्त दिवाकरजी महाराज ने परकल्याणार्थ अपने जीवन को समाया और झोंपड़ी से लेकर महलों तक अपना सन्देश पहुँचाया।

सन्तों का जीवन सूर्य-चन्द्र और बादल की भाँति होता है। जैसे सूर्य बिना कहे आप ही कमलों को खिलाता है, चन्द्रमा बिना कहे कुमुद को प्रफुल्लित करता है, बादल बिना कहे जल वृष्टि करते हैं उसी प्रकार सन्तजन भी बिना कहे परोपकार करते हैं—

> पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति, चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
> नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति, सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ॥

मुनिश्री का जीवन परोपकारार्थ ही था, उन्होंने समाज की कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने भगवान महावीर के पंचमहाव्रत सिद्धान्त अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के महत्त्व को समाज के समक्ष रखा। हिंसा और व्यसन मनुष्य के नाश के [illegible] दिवाकरजी ने कहा—

> [illegible] बल और [illegible],
> [illegible] ॥

और भी—

बलिदान के द्वारा नहीं कभी, ईश्वर प्रसन्न हो सकता है।
बलकर्त्ता ही भवसागर में, युग-युग इस हेत भटकता है ॥

× × ×

जीवों की हिंसा का विधान जिस शास्त्र में वतलाया है।
ईश्वर का यह कलाम नहीं, तू क्यों धोके में आया है ॥

मोह त्याग से आत्मा-परमात्मा का रूप धारण कर सकता है—

पाँचों तत्वों को जो लखै, वहिरात्मा कहलाय।
अन्तरात्मा मोह तजे तो, परमात्मा बन जाय ॥

आत्म-बोध के सम्बन्ध में सन्त दिवाकरजी महाराज बताते हैं—

शम दम उपशम अहिंसा सत्त दत्त, ब्रह्मचर्य अममत्व गुणधार।
एकाग्रता मन की कर लेहो, आत्मा उसके साक्षात्कार ॥

सन्त शिरोमणि दिवाकरजी महाराज 'Books for reader and Readers for books' वाली कहावत को चरितार्थ किया था। आपका जीवन श्रोताओं के लिए था, और श्रोताओं का जीवन आपके लिए था। आप श्रोता के लिए और श्रोता आपके लिए थे। प्यासा सदैव कुंए के पास जाता है, कुँआ कभी भी प्यासे के पास नहीं जाता है, न ही जा सकता है। किन्तु जैन दिवाकरजी महाराज में सन्त हृदय था, उन्होंने झोंपड़ी में जाकर उपदेश दिया तो महलों में जाकर भी; राजा-महाराजाओं को भी ज्ञानामृत से सन्तुष्टि दी। जब आपका चातुर्मास उदयपुर में था उस समय तत्कालीन महाराणा साहब की प्रार्थना को स्वीकार कर महलों में पधार कर उन्हें धर्मोपदेश देकर एक सच्चे सन्त हृदय की रक्षा की।

आपने तो अपने जीवन का लक्ष्य यही बना रखा था कि "मुझे तो समाज की विषमता रूपी कोढ़ को मिटाना है।" आपके धर्मोपदेश श्रवण कर हिन्दू कुल मेवाड़ाधिपति ने विशेष दिनों और पर्वों पर पशुवलि बन्द करवाने के आदेश प्रसारित किये और अगते रखने की घोषणा करवायी। यही इस सन्त के जीवन की सार्थकता है।

सन्त दुनिया के लिए आशीर्वाद और वरदान होते हैं। सन्त पाप से झुलसी हुई दुनिया को शान्ति प्रदान करने वाले देवदूत होते हैं। सन्त दुनिया के खून से भरे हुए, उजड़े और सुनसान रेगिस्तान में शान्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित करने वाले अक्षय स्रोत होते हैं, वे एक ऐसे प्रकाशमान स्तम्भ होते हैं जो दुनियाँ को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाते हैं। सन्त दिवाकरजी महाराज के जीवन का भी यही लक्ष्य था—

कम खाना, कम सोना, कम संसार से प्रीति।
गम खाना, कम बोलना, ये हो वड़ेन की रीति ॥

मुनिश्री ने इस युग में जन्म लेकर विश्व-कल्याणार्थ अपना सन्देश देकर लोक-कल्याण एवं लोक-मंगल का मार्ग मानव-मात्र के लिए आलोकित किया। आपने संसार को सुख-शान्ति का मार्ग सुझाया। आप अपने परमपावन आचरण के कारण सन्तों की परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सन्त-महात्मा संसार को सुख-शान्ति और समृद्धि का सच्चा मार्ग प्रदर्शित करने वाले जागरूक युग पुरुष होते हैं। जैन दिवाकरजी महाराज का जीवन चरित्र भी एक ऐसी ही खुली पुस्तक है।

करने का भागीरथी प्रयत्न किया। आपने सामाजिक बुराइयों—बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय, मांसाहार, मदिरापान, कुशीलसेवन आदि का निषेध किया तो एकता, संगठन, क्षमा, दया, सत्य, कर्त्तव्य, लोक-सेवा, ज्ञान-भक्ति, वैराग्य, आध्यात्म, आत्म-ज्ञान, दृढ़ता, अहिंसा अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-निग्रह, पर्यूषण, धर्म की तात्विक और व्यावहारिक मीमांसा, गार्हस्थ धर्म और आत्म-सिद्धि आदि का बहुत सुन्दर ढंग से विवेचन किया। सामाजिक जीवन को ऊँचा उठाने में आपने भरसक प्रयत्न किया। आपके ज्ञानामृत पान से कई दुराचारी सदाचारी बने, कई मांसाहारी-शाकाहारी बने, कई दुश्चरित्र व्यक्ति चरित्रवान् बने, कई हिंसक-अहिंसक बने और कई वेश्याओं ने कुत्सित एवं समाज विरोधी कृत्यों से मुक्ति ली।

जैन दिवाकर सन्त श्री एक महामनीषी के रूप में, श्रमण-संस्कृति के एक जीवन्त प्रतिनिधि के रूप में सम्पूर्ण भारतीय जीवन को कितना प्रभावित किया—यह उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से भली-भाँति प्रकट होता है। जैन-सम्प्रदाय में ही नहीं, बल्कि विभिन्न मत-मतान्तरों के बीच समन्वय करना, उनके सामाजिक जीवन में जो कटाव, जो क्षरण, जो नुकसान और टूट-फूट हो गयी थी, जो शिथिलताएँ और प्रमाद उनके सांस्कृतिक एवं नैतिक जीवन में व्याप्त हो गयी थी उन्हें, किन कठि नाइयों का सामना करते हुए, उनकी मरम्मत की, उन्हें संभाला यह उनके रचित साहित्य और साधना से प्रकट होता है। क्योंकि सन्त दिवाकरजी महाराज का जीवन पवित्र था, उनका आचार विचार सात्विक था, उनका मन स्वच्छ निर्मल नीर-सा था। जैनेतर समाज में दिवाकरजी महाराज का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं सम्मान था। जब मुनिश्री का व्याख्यान (लेखक ने कई बार व्याख्यान सुने हैं और मुनिश्री से शिष्यत्व ग्रहण किया था) होता था तब व्याख्यान श्रवणार्थ आबालवृद्ध नर-नारी बड़ी लगन से उनके व्याख्यान स्थल पर एकत्र हो मनोयोग से अमृतवाणी सुनते और अपने जीवन को सार्थक करते। आपके सदुपदेशों से आदिवासी समाज क्या, खटीकों व मोचियो आदि ने त्याग व्रत ग्रहण कर सात्विक जीवनयापन का संकल्प लिया। आपके व्याख्यानों को सुनने हेतु मुंशी मौलवी, पंडित, विद्वान् सभी आते थे और श्रवणोपरान्त गद्-गद् हो जाते थे।

सन्त मुनि अपने कथ्य को जन-भाषा में प्रस्तुत करते थे और विभिन्न धर्म-ग्रन्थों से उद्धरण देते हुए विषय को स्पष्ट करते थे। क्योंकि जैनाचार्यों ने भाषा विषयक उदार दृष्टिकोण का सदैव परिचय दिया। दूसरों की तरह उनका किसी भाषा विशेष में धर्मोपदेश देने का आग्रह नहीं रहा यहाँ तक कि प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं को अपनाकर उन्हें समृद्ध तथा गौरवशालिनी बनाने का श्रेय यदि किन्हीं को दिया जाना चाहिए तो जैनाचार्यों को ही। इतना ही नहीं आज की प्रान्तीय भाषाएँ भी इन्हीं की उपज हैं। राष्ट्र भाषा हिन्दी का सीधा सम्बन्ध इन्हीं भाषाओं से है।

इस सन्त महापुरुष को, हिन्दी, संस्कृत, अर्धमागधी, राजस्थानी, मालवी, गुजराती, खड़ी बोली, उर्दू आदि भाषाओं का ज्ञान था, किन्तु जब भी आप अपने विचार व्यक्त करते थे, तब आम जनता की (भाषा) बोली का सहारा लेते थे। यही उनका लोकनायकत्व गुण को प्रकट करता है।

सन्तों का जीवन समाज की सम्पत्ति होती है। संकीर्णता से काफी दूर उनका जीवन होता है। सन्त जन हित के कार्य करके समाज और राष्ट्र के चरित्र को उज्जवल बनाते हैं। मुनिश्री का जीवन भी इसका एक उदाहरण है। मुनिश्री जहाँ भी पधारे वहाँ उन्होंने व्यक्ति को ऊँचा उठाने का काम किया, उन्होंने सबसे पहले जैन मात्र को आदमी माना और माना कि आदमी फिर वह किसी भी कौम का हो, आदमी है। जिस प्रकार भगवान महावीर ने जाति और कुल के आधार प

विकसित-अविकसित, साक्षर-निरक्षर, सभी को प्रभावित किया, सभी को एक मार्ग सुझाया—'जीओ और जीने दो' सभी को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। सन्त चौथमलजी महाराज वास्तव में महत्त्वाकांक्षाओं के पंक में से कमल खिलाना जानते थे। उनकी दिव्य दृष्टि के समक्ष सभी मानवी एक से नजर आते थे। न कोई अमीर था, न कोई गरीब; न कोई मोची था, न कोई महाजन; सभी 'जन' थे, सभी आत्मा थे। सभी के प्रति समभाव, ममभाव। सन्त दिवाकरजी महाराज एक अनोखे व्यापारी के समान थे—दुर्गुण छुड़ाते सद्गुण देते, अज्ञान के बदले ज्ञान देते, भौतिकता भुलाते आध्यात्मिकता देते। इस प्रकार सन्त दिवाकरजी महाराज ने धार्मिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में समन्वयकारी दृष्टिकोण से एकता की आधारशिला रखी।

नारी सुधार—भारतीय संस्कृति में "मातृदेवोभव:" से नारी को जो सम्मान दिया गया और आज तक इस सम्मान में कितनी कमी आ गयी यह विवेचनीय है। सामाजिक वन्धनों के कारण नारी समाज में जो कुण्ठायें उत्पन्न हुईं, उन्हें दूर करने के लिए समय-समय पर कार्य होते रहे हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं, समाज-सुधारकों, नेताओं एवं साधु-सन्तों ने नारी के जीवन-पक्ष पर, आचरण पर भले-बुरे विचार किये हैं। जीवन की आधारशिला नारी है। **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"** यही भारत है, हमारे चरित्रनायक सन्त दिवाकरजी महाराज ने नारी के आदर्श जीवन को प्रस्तुत किया, आपने अपने उपदेश से वेश्याओं को घृणित कार्य से दूर किया। आपने आदर्शनारी के जीवन की विशेषताएँ बताते हुए कहा है—

पहनो-२ सखी री ज्ञान गजरा-२ तुम्हें लगे अजरा ॥टेर॥
शील की साड़ी ओढ़ ले ओरी, लज्जा गहनो पहन।
प्रेम पान को खाय सखी री, बोलो सच्चा बैन ॥१॥
हर्ष को हार हृदय में धारो, शुभ कृत्य कंकण सोहाय।
चतुराई की चूड़ी सुन्दर, प्रभुवाणी बिंदली जोय ॥२॥
विद्या को तो बाजूबन्द सोहे, प्रभु लौ लोंग लगाय।
दांतन में चूंप सोहे ऐसी, धर्म में चूंप सवाय ॥३॥
नव पदार्थ ऐसा सीखो, नेवर की झणकार।
चौथमल कहे सच्ची सजनी, ऐसा सजे सणगार ॥४॥

यह है नारी का शृंगार जिसके धारण से 'इह लोक' और 'परलोक' दोनों में महत्त्व है। सन्त दिवाकरजी ने कन्या-विक्रय, बाल-विवाह, वृद्धविवाह आदि सामाजिक बुराइयों के विरोध में आवाज उठायी। आपने नारी जगत में नव-जाग्रति की भावना उत्पन्न कर दी थी।

पतितोद्धार और सन्त दिवाकरजी महाराज

सन्त दिवाकरजी महाराज मनसा, वाचा, कर्मणा से शुद्ध थे, पवित्र थे। उनका हृदय करुणा का आगार था। आपके मन और मस्तिष्क पर मानव-प्रेम की अमिट छाप थी। वे जैन तत्त्व ज्ञान के परम उपासक तो थे ही मानव-मात्र के सच्चे साथी थे। प्राणी मात्र के परम हितैषी थे। आपने अहिंसा, मैत्री, एकता और प्रेम का सन्देश घर-घर पहुँचाया और विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं को पनपायी। समाज में घृणास्पद समझे जाने वाले वर्ग से सम्बन्धित जातियों-मोची, चमार, कलाल, खटीक, हरिजन, वेश्याओं तक को अपना सन्देश दिया, उनके जीवन-स्तर को ऊँचा

सन्तों की श्रृंखला में—चाहे वे सन्त मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित हों, चाहे जैन धर्मावलम्वी हों या बौद्ध धर्मावलम्बी हों जगत्वल्लभ प्रसिद्ध वक्ता जैन सन्त श्री दिवाकरजी महाराज की अज्ञानान्धकारनाशिनी ज्ञान रश्मियाँ हमेशा-हमेशा के लिए अपने प्रकाश को विकीर्ण करती रहेंगी।

प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान काल तक भारत में श्रमण सन्तों की अविच्छिन्न परम्परा रही है। इस पावन धरा पर सदैव ही ज्योतिर्धर और प्रतिभा के धनी, सदाचारी, कर्मठ सन्त अवतरित होते रहे हैं। जिनके सदुपदेशों से अनेक, विवेकशून्य और दुराचारी राजाओं ने, शासकों ने कुमार्ग छोड़ सन्मार्ग अपनाया और अपने जीवन को सफल बनाया।

जैन इतिहासकारों के अनुसार ऋषभदेव ने प्रजा के हितार्थ राजतन्त्र की स्थापना की और इस राजतन्त्र में उन्होंने त्याग सेवा तथा उच्च आदर्श को स्थापित किया, किन्तु—

अस कोऊ जनमेहूँ नहीं जग भाई, प्रभुता पायी जाहि मद नाही ॥

कालान्तर में राज्यसत्ता में अनेक दुर्गुण प्रविष्ट हो गये। दुर्व्यसन और दुराचार का वातावरण बन गया—'यथा राजा तथा प्रजा'—इसलिए प्रजा के दुःख निवारणार्थ लोकोपकार की प्रेरणा से सन्तों ने राजाओं को सदुपदेश देकर धर्म मार्ग पर लगाया और जनता के कष्ट दूर किये।

श्रमणसन्तों की परम्परा में श्री केशी श्रमण जिनके उपदेश से श्वेताम्बिकानगरी का क्रूर एवं दुष्ट राजा 'प्रदेशी' अहिंसक एवं धर्मानुरागी बना।

'गर्दभिल्ल' मुनि की प्रेरणा से संयति जैसा मृगयाप्रेमी राजा 'संयति मुनि' बनकर अपने जीवन को सार्थक किया।

भगवान महावीर के युग में—सुदर्शन श्रावक की प्रेरणा से अर्जुन मालाकार भगवान महावीर की वाणी को श्रवणकर आत्म-साधना-पथ का पथिक बना।

आचार्य भद्रबाहु ने मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त को त्यागवृत्ति का सबक दिया। सुहस्तिगिरि सूरि की प्रेरणा से सम्राट् सम्प्रति एक धर्म-प्रचारक के रूप में प्रसिद्ध हुए।

इसी प्रकार हरिभद्र सूरि ने मेवाड़ के राजा-महाराजाओं को उपदेश देकर उनमें जीव दया एवं करुणा की लहर उत्पन्न की।

शीलभद्र सूरि, आचार्य हेमचन्द्र सूरि, आचार्य हीरविजय सूरि का सन्तों की परम्परा में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य हीरविजय सूरि ने तत्कालीन मुगल सम्राट् अकबर महान् को अहिंसा की महत्ता को समझाया।

इसी विशिष्ट श्रमण-परम्परा में जैन दिवाकर महामनीषी श्री चौथमलजी महाराज का जन्म आज से एक सौ वर्ष पूर्व नीमच (मालवा म०प्र०) की पावन धरा पर हुआ। जिन्होंने अहिंसा की ज्योति को झोंपड़ी से महलों तक, मजदूर-किसानों से मालिकों-जमीदारों तक, राजा-महाराजा, नवाब, सेठ-साहूकारों तक उनके मन-मस्तिष्क तक पहुँचाया।

वास्तव में वे एक युग द्रष्टा थे। उनकी जन-जीवन में गहरी पैठ थी, वे समाज के सच्चे साक्षी थे। समाज की नाड़ी के अच्छे ज्ञाता थे। और सामाजिक बीमारियों का निदानात्मक उपचार करने वाले सिद्धहस्त एक सामाजिक चिकित्सक थे।

आप अपने साथी-साधकों के लिए मार्ग-दर्शक, पथ-भ्रष्ट भूले-भटकों के लिए मार्गदर्शक और दम्भी-पाखण्डियों के लिए एक प्रकाश स्तम्भ थे।

आज से ५० वर्ष पूर्व घनघोर सामन्ती युग में भी अन्त्यज, पतित और शूद्र माने जाने वाले वर्ग के कल्याण और उत्थान के प्रयत्नों की एक रोचक दास्तान

✯ श्री रवीन्द्रसिंह सोलंकी (कोटा)

—महामनीषी श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने श्रमण संस्कृति के एक जीवन्त प्रतिनिधि के रूप में सम्पूर्ण भारतीय जन-जीवन को प्रभावित किया।

—जैनों के सामाजिक जीवन में जो कटाव, जो क्षरण, जो नुकसान और जो टूट-फूट हो गई थी तथा जो शिथिलता आ गयी थी, उनको मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने विभिन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए उनकी मरम्मत की।

—भगवान महावीर ने जाति और कुल के आधार पर किसी को छोटा-बड़ा नहीं माना, उनकी कसौटी तो थी 'कर्म'। इसी प्रकार मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने भी आदमी को पहले आदमी माना, फिर चाहे वह किसी भी कौम का क्यों न हो।

—पतितों, शोषितों, दीन-दुखियों, पीड़ितों और तरह-तरह के कष्टों से संत्रस्त जन-सामान्य की पीड़ा पूरित अश्रु विगलित आँखों के आँसू पोंछने को सन्नद्ध अहर्निश सेवारत सन्त थे।

उपरोक्त कितने ही कथन जिस किसी आदर्श जैन सन्त के लिए लिखे जा सकते हैं उनमें जैन दिवाकर सन्त श्री चौथमलजी महाराज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व से कई शोषित, पीड़ितों के मन-मन्दिर में चरित्र, धर्म का दीपक प्रज्वलित किया।

कलियुग में कई प्रकार की शक्तियाँ हैं, अणुबम से लेकर चांद पर पहुँचने वाली शक्तियां भी हैं, किन्तु ये सभी स्थायी व मानव को सन्तोष प्रदान करने वाली नहीं हो सकतीं। अतः प्राचीन समय से ही हमारे मनीषियों ने 'संघ शक्ति' को सर्वोच्च शक्ति माना और इसी क्रम में मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने पांच सम्प्रदायों के प्रमुख संतों को एक लड़ी में पिरो दिया तथा उनका विलीनीकरण कर दिया।

भगवान महावीर ने मनुष्य को आलस्य, अन्धविश्वास तथा कदाचार की कारा से मुक्त करने के लिए दीर्घकालीन अकथनीय प्रयत्न किये। मुनिश्री चौथमलजी महाराज भी उन्हीं के पदचिन्हों पर चलने वाले सच्चे अनुयायी थे, जिन्होंने जीवन-क्रान्ति का नाद एक बार पुनः गुंजाया और समाज तथा धर्मसंस्थाओं तथा राजतन्त्र में आयी शिथिलताओं, दुर्बलताओं, विकृतियों और विषमताओं

मुनिश्री चौथमलजी महाराज के पतितोद्धारक रूप का वर्णन कहाँ तक किया जाय, यह तो उसकी झांकी मात्र है। उनका तो सम्पूर्ण जीवन ही दलितों के उत्थान में बीता था। भारतीय संस्कृति में संत का एक विशेषण है—'पतित पावन' और यह विशेषण जैन दिवाकरजी महाराज के लिए सर्वथा उपयुक्त है जो उनके जीवन प्रसंगों से सर्वथा साकार हो रहा है।

आज की महती आवश्यकता

आज हम जिस भी दिशा में दृष्टिपात करते हैं, उसी तरफ भ्रष्टाचार, चोरी और आत्म-पतन का बोलवाला है। हम जब भी कहीं किसी महापुरुष की जन्मतिथि या पुण्यतिथि मनाते हैं तो उस महापुरुष के जीवन की सूक्ष्म जाँच-पड़ताल नहीं करते। इसके लिए हमें वक्त निकालना चाहिए। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने विभिन्न कठिनाइयों को सहते हुए समाज को इस प्रकार का दिशाबोध कराया जिससे समाज में आशा की एक नई किरण प्रस्फुटित हुई।

आज स्थिति क्या है, हम देखें तो लगेगा—विद्यार्थी कहते हैं–'प्राध्यापक अपना दायित्व ठीक से नहीं निभाते।' प्राध्यापक कहते हैं—'सरकार हमारी माँगों का यथोचित समाधान नहीं करती। सरकार कहती है—व्यापारीगण टेक्स चोरी करते हैं, मिलावट करते हैं अतः सख्त कानून की आवश्यकता है।' अर्थात् चारों ओर असन्तोष की भयानक लपटें उठ रही हैं। और इसी के साथ प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने अधिकारों की बात करता है तथा वह अपने कर्तव्य को भूल जाता है।

ऐसे समय पर उस व्यक्ति पर टिप्पणी करने की आवश्यकता होगी जो अपने को 'जैन' समझता है। क्या ऐसे लोग एक प्रतिशत भी सच्चे दिल से चौथमलजी महाराज के आदर्शों को व्यवहार में लाते हैं। यह विचारणीय है अन्यथा इस प्रकार की पुस्तकों के प्रकाशन व जन्म तिथियाँ मनाने का कोई लाभ नहीं होगा।

आज आवश्यकता इस बात की है कि उनके अनुरूप बना जाय, अर्थात् उनके व्यवहार, उनके बताए रास्ते का अनुकरण किया जाय, तभी उनके प्रति किए गए किसी भी कार्य के उद्देश्य की प्राप्ति हो सकेगी।

कार्य अमर रहेगा

यदि आज मुनिश्री चौथमलजी महाराज के कार्यों का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया जाय, तो कोई भी यह आसानी से कह सकेगा कि आपके प्रयत्न इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखे जाने चाहिए। स्वयं को तकलीफों में डालकर अन्त्योदयी व पतितों के कल्याण के लिए आपने जो कष्ट उठाये तथा उसका जो सुपरिणाम सामने आया वह इतिहास में अमर रहेगा।

पूरा पता—

रवीन्द्रसिंह सोलंकी
मोहन सदन, लाडपुरा
कोटा-३२४००६

इस भाषायी धरातल पर अब हम श्री जैन दिवाकरजी महाराज को देखें। वे हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, प्राकृत, अर्धमागधी आदि प्राचीन साहित्यिक भाषाओं के जानकार तो थे ही और उनका जैन साधु होने के कारण पद-विहारी होने से मालवी, मेवाड़ी, मारवाड़ी, भीली आदि लोक बोलियों एवं भाषाओं पर भी अच्छा अधिकार था। यही कारण है, कि उनके प्रवचन जितने विद्वद्-गम्य होते थे, उतने ही लोकगम्य भी थे। उनके प्रवचनों में प्राचीन भाषाओं का पाण्डित्य, वर्तमान भाषाओं की जीवन्तता और लोक-बोलियों की मधुरता पग-पग पर थिरकती मिलती थी। प्रत्येक श्रोता यही अनुभव करता था कि यह तो हमारी भाषा में कह रहे हैं और हमारे विचारों को साकार बना रहे हैं।

जो बात श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचनों के लिये लागू होती है, वही उनके साहित्य के लिये भी चरितार्थ है। यह कभी संभव नहीं कि किसी साहित्य मनीषी का कथन अलग हो, और लेखन अलग हो। 'जैसा कथन-वैसा लेखन' यह उक्ति संपूर्ण साहित्य में प्रतिबिंबित होती है। उन्होंने विद्वत्ता प्रदर्शित करने के लिये साहित्य नहीं लिखा, उन्होंने यश कामना के लिये साहित्य नहीं लिखा और न अपना स्मारक बनाने या जनता की जिह्वा पर अपने नाम का उल्लेख कराने तथा चढ़ाये रखने के लिये साहित्य लिखा। किन्तु उनका लक्ष्य था, मानव को उसके जीवन-कर्तव्य का बोध कराना, संस्कृति का परिचय देना नीति और अध्यात्म को जनता की बोली में जनता में वितरित करना।

यही कारण है कि पूज्य जैन दिवाकरजी महाराज ने जन-भाषाओं को अपने साहित्य की भाषा बनाया। उन्होंने अपने साहित्य के लिए उन्हीं भाषाओं को आधार बनाया, जिनको कि जनता सरलता से समझती थी। इसीलिये उनके साहित्य में हिन्दी के अतिरिक्त मालवी, मेवाड़ी, मारवाड़ी के प्रचलित शब्दों की अपूर्व छटा देखने को मिलती है। ये शब्द इस रीति से यथास्थान प्रयुक्त किये हैं कि जिससे वह साहित्य शब्दों का गुलदस्ता बन गया है। मालव का सामान्यजन पढ़े, तो वह भी उतना ही रस-विभोर होगा, जितना मेवाड़ी या मारवाड़ी। महिलायें पढ़ें तो वे भी बिना कुछ समझाये समझ लेंगी कि इस ग्रन्थ में क्या कहा जा रहा है ?

यह कार्य किसी एक भाषाविद के द्वारा नहीं किया जा सकता है कि उसका साहित्य जन-प्रसिद्ध हो। उसका अच्छे से अच्छा साहित्य तभी इतर जन समझ सकेंगे, जब या तो उस भाषा में अनुदित किया गया हो या कोई समझाये। लेकिन ऐसा होने पर भी सफल साहित्य और उसके कर्ता के लिए प्रसिद्धि नहीं मिलती है और मिलती भी है तो एक सीमित दायरे में ही। लेकिन जो जन्मजात साहित्यिक प्रतिभा के धनी होते हैं, वे भाषा की कारा में भावों को नहीं बाँधते। वे आम आदमी तक स्वयं पहुँचते हैं और जिस भाषा-बोली में वह समझता है, उसी में समझाते हैं। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ऐसे ही साहित्यकार थे।

जैन दिवाकर साहित्य का शैली-पक्ष

भाषा के साथ शैली का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है और शैली भी लोक-मानस की अभिरुचि के अनुसार निर्मित होती है। प्राचीन काल से गद्य और पद्य ये दोनों शैलियाँ साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित रही हैं। अधिकांश प्राचीन भारतीय साहित्य पद्य शैली में लिखा गया है और उसके बाद भी अपभ्रंश और देशी भाषाओं के जमाने में भी पद्य की प्रधानता रही है। प्राचीन हिन्दी का आदि साहित्य भी पद्य शैली में लिखा हुआ मिलता है। लोक-भाषाओं के प्रारम्भिक युग में भी पद्य

५. राम मुद्रिका
६. आदर्श रामायण
७. जम्बू चरित्र
८. हरिश्चन्द्र चरित्र
९. चंपक चरित्र
१०. धर्मबुद्धि चरित्र
११. श्रीपाल चरित्र
१२. सती अंजना और वीर हनुमान
१३. भगवान महावीर का दिव्य सन्देश
१४. पार्श्वनाथ चरित्र
१५. प्रदेशी राजा चरित्र
१६. अष्टादश पाप-निषेध
१७. अर्हद्दास चरित्र
१८. महाबल मलया चरित्र
१९. सुपार्श्व चरित्र
२०. धन्ना चरित्र
२१. चतुर्थ रत्नमाला
२२. त्रिलोक सुन्दरी चरित्र
२३. कृष्ण चरित्र
२४. दामनखा चरित्र
२५. वैराग्य जैन स्तवनावली
२६. लघु जैन सुबोध गुटका
२७. हरिबल चरित्र
२८. भगवान नेमिनाथ चरित्र
२९. जैन गजल बहार (पाँच भाग)
३०. लावनी संग्रह (दो भाग)
३१. मनोहर पुष्प
३२. मुक्ति पथ (" ")
३३. ज्ञान गीत संग्रह
३४. जैन सुबोध गुटका
३५. भगवान महावीर का आदर्श-जीवन

इनके अतिरिक्त आपके प्रवचनों के संकलन 'दिवाकर दिव्य ज्योति' के नाम से २० भागों में प्रकाशित हुए हैं। 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' अनेक आगमिक सिद्धान्तों, सूक्तियों का संग्रह ग्रन्थ है, जो विद्वानों और जन-साधारण को प्रेरणादायक है। उक्त विपुल साहित्य में चरित्र ग्रन्थों की प्रधानता है, फिर भी हम सुविधा के लिए उसे निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१. **जीवन प्रेरणा साहित्य**—सूक्तियों के संकलन, उपदेशप्रद एवं भक्ति सम्बन्धी कृतियों को इस वर्ग के अन्तर्गत किया जा सकता है। जैसे चतुर्थ रत्नमाला, वैराग्य जैन स्तवनावली, ज्ञान गीत संग्रह आदि।

२. **धार्मिक साहित्य**—इसके अन्तर्गत उनकी वे कृतियाँ आती हैं, जो जैन सिद्धान्तों का विवेचन करती हैं, यथा-भगवान महावीर का दिव्य सन्देश आदि।

३. **गीत साहित्य**—इस वर्ग में फुटकर प्रासंगिक गीतों, भजनों, लावणियों, गजल संग्रहों का समावेश होता है।

४. **चरित्र साहित्य**—पुराण प्रसिद्ध जैन महापुरुषों के कथा ग्रन्थ। इनको पढ़ने से उन महापुरुषों की जीवन-गाथा का ज्ञान होने के साथ कर्तव्य की प्रेरणा मिलती है। इस वर्ग में संकलित ग्रन्थों की संख्या सर्वाधिक है।

५. **लोक साहित्य**—इस वर्ग में उनके समग्र प्रवचन साहित्य का समावेश किया जा सकता है। क्योंकि जनता की भाषा में उसके कर्तव्य का बोध कराया है। प्रसंगोपात्त सैद्धान्तिक और दार्शनिक चर्चायें भी इस साहित्य में उपलब्ध हैं।

६. **तुलनात्मक साहित्य**—'भगवान महावीर का आदर्श-जीवन' इस वर्ग में ग्रहण होता है। इसमें सिर्फ भगवान महावीर की जीवनी के अतिरिक्त भारत की प्राचीन संस्कृति, विद्याओं, कलाओं आदि का उल्लेख करते हुए अर्वाचीन विचारधारा का समाज-जीवन के साथ तुलनात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही तत्व-ज्ञान एवं धर्म के मूल तत्वों पर प्रकाश डाला है।

उदाहरणार्थ— 'वर्धमान शासन-पति तारण तिरण जहाज।
नमन करी ने वीनवुँ दीजो शिवपुर राज ॥
गौतम गणधर सेवता, सकल विघ्न टल जाय।
अष्ट सिद्धि नव निधि मिले पग-पग सुख प्रगटाय ॥
उपकारी सद्‌गुरु भला, तीनों लोक महान।
आतम परमातम करे, यह गुरु माहात्म्य जान ॥
शारदा माता प्रणमुं, मांग बुद्धि विशाल।
अभय दान पै कथन यह उत्तम बने रसाल ॥

—"चम्पक चरि

इस प्रकार मंगलाचरण के साथ ग्रन्थ का अभिधेय स्पष्ट हो जाने से पाठक को यह हो जाता है कि ग्रन्थकार अपनी रचना में किस विषय का वर्णन करेगा। इस प्रकार स्पष्टीकरण से पाठक उस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ता है। इसी में ग्रन्थ और ग्रन्थकार के श्रम सफलता का रहस्य गर्भित है। श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज अपने इस लक्ष्य में पूर्ण सफल हैं।

ग्रन्थ रचना में श्री जैन दिवाकरजी महाराज का उद्देश्य

ग्रन्थ रचना में पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज का उद्देश्य अपना पांडित्य प्रदर्शन क नहीं था। वे ज्ञानी थे, विद्वान् थे, शास्त्र पारंगत थे। उन्होंने स्वदर्शन और दर्शनान्तरों के का तलस्पर्शी अध्ययन भी किया था। अतः चाहते तो वैसे ग्रन्थों की रचना भी कर सकते थे विद्वद् भोग्य होते लेकिन वे सन्त थे, मानवीय भावों के चितेरे थे और स्व-कल्याण के साथ कल्याण के इच्छुक थे। अतः उन्होंने वही लिखा, जिससे मानव आत्म-परिष्कार करके प्रबुद्ध और दूसरों को बोध प्रदान करे।

सन्त और उनका आचार-विचार, व्यवहार, वाणी आदि सभी कुछ अन्धकार में पथ पथिक के लिये प्रकाश स्तम्भ की भांति है। वे मोह-मूढ़ मानव को सन्मार्ग पर लाकर खड़ा देते हैं। पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज के लिये यह बात सर्वतः चरितार्थ होती है। उ साहित्य में और प्रवचनों में सर्वत्र मानवता के मधुर स्वर प्रतिध्वनित होते हैं। इसके साथ मानव को उन भय स्थानों का दिग्दर्शन कराने के लिये उसकी कमजोरियों—स्खलनाओं एवं वृत्तियों का भी संकेत है। जिनके पाश में आवद्ध होकर, मानवता को भूलकर दानव बनता है। दानवता की दावाग्नि रमणीय विश्व के वैभव को निगलने को आतुर हो जाती है। मानव के शुक्ल और कृष्ण पक्ष का आलेखन कराने के साथ उन अन्ध-विश्वासों की जानकारी कराई जिनकी कारा में आवद्ध होकर मानव अहित करता है। यथार्थ सत्य का बोध कराने के लिये स दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सत्य, शील, तप, संयम, अहिंसा आदि की व्याख्या की है।

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने उक्त समग्र चित्रण **'कथाच्छलेन बाला नीतिस्तदिह कथ्यते'** के धरातल पर किया है। उन्होंने **'सत्यं ब्रूयात्—प्रियं ब्रूयात्'** के अनु इस रीति से अपने कथ्य को व्यक्त किया है कि श्रोता और पाठक को यह अनुभव ही नहीं है कि यह सब तो पढ़े-लिखे ही समझ सकते हैं।

"चेतन रे थ कांई-कांई पाप कमाया, जिसका भेद जरा नहीं पाया।
असत्य आल दिया पर के शिर, या थे गर्भ गलाया।
झूठी साक्षी भरी पंचां में, जाल कर खत वणाया॥
हरिया गरिया नाज वेचिया, सखरा में नखरा मिलाया।
कम दीधा ने ज्यादा लीधा, नहीं गरीबों पर ध्यान लगाया॥
षट् काया की हिंसा कराई, ता विच धर्म बताया।
कूड़ उपदेश देई लोका नै, उलटे रास्ते चलाया॥
कर-कर कपट-निपट चतुराई, आसन दृढ़ जमाया।
विन साधु-साधु कहैला कर, जग को ठग-ठग खाया॥
धर्म नाम से धन ले पर से घर धन्धा में लगाया।
चार संघ की निन्दा कीनी, अणगल जल वपराया॥
पापी का बण पक्षदार ने सत्यवादी ने सताया।
वन के मिथ्यात्वी कुगुरु मान्या न निर्ग्रन्थ को मनाया॥

इस प्रकार की प्रवृत्ति वालों एवं जो पापकर्म तो करते हैं, लेकिन उसका फल नहीं चाहते और पुण्य कर्म तो करते नहीं, किन्तु उसका फल चाहते हैं उनको यथार्थ का भान कराते हुए कहते हैं—

मन तो चाहे मैं सुख भोगूं कर्म कटावे घास।
मन चाहे राजा बन जाऊं कर्म बनावे दास॥
तिल घटे न राई बढ़े जो देखे ज्ञानी भाव।
शुभाशुभ संचित कर्म का मिले फल बिन चाव॥

—**महाबल मलया सुन्दरी चरित्र**

इसीलिये पापकर्म से दूर रहकर व्यक्ति को सदैव शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना चाहिये और इन शुभ कार्यों की रूपरेखा संक्षेप में जिन शब्दों में पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने स्पष्ट की है, वह तो अनूठी ही है। उसमें सभी धर्मों और उनके शास्त्रों तथा आचार्यों के भावों को ही प्रस्तुत कर दिया है। 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्' के भाव को यथातथ्य रूप में अवतरित कर दिया है कि—

किसी जीव को नहीं सताना कटुक वचन नहीं कहना।
प्रभुता पा अभिमान न करना नम्र भाव से रहना॥

—वही

कर्म निर्जरा का साधन तप है। तीर्थंकरों ने भी तप करके निर्वाण पद की प्राप्ति की है। तपस्वी के चरणों में वड़े-वड़े इन्द्र, नरेन्द्र और महेन्द्र भी नमस्कार करते हैं। पूणिया श्रावक जैसे एक सामान्य गृहस्थ के घर श्रेणिक जैसा राजा भी मांगने आया था, तो उसका कारण तपसाधना ही थी। तप का इतना माहात्म्य होते हुए भी आज तप के प्रति व्यक्तियों की श्रद्धा उठती जा रही है और तप करना भूखों मरना जैसे शब्दों का प्रयोग करके कई लोग तपस्वी की खिल्ली उड़ाते हैं। ऐसे लोगों को तप की महिमा और उससे प्राप्त होने वाले फल को वताते हुए श्री जैन दिवाकरजी महाराज **"कमला सुन्दर चरित्र"** में कहते हैं—

की ओर बढ़ने की स्थिति है। ऐसे पतनोन्मुखी लोगों को एक मीठी चुटकी लेते हुए पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज समझाते हैं, कहते हैं—

"भोग का रोग बड़ा व्यापक है। इसमें उड़ती चिड़िया भी फँस जाती हैं। अतएव इससे बचने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये और चित्त को कभी गृद्ध नहीं होने देना चाहिये।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति

दुर्जन-दुष्ट व्यक्ति सदैव दोष देखता रहता है अथवा बुराई करता है। ईर्ष्या में झुलसता रहता है। यदि कोई समझाये और उसकी कमजोरियों को दिखाये, तो अपना सुधार करने के बजाय क्रोधित होकर सज्जन व्यक्तियों को अपशब्द कहने से नहीं चूकता है। इसका ज्यों का त्यों चित्रण पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने **'वसन्तर चरित्र में' किया है—**

सारे शहेर महिमा छाई, सतिया के मन में भाई।
कुलटा के दाय नहीं आई, कहे लोक निज निज पर जाई॥
नारी एक अमित तपा बाई, पति दलिद्री वा पाई।
खावण पेरण पूरो नाई करे, पति भक्ति अति हुलसाई॥
धिक्कार पड़े थाके ताँई इच्छित पेरो इच्छित खाई।
हुकम उठवो थे नांई फेर सामो बोलो घुरराई॥
कचरी मोडी ने धूरी रामतणी जाण पूरी।
लड़ने को तो हो पूरी काम पडिया थे रहो दूरी॥
निज-निज पति के वाक्य सुन वे स्त्रियां तिण वार।
क्रोधानल से परजली सीमा रही न लगाई॥
रोस करी नार्‌यां केई देवे सती ने गाल।
उत्तम की निन्दा करे बांधे कर्म चंडाल॥

दोषी व्यक्ति अपने दोष छिपाने की कोशिश तो बहुत करता है और झूठी शेखी बघारता है। इतना विवेकहीन हो जाता है कि सही बात न कहकर बहाने बाजी से दूसरों को भ्रम में डालने से भी नहीं चूकता है। लेकिन जानकर बात का विश्वास नहीं करते और उसे अपमानित होना पड़ता है। यह वर्णन देखिये **'द्रौपदी चरित्र'** के निम्नलिखित उद्धरण में—

मैं उमराव राज को बाजू ऐसो कियो उपाय।
सनमुख होकर करी लड़ाई पाछो दियो भगायजी॥
इण कारण सुं नगरी सारी बिगड़ गई सुण नाथ।
पूरा पुण्य आपका जिण से रही चौगुनी बात जी॥

× × ×

सुणता ही श्रीवासुदेव यों रोंस करी फरमावे।
लाज हीण लापर मुझ आगल, झूंठी बात वणावेजी॥
म्हारे सरीखा उत्तम पुरुष वे निरदोषी शिरदार।
ज्या में दोष बतावियो सो थारो, मनुष्य जन्म धिक्कारजी॥

योग और भोग दोनों प्रतिपक्षी हैं। योगी विषय-भोगों को विनश्वर जान कर विरक्त हो संयम मार्ग पर अग्रसर होने की आकांक्षा रखता है, जबकि भोगी अधिक से अधिक विषय-भोगों

"रंजोगम मादर तेरे इक रोज सब मिट ज
माफी मांगेंगे पिदर शरमिन्दगी उ

× ×

"जीगल के हिन्दी सेठजी तीगल सच्ची
ईनू सदा दीदी चाहिदा पंजावी नु उ

× ×

"मैं खतावारों में हूँ और तू सती है वे
खुद शरमगारों में हूँ, तू वख्श दे मेरी

परम पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज की रचनाओं की भाषा
पाठक के बिना किसी प्रयत्न के समझ में आ जाती है। फिर भी और अ
यत्र-तत्र प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग करके अधिक से अधिक सर्व जन
लोकोक्तियाँ न तो संस्कृत साहित्यगत उक्तियों का अनुवाद है और न उ
उन लोकोक्तियों का उपयोग किया है, जो जन-साधारण में प्रचलित हैं जै

- "धूप छांव से सुख दुख हैं।
- पाणी पी घर पूछे जैसे ॥
- ज्यों दाजे पै नौन।
- उदर भरा उस ही घर डाका।
- जैसी होनी होय पुरुष की वैसी उपजे बुद्ध।
- कल्पवृक्ष जान के सींचा निकला धतूरा आक।
- समय जान के करे काम वह उत्तम नर संसार।
- उत्तम जन संसर्ग से निगुणा वने गुणा की खान।
- भाग्य हीन को रत्न चिन्तामण कैसे रहे कर माई।
- इण दिस व्याघ नदी दूजी दिस।
- निज हाथों से वोय वृक्ष को कौन काटे मति मन्द।

गागर की बूंद

अब उपसंहार के रूप में इतना ही संकेत करना पर्याप्त है कि प्र
जैन दिवाकरजी महाराज के साहित्य की अनेक विशेषताओं में से कुछेक
किया गया है लेकिन प्रस्तुत पक्ष भी अधूरे हैं। इनके सन्दर्भ में भी वहु
किया जा सकता है। और यह तभी सम्भव है, जब उनकी प्रत्येक रचना
करने विशेष र्यालोचन किया जाए। यहाँ तो श्री जैन
सा ोग उसके एक बूंद के शतांश का दिग्दर्शन
प्रय स्वयं निर्णय करें और यदि इस
सम संक्षेप में यही निवेदन है कि
र भ्रमि के लिए आन्त

"रंजोगम मादर तेरे इक रोज सब मिट जायेंगे।
माफी मांगेंगे पिदर शरमिन्दगी उठायेंगे॥"

× × ×

"जीगल के हिन्दी सेठजी तीगल सच्ची सारी।
ईनू सदा दीदी चाहिदा पंजाबी नु उच्चारी॥"

× × ×

"मैं खतावारों में हूँ और तू सती है बे खता।
खुद शरमगारों में हूँ, तू बख्श दे मेरी खता॥"

—भविष्यदत्त चरित्र

परम पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज की रचनाओं की भाषा बहुत ही सरल है और पाठक के बिना किसी प्रयत्न के समझ में आ जाती है। फिर भी और अधिक रोचक बनाने के लिये यत्र-तत्र प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग करके अधिक से अधिक सर्व जन सुगम बना दिया है। ये लोकोक्तियाँ न तो संस्कृत साहित्यगत उक्तियों का अनुवाद है और न उसी रूप में रखी हैं। किन्तु उन लोकोक्तियों का उपयोग किया है, जो जन-साधारण में प्रचलित हैं जैसे—

- "धूप छांव से सुख दुख हैं।
- पाणी पी घर पूछे जैसे॥
- ज्यों दाजे पै नौन।
- उदर भरा उस ही घर डाका।
- जैसी होनी होय पुरुष की वैसी उपजे बुद्ध।
- कल्पवृक्ष जान के सींचा निकला धतूरा आक।
- समय जान के करे काम वह उत्तम नर संसार।
- उत्तम जन संसर्ग से निगुणा बने गुणा की खान।
- भाग्य हीन को रत्न चिन्तामण कैसे रहे कर माईं।
- इण दिस व्याध नदी दूजी दिस।
- निज हाथों से बोय वृक्ष को कौन काटे मति मन्द।

गागर की बूंद

अब उपसंहार के रूप में इतना ही संकेत करना पर्याप्त है कि प्रस्तुत निबन्ध में पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज के साहित्य की अनेक विशेषताओं में से कुछेक का विहंगावलोकन मात्र किया गया है लेकिन प्रस्तुत पक्ष भी अधूरे हैं। इनके सन्दर्भ में भी बहुत से विचारों का उल्लेख किया जा सकता है। और यह तभी सम्भव है, जब उनकी प्रत्येक रचना का सांगोपांग विवेचन करने के साथ विशेष रूप से पर्यालोचन किया जाए। यहाँ तो श्री जैन दिवाकरजी महाराज के साहित्य-सागर को गागर में भरकर उसके एक बूंद के शतांश का दिग्दर्शन कराया है। यह लघु प्रयास कितना सफल रहा है? जिज्ञासु स्वयं निर्णय करें और यदि इसकी आंशिक उपयोगिता समझी गई तो हार्दिक प्रसन्नता होगी। संक्षेप में यही निवेदन है कि पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज का साहित्य पुंज संतप्त विश्व और भ्रमित मानव के लिए आन्तरिक शांति और उल्लास का प्रदाता है, कल्याणकारी मार्ग का दर्शक और शिवत्व प्राप्ति का साधन है।

तृष्णा यानि लोभ का त्याग, क्षमा-भाव, अहंकार-हीनता, पाप-कार्यों से विरक्ति, सत्य-भाषण, साधु-मार्ग का अनुसरण, विद्वानों की सेवा, पूज्यों की पूजा, शत्रुओं के साथ भी विनय-नम्रता का भाव, कीर्ति की रक्षा (ऐसा कोई काम न करना जिससे अपयश हो) तथा दुःखियों पर दया-भाव—ये ही सज्जनों के, सन्तों के कुछ लक्षण हैं।

मुनिश्री में ये सारे सन्तोचित गुण थे। प्रत्येक गुण पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा।

१. लोभ-त्याग

सांसारिक दुःख वैभव को ठुकराकर ही इन्होंने आध्यात्मिक साधना का कठोर मार्ग स्वीकार किया था। मुनिश्री के मुनि-जीवन में भी लोभ का भाव कभी नहीं रहा। भौतिकता में डूबे राजा-महाराजा गुरुदेव के सदुपदेश से प्रभावित होकर ऐश्वर्य की भेंट देना चाहते, किन्तु मुनि श्री उसे अस्वीकार कर देते थे। इनकी निस्पृहता से धनी-मानी व्यक्ति पर आध्यात्मिक प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता था। मुनिश्री यदि कोई भेंट लेते भी थे तो वह थी सदाचार की, दुर्व्यसन-त्याग की, अहिंसा-पालन की। एक मुसलमान नवाब से (पालनपुर चातुर्मास में) मुनिश्री ने शिकार, शराब, मांसाहार के त्याग की भेंट ली थी जो जिन शासन की प्रभावना के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती है।

यश और पदवी का भी मुनिश्री को कोई लोभ नहीं था। जब उनसे आचार्य-पद ग्रहण करने की प्रार्थना की गई तो उन्होंने बड़े निरासक्ति भाव से कहा—"मेरे गुरुदेव ने मुझे मुनि की पदवी दी है, यही बहुत है। मुझे भला अब और क्या चाहिए।"

२. अहंकारहीनता

उन्हें जैन दिवाकर, प्रसिद्धवक्ता, जगद्-वल्लभ, आदि पदवी मिलीं, किन्तु वे सदा इनसे निःस्पृह रहे। इतना अत्यधिक आदर पाकर भी उनके हृदय में कभी अहंकार नहीं दिखाई दिया। वे सदा ही स्वयं को भगवान् महावीर का एक सेवक (प्रहरी) मानते थे।

अहंभावी व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा दूसरों के अस्तित्व को मिटा कर भी करना चाहता है। अहंकार-हीन व्यक्ति अपने अस्तित्व को मिटा कर भी दूसरों के अस्तित्व की रक्षा करना चाहता है। महान् नीतिज्ञ विदुरजी ने उत्तम पुरुष का लक्षण बताते हुए कहा है—"उत्तम पुरुष वह है जो सब का अस्तित्व चाहता है, किसी के विनाश का उसके मन में संकल्प नहीं उठता।" मुनिश्री के जीवन में अनेक घटनाओं से इनकी निरहंकारिता की पुष्टि होती है। वि० सं० १९७३ में कानोड़ (उदयपुर) के बाजार में मुनिश्री का प्रवचन हो रहा था। वैष्णव भाइयों का जुलूस आने वाला था। धार्मिक साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति उस समय हो गई थी। झगड़ा होने की संभावना को देख कर मुनिश्री ने अपना प्रवचन बन्द करने की घोषणा कर लोगों के समक्ष अपनी निर्मानिता का प्रशंसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। वास्तव में सन्तों का स्वभाव ही है शान्ति-प्रियता।

किसी के प्रति, चाहे वह मुनिश्री की कैसी ही निन्दा करे, मुनिश्री की दुर्भावना या प्रतिकार-भावना कभी जागृत नहीं होती थी। वे सभी से हृदय खोल कर मिलते। लोग कहते, अमुक व्यक्ति वन्दना नहीं करता, तो मुनिश्री सहज-भाव से कहते—"उसके वन्दना करने से मुझे स्वर्ग प्राप्ति होने वाली नहीं, और वन्दना न करने से वह टलने वाला नहीं। मेरा आत्म-कल्याण तो

से द्रवित हो जाता है। मुनिश्री की दया विश्वव्यापिनी थी। वे प्राणिमात्र को कष्ट से पीड़ित नहीं देखना चाहते थे।

क्षमा कमजोरों का नहीं वीरों का भूषण है। कहा भी है—'**क्षमा वीरस्य भूषणम्**'। मुनिश्री एक प्रखर तेजस्वी थे, भय नाम की कोई चीज उन्हें ज्ञात न थी। कोई भी विरोध या धमकी उन्हें अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकती थी। नीतिकार भर्तृहरि ने धीर पुरुषों के लक्षण वताते हुए कहा है कि वे न्याय-पथ से कभी विचलित नहीं होते[5]। सज्जनों को न्याय-मार्ग ही प्रिय होता है,[6] भले ही उन्हें कितनी ही विपत्ति झेलनी पड़े। यही कारण था कि इनकी दीक्षा के समय अनेक वाधाएँ आईं, इनके ससुर श्री पूनमचन्द जी ने यहाँ तक धमकी दी—"खवरदार ! याद रखो, मेरे पास दुनाली वन्दूक है, एक गोली से गुरु के प्राण ले लूंगा और दूसरी से चेले के," किन्तु इन्हें कोई घवराहट नहीं हुई। साधु वनने के वाद भी लोगों ने आपको ससुर की ओर से अनिष्ट-आशंका व्यक्त की, तो आपने निर्भयता भरे स्वर में कहा—"आप चिन्ता न करें। आयु पूरी होने से पहले कोई किसी को नहीं मार सकता। यदि मैं धमकियों से डर जाता तो साधु-धर्म ही अंगीकार न कर पाता।"

वास्तव में मुनिश्री जी कोमलता व कठोरता के समन्वित मूर्ति थे। विपत्ति में धीरता व कठोर दिल होने का उदाहरण उनके जीवन में दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर प्राणि-मात्र के प्रति करुणार्द्रता, नम्रता के दर्शन होते हैं। भर्तृहरि ने सन्तों का यह स्वभाव वताया है कि वे समृद्धि में कमल की तरह कोमल, पर विपत्ति के समय चट्टानों की तरह कठोर होते हैं। सन्तों को ऐश्वर्य से कभी अहंकार नहीं जागता, और न ही विपत्ति से घवराहट। मुनिश्री के जीवन में सत्पुरुष की ये विशेषताएँ स्पष्ट झलकती हैं। अपने सहयोगियों के साथ व्यवहार में वे वाहर से कठोर दिखाई पड़ते थे, पर भीतर से कोमल थे। एक वार उन्होंने (देवेन्द्र मुनिजी महाराज शास्त्री को) कुशल शासकता का रहस्य स्पष्ट किया था—"शासक को तो कुम्हार की तरह होना चाहिए। वह ऊपर से प्रहार करता है, किन्तु भीतर से अपने कोमल हाथ का दुलार देता है। अनुशास्ता मर्यादा-पालन कराने के लिए कठोर भी होता है और कोमल-मृदु भी। किन्तु दोनों ही स्थितियों में उसमें परमार्थ की भावना होती है, स्वार्थ की नहीं।"

४. पाप-विरति

मनसा, वचसा, कायेन वे पूर्ण निष्पाप थे। वे तो ऐसे प्रेरणास्रोत थे जिससे पापी से पापी भी सदाचार की ओर मुड़ पड़ता था। उनका जीवन एक खुली किताव था जिसमें सदाचार की कथा थी। वे जन-जन की वैयक्तिक समस्याओं के समाधान में तत्पर तो दिखाई देते थे, किन्तु मनसा अध्यात्म-साधना में तल्लीन रहते थे।

५. एकता प्रयास

पापी व्यक्ति कलहप्रिय होता है तो निष्पाप व्यक्ति एकता, समन्वय व परस्पर प्रेम का प्रचारक व संस्थापक। मुनिश्री गुत्थियों को सुलझाना जानते थे, उलझाना नहीं। वे भिन्न तटों पर खड़े व्यक्तियों को अपने सदुपदेश रूपी सेतु से मिलाना चाहते थे। वे कैंची नहीं, सूई थे, जो दरार

---

५ न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः। —(नीतिशतक, ८४)

६ प्रिया न्याय्या वृत्तिः —(नीतिशतक, २८)

से द्रवित हो जाता है। मुनिश्री की दया विश्वव्यापिनी थी। वे प्राणिमात्र को कष्ट से पीड़ित नहीं देखना चाहते थे।

क्षमा कमजोरों का नहीं वीरों का भूषण है। कहा भी है—'**क्षमा वीरस्य भूषणम्**'। मुनिश्री एक प्रखर तेजस्वी थे, भय नाम की कोई चीज उन्हें ज्ञात न थी। कोई भी विरोध या धमकी उन्हें अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकती थी। नीतिकार भर्तृहरि ने धीर पुरुषों के लक्षण बताते हुए कहा है कि वे न्याय-पथ से कभी विचलित नहीं होते[५]। सज्जनों को न्याय-मार्ग ही प्रिय होता है,[६] भले ही उन्हें कितनी ही विपत्ति झेलनी पड़े। यही कारण था कि इनकी दीक्षा के समय अनेक बाधाएँ आईं, इनके ससुर श्री पूनमचन्द जी ने यहाँ तक धमकी दी—"खबरदार ! याद रखो, मेरे पास दुनाली बन्दूक है, एक गोली से गुरु के प्राण ले लूंगा और दूसरी से चेले के," किन्तु इन्हें कोई घबराहट नहीं हुई। साधु बनने के बाद भी लोगों ने आपको ससुर की ओर से अनिष्ट-आशंका व्यक्त की, तो आपने निर्भयता भरे स्वर में कहा—"आप चिन्ता न करें। आयु पूरी होने से पहले कोई किसी को नहीं मार सकता। यदि मैं धमकियों से डर जाता तो साधु-धर्म ही अंगीकार न कर पाता।"

वास्तव में मुनिश्री जी कोमलता व कठोरता के समन्वित मूर्ति थे। विपत्ति में धीरता व कठोर दिल होने का उदाहरण उनके जीवन में दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर प्राणि-मात्र के प्रति करुणार्द्रता, नम्रता के दर्शन होते हैं। भर्तृहरि ने सन्तों का यह स्वभाव बताया है कि वे समृद्धि में कमल की तरह कोमल, पर विपत्ति के समय चट्टानों की तरह कठोर होते हैं। सन्तों को ऐश्वर्य से कभी अहंकार नहीं जागता, और न ही विपत्ति से घबराहट। मुनिश्री के जीवन में सत्पुरुष की ये विशेषताएँ स्पष्ट झलकती हैं। अपने सहयोगियों के साथ व्यवहार में वे बाहर से कठोर दिखाई पड़ते थे, पर भीतर से कोमल थे। एक बार उन्होंने (देवेन्द्र मुनिजी महाराज शास्त्री को) कुशल शासकता का रहस्य स्पष्ट किया था—"शासक को तो कुम्हार की तरह होना चाहिए। वह ऊपर से प्रहार करता है, किन्तु भीतर से अपने कोमल हाथ का दुलार देता है। अनुशास्ता मर्यादा-पालन कराने के लिए कठोर भी होता है और कोमल-मृदु भी। किन्तु दोनों ही स्थितियों में उसमें परमार्थ की भावना होती है, स्वार्थ की नहीं।"

४. पाप-विरति

मनसा, वचसा, कायेन वे पूर्ण निष्पाप थे। वे तो ऐसे प्रेरणास्रोत थे जिससे पापी से पापी भी सदाचार की ओर मुड़ पड़ता था। उनका जीवन एक खुली किताब था जिसमें सदाचार की कथा थी। वे जन-जन की वैयक्तिक समस्याओं के समाधान में तत्पर तो दिखाई देते थे, किन्तु मनसा अध्यात्म-साधना में तल्लीन रहते थे।

५. एकता प्रयास

पापी व्यक्ति कलहप्रिय होता है तो निष्पाप व्यक्ति एकता, समन्वय व परस्पर प्रेम का प्रचारक व संस्थापक। मुनिश्री गुत्थियों को सुलझाना जानते थे, उलझाना नहीं। वे भिन्न तटों पर खड़े व्यक्तियों को अपने सदुपदेश रूपी सेतु से मिलाना चाहते थे। वे कैंची नहीं, सूई थे, जो दरार

---

५ न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः। —(नीतिशतक, ८४)

६ प्रिया न्याय्या वृत्तिः —(नीतिशतक, २८)

साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता। एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं?" ठीक भी है, जैन 'दिवाकर' का असत्य रूपी रात से मेल रह भी कैसे सकता है?

वे एक बार जो कह देते, उसकी रक्षा करते। एक घटना यहाँ प्रासंगिक होगी। एक बार मुनिश्री ने कुछ भक्तों की प्रार्थना पर 'उदयपुर' पधारने की स्वीकृति दे दी। बाद में कुछ लोगों ने वहाँ न आने का अनुरोध किया। उन लोगों का कहना था कि प्रवचन में जनता नहीं आएगी, जिन-शासन तथा मुनिश्री की अवमानना होगी। किन्तु महाराजश्री ने स्पष्ट कहा—"मेरे प्रवचन में जनता आएगी या नहीं, इस आशंका से मैं कभी चिन्तित नहीं होता। मेरे मुख से जो शब्द निकल गए हैं, मुझे उनका पालन अवश्य करना है।" इस पर उन लोगों ने कहा—"हमारा संघ आपका विरोध करेगा।" पर महाराजश्री ने पुनः अपना आत्मविश्वास दोहराते हुए कहा—"किसी विरोध से मैं भयभीत होने वाला नहीं। हम तो उग्र परीषहों से भी नहीं घबराते।"

कहते हैं, महात्मा के मुख से जो वचन निकल जाता है, वह सत्य हो जाता है। प्रकृति भी सन्तों के कहे वाक्य की सत्यता की रक्षा करती है। एक बार इन्होंने रतलाम में (सं० १९७८ में) एक आदिवासी मरणासन्न युवक के अच्छे होने की मंगल-कामना व्यक्त की थी, और आश्चर्य की बात है कि वह युवक अच्छा हो गया था।

७. विद्वानों तथा पूज्यों का आदर

मुनिश्री जी सभी विद्वानों तथा वरिष्ठ साधुओं के प्रति आदरभाव बरतते। संसारी पक्ष की माता श्री केसर बाई का इनके जीवन-निर्माण में अपूर्व योगदान था। मातृ-उपकार के प्रति मुनिश्री सद विनम्र, कृतज्ञ और आदर-भाव युक्त रहे।

८. कीर्ति रक्षा

सत्पुरुष अपनी सत्पुरुषता की रक्षा हेतु सतत प्रयत्नशील रहता है। मुनिश्री भी अपने श्रामण्य की रक्षा हेतु हमेशा चेष्टावान रहते। श्रामण्य का मूल समता[13] मुनि का मूल ज्ञान[14]—ये दोनों मुनिश्री में अनुपम थे।

साधु-पुरुष सामान्य गृहस्थ की अपेक्षा अधिक साधनामय होता है। साधु का जीवन निरन्तर आत्मिक साधना की लौ में पल-पल विसर्जित होता रहता है। मुनिश्री भी जीवन का एक-एक क्षण निरर्थक न खोते। स्वाध्याय में लीन रहते, प्रवचन करते, तत्व-चर्चा करते, चतुर्विध संघ की उन्नति हेतु जो कुछ कर सकते करते—ये ही सामान्यतः उनकी दिनचर्या थे। कोई उन्हें आराम करने के लिए कहते, तो वे उत्तर देते—"साधक के लिए आराम कैसा? हम श्रमण हैं, श्रम हमारा कर्तव्य है।" निन्दा, विकथा और अनर्गल व्यर्थ की बातों की ओर ध्यान लगता न था। कदम-कदम पर आत्मोदय ही उनका चरम लक्ष्य था। ७४ वर्ष की आयु में भी उनका ३-४ घण्टे निरन्तर जप-ध्यान चिन्तन प्रतिक्रमण करना और उस समय नींद को एक पल भी न आने देना आश्चर्य-जनक है।

---

१३ समयाए समणो होइ —(उत्त० सू० २५. ३१)
१४ नाणेण य मुणी होइ —(उत्त० सू० २५. ३१)

साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता। एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं?" ठीक भी है, जैन 'दिवाकर' का असत्य रूपी रात से मेल रह भी कैसे सकता है?

वे एक बार जो कह देते, उसकी रक्षा करते। एक घटना यहाँ प्रासंगिक होगी। एक बार मुनिश्री ने कुछ भक्तों की प्रार्थना पर 'उदयपुर' पधारने की स्वीकृति दे दी। बाद में कुछ लोगों ने वहाँ न आने का अनुरोध किया। उन लोगों का कहना था कि प्रवचन में जनता नहीं आएगी, जिन-शासन तथा मुनिश्री की अवमानना होगी। किन्तु महाराजश्री ने स्पष्ट कहा—"मेरे प्रवचन में जनता आएगी या नहीं, इस आशंका से मैं कभी चिन्तित नहीं होता। मेरे मुख से जो शब्द निकल गए हैं, मुझे उनका पालन अवश्य करना है।" इस पर उन लोगों ने कहा—"हमारा संघ आपका विरोध करेगा।" पर महाराजश्री ने पुनः अपना आत्मविश्वास दोहराते हुए कहा—"किसी विरोध से मैं भयभीत होने वाला नहीं। हम तो उग्र परीषहों से भी नहीं घबराते।"

कहते हैं, महात्मा के मुख से जो वचन निकल जाता है, वह सत्य हो जाता है। प्रकृति भी सन्तों के कहे वाक्य की सत्यता की रक्षा करती है। एक बार इन्होंने रतलाम में (सं० १९७८ में) एक आदिवासी मरणासन्न युवक के अच्छे होने की मंगल-कामना व्यक्त की थी, और आश्चर्य की बात है कि वह युवक अच्छा हो गया था।

७. विद्वानों तथा पूज्यों का आदर

मुनिश्री जी सभी विद्वानों तथा वरिष्ठ साधुओं के प्रति आदरभाव बरतते। संसारी पक्ष की माता श्री केसर बाई का इनके जीवन-निर्माण में अपूर्व योगदान था। मातृ-उपकार के प्रति मुनिश्री सद विनम्र, कृतज्ञ और आदर-भाव युक्त रहे।

८. कीर्ति रक्षा

सत्पुरुष अपनी सत्पुरुषता की रक्षा हेतु सतत प्रयत्नशील रहता है। मुनिश्री भी अपने श्रामण्य की रक्षा हेतु हमेशा चेष्टावान रहते। श्रामण्य का मूल समता[13] मुनि का मूल ज्ञान[14]—ये दोनों मुनिश्री में अनुपम थे।

साधु-पुरुष सामान्य गृहस्थ की अपेक्षा अधिक साधनामय होता है। साधु का जीवन निरन्तर आत्मिक साधना की लौ में पल-पल विसर्जित होता रहता है। मुनिश्री भी जीवन का एक-एक क्षण निरर्थक न खोते। स्वाध्याय में लीन रहते, प्रवचन करते, तत्व-चर्चा करते, चतुर्विध संघ की उन्नति हेतु जो कुछ कर सकते करते—ये ही सामान्यतः उनकी दिनचर्या थे। कोई उन्हें आराम करने के लिए कहते, तो वे उत्तर देते—"साधक के लिए आराम कैसा? हम श्रमण हैं, श्रम हमारा कर्तव्य है।" निन्दा, विकथा और अनर्गल व्यर्थ की बातों की ओर ध्यान लगता न था। कदम-कदम पर आत्मोदय ही उनका चरम लक्ष्य था। ७४ वर्ष की आयु में भी उनका ३-४ घण्टे निरन्तर जप-ध्यान चिन्तन प्रतिक्रमण करना और उस समय नींद को एक पल भी न आने देना आश्चर्य-जनक है।

---

१३ समयाए समणो होइ —(उत्त० सू० २५. ३१)
१४ नाणेण य मुणी होइ —(उत्त० सू० २५. ३१)

६. दुःखियों पर दया

सत्पुरुषों का स्वभाव ही है कि सब का उपकार करते हैं[15]। इस कार्य में उन्हें आनन्द आता है। मुनिश्री का जीवन परोपकार में ही लगा रहा। उनके हृदय में प्राणिमात्र के प्रति अपार करुणा थी। उनकी लोक-कल्याणकारी उपदेश-वाणी राजप्रासादों से लेकर साधारण झोंपड़ियों तक में दिनानुदिन अनुगुंजित रहती थी। जिधर भी, जब भी निकल जाते, सब ओर दया, दान, सेवा, सहयोग के रूप में करुणा का सागर उमड़ पड़ता था। उनके उपदेश का प्रभाव था कि हजारों राज-कर्मचारियों ने रिश्वत न लेने की प्रतिज्ञा की। हजारों ने मद्य-मांस छोड़ा। वेश्याओं ने घृणित धन्धे त्यागे। समाज-उत्थान की दिशा में अनेक कार्य हुए। अनेक विद्यालय स्थापित हुए। वात्सल्य फण्डों की स्थापना हुई। अनेक लोकोपकारी संस्थाएँ उनकी स्मृति में समाज-सेवा का कार्य कर रही हैं। मातृजाति के कल्याण के लिए कितनी ही प्रभावशाली योजनाएँ उनकी सत्प्रेरणा से साकार हुईं। उनका सान्निध्य ही इतना प्रभावकारी था कि लोगों का जीवन सदाचारमय हो जाता था। अनेक पत्थर दिल इन्सान पिघले, पापी सच्चरित्र हो उठे—यह सब उनके विराट् व्यक्तित्व का प्रभाव था।

आज उस महान् सन्त की जन्मशती मनाई जा रही है। श्रद्धा-सुमन चढ़ाये जा रहे हैं। मेरा भी उन्हें शत-शत नमन!

छोटी-सी भेंट

गुरुदेव श्री एकबार उदयपुर महाराणा के निवेदन पर राजमहल में प्रवचन करने पधारे। मैं भी उस समय गुरुदेव के साथ था। प्रवचन में स्वयं महारानीजी भी उपस्थित थीं और भाव-विभोर होकर सुन रही थीं। प्रवचन समाप्त होने पर महारानीजी ने एक चाँदी की बड़ी थाली में रुपये (कलदार) भरकर गुरुदेवश्री के भेंट भेजी। गुरुदेवश्री ने पूछा—"यह क्या ? क्यों ?"

"यह महारानी साहिबा की तरफ से एक छोटी-सी भेंट है....?"

गुरुदेव ने स्मितपूर्वक कहा—"हम साधु अपरिग्रही हैं। ऐसी भेंट नहीं लेते। भेंट देनी हो तो भेंट अवश्य लेंगे, पर त्याग-व्रत की त्याग की थाली में व्रतों के रुपये रखकर हमें दीजिए, हमें वही चाहिए।"

—केवल मुनि

---

१५ (क) नीतिशतक, ७९
(ख) सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः। —नीतिशतक, ७४

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सुधारवादी प्रयत्न, राजनीतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में

—पीयूष कुमार जैन

सामाजिक जीवन से जुड़ा हुआ हर व्यक्ति परिवर्तन चाहता है, किन्तु इन परिवर्तनों की माँग के पीछे उसके स्वयं के स्वार्थ भी जुड़े रहते हैं इसलिए वह सुधारक कहलाने का योग्य अधिकारी नहीं है। समाज-सुधारक वही कहलाता है जिसमें स्वार्थमय भावना न हो, जो सच्चे मन से चाहता हो कि समाज के अन्दर घुसी हुई बुराइयाँ, समाप्त हों, चाहे उसमें मेरे व्यक्तिगत हित का वलिदान ही क्यों न हो। ऐसे ही व्यक्ति के प्रयत्न अवश्य सफल होते हैं और वह निश्चय ही समाज में सुधार ला सकता है।

सन्त समुदाय एक ऐसा समुदाय जो दलितों की ओर देखता है उसके मन में दया के भाव उत्पन्न होते हैं वह उनका उद्धार करने की सोचता है जवकि सामान्य व्यक्ति के मन में घृणा का भाव उत्पन्न होता है, वह चाहता जरूर है कि इनकी बुराइयाँ जरूर दूर हों, किन्तु प्रयत्नशील नहीं होगा जबकि सामान्य से ऊँचा उठा व्यक्ति शीघ्र ही प्रयास शुरू करेगा।

वह व्यक्ति जिसका ध्येय सुधार ही हो वह हर क्षेत्र में सुधार करने का इच्छुक रहता है और सफल होता है, किन्तु कुछ वाधाएँ जरूर आती हैं वह बुद्धि कौशल से उन वाधाओं को दूर कर सकता है।

हर क्षेत्र में सुधार करने वाला व्यक्ति विरला ही होता है और इन विरलों में ही "जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज" का नाम भी प्रतिष्ठा के साथ लिया जा सकता है।

महाराज श्री के सामाजिक सुधार के लिए किये गये कार्य

महाराजश्री का जीवन हमेशा पतितों के उद्धार में लगा रहा। आपने सभी जातियों को एक साथ बैठाकर उनको जैन धर्म के सिद्धान्तों के बारे में समझाया। आप उस साहूकार की तरह से थे, जो मूल से अधिक व्याज पर ध्यान देता था, आपने अपने समाज से अधिक पतितों के उत्थान के लिये कार्य किया।

सन्त जीवन काँटों से भरा पथ होता है और जिसमें जैन समाज का साधु तो अनेक मर्यादाओं के बंधन से बँधा हुआ होता है। वह अपने समाज को ही उपदेश देकर शान्त हो जाता है, लेकिन उसके परिणामों की ओर ध्यान नहीं देता है। जवकि आपने उसी पथ पर चलते हुए, मर्यादाओं के बन्धन को मानते हुए, उन जातियों का उत्थान किया जो सामाजिक दृष्टि से निर्वल एवं आर्थिक दृष्टि से निर्धन थे। गुरुदेव ने उनकी निर्वलता को पहचाना, उनको लगा कि इन जातियों का सामाजिक जीवन जीने का पथ गलत है। यदि इनको पथ-प्रदर्शक मिल जाये तो निश्चय ही इनका उत्थान संभव है और महाराजश्री उनके उत्थान में जुड़ गये। इस सम्वन्ध में उनके जीवन से जुड़े हुए कुछ प्रसंग निम्न हैं :

भीलों को अहिंसा का पालन कराना

भील जाति उस समय पशुओं का वध कर उनको वेचते थे और समूह में पशुओं को मारने के लिए वनों में आग लगाकर उन्हें जीवित ही पकाकर उनका भक्षण कर जाती थी।

वि० सं० १९९६ में नाई (उदयपुर) में जैन दिवाकरजी महाराज पधारे, वहाँ तीन-चार हजार भील एकत्र हुए तथा आपके ओजस्वी व्याख्यान को सुनकर हिंसा त्याग की प्रतिज्ञा ली।

खटीक जाति द्वारा अपने पैतृक-धंधे का त्यागना

खटीक जाति वर्तमान में कसाई जाति ही मानी जाती है वह अपना लालन-पालन बकरों को काट कर, उनका मांस बेचकर करते थे, लेकिन वह आर्थिक दृष्टि से निर्बल ही थे; उनका जीवन भी शान्तिमय नहीं था। गुरुदेव के प्रवचनों को सुनकर उन्होंने अपने पैतृक धन्धे का त्याग किया। आपके इस प्रयत्न का यह अमृतफल भीलवाड़ा, सवाई माधोपुर, कोटा आदि के आसपास के खटीकों को प्राप्त हुआ और अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर इस कार्य को त्यागा। आपके कुशल प्रयत्नों एवं उपदेशों से प्रभावित होकर खटीकों ने शराब का भी त्याग किया। इस संदर्भ में एक प्रसंग है—

आर्थिक दृष्टि से हर वस्तु के दो पहलू होते हैं—एक को लाभ होता है, तो दूसरे को हानि। खटीक तो सुधर गये किन्तु शराब के ठेकेदार को हानि हुई। उससे आबकारी इंस्पेक्टर भी प्रभावित हुआ। वह महाराजश्री के पास गया एवं अनाप-सनाप बोलने लगा। कहने लगा—आप सन्त को किसी का धंधा बन्द करा देना कहाँ तक उचित है।"

गुरुदेव ने कहा कि शराब पिलवाना और किसी को तन-धन से बरबाद करना कहाँ तक उचित है ? आप स्वयं सोचिये कि एक के पेट के लिये हजारों का पेट काटना कहाँ तक उचित है, वह इंस्पेक्टर निरुत्तर हो गया और चला गया।[1]

महाराजश्री के जीवन की एक चाह यह थी कि हर दलित वर्ग उन्नति करें। भारतीयों में एक प्रवृत्ति है कि वंश-परम्परा का त्याग नहीं करते। वह रूढ़िवादी है चाहे उनके वंशज ने कोई गलत नियम बनाये, नियम को गलत समझते हुए भी वह रूढ़िवादी बने रहते हैं। जब-जब भी जिस व्यक्ति ने रूढ़िवादिता को तोड़ने का प्रयत्न किया उसे समाज ने तिरस्कृत किया। इसलिये भयभीत व्यक्ति समाज के भय से अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर दूसरा व्यवसाय अपनाने का प्रयत्न नहीं करता है और जब इनको किसी महान् पुरुष द्वारा परित्याग करने का आग्रह किया गया तो इनको लगता कि इस पुरुष का स्वार्थ है। यही बात जैन दिवाकरजी महाराज के साथ भी हुई। जब वह खटीकों को अहिंसामय प्रवचन देते तो उस खटीक समाज के पाखंडियों ने डट कर विरोध किया और अपने समाज के लोगों को बहकाते हुए कहा कि यह लोग तुम्हारा धर्म-भ्रष्ट कर रहे हैं।

सांच को आंच नहीं, यही कार्य जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का था। उन्होंने उन लोगों की निन्दा ध्यान में नहीं रखते हुए अपने मानव-धर्म के कार्य में जुटे रहें।

ऐसी ही घटना जैन दिवाकर श्री चौथलमजी महाराज के साथ जुड़ी हुई है। महाराजश्री के प्रवचन को सुनकर ६० गाँवों के चमारों ने शराब छोड़ दी लेकिन यह बात जब ठेकेदारों को पता चली उन्होंने अधिकारियों से शिकायत की। अधिकारियों ने अपनी आतंकमय प्रवृत्ति के भय से चमारों को शराब पीने को विवश किया लेकिन चमार लोग जानते थे कि यह कार्य अपने जीवन को नष्ट कर देगा इसलिए उन्होंने किसी के भय के आगे झुकने से इंकार कर दिया।

---

१ जैन दिवाकर, पृष्ठ ६५

आपके जीवन के साथ ऐसी कई घटना जुड़ी हुई है यदि उनका वर्णन किया जाये तो शायद एक पुस्तक तो उन घटनाओं की बन सकती है।

एकता व संगठन के अग्रदूत

समाज की एकता को सही रूप में जिन्होंने चाहा उनमें जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज साहब का नाम सादर लिया जा सकता है। महाराजश्री के द्वारा किये गये प्रयत्न निश्चय ही अधिक समय तक स्थाई रूप से नहीं रह सकें। इस दीपक का प्रकाश जब तक इस समाज पर था वह समाज प्रकाशित रहा, लेकिन आज यह हाल हो गया है कि छोटे-छोटे साधु समाज में फूट डालने का कार्य कर अपनी सत्ता स्थापित कर रहे हैं और बड़े मौन साधे बैठे हैं। यह बात निश्चित है कि उनके मन एकता की इच्छा जरूर है लेकिन सफल प्रयास नहीं कर पा रहे हैं।

महाराजश्री जहाँ भी गये वहाँ समाज की इस फूट को मिटाने का पूर्ण प्रयास किया। आपने समाज की एकता प्रयास राजस्थान में सबसे अधिक किया। वि सं० १९७२ में ब्यावर और अजमेर में, आपने अथक प्रयास किया एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। समाज की फूट से दुःखी थे, उनका कहना था—

दो भाई आपस में लड़-भिड़कर अपना बटवारा करना चाहे और अपनी माता के टुकड़े करना चाहे तो आप उन्हें क्या कहेंगे? यही कहेंगे कि इनसे बढ़ कर कपूत दुनिया में और कौन हो सकता है जो अपनी माता के भी खण्ड करने को तैयार हो गये हैं। आप जाति को भी माता मानते हैं, फिर धड़े बन्दी करके अपनी जाति माता के टुकड़े कर डालना क्या उसके पूतों का कर्तव्य है।[1]

आपके जीवन्त चरणों से जब मालव भूमि धन्य हुई तो आपकी वाणी की गरिमा को सुनकर उज्जैन श्रीसंघ जो कई भागों में बँटा हुआ था वह एक हो गया। आपके प्रयासों से उज्जैन में दिगम्बर-श्वेताम्बर सभी ने एक साथ महावीर जयन्ति मनायी।

महाराजश्री हमेशा जैन समाज, साधु संस्था एवं देश के सामाजिक ढांचे के परिवर्तन का प्रयास करते रहे। उन्होंने अपना समय समाज के उद्धार में बिताया। उनकी वाणी इतनी गम्भीर एवं प्रभावशील थी कि यदि कोई व्यक्ति एक बार सुन ले, तो वह प्रभावित होकर उनके बताये मार्ग पर चलता था उनकी वाणी का प्रभाव ही था जो उनके पश्चात् आज खटीक वीर बाल के नाम से जाने जाते हैं एवं जैन समाज का प्रमुख अंग माने जाते हैं। वे ४० वर्ष पूर्व खटीक के रूप में जाने जाते थे आज उनका जीवन सुखी एवं सम्पन्न है उन्होंने आज भी उस महान् गुरु को नहीं भूला है जिसने एक नई क्रान्ति उनके जीवन में ला दी थी।

जैन दिवाकरजी महाराज ने सामाजिक स्थिति को बहुत करीब से देखा, उन्होंने सामाजिक जीवन में फैली कुरीतियों को मिटाने में पूर्ण सहयोग दिया। हरिजन जाति के लोगों को समाज के सदस्यों के बराबर आसन पर बिठाया। उन्होंने कभी छुआछूत पर विश्वास नहीं किया।

आपके प्रयत्नों से बलि-प्रथा, वेश्या नृत्य आदि भी बन्द हो गये जिसने भी उनसे शपथ ली उसके लिए उनका कहना था "त्यागी पुरुष को कभी भी त्यागी हुई बात को नहीं अपनाना चाहिए यह तो वमन को फिर से भक्षण करना है।"

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग ८, पृष्ठ १८७

आपने अपने भागीरथ प्रयत्नों से स्वधर्मी वात्सल्य नाम पर प्रचलित मृत्यु-भोज को भी वन्द कराया। इस उपकार को जीवनभर मानव जाति नहीं भूल सकती।

महाराजश्री के उपदेश केवल जैन समाज के लिए ही नहीं थे। राजनीतिज्ञों को भी उन्होंने काफी प्रभावित किया। आपके द्वारा प्रारम्भ किया गया पतितोद्धार आज अन्त्योदय के नाम से जाना जा रहा है। यह कार्य महाराजश्री ने ६५ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ कर दिया।

हरिजनोद्धार कार्य आज एक राजनैतिक कार्यक्रम बन गया है, हर राजनैतिक पार्टी हरिजनोद्धार के नाम पर अपनी राजनैतिक रोटी सेंकने का, कार्य करने का प्रयत्न किया जा रहा है जबकि वास्तविकता यह है कि कार्य राजनैतिक आधार पर करने से उसका उद्देश्य चुनाव तक सीमित रहता है जिसका ढिंढोरा ज्यादा पीटा जाता है, लेकिन कार्य कुछ भी नहीं होता है। सामाजिकोद्धार का कार्य निस्वार्थ भाव से करने पर ही वह कार्य ठोस होता है, वास्तविक रूप से सही कार्य होता है। महात्मा गांधी ने निस्वार्थ भाव से यह कार्य किया था, तो वे विश्वबन्धु हो गये हैं लेकिन उनके कार्य को एक राजनीतिक जामा पहनाया जा रहा है।

महाराजश्री ने इस कार्यक्रम को स्वयं के बल, वाणी के चमत्कार के जरिये किया, जिसका प्रचार-प्रसार उन लोगों के तक ही रहा जिनका जीवन सुखी एवं सम्पन्न हो गया एवं सम्पूर्ण समाजों में प्रमुख स्थान मिलने लगा। महाराजश्री ने भगवान महावीर के सेवक के रूप में अहिंसा एवं अपरिग्रह के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन बिताया। अहिंसा का सिद्धान्त आज विश्व के लिए भी आवश्यक बन गया है। अहिंसा का यह सिद्धान्त स्वतन्त्रता के संग्राम के समय भी अपनाया गया जिसमें अहिंसात्मक सत्याग्रह प्रमुख है।

महाराजश्री के समय भारत ही क्या विश्व में राजतन्त्रीय प्रणाली थी जिन पर अँग्रेजों का प्रभाव था। महाराजश्री अँग्रेजों के कार्य से प्रसन्न नहीं थे। उन्होंने देखा कि अँग्रेजों के प्रभाव से भारतीय संस्कृति छिन्न-भिन्न होती जा रही है। प्रत्येक व्यक्ति पाश्चात्य संस्कृति को अपना रहा है अतः उन्होंने दुखित होकर कहा था—

"खेद है कि भारत के लोगों में अपनी संस्कृति, साहित्य, विज्ञान और कला के प्रति घोर उपेक्षावृत्ति उत्पन्न हो गयी है और इसी कारण बहुत-सी चमत्कार उत्पन्न करने वाली महत्वपूर्ण विद्याओं का लोप हो गया है। बची-खुची लुप्त हो रही हैं। यह देशवासियों के लिए गौरव की बात नहीं है। देश-भक्ति का सच्चा अर्थ यही है कि देश की संस्कृति को, साहित्य को, विज्ञान और कला को उन्नत और विकसित किया जाय।"[1]

वह भारतीयों की गुलामी से दुखी थे उनके मन में एक स्वतन्त्र भारत का नक्शा था। वे चाहते हर गरीब-अमीर स्वतन्त्र रहे एवं अपना जीविकोपार्जन करता रहे। उन्होंने कहा—

"जो कोई दूसरे के अधिकार को कुचलते हैं वह देशद्रोही है और धर्म-विरोधी हैं। वह जनता के अविश्वास का पात्र बनता है और ईश्वर से विमुख होता है।"[2]

राष्ट्र को पूर्णतया समर्पित यह सच्चा साधु राष्ट्र के लिए चिंतित रहा। हमेशा जनता के दुःख-दर्द को दूर करने का प्रयत्न करता रहा। वह जानता था कि आज का शासक पथ-भ्रष्ट यानि

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग, ५, पृष्ठ २३३
२ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग, १, पृष्ठ २५७

मदिरापान एवं वेश्यागमन का पथिक है और जब तक शासक स्वयं यह कार्य नहीं छोड़ेगा तो प्रजा भी नहीं छोड़ेगी। चूंकि उस समय राजतन्त्र था। प्रत्येक नगर ग्राम में जागीरदारों, जमींदारों के राज्य थे इसलिए उन्होंने अधिक-से-अधिक जागीरदारों को समझाया, जमींदारों को समझाया उनको सारगर्भित उपदेश दिये; बुराइयों से हानि बतलाई और उनसे इन बुराइयों से दूर रहने की सलाह दी। शासक वर्ग उस समय साधु को सिर्फ याचक रूप में ही जानता था। उन्होंने महाराजश्री को धन-दौलत देनी चाही, लेकिन गुरुदेव ठहरे एक जैन साधु जो धन-दौलत तो क्या एक समय का भोजन भी रात्रि को संग्रह करके नहीं रख सकता। वह धन का क्या संग्रह करेगा ? उन्होंने धन के बदले शासकों से निवेदन किया—आपके गाँवों, आपके राज्य में मदिरापान, बलि-प्रथा आदि बन्द करा दी जावें। उनके इस त्याग को देखकर शासक वर्ग ने अपने राज्यों में इस प्रकार के आदेश निकाल दिये एवं उन्होंने अपनी बुराइयों को भी दूर किया जिससे 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत चरितार्थ हुई।

जैन दिवाकर

(तर्ज—दिल लूटने वाले जादूगर)

गुरु जैन दिवाकर पर उपकारी, जग को जगाने आये थे
राह यहाँ जो भूल गये प्राणी, उन्हें राह दिखाने आये थे।टेर।
वह दिव्य पुंज प्रगटाया था, नीमच की पावन भूमि में
मात रु पिता का मन मानस, खिल उठा था निर्मल उर्मी में
यौवन की उठती आयु में, रंगभूमि में रंग लाये थे।१।
पर वह प्रकाश लघु सीमा में, सोचो कब रहने वाला था
माया की अँधेरी अटवी में भी, जिनके संग उजियारा था
व्यूह भेद दिया और निकल पड़े, वे रंग में एक रंग लाये थे।२।
बन गये पथिक संयम पथ के, जुड़ गये त्याग की कड़ियों में
कर लिया ज्ञान गुण का संग्रह जीवन की सुनहरी घड़ियों में
गुरु मिले थे हीरालाल जिन्हों से, ज्ञान खजाना पाये थे।३।
वाणी थी तीर्थसम जिनकी, यात्री थे नर-पति नर-नारी
दर्शन कर कलिमल धोते थे, दुर्जन हिंसक अत्याचारी
बन गये सुखी वे जीवन में जो पापों को छिटकाये थे।४।
बन्धुत्व भावना और दया को अपनाने की कहते थे
जाते थे जहाँ गुरु सब ही को "मूल" मंत्र यह देते थे
विसरायेंगे न कभी तुमको, जो चरणों में सुख पाये थे।५।

—मधुर वक्ता श्री मूलमुनि

संस्कार परिवर्तन तथा सुसंस्कार निर्माण में श्री जैन दिवाकर जी का योगदान

[कोई भी परिवर्तन, सुधार और क्रान्ति तब तक सफल नहीं, जब तक संस्कार परिवर्तन न हो। संस्कार परिवर्तन की बुनियादी क्रान्ति के सूत्रधार श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रयत्नों की समीक्षा पढ़िए····]

☆ श्री सज्जनसिंह मेहता
एम० ए० 'प्रभाकर'

अन्धकार, घोर अन्धकार को चीर कर, निशा को नष्ट कर प्रभात के साथ भानु अपने प्रकाश से लोक को आलोकित कर देता है। दिनकर के अवतरित होने पर अन्धकार लुप्त हो जाता है। महापुरुष भी प्रकाशपुञ्ज दिवाकर की भाँति ज्ञानपुञ्ज होते हैं जो अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर देते हैं। यही नहीं, यह दिवाकर तो केवल दिन में ही प्रकाश प्रदान करता है, लेकिन वो दिवाकर तो अपना ज्ञान-प्रकाश सदैव प्रसारित करते हैं। महापुरुषों का जीवन संसार के प्राणियों के लिये पथ-प्रदर्शक होता है। अनेक मूर्खों की अपेक्षा एक विद्वान अत्यन्त हितकर होता है। कहा भी है—

चन्दन की चुटकी भली, गाड़ी भला न काठ।
चतुर तो एक ही भलो, मूरख भला न साठ॥

अनन्त सितारों की अपेक्षा चन्द्र अधिक महत्त्वपूर्ण है। गाड़ीभर लक्कड़ की अपेक्षा चन्दन का एक छोटा-सा टुकड़ा अत्यन्त उपयोगी हो सकता है। अनेक मूर्ख साथियों की अपेक्षा एक विद्वान् साथी अधिक हितकर हो सकता है। इसलिए महापुरुषों का जीवन विशेष महत्वपूर्ण होता है। महापुरुषों का जीवन-चरित्र पतित एवं उच्च, भोगी एवं त्यागी, अन्यायी एवं न्यायी, सामान्य एवं विशेष सभी के लिए प्रेरणादायक हो सकता है। ये महापुरुष अपने पुरुषार्थ द्वारा समाज में व्याप्त कुसंस्कारों, अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों को समाप्त कर नवीन संस्कारों का निर्माण करते हैं। जैन दिवाकर पूज्य श्री चौथमलजी महाराज साहब ऐसे ही महापुरुष थे, जिन्होंने एक नवीन क्रान्ति पैदा कर दी। संस्कारों के परिवर्तन में तथा नवीन सुसंस्कार निर्माण में पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहब ने अपने समय में अद्वितीय कार्य किया।

उद्यान का कुशल माली खट्टे के पौधों में अच्छे संस्कारित नारंगी, मोसम्मी आदि की कलम (आंख) लगाकर खट्टे के पौधों को नारंगी, मोसम्मी आदि में बदल देता है, देशी आम पर कलमी आम की कलम चढ़ा कर उसे भी उन्नत किस्म के आम का पौधा बना देता है, उसी प्रकार पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज ने देश के विभिन्न वर्गों में, विभिन्न समाजों में व्याप्त कुसंस्कारों को दूर कर संस्कारों का बीजारोपण किया। उनका यह कार्य निर्धनों, अछूतों की झोंपड़ियों से लेकर राजा-महाराजाओं के महलों तक प्रसारित हुआ। उस वक्त में समाज की विचित्र दशा थी। देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, राजा-महाराजा सुरा-सुन्दरी के मोह में बेमान थे, सेठ-

साहूकार येन-केन-प्रकारेण न्याय-अन्याय का विवेक खोकर धनोपार्जन में व्यस्त थे, निर्धन एवं पिछड़ी जाति के लोग भी मद्य-मांस के सेवन द्वारा उत्तरोत्तर अधोमुख हो रहे थे। देश एवं समाज का बड़ा भाग विपिन में खोये राहगीर की भाँति बेभान था। ऐसे विषम समय में पूज्य श्री दिवाकर जी महाराज साहब ने ज्ञान एवं विवेक की ज्योति जगा कर पथभ्रष्ट व्यक्तियों का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी वाणी में आश्चर्यजनक शक्ति थी। श्रोतागण मन्त्रमुग्ध होकर सुना ही करते। अपने विचारों को मूर्त रूप देने में वे अटल थे। वे दृढ़ संकल्प के धनी थे। पतित से पतित वर्ग के व्यक्तियों का उद्धार पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहब द्वारा हुआ। आपके व्याख्यान एवं प्रचार शैली में ऐसी विशेषता थी कि राजा-महाराजा से लेकर पतित एवं अछूत कहलाने वाले तक में आपके पति श्रद्धा एवम् भक्ति उमड़ आती। उनके जीवन की कुछ वास्तविक घटनाओं द्वारा मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि संस्कार परिवर्तन एवं सुसंस्कार निर्माण में जैन दिवाकरजी महाराज का योगदान अद्वितीय था।

वेश्याओं पर प्रभाव—वेश्याएँ अपने कलंकित पेशे के कारण समाज में घृणा की पात्र हैं तथा इहलोक एवं परलोक दोनों ही बिगाड़ती हैं। जोधपुर में पूज्य गुरुदेव के व्याख्यानों का ऐसा प्रभाव हुआ कि वेश्याएँ भी आपके व्याख्यान में आने लगीं तथा कई वेश्याओं ने वेश्यावृत्ति का त्याग कर दिया एवं कई वेश्याओं ने मर्यादा कर ली। वेश्याएँ स्वयं अपने धन्धे से घृणा करने लगीं। दिवाकरजी महाराज साहब ने वेश्याओं को सन्मार्ग पर लगा दिया। वेश्यावृत्ति को बन्द करने हेतु एवं सुधार हेतु एक सभा का भी गठन किया गया।

खटीकों द्वारा हिंसा त्याग—खटीक लोग पशुवध का धन्धा कर घोर हिंसा करते हैं। दिवाकरजी महाराज साहब ने इस क्षेत्र में गजब का कार्य किया। गाँवों में रहने वाले खटीकों को, शहरों में रहने वाले खटीकों को तथा मार्ग में भी बकरों को ले जाते हुए खटीकों को मार्ग में ही समझाकर हिंसा का सदैव के लिए त्याग करवा देते।

केसूर (धार) में आपके उपदेशामृत से प्रभावित होकर, लगभग ६० गाँवों के चमार लोगों ने मद्यमांस निषेध का इकरारनामा लिखा। इससे इस जाति में मद्य-मांस रुक गया। इस पर शराब के विक्रेताओं को हानि हुई और उन्होंने इन लोगों की प्रतिज्ञा तुड़ाना चाहा। लेकिन चमार लोगों ने यह निश्चय कर लिया कि भले ही प्राण चले जावें परन्तु त्याग भंग नहीं होगा। काफी संघर्ष चला फिर भी चमार टस से मस नहीं हुए। अन्त में कलारों ने अपनी पराजय समझी एवं उन्होंने भी मद्य के सेवन व विक्रय आदि का त्याग कर लिया।

इसी प्रकार भील लोग भी प्रभावित हुए। संवत् १९६५ में उदयपुर के निकट 'नाई' नामक गाँव में आस-पास के भील क्षेत्र के मुखिया लोगों ने व्याख्यान सुने एवं बहुत प्रभावित हुए। चार पाँच हजार भीलों के प्रतिनिधियों ने कई प्रतिज्ञाएँ लीं।

संवत् १९७१ में गंगापुर में आपकी अमृत-वाणी से प्रभावित होकर, वहाँ के जिनगर (मोची) लोगों ने मांस-भक्षण एवं मदिरापान का त्याग किया। इतना ही नहीं वे जैन बन गए एवं जैन धर्म की सामायिक, दया, पौषध, उपवास आदि क्रियाओं का श्रद्धापूर्वक पालन करने लगे। इसी प्रकार मेवाड़, मारवाड़, दक्षिण, खानदेश आदि प्रान्तों के कई जिनगरों ने मांस एवं मद्य का त्याग किया एवं जिसके फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति में बहुत सुधार हो गया।

इस प्रकार पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहब के व्याख्यानों एवं प्रयासों से प्रभावित होकर खटीक, मोची, कलाल, चमार, भील, मुसलमान आदि कई पिछड़ी एवं क्रूर जाति के लोगों ने, जो कुसंस्कारों में पले, मद्य-मांस सेवन, चोरी, वेश्यावृत्ति आदि कुसंस्कारों का त्याग कर अपना जीवन निर्मल एवं संस्कारित बनाया। पीढ़ियों से चली आ रही दुष्प्रवृत्तियों का त्याग करना अत्यन्त दुष्कर है, फिर भी आपके प्रयासों से व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से दुष्प्रवृत्तियों का त्याग किया गया। जब इन पिछड़े वर्ग के निर्धन लोगों ने मद्य-मांस का त्याग किया तो उनके दैनिक जीवन में भी बहुत परिवर्तन हो गया एवं आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ।

भारत वर्ष में देवी स्थानों पर बलि चढ़ाने की प्रथा बहुत अधिक प्रचलित थी। पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहब इसे सहन नहीं कर सके तथा अपने अहिंसापूर्ण प्रवचनों एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के द्वारा अनेक स्थलों पर बलि बन्द करवा दी। नवरात्रि के दिनों में होने वाले इस घोर हिंसा काण्ड का इन्होंने विरोध किया तथा हर सम्भव प्रयास द्वारा इस हिंसक प्रवृत्ति एवं अन्धविश्वास को दूर किया। इस कार्य के लिए उन्होंने सम्बन्धित राजा-महाराजा, ठाकुर आदि का सहयोग प्राप्त किया तथा अगणित जीवों को अभय दान दिया। इससे लोगों में व्याप्त अन्धविश्वास भी दूर हुआ।

सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहब ने किया वह था—उस वक्त के शासक वर्ग में व्याप्त कुसंस्कारों को हटाना। उस समय राजा-महाराजाओं एवं ठाकुरों का शासन था। वे शासन के मद में चूर थे तथा न्याय, अहिंसा तथा सदाचार को भूल चुके थे। जनता की खून-पसीने की गाढ़ी कमाई का पैसा तत्कालीन शासक वर्ग शिकार, सुरा, सुन्दरी तथा ऐशोआराम में बर्बाद करते थे। धन की बर्बादी के साथ-साथ वे अपना परलोक भी बिगाड़ते। महाराजश्री ने इस वर्ग के सुधार का दृढ़ संकल्प किया एवम् इन लोगों में त्याग-प्रत्याख्यान करवा कर अद्वितीय कार्य किया। जहाँ गुरुदेव पधारते वहीं शिकार, हिंसा, मांस, मदिरा के त्याग होते। इस वर्ग में ऐसे त्यागों का तांता-सा लग गया। उन सब त्यागों का उल्लेख यहाँ करना सम्भव नहीं है। मैं यहाँ पर बहुत संक्षेप में इस वर्ग में हुए सुधारों का उल्लेख करना चाहूँगा। ठाकुरों एवं राजा-महाराजाओं ने स्वयं भी त्याग किये तथा अपने शासित क्षेत्र में सार्वजनिक घोषणा द्वारा, हिंसा, बलि, मद्य-मांस विक्रय पर पूर्ण या आंशिक प्रतिबन्ध लगा दिया। जहाँ भी आप पधारे वहाँ के शासकों ने आपकी आज्ञा शिरोधार्य की तथा अपने राज्य में हिंसा आदि को रोकने के लिए आज्ञापत्र जारी किये।[1]

कैसा विचित्र प्रभाव था श्री दिवाकरजी महाराज साहब की वाणी में ! जो राजा-महाराजा, राव, ठाकुर आदि सदियों से जिन वस्तुओं का उपयोग करते आ रहे थे तथा शासन के अभिमान में मदहोश थे, बेभान थे, उन्हें कौन समझा सकता था ? समझाना तो दूर रहा परन्तु उन्हें कहने का साहस भी होना दुष्कर था। लेकिन दिवाकरजी महाराज ने इन राजा-महाराजाओं में व्याप्त कुसंस्कारों को हटाया तथा सुसंस्कारों का बीजारोपण किया। यही नहीं, शासक वर्ग के जिन व्यक्तियों ने प्रतिज्ञाएँ लीं या घोषणाएँ करवाईं, उन्होंने बहुत ही सम्मान सूचक शब्दों एवं विनम्र भावों का प्रयोग किया है। शासक वर्ग में सुसंस्कारों का निर्माण जितना पूज्य श्री दिवाकरजी

---

१ ये घोषणा-पत्र इस ग्रन्थ के खण्ड ३, पृ० १२३ से १७२ तक देखें।

महाराज ने किया, इन वर्षों में न पहले देखा गया एवं न उसके बाद आज तक ही इनकी सानी का कोई भी उदाहरण दिखाई नहीं देता। जो प्रतिज्ञाएँ या घोषणाएँ की जाती थीं उनकी प्रति वे बड़े आदर-भाव से पूज्य गुरुदेव को भेंट करते थे। वैष्णव धर्म से प्रभावित होते हुए भी ये लोग दिवाकरजी महाराज साहब के व्याख्यानों को बड़े चाव से सुनते थे तथा बार-बार सुनने के लिए लालायित रहते थे। धर्म के प्रति और वह भी जैन धर्म के प्रति इनकी इतनी रुचि जागृत होना बहुत विशाल परिवर्तन था संस्कारों में।

मैंने इस लेख में जैनेतर समाज के लोगों के संस्कारों में हुए परिवर्तनों के बारे में ही अधिक निवेदन किया है क्योंकि मेरा उद्देश्य यह स्पष्ट करना था कि जैनेतर समाज में इतना संस्कार परिवर्तन हो सकता है, तो अपने ही समाज में परिवर्तन होना तो बहुत स्वाभाविक है। पूज्य गुरुदेव ने जैन एवं जैनेतर समाज पर अत्यन्त उपकार किया है तथा संस्कार परिवर्तन एवं सुसंस्कार निर्माण में आश्चर्यजनक कार्य किया है। उस समय में जैन समाज में कन्याविक्रय की प्रथा प्रचलित थी। गुरुदेव ने जहाँ भी इस कुप्रथा को पाया, अपने मार्मिक उपदेशों द्वारा उसका उन्मूलन किया। चित्तौड़गढ़ का ओसवाल, माहेश्वरी एवं इतर समाज कन्या विक्रय के लिए कुख्यात था। वहाँ की इस प्रथा का अन्त करवाया। जैन समाज वणिक वर्ग है। इस वर्ग में शोषणवृत्ति का अन्त करने, अप्रमाणित माप-ताल का अन्त करने, मुनाफाखोरी को रोकने आदि के लिए भी बहुत प्रयास किया एवम् उसमें भी आपको बहुत सफलता मिली। जैन समाज ही नहीं, अन्य समाज भी युगों-युगों तक आपके ऋणी रहेंगे। देश के कौने-कौने में भ्रमण कर आपने लोगों में व्याप्त दुष्प्रवृत्तियों एवं कुसंस्कारों को परिवर्तित करने में अद्वितीय योगदान दिया। जिन खटीकों के हाथ हिंसा के कारण लहू से सने रहते थे, उन्हीं खटीकों ने हिंसा का त्याग किया। जो राजा-महाराजा सुरा-सुन्दरी में सदैव मशगूल रहते थे उन्होंने श्री दिवाकरजी महाराज के उपदेश से, उसे बुरा समझकर त्याग कर दिया।

दया मूलक सार्वजनीन लोकप्रियता का एक उदाहरण और प्रस्तुत है। सन् १९२२ ई. में मुनि श्री मयाचन्द्रजी महाराज साहब ने ३३ उपवास की तपस्या की। तप की पूर्णाहुति के पावन प्रसंग पर मिल, कारखाने, कसाईखाने आदि बन्द रखवाने का प्रयास किया गया। पूज्य दिवाकरजी महाराज द्वारा प्रेरित किये जाने पर वहीं के मिल मालिक लुकमान भाई ने, जो मुसलमान थे, अपनी मिल बन्द रखी। ऐसे अवसर पर मोहर्रम का त्यौहार होने पर भी अभक्ष्य मांस आदि के स्थान पर अपने जाति भोज में मीठे चावल बनवाये और आपके प्रयत्नों से १०० बकरों को अभयदान दिया गया। इसी शहर उज्जैन में एक दिगम्बर जैन, मिल के प्रधान व्यवस्थापक को कहने पर उन्होंने भी मिल बन्द रखी।

संवत् १९७२ में दिवाकरजी महाराज पालनपुर पधारे। पालनपुर में नवाबों का शासन था। आपके व्याख्यानों एवं त्यागमय जीवन से प्रभावित होकर पालनपुर के तात्कालीन नवाब ने आजीवन शिकार, मद्यपान एवं मांसभक्षण तीनों का त्याग कर दिया। साथ ही साथ अपनी रियासत में आज्ञा जारी की कि जहाँ भी पूज्य दिवाकरजी महाराज पधारें उन्हें पूर्ण सम्मान देवें एवं अनेक व्याख्यानों का श्रवण करें।

देवगढ़ की राजकुमारी लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत ने एक बार सिकन्दराबाद में जैन साध्वी श्रीसायर कुँवरजी महाराज के दर्शन किये एवं भक्ति प्रदर्शित की। साध्वीजी ने राजकुमारीजी की भक्ति देखकर पूछा कि जैन सन्त-सतियों के प्रति उनकी इतनी भक्ति कैसे जगी? राजकुमारी जी

ने बताया कि पूज्य दिवाकरजी महाराज ने अपने धर्मोपदेश द्वारा राजकुमारीजी के सम्पूर्ण परिवार का उद्धार कर दिया, कुसंस्कारों को दूर कर नवीन सुसंस्कारों का संचार किया, इसलिये जैन साधुओं के प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा है। वे हैदराबाद से सिकन्दराबाद दर्शन हेतु ही आई थीं।

डूंगला (राज०) में श्री माणकचन्द जी दक थे। वे बड़े जिद्दी एवम् व्यसनी थे। उन्हें समझाने का साहस सामान्यतया नहीं होता था। लेकिन पूज्य गुरुदेव के व्याख्यानों ने केवल उनके व्यसन ही नहीं छुड़ाये वरन् संयमी साधु बना दिया। वे तपस्वी माणकचन्दजी महाराज बन गये।

पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज के उपकारों को लिपिबद्ध करना अत्यन्त दुष्कर है। उन्होंने संस्कार-परिवर्तन एवं सुसंस्कार निर्माण में जो कार्य किया है वह अन्यत्र देखा जाना सम्भव नहीं है। जीवन में संस्कारों का अत्यन्त महत्त्व है, सुसंस्कारों से जीवन बनता है, तो इसके अभाव में जीवन पतन के गर्त में जा गिरता है। पूज्य गुरुदेव ने ऊँच-नीच कुलों में, निर्धन-धनपति परिवारों में सभी क्षेत्रों में धर्म का जयघोष कर दिया। कहा भी है—

धुन के पक्के कर्मठ मानव, जिस पथ पर बढ़ जाते हैं।
एक बार तो रौरव को भी, स्वर्ग बना दिखलाते हैं॥

वास्तव में हमारे चरित्र नायक भी धुन के धनी थे। विषम परिस्थितियों में जन्म लेकर, प्रतिकूल वातावरण में रहकर भी उन्होंने परिस्थितियों को परिवर्तित कर दिया। उन्होंने हत्यारे, चोर, दस्युराज, हिंसक, शराबी, जुआखोर, तस्कर, शोषक, व्यसनी दुराचारी आदि सभी प्रकार के कुसंस्कारों से परिपूरित मानव के वेश में दानवों को संस्कारित कर दानव से मानव ही न बनाया, वरन् कइयों को देवता भी बना दिया।

धन्य हैं ऐसे महापुरुष, जिन्हें हर समाज आज याद करता है। अछूतों और राजा-महाराजाओं को बदलने में निःसन्देह, महाराजश्री ने अद्वितीय कार्य किया।

॥ जय जैन जगत दिवाकर ॥

पता—
सज्जनसिंह मेहता
कानोड़ (राजस्थान) PIN No. 313604

क्या सेवा करें ?

एक दिन महाराणा फतहसिंहजी ने अपने निकटतम सलाहकार कालूलालजी से पूछा—कालू! महाराज साहब के लिए क्या खर्च करें? वे तो कुछ लेते ही नहीं हैं। गतवर्ष एक स्वामीजी का चौमासा कराया था, १०० साधु साथ में थे। नित के माल घुटते थे। हजारों रुपये खर्च हो गये। और इन महाराज साहब के लिए तो एक पैसा भी खर्च नहीं? इनकी सेवा क्या करें....?

—केवल मुनि

दृढ़ निश्चयी पथ-प्रदर्शक सन्त

✡ साध्वी श्री रमेशकुमारी 'प्रभाकर'

अपना जमाना आप बनाते हैं अहले दिल।
यह वह नहीं थे जिनको जमाना बना गया।।

पहाड़ की बुलन्दियों से निकलने वाले चश्मे को भला कौन रास्ता देता है। कौन उनके लिए सड़कें बनाता है? कोई भी तो नहीं। वह तो खुद ही गाता, मुस्कराता और पहाड़ की चट्टानों को चीरता, अड़चनों को दूर करता हुआ, अपना रास्ता बनाता चलता है। वह तो जिधर से निकल गया उधर से ही आगे खुद ही उसका रास्ता साफ होता चला गया। भला पुरनूर आफताव को मशरिक की क्या परवाह? उसने तो जिधर से ही अपना चमकता हुआ सिर निकाला वही मशरिक। इसी तरह अहले दिल भी अपना जमाना खुद बनाया करते हैं। वे जमाने के मोहताज नहीं हुआ करते कि जमाना आए और उन्हें बना जायें। बल्कि वह तो जमाने के तेज से तेज चलने वाले धारे को, अपने आहनी इरादों से मोम की तरह मोड़ दिया करते हैं। ऐसे ही अहले दिल, उर्दू शायर के शब्दों में मस्ती के साथ गुनगुनाया करते हैं।

वहर में रोक दें किश्ती जहाँ, साहिल हो जाय।
हम जहाँ रख दें कदम, वस वहीं मंजिल हो जाय।।

इस पाक गंगा और बुलन्द हिमालय के देश में, हजारों–लाखों हस्तियाँ कुछ ऐसी भी हो गुजरी हैं जिनका दिल गंगा की तरह पाक-साफ और अभ्र हिमालय की तरह मजवूत और बुलन्द था। श्रद्धेय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज जो अब मजी की एक आला कहानी हस्ती वन चुके हैं, वह ऐसे ही पाक-साफ और बुलन्द इरादों के इन्सान थे। उन्होंने जमाने का इन्तजार नहीं किया कि वह उनको वनाये, बल्कि अपने जमाने को, अपनी जिन्दगी को, खुद अपने ही बलबूते पर, अपनी ही हिम्मत पर, अपने ही पाक-अमल और सही इल्म के वजूद पर, उन्होंने बुलन्द से बुलन्द बनाया। जैन धर्म दिवाकर दरअसल एक आला हिम्मत और सच्चे मर्द थे। पर हकीकत एक ऐसे मर्द; जो अपने आहनी इरादों एवं फौलादी जज्वातों और कुव्वतों से जमाने तक को ही बदल डाले। उसे नया रंग ही अपने औसाफ से दे डाले। जमाने के तेज से तेज चलने वाले धारे को उन्होंने एकदम मोड़ कर एक नया रूप दिया। एक नई दिशा एक नई शिक्षा-दीक्षा दी। त्याग, संयम वाअमल इल्म और रूहानी जज्वातों को अपनी जिन्दगी का एक मकसद ही बना लिया था। जमाने ने उनको नहीं, बल्कि उन्होंने जमाने को बदला। एक उर्दू शायर के शानदार लफ्जों में—

लोग कहते हैं, बदलता है जमाना अक्सर!
मर्द वह है, जो जमाने को बदल देते हैं।।

जवानी में ही वा-अमल फकीरी की राह पकड़ ली थी और मुस्तैद कदमों से वे अपनी रूहानी मंजिल की जानिब बढ़ चले थे। सच्ची दरवेशी तो दिवाकरजी महाराज की रूहानी जिन्दगी का एक जुज ही बनकर रह गई थी। वह सच्ची फकीरी जिसके सामने दुनियावी ऐशो-

इशरत कुछ भी औकात नहीं रखते उन्होंने सच्चे यकीन के साथ हासिल की थी। उर्दू शायर भी इसी बात को इस तरह कह रहा है—

यकीं पैदा कर ऐ वन्दे, यकीं से हाथ आती है।
वह दरवेशी जिसके सामने झुकती है मजबूरी ॥

फकीरी का पाक जामा उन्होंने दिल से पहना था। इसी से तो उम्र भर आपने तह-दिल से निभाया भी और खूब शानदर ढंग से निभाया। तभी तो दुनिया आज उन्हें अपना रहबर मानती है, उनको खुशी से सिजदा करती है, सिर झुकाती है और उनका नाम लेना बाइसे-फख समझती है। वह फकर जिसकी शान के सामने, शाने-सिकन्दरी भी कोई चीज नहीं है। वह फकर जिसके मुकाबले में, तख्तो ताज लश्करो-सिपाह, मालो-जर, दुनियाँ की सब नेमते हेज ठहरती है।

जिस प्रकार का मालिक शाहों का शाह है और बादशाहों का बादशाह। वह फकर श्रद्धेय श्री चौथमलजी महाराज की जिन्दगी में लाहन्तिहा मौजूद था। वही फकर जिसकी तारीफ में शायर कह रहा है—

निगाहें फकर के सामने, शाने सिकन्दरी क्या है?
खिराज की जो गदा हो, वह कैसरी क्या है?
फकर के है मौज जात, तख्त-ताज-लश्कर व जिख सिपाह।
फकर है मीरो का मीर; फकर है शाहों का शाह ॥
न तख्तो ताज में है, न लश्करो जरो सिपाह में है।
जो बात मर्दे-कलन्दर की बारगाह में है ॥

परम श्रद्धेय दिवाकरजी महाराज की किस-किस वस्फ की तारीफ लिखूँ? उनकी तो सारी जिन्दगी ही औसाफ की कान थी! खुशमिजाजी, जिंदादिली, खिदमतपरस्ती, नेक चलन और पाक अमल, किस-किस का अफसाना लिखने बैठूं? उनके एक-एक वस्फ की तारीफ में पोथे के पोथे और दिवान के दिवान लिखे जा सकते हैं। फिर भी दो सतरें एक शायर के शब्दों में दोहरा ही देती हूँ—

सखावत, शुजाअत, इबादत, रियाजत।
हर एक वस्फ में तुझको थी काबलीयत ॥

उनकी जिन्दगी एक महकते हुए फूल की जिन्दगी के मानिन्द थी। फूल की महक तो थोड़ी देर तक कायम रहती है। फूल के मुझाते-सूखते ही, उसकी हस्ती भी खत्म हो जाती है, लेकिन दिवाकरजी महाराज के आसफ की खुशबू तो हमेशा-हमेशा महकने वाली खुशबू है। वह उनकी जिन्दगी के वक्त भी थी, वह उनके चले जाने के बाद आज भी है। और इसी तरह मुस्तकबिल भी उसकी महक से महकता ही रहेगा। क्या अपना, क्या पराया? सब दिवाकरजी महाराज के औसाफ की खुशबू से मुअत्तर रहे हैं और रहेंगे। जैसा कि एक शायर ने कहा है—

फूल बन करके महक, तुझको जमाना जाने।
भीनी खुशबू को तेरी, अपना बेगाना जाने ॥
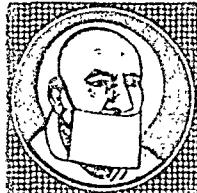
सचमुच में एक ऐसे ही हमेशा के लिए कायम रहकर खिलने वाले फूल बनकर, गुलशने आलम में महके थे। बेशक वे इन्सान थे, लेकिन उनकी जिन्दगी एक पूर-नूर मेहरो-माह से भी बढ़कर थी। तभी तो शायर को कहना ही पड़ा, आपको देखकर—

निगाह बर्क नहीं, चेहरा आफताब नहीं।
वही आदमी थे, मगर देखने की ताब नहीं॥

श्रद्धेय दिवाकरजी महाराज के कौल और फैल खुशी हो या गम यह नहीं कि उनका दिल कुछ सोचे और जबान कुछ कहे। जबान कुछ कहे और फैल कुछ और ही कर गुजरें। नहीं, दिल, जबान और अमल यह तीनों आपके यक्सां रहे हैं। तभी तो आप एक महान् पुरुष बन सके, पाकबातन कहला सके। इसीलिए तो कहता है—

कौल और फैल से, खयालात हैं उनके यकसा
पाक-बातन जो जमाने में हुआ करते हैं॥

उनकी जिन्दगी शुरू से आखिर तक पाक और साफ रही है। वे सदाकत की राह पर चलकर मंजिले-हकीकत पर पहुँच गए। और दुनिया के लिए दामने-गेती पर अपने नक्शे कदम छोड़ गए। ताकि और भी कोई मुसाफिर इन नक्शे कदम पर कदम दर कदम चलता हुआ मंजिले मकसूद तक पहुँच सके। श्री दिवाकरजी महाराज अपने वस्फों से, अपने अमल से, अपनी शीरी कलामियों से, अपनी जिन्दादिली से और अपनी पुर-मुहब्बत मीठी यादगारों से, आज भी हमारे सामने मौजूद है। और हैं हमेशा-हमेशा के लिए हमारे दिल में कायम। वे दर हकीकत अब हमसे जुदा होने वाले नहीं हैं। चूंकि मिट्टी का बना हुआ यह जिस्म ही तो पानी है, इन्सां के औसाफ तो पानी नहीं? वे तो हर हालत में हमेशा के लिए कायम रहने वाले हैं। मरने वाला सिर्फ आँखों से ही दूर होता है। लेकिन बिल्कुल फना तो नहीं होता। अपने औसाफ से, अपने नाम से और अपने कौल और फैल से तो वह इस दुनियां में कायम रहता है। इसी तरह दिवाकर जी महाराज के लिए भी यही कहा जा सकता है कि वे सिर्फ हमारी आँखों से ही दूर हुए हैं दिलों से दूर नहीं। वह दिलों में तो हमारे, ज्यों के त्यों मौजूद हैं और सदियों तक मौजूद रहेंगे, इसमें जरा भी सन्देह की गुंजायश नहीं है। बस अब तो मैं उर्दू शायर सर इकबाल के लफजों में आखिरी बात कहकर, उस दिवाकरजी महाराज को अपने श्रद्धा की चन्द अधखिली कलियां भेंट करती हूँ।

मरने वाले मरते हैं, लेकिन फना होते नहीं।
ये हकीकत में कभी हमसे, जुदा होते नहीं॥
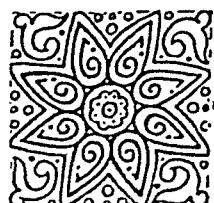
मुनिश्री चौथमलजी महाराज के काव्य में सामाजिक चेतना के स्वर

श्री संजीव भानावत, जयपुर

क्रान्तदृष्टा जैन दिवाकर पं० मुनिश्री चौथमलजी महाराज साहब सामाजिक क्रांति और चेतना के संवाहक रहे हैं। तत्कालीन समाज में जब रूढ़िगत मान्यताओं के प्रति लोगों की निष्ठा और अन्ध श्रद्धा बढ़ती जा रही थी, तब मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने अपने प्रवचनों तथा कविताओं में इन कुप्रथाओं तथा रूढ़िगत मान्यताओं के खिलाफ आवाज बुलन्द कर एक आदर्श समाज की स्थापना का आह्वान किया। विषय-वासनाओं से दूर, पुरुषार्थ तथा सत्कार्य में प्रवृत्त होना ही मनुष्य की विशेषता है। इस मर्म को समझाते हुए आपने कहा—

अत्यन्त परिश्रम से जिनको, उत्तम साधन मिल जाते हैं।
सत्कार्य में उनको नियत करें, वे श्रेष्ठ पुरुष कहलाते हैं ॥[1]

मनुष्य जीवन में दुःख-सुख चक्र की भाँति आते रहते हैं। अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में हमें समता भाव रखते हुए अपने आचरण को नियन्त्रित रखना चाहिए। अपने सुख की खातिर दूसरों को पीड़ित या दुखित करना त्याज्य है—

प्रतिकूल परिस्थिति होते भी, जो न्याय मार्ग अपनाता है।
वह इष्ट पदार्थ को पाकर के, श्रेष्ठ पुरुष बन जाता है ॥[2]

अवांछनीय कार्य में संलग्न व्यक्ति कभी भी समाज में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति मानवता के लिए कलंक हैं, मनुष्यता के शत्रु हैं। इनकी मान, मर्यादा व इज्जत गलत कार्यों में प्रवृत्त होने से स्वतः समाप्त होती जाती है—

जो अनुचित कार्य करें उनकी, सब दुनिया हँसी उड़ाती है।
और उनकी इज्जत हुर्मत भी, सब मिट्टी में मिल जाती है ॥[3]

वस्तुतः मानवता का चोला धारण करना ही पर्याप्त नहीं। स्नेह, सहयोग और सद्भाव पूर्वक जीवनयापन करना ही वास्तविक जीवन है। कथनी व करनी के अन्तर को समाप्त करने का आग्रह करते हुए तथा जीवन में विरोधाभास की स्थिति को नष्ट करने की प्रेरणा देते हुए मुनिश्री ने कहा—

यदि वेष साधु का धार लिया, तो इसमें क्या बलिहारी है।
पर प्रगट साधुता को करना, यह जग में कठिन करारी है ॥[4]

दुष्ट के साथ दुष्टता का तथा सज्जन के साथ सज्जनता का व्यवहार तो सभी करते हैं किन्तु मनुष्य का बड़प्पन तो इस बात में है कि वह दुष्ट के साथ भी सज्जनता का व्यवहार करे। इसी भाव को अत्यन्त सुन्दर उदाहरण द्वारा समझाते हुए आपने कहा—

---

१ मुक्ति पथ, पृ० २।
२ वही, पृ० ६।
३ वही, पृ० २।
४ वही, पृ० २।
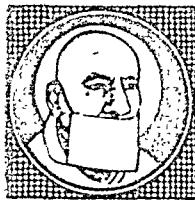
चन्दन को कुल्हाड़ी काटे है, वह उसे सुगन्धित करता है।
सज्जन बनने वाला नर भी, यह उदाहरण मन धरता है ॥[1]

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपने अमृत वचनों में सदा नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना की है। मनुष्य के करणीय और अकरणीय कर्तव्यों को उन्होंने अत्यन्त सरल भाषा व लहजे में समझाया है। एक स्थान पर वे कहते हैं—

जो दुखियों पर नित दया करे, वह हर्गिज दुख नहीं पाता है।
जो ढाये जुल्म बेकसों पर, वह गम में दिवस बिताता है ॥[2]

विभिन्न राष्ट्रों पर विजय पाना सरल है, विभिन्न जातियों या समूहों को गुलाम बना लेना बड़ी बात नहीं है किन्तु मन को गुलाम बनाना या उस पर नियन्त्रण स्थापित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। मुनिश्री ने कहा—

बस यही विजय सर्वोत्तम है, सब विजयों का है सार यही।
अपने ही मन पर विजय करो, विजयी का है आधार यही ॥[3]

भारतीय संस्कृति व धर्म पर लम्बे समय से विदेशी आक्रमण होते रहे हैं। इन आक्रमणों के बावजूद हमारी संस्कृति ने, हमारे धर्म ने अपनी मौलिकता को नहीं त्यागा; वरन् इस संस्कृति के विशाल उदर में अन्य संस्कृतियाँ समाविष्ट हो गयीं। धर्म-संस्कृति की विभिन्न परिभाषाएँ दी गयी हैं तथा दी जा सकती हैं, लेकिन मुनिश्री की यह परिभाषा कितनी सरल और सुन्दर है—

चाहे तो जमाना पलट जाय, पर धर्म नहीं पलटाता है।
जो पलट जाय वह धर्म नहीं है, धर्म तो ध्रुव कहलाता है ॥[4]

पुस्तकीय ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं है। पुस्तकों के अध्ययन से हमें बाहरी ज्ञान तो हो सकता है किन्तु आत्मज्ञान नहीं। आत्मज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान बताते हुए आपने कहा—

तन मन्दिर को है खबर नहीं, अंदर किसका उजियाला है।
पर आत्मा उसको जान रहा, वह खुद उसका रखवाला है ॥[5]

मुनिश्री ने धर्म के नाम पर व्याप्त थोथे कर्म-काण्डों एवं बाहरी आडम्बरों पर चोट करते हुए धर्म के शुद्ध रूप की प्ररूपणा की और सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा दी—

जब हाकिम से मिलने के लिए, बढ़िया पोशाक सजाते हो।
तो मालिक से मिलने के लिए, क्यों रूह न पाक बनाते हो ॥[6]

क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय तथा मांसाहार, मदिरापान, द्यूतक्रीड़ा, चौर्य-वृत्ति, परस्त्रीगमन, धूम्रपान जैसे कुव्यसन मनुष्य के लिए अत्यन्त घातक हैं। इन व्यसनों के चक्र में फँसे व्यक्ति के सभी प्रगति द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं। वह अपना आत्मघात तो करता ही है, साथ ही परिवार की खुशहाली व समृद्धि के लिए भी अभिशाप सिद्ध होता है। मुनिश्री ने समाज में व्याप्त इन कुव्यसनों के घातक परिणामों के प्रति मानव-मात्र को सचेत किया।

---

१ मुक्ति पथ, पृ० ५।
२ वही, पृ० १।
३ वही, पृ० ३।
४ वही, पृ० ११।
५ वही, पृ० १।
६ वही, पृ० १।

क्रोध में मनुष्य अपने होश-हवाश खो बैठता है। मुनिश्री क्रोध को दुश्मन से भी अधिक भयंकर बताते हैं क्योंकि इससे मोहब्बत के रिश्ते क्षणभर में ही टूट जाते हैं। क्रोधी व्यक्ति की मनःस्थिति असामान्य होती है। उसका प्रभाव शरीर को भी विकृत बना देता है। क्रोधी व्यक्ति के सन्दर्भ में आपने कहा—

सलवट पड़े मुँह पर तुरत, कम्पे मानिन्द जिन्द के।
चश्म भी कैसे बने, इस क्रोध के परताप से ॥[1]

व्यक्ति को कभी मान नहीं करना चाहिए। मान मनुष्य की सारी प्रतिष्ठा को पल भर में समाप्त कर देता है। चमन के खिले पुष्पों से मानी व्यक्ति की सटीक तुलना करते हुए मुनि श्री कहते हैं—

जैसे खिले हैं फूल गुलशन में अजिजो देख लो।
आखिर तो वह कुम्हलायगा, तू मान करना छोड़दे ॥[2]

जुआ या द्यूत निषेध पर भी आपने अपने प्रवचनों में बल दिया है। जुआ को आपने सभी व्यसनों का सरदार बताते हुए कहा कि इस व्यसन से धनवान निर्धन हो जाते हैं, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, सम्पत्ति गिरवी रखनी पड़ती है तथा ऐसा व्यक्ति न दुनिया का रहता है, न दीन का, न गुरू का रहता है, न पीर का। वे कहते हैं—

द्रौपदी के चीर छीने पाण्डवों के देखते।
राज्य भी गया हाथ से, तू जुआबाजी छोड़ दे ॥[3]

शराब के दुष्परिणामों से हम अवगत ही हैं। आज जनता सरकार भी नशाबन्दी की ओर तीव्र गति से अग्रसर है, किन्तु शराब के दुष्परिणामों को मुनिश्री ने कई वर्ष पूर्व ही भांप लिया तथा इस व्यसन से सभी को दूर रहने की सलाह दी। शराबी व्यक्ति की मनःस्थिति का विश्लेषण करते हुए मुनिश्री ने कहा—

बकते-बकते हँस पड़े, और चौंक के फिर रो उठे।
बेहोश हो हथियार ले, शराब के परताप से ॥[4]

रात्रि में भोजन करना अनेक बीमारियों को आमन्त्रण देना है। मुनिश्री ने कहा कि रात्रि में भोजन करना बड़ा भारी पाप है। रात्रि में भोजन करने वाले को क्या पता चलेगा कि भोजन में, दाल में कीड़े हैं या जीरा? वह तो चींटियों को भी जीरा समझकर खा जायगा। रात्रि-भोजन को स्वास्थ्य व धर्म दोनों को नष्ट करने वाला बताते हुए आपने कहा—

चिड़ी कमेड़ी कागला, नहीं रात चुगण जाय।
नर देहधारी मानवी, तू रात में क्यों खाय?[5]

बीड़ी, सिगरेट और तमाखू के व्यापक प्रचलन से मुनिश्री परिचित थे। यह कुव्यसन आज की युवा-पीढ़ी में भी व्याप्त हो गया है। मुनिश्री ने फरमाया कि तमाखू के धुंए से मकान ही काला

---

१ जैन गजल गुल चमन बहार, पृ० ६। २ वही, पृ० ७।
३ वही, पृ० १०। ४ वही, पृ० १२-१३।
५ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग २, पृ० २५६।

नहीं होता बल्कि दिल भी काला हो जाता है तथा फेंफड़े भी जलकर खाक हो जाते हैं। तमाखू पीने वालों को फटकारते हुए आपने कहा—

है बुरी ये चीज ऐसी, खर नहीं खाता इसे।
इन्सान होके पीने को तू, किस तरह लाता इसे॥[1]

इसी प्रकार समाज में व्याप्त अन्य कुव्यसनों पर भी मुनिश्री ने कटु प्रहार कर देश की युवा पीढ़ी को नये समाज रचना के लिए ललकारा है। युवा पीढ़ी में उत्साह व उमंग होती है तथा वह शीघ्र पुरातन को त्याग कर नवीनता को आत्मसात कर सकने में सक्षम है। कुप्रथाओं तथा दकियानुसी विचारों को वह नष्ट कर सकती है। धर्म की रक्षा का भार भी युवकों पर है। तभी तो युवकों का आह्वान करते हुए आपने कहा—

उठो ब्रादर कस कमर, तुम धर्म की रक्षा करो।
श्री वीर के तुम पुत्र होकर, गीदड़ों से क्यों डरो॥[2]

नीति, रीति, शांति, क्षमा कर्तव्य-पथ पर चलते हुए युवकों से आपने उत्साह से कुछ कर दिखाने का आह्वान किया—

जो इरादा तुम करो तो, बीच में छोड़ो मती।
मजबूत रहो निज कोल पर, करके कुछ दिखलाइयो॥[3]

मुनिश्री ने जहाँ कुव्यसनों के प्रति लोगों को सचेत किया वहीं तप, दान, उद्यम आदि सद्‌गुण अपनाने पर भी जोर दिया। कर्मों की निर्जरा में तप का विशिष्ट स्थान है। तप के महत्व को स्पष्ट करते हुए आपने कहा—

लब्धि रूपी लक्ष्मी की लता का यह मूल है।
नन्दिसेण विष्णु कुंवर का, सारा ही बयान है॥[4]

सत्य सभी गुणों की खान है। सत्य के प्रताप से सर्प पुष्प की माला बन जाता है तो अग्नि जल में परिवर्तित हो जाती है। सत्य का आचरण करने वाले के लिए विष का प्याला भी अमृत कुंड के समान है। सत्य मोक्ष-मार्ग की ओर निर्देशित करता है। सत्य की इसी महानता पर मुनि श्री चौथमलजी महाराज तन, मन, धन तीनों ही कुरबान करते हैं—

नियम सृष्टि जाय पलटी, सत्य कभी पलटे नहीं।
सत्य पै ही तन मन धन तीनों ही कुरबान हैं॥[5]

दान का जीवन व समाज में विशेष स्थान है। हमारे इतिहास में अनेक दानवीरों का वर्णन है। दान से दरिद्र, दुर्भाग्य व अपयश तीनों का विनाश होता है। इसी दान के प्रताप को मुनिश्री यों प्रकट करते हैं—

पाप रूपी तम हरण को, पुण्य रवि प्रकट करे।
निर्वाण पद उसको मिले, एक दान के परताप से॥[6]

उद्यम ही लक्ष्य प्राप्ति का साधन है। विना उद्यम या परिश्रम के किसी भी कार्य की

---

१ जैन सुबोध गुटका पृ० २५४।
२ गजल गुलचमन बहार, पृ० ३।
३ वही पृ० ३-४।
४ जैन सुबोध गुटका, पृ० ७।
५ वही, पृ० १०-११।
६ वही, पृ० २४।

सफलता संदिग्ध है। कठिन से कठिन तथा असम्भव कार्य उद्यम या पुरुषार्थ के बल पर सम्भव हो जाते हैं। उद्यम हीन जीवन नरक तुल्य है। पौराणिक उदाहरण देते हुए पुरुषार्थ की सिद्धि के प्रभाव को व्यक्त करते हुए मुनिश्री कहते हैं—

पुरुषारथ कर रामचन्द्रजी, सीता को लंका से लावें।
उद्यम हीन के मन के मनोरथ मन के बीच रह जावें॥[1]

आधुनिक शिक्षा पद्धति की त्रुटियों से भी मुनिश्री पूर्ण परिचित थे। आधुनिक शिक्षा को अपूर्ण मानते हुए आपने कहा कि इस शिक्षा के प्रभाव से हमारा जीवन पाश्चात्य कुसंस्कारों से प्रभावित हुआ है। उसमें धर्म का उचित समावेश नहीं होने से नैतिक सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। इसी शिक्षा के कारण सिनेमा, होटल, ब्रांडी आदि कुव्यसन प्रचलित हुए। वर्तमान पढ़ाई के बारे में आपकी मान्यता है—

जो वर्तमान पढ़ाई है जिसमें रुचि धर्म की नाई है
मिले वहीं धर्म का योग, लगे फिर मिथ्यात्व का रोग,
नहीं समझे लिहाज के मांई है॥[2]

मनुष्य मात्र के लिए कुछ शिक्षाओं का निर्देशन अत्यन्त प्रभावपूर्ण तरीके से करते हुए आपने कहा—

पा मौका सुकृत नहीं करता, वह जहाँ में इन्सान नहीं।
हीरा त्याग मुकर को लेवे, वह जौहरी प्रधान नहीं॥
जिसके दिल में रहम नहीं, उसके दिल में रहमान नहीं।
जिसने सत्संग नहीं करी, उसको सहूर और ज्ञान नहीं॥
जिसके वदन में नहीं नम्रता, उसको मिलता मान नहीं।
वह वैद्य है क्या दुनियां में, जिसे नब्ज की पहिचान नहीं,
वह मोक्ष कैसे जावे, जिसका साबित ईमान नहीं॥[3]

मुक्तक काव्य के अतिरिक्त मुनिश्री के चरित्र काव्यों में भी सामाजिक चेतना का स्वर बुलन्द है। जैन कथा-साहित्य में ऐसे कई चरित्र हैं जो अपने सत्य, शील, जीवदया और धर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करने में नहीं हिचकते। मुनिश्री ने ऐसे पुरुष और स्त्री चरित्रों को माध्यम बनाकर कई सुन्दर चरित्र-निर्माणकारी और संस्कारवर्धक काव्यों की रचना की है। इनमें भगवान् पार्श्वनाथ चरित्र, नेमिनाथ चरित्र, जम्बूस्वामी चरित्र, श्रीपाल चरित्र, भविष्यदत्त चरित्र, सुपार्श्वनाथ चरित्र, अर्हद्दास चरित्र, आदि मुख्य हैं। इन चरित्रों में चरित्रनायक के पूर्व भवों की साधनापरक घटनाओं का वर्णन करते हुए वर्तमान भव की संयम-आराधना का लोक गायकी शैली में ओजस्वी वर्णन किया गया है। प्रसंगानुसार समाज में व्याप्त अन्ध मान्यताओं और रूढ़ियों पर भी कुठाराघात किया है।

भगवान पार्श्वनाथ ने अपने समय में तप के नाम पर प्रचलित अज्ञान तप का सख्त विरोध

---

१ जैन सुबोध गुटका, पृ० ३५-३६।
२ वही, पृ० १२०-१२१।
३ वही, पृ० १४३।

किया था। इस सम्बन्ध में मुनिश्री ने कमठ के पंचाग्नि तप की निस्सारता का वर्णन कर दया-धर्म की प्रतिष्ठापना की—

वहाँ पर जाकर देखा कमठ को तापे पंच अगन।
धूम्रपान और अज्ञान कष्ट से, कर रहा देह दमन ॥५६८॥
इसी समय अवधि ज्ञान लगाकर, देखा पार्श्वकुमार।
नाग-नागिन का जोड़ा जलता, देखा अगन मझार ॥५६९॥
देख दयालु कुँवर कहे यों, कहो कैसा अज्ञान ?
नहीं दया दिखाई देती, इस तपस्या दरम्यान ॥५७०॥
दया रहित धर्म से मुक्ति, हरगिज कोई न पावे।
प्राणिवध से धर्म चहाय जूं, आग में बाग लगावे ॥५७१॥
सूर्यास्त के बाद दिवस ज्यों, सर्प मुख अमृत चावे।
अजीर्ण से आरोग्य और, विष से जीवन बढ़ावे ॥५७२॥
है प्रधान दया विश्व में, देखो इस प्रकार।
बिन स्वामी के सेना, जीवन बिन काया है निःसार ॥५७३॥

'जम्बू चरित्र' में जीवन की क्षण-भंगुरता का बोध देकर भोग से योग और राग से विराग की ओर बढ़ने का मर्मस्पर्शी प्रसंग वर्णित है। नव विवाहित आठ वधुओं का परित्याग कर जम्बू संयम के पथ पर अग्रसर होते हैं। प्रभव चोर को उद्‌बोधन देकर जम्बूकुमार उसके हृदय को परिवर्तित करते हैं। उद्‌बोधन का यह वैराग्यपरक रूपक देखिए—

मनुष्य जन्म के वृक्ष को, दो हाथी काल हिलावे रे।
दिवस रैन का चूहा उमर, काट गिरावे रे ॥१॥
भवसागर को मोटो कूप है, कषाय चार रहावे रे।
बैठा मुंडो फाडने, थने निगलवो चावे रे ॥२॥
कुटुम्ब मक्षिका करे ला ला ला, चटका तन लगावे रे।
काम शहद की बूंद चाट तू, क्यों ललचावे रे ॥३॥
गुरु विद्याधर धर्म जहाज ले, करुणा करी बुलावे रे।
माने केण तो शिवपुर पाटन, थने पहुँचावे रे ॥४॥
अल्प सुखने दुख अनन्ते, गिरी राई न्याय लगावे रे।
महा अनरथ की खान भोग में, क्यों ललचावे रे ॥५॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुनिश्री की सामाजिक चेतना वर्ग-संघर्ष को उभारने वाली न होकर आध्यात्मिक चेतना की पूरक, जीवन शुद्धि की प्रेरक और विश्वमैत्री भाव की संपोषक है। मुनिश्री के काव्य में विद्रोह है, पर वह पारस्परिक आदर्शों के प्रति न होकर, विषयविकारग्रस्त जड़-परम्पराओं और संस्कारों के प्रति है। मुनिश्री का काव्य जड़ता के प्रति चैतन्य का विद्रोह है, विकृत के प्रति संस्कृति का मंगल उद्‌घोष है और है खोई हुई दिशाओं में मानवता के परित्राण के लिए मार्गदर्शक आलोक-स्तम्भ। ☆

पता—श्री संजीव भानावत
सी० २३५-ए० तिलक नगर, जयपुर-४

मानव-धर्म के व्याख्याता—
श्री जैन दिवाकरजी महाराज

✯ डॉ० ए० बी० शिवाजी एम० ए०, पी-एच० डी०

श्री जैन दिवाकर साहित्य का अध्ययन करने के बाद ऐसा अनुभव होता है कि जैन दिवाकरजी महाराज इस वसुन्धरा के कण-कण में व्याप्त थे। वे स्वयं मानवता के अंग बन गये थे और अहिंसा ही उनके लिए वह साधन तत्व था जिसके आधार पर वे जैन संतों की कोटि में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना पाये। "वसुन्धरा मेरा कुटुम्ब, मानवता मेरी साधना और अहिंसा मेरा मिशन" की उद्घोषणा करने वाले श्री जैन दिवाकरजी महाराज मानव धर्म के व्याख्याता होने को सिद्ध करते हैं।

मानव धर्म के पालन में जो सबसे अधिक महत्व की बात है वह यह कि आत्मा की शुद्धता। आत्मा की शुद्धता ही मानव-धर्म का प्रथम स्तर है। वे लिखते हैं—"संसार में जितने पन्थ और धर्म हैं, सब आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए ही हैं। आत्मा को उज्ज्वल बनाये बिना कल्याण नहीं हो सकता। आप चाहें स्थानक में जाइए, चाहे मन्दिर में जाइए, गंगा में स्नान कीजिए या जमुना में डुबकी लगाइए, मस्जिद में जाकर नमाज पढ़िए या गिरजाघर में प्रार्थना कीजिए, जब तक आत्मा पवित्र नहीं होगी आपका निस्तार नहीं।"[1] अर्थात् मानव धर्म की व्याख्या वही व्यक्ति कर सकता है और समझ सकता है जिसकी आत्मा शुद्ध हो चुकी हो। मानव धर्म का पालन भी ऐसा ही व्यक्ति कर सकता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने मानव धर्म को व्यक्तित्व ही में नहीं उतारा किन्तु कार्यों में परिणित भी किया।

वर्तमान का युग विज्ञापन युग है। प्रत्येक प्राणी छोटे-से-छोटे कार्य का विज्ञापन करवाना चाहता है, किन्तु श्री जैन दिवाकरजी महाराज मानव धर्म के व्याख्याता होने के कारण इसके विरुद्ध थे। वे कहा करते थे, "जिसने निन्दा और प्रशंसा को जीत लिया है, जो **'समो निन्दा पसंसासु'** अर्थात् निन्दा और प्रशंसा में समभाव धारण करता है, जो निन्दा सुनकर विषाद का और प्रशंसा सुनकर हर्ष का अनुभव नहीं करता, वही सच्चा सन्त या महात्मा है।"[2] मानव धर्म के कार्यों में निन्दा और प्रशंसा को समभाव से देखना आवश्यक है और श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने इस तत्व को भी बहुत अच्छे ढंग से समझा और आने वाली पीढ़ी को प्रेरणा दी। उनका मत था कि "निन्दा मनुष्य को आत्म-निरीक्षण की ओर प्रवृत्त करती है और आत्म-निरीक्षण से दोषों का परित्याग करने की ओर झुकाव होता है।"[3] निन्दा और प्रशंसा जीवनपर्यन्त मनुष्य के साथ-साथ चलते हैं, किन्तु इन दोनों तत्वों से अनासक्ति रखना वास्तव में मानव धर्म है, मनुष्य का कर्त्तव्य है।

आत्मा की उज्ज्वलता और निन्दा और प्रशंसा के प्रति अनासक्ति, इन दोनों ने श्री जैन दिवाकरजी महाराज को एक ऐसा हृदय दिया था जो परोपकार की भावना से ओत-प्रोत था। वे परोपकार को मानव धर्म मानते थे। धर्म और परोपकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे कभी

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग ११, पृ० २३
२ वही, भाग १, पृ० १४५
३ वही,

भी पृथक् नहीं किये जा सकते। उनका कहना था कि "परोपकार करने के अनेक तरीके हैं। परन्तु सर्वश्रेष्ठ तरीका यह है कि आप दूसरे को धर्म के मार्ग पर लगा दीजिए। धर्म मार्ग में लगा देने से उसका परम कल्याण होगा और इससे आपको भी बड़ा लाभ होगा।"[1] उनके यह शब्द सुनने में भले ही साधारण लगे किन्तु भाव इतने गम्भीर हैं कि हृदय में गहरे तक में पैठ जाने की इनमें सामर्थ्य है। मनुष्य की मानवता की पहिचान उनके निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त की जा सकती है—"छोटों की सेवा करने में, सहायता करने में और उनके दुखों को दूर करने में ही बड़ों का बड़प्पन है।"[2] श्री दिवाकरजी महाराज का साहित्य परोपकारिता के कार्यों से भरा हुआ है। इन्हीं कार्यों को देख अशोक मुनिजी ने लिखा कि "सन्त अपने लिए नहीं विश्व के लिए जीता है, वह विश्व कल्याण के लिए ही प्राणोत्सर्ग करता है।"[3] वास्तव में जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज परोपकारिता के लिए जन्मे, जिएं और आदर्श रख इस संसार से अनन्त में विलीन हो गये। मानव धर्म को पालन करने का श्री चौथमलजी महाराज के अतिरिक्त दूसरे का मिलना दूभर नहीं तो कठिन अवश्य है।

मानव धर्म में विश्वास करने के कारण वे एकता के पक्षधर थे, यद्यपि उनकी एकता की भावना जैन समाज तक ही सीमित थी। वे पहिले अपने ही समाज में यह कार्य करना चाहते थे किन्तु उनकी दिव्य दृष्टि इससे परे भी थीं। एकता के लिए उन्होंने विनय का मन्त्र दिया जो कि विद्या से कहीं ऊँचा है। वे कहते थे 'हित की बुद्धि से किया गया अनुशासन ही लाभप्रद होता है।'[5]

मानव धर्म में प्रवर्तक होने के पहिले अपने आप को जानना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। ग्रीक दर्शन में सुकरात ने 'अपने को जानो' पर बल दिया है। श्री चौथमलजी महाराज के उपदेशों में भी यही है। उन्होंने कहा था—"बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयों के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि आपने आन्तरिक-जीवन के सम्बन्ध में वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया तले अँधेरा' की कहावत चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरों को देखती है, अपने आप को नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यों पर बहस कर सकते हैं, **मगर अपने को नहीं जानते।** वे व्यक्ति में समष्टि को देखना चाहते थे।" आखिर समाज हो या देश, सबका मूल तो व्यक्ति ही है और जिस प्रणालिका से व्यक्ति का उत्कर्ष होता है, उससे समूह का भी उत्कर्ष क्यों न होगा?"[4] यह वाक्य बताता है कि श्री चौथमलजी महाराज व्यक्ति की आन्तरिकता को कितना महत्त्व देते थे जिसके आधार पर ही मानव धर्म की नींव विश्व के झंझावत को झेल सकती है।

"सारी धरती मेरा परिवार है" की उद्घोषणा उनके रोम-रोम में व्याप्त थी। वे केवल जैन समाज के ही नहीं थे, वे विश्व के प्रत्येक मानव के कल्याणार्थ जन्मे थे। मे मानवतावादी सिद्धान्तों के प्रचारक थे, सुगनमल भण्डारी, इन्दौर का कहना उचित ही है कि "मानव सेवा के पथ पर समर्पित व्यक्तित्व" उनका था। वे 'पराई-पीर' को जानते थे, व्यथा की वर्णमाला से वे परिचित

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग ७, पृ० २३८
२ वही, पृ० १४
३ दिवाकर देशना—श्री अशोक मुनि—परिचय किरण
४ तीर्थंकर वर्ष ७ अंक ७-८ पृष्ठ २५
५ वही, पृष्ठ ३८

थे, प्राणिमात्र की मंगलकामना उनका श्वासोच्छ्वास थी। बैठते-उठते, सोते-जागते उनके हृदय में एक ही बात रहती थी कि कोई दुःखी न हो, कोई कष्ट में न हो, सब निरापद हो, सब प्रसन्न हो, सबका कल्याण हो। वे असहायों के आश्रय थे, यह शब्द उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के पाठक को सहज ही श्री चौथमलजी महाराज की अन्तर्दृष्टि की गहराई में ले जाते हैं। यही कारण था कि उन्होंने अपनी साधना के प्रभाव के कारण कई मनुष्यों के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दुःखों को दूर किया। इसका ज्ञान सहज ही श्री केवल मुनि जी की पुस्तक 'एक क्रान्तदर्शी युग पुरुष सन्त-जैन दिवाकर' से पाठक को हो जाता है।

अहिंसा उनका मिशन था जो मानव-धर्म का एक अंग है। जीवों की रक्षा का पाठ वे अन्तिम समय तक मनुष्य को सिखाते रहे और मानव-धर्म की नये रूप में व्याख्या प्रस्तुत करते रहे।

मानव-धर्म की व्याख्या करने वाले श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रति श्रद्धा-सुमन चढ़ाना तभी श्रेयस्कर होगा। यदि हम मानवधर्म के अंगों को आत्म-सात कर विश्व के कल्याण के लिए कार्य करें और भौतिक युग को पुनः आध्यात्मिक युग में बदलने के लिए तत्पर हो जावें। ✡

परिचय एवं पता
डॉ० ए० बी० शिवाजी
प्राध्यापक—दर्शन विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
मोहन निवास—विश्व विद्यालय मार्ग, उज्जैन।

शील की महिमा

(तर्ज—या हशीना बस मदीना, करबला में तू न जा)

तारीफ फैले मुल्क में, एक शील के परताप से।
सुरेन्द्र नमें कर जोड़ के, एक शील के परताप से ॥टेर॥

शुद्ध गंगाजल जैसा, चिन्तामणि सा रत्न है।
लो स्वर्ग मुक्ति भी मिले, एक शील के परताप से ॥१॥

आग का पानी बने, हो सर्प माला फूल की।
जहर का अमृत बने, एक शील के परताप से ॥२॥

विपिन में बस्ती बने, हो सिंह मृग समान जी।
दुश्मन भी किंकर बने, एक शील के परताप से ॥३॥

चन्दनबाला कलावती, द्रोपदी सीता सती।
सुखी हुई मेनासती, एक शील के परताप से ॥४॥

गुरु के प्रसाद से, करे चौथमल ऐसा कथन।
सुर संपति उसको मिले, एक शील के परताप से ॥५॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

गुरु आत्मा के साथी

इन्दौर चातुर्मास में एक स्वर्णकार नियमित रूप से गुरुदेव का व्याख्यान सुनता था। बहुत प्रेमी हो गया। एक दिन बोला—महाराज साहब ! मुझ गरीब के घर भी गोचरी (भिक्षार्थ) चलो !

गुरुदेव ठहरे समतायोगी। स्वर्णकार की प्रार्थना पर उसके घर पधारे। बादाम का हलुआ बना हुआ रखा था। गुरुदेव ने उसकी परिस्थिति देखी। गरीबी और अभाव की स्थिति में बादाम का हलुआ ! समझ गये इसने भक्ति-वश हमारे लिए ही बनाया होगा ? पूछा—

आज कोई महमान आ रहे हैं ?

नहीं, महाराज !

आज कोई त्योहार है····?

नहीं ! महाराज !

तो फिर बादाम का हलुवा किसलिए बनाया है ?

स्वर्णकार बन्धु ने सकुचाते हुए उत्तर दिया—गुरु महाराज ! आप जैसे महापुरुष पधारे हैं ? यह तो आपकी सेवा····।

पास ही ज्वार की रोटी रखी थी। गुरुदेव ने पूछा—यह रोटी किसके लिए है ?

हमारे लिए है बापजी !

तो आधी रोटी इसमें से हमें दे दो।

आप हमारे गुरु महाराज है आपको ज्वार की रोटी कैसे दूं ? आप तो हलवा लीजिए—स्वर्णकार ने विनय के साथ कहा।

नहीं ! हलुवा हमारे काम का नहीं ! रोटी हमारे काम की है ? जो चीज तुम्हारे अपने लिए है गुरु को उसी में से देना चाहिए ! गुरु महमान नहीं, आत्मा के साथी है····! स्वर्णकार की आँखों से आनन्द के आँसू टपक पड़ा। भक्ति-विह्वल हृदय से आधी रोटी गुरुदेव को देकर वह आनन्द सागर में डूब गया !

—केवलमुनि
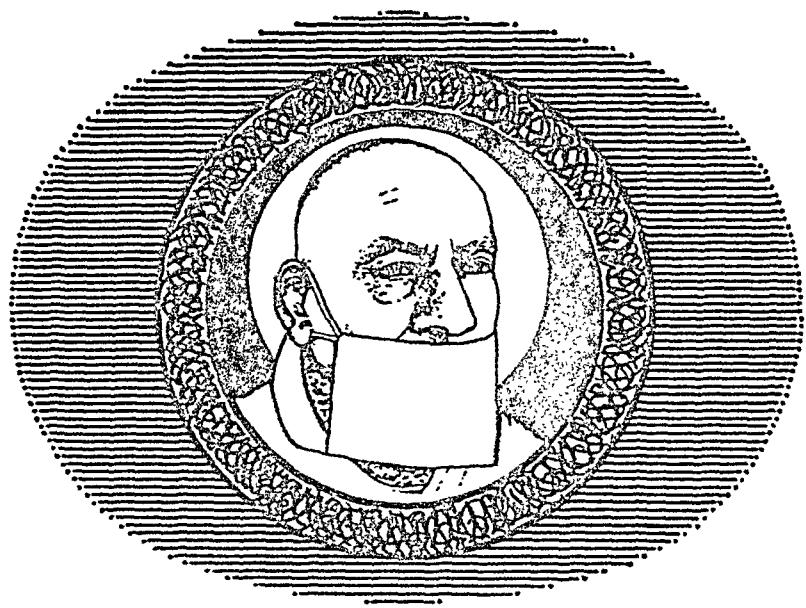
हृदयस्पर्शी और ओजस्वी
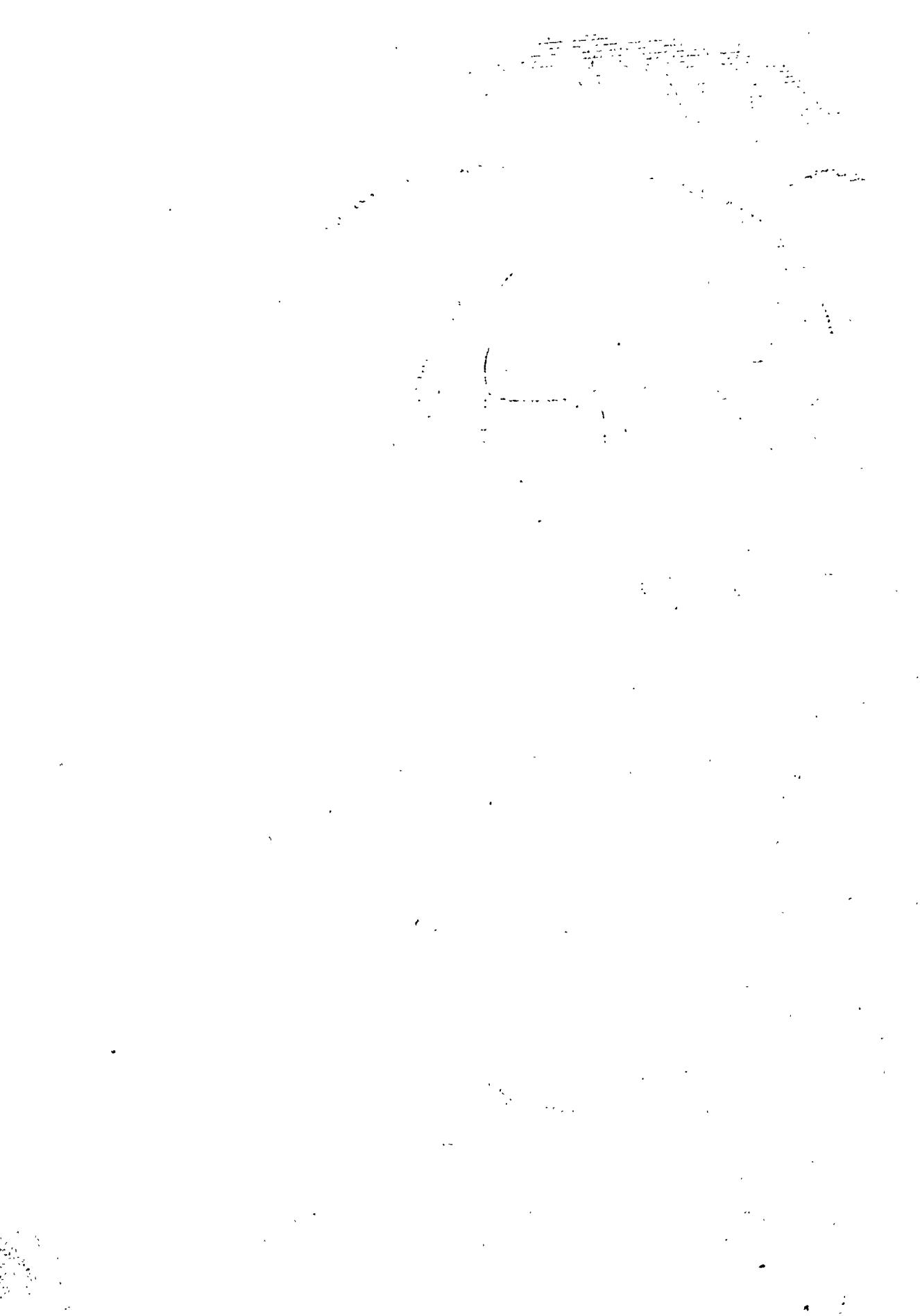
प्रवचन कला

एक झलक

हृदय-स्पर्शी और ओजस्वी प्रवचन कला : एक झलक

श्री चौथमलजी महाराज की प्रवचन-कला

✯ डा० नरेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी एच० डी०
(हिन्दी प्राध्यापक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का व्यक्तित्व बहु आयामी और बहुमुखी है। वे आत्म-साधना के पथ पर बढ़ने वाले आध्यात्मिक सन्त होने के साथ-साथ जीवन और समाज में व्याप्त अशुद्धि व विकृति को दूर कर लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाले क्रान्तिदाता युग-पुरुष भी हैं। उनके व्यक्तित्व में एक ओर कबीर की स्पष्टवादिता है तो दूसरी ओर भक्त कवि सूरदास की माधुरी। एक ओर महाकवि तुलसीदास की समन्वयवादी दृष्टि है तो दूसरी ओर सूफी कवि जायसी की प्रेमानुभूति। वे एक साथ कोमल होकर भी कठोर हैं और सरल होकर भी प्राज्ञ हैं। अन्तरंग और बहिरंग में व्याप्त अन्धकार को नष्ट करने वाला यह दिवाकर सचमुच जीवंत कलाकार है। गद्य और पद्य में अभिव्यक्त अपनी जादू-भरी वाणी द्वारा इस साहित्य साधक कलाकार ने न जाने कितने अनगढ़ पत्थरों में प्राण प्रतिष्ठा की है, न जाने कितने दिशाहारों को लक्ष्य संधान किया है और न जाने कितने भयग्रस्तों को निर्भय और निर्भ्रान्त बनाया है।

धार्मिकता और दार्शनिकता की भित्ति पर निर्मित इस महान् कलाकार का साहित्य बोझिल और शुष्क नहीं है। वह अनुभूति की तरलता से सिक्त और मानस की गहराई से प्रशान्त है। उसमें कवि हृदय की सरसता और प्रवचनकार की प्रभविष्णुता युगपद देखी जा सकती है। काव्य-रचना में आपको जितनी सफलता मिली है उतनी ही प्रवचन-कला में भी। निबन्ध के समानान्तर ही प्रवाहमान विधा है—प्रवचन। निबन्ध और प्रवचन का मूल अन्तर इसकी रचना प्रक्रिया में है। निबन्ध सामान्यतः लेखक स्वयं लिखता है या बोलकर दूसरे से लिखवाता है, पर प्रवचन एक प्रकार का आध्यात्मिक भाषण है, जो श्रोतामंडली में दिया जाता है। यह सामान्य व्यक्ति द्वारा दिया गया सामान्य भाषण नहीं है। किसी ज्ञानी, साधक एवं अन्तर्मुखी, चिन्तनशील व्यक्ति की वाणी ही प्रवचन कहलाती है। इसमें एक अद्भुत बल, विशिष्ट प्रेरणा और आन्तरिक साधना का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर उसे आन्दोलित विलोड़ित करने की क्षमता उसमें निहित होती है। सन्त आध्यात्मिक-पथ पर बढ़ने वाली जागरूक आत्माएँ हैं। उनकी अनुभूत वाणी प्रवचन की सच्ची अधिकारिणी है। कहना न होगा कि जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज इस प्रवचन साहित्य के सिरमौर कलाकार हैं।

जैन धर्म लोकधर्म है। वह लोकभूमि पर प्रतिष्ठित है। आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण की भावना जन-जन में भरने के उद्देश्य से प्रतिदिन प्रवचन करना जैन संत का आवश्यक कर्तव्य है। चातुर्मास काल में तो प्रतिदिन नियमित रूप से व्याख्यान-प्रवचन होते ही हैं, उसके बाद भी शेषकाल में ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भी व्याख्यान देने का क्रम जारी रहता है। भारत में

सैकड़ों व्याख्यानी साधु हैं जिनके व्याख्यानों को यदि लिपिबद्ध किया जाय तो प्रतिवर्ष विपु परिमाण में प्रवचन साहित्य सामने आ सकता है। प्रसिद्ध वक्ता के रूप में विश्रुत श्री जैन दिवाक जी महाराज उन प्रभावकारी व्याख्यानी संतों में हैं जिनकी वाणी आज भी जन-जन की हृदय-वीण को झंकृत किये हुए है। सैकड़ों ही नहीं हजारों की संख्या में उन्होंने प्रवचन दिये हैं। पर अद्या वधि उनका जो प्रवचन साहित्य प्रकाश में आया है, वह 'दिवाकर दिव्य ज्योति' नाम से २१ भाग में संकलित—सम्पादित है।

संक्षेप में आपके प्रवचन-साहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) आपका अध्ययन विस्तृत, अनुभूति गहन और व्यापक लोक-सम्पर्क होने से आपके प्रवचनों में लोक, शास्त्र व परम्परा का अद्भुत समन्वय मिलता है। उनमें एक ओर सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र, गुणस्थान, सम्यक्त्व, कर्म, तप, पाप-पुण्य जैसे विषयों पर गूढ़ दार्शनिक विवेचन मिलता है तो दूसरी ओर जीवन में व्याप्त कुसंस्कारों और समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कटु प्रहार भी किया गया है। दार्शनिक विवेचन में मुनिश्री वर्ण्यविषय के भेद-प्रभेदों के उल्लेख के साथ उसकी तलस्पर्शी विवेचना करते हुए जीवन-व्यवहार और युगीन समस्याओं के साथ उसका प्रभावकारी ताल-मेल बैठाते हैं। सार्वजनिक सत्य के साथ युगीन सत्य का सम-सामयिक संदर्भ जुड़ने से विवेचन में विशेष मार्मिकता और जीवंतता आ जाती है।

(२) व्यापक दृष्टिकोण, उदार चित्तवृति और व्यक्तित्व की निर्मलता के कारण आपके प्रवचनों में सभी धर्मों और धर्म-ग्रन्थों का सार-तत्त्व समाहित रहता है। कहीं आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, ठाणांग, भगवती, प्रश्न-व्याकरण और उपासकदशांगसूत्र की गाथाएँ प्रयुक्त हैं तो कहीं कुरान, बाईबिल, पंचतंत्र, हितोपदेश, उपनिषद्, पुराण, रामायण और महाभारत की कथाएँ व्यवहृत हैं तो कहीं सेठ, ब्राह्मण, राजा, किसान, मजदूर, लकड़हारा, धोबी, मोची, तेली, माली आदि से सम्बद्ध लोक-कथाओं, दृष्टान्तों और प्रसंगों का समावेश है। मुनिश्री किसी शास्त्रीय सैद्धान्तिक विषय को बड़ी गहराई के साथ उठाकर, विभिन्न धर्मों में उसके महत्व का निरूपण कर, किसी प्रसिद्ध कथानक तथा छोटे-मोटे विविध जीवन-प्रसंगों और लोक दृष्टान्तों के माध्यम से वर्ण्यविषय को इस प्रकार आगे बढ़ाते हैं कि मूल आगमिक भाव स्पष्ट होता हुआ, हमारे वर्तमान जीवन की समस्याओं एवं उलझनों का भी समाधान देता चलता है।

(३) आप प्रभावशाली वक्ता होने के साथ-साथ सफल कवि और सरस गायक भी थे। संस्कृत, प्राकृत, अरबी, फारसी, उर्दू, राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओं के आप विद्वान् थे। इतनी विद्वत्ता होते हुए भी आपके प्रवचनों में भाषागत पांडित्य का प्रदर्शन न होकर तद्भव शब्दावली का ही विशेष प्रयोग होता था। आपके प्रवचन आलंकारिक बनाव शृंगार से परे अनुभूति की गहराई, अन्तःस्पर्शी मार्मिकता, ज्ञात-अज्ञात कवियों की पदावली, लोकधुनों, विविध राग-रागिनियों, संस्कृत-श्लोकों, प्राकृत-गाथाओं, हिन्दी-दोहों, उर्दू-गजलों और मार्मिक सूक्तियों से युक्त हैं। स्वयं कवि होने के कारण आप अपने प्रवचनों में अधिकांशतः स्व-रचित कविताओं का ही उपयोग करते थे। बचपन में लोक-धर्मी नाट्य परम्परा-तुर्रा-कलंगी सुनने के कारण आपकी गायकी में विशेष आकर्षण रहता था। लोकनाट्य शैली का आपकी काव्य-रचना पर प्रभाव होने से उसमें स्वरों की उच्चता और बन्ध की बुलन्दगी का सहज समावेश हो गया है।

(४) जीवन शुद्धि संस्कारशीलता व सामाजिक परिष्कार का स्वर आपके प्रवचनों में सदैव

बुलन्द रहा है। धर्म जीवन-क्रान्ति और समाज-सुधार का संवाहक होता है। पर जब उसका तेज मन्द पड़ जाता है तब वह रूढ़ि बन जाता है। मुनिश्री ने देखा की धार्मिक लोग भी सामाजिक कुप्रथाओं के शिकार हो रहे हैं और सामाजिक जिम्मेदारी के नाम पर वे कुप्रथाओं का भार ढो रहे हैं। इस स्थिति में एक क्रान्तद्रष्टा धार्मिक महापुरुष कैसे चुप रह सकता है! उन्होंने वृद्ध विवाह, पर्दा-प्रथा, फैशनपरस्ती, सास-बहू के झगड़े आदि पर कटु प्रहार किया और इनके दुष्परिणामों की ओर जन-साधारण का ध्यान आकृष्ट किया। विषय-लोलुप वृद्धों को सावधान करते हुए आपने कहा—"हे वृद्ध! तेरे जीवन का मध्याह्न बीत चुका है। तेरी जिन्दगी संध्या की वेला में आ उपस्थित हुई है। संध्या अधिक समय तक नहीं टिकती। अतएव तेरे जीवन की संध्या भी शीघ्र ही अन्धकारमयी रजनी के रूप में परिणत होने को है। प्रकृति ने तेरा एक बन्धन तोड़ दिया। तू इसे अपना अहोभाग्य समझ! पत्नी के वियोग को अपने लिए चेतावनी समझ। सावचेत होजा। विषय-वासना के विषैले अंकुरों को अन्तःकरण की भूमिका से उखाड़ कर फेंक दे।

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १२, पृष्ठ १०७

महिलाओं में प्रचलित (विशेषतः मारवाड़ी महिलाओं में) फैशनपरस्ती और पर्दाप्रथा की निस्सारता पर चोट करते हुए मुनिश्री ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा—"एक ओर हाथ भर का लम्बा घूंघट और दूसरी ओर यह बारीक वस्त्र देखकर विवेकी पुरुषों को खेद और आश्चर्य का पार नहीं रहता। आश्चर्य तो इस बात का है कि पुरुष अपने परिवार की महिलाओं को कैसे यह लज्जाहीन वस्त्र खरीद कर देते हैं, और खेद इस बात का है कि कुलीन बहिनें फैशन के मोह में फँसकर किस प्रकार निर्लज्ज बन जाती हैं।　　—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १३, पृष्ठ ३८

सामाजिक कुरीतियों के साथ-साथ धार्मिक क्रियाएँ भी विकृत होने लगीं। सामायिक जैन साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रत्येक श्रावक-श्राविका के लिए यह आवश्यक दैनिक कर्तव्य है। इसके द्वारा समभाव प्राप्ति और सांसारिक माया-मोह से छूटने का अभ्यास किया जाता है, पर जब रस्मी तौर पर ही इसका पालन होता है तो वह निस्सार बन जाती है। इस प्रसंग में मुनिश्री का यह हास्य-व्यंग्य मिश्रित उदाहरण देखिए—

एक स्त्री सामायिक करने बैठी और सोचने लगी—'कहीं कुत्ता घर में न घुस आए। पाड़ा गुड़ की भेली न खा जाय।' वह ऐसा सोच ही रही थी कि उसका पति आ गया और बोला दुकान की चाबी और पन्सेरी चाहिए। स्त्री ने सोचा—'सामायिक में इन चीजों को बतलाने से दोष होता है।' अतएव उसने चौबीसी गाना शुरू किया और उसी में सभी कार्यों को हल कर दिया—

पहले वांदू श्री अरिहन्त, कूंची तो ऊँची पडन्त।
पाड़ो तो भेली चरन्त, पन्सेरी घट्टी अडन्त, हो जिनजी॥

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १६, पृष्ठ ६२

"कहिए कैसी बढ़िया सामायिक है?"

मुनिश्री ने धर्म के नाम पर दी जाने वाली पशुबलि की निस्सारता और भक्तों की अज्ञानता पर भी कटु प्रहार किया। राजस्थान और मध्य प्रदेश में राजाओं का शासन होने से राजमन्दिरों तक में पशुबलि होती थी। फिर प्रजा का तो कहना ही क्या? मनोकामना पूरी करने के लिए देव-मन्दिरों को रक्तरंजित कर दिया जाता था। इस घिनौनी प्रथा को देखकर मुनिश्री का कलेजा काँप उठता था। वे दयाभाव से पसीज उठते थे। उन्होंने आत्मा के सम्पूर्ण बल से यह निश्चय किया कि वे इस बलि-प्रथा के खिलाफ अभियान छेड़ें और सचमुच उन्हें आशातीत सफलता मिली।
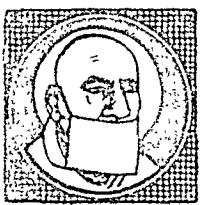
मेवाड़, मारवाड़, हाड़ौती, सिरोही, रतलाम, मन्दसौर आदि राज्यों के राजा-महाराजाओं और आदिवासी क्षेत्र की कई जातियों ने मुनिश्री के धर्म उपदेश से प्रभावित होकर पशुबलि निषेध का व्रत ग्रहण किया। क्रूरता पर करुणा की और हिंसा पर अहिंसा की यह सबसे बड़ी विजय थी। मुनिश्री ने दयाधर्म का सही स्वरूप समझाते हुए कहा—

"माताजी के स्थान पर बकरों और भैंसों का वध किया जाता है। लोग अज्ञानवश होकर समझते हैं कि ऐसा करके वे माताजी को प्रसन्न कर रहे हैं और उनको प्रसन्न करेंगे तो हमें भी प्रसन्नता प्राप्त होगी। सोचना मूर्खता है। लोग माताजी का स्वरूप भूल गये हैं और उनको प्रसन्न करने का तरीका भी भूल गये हैं। इसी कारण वे नृशंस और अनर्थ तरीके आज भी काम में लाते हैं। सर्व मनोरथों को पूरा करने वाली और सब सुख देने वाली उन माता का नाम है दया माता। दया माता की चार भुजाएँ हैं। दोनों तरफ दो-दो हाथ हैं। पहला दान का, दूसरा शील का, तीसरा तपस्या का और चौथा भावना का। जो आदमी दान नहीं देता, समझ लो कि उसने दया माता का पहला हाथ तोड़ दिया है। जो ब्रह्मचर्य नहीं पालता तो उसने दूसरा हाथ तोड़ दिया है। तपस्या नहीं की, तो तीसरा हाथ खंडित कर दिया है और जो भावना नहीं भाता उसने चौथा हाथ काट डाला है। ऐसा जीव मरकर वनस्पतिकाय आदि में जन्म लेगा जहाँ उसे हाथ-पैर नहीं मिलेंगे।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग ७, पृ० ७५ व ८२

मुनिश्री ने देखा कि आत्मशुद्धि, जीवन शुद्धि एवं सामाजिक प्रगति में बाधक है—नशीली वस्तुओं और सप्त कुव्यसनों का सेवन। ये व्यसन और भ्रान्त धारणा के कारण उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक में व्याप्त हैं। उच्च वर्ग में ये विलासिता के तथा निम्न वर्ग में विवशता के प्रतीक हैं। धूम्रपान, शिकार, चोरी आदि कुव्यसनों के दुष्परिणामों का आप अपने प्रवचनों में सदैव जिक्र करते थे। छोटी-बड़ी मार्मिक कथाओं और स्व-रचित कविताओं के द्वारा आप ऐसा समाँ बाँधते थे कि श्रोता के जीवन में मोड़ आए बिना नहीं रहता। बिहारी के एक दोहे ने जयपुर महाराजा जयसिंह को रंग महल से बाहर निकाल कर कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर किया था, पर मुनिश्री के प्रवचनों ने हजारों की संख्या में राजाओं, जागीरदारों, रईसों और निम्न वर्ग के लोगों को व्यसन मुक्त कर, शुद्ध सात्त्विक जीवन जीने की प्रेरणा दी।

शिकार करने वाले लोगों को प्रेम पूर्वक समझाते हुए आप कहा करते थे—'शिकार करना अत्यन्त निर्दयता पूर्ण और अमानवीय कार्य है। मनुष्य भी प्राणी है और पशु-पक्षी भी प्राणी हैं। मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है, इस कारण उसे सब प्राणियों का बड़ा भाई कहा जा सकता है। पशु-पक्षी, मनुष्य के छोटे भाई हैं। क्या बड़े भाई का यह कर्तव्य है कि वह अपने कमजोर छोटे भाई के गले पर छुरा चलावे? नहीं, बड़े भाई का काम रक्षण करना है, भक्षण करना नहीं।'

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १२, पृ० २६४

स्वादलोलुप व्यक्ति ने पशु-पक्षियों के प्रति ही क्रूर भाव पैदा नहीं किया वरन् उसके अहं भाव ने मनुष्य के प्रति भी घृणा पैदा करदी है। छुआछूत का रोग समाज में ऐसा फैला कि सारी प्रगति ही अवरुद्ध हो गई। अछूतों से घृणा करने वाले लोगों की मनोवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए मुनिश्री ने कहा—'जूतों को बगल में दबा लेंगे, तीसरी श्रेणी के रेल के मुसाफिरखाने में जूतों को सिरहाने रखकर सोएँगे, मगर चमार से घृणा करेंगे।'

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग ११, पृ० १०८

जाति-मद की भांति धन का मद भी बड़ा घातक है। यह मद व्यक्ति को अन्धा और क्रूर बना देता है, जिससे गरीबों का हक छीनने व कन्या को बेचने में भी संकोच नहीं होता। ऐसे व्यक्तियों की खबर लेते हुए मुनिश्री कहते हैं—'अरे ओ बेटी के धन को हड़प जाने वालो ! अरे ओ धर्म के पैसों को डकार जाने वालो ! क्या तुम चोर नहीं हो ? उस बेचारे गरीब को चोर बनाते तुम्हें लाज नहीं आती ? उसकी गरीबी ही क्या इतना बड़ा दोष है कि तुम उसे चोर कह देते हो ? जरा विचार तो करो कि तुम्हारी तिजोरियाँ किस प्रकार भरी हैं ? क्या तुम्हारी तिजोरियाँ धन से भरने के साथ ही साथ तुम्हारी आत्मा पाप के कीचड़ से नहीं भरी है ? विचार के आइने में अपना मुंह तो देखो।

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग ११, पृ० १२६

जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए आन्तरिक शुद्धि पर बल दिया जाना अनिवार्य है। जब तक भीतर के राग-द्वेष कम नहीं होते, जीवन में पवित्रता का भाव झलकता नहीं। इसके लिए आन्तरिक मनोविकारों पर विजय पाना आवश्यक है। मुनिश्री के शब्दों में बाह्य युद्ध के लिए जैसे शस्त्रों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आन्तरिक युद्ध के लिए भी। मगर वे शस्त्र धातु-निर्मित नहीं होते। उनका निर्माण अन्तःकरण के कारखाने में होता है और वे भावनाओं से बने होते हैं। वे हथियार क्या हैं ?

संयम को बांध कटारी तू, तप को तलवार ले धारी तू।
मार मार रे मोह दुश्मन को, कर एकाग्र चित्त॥

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १६, पृ० २०६-२१०

(५) अपने प्रवचन को सर्व सुलभ, बोधगम्य और रोचक बनाने के लिए मुनिश्री कहीं आध्यात्मिक अनुभूतियों की तुलना लौकिक स्थितियों से करते हैं, तो कहीं उपमा और रूपकों का प्रयोग करते हैं। जैन-दर्शन में आत्मा के उत्थान की १४ श्रेणियाँ मानी गई हैं। इनकी तुलना व्यावहारिक शिक्षण के साथ करते हुए मुनिश्री समझाते हैं—जैसे वर्तमानकालीन शिक्षा पद्धति के अनुसार पांचवीं कक्षा तक प्राथमिक शिक्षा, इसके बाद पांच वर्ष तक की अर्थात् दसवीं कक्षा तक की शिक्षा माध्यमिक शिक्षा मानी जाती है। इसके बाद चार वर्ष तक की शिक्षा प्राप्त कर दो श्रेणियाँ उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थी को स्नातक की पदवी प्राप्त होती है। इसी प्रकार तीर्थंकर भगवान ने आध्यात्मिक शक्तियों के विकास की भूमिका पर शास्त्रों में चौदह श्रेणियाँ-गुणस्थान बतलाये हैं। प्रारम्भ के पांच गुणस्थान-देशविरति नामक पांचवें गुणस्थान-पर्यन्त प्राथमिक या प्राइमरी विकास होता है। छठे गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक मध्यम श्रेणी का आत्मिक विकास होता है। यहाँ तक पहुंच जाने पर भी आत्मा स्नातक नहीं बन पाता। जब वह इण्टर और बी०ए० की तरह दो श्रेणियों को और उत्तीर्ण करता है। अर्थात् बारहवें गुणस्थान में आता है तो स्नातक बन जाता है। चौदहवें गुणस्थान में आत्मिक विकास की परिपूर्णता हो जाती है।

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग ८, पृ० ६४-६५

रूपक और दृष्टान्तों का प्रयोग करने में भी मुनिश्री बड़े दक्ष और समर्थ हैं। उनके प्रवचनों में ऐसे प्रसंग यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं जो बहुमूल्य मणियों की तरह भ्रान्त पथिकों का पथ-संधान करते हैं।
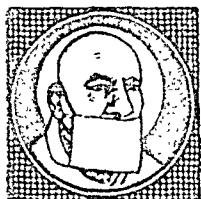
(६) मुनिश्री अपने आत्मस्पर्शी अनुभव, आध्यात्मिक चिन्तन और ज्ञानाराधन की संवेदना के धरातल से जब प्रवचन देते थे तब उनकी अमृतवाणी से बीच-बीच में सूक्ति रूपी मोती सहसा बरस पड़ते थे। इन मोतियों की भंगिमा, छवि और छटा बहुरंगी है। कहीं जीव और शिव के साक्षात्कार की अखण्ड आनन्दानुभूति है तो कहीं प्रकृति के विराट क्षेत्र की दिव्य सौन्दर्यानुभूति, कहीं समाज में फैली हुई कुरीतियों पर कटु प्रहार है तो कहीं सुषुप्त आत्मा को जागृत करने का शंखनाद है। ये सूक्तियाँ हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं और निराशा में आशा, कठिनाई में धैर्य तथा विपत्ति में स्फुरणा बनकर थके-हारे मन को तरोताजा कर अपने गन्तव्य तक पहुँचने का सम्बल प्रदान करती हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) दुर्गुणों को जरा-सा छिद्र मिलेगा और वे आपकी आत्मा को अपना घर बना लेंगे।
(भाग ८, पृ० १३)

(२) दुःखों का मूल कारण यह स्थूल शरीर नहीं है बल्कि कार्मण शरीर है।
(भाग १२, पृ० ८७)

(३) महापुरुष स्वयं आचरण करके मर्यादाओं की स्थापना करते हैं।
(भाग १२, पृ० ६७)

(४) सम्यक्दृष्टि में समभाव होता है और मिथ्यादृष्टि विषमभाव होता है।
(भाग ८, पृ० १५८)

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि ये प्रवचन आत्मानुशासन, विश्वबन्धुत्व, सेवा, सहयोग, सहअस्तित्व जैसे सांस्कृतिक मूल्यों के संवाहक होने से सच्चे अर्थों में साहित्य की अमूल्य निधि हैं और सबके प्रति हित की भावना व सबको साथ लेकर तथा सबमें ऐक्य भाव स्थापित करने में सक्षम व समर्थ हैं।

एक बात : सरल अनुभवगम्य

'क्रोध और ताकत का दबाव कोई स्थायी दबाव नहीं है। शान्ति, क्षमा और प्रेम के दबाव में ही यह शक्ति है कि दबा हुआ व्यक्ति फिर कभी सिर नहीं उठाता और न लड़ने आता है। यह ऐसी सरल और अनुभवगम्य बात है कि संसार के इतिहास से सहज ही समझी जा सकती है; फिर भी आश्चर्य है कि बुद्धिमान कहलाने वाले राजनीतिज्ञ इसे नहीं समझ पाते और पागलों की तरह शस्त्रास्त्र तैयार करके एक-दूसरे पर चढ़ बैठते हैं। अब तक के युद्धों से ये लोग जरा भी शिक्षा नहीं लेते।

—मुनि श्री चौथमल जी म०

प्रसिद्ध वक्ता श्री जैन दिवाकर जी महाराज के

वाणी के जादूगर की वाणी की दुर्लभ विशेषताओं और प्रेरणाओं का सरस मूल्यांकन

✡ प्राचार्य श्रीचन्द जैन

एम० ए० एल-एल० बी० (उज्जैन)

पूज्य जैन दिवाकरजी महाराज उन प्रवचनकारों में थे जिन्होंने अपनी सशक्त एवं ओजस्विनी वाणी में जो कुछ कहा वह गंगा की धारा के समान उदात्त, प्रशस्त एवं जन-जन कल्याणकारी था और युग-पुरुष के समान उनकी सैद्धान्तिक मान्यता युग-युगों तक जीवित रहेगी। वे एक विशाल वट-वृक्ष थे जिसकी सुखद छाया में बैठकर 'लोक' ने अपनी कथा को भुलाया एवं चिर-वाञ्छित कामना की पूर्ति की।

संक्षेप में पूज्यपाद श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचनों की कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) चिन्तन की विशालता।
(२) लोकोपयोगी भाषा या बोली का प्रयोग।
(३) पूर्वाग्रह का सर्वथा अभाव।
(४) व्यापक अहिंसा का प्रखर विवेचन।
(५) मानवता के प्रमुख उद्धारक।
(६) धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रान्ति का अमोघ घोष
(७) लोक-संस्कृति का समादर।
(८) अहिंसक जीवन शैली का अधिग्रहण।
(९) अभिशप्त मानव के प्रति विशेष लगाव।
(१०) यथावसर सुभाषितों का प्रयोग।
(११) प्रतिपादित विषय को अधिक ग्राह्य बनाने के लिए लोक-कथाओं, कहावतों एवं मुहावरों आदि का प्रचुर उपयोग।
(१२) यथार्थवाद की आधारशिला पर आदर्शवाद की प्रतिष्ठा।
(१३) व्यक्ति की अपेक्षा समाज की विशेष अनुमोदना।
(१४) 'वसुधा मेरा कुटुम्ब है।' इस सिद्धान्त का मूलतः पालन।
(१५) अन्धविश्वासों का सर्वत्र तिरस्कार।
(१६) कुरीतियों का सार्थक उन्मूलन।
(१७) संशय ग्रस्त मानव को स्पष्ट जीवन-दर्शन की उपलब्धि कराना।

(१८) संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी, मालवी आदि विविध भाषाओं का अधिकाधिक व्यवस्थित प्रयोग।

(१९) समभाव की जागृति।

(२०) लोक-जीवन से सम्बद्ध प्रतीकों, रूपकों, उपमानों, बिम्बों आदि का प्रयोग।

(२१) यथावसर छन्द, शेर, श्लोक, लोक गीत, भजन, आगम गाथाओं आदि का उपयोग।

(२२) अनोखी सूझ-बूझ सम्पन्नता।

(२३) दृढ़ विश्वास की पाषाण-रेखा।

(२४) निष्काम समर्पित व्यक्तित्व की सलोनी झलक।

(२५) मृदुता एवं नम्रता सर्वत्र देदीप्यमान।

(२६) संघर्षों से जूझने की प्रवृत्ति का निराला रूप।

(२७) जीवन के अनुभवों की ऊष्मा का संस्पर्श।

(२८) मार्मिक संवेदना।

(२९) शोषण के प्रति सबल विद्रोह।

(३०) युग को उपयोगी चुनौतियाँ।

(३१) नर को नारायण बनाने के सतत उपक्रम।

(३२) सहज साधना का प्रत्यक्ष-परोक्ष निरूपण।

(३३) मन-वचन-कर्म में एकरूपता अर्थात् कथनी-करनी में एकरूपता।

(३४) मंगलाचरण में विश्व-कल्याण की कामना।

(३५) भाग्यवाद की अपेक्षा पुरुषार्थ का पूर्ण समर्थन।

(३६) जल-कमलवत् जीवन-साधना का अनुरंजन।

(३७) धर्माचरण में निष्ठा की स्थापना।

(३८) आलोकित प्रकाश-स्तम्भ की किरणों का अंगराग।

(३९) सन्त-परम्परा की अजस्र स्रोत की निर्भीकता।

(४०) निर्भीक तथ्य निरूपण।

(४१) स्वकथ्य के समर्थन में विभिन्न मतों के प्रमाणों का उल्लेख।

(४२) समाजवादी दृष्टिकोण की सार्थकता।

(४३) कर्त्तव्य के प्रति कठोरता, प्रीति के प्रति उदारता एवं युग-बोध के प्रति सजगता।

(४४) वर्तमान के आलोक में भविष्य का निर्माण।

(४५) उपयोगी प्राचीनता के प्रति आकर्षण।

(४६) भ्रष्टाचार के उन्मूलन में निरन्तर प्रयत्नशीलता।

(४७) राष्ट्रीयता के प्रति लगाव।

(४८) सहज सिद्धान्तों की गहन पहिचान।

(४९) भारतीय संस्कृति के लिए सहज अनुराग।

(५०) समन्वयवाद की स्थापना में अद्भुत साहस का द्योतन।

(५१) वैचारिक निर्मलता एवं स्वानुभूति का अमृतत्व।

(५२) चुभन का अभाव तथा जोड़ने की अपूर्व क्षमता।

(५३) बहु आयामी व्यक्तित्व की गहराई।

(५४) अध्ययन-अध्यापन की स्पष्ट छाप।

(५५) सामूहिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान।
(५६) आत्मा की अनन्त-अतल गहराई का चित्रण।
(५७) खारेपन का अभाव लेकिन खरेपन का विकसन।
(५८) विक्षेप-विक्षोभ की गैर-मौजूदगी परन्तु आशीष का अनुरंजन।
(५९) अनेकान्त की विशद व्याख्या तथा अपचार के प्रति उपेक्षा।
(६०) पाण्डित्य-प्रदर्शन का अभाव और शब्द-जाल के प्रति विपुल अनासक्ति
(६१) लोक-परिताप से द्रवणशीलता।
(६२) स्वाध्याय की सतत प्रेरणा।
(६३) श्रम-निष्ठा का औचित्य।
(६४) अनुशासन में कोमलता एवं कठोरता का समयोचित समन्वय आदि।

पूज्य जैन दिवाकरजी महाराज के प्रेरक प्रवचनांश

यों तो पूज्य दिवाकरजी महाराज का प्रत्येक प्रवचन लोक के प्रबोधनार्थ, आत्मशोधनार्थ, जागृति की मशाल में चेतना उत्पन्न करने के लिए एवं अज्ञानांधकार के विनाशार्थ दिव्य दिवाकर की भांति है, फिर भी कुछ ऐसे विशिष्ट प्रवचन भी हैं जो अमर हैं, अनुपम हैं और साधना-क्षमता के अविनश्वर स्वर हैं। इनमें आचार की विशुद्धि है, अनुशासन की मर्यादा है, समय का सदुपयोग है, युगीन बोध के साथ स्व-पर-कल्याण की भावना ध्वनित है, और है वैराग्य-विचार-संयमशीलता। यहाँ कुछ ऐसे ही प्रवचनांश उद्धृत किये जा रहे हैं जो अनन्त काल तक दिव्य मणियों की भांति आलोकित रहेंगे।

(१)

मनुष्य जैसे आर्थिक स्थिति की समीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे अपने जीवन-व्यवहार की भी समीक्षा करनी चाहिये। प्रत्येक को सोचना चाहिए कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिये? वर्तमान में कैसा है? उसमें जो कमी है, उसे दूर कैसे किया जाए? यदि यह कमी दूर न की गयी तो क्या परिणाम होगा? इस प्रकार जीवन की सही-सही आलोचना करने से आपको अपनी बुराई-भलाई का स्पष्ट पता चलेगा। आपके जीवन का सही चित्र आपके सामने उपस्थित रहेगा। आप अपने को समझ सकेंगे।

(२)

क्रोध और ताकत का दबाव कोई स्थायी दबाव नहीं है। शान्ति, क्षमा और प्रेम के दबाव में ही यह शक्ति है कि दबा हुआ व्यक्ति फिर कभी सिर नहीं उठाता और न लड़ने आता है। यह एक ऐसी सरल और अनुभवगम्य बात है कि संसार के इतिहास से सहज ही समझी जा सकती है, फिर भी आश्चर्य है कि बुद्धिमान कहलाने वाले राजनीतिज्ञ इसे नहीं समझ पाते और पागलों की तरह शस्त्रास्त्र तैयार करके एक-दूसरे पर चढ़ बैठते हैं। अब तक के युद्धों से ये लोग जरा भी शिक्षा नहीं लेते।

(३)

बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयों के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध में वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया तले अँधेरा' की कहावत
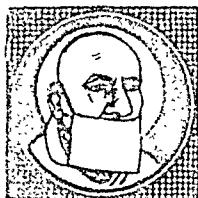
चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरों को देखती है, अपने आपको नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यों पर तो वहस कर सकते हैं, मगर अपने को नहीं जानते।

(४)

जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नहीं रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नहीं रह सकता और सूरज के साथ रात नहीं रह सकती, उसी प्रकार सत्य के साथ झूठ और झूठ के साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता। एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं? इसी प्रकार जहाँ सत्य का तिरस्कार होगा वहाँ झूठ का प्रसार होगा।

(५)

अहिंसा में सभी धर्मों का समावेश हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे हाथी के पैर में सभी के पैरों का समावेश हो जाता है।

(६)

धर्म किसी खेत या वगीचे में नहीं उपजता, न बाजार में मोल विकता है। धर्म शरीर से जिसमें मन और वचन भी गर्भित हैं—उत्पन्न होता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। उसके लिए जाति-विरादरी की कोई भावना नहीं है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल, क्षत्रिय हो या मेहतर हो, कोई किसी भी जाति का हो, कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है।

(७)

राष्ट्र के प्रति एक योग्य नागरिक के जो कर्त्तव्य हैं, उनका ध्यान करो, और पालन करो, यही राष्ट्र धर्म है। राष्ट्रधर्म का भली-भाँति पालन करने वाले आत्मधर्म के अधिकारी बनते हैं। जो व्यक्ति राष्ट्रधर्म से पतित होता है, वह आत्मिकधर्म का आचरण नहीं कर सकता।

(८)

यह अछूत कहलाने वाले लोग तुम्हारे भाई ही हैं, इनके प्रति घृणा-द्वेष मत करो।

(९)

ज्ञान का सार है विवेक की प्राप्ति और विवेक की सार्थकता इस बात में है कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव जागृत किया जाए।

(१०)

जूतों को बगल में दबा लेंगे, मुसाफिरखाने में व धर्मशाला में जूतों को सिरहाने रखकर सोयेंगे, मगर चमार से घृणा करेंगे? यह क्या है?

(११)

धन की मर्यादा नहीं करोगे तो परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। तृष्णा आग है, उसमें ज्यों-ज्यों धन का ईंधन झोंकते जाओगे, वह बढ़ती जाएगी।

(१२)

क्रोध एक प्रकार का विकार है और जहाँ चित्त में दुर्वलता होती है, सहनशीलता का अभाव होता है और समभाव नहीं होता वहीं क्रोध उत्पन्न होता है।

(१३)

जो मनुष्य अवसर से लाभ नहीं उठाता और सुविधाओं का सदुपयोग नहीं करता, उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है और फिर पश्चात्ताप करने पर भी कोई लाभ नहीं होता।

(१४)

संस्कृत भाषा में 'गुरु' शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है—'गु' का अर्थ अन्धकार है,

और 'रु' का अर्थ नाश करना है। दोनों का सम्मिलित अर्थ यह निकला कि जो अपने शिष्यों के अज्ञान का नाश करता है, वही 'गुरु' कहलता है।

(१५)

हिंसा में अशान्ति की भयानक ज्वालाएँ छिपी हैं। उससे शान्ति कैसे मिलेगी ? वास्तविक शान्ति तो अहिंसा में ही निहित है। अहिंसा की शीतल छाया में ही लाभ हो सकता है।

(१६)

मानव-जीवन की उत्तमता की कसौटी जाति नहीं है, भगवद्भजन है। जो मनुष्य परमात्मा के भजन में अपना जीवन अर्पित कर देता है, और धर्म पूर्वक ही अपना जीवन-व्यवहार चलाता है, वही उत्तम है, वही ऊँचा है, चाहे वह किसी भी जाति में उत्पन्न हुआ हो। उच्च से उच्च जाति में जन्म लेकर भी जो हीनाचारी है, पाप के आचरण में जिसका जीवन व्यतीत होता है और जिसकी अन्तरात्मा कलुपित वनी रहती है, वह मनुष्य उच्च नहीं कहला सकता।

(१७)

व्यापारी का कर्त्तव्य है, जिसे देना है, ईमानदारी से दे और जिससे लेना है उससे ईमानदारी से ही ले, लेन-देन में वेईमानी न करे।

(१८)

जव तक किसी राष्ट्र की प्रजा अपनी संस्कृति और अपने धर्म पर दृढ़ है तव तक कोई विदेशी सत्ता उस पर स्थायी रूप से शासन नहीं कर सकती।

(१९)

विवेकवान् डूबने की जगह तिर जाता है, और विवेकहीन तिरने की जगह भी डूव जाता है।

(२०)

निश्चिन्त वनने के लिए निष्परिग्रही वनना चाहिए।

(२१)

अन्याय का पैसा अव्वल तो सामने ही समाप्त हो जायगा कदाचित् रह गया तो तीसरी पीढ़ी में दिवालिया वना ही देगा। ईमानदारी का एक पैसा भी मोहर के वरावर है और वेईमानी की मोहर भी पैसे के वरावर नहीं है।

(२२)

क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है, माया से मित्रता का नाश होता है, परन्तु लोभ से सभी कुछ नष्ट हो जाता है। यह तमाम अच्छाइयों पर पानी फेर देता है।

(२३)

रात्रि में चिड़ियाँ कवूतर और कौवे आदि भी चुगने को नहीं जाते हैं तो आप तो इन्सान हैं। रात्रि में खाना विलकुल मना किया गया है। रात्रि में न खाने से वारह महीने में छह महीने तपस्या विना जोर लगाये ही हो जाती है। इससे शुभ-गति का वन्ध होता है और अशुभ गति का वन्ध टल जाता है।

(२४)

धन-सम्पत्ति को साथ ले जाने का एक ही उपाय है और वह यह कि उसका दान कर दो, उसे परोपकार में लगा दो, खैरात कर दो।

(२५)

कोई असाधारण व्यक्ति हो या साधारण आदमी हो भले ही तीर्थंकर ही क्यों न हो, यदि उसने पहले अशुभ कर्म उपार्जन किये हैं तो उन्हें भोगना ही पड़ता है। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' की बात कर्मों के आगे नहीं चल सकती। अच्छे कर्म करोगे अच्छा फल पाओगे, बुरे कर्म करोगे, बुरा फल मिलेगा। कर्म करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है, मगर फल भोगना इच्छा पर निर्भर नहीं है। शराब पीना या न पीना मनुष्य की मर्जी पर है, मगर जो पी लेगा उसका मत वाला होना या न होना उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं है। उसकी इच्छा न होने पर भी उसे मत-वाला होना पड़ेगा। इसलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि खाली हाथ मत जाना।

(२६)

तुम्हारी यह रईसी और सेठाई किसके सहारे खड़ी है? बेचारे गरीब मजदूर दिन-रात एक करके तुम्हारी तिजोरियाँ भर रहे हैं। तुम्हारी रईसी उन्हीं के बल पर और उन्हीं की मेहनत पर टिकी हुई है। कभी कृतज्ञतापूर्वक उसका स्मरण करते हो? कभी उनके दुःख में भागीदार बनते हो? अपने सुख में उन्हें हिस्सेदार बनाते हो? उनके प्रति कभी आत्मीयता का भाव आता है? अगर ऐसा नहीं होता तो समझ लो कि तुम्हारी सेठाई और रईसी लम्बे समय तक नहीं टिक सकेगी। तुम्हारी स्वार्थपरायणता ही तुम्हारी श्रीमन्तताई को स्वाहा करने का कारण बनेगी। अभी समय है—गरीबों, मजदूरों और नौकरों की सुधि लो। उनके दुःखों को दूर करने के लिए हृदय में उदारता लाओ। उनकी कमाई का उन्हें अच्छा हिस्सा दो। इससे उन्हें संतोप होगा और उनके संतोष से तुम सुखी बने रहोगे।

शैलीगत विशेषता

अन्त में पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज की शैलीगत विशेषताओं पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज गुत्थियों को और अधिक उलझाना नहीं वरन् सरल-सहज मुद्रा में सुलझाना जानते थे। दो भिन्न तटों पर खड़े व्यक्तियों के बीच उनके प्रवचन मित्रता और एकता के सेतु होते थे। वस्तुतः वे कैंची नहीं सूई थे, जिनमें चुभन थी किन्तु दो फटे दिलों को जोड़ने की अपूर्व क्षमता थी। उनके प्रवचन सरल, सरस, सुबोध, सुलझे हुए और अध्ययनपूर्ण थे। जिनमें वैचारिक निर्मलता के साथ अनुभूति का अमृत भी मिला होता था। उनकी प्रवचन शैली अपनी निराली थी। वह किसी का अनुकरण-अनुसरण नहीं थी, मौलिक थी। जब वे बोलना प्रारम्भ करते थे, तब कुछ उखड़े-उखड़े लगते, एकदम बालकों की तरह साधारण बातें सुनाते।.......किन्तु कुछ ही क्षणों बाद वे प्रवचन के बीच इस प्रकार जमते और अन्त में ऐसे असाधारण-अलौकिक हो उठते कि सारा मैदान उनके हाथ रहता। मैं उनकी प्रवचन शैली की तुलना फ्रान्स के विशिष्ट विचारक विक्टर ह्यूगो की लेखन शैली से करता हूँ.......भाषा उनकी सीधी-सादी, सरल-सुबोध

होती थी। उसमें राजस्थानी और मालवी शब्दों के साथ उर्दू का भी किंचित् पुट होता था। उच्चारण साफ था आवाज बुलन्द और मधुर थी।"[1]

स्वर्गीय निर्वाण प्राप्ति—पूज्य मुनिश्री के प्रवचन मलिन जीवन के प्रक्षालनार्थ जाह्नवी-सलिल की भांति उपादेय एवं अनुकरणीय हैं। इनका अनुशीलन सन्तप्त मानस को अमरत्व प्रदान करेगा—ऐसी मेरी अचल आस्था है।

संदर्भ ग्रन्थ—

(१) श्री केवल मुनि—एक क्रान्तदर्शी युगपुरुष संत जैन दिवाकर
(२) श्री अशोक मुनि—दिवाकर रश्मियाँ
(३) श्री रमेश मुनि—जैन दिवाकर संस्मरणों के आइने में
(४) तीर्थंकर—मुनि श्री चौथमलजी जन्म-शताब्दि अंक (वर्ष ७ अंक ७, ८, नवम्बर-दिसम्बर १९७७।

परिचय एवं पता—
जैन कथा साहित्य के विशेषज्ञ अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थों के लेखक
प्रधानाचार्य संदीपनी महाविद्यालय, उज्जैन
पता—मोहन निवास, कोठीरोड, उज्जैन

"बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयों के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध में वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया-तले अंधेरा' की कहावत चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरों को देखती है, अपने-आप को नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यों पर तो बहस कर सकते हैं, मगर अपने को नहीं जानते।

ब्यावर, ८ सितम्बर, १९४१ —मुनिश्री चौथमलजी महाराज

---

१ श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री—जैन दिवाकर, एक विलक्षण व्यक्तित्व, तीर्थंकर मुनिश्री चौथमलजी जन्म शताब्दि अंक पृष्ठ २१ एवं २२
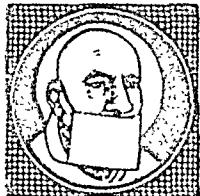
वाणी के जादूगर : श्री जैन दिवाकर जी महाराज

✡ श्री सुरेश मुनि शास्त्री
(श्री प्रतापमलजी महाराज के सुशिष्य)

एक प्रचलित संस्कृत श्लोक में कहा है—

"वक्ता दश सहस्त्रेषु"।

—हजार मनुष्यों में एक पण्डित और दस हजार मानवों में एक वक्ता होता है।

वाणी का विराट् वैभव ही वक्ता के व्यक्तित्व को चमकाता है। चूँकि वाणी परिचित और अपरिचित, जान और अनजान सभी को जोड़ने का काम करती है। अपने मनोगत विचारों को वाणी के माध्यम से श्रोताओं के कानों तक ही नहीं, अपितु हृदय के आंगन तक पहुँचाने में जो प्रयत्नशील है। जिसके जीवन में आचार और विचार का सामंजस्य, करणी-कथनी में एकरूपता परिलक्षित होती है, और जिसकी ओजस्वी वाणी में एक ऐसा चुम्बकीय आकर्षण भरा रहता है, वस्तुतः अगणित मनुष्यों के हृदय में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने में, जीवन की कुपथगामिनी राह को सुपथ में मोड़ने में एवं दैनिक कार्य-कलापों की काया को पलटने में जो सक्षम है। ऐसे तेजस्वी और ओजस्वी वक्ता को समाज का भावी सुधारक, मार्गदर्शक एवं तारक माना गया है। जो कुरूढ़ियों की वेड़ी में जर्जरित मानवता को एक नई दिशा देने में कुशल होते हैं।

ऐसे प्रभावशाली धर्म वक्ता समाज में बहुत कम हुआ करते हैं। प्रथम तो मानव के मन-मस्तिष्क में सत्यं-शिवं-सर्जनात्मक विचार बहुत कम उठते हैं। कदाच् सुविचार तरंगित हुए भी तो सुव्यवस्थित ढंग से यथाप्रसंग उनकी अभिव्यक्ति करना प्रत्येक विद्वान् के लिए बहुत कठिन है।

स्वयं मैंने अनुभव किया है। कतिपय नर-नारी पढ़ाई-लिखाई में अच्छी योग्यता पा लेते हैं, उनकी लेखनी में असरकारक जादू होता है, प्रत्येक दुर्गम विषय को इतनी सुगम सुन्दर रीति से लेखनी द्वारा प्रतिपादित करेंगे कि—पाठक स्वयं उनकी लेखनी पर दंग रह जाते हैं। हूबहू रस अलंकार युक्त विषय का वर्णन करने में पटु होते हैं। परन्तु सभा के बीच में खड़े होकर पांच-दस मिनिट बोल नहीं पाते हैं, वे स्वयं कहते हैं—हमें अपनी लेखनी द्वारा विषय का चित्रण करने की शक्ति मिली है। किन्तु बोलने की नहीं। इसीलिए कहा है—

"वक्ता दश सहस्त्रेषु"।

जगद्वल्लभ प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकरजी महाराज जैन समाज में प्रतिभा सम्पन्न साधक प्रसिद्ध वक्ता के रूप में उदित हुए थे। आपकी वाक्शक्ति में एक अनोखा आकर्षण और जादू था। जब आप धर्मोपदेश फरमाते थे, तब विना प्रचार के हजारों नर-नारियों की भीड़ स्वतः उमड़-घुमड़ कर एकत्रित हो जाया करती थी। इतना ही नहीं, पीयूष वर्षीय प्रवचन श्रवण कर सभी श्रोता

आनन्द-विभोर हो जाते थे, चातक की भाँति श्रोता आपके मुख की ओर ताका करते थे। और घण्टों तक प्रवचन सुनने के बाद भी श्रोताओं की अन्तरेच्छा लालायित रहा करती थी। सफल वक्ता की यही विशेषता है कि—सभा चातुर्य के साथ-साथ अरुचि की ओर जाते हुए श्रोताओं को रोके।

आपकी प्रवचन शैली अत्यधिक सुबोध-सरल एवं हृदयग्राहिणी रही है। क्या ग्राम्य जनता, क्या नागरिक, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित सभी आनन्द-विभोर होकर लौटते थे। पुनः दूसरे दिन आने का स्वतः उनका मन हो जाता था। कितने पिपासु तो एक घण्टे पहले सभा में अपना स्थान रिजर्व बना जाते थे।

जैन श्वेताम्बर, दिगम्बर, ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी, मुसलमान, हरिजन, स्वर्णकार, कुंमकार राजपूत, मोची, माली, कृषक आदि अन्य और भी कई जातियों के नर-नारी आपकी प्रवचन पावन गंगा में स्नान किया करते थे। क्या बालक, युवक और क्या वृद्ध सभी को इस ढंग से गुरुदेव शिक्षाप्रद बातें फरमाते थे, मानो आत्मीयता का अमृत बरसा रहे हों। किसी को अरुचि कारक प्रतीत नहीं होता था।

श्रोता अपने मन में यह समझते थे कि महाराजश्री मेरे धर्मग्रन्थ से ही बोल रहे हैं; मेरे लिए ही। इसलिए सभी श्रोता आपश्री को अपना धर्मगुरु मानते थे। क्योंकि आपके उपदेश सर्व सुखाय, हिताय हुआ करते थे।

दुर्लभ विशेषताएँ

आप अपने व्याख्यानों में कभी भी अन्यमत और उनकी मान्यताओं का खण्डन नहीं करते थे; हाँ, अपने मत-मान्यताओं का मण्डन करने में कभी भी नहीं चूकते थे। प्रसंग के अनुरूप वाणी में रस और अलंकार अद्भुत होते थे। फलतः कभी सारी जन-मेदिनी खिलखिला उठती, कभी करुणा रस में भीग जाती थी, तो कभी अद्भुत और शान्तरस में बह जाती। समन्वयात्मक आपकी शैली झोंपड़ी से लेकर राजघराने तक और रंक से लेकर राजा-महाराजाओं के जीवन तक पहुँची है।

एक स्वर से सभी ने आपके अमृतोपम उपदेश को प्रभु की वाणी मानकर सम्मान किया है। क्या ऊपर-दर्शित विशेषता कम है प्रसिद्ध वक्ता के लिए ?

क्लिष्ट और नीरस विषय को सुगम, सरस और रुचिकारक बनाकर श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करना; यह विशिष्टता आपश्री में थी। और वह अपने ढंग की अनूठी प्रवचन शैली में।

वक्ता, विद्वान्, लोकप्रिय समयज्ञ और मानवमात्र के प्रति करुणाशील थे श्री जैन दिवाकर जी महाराज। एक उदाहरण देखिये—

एक भौतिक विज्ञान विशारद ने जैन दिवाकरजी महाराज के समीप आकर तर्क किया—

"महाराजश्री, बुरा मानने की जरूरत नहीं है, मैं साफ-साफ कह देता हूँ। आजकल जितने भी मत, पंथ और वाद हैं केवल दुकानदारी मात्र है। एक भी वाद प्रमाणित नहीं है, आत्मवाद भी एक ऐसा ही ढकोसला मात्र है।"

प्रत्युत्तर में मुस्कान लिये गुरुदेव ने कहा—"क्यों साहव ! सामने वाले वृक्ष के पत्ते हिल क्यों रहे हैं ?"

"हवा से"—प्रश्न कर्त्ता ने कहा।
"क्या आप हवा देख रहे हैं ?"
"नहीं, मुनिजी"
"फिर भी आप हवा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।"

पत्तों के हिलने से आपने विश्वास किया कि 'पत्ते हवा से हिल रहे हैं।' हवा दिखाई नहीं देती उसका आभास पत्तों के हिलने से मालूम हुआ। उसी प्रकार आत्मारूपातीत है। इन्द्रियाँ उसे पकड़ नहीं पातीं, फिर भी शरीर के हिलने-चलने से आत्मा का स्पष्टतः आभास होता है। उसके छोड़कर चले जाने पर शरीर मृत वन जाता हैं। जैसे—

पुष्पं गन्धं तिले तैलं काष्ठे वह्निः पये घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहं पश्यात्मानं विवेकतः॥

—जैसे फूलों में गन्ध, तिलों में तैल, काष्ठ में अग्नि, दूघ में घृत, गन्ने में गुड़ परिव्याप्त है, उसी प्रकार शरीर व्यापी आत्मसत्ता रही हुई है।

प्रश्नकर्ता को 'आत्मवाद भी एक ढकोसला है' ये शब्द वापिस लेना पड़ा और गुरुदेव का अत्यन्त आभार मानकर आगे वढ़े।

इस प्रकार गुरुदेव के वक्तृत्व शैली के एक नहीं अनेक रोचक प्रसंग सुरक्षित हैं। केवल एक प्रवचन ने कइयों के अस्तोन्मुखी जीवन को उदयोन्मुखी वनाया है।

आज समाज में ऐसे समन्वयात्मक प्रवक्ता की पूरी आवश्यकता है। वस्तुतः तभी समाज को सही मार्ग-दर्शन मिल सकता है, आज समाज दिग्मूढ बना हुआ है। एक ही कारण है 'समन्वय साधक का अभाव'।

प्रसिद्ध वक्ता श्री जैन दिवाकरजी महाराज के मननीय प्रवचनों के लिए निम्न साहित्य पढ़ना चाहिए :

दिवाकर दिव्य ज्योति (भाग १ से २१) सं० पं० श्री शोभाचन्दजी भारिल्ल
प्राप्तिकेन्द्र : जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
महावीर बाजार, व्यावर (अजमेर)

प्रसिद्धवक्ता श्री जैन दिवाकरजी महाराज के

['जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नहीं रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नहीं रह सकता और सूरज के साथ रात नहीं रह सकती, उसी प्रकार सत्य के साथ झूठ और झूठ के साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता।]

१. धन चाहे जब मिल सकता है, किन्तु यह समय बार-बार मिलने वाला नहीं; अतएव धन के लिए जीवन का सारा समय समाप्त मत करो। धन तुच्छ वस्तु है, जीवन महान् है। धन के लिए जीवन को बर्बाद कर देना कोयलों के लिए चिन्तामणि को नष्ट कर देने के समान है।

२. धर्म, पंथ, मत या सम्प्रदाय जीवन को उन्नत बनाने के लिए होते हैं, उनसे आत्मा का कल्याण होना चाहिये; किन्तु कई लोग इन्हें भी पतन का कारण बना लेते हैं।

३. आत्मा निर्बल होगी तो शरीर की सबलता किसी भी काम नहीं आयेगी। तलवार कितनी ही तेज क्यों न हो, अगर हाथ में ताकत नहीं है तो उसका उपयोग क्या है ?

४. अहिंसा में सभी धर्मों का समावेश हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे हाथी के पैर में सभी के पैरों का समावेश हो जाता है।

५. जैसे मकान का आधार नींव है, उसीप्रकार मुक्ति का मूलाधार सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान के अभाव में मोक्षमार्ग की आराधना कभी नहीं हो सकती।

६. धर्म पर किसी का आधिपत्य नहीं है। धर्म के विशाल प्रांगण में किसी भी प्रकार की संकीर्णता और भिन्नता को अवकाश नहीं है। यहाँ आकर मानव-मात्र समान बन जाता है।

७. जो धर्म इस जीवन में कुछ भी लाभ न पहुँचाता हो और सिर्फ परलोक में ही लाभ पहुँचाता हो, उसे मैं मुर्दा धर्म समझता हूँ। जो धर्म वास्तव में धर्म है, वह परलोक की तरह इस लोक में भी लाभकारी अवश्य है।

८. आपको दो नेत्र प्राप्त हैं। मानो प्रकृति आपको संकेत दे रही है कि एक नेत्र से व्यवहार देखो और दूसरे नेत्र से निश्चय देखो। एकान्तवाद प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध है।

९. धर्म किसी खेत या बगीचे में नहीं उपजता, न बाजार में मोल बिकता है। धर्म शरीर से—जिसमें मन और वचन भी गर्भित हैं—उत्पन्न होता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। उसके लिए जाति-बिरादरी की कोई भावना नहीं है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल, क्षत्रिय हो या मेहतर हो, कोई किसी भी जाति का हो, कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है।

१०. राष्ट्र के प्रति एक योग्य नागरिक के जो कर्तव्य हैं, उनका ध्यान करो और पालन
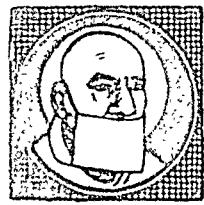
करो; यही राष्ट्रधर्म है। राष्ट्रधर्म का भलीभाँति पालन करने वाले आत्मधर्म के अधिकारी बनते हैं। जो व्यक्ति राष्ट्रधर्म से पतित होता है, वह आत्मिक धर्म का आचरण नहीं कर सकता।

११. यह अछूत कहलाने वाले लोग तुम्हारे भाई ही हैं इनके प्रति घृणा-द्वेष मत करो।

१२. धर्म न किसी देश में रहता है, न किसी खास तरह के लौकिक बाह्य क्रियाकाण्ड में ही रहता है; उसका सीधा सम्बन्ध आत्मा से है। जो कषायों का जितना त्याग करता है, वह उतना ही अधिक धर्मनिष्ठ है, फिर भले ही वह किसी भी वेश में क्यों न रहता हो ?

१३. अगर आप सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको आत्म-शुद्धि करनी पड़ेगी। आत्म-शुद्धि के लिए आत्मावलोकन का अर्थ यह नहीं कि आप अपनी मौजूदा और गैरमौजूदा विशेषताओं का ढिंढोरा पीटें; अपना बड़प्पन जाहिर करने का प्रयत्न करें; नहीं, यह आत्मावलोकन नहीं, आत्मवंचना है।

१४. बोतल में मदिरा भरी है और ऊपर से डॉट लगा है। उसे लेकर कोई हजार बार गंगाजी में स्नान कराये तो क्या मदिरा पवित्र हो जाएगी ? नहीं। इसी प्रकार जिसका अंतरंग पाप और कषायों से भरा हुआ है, वह ऊपर से कितना ही साफ-सुथरा रहे, वास्तव में रहेगा वह अपावन।

१५. आत्म-कल्याण का भव्य भवन आज खड़ा नहीं कर सकते तो कोई चिन्ता नहीं, नींव तो आज डाल ही सकते हो। आज नींव लगा लोगे तो किसी दिन शनैः-शनैः महल भी खड़ा हो सकेगा। जो नींव ही नहीं लगाना चाहता, वह महल कदापि खड़ा नहीं कर सकता।

१६. ज्ञान का सार है विवेक की प्राप्ति और विवेक की सार्थकता इस बात में है कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव जागृत किया जाए।

१७. धाय बालक को दूध पिलाती है, रमाती है फिर भी भीतर-ही-भीतर समझती है कि यह बालक मेरा नहीं पराया है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव धन-जन आदि की रक्षा करता है और उसका उपयोग भी करता है तथापि अन्तस् में जानता है कि यह सब पर-पदार्थ है। यह आत्ममूल व नहीं है ऐसा समझकर वह उनमें गृद्ध नहीं बनता, अनासक्त रहता है।

१८. किसी भी किसान से पूछो कि वह अपने खेत को बार-बार जोतकर कोमल क्यों बनाता है ? तो वह यही उत्तर देगा कि कठोर भूमि में अंकुर नहीं उग सकते। यही बात मनुष्य के हृदय की है। मनुष्य का हृदय जब कोमल होगा, तब उसकी अभिमानरूपी कठोरता हट जाएगी और उसमें धर्मरूपी अंकुर उग सकेगा।

१९. जूतों को बगल में दबा लेंगे, तीसरी श्रेणी के मुसाफिरखाने में जूतों को सिरहाने रखकर सोयेंगे। मगर चमार से घृणा करेंगे ? यह क्या है ?

२०. ज्ञानी का ज्ञान उसे दुःखों की अनुभूति से बचाने के लिए कवच का काम करता है, जबकि अज्ञानी का अज्ञान उसके लिए विष-बुझे बाण का काम करता है।

२१. स्वाध्याय का अर्थ कण्ठस्थ किये हुए गद्य-पद्य को तोते की तरह बोलते जाना ही नहीं समझना चाहिये। जो पाठ बोला जा रहा है, उसका आशय समझते जाना और उसकी गहराई में मन लगा देना आवश्यक है।

२२. भाई, तू चिकनी मिट्टी की तरह संसार से चिपटा है, अतः संसार में फँस जाएगा। रेत के समान बनेगा तो संसार से निकल जाएगा।

२३. जैसे सूर्य और चन्द्र का, आकाश और दिशा का बँटवारा नहीं हो सकता, उसी प्रकार धर्म का भी बँटवारा सम्भव नहीं है। धर्म उस कल्पवृक्ष के समान है, जो समानरूप से सब के मनोरथों की पूर्ति करता है और किसी प्रकार के भेदभाव को प्रश्रय नहीं देता।

२४. बड़ों का कहना है कि मनुष्य को कम खाना चाहिये, गम खाना चाहिये और ऊँच-नीच वचन सह लेना चाहिये तथा शान्त होकर रहना चाहिए। गृहस्थी में जहाँ ये चार बातें होती हैं, वहाँ बड़े आनन्द के साथ जीवन व्यतीत होता है।

२५. जिस मार्ग पर चलने से शत्रुता मिटती है, मित्रता बढ़ती है, शान्ति का प्रसार होता है, और क्लेश, कलह एवं वाद का नाश होता है, वह मार्ग सत्य का मार्ग है।

२६. धन की मर्यादा नहीं करोगे तो परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। तृष्णा आग है, उसमें ज्यों-ज्यों धन का ईंधन झोंकते जाओगे, वह बढ़ती ही जायेगी।

२७. धर्म सुपात्र में ही ठहरता है कुपात्र में नहीं; इसलिए धर्मयुक्त जीवन बनाने के लिए नीति-मय जीवन की जरूरत होती है।

२८. अपना भ्रम दूर कर दे और अपने असली रूप को पहचान ले। जब तक तू असलियत को नहीं पहचानेगा, सांसियों के चक्कर में पड़ा रहेगा।

२९. आत्मज्ञान हो जाने पर संसार में उत्तम-से-उत्तम समझा जाने वाला पदार्थ भी मनुष्य के चित्त को आकर्षित नहीं कर सकता।

३०. जो पूरी तरह वीतराग हो चुका है और जिसकी आत्मा में पूर्ण समभाव जाग उठा है, वह कैसे भी वातावरण में रहे, कैसे भी पदार्थों का उसे संयोग मिले उसकी आत्मा समभाव में ही स्थित रहती है।

३१. क्रोध एक प्रकार का विकार है और जहाँ चित्त में दुर्बलता होती है, सहनशीलता का अभाव होता है, और समभाव नहीं होता वहीं क्रोध उत्पन्न होता है।

३२. जो मनुष्य अवसर से लाभ नहीं उठाता और सुविधाओं का सदुपयोग नहीं करता, उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है और फिर पश्चात्ताप करने पर भी कोई लाभ नहीं होता।

३३. जो वस्तुएँ इसी जीवन के अन्त में अलग हो जाती हैं, जिनका आत्मा के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रह जाता है और अन्तिम जीवन में जिसका छूट जाना अनिवार्य है, वे ही वस्तुएँ प्राप्त करना क्या जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है? कदापि नहीं। महत्त्वपूर्ण कार्य है अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाना, और आत्मा को कल्याण के उस मार्ग पर ले जाना कि फिर कभी अकल्याण से भेंट ही न करनी पड़े।

३४. बहुत से लोग चमत्कार को नमस्कार करके चमत्कारों के सामने अपने आपको समर्पित कर देते हैं। वे बाह्य ऋद्धि को ही आत्मा के उत्कर्ष का चिह्न समझ लेते हैं और जो बाह्य ऋद्धि दिखला सकता है, उसे ही भगवान् या सिद्ध-पुरुष मान लेते हैं, मगर यह विचार भ्रमपूर्ण है। बाह्य चमत्कार आध्यात्मिक उत्कर्ष का चिह्न नहीं है और जो जानबूझकर अपने भक्तों को चमत्कार दिखाने की इच्छा करता है और दिखलाता है, समझना चाहिये कि उसे सच्ची महत्ता प्राप्त नहीं हुई है।

३५. परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह नियम जड़ और चेतन सभी पर समान रूप से लागू होता है। फूल जो खिलता है, कुम्हलाता भी है; सूर्य का उदय होता है, तो अस्त भी होता है; जो चढ़ता है, वह गिरता है।

३६. संस्कृत भाषा में 'गुरु' शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है—'गु' का अर्थ अन्धकार है और 'रु' का अर्थ नाश करना है। दोनों का सम्मिलित अर्थ यह निकला कि जो अपने शिष्यों के अज्ञान का नाश करता है, वही 'गुरु' कहलाता है।

३७. अपने जीवन के जहाज को जिस कर्णधार के भरोसे छोड़ रहे हो, उसकी पहले जाँच

तो कर लो कि उसे स्वयं भी रास्ता मालूम है या नहीं ? विज्ञ सारथी को ही अपना जीवन-रथ सुपुर्द करो; ऐरे-गैरे को गुरु बना लोगे तो अन्धकार में ही भटकना पड़ेगा।

३८. किसी की निन्दा करके उसकी गंदगी को अपनी आत्मा में मत समेटो। गुणीजनों का आदर करो। नम्रता धारण करो। अहंकार को अपने पास मत फटकने दो।

३९. यह क्या इन्सानियत है कि स्वयं तो भला काम न करो और दूसरे करें और कीर्ति पावें तो उनसे ईर्ष्या करो ? ईर्ष्या न करके अच्छे-अच्छे काम करो।

४०. जिसका जितना विकास हुआ है उसी के अनुसार उसे साधना का चुनाव करना चाहिए और उसी सोपान पर खड़े होकर अपनी आत्मा का उत्थान करने का प्रयत्न करना चाहिए।

४१. मानव-जीवन की उत्तमता की कसौटी जाति नहीं है, भगवद्‌भजन है। जो मनुष्य परमात्मा के भजन में अपना जीवन अर्पित कर देता है और धर्मपूर्वक ही अपना जीवन-व्यवहार चलाता है, वही उत्तम है, वही ऊँचा है, चाहे वह किसी भी जाति में उत्पन्न हुआ हो। उच्च-से-उच्च जाति में जन्म लेकर भी जो हीनाचारी है, पाप के आचरण में जिसका जीवन व्यतीत होता है और जिसकी अन्तरात्मा कलुषित बनी रहती है, वह मनुष्य उच्च नहीं कहला सकता।

४२. शुद्ध श्रद्धावान् मनुष्य ही स्व-पर का कल्याण करने में समर्थ होता है। जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं है और जो कभी इधर और कभी उधर लुढ़कता रहता है, वह सम्पूर्ण शक्ति से, पूरे मनोबल से साधना में प्रवृत्त नहीं हो सकता और पूर्ण मनोयोग के बिना कोई भी साधना सफल नहीं हो सकती। सफलता श्रद्धावान् को ही मिलती है।

४३. मिथ्यात्व से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है। बाह्य शत्रु बाहर होते हैं और उनसे सावधान रहा जा सकता है, मगर मिथ्यात्व शत्रु अन्तरात्मा में घुसा रहता है, उससे सावधान रहना कठिन है। वह किसी भी समय, बल्कि हर समय हमला करता रहता है। बाह्य शत्रु अवसर देखकर जो अनिष्ट करता है उससे भौतिक हानि ही होती है, मगर मिथ्यात्व आत्मिक सम्पत्ति को धूल में मिला देता है।

४४. विज्ञान ने इतनी उन्नति की; मगर लोगों की सुबुद्धि की तनिक भी तरक्की नहीं हुई। मनुष्य अब भी उसी प्रकार खूंख्वार बना हुआ है, वह हिंसक जानवर की तरह एक-दूसरे पर गुर्राता है और शान्ति के साथ नहीं रहता। अगर मनुष्य एक-दूसरे के अधिकारों का आदर करे और न्यायसंगत मार्ग का अनुसरण करे तो युद्ध जैसे विनाशकारी आयोजन की आवश्यकता ही न रहे।

४५. हिंसा में अशान्ति की भयानक ज्वालाएँ छिपी हैं। उससे शान्ति कैसे मिलेगी ? वास्तविक शान्ति तो अहिंसा में ही निहित है। अहिंसा की शीतल छाया में ही लाभ हो सकता है।

४६. मनुष्य कितना ही शोभनीक क्यों न हो, यदि उसमें गुण नहीं है तो वह किस काम का ? रूप की शोभा गुणों के साथ है।

४७. याद रखो और सावधान रहो; दिन-रात, हर समय, तुम्हारे भाग्य का निर्माण हो रहा है। क्षण-भर के लिए भी अगर तुम गफलत में पड़ते हो तो अपने भविष्य को अन्धकारमय बनाते हो। सबसे अधिक सावधानी मन के विषय में रखनी है। यह मन अत्यन्त चपल है। समुद्र की लहरों का पार है, पर मन की लहरों का पार नहीं है। इसमें एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी लहर उत्पन्न होती ही रहती है। इन लहरों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

४८. वर्तमान में जो कुछ भी प्राप्त है, उसमें सन्तोष धारण करना चाहिए। सन्तोष ही शान्ति प्रदान कर सकता है। करोड़ों और अरबों की सम्पत्ति भी सन्तोष के बिना सुखी नहीं बना सकती; और यदि सन्तोष है तो अल्प साधन-सामग्री में भी मनुष्य आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है।

४९. जो भूत-भविष्यत् की चिन्ता छोड़कर वर्तमान परिस्थितियों में मस्त रहता है, वही जगत में ज्ञानी है। सच पूछो तो ऐसे लोगों को ही वास्तविक आनन्द के खजाने की चावी हाथ लगी है।

५०. मनुष्य जितना-जितना आत्मा की ओर झुकता जाएगा, उतना ही उतना सुखी वनता जाएगा।

५१. मिलावट करना घोर अनैतिकता है। व्यापारिक दृष्टि से भी यह कोई सफल नीति नहीं है। जो लोग पूर्ण प्रामाणिकता के साथ व्यापार करते हैं और शुद्ध चीजें वेचते हैं, उनकी चीज कुछ महँगी होगी और सम्भव है कि आरम्भ में उसकी विक्री कम हो, मगर जब उनकी प्रामाणिकता का सिक्का जम जाएगा और लोग असलियत को समझने लगेंगे तो उनका व्यापार औरों की अपेक्षा अधिक चमकेगा, इसमें संदेह नहीं। अगर सभी जैन व्यापारी ऐसा निर्णय कर लें कि हम प्रामाणिकता के साथ व्यापार करेंगे और किसी प्रकार का धोखा न करते हुए अपनी नीति स्पष्ट रखेंगे तो जैनधर्म की काफी प्रभावना हो, साथ ही उन्हें भी कोई घाटा न रहे।

५२. कोई चाहे कि दूसरों का बुरा करके मैं सुखी वन जाऊँ, तो ऐसा होना सम्भव नहीं है। बबूल बोकर आम खाने की इच्छा करना व्यर्थ है।

५३. संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे पाकर तुम अभिमान कर सको, क्योंकि वह वास्तव में तुम्हारी नहीं है और सदा तुम्हारे पास रहने वाली नहीं है। अभिमान करोगे तो आगे चलकर नीचा देखना पड़ेगा।

५४. इस विशाल विश्व में अनेक उत्तम पदार्थ विद्यमान हैं, परन्तु आत्मज्ञान से बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है। जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया, उसे कुछ प्राप्तव्य नहीं रह गया।

५५. आत्मा-आत्मा में फर्क नहीं है, फर्क है करनी में। जो जैसी करनी करता है, उसे वैसी ही सामग्री मिल जाती है।

५६. जो सुयोग मिला है, उसे संसार के आमोद-प्रमोद में विनष्ट मत करो, वल्कि आत्मा के स्वरूप को समझने में उसका सदुपयोग करो।

५७. किसी व्यक्ति के जीवन के सम्बन्ध में जब विचार करना हो तो उसके गुणों पर ही विचार करना उचित है। गुणों का विचार करने में गुणों के प्रति प्रीति का भाव उत्पन्न होता है और मनुष्य स्वयं गुणवान वनता है।

५८. अविवेकी जन अपने दोष नहीं देख पाते, पराये दोष देखते हैं; अपनी निन्दा नहीं करते, पराई निन्दा करते हैं। वे अपने में जो गुण नहीं होते, उनका भी होना प्रसिद्ध करते हैं और वर्तमान दोषों को ढंकने का प्रयत्न करते हैं, जबकि दूसरों में अविद्यमान दोषों का आरोप करके उनके गुणों को आच्छादित करने का प्रयास भी करते हैं।

५९. वास्तव में देखा जाए तो विकार देखने में नहीं, मन में है। मन के विकार ही कभी दृष्टि में प्रतिविम्बित होने लगते हैं। मन विकार-विहीन होता है तो देखने से द्रष्टा की आत्मा कलुषित नहीं होती।

६०. प्रामाणिकता का तकाजा है कि मनुष्य जो वेष धारण करे, उसके साथ आने वाली जिम्मेदारी का भी पूरी तरह निर्वाह करे। ऐसा करने में ही उस वेष की शोभा है।

६१. व्यापारी का कर्तव्य है, जिसे देना है, ईमानदारी से दे और जिससे लेना है उससे ईमानदारी से ही लेन-देन में बेईमानी न करे।

६२. शील आत्मा का भूषण है। उससे सभी को लाभ होता है, हानि किसी को नहीं होती।

६३. सत्य सबको प्रिय और असत्य अप्रिय है। जो लोग लोभ से, भय से या आशा से

प्रेरित होकर असत्य का प्रयोग करते हैं, वे भी असत्य को अच्छा नहीं समझते। उनके अन्तःकरण को टटोलो तो प्रतीत होगा कि वे असत्य से घृणा करते हैं, और सत्य के प्रति प्रीति और भक्ति रखते हैं।

६४. जब तक किसी राष्ट्र की प्रजा अपनी संस्कृति और अपने धर्म पर दृढ़ है तब तक कोई विदेशी सत्ता उस पर स्थायी रूप से शासन नहीं कर सकती।

६५. अगर आप अपनी जुबान पर कब्जा करेंगे तो किसी प्रकार के अनर्थ की आशंका नहीं रहेगी। इस दुनिया में जो भीषण और लोमहर्षक काण्ड होते हैं, उनमें से अधिकांश का कारण जीभ पर नियन्त्रण का न होना है।

६६. गुण आत्मा को पवित्रता की ओर प्रेरित करते हैं, दोषों से आत्मा अपवित्र-कलुषित बनता है। गुण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आत्मा को स्वरूप की ओर ले जाते हैं, जबकि दोष उसे विकार की ओर अग्रसर करते हैं।

६७. आत्मशुद्धि के लिए क्षमा अत्यन्त आवश्यक गुण है। जैसे सुहागा स्वर्ण को साफ करता है, वैसे ही क्षमा आत्मा को स्वच्छ बना देती है।

६८. अमृत का आस्वादन करना हो तो क्षमा का सेवन करो। क्षमा अलौकिक अमृत है। अगर आपके जीवन में सच्ची क्षमा आ जाए तो आपके लिए यही धरती स्वर्ग बन सकती है।

६९. कृषक धान की प्राप्ति के लिए खेती करता है तो क्या उसे खाखला (भूसा) नहीं मिलता है? मगर वह किसान तो मूर्ख ही माना जाएगा जो सिर्फ खाखले (भूसे) के लिए खेती करता है। इसलिए जहाँ तपस्या को आवश्यक बताया गया है, वहीं उसके उद्देश्य की शुद्धि पर भी पूरा बल दिया है। उद्देश्य-शुद्धि के बिना क्रिया का पूरा फल प्राप्त नहीं हो सकता।

७०. भोग का रोग बड़ा व्यापक है। इसमें उड़ती चिड़िया भी फँस जाती है; अतएव इससे बचने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए और चित्त को कभी गृद्ध नहीं होने देना चाहिए।

७१. तीन बातें ऐसी हैं जिनमें सब्र करना ही उचित है—किसी वस्तु का ग्रहण करने में, भोजन में और धन के विषय में; मगर तीन बातें ऐसी भी हैं, जिनमें सन्तोष धारण करना उचित नहीं है—दान देने में, तपस्या करने में और पठन-पाठन में।

७२. निश्चय मानो कि सुख की कुंजी सन्तोष है, सम्पत्ति नहीं; अतएव दूसरों की चुपड़ी देख कर ईर्ष्या मत करो। अपनी रूखी को बुरा मत समझो और दूसरों की नकल मत करो।

७३. बीज बोना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है, किन्तु बो देने के बाद इच्छानुसार अंकुर पैदा नहीं किये जा सकते। अपढ़ किसान भी जानता है कि चने के बीज से गेहूँ का पौधा उत्पन्न नहीं होता, मगर तुम उससे भी गये-बीते हो। तुम सुख पाने के लिए कदाचरण करते हो।

७४. तीर्थंकर कौन होता है? जगत् में अनन्त जीव हैं। उनमें जो ऊँचे नम्बर की करनी करता है, वह तीर्थंकर बन जाता है।

७५. यह समझना भूल है कि हम तुच्छ हैं, नाचीज हैं, दूसरे के हाथ की कठपुतली हैं, पराये इशारे पर नाचने वाले हैं, जो भगवान् चाहेगा वही होगा, हमारे किये क्या हो सकता है? यह दीनता और हीनता की भावना है। अपने आपको अपनी ही दृष्टि में गिराने की जघन्य विचार-धारा है। जीव का भविष्य उसकी करनी पर अवलम्बित है। आपका भविष्य आपके ही हाथ में है, किसी दूसरे के हाथ में नहीं।

७६. जब आपके चित्त में तृष्णा और लालच नहीं होंगे तब निराकुलता का अभूतपूर्व आनन्द आपको तत्काल अनुभव में आने लगेगा।

७७. भला आदमी वह है जो दुनिया का भी भला करे और अपना भी। जो दुनिया का

भला करता है और अपना नुकसान कर लेता है, वह दूसरे नम्बर का भला आदमी है, लेकिन जो दूसरे का नुकसान करके अपना भला करता है, वह नीच है।

७८. जैसे सूर्य और चन्द्र का, आकाश और दिशा का बँटवारा नहीं हो सकता, उसी प्रकार धर्म का बँटवारा नहीं हो सकता। जैसे आकाश, सूर्य आदि प्राकृतिक पदार्थ हैं, वे किसी के नहीं हैं, अतएव सभी के हैं, इसी प्रकार धर्म भी वस्तु का स्वभाव है और वह किसी जाति, प्रान्त, देश या वर्ग का नहीं होता।

७९. धर्म का प्रांगण संकीर्ण नहीं, वहुत विशाल है। वह उस कल्पवृक्ष के समान है जो समान रूप से सबके मनोरथों की पूर्ति करता है और किसी प्रकार के भेदभाव को प्रश्रय नहीं देता।

८०. नम्रता वह वशीकरण है जो दुश्मन को भी मित्र बना लेती है; पाषाण हृदय को भी पिघला देती है।

८१. वास्तव में नम्रता और कोमलता बड़े काम की चीजें हैं। वे जीवन की बढ़िया शृंगार हैं, आभूषण हैं, उनसे जीवन चमक उठता है।

८२. ज्ञान प्राप्त करने के लिए विनम्रता की आवश्यकता होती है। विनीत होकर ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

८३. किसी में बुराई है तो बुराई की ओर मत देखो; बुराई की ओर देखोगे वह तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर जाएगी। जैसा ग्राहक होता है, वह वैसी ही चीज की तरफ देखता है।

८४. जीवन में थोड़ा-सा भी समय बहुत मूल्य रखता है। कभी-कभी ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर आते हैं, जिन पर आपके भावी जीवन का आधार होता है। उन बहुमूल्य क्षणों में अगर आप प्रमादमय होंगे तो आपका भावी जीवन बिगड़ जाएगा और यदि सावधान होंगे, आत्माभिमुख होंगे तो आपका भविष्य मंगलमयी बन जाएगा।

८५. दवाओं के सहारे प्राप्त तन्दुरुस्ती भी कोई तन्दुरुस्ती है। असली तन्दुरुस्ती वही है कि दवा का काम ही न पड़े। दवा तो बूढ़े की लकड़ी के समान है। लकड़ी हाथ में रही तब तक तो गनीमत और जब न रही तब चलना ही कठिन। इसी प्रकार दवा का सेवन करते रहे तब तक तो तन्दुरुस्ती रहे और दवा छोड़ी कि फिर बीमार के बीमार। यह भी कोई तन्दुरुस्ती है?

८६. जो वस्तु आत्मा के कल्याण में साधक नहीं है, उसकी कोई कीमत नहीं है।

८७. इस भ्रम को छोड़ दो कि जैन कुल में जन्म लेने से आप सम्यग्दृष्टि हो गये। इस खयाल में भी मत रहो कि किसी के देने से आपको सम्यग्दर्शन हो जाएगा; नहीं, सम्यग्दर्शन आपके आत्मा की ही परिणति है, एक अवस्था है। आपकी श्रद्धा, रुचि या प्रतीति की निर्मलता पर सम्यग्दर्शन का होना निर्भर है। शुद्ध रुचि ही सम्यग्दर्शन को जन्म देती है।

८८. कैसी भी रेतीली नदी बीच में आ जाए, धोरी बैल हिम्मत नहीं हारता। वह रास्ता पार कर ही लेता है। वह वहन किये भार को बीच में नहीं छोड़ता। इसी प्रकार सुदृढ़ श्रद्धा वाला साधक अंगीकार की हुई साधना को पार लगा कर ही दम लेता है।

८९. साधु-संतों का काम है जनता की शुभ और पवित्र भावनाओं को बढ़ावा देना; अप्रशस्त उत्तेजनाओं को, जो समय-समय पर दिल को अभिभूत करती हैं दबा देना और इस प्रकार संसार में शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्नशील होना।

९०. मनुष्य की विवेकशीलता इस बात में है कि भूतकाल से शिक्षा लेकर वर्तमान को सुधारे और वर्तमान का भविष्यत् के लिए सदुपयोग करे। जिसमें इतनी भी बुद्धि नहीं, उसे मनुष्य कहना कठिन है।

९१. परमात्मा में न सुगन्ध है और न दुर्गन्ध है। उसमें न तीखा रस है, न कटुक है, न कसैला है, न खट्टा है और न मीठा है। वह सब प्रकार के स्पर्शों से भी रहित है। न कर्कश है, न कोमल है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न चिकना है और न रूखा है।

९२. ज्ञान का सार है विवेक की प्राप्ति और विवेक की सार्थकता इस बात में है कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव जागृत किया जाए। किसी ने बहुत पढ़ लिया है; बड़े-बड़े पोथे कण्ठस्थ कर लिये हैं, अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मगर उसके इस ज्ञान का क्या प्रयोजन है, यदि वह सोच-विचार कर नहीं बोलता ?

९३. जिन वचनों से हिंसा की प्रेरणा या उत्तेजना मिले वह वचन भाषा के दुरुपयोग में ही सम्मिलित है बल्कि यह कहना उचित होगा कि हिंसावर्धक वचन भाषा का सबसे बड़ा दुरुपयोग है।

९४. जो व्यक्ति, समाज या देश विवेक का दिव्य दीपक अपने सामने रखता है और उसके प्रकाश में ही अपने कर्त्तव्य का निश्चय करता है, उसे कभी सन्ताप का अनुभव नहीं करना पड़ता; उसे असफलता का मुँह नहीं देखना पड़ता।

९५. विवेकवान् डूबने की जगह तिर जाता है और विवेकहीन तिरने की जगह भी डूब जाता है।

९६. धर्म व्यक्ति को ही नहीं, समाज को, देश को और अन्ततः अखिल विश्व को शान्ति प्रदान करता है। आखिर समाज हो या देश, सबका मूल तो व्यक्ति ही है और जिस प्रणालिका से व्यक्ति का उत्कर्ष होता है, उससे समूह का भी उत्कर्ष क्यों न होगा ?

९७. विवेक वह आन्तरिक प्रदीप है जो मनुष्य को सत्पथ प्रदर्शित करता और जिसकी रोशनी में चलकर मनुष्य सकुशल अपने लक्ष्य तक जा पहुँचता है। विवेक की बदौलत सैकड़ों अन्यान्य गुण स्वतः आ मिलते हैं। विवेक मनुष्य का सबसे बड़ा सहायक और मित्र है।

९८. शान्ति प्राप्त करने की प्रधान शर्त है समभाव की जागृति। अनुकूल और प्रतिकूल संयोगों के उपस्थित होने पर हर्ष और विषाद का भाव उत्पन्न न होना और रागद्वेष की भावना का अन्त हो जाना समभाव है।

९९. जरा विचार करो कि मृत्यु से पहले कभी भी नष्ट हो जाने वाली और मृत्यु के पश्चात् अवश्य ही छूट जाने वाली सम्पत्ति को जीवन से भी बड़ी वस्तु समझना कहाँ तक उचित है ? अगर ऐसा समझना उचित नहीं है तो फिर लोभाभिभूत होकर क्यों सम्पत्ति के लिए यह उत्कृष्ट जीवन बर्बाद करते हो ?

१००. यह शरीर दगाबाज, बेईमान और चोर है। यदि इसकी नौकरी में ही रह गया तो सारा जन्म बिगड़ जाएगा; अतएव इससे लड़ने की जरूरत है। दूसरे से लड़ने में कोई लाभ नहीं, खुद से ही लड़ो।

१०१. मन सब पर सवार रहता है, परन्तु मन पर सवार होने वाला कोई विरला ही माई का लाल होता है; मगर धन्य वही है, जो अपने मन पर सवार होता है।
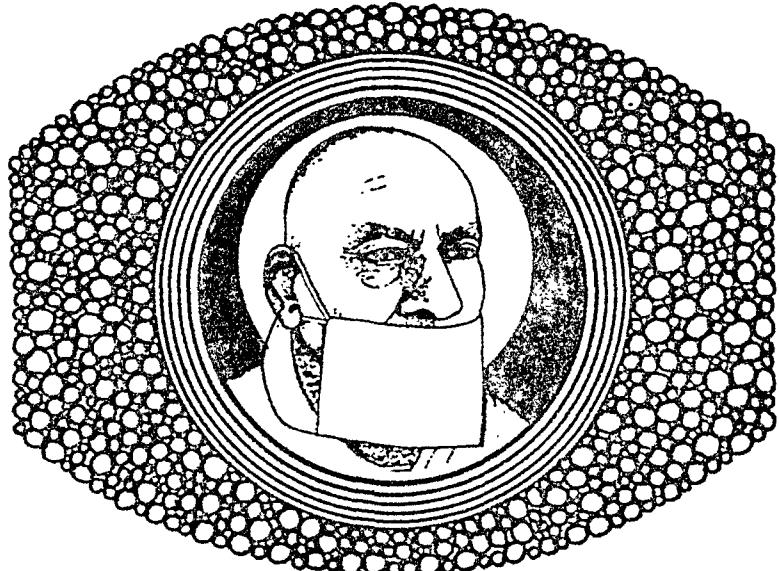
भक्ति, उपदेश, वैराग्य और नीति की स्वर चेतना में गुम्फित

श्री जैन दिवाकर जी के प्रिय पद्य

भक्ति, उपदेश, वैराग्य तथा
नीति की स्वर-चेतना में गुम्फित

श्री जैन दिवाकरजी के प्रिय पद्य

भक्ति-स्तुति प्रधान-पद

१. महामन्त्र की आरती

जय अरिहन्ताणं प्रभु, जय अरिहन्ताणं।
भाव भक्ति से नित प्रति, प्रणमूं सिद्धाणं ॥
ओम् जय अरिहन्ताणं ।टेर।
दर्शन ज्ञान अनन्ता, शक्ति के धारी, स्वामी !
यथाख्यात समकित है, कर्म शत्रु हारी ।ॐ।१।
है सर्वज्ञ सर्वदर्शी बल, सुख अनन्त पाये।
अगुरु लघु अमूरत, अव्यय कहलाये ।ॐ।२।
नमो आयरियाणं, छत्तीस गुण पालक।
जैनधर्म के नेता, संघ के संचालक ।ॐ।३।
नमो उवज्झायाणं चरण-करण ज्ञाता।
अङ्ग उपाङ्ग पढ़ाते, ज्ञान दान दाता ।ॐ।४।
नमो सव्व साहूणं, ममता मदहारी।
सत्य अहिंसा अस्तेय, ब्रह्मचर्यधारी ।ॐ।५।
चौथमल कहे शुद्ध मन, जो नर ध्यान धरे।
पावन पंच परमेष्ठी, मङ्गलाचार करे ।ॐ।६।

२. मन्त्रराज

(तर्ज—त्रिभंगी छन्द)

मन्त्रों का मन्त्र नवकार मन्त्र, तन्त्रों में तन्त्र हरे दुःख तन का।
जो लेवे धार, हो पल में पार, करदे उद्धार पापी जन का ।टेक।
पूर्वों का सार, शरण आधार, है गुण अपार, तारण-तिरण।
मंगलिक आप जयवन्त आप, दे सुख अमाप, कल्याण करण।
मनोरथ दे पूर, चिन्ता दे चूर, कटे कर्म क्रूर, भव दुःख भंजन।
है यही रसान, नाग दमन जान, पारस प्रधान, करदे कंचन।
ध्यावे जिनेश, रहते हमेश, कटजा क्लेश उनके मन का ॥१॥

द्रौपदी की भीर आ हरी पीर, किये लम्बे चीर, महिमा तेरी।
सुदर्शन सेठ, की सूली मेट, रखी श्रेष्ठ पेठ, नहीं देर करी।
सुभद्रा नार, खोले द्वार, पुनः शिवकुमार, तापस केरी।
दे सीता आवाज, रख परमेष्ठी लाज, मिटे अगन आज हुआ जल फेरी।
सोमा सवेर, नवकार फेर, झड़ गया जहर खुश हो गनका ॥२॥
अंजना के प्रान, बचाये आन, सोमप्रभ दिवान की पत राखी।
जिनदत्ता तास, की पूरी आश, फिर रिखबदास, के हुआ साखी।
अमरकुमार, की करी सार, मेणरया नार, दी क्या आखी।
जलते थे आग, नागन नाग, पारस वीतराग, की गति जांकी।
रूप खरा चोर, दी स्वर्ग ठोर, जटाऊ पक्षी ओर, किया टनका ॥३॥
सती चन्दनबाल, की काटी जाल, और श्रीपाल का जहाज तिरा।
पद्मश्री को साज, दे मेटी दाज, फेर वच्छराज का काज सरा।
दिया शरणाचार, युगबाहु कुमार, हुआ देव अवतार सुरताज धरा।
कलावती के हाथ, कीने निपात, णमोकार ध्यात, दिया साज खरा।
पद्मावती जान, धरा तेरा ध्यान, दिया ऊँचा स्थान तापसवन का ॥४॥
नन्दवास ग्राम, में मगनीराम आ सर्प हराम ने डंक दिया।
मात-तात तिवार, तेला को धार, फेरा णमोकार, दुःख बीत गया।
लक्ष्मीचन्द विख्यात, रामपुरे जात, बीच सिंह बदजात, से भेंट भया।
गिन नवकार, मारी ललकार, सिंह भगा जिवार, निज काज किया।
टेकचन्द की नार, सर्प डंक मार, लिया निश्चय धार, हटा विष तनका ।५।
फिर रंगूजी सती, की राखी रती, माता ने कथी, कानों ने सुनी।
मगनीराम उजार, थी जोखम लार, मिले चोर चार, बचा आखी अनी।
ऐसे पंचमकाल, काटे कई के जाल, करदे, निहाल, है तूही धनी।
गुरु हीरालाल, मेरे दयाल, को नित्य खुशहाल, रख दिव्य गुनी।
चौथमल छन्द, कथे कड़ी वन्द, करदे आनन्द, शिष्यवर्धन का ॥६॥

३. शान्तिनाथ-स्तुति

(तर्ज—पनजी की)

साता कीजो जी श्री शान्तिनाथ प्रभु शिव सुख दीजो जी ।टेक।
शान्तिनाथ है नाम आपको, सब ने साताकारी जी।
तीन भवन में चावा प्रभुजी मृगी निवारी जी ।१।
आप सरीखा देव जगत में और नजर नहीं आवे जी।
त्यागी ने वीतरागी मोटा, मुझ मन भावे जी ।२।

शान्ति जाप मन मांहीं जपता, चाहे सो फल पावे जी।
ताव तिजारी दुःख दालिदर सब मिट जावेजी।३।
विश्वसेन राजाजी के नन्दन, अचला दे रानी जाया जी।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे घणा सुहाया जी।४।

४. महावीर का नाम

म—हावीर मन मोहन प्रभु का, नाम है शान्ति करण सदा।
हा—दिक भाव से उमग-उमगकर करता हूँ मैं स्मरण सदा।
वी—त राग जिन देव विभू भव-सिंधु तारण तिरण सदा।
र—मण करे तुम नाम हृदय नित्य, मिथ्या कुमतितम हरण सदा।
प्र—णमत इन्द्र नरेन्द्र सुरासुर—अर्चित है तुम चरण सदा।
भू—ति प्रज्ञ सर्वज्ञ चौथमल, दास तुम्हारे शरण सदा॥

५. वीर-जन्म

आये आये हैं जगत-उद्धारक, तृशला जी के नन्द।टेर।
स्वर्ग बना नरलोक हो रहा, घर-घर हर्षानन्द।
मंगल मधुरे गावे परियां, उत्सव कीना इन्द्र।१।
कंचन वर्ण केहरी लक्षण, सोहे चरणारविन्द।
नैना निरखी मुदित हुए सब, प्रभु का मुखारविन्द।२।
संयम ले प्रभु केवल पाए, सेवे सुरनर वृन्द।
वाणी अमृत पीते सब मिल, पावे मन आनन्द।३।
अभय-दान निर्वद्य वचन में, ज्योतिष में ज्यों चंद।
तप में उत्तम ब्रह्मचर्य है, जग में वीर जिनन्द।४।
कुंवर सुबाहू को निस्तारा, जो था नृप फरजंद।
शालिभद्र से सौभागी को, किया देव अहमिन्द्र।५।
प्रभु को सुमिरे प्रभुता पावे, मिट जावे दुख द्वन्द।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, वरते परमानन्द।६।

६. गौतम गणधर

(तर्ज—जय जगदीश हरे)

जय गौतम स्वामी, प्रभु जय गौतम स्वामी।
ऋद्धि सिद्धि के दाता, प्रणमूं सिर नामी।ओउम्…।
वसुभूति के नन्दन, पृथ्वी के जाया, स्वामी……
कंचन वरण अनुपम, सुन्दर तन पाया।१।
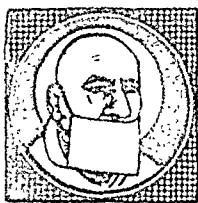
ठाम-ठाम सूत्रों में नाम तेरा आवे, स्वामी.......
चार ज्ञान पूरवधर, सुरनर गुण गावे।२।
महावीर से गुरु तुम्हारे, जग तारण हारे, स्वामी.......
सब मुनियों में शिरोमणि, गणधर तुम प्यारे।३।
भव्य हितार्थं तुमने किया निर्णय भारी, स्वामी.......
पूछे प्रश्न अनेकों, निज आतम तारी।४।
गौतम-गौतम जाप जपे से, दुःख दरिद्र जावे, स्वामी.......
सुख सम्पत्ति यश लक्ष्मी अनायास आवे।५।
भूत-प्रेत भय नाश, गौतम ध्यान धरे. स्वामी.......
चोट फेंट नहीं लागे, सब दुःख दूर हरे।६।
दो हजार साल के सादड़ी, सेखे काल आया, स्वामी.......
गजानन्द आनन्द करो, यूँ, चौथमल गाया।७।

७. नेत्रादर्श

(तर्ज—लावणी छोटी बड़ी)

नयनन में पुतली लड़े भेद नहीं पावे।
कोई सच्चा गुरु का, चेला बना छन्द गावे॥टेर॥
इस मन के तच्छन लच्छन सब नयनन में।
यह नेकी वदी के दोनों दीप नयनन में॥
ये योगी भोगी की मुद्रा है नैनन में।
और खुशी गमी की पहिचान है नैनन में॥
ये करे लाखों में चोट चूक नहीं जावे॥१॥
ये काम-क्रोध दोनों जालिम नैनन में।
ये प्रीति नीति रस दोनों बसे नैनन में॥
है शक्ति हटोटी बदकारी नैनन में।
ये लिहाज नम्रता सभी बसे नैनन में॥
नैनन के बस हो प्राण पतंग गमावे॥२॥
ये शूरवीर के तोड़ दीखे नैनन से।
और सुगडाई के अक्षर मिले नैनन से॥
अष्टादश देश की लिपी लिखे नैनन से।
और वरणादिक की खास विषय नैनन से॥
विष अमृत ये दोनों नैन में रहावे॥३॥
मुनि की मुद्रा का दरस करें नैनन से।
और पांव धरे जीवों को टाल नैनन से॥

गौशाले की रक्षा वीर करे नैनन से।
इलायची कुंवर गुरु देख तिरे नैनन से ॥
मुनि चौथमल नैनन पे छन्द सुनावे ॥४॥

८. ऋषभ-बाल लीला

(तर्ज—छोटा-सा बलमा मोरे)

ऋषभ कन्हैयालाल आंगना में, रुमझुम खेले।
अँखियन का तारा प्यारा, आंगना में, रुमझुम खेले ।टेर।
इन्द्र इन्द्रानी आई, प्रेम धर गोदी में लेले।
हँसे रमावे करे प्यार, दिल की रलियाँ रेले ।१।
रत्न पालनिये माता, लाल ने झुलावे झूले।
करे लल्ला से अति प्यार, नहीं वो दूरी मेले ।२।
स्नान कराई माता, लाल ने पहिनावे झेले।
गले मोतियन का हार, मुकुट शिर पर मेले ।३।
गुरु प्रसादे मुनि चौथमल, यों सबसे बोले।
नमन करो हरबार, वो तीर्थंकर पहले ।४।

९. ऋषभ-मरुदेवा

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

ऋषभजी मूंडे बोल, बोल, बोल आदेश्वरवाला कांई थारी मरजी रे।
मासू मूंडे बोल।
बोल-बोल मारा ऋषभ कन्हैया, कांई थारी मरजी रे।
मांसू मूंडे बोल ।टेर।
सुनी आज मारा लाल पधारिया, वनिता बाग के मांहि रे।
तुरत गज असवारी करने, आई उमाही रे ।१।
रह्यो मजा में है सुख-साता, खूब कि मन चायो रे।
एक कहन या थांनू लाल, मांड़ो क्यों आयो रे ।२।
गैर हुई अण हुई न होवे, एक बात भली नहीं कीधी रे।
गया पाछे कागद, नहीं भेज्यो, मोरी खबरा न लीधी रे ।३।
वार-त्योंहारे भोजन भांण, ताता कोई आता रे।
थारी याद में ठण्डा होता, पूरा नहीं भाता रे ।४।
खोलो-खोलो जल्दी मौन न, खोलो खोलो खोलो रे।
बोलो बोलो मांनू बोलो, बोलो बोलो रे ।५।

थे निर्मोही मोह नहीं आयो, मैं मोह कर कर हारी रे।
मोरादेवी गज होदे गई, मोक्ष मंझारी रे।६।
समत उगणी से साल चौंसठे भोपाल सेखे कारी रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, धन्य मेहतारी रे।७।

१०. जिनवाणी

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

श्री जिनवाणी रे २, तूं सुन थारी सुधरे जिन्दगानी रे।टेर।
तिरिया तिरे अनन्त तिरेगा, श्रद्ध-श्रद्ध जिनवाणी रे।
बेपारी तिरे नाव से जूं, भवोदधि पानी रे।१।
गुण दोष-विचारन नर्क निवारन, अनन्त सुखां की दानी रे।२।
त्रफला त्रिदोष हरेयां अंध मेल हटानी रे।
शूची सरस्वती भगवती, विद्या वरदानी रे।३।
त्राता माता शारदा, इच्छित पूरण ब्रह्माणी रे।
आदि पुरुष से प्रकट भई, ग्रही उत्तम प्रानी रे।४।
ऊँट ने इखु नहीं भावे, गद्धे मिश्री नहीं मानी रे।
ज्वर से भोजन रुची जाय जैसे अज्ञानी रे।५।
सुदर्शन सेठ श्रद्ध जिनवाणी, संयम लियो हित जानी रे।
छती ऋद्ध तज जम्बूकंवर वरी शिवरानी रे।६।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, चातुर ने पहचानी रे।
स्वर्ग मोक्ष की दाता, सांची पुण्य बेल बधानी रे।७।

११. घट में भगवान

(तर्ज—आये आये हैं जगदोद्धारक)

देखो देखो इस घट के पट में, प्रगट हैं भगवान।टेर।
करोड़ों रवि से अति प्रकाश है, झगमग झगमग ज्योति।
तेरा मेरा तजे न जव तक, नहीं प्रकाशित होती।१।
इधर उधर तू फिरे भटकता, नाहक वक्त गमावे।
स्वयं प्रभु हैं खोजन वाले, गुरु मिले तब पावे।२।
घृत दुग्ध में गन्ध पुष्प में, रस इक्षु के मांई।
विना क्रिया के जुदा न होवे, समझा ज्ञान लगाई।३।
कठिन तपस्या करी वीर ने, निजानन्द को पाया।
'चौथमल' कहे उन्हीं प्रभु ने, आतम ज्ञान बताया।४।

१२. महावीर का ध्यान

(तर्ज—पूर्ववत्)

महावीर से ध्यान लगाया करो।
सुख सम्पति इच्छित पाया करो।टेर।
क्यों भटकता जगत में, महावीर-सा दूजा नहीं।
त्रिशला के नन्दन जगत वन्दन, अनन्त ज्ञानी है वही।
उनके चरणों में शीश नमाया करो।१।
जगत भूषण विगत दूषण, अधम उधारण वीर है।
सूर्य से भी तेज है, सागर के सम गम्भीर है।
ऐसे प्रभु को नित्य उठ ध्याया करो।२।
महावीर के प्रताप से, होती विजय मेरी सदा।
मेरे वसीला है उन्हीं का, जाप से टले आपदा।
जरा तन मन से लौं लगाया करो।३।
लसानी ग्यारे ठाणा, आया चौरासी साल है।
कहे चौथमल गुरु कृपा से, मेरे वरते मंगलमाल है।
सदा आनन्द हर्ष मनाया करो।४।

१३. मनावो महावीर

(तर्ज—न छेड़ो गाली दूंगा रे)

जो आनन्द मंगल चावो रे, मनावो महावीर।टेर।
प्रभु त्रिशलाजी का जाया, है कंचन वर्णी काया।
जां के चरणा शीश नमावो रे, मनावो महावीर।१।
प्रभु अनन्त ज्ञान गुणधारी, है सूरत मोहनगारी।
जां का दर्शन कर सुख पावो रे, मनावो महावीर।२।
या प्रभुजी की मीठी वाणी, है अनन्त सुखां की दानी।
थें धार धार तिरजावो रे, मनावो महावीर।३।
जांके शिष्य बड़ा है नामी, सदा सेवो गौतम स्वामी।
जो रिद्धि सिद्धि थे पावो रे, मनावो महावीर।४।
थारा सब विघन टल जावे, मन वांछित सुख प्रगटावे।
फिर आवागमन मिटावो रे, मनावो महावीर।५।
ये साल गुण्यासी मांई, देवास शहर के मांई।
कहे 'चौथमल' गुण गावो रे, मनावो महावीर।६।

१४. उपकारी गुरुजन

(तर्ज—जाओ जाओ ए मेरे साधु)

आते-आते हैं महा उपकारी जैन पूज्य वर याद।टेर।

पूज्य मुनिश्री हुकमचन्दजी, रहे व्याख्यान सुनाय।
बरसे थे रुपैये नभ से, नाथद्वारा माय।१।

पूज्यवर धर्मदासजी ने, शिष्य अपना कायर जान।
धार शहर में अनशन कीना, रखी धर्म की शान।२।

नेतसिंह मुनि किया संथारा, सेवा सुर आ करते।
उनके नाम का महुआ सैलाने, आज तलक जन कहते।३।

रतनचन्दजी महाराज पधारे, शहर जावरा माँय।
प्रसन्न हो सुर मंगलिक सुनता, रात समय में आय।४।

प्रत्यक्ष में भैंरू बुलवाया, मेवाड़ी मुनि मान।
उनके पुजारी देखो आज तक, जैनधर्म रहे मान।५।

स्वामी रोड़जी ने तपस्या में, ली प्रतिज्ञा धार।
गज वृषभ ने आहार बेराया, उदियापुर मँझार।६।

जोधपुर आसोप हवेली, पूज्य अमरसिंह आय।
शास्त्र श्रवणकर असुर वहाँ का, सरल बना हर्षाय।७।

अहमदाबाद में धर्मसिंह मुनि, रहे दरगा में जाय।
जिन्द प्रसन्न हो मिला आप से, रजनी के बीच आय।८।

अम्बाले में मुनिलाल का, हुआ अग्नि संस्कार।
चोल पट्टा चद्दर जली नहीं, मौजूदा इस वार।९।

गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, सुन जो भाग्य वाया।
कई पूज्य मुनि हुए जैन में, गुण जावे नहीं गाया।१०।
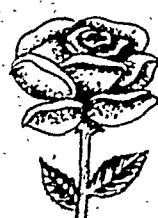
वैराग्य-उपदेश प्रधान-पद

१. दया का फल

(तर्ज—या हसीना बस मदीना, करबला में तू न जा)

दया की बोवे लता, शुभ फल वही नर पाएगा।
सर्वज्ञ का मंतव्य है, गर ध्यान में जो लाएगा ॥टेर॥
आयु दीर्घ होता सही, अरु श्रेष्ठ तन पाता वही।
शुद्ध गोत्र कुल के बीच में, फिर जन्म भी मिल जाएगा ॥१॥
घर खूब ही धन धान्य हो, अति बदन में बलवान हो।
पदवी मिले है हर जगह, स्वामी बड़ा कहलाएगा ॥२॥
आरोग्य तन रहता सदा, त्रिलोक में यश विस्तरे।
संसार रूप समुद्र को, आराम से तिर जाएगा ॥३॥
गुरु के परसाद से, यूं 'चौथमल' कहता तुम्हें।
दया रस भीने पुरुष के, इन्द्र भी गुण गाएगा ॥४॥

२. फूट की करतूत

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

फूट तज प्राणी रे २, आपस की फूट है या दुख दानी रे ॥टेर॥
पड़ी फूट गयो बदल विभीषण, रावण बात नहीं मानी रे।
सोना की गई लंका टूट, मिट्टी में मिलानी रे ॥१॥
कौरव पाण्डव के आपस में जब या फूट भराणी रे।
लाखों मनुष्य गये मारे युद्ध में, हुई नुक्सानी रे ॥२॥
पृथ्वीराज जयचंद राठौड़ के, हुई फूट अगवाणी रे।
बादशाह ने कियो राज, दिल्ली पे आनी रे ॥३॥
फूट बिके या कैसी सस्ती, फूटे सर नहीं पानी रे।
फूटे मोती की देखो, कीमत हलकानी रे ॥४॥
संप जहाँ पर मिले सम्पदा, फूट जहाँ पर हानी रे।
ऐसी जान के बुद्धिमान, तज कुल्ला वानी रे ॥५॥
अस्सी साल में रामपुरे, मण्डी बाजार में आनी रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल', यूँ कहे हित वानी रे ॥६॥

३. पीड़ा-नाशक-जाप

(तर्ज—चेतन चेतो रे दश बोल जगत में मुश्किल मिलिया रे)

सदा सुख पावो रे, चौबिस जिनन्द को इण विधि ध्यावो रे ।टेर।
श्री पद्म प्रभुजी का जाप किया रवि पीड़ा टल जावे रे।
चन्द्र पीड़ा हरे चन्दा प्रभुजी, जो गुण गावे रे ।१।

मंगल पीड़ा दूर करन में वासुपूज्य कहावे रे।
शान्तिनाथ हरे बुध पीड़ा जो शीश नमावे रे।२।
ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति सुपार्श्व स्वामी रे।
शीतल अरु प्रभु विमल अनन्त, धर्म कुन्थु नामी रे।३।
अरहनाथ नेमी वर्द्धमान गुरु पीड़ा पर हरना रे।
शुक्र पीड़ा तुरत टले, सुविधि स्मरणा रे।४।
मुनि सुव्रत का जप शनिश्चर, ग्रह प्रसन्न हो जावे रे।
अरिष्टनेम का भजन करे, नहीं राहु सतावे रे।५।
केतु ग्रह का जोर चले नहीं, पार्श्व जहाँ प्रकटावे रे।
मल्लिनाथ बाल ब्रह्मचारी, विघ्न हटावे रे।६।
सप्त सोलह, दश अष्ट, उन्नीस और इग्यारा रे।
तेंतीस अठारा, सतरा, सहस्र जप सर्व का सारा रे।७।
ॐ ह्रीं नमा तीर्थेश्वर, जपता रिद्धि सिद्धि आवे रे।
दुःख दरिद्र रोग शोक, और भय विरलावे रे।८।
उन्नीसे सतत्तर जोधाणे में, चोमासे आनन्द वर्तावे रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल', मनवंछित पावे रे।९।

४. गुणी गुण को जाने

(तर्ज—लावणी खड़ी)

पापी तो पुण्य का मारग क्या जाने है।
खर कमल पुष्प की गन्ध न पहचाने है ॥टेर॥
नकटाने नाक दुजा को दाय नहीं आवे।
विधवा ने सांग सुहागिन को नहीं सुहावें ॥
हो उदय चन्द्रमा चोरों को नहीं भावे।
लुब्धक को लगे अनिष्ट जो याचक आवे ॥
सुनके सिद्धान्त मिथ्यात्वी रोष आने हैं ॥१॥
अगायक गायक की करे बुराई।
निर्धन धनी से रखता है अकड़ाई ॥
दाता को देख मूंजी ने हँसी उड़ाई।
पतिव्रता को देख लंपट ने आँख मिलाई ॥
गुणी के गुण को द्वेषी कब माने है ॥२॥
वंध्या क्या जाने कैसे पुत्र जावे है।
सन्तन के भेद हो सन्त वही पावे है ॥

हीरे की जाँच तो जौहरी को आवे है।
या घायल की गति घायल वतलावे है॥
सत शिक्षा को मूरख उलटी ताने है॥३॥
मुक्ता को तजके गुंजा शठ उठावे।
इक्षु को तज के ऊँट कटारो खावे॥
पा अमूल्य नर-तन विषयों में ललचावे।
गज से विरुद्ध हो जैसे श्वान घुर्रावे॥
कहे 'चौथमल' जो समझे वही दाने है॥४॥

५. कुव्यसन-निषेध

(तर्ज—या हसीना वस मदीना करवला में तू न जा)

लाखों व्यसनी मर गये, कुव्यसन के परसंग से।
अय अजीजों वाज आओ, कुव्यसन के परसंग से॥टेर॥
प्रथम जूंवा है वुरा, इज्जत धन रहता कहाँ।
महाराज नल वनवास गये, कुव्यसन के परसंग से॥१॥
मांस भक्षण जो करे, उसके दया रहती नहीं।
मनुस्मृति में है लिखा, कुव्यसन के परसंग से॥२॥
शराव यह खराव है, इन्सान को पागल करे।
यादवों का क्या हुआ, कुव्यसन के परसंग से॥३॥
रण्डीवाजी है मना, तुमसे सुता उनके हुवे।
दामाद की गिनती करे, कुव्यसन के परसंग से॥४॥
जीव सताना नहीं खा, क्यों कत्ल कर कातिल वने।
दोजख का मिजवान हो, कुव्यसन के परसंग से॥५॥
इश्क वुरा परनार का, दिल में जरा तो गौर कर।
कुछ नफा मिलता नहीं, कुव्यसन के परसंग से॥६॥
माल जो परका चुरावे, यहाँ भी हाकिम दे सजा।
आराम वह पाता नहीं, कुव्यसन के परसंग से॥७॥
गांजा, चरस, चण्डू, अफीम और भंग तमाखू छोड़ दो।
'चौथमल' कहे नहीं भला, कुव्यसन के परसंग से॥८॥

६. दुर्लभ दस अंग

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

आज दिन फलियो रे-२ पाने जोग बोल यो दस को मिलियो रे॥टेर॥
मनुष्य जन्म और आर्य भूमि, उत्तम कुल को योगो रे।
दीर्घ आयु और पूर्ण इन्द्री, शरीर निरोगो रे॥१॥

मंगल पीड़ा दूर करन में वासुपूज्य कहावे रे।
शान्तिनाथ हरे बुध पीड़ा जो शीश नमावे रे।२।
ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति सुपार्श्व स्वामी रे।
शीतल अरु प्रभु विमल अनन्त, धर्म कुन्थु नामी रे।३।
अरहनाथ नेमी वर्द्धमान गुरु पीड़ा पर हरना रे।
शुक्र पीड़ा तुरत टले, सुविधि स्मरणा रे।४।
मुनि सुव्रत का जप शनिश्चर, ग्रह प्रसन्न हो जावे रे।
अरिष्टनेम का भजन करे, नहीं राहु सतावे रे।५।
केतु ग्रह का जोर चले नहीं, पार्श्व जहाँ प्रकटावे रे।
मल्लिनाथ बाल ब्रह्मचारी, विघ्न हटावे रे।६।
सप्त सोलह, दश अष्ट, उन्नीस और इग्यारा रे।
तेतीस अठारा, सतरा, सहस्र जप सर्व का सारा रे।७।
ॐ ह्रीं नमा तीर्थेश्वर, जपता रिद्धि सिद्धि आवे रे।
दुःख दरिद्र रोग शोक, और भय विरलावे रे।८।
उन्नीसे सतत्तर जोधाणे में, चोमासे आनन्द बर्तावे रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल', मनवंछित पावे रे।९।

४. गुणी गुण को जाने

(तर्ज—लावणी खड़ी)

पापी तो पुण्य का मारग क्या जाने है।
खर कमल पुष्प की गन्ध न पहचाने है ।।टेर।।
नकटाने नाक दुजा को दाय नहीं आवे।
विधवा ने सांग सुहागिन को नहीं सुहावें ।।
हो उदय चन्द्रमा चोरों को नहीं भावे।
लुब्धक को लगे अनिष्ट जो याचक आवे ।।
सुनके सिद्धान्त मिथ्यात्वी रोष आने हैं ।।१।।
अगायक गायक की करे बुराई।
निर्धन धनी से रखता है अकड़ाई ।।
दाता को देख मूंजी ने हँसी उड़ाई।
पतिव्रता को देख लंपट ने आँख मिलाई ।।
गुणी के गुण को द्वेपी कब माने है ।।२।।
वंध्या क्या जाने कैसे पुत्र जावे है।
सन्तन के भेद हो सन्त वही पावे है ।।

हीरे की जाँच तो जौहरी को आवे है ।
या घायल की गति घायल बतलावे है ।।
सत शिक्षा को मूरख उलटी ताने है ।।३।।
मुक्ता को तजके गुंजा शठ उठावे ।
इक्षु को तज के ऊँट कटारो खावे ।।
पा अमूल्य नर-तन विषयों में ललचावे ।
गज से विरुद्ध हो जैसे श्वान घुरावे ।।
कहे 'चौथमल' जो समझे वही दाने है ।।४।।

५. कुव्यसन-निषेध

(तर्ज—या हसीना बस मदीना करबला में तू न जा)

लाखों व्यसनी मर गये, कुव्यसन के परसंग से ।
अय अजीजों बाज आओ, कुव्यसन के परसंग से ।।टेर।।
प्रथम जूंवा है बुरा, इज्जत धन रहता कहाँ ।
महाराज नल वनवास गये, कुव्यसन के परसंग से ।।१।।
मांस भक्षण जो करे, उसके दया रहती नहीं ।
मनुस्मृति में है लिखा, कुव्यसन के परसंग से ।।२।।
शराब यह खराब है, इन्सान को पागल करे ।
यादवों का क्या हुआ, कुव्यसन के परसंग से ।।३।।
रण्डीबाजी है मना, तुमसे सुता उनके हुवे ।
दामाद की गिनती करे, कुव्यसन के परसंग से ।।४।।
जीव सताना नहीं खा, क्यों कत्ल कर कातिल बने ।
दोजख का मिजवान हो, कुव्यसन के परसंग से ।।५।।
इश्क बुरा परनार का, दिल में जरा तो गौर कर ।
कुछ नफा मिलता नहीं, कुव्यसन के परसंग से ।।६।।
माल जो परका चुरावे, यहाँ भी हाकिम दे सजा ।
आराम वह पाता नहीं, कुव्यसन के परसंग से ।।७।।
गांजा, चरस, चण्डू, अफीम और भंग तमाखू छोड़ दो ।
'चौथमल' कहे नहीं भला, कुव्यसन के परसंग से ।।८।।

६. दुर्लभ दस अंग

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

आज दिन कलियो रे-२ पाने जोग बोल यो दस को मिलियो रे ।।टेर।।
मनुष्य जन्म और आर्य भूमि, उत्तम कुल को योगो रे ।
दीर्घ आयु और पूर्ण इन्द्री, शरीर निरोगो रे ।।१।।
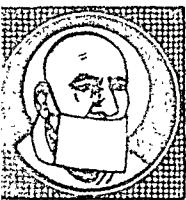
सद्गुरु कनक कामनी त्यागी, आप तिरे पर तारै रे।
तप क्षमा दया रस भीना, सूत्र उच्चारे रे ॥२॥
ये आठ बोल तो भवी-अभवी, कई जीव ने मिल जावे रे।
नहीं श्रद्धा होवे तो कुगुरु, मिल भरमावे रे ॥३॥
अवके श्रद्धा गाढ़ी राखो, शुद्ध पराक्रम को फोड़ो रे।
अल्प दिनों के मांही आठों, कर्म को तोड़ो रे ॥४॥
यह दश बोल की क्षीर मसाला, दान-पुण्य से पाई रे।
अनन्त काल की भूख-प्यास, थारी देगा भगाई रे ॥५॥
निर्धन का धनवान हुए, ज्यूँ अन्धे आँखाँ पाई रे।
चन्द्रकान्त मोती के मानिन्द, नर देह साही रे ॥६॥
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, कीजे धर्म कमाई रे।
उन्नीसे और सत्तर साल में जोड़ बनाई रे ॥७॥

७. धर्म का दवाखाना

(तर्ज—तरकारी लेलो मालिन तो आई बीकानेर की)

आए वैद्य गुरु जी, ले लो दवाई बिना फीस की ॥टेर॥
ले लो दवाई है सुखदाई, देर करो मत भाई।
नब्ज दिखाओ रोग बताओ, दो सब हाल सुनाई रे ॥१॥
सत्संग की शीशी के अन्दर, दवा ज्ञान गुणकारी।
एक चित्त से पियो कान से, सकल मिटे बीमारी रे ॥२॥
टिटिस कोप और थर्मामीटर, मति-श्रुति ज्ञान लगाओ।
साध्य-असाध्य भवी-अभवी, भेद रोग का पाओ रे ॥३॥
दया सत्य दत्त ब्रह्मचर्य है, निर्ममत्व फिर खास।
शम दम उपशम कई किसम की, दवा हमारे पास ॥४॥
रावण कंश मरे इस कारण, रोग हुआ अभिमान।
लोभ रोग ने भी पहुँचाई, अनन्त जीव को हान रे ॥५॥
जुआ मांस मदिरा वेश्या है, चोरी बुरी शिकार।
परनारी यह सब वद परहैजी वचे रहो हुशियार रे ॥६॥
त्याग तप से ताव तिजारी, रोग शोक मिट जावे।
हो निरोग शिव महल सिधावे, मन इच्छित फल पावे रे ॥७॥
चर्चा चूरण वड़ा तेज है, जो कोई इसको खावे।
संशय रूपी वदहाजमा, तुरत-फुरत मिट जावे रे ॥८॥
सम्वत् उन्नीसे अस्सी साल में देवास शहर मझारी।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' यह, दवाखाना किया जहारी रे ॥९॥
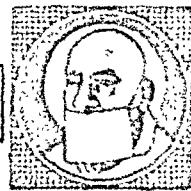
८. पत्नी का, पति को उपदेश

(तर्ज—अनोखा कुंवर जी हो साहिवा झालो इं घर आय)

अर्ज म्हारी सांभलो हो साहिवा ! मत निरखो पर नार ।टेर।
सोना रूपा मिट्टी तणा हो साहिवा, प्याले दूध भराय ।
रूप तणो तो फेर है, हो साहिवा, भेद स्वाद में नांय ।१।
धन घटे यौवन हटे हो साहिवा, तन से होय खराब ।
दण्ड भरे फिर रावले हो साहिवा, रहे कैसे मुख आब ।२।
दंभ करे निज कंथ से, हो साहिवा, सो थारी किम होय ।
चोर कर्म दुनियां कहे हो साहिवा, प्राण देवोगा खोय ।३।
रावण पद्मोत्तर जैसा, हो साहिवा, कीनी पर घर प्रीत ।
इसी अनीति योग से, हो साहिवा, पुरा हुआ फजीत ।४।
पर नारी रत मानवी हो साहिवा, जाति से होवे बहार ।
बाल घात होती घणी, हो साहिवा, जावे नर्क द्वार ।५।
मोटा कुल का ऊपन्या, हो साहिवा चालो चाल विचार ।
पर नारी माता गिनो, हो साहिवा शोभा हो संसार ।६।
उन्नीसे इक्यासी साल में, हो साहिवा आया सेखे काल ।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे हो साहिवा, या मदारिया में ताल ।७।

९. सीधा और मीठा बोल

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

रसना सीधी बोल, वैरन सीधी बोल ।
थारे ने कारणियें जीवने दूखड़ा ऊपजे ए ।टेर।
पांचों माही तूं ही ज मुखिया, अजब-गजब नखरारी ए ।
ऊँच-नीच नहीं सोचे बोले, मीठी खारी ए ।१।
माधव से सीधी नहीं बोली, शंका जरा नहीं राखीए ।
कौरव पाण्डव का युद्ध कराया, महाभारत साखी ए ।२।
वसु राजवी झूठ बोलने, नर्क बीच में जावे ए ।
मुख कारण से जल की मच्छी, प्राण गंवावे ए ।३।
एक-एक अवगुण सर्व इन्द्रियों में, थोड़े ही दरसावे ए ।
साख बिगाड़े बोल बिगाड़े, तुझ में दोष रहावे ए ।४।
ख्याल राग तो बिना सिखाया, तुझ ने केई आवे ए ।
धर्म तणा अक्षर जो कहे तो, तूं नट जावे ए ।५।

लपर-लपर वोल क्षण पल में, दे तूं राड़ कराई ए।
पंचों में तू काज विगाड़े, गाँव में फूट पडाई ए।६।
लाल वाई और फूल वाई, यह दो नाम है थारा ए।
मान बड़ाई की बात करीने, जन्म बिगाड़ा ए।७।
पर का मर्म प्रकाशे तूं तो, अहोनिशि करे लपराई ए।
साधु सतियों से तूं नहीं चूके, करे बुराई ए।८।
मत वोले, बोल तो मोके, मन में खूब विचारी ए।
प्रिय बोले मर्म रहित तूं, मान निवारी ए।९।
सूत्र के अनुसारे बोल्या, सर्व जीव सुख पावे ए।
महावीर भगवान कहे वह, मोक्ष सिधावे ए।१०।
असत्य और मिश्र भाषा, वीर प्रभु ने वरजी ए।
'चौथमल' कहे सत्य व्यवहार, भाषे मुनिवरजी ए।११।

१०. दया दिग्दर्शन

(तर्ज—लावनी अष्टपदी)

दया को पाले हैं बुद्धिमान, दया में क्या समझे हैवान।टेर।
प्रथम तो जैन धर्म मांही, चौवीस जिनराज हुए भाई।
मुख्य जिन दया ही बतलाई, दया बिन धर्म कह्यो नांई॥
दोहा—धर्मरुची करुणा करी, नेमनाथ महाराज।
मेघरथ राजा परे वो शरणे, रखकर सार्या काज॥
हुए श्री शान्तिनाथ भगवान।१।

दूसरा विष्णु मत मुझार, हुए श्रीकृष्णादिक अवतार।
गीता और भागवत कीनी, और वेदों में दया लीनी॥
दोहा—दया सरीखो पुण्य नहीं, अहिंसा परमोधर्म।
सर्व मत और सर्व ग्रन्थ में यही धर्म का मर्म॥
देख लो निज शास्त्र धर ध्यान।२।

तीसरा मत है मुसलमान, खोलकर देखो उनकी कुरान।
रहम नहीं है जिनके दिल दरम्यान, उसी को वेरहम लो जान॥
दोहा—कहते मुहम्मद, मुस्तफा, सुन लेना इन्सान।
दुःख देवेगा किसी जीव को, वो ही दोजख की खान।
मार जहाँ मुद्गल की पहचान।३।
लानत है उसी मत तांई, कि जिसमें जीव दया नाहीं।
जीव रक्षा में पाप कहवे, दुःख ये दुर्गति का सहवे॥

दोहा—मा हणो मा हणो वचन है, देखो आँख्या खोल ।
सूत्र रहस्य जाने नहीं मूरख, खाली करे झकझोल ।
कहो वे चतुर हैं कि अज्ञान ।४।
तीनों मजहव का कह दिया हाल, इसी पै कर लेना तुम ख्याल ।
दो अब कुगुरू का संग टाल, बनो तुम पट्काया प्रतिपाल ।
दोहा—गुरु हीरालाल जी का हुक्म से नाथद्वारा माँय ।
किया चौमासा चौथमल, उन्नीसे साठ में आय ॥
सुन के जीवरक्षा करो गुणगान ।५।

११. अभिमान त्याग

(तर्ज—तरकारी ले लो मालिन आई है बीकानेर की)

अभिमानी प्रानी, डरतो लाओ रे जरा राम को ।टेर।
यौवन धन में हो मदमाता, कणगट ज्यूं रंग आणे ।
तेरे हित की बात कहे तो, क्यों तू उलटी ताने रे ।१।
कन्या बेची, धन लियो एंची बात करे तू पेंची ।
मुरदा का ले खाँपन खेंची, हृदय कपट की कैंची रे ।२।
घर का टंटा डाल न्याति में, तू तो धड़ा नखावे रे ।
आपस बीच लड़ा लोगों ने, पंच बन जावे रे ।३।
धर्म-ध्यान की कहे बतावे, हम को फुरसत नाहीं रे ।
नाटक गोठ ब्याह में, दे तू दिवस बिताई रे ।४।
उपकार कियो नहीं किसी के ऊपर, खा-खा तन फुलावे रे ।
हीरा जैसो मनुष्य जन्म, क्यों वृथा गमावे रे ।५।
मारवाड़ में शहर सादड़ी, साल इक्यासी मांही रे ।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' श्रावण में गाई रे ।६।

१२. कर्म गति

(तर्ज—पंखी की)

कर्म गति भारी रे-२ नहीं टले कभी सुन ओ नरनारी रे ।टेर।
कर्म रेख पर मेख धरे, नहीं देख्यो कोई बलकारी रे ।
शाह को रङ्क, रङ्क को कर दे, छत्रधारी रे ।१।
राजा राम को राज्य तिलक, मिलने की हो रही तैयारी रे ।
कर्मों ने ऐसी करी, भेजे विपिन मुरारी रे ।२।
शीलवती थी सीता माता, जनक राजदुलारी रे ।
कर्मों ने अपमान दिया, फिरी मारी-मारी रे ।३।

सत्यधारी हरिश्चन्द्र राजा ने, बेची तारा नारी रे।
आप रहे भंगी के घर पर, भरे नित वारी रे।४।
सती अंजना को पीहर में, राखी नहीं लगारी रे।
हनुमान-सा पुत्र हुआ, जिनके बलकारी रे।५।
खन्दक जैसे मुनिराज की, देखो खाल उतारी रे।
गजसुकुमाल सिर झार सही, समता उर धारी रे।६।
सम्वत् उन्नीसे अस्सी साल, धम्मोत्तर सेखे कारी रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, दया सुखकारी रे।७।

१३. तन का बंगला

(तर्ज—करने भारत का कल्याण)

तेरे रहने को रहवान, मिला तन बँगला आलीशान।टेर।
हड्डी मांस चर्ममय सारा, तन है कैसा सुन्दर प्यारा।
है यह तिमंजिला मकान।१।
पाँव से लेकर कटि के तांई, पहला मंजिल है सुन भाई।
जिसमें है मल का स्थान।२।
कटि से ग्रीवा तक पहिचानो, इसमें है मशीन एक मानो।
पचता जिसमें भोजन-पान।३।
ग्रीवा से तीजा मंजिल सर, जिसमें बाबूजी का दफ्तर।
टेलीफोन लगे दो कान।४।
दुर्बीन है नैनों का प्यारा, वायु हित है नाक दुवारा।
मुख से खाते हैं पकवान।५।
लेकिन तुमको मिला किराये, जिसको पाकर क्यों बौराये।
बैठे इसको अपना मान।६।
जब भी हुकम मौत का आवे, बँगला खाली तुरत करावे।
'चौथमल' कहे भजो भगवान।७।

१४. उमरिया बीती जाय

(तर्ज—मारवाड़ी)

थारी सारी उमरिया, पापों में बीती जाय अब तो सोच रे।टेर।
धर्म बिना परभव में प्राणी, कहाँ जाकर ठहरेगा।
बेरंग चिट्ठी बिना नाम की, कौन इसे झेलेगा।१।
काले में धोले आ जावे, तो खटजावे भाई।
धोले में गर धूल पड़ी तो, शोभा होगी नांई।२।

गया बालपन देख जवानी, यह भी हुई रवाना।
वृद्धापन में नहीं सुधरी तो, होगा फिर पछताना।३।
वक्त खरीदी का है प्यारो, सोच-समझकर लेना।
जो कर्जे से दाम लिया तो, मुश्किल होगा देना।४।
जो सोया है खोया उसने, जागा जिसने पाया।
'चौथमल' कहे सुखी बनेगा, ज्योति में ज्योति समाया।५।

१५. कल की कौन जाने

(तर्ज—जाओ-जाओ ए मेरे साधु)

जाने-जाने यह कौन जगत् में, कल होने की बात।टेर।
ज्योतिषी ने लग्न देखकर, निज कन्या परनाई।
जाते सासरे विधवा हो गई, दे भावी कौन मिटाई।१।
वशिष्ठ ऋषि कहे लग्न बता, कल राम राज्य हो जावे।
उसी समय वनवास हुआ है रामायण बतलावे।२।
राजमती हर्षधर बोली, बनूँ नेम पटनार।
कुँवारी रहकर बनी साध्वी भावी के अनुसार।३।
खण्ड सातवाँ साधन धाया सुभूम चक्री राया।
होनी की क्या उसको मालूम दरिया बीच समाया।४।
कल यह होगा कल यह होगा क्यों तू मिथ्या ताने।
कल की होनी को तो वो ही पूरण ज्ञानी जाने।५।
सोलह वर्षों तक जीऊँगा, वीर स्वयं उच्चारा।
रखो दृढ़ विश्वास उसी पर है वो तारण हारा।६।
धर्मकाज कल करना चाहो, करो आज ही भाया।
पाव पलक की खबर नहीं है 'चौथमल' जितलाया।७।

१६. माया

(तर्ज—लावनी खड़ी)

यह माया नार की औरत, यह किसी की सुन्दर-बनी नहीं।
चाहे जितना करो जापता, इसके नर कोई धनी नहीं।टेर।
यह माया आती नर घर के कर देता है मालामाल।
हर सूरत से हुए इकट्ठी, नई-नई लगा के चाल।
देश-देश में खुले दुकानें बना देती है हुण्डीवाल।
भोला नर समझे नहीं दिल में नाहीं इसके न्यारे ख्याल।
दीवानों मन में यूँ आवे, मेरी रात [illegible] नहीं।चाहे।१।

सत्यधारी हरिश्चन्द्र राजा ने, बेची तारा नारी रे।
आप रहे भंगी के घर पर, भरे नित वारी रे।४।
सती अंजना को पीहर में, राखी नहीं लगारी रे।
हनुमान-सा पुत्र हुआ, जिनके बलकारी रे।५।
खन्दक जैसे मुनिराज की, देखो खाल उतारी रे।
गजसुकुमाल सिर झार सही, समता उर धारी रे।६।
सम्वत् उन्नीसे अस्सी साल, धम्मोत्तर सेखे कारी रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, दया सुखकारी रे।७।

१३. तन का बंगला

(तर्ज—करने भारत का कल्याण)

तेरे रहने को रहवान, मिला तन बँगला आलीशान।टेर।
हड्डी मांस चर्ममय सारा, तन है कैसा सुन्दर प्यारा।
है यह तिमंजिला मकान।१।
पाँव से लेकर कटि के तांई, पहला मंजिल है सुन भाई।
जिसमें है मल का स्थान।२।
कटि से ग्रीवा तक पहिचानो, इसमें है मशीन एक मानो।
पचता जिसमें भोजन-पान।३।
ग्रीवा से तीजा मंजिल सर, जिसमें बाबूजी का दफ्तर।
टेलीफोन लगे दो कान।४।
दुर्वीन है नैनों का प्यारा, वायु हित है नाक दुवारा।
मुख से खाते हैं पकवान।५।
लेकिन तुमको मिला किराये, जिसको पाकर क्यों बौराये
बैठे इसको अपना मान।
जब भी हुकम मौत का आवे, बँगला खाली तुरत करावे।
'चौथमल' कहे भजो भगवान।

१४. उमरिया बीती जाय

(तर्ज—मारवाड़ी)

थारी सारी उमरिया, पापों में बीती जाय अब तो सोच रे
धर्म बिना परभव में प्राणी, कहाँ जाकर ठहरेगा
बेरंग चिट्ठी बिना नाम की, कौन इसे झेलेगा
काले में बोले आ जावे, तो खटजावे भाई
धोले में गर धूल पड़ी तो, शोभा होगी नांई

गया बालपन देख जवानी, यह भी हुई रवाना।
वृद्धापन में नहीं सुधरी तो, होगा फिर पछताना।३।
वक्त खरीदी का है प्यारो, सोच-समझकर लेना।
जो कर्जे से दाम लिया तो, मुश्किल होगा देना।४।
जो सोया है खोया उसने, जागा जिसने पाया।
'चौथमल' कहे सुखी बनेगा, ज्योति में ज्योति समाया।५।

१५. कल की कौन जाने

(तर्ज—जाओ-जाओ ए मेरे साधु)

जाने-जाने यह कौन जगत् में, कल होने की बात।टेर।
ज्योतिषी ने लग्न देखकर, निज कन्या परनाई।
जाते सासरे विधवा हो गई, दे भावी कौन मिटाई।१।
वशिष्ठ ऋषि कहे लग्न बता, कल राम राज्य हो जावे।
उसी समय बनवास हुआ है रामायण बतलावे।२।
राजमती हर्षधर बोली, बनूँ नेम पटनार।
कुँवारी रहकर बनी साध्वी भावी के अनुसार।३।
खण्ड सातवाँ साधन धाया सुभूम चक्री राया।
होनी की क्या उसको मालूम दरिया बीच समाया।४।
कल यह होगा कल यह होगा क्यों तू मिथ्या ताने।
कल की होनी को तो वो ही पूरण ज्ञानी जाने।५।
सोलह वर्षों तक जीऊँगा, वीर स्वयं उच्चारा।
रखो दृढ़ विश्वास उसी पर है वो तारण हारा।६।
धर्मकाज कल करना चाहो, करो आज ही भाया।
पाव पलक की खबर नहीं है 'चौथमल' जितलाया।७।

१६. माया

(तर्ज—लावनी खड़ी)

यह माया नाते की औरत, यह किसी की सुन्दर-बनी नहीं।
चाहे जितना करो जापता, इसके सर कोई धनी नहीं।टेर।
यह माया आती नर घर के कर देता है मालोमाल।
हर सूरत से हुए इकट्ठी, नई-नई लगा के थाल।
देश-देश में खुलें दुकानें बना देती हैं हुण्डीवाल।
भोला नर समझे नहीं दिल में गाढ़े उनके लगाते ताल।
सेठानी मन में यूँ जाने, मेरी रात कोई जनी नहीं।चाहे।१।

हीरे-पन्ने कण्ठी डोरे गले बीच लटकाते हैं।
बग्गी के वीच में बैठ शाम को, हवाखोरी को जाते हैं।
दया दान की जो कोई केवे तो केवे माल मुफ्त नहीं आते हैं।
इसमें तो वो ही नर जाने जो कोई इसे कमाते हैं।
चाहे हमें मूँजी कह देवो धर्म अर्थ तो आनी नहीं।चाहे।२।
कोई कहे आज इन्द्र सभा है बैठक के दो रूपे हैं मोल।
तो आगे कुर्सी रखना हमारी दो के सवा दो देंगे खोल।
कोई कहे आज कसाई से गऊ के प्रान बचावें अमोल।
यही दुकान देखी क्या तुमने, अवे कभी मत हमसे बोल।
ज्यादा कहे मजहब को छोड़े और वात कर घनी नहीं।चाहे।३।
ऐसे मूँजी कब धर्म दीपावे, कब जाति की रक्षा करे।
क्या मजाल है गा गद्धे की, जो गज के सिर की झूल धरे।
सभी मजा गये लूट जगत में, मूँजी धन-धन करते मरे।
छोड़ नींद गफलत की प्राणी, आगे का नहीं फिकर करे।
'चौथमल' कहे तप धन सच्चा, ऐसा जुग में धनी नहीं।चाहे।४।

१७. कर्म की विचित्रता

(तर्ज—हो पिऊ पेली पेंसिजर)

रे जीवा जावे तू मोटर कार में, थारा कर्म जावे पहिला तार में।टेर।
भाग्यहीन नर मंदी लगावे, आई या तेजी वाजार में।१।
परदेश में जावे पापी कमावा, पीछे औरत मर गई बुखार में।२।
गहनों को डिव्वों गयो सटपट में, ऊँडो पड्यो है विचार में।३।
जेव से वटुआ गायब हुआ है, ये तो रहा है तकरार में।४।
लेणायत आ सभी सतावे, टोटो भी लागो व्यौपार में।५।
मौत माँगे पर भी नहीं आवे, दुःख मिले संसार में।६।
'चौथमुनि' कहे धर्म करे तो, रहवेगा मंगलाचार में।७।

लावणी : सास-बहू-संवाद

(तर्ज—ख्याल)

सास—वचन ये सत्य हमारा मान, जैन धर्म झूठा मत कर तान।टेर।
जैन धर्म है नास्तिक जग में, बोले केइ इन्सान।
वहू—दया दान ईश्वर नहीं माने ये, नास्तिक पहचान।
जगत् में जैन धर्म परधान, सासुजी मत कर खेंचातान।१।

जैन धर्म की निन्दा सासु, मुझ से सुनी न जावे।
ईश्वर भक्ति दया दान सत जैन धर्म समझावे।२।

सास—मैं समझी थी वाली भोली, तू निकली होशियार।
करे सामना उत्तर देवे, शर्म न रक्खें लगार।३।

वहू—सुनी-सुनी वातों पर सासु, दिया आपने कान।
जैन धर्म तो पूरा आस्तिक माने है भगवान।४।

सास—वांध मुखपत्ति करे सामायिक, राखे पुंजनी पास।
वात वहु आच्छी नहीं लागे, आवे मुझने हास।५।

वहू—जीव दया हित बांधु मुखपत्ति, राखु पुंजनी पास।
जो नहीं करे सामायिक सासु, वो भोगे यम त्रास।६।

सास—जैन धर्म के साधु तेरे, मुझे पसन्द नहीं आवे।
मुख पर वांधे सदा मुखपत्ति, माँग माँग कर खावे।७।

वहू—जैन धर्म के मुनि जगत में, होते हैं गुणवान।
कनक कामिनी के त्यागी हैं, नशा पत्ता पच्छखान।८।

कवि—डीगा नहीं सक्ता है देवता, जो दृढ़ धर्म के माईं।
'चौथमल' कहे सुभद्रा ने, सासू को समझाई।९।

(लावणी-संग्रह ८, १९६३ ई.)

।।श्रीकृष्ण जन्म।।

ढाल—श्री कृष्ण मुरारी, प्रकटे अवतारी यादव वंश में ।टेक।

गिरी सामने गज का देखो, उतर जाय अभिमान ।
चन्द्र चाँदनी वहाँ तक रहती, जब लग उगे न भान हो ।६६३।

मेंढक फिरे फुदकता जब तक, सर्प नजर नहीं आवे ।
शेर न देखे वहाँ तक मृगला, उछल फान्द लगावे हो ।६६४।

जो ऊगे सो अस्त होय, और फूले सो कुम्हलाय ।
हर्ष शोक का जोड़ा जग में, देखत वय पलटाय हो ।६६५।

पतिव्रता वालक और मुनिवर, जो कुछ शब्द उचारे ।
वाक्य इन्होंके निष्फल ना हों, जाने हैं जन सारे हो ।६६६।

सज्जनों का दुख हरण करन को, हरी आप प्रकटावे ।
अधिक रवि की गरमी हो तब, मेघ वारी वर्षावे हो ।६६७।

हरि देवकी के उर आये, स्वपना सात दिखावे ।
सिंह, सूर्य, गज, ध्वज, विमान, सर, अनल शिखा दरसावे हो ।६६८।

चवी स्वर्ग से गंगदत्त का, जीव गर्भ में आया ।
स्वप्नों का हाल रानी ने सारा, पति को आन सुनाया ।६६९।

कहे देवकी वसुदेव से, तुमने सुत मरवाया ।
जोर चला नहीं जरा इसी में, जीव वहुत दुख पाया हो ।६७०।

बिना पुत्र सारा घर सूना, जैसे नमक बिन भात ।
पशु-पक्षी बच्चों को पाकर, वे भी मन हर्षात हो ।६७१।

इस वालक को आप बचा लो, रहेगा नाम तुमारो ।
स्वप्ने के अनुसार नाथजी, क्या नहीं हृदय विचारो हो ।६७२।

नन्द अहीर की नार यशोदा, एक दिन मिलने आई ।
अपनी वीतक वात देवकी उसको सभी सुनाई ।६७३।

('भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र'
चरित-काव्य के कुछ अंश, पृ. ६०; १९७० ई.)

卐

श्री जैन दिवाकर-स्मृति-ग्रन्थ
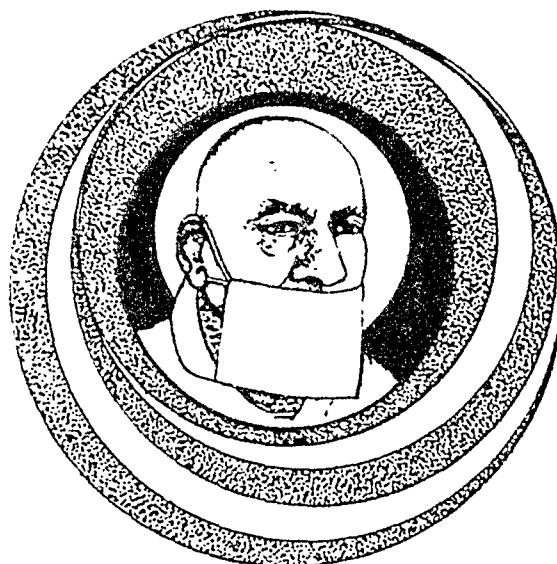
●●●●● धर्म, दर्शन, इतिहास और संस्कृति
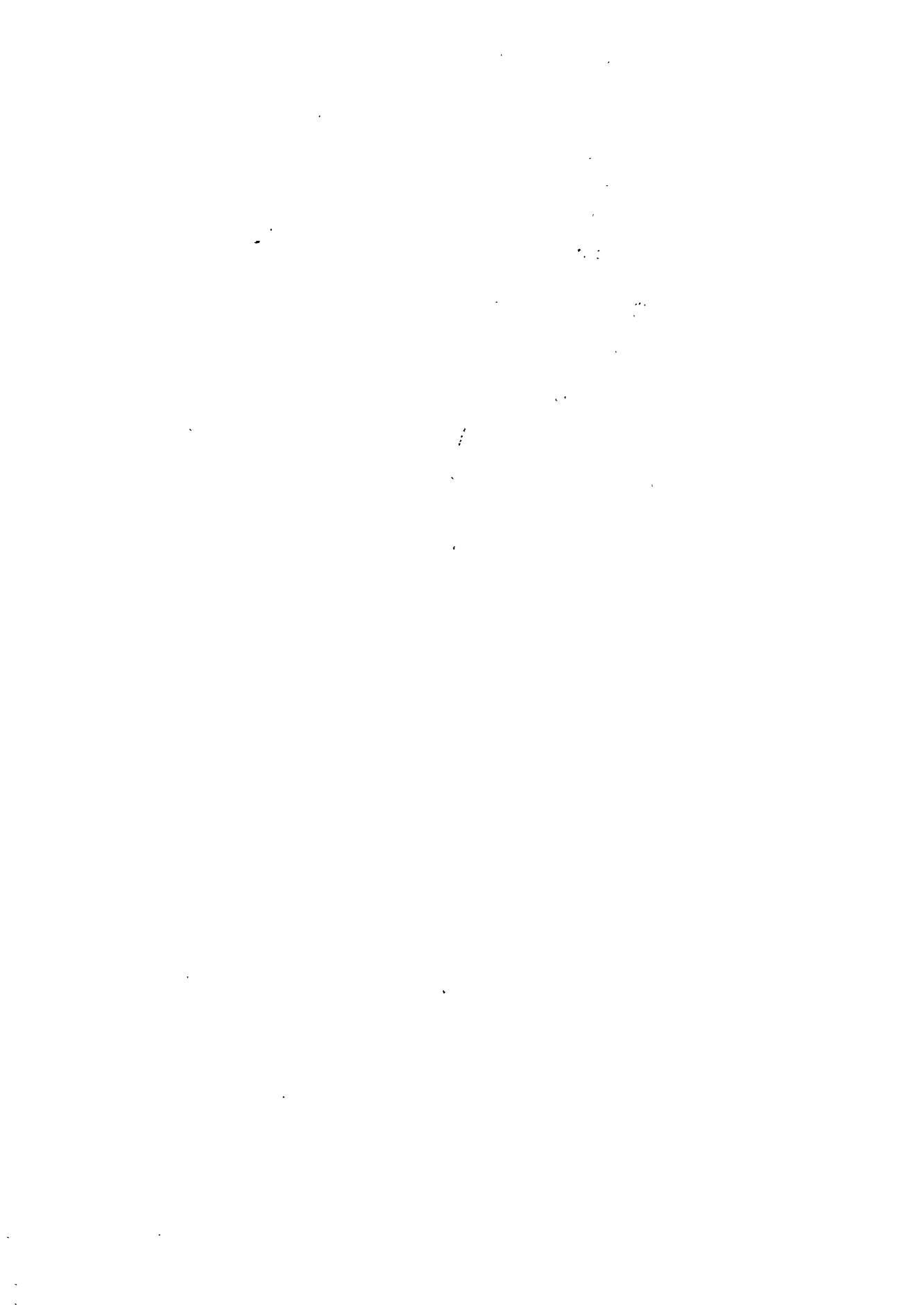
चिन्तन के विविध बिन्दु

आत्मा : दर्शन और विज्ञान की दृष्टि में

☆ श्री अशोककुमार सक्सेना

मनुष्य शरीर में आत्मा की सत्ता सभी—वेद, उपनिषद्, गीता, मनुस्मृति, बुद्ध के धम्मपद, भगवान महावीर के आगम आदि—स्वीकार करते हैं, पाश्चात्य-दर्शन भी आत्मा के अमर अस्तित्व तथा पुनर्जन्म का समर्थन करता है। मुख्य दार्शनिक प्लेटो, अरस्तू, सुकरात ने भी आत्मा तथा पुनर्जन्म में निष्ठा रखी। विभिन्न वैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि यह दुनिया बिना रूह की मशीन नहीं है। विश्व यन्त्र की अपेक्षा विचार के अधिक समीप लगता है। जड़वाद के जितने भी मत गत चालीस वर्षों में रखे गये हैं, वे आत्मवाद के विचार पर आधारित हैं, यही नवीन विज्ञान है। निःसन्देह अपने क्रमिक विकास में विज्ञान आत्मवादी होता जा रहा है। आत्मा के अस्तित्व पर दर्शन और विज्ञान एकमत होते जा रहे हैं।

आत्म-तत्व

"तत् त्वमसि"—तुम वह हो। आत्मा प्रत्येक व्यक्ति में है, वह अगोचर है, इन्द्रियातीत है। मनुष्य इस ब्रह्मांड के भँवर से छिटका हुआ छींटा नहीं है। आत्मा की हैसियत से वह भौतिक और सामाजिक जगत् से उभर कर ऊपर उठा है। परन्तु प्रश्न यह है कि एक ही आत्मा सब में व्याप्त है, या सब आत्मा पृथक्-पृथक् हैं। जब यह विद्वानों द्वारा सर्व सम्मति से निश्चित नहीं कि ईश्वर है, तो कैसे कह दूं कि आत्मा एक है।

हमारे धर्मग्रन्थ हमें बताते हैं कि यदि हम आत्मा को जानना चाहते हैं, तो हमें श्रवण, मनन, निदिध्यासन का अभ्यास करना होगा, भगवद्गीता ने इस बात को यों कहा है—"**तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।**" डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार इन्हीं तीन महान् सिद्धान्तों को महावीर ने सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के नाम से प्रतिपादित किया है।

हममें से अधिकांश जनों पर सांसारिक व्याप्तियाँ स्वामित्व करने लगती हैं, हम उनके स्वामी नहीं रह जाते। ये लोग उपनिषदों के शब्दों में "**आत्महनो जनाः**" हैं, इसलिए हमें आत्मवान्, आत्मजयी बनना चाहिये, यही बात भगवान् महावीर भी कहते हैं, 'आत्मजयी' हम परिग्रही होकर नहीं बन सकते।

आत्म-तत्व का अनन्त ज्ञान ही जैनधर्म का मूल संधान है। आचारांग सूत्र में स्पष्ट शब्दों में कहा है—

**"जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ।
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ॥"**

और फिर ऐसा कौन हिन्दू है जो आत्म-तत्व के ज्ञान को गौण समझे? न्यायकोष के अनुसार—

"शुद्धात्मतत्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते।"

गीता दर्शन

श्री कृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित करते हुए कहते हैं कि मनुष्य देह और आत्मा का मिला हुआ समुच्चय है। देह के मरने पर आत्मा मरता नहीं है। यह आत्मा न तो कभी मरता है और न जन्मता ही है; ऐसा भी नहीं है कि एक बार होकर फिर होवे नहीं, आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है; शरीर का वध हो जाए तो भी आत्मा मारा नहीं जाता। आत्मा अमर और अविनाशी है। जिस प्रकार कोई मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार देही अर्थात् आत्मा पुराना शरीर त्याग कर नया शरीर धारण करता है। सबके शरीर में रहने वाला आत्मा सदा अवध्य है। ऐसी अवस्था में केवल शरीर के मोह से, अपने धर्म या कर्तव्य-पथ से विचलित होना मनुष्य को शोभा नहीं देता—**गीता**—२-१३, २-१६, २-१०, २-२२, २-२३, २-३०।

बौद्धधर्म

महात्मा बुद्ध धम्मपद में कहते हैं कि जो अपनी आत्मा को प्रिय समझता है, उसको चाहिए कि आत्मा की रक्षा करे। अपनी आत्मा को पहले यथार्थता में लगावे तब दूसरों को शिक्षा दे। आत्मा को वश में करना ही दुस्तर है, आत्मा ही आत्मा का सहायक है, आत्मदमन से मनुष्य दुर्लभ सहायता प्राप्त कर लेता है, आत्मा से उत्पन्न हुआ पाप आत्मा को नाश कर देता है। आत्मा को हानि पहुँचाने वाले कर्म आसान हैं, हित करने वाले शुभकर्म बहुत कठिन हैं।

—**धम्मपद : अत्तवग्गो द्वादसमो** १,२,२,४,५,६,७)।

जो कार्य अबौद्ध-दर्शन आत्मा से लेते हैं, वह सारा कार्य बौद्ध-दर्शन में मन=चित्त=विज्ञान से ही लिया जाता है। आत्मा को जब शाश्वत, ध्रुव, अविपरिणामी मान लिया तो फिर उसके संस्कारों का वाहक होने की संगति ठीक नहीं बैठती, किन्तु मन=चित्त=विज्ञान तो परिवर्तनशील है, वह अच्छे कर्मों से अच्छा और बुरे कर्मों से बुरा हो सकता है। धम्मपद की पहली गाथा है : सभी अवस्थाओं का पूर्वगामी मन है, उनमें मन ही श्रेष्ठ है, वे मनोमय हैं। जब आदमी प्रदुष्ट मन से बोलता है व कार्य करता है, तब दुःख उसके पीछे-पीछे ऐसे हो लेता है जैसे (गाड़ी के) पहिये (बैल के) पैरों के पीछे-पीछे। न मन आत्मा है, न धर्म आत्मा है और न ही मनो-विज्ञान आत्मा है। 'आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न है', ऐसा कहना, या यह कहना कि 'आत्मा और शरीर दोनों एक है'—दोनों ही मतों से श्रेष्ठ जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता, अतः तथागत बीच के धर्म का उपदेश देते हैं कि प्रतीत्य-समुत्पाद से दुःख-स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। अविद्या के ही सम्पूर्ण विराग से, निरोध से संस्कारों का निरोध तथा दुःख-स्कन्ध का निरोध होता है।

जैनदर्शन

जैनदर्शन के अनुसार जीव (आत्मा) तीन प्रकार का है : बहिरात्मा अन्तरात्मा और परमात्मा। परमात्मा के दो प्रकार हैं—अर्हत् और सिद्ध। इन्द्रिय-समूह को आत्मा के रूप में स्वीकार करने वाला बहिरात्मा है। आत्म-संकल्प-देह से भिन्न आत्मा को स्वीकार करने वाला अन्तरात्मा है। कर्म-कलंक से विमुक्त आत्मा परमात्मा है। केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जानने वाले स-शरीरी जीव (आत्मा) अर्हत हैं तथा सर्वोत्तम सुख (मोक्ष) को संप्राप्त ज्ञान-शरीरी जीव सिद्ध कहलाते हैं। जिनेश्वरदेव का यह कथन है कि तुम मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोड़कर, अन्तरात्मा में आरोहण कर परमात्मा का ध्यान करो।

शुद्ध आत्मा अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चैतन्य गुण वाला, अशब्द, अलिंगग्राह्य और संस्थान रहित है। आत्मा मन, वचन और कायरूप त्रिदण्ड से रहित, निर्द्वन्द्व—अकेला, निर्मम—ममत्व-रहित, निष्कल—शरीररहित, निरालम्ब—परद्रव्यालम्बन से रहित, वीतराग, निर्दोष, मोहरहित, तथा निर्भय है। आत्मा निर्ग्रन्थ (ग्रन्थिरहित) है, नीराग है, निःशल्य (निदान, माया और मिथ्या-दर्शनशल्य से रहित) है, सर्वदोषों से निर्मुक्त है, निष्काम (कामनारहित) है और निःक्रोध, निर्मान, तथा निर्भय है। आत्मा ज्ञायक है। मैं (आत्मा) न शरीर हूँ, न मन हूँ, न वाणी हूँ और न उनका कारण हूँ। मैं न कर्त्ता हूँ, न करानेवाला हूँ और न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ।

—समणसुत्त : प्रथम खण्ड : ज्योतिर्मुख : १५ आत्मसूत्र—१७७-१९१

नैयायिक, वैशेपिक, सांख्य, मीमांसक आदि आत्मा का अनेकत्व तो स्वीकार करते हैं, किन्तु साथ ही साथ आत्मा को सर्वव्यापक भी मानते हैं। भारतीय दर्शनशास्त्र में आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व मान कर भी उसे स्वदेह परिमाण मानना जैन-दर्शन की ही विशेषता है। रामानुज जिस प्रकार ज्ञान को संकोच विकासशाली मानते हैं, उसी प्रकार जैन दर्शन आत्मा को संकोचविकासशाली मानता है।

पाश्चात्य दर्शन

प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो का मत है कि आत्माएँ दो प्रकार की होती हैं—एक आत्मा अमर है और दूसरी का क्षय हो जाता है।

अरस्तू ने अपनी पुस्तक "आत्मा पर" में लिखा है कि शरीर और आत्मा में वैसा सम्बन्ध है जैसा मोम में और मोमवत्ती में। मोम एक भौतिक पदार्थ है और मोमवत्ती उसका आकार है।

मुसलमानों में सूफी सम्प्रदाय के सन्त मौलाना जलालुद्दीन ने कहा था—"मैं सहस्रों वार इस पृथ्वी पर जन्म ले चुका हूँ।"

यद्यपि ईसाई धर्म पुनर्जन्म तथा आत्मा पर विश्वास नहीं करता, परन्तु पश्चिमी देशों के कई दार्शनिकों ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। एडविन आर्नल्ड ने आत्मा के अनादित्व तथा अमरत्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है।

"आत्मा अजन्मा और अमर है। कोई ऐसा समय न था जब यह नहीं थी, इसका अन्त और आरम्भ स्वप्न मात्र है। मृत्यु ने इसे कभी स्पर्श नहीं किया।"

विज्ञान की कसौटी पर

आधुनिक विज्ञान के अनुसार समस्त दृश्य और अदृश्य जगत सूक्ष्म तरंगों से बना है। इन तरंगों में तीन मुख्य तत्व हैं—जीवाणु, शक्ति और विचार।

आत्मा इन तीनों का ही एक विशिष्ट स्वरूप है, मृत्यु के उपरान्त आत्मा स्वकीय प्रेरणा-नुसार किसी भी देह, पदार्थ या स्वरूप का निर्माण या विलय कर सकती है। आत्मा का सशरीर सूक्ष्म शरीर के नाम से जाना जाता है। यह सूक्ष्म शरीर न्यूट्रिनों नामक कणों से निर्मित होता है। न्यूट्रिन कण अदृश्य, आवेश रहित और इतने हल्के होते हैं कि इनमें मात्रा और भार लगभग नहीं के वरावर होता है। ये भी स्थिर नहीं रह सकते और प्रकाश की तीव्र गति से सदा चलते रहते हैं।

वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके देखा है कि यदि न्यूट्रिन कणों को किसी दीवार की ओर छोड़ा जाय तो वे दीवार को पार कर अन्तरिक्ष में विलीन हो जाते हैं, कोई भी भौतिक वस्तु उन्हें रोक नहीं सकती। इन न्यूट्रिन कणों को पुनः भौतिक वस्तु के रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है।

परामनोविज्ञान के अनुसार यह सूक्ष्म शरीर किसी भी स्थान पर किसी भी दूरी और परिमाण में अपने को प्रकट व पुनर्लय कर सकता है।

ईसाइयों के पवित्र आत्मा (होली घोस्ट) के ही समकक्ष श्री अरविन्द ने 'साइके' (PSYCHE) का साक्ष्य दिया है, जिसे 'चैत्य-पुरुष' कहा जाता है, जो कि आत्मा और परमात्मा को जोड़ने वाली एक माध्यमिक कड़ी है। सारे सृजन इस चैत्य पुरुष में से ही आते हैं। प्राण-चेतना के गहिरतर स्तरों पर घटित होने वाला उन्मेष या आवेश विधायक, सर्जनात्मक, मंगल कल्याणकारी होता है, वह अतीन्द्रिक होता है, या इन्द्रियेतर ज्ञान-चेतना का प्रतिफलन होता है।

मरणोत्तर जीवन और पारलौकिक आत्माओं के साथ सम्पर्क-सम्प्रेषण के जो "सियांस" होते हैं, उनमें भी एक संवेदनशील माध्यम के शरीर में मृतात्माओं का आह्वान किया जाता है। सहसा ही माध्यम आविष्ट हो उठता है, उसे अर्ध मूर्छा-सी आ जाती है, तब स्वर्गस्थ आत्माएँ उसके शरीर और चेतना पर अधिकार कर अनेक छुपे रहस्य बताती हैं, भविष्यवाणियाँ करती हैं, पर लोकों का परिचय देती है। विश्व-विख्यात काम-वैज्ञानिक और मनीषी हेवलाक एलिस इन 'सियांस' तथा 'प्लेंचेट' में अनुभव लेकर आत्माओं के अस्तित्व पर विश्वास करने लगे थे, ओलीवर लाज जैसा शिखरस्थ वैज्ञानिक परलोकवादी हो गया था। उसने स्वयं भूत-प्रेतों तथा अतिभौतिक घटनाओं के अनुभव के अनेक साक्ष्य प्रस्तुत किये थे।

इस सम्बन्ध में कनाडा के प्रसिद्ध स्नायु-सर्जन डा० पेनफील्ड के प्रयोग चिरस्मरणीय रहेंगे (रीडर्स डाइजेस्ट, सितम्बर, १९५८), जिन्होंने सिद्ध किया कि मस्तिष्क में सूक्ष्म शरीर नित्य बना रहता है, केवल स्थूल शरीर ही विनाशशील है।

लन्दन के प्रोफेसर विलियम क्रुक्स, जो प्रसिद्ध रसायन-शास्त्री थे, ने परलोक, पुनर्जन्म तथा आत्मा सम्बन्धी ज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन किया और अपनी जाँच को प्रकाशित कराया—अपनी पुस्तक "रिसर्चेज इन स्प्रिचियुलिज्म' में।

परान्वेषण में पाश्चात्य वैज्ञानिक डा० मायर्ज, फ्रेंक पोडमोर, अलफ्रेड वालेस, प्रो० आक्सावफ, रिचर्ड होडजेसन आदि अपनी प्रामाणिकता के लिये प्रसिद्ध थे, और इन लोगों ने सन् १८८५ में वैज्ञानिक पद्धति से प्लेनचिट की सहायता से तत्सम्बन्धी सत्य का शोध करने के लिये इंग्लैण्ड में एस० पी० आर० नामक मानसिक शोध-संस्थान की स्थापना की थी।

हेग के डा० माल्थ और जेल्ट ने परलोकगत जीवों के साथ वार्तालाप करने के लिये डायनामिस्टोग्राफ नामक यन्त्र आविष्कृत किया और इसकी मदद से बिना किसी माध्यम के परलोकगत जीवों के सन्देश पाये।

एँड्रू जैकसन के अनुसार प्राणमय सूक्ष्म शरीर (आत्मा) की तोल १ औंस हो सकती है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने इस सूक्ष्म शरीर को एक्टोप्लाज्म की संज्ञा दी।

कैलिफोर्निया के आर्थर ए० बैल ने यह प्रमाणित किया है कि शरीर की विभिन्न जीवन-

क्रियायें मनुष्य की मनोभूमि पर अवलम्बित हैं, देहस्थित सूक्ष्म शरीर में जब शक्ति का क्षय हो जाता है, तब वह स्थूल शरीर के साथ अपना सम्बन्ध तोड़ डालता है।

कणाद ऋषि ने कहा है—"**अणूनां मनसश्च अद्यं कर्म अदृष्टकारितम्**" अतः यह तो निश्चित है कि प्राण (आत्मा) विद्युतात्मक प्रकाशात्मक है, और अथर्ववेद के एकादश काण्ड की दूसरी ऋचा :—

> **"नमस्ते प्राण क्रन्दाय, नमस्ते स्तन यित्नवे।**
> **(विद्युतात्मना विद्योतमानाय) नमस्ते प्राण विद्युते।**
> **नमस्ते प्राण वर्षते।"**

की तरह आधुनिक वैज्ञानिकों की भी अब राय प्रदर्शित हो चुकी है कि ऋणाणु-धनाणु प्राण-परमाणु विद्युत शक्ति से स्थूल शारीरिक क्रियायें संचालित होती हैं।

वी० वी० श्रेनिक नोटगिंग तथा सर क्रुक्स ने विगत आत्माओं के छायाचित्र (फोटो) खींचने के विशेष कैमरे की सहायता से मृत आत्माओं के चित्र खींचने में सफल हुये। श्रेनिक ने अपनी पुस्तक 'फेनोमीनन ऑफ मैटरियलायजिंग' और स्वामी अभेदानन्द ने अपनी पुस्तक 'लाइफ बियोण्ड डेथ' में मृत आत्माओं के बहुत से चित्र भी दिये हैं। विस्तृत विवरण के लिये देखिये साइमन एडमंड्स की पुस्तक 'स्प्रिट फोटोग्राफी'।

दिव्य दृष्टि (टेलेफोटो), मनः प्रलय ज्ञान (टेलेपैथी), अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष (एक्स्ट्रा-सेन्सरी परसेप्सन), प्रच्छन्न संवेदन (क्रिप्टेस्थीसिया), तथा दूरक्रिया (टेलेपिनेसिस) आदि आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती हैं।

प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री अर्विन श्रेडिंगर ने लिखा है अपने निबन्ध 'सीक फार दी रोड' (१९२५) में कि "सौ साल पूर्व सम्भवतः अन्य कोई व्यक्ति इस स्थान पर बैठा था....तुम्हारी तरह वह भी जन्मा। तुम्हारी तरह उसने सुख-दुःख का अनुभव किया....क्या वह तुम्हीं नहीं थे? यह तुम्हारे अन्दर का आत्मा क्या है?........इस 'और कोई' का स्पष्ट वैज्ञानिक अर्थ क्या हो सकता है?.... इस तरह देखने या समझने से आप तुरन्त वेदान्त में मूल विश्वास की पूर्ण सार्थकता पर आ जाते हैं, इन सबका निचोड़....है—'तत् त्वम् असि' या इस प्रकार के शब्दों में—मैं पूर्व में हूँ, मैं पश्चिम में हूँ, मैं नीचे हूँ, मैं ऊपर हूँ, मैं यह समूचा संसार हूँ।' आश्चर्य की बात यह है कि श्रेडिंगर ने यह लेख तरंग यांत्रिकी की ऐतिहासिक खोज के कुछ मास पूर्व लिखा।

हमारे युग के महान् शरीर-रचना शास्त्री सर चार्ल्स शैरिंगटन ने अपनी पुस्तक '**मैन आन हिज नेचर**' (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, १९५१) में कहा है—........"मानसिक" की परीक्षा ऊर्जा के रूप में नहीं की जा सकती, विचार, भावनाएँ, आदि की अवधारणा ऊर्जा (द्रव्य) के आधार पर नहीं की जा सकती। वे इससे बाहर की चीजें हैं....इस प्रकार चित्त (चेतन) हमारे स्थूल संसार में एक भारी भूत की तरह चला जाता है। अदृश्य, अस्पृश्य, अमूर्त, यह कोई साकार चीज नहीं है, यह कोई 'चीज' ही नहीं है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उसकी पुष्टि नहीं होती और कभी हो नहीं सकती।'

भौतिकी में नोबेल पुरस्कार विजेता तथा नयी भौतिकी के एक जन्मदाता ई० पी० विग्नर ने स्पष्ट किया है कि—

"कोई भी नापजोख उस समय तक पूरी नहीं होती जब तक उसका परिणाम हमारी चेतना
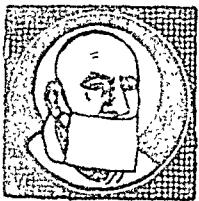
में प्रविष्ट नहीं होता। यह अन्तिम चरण उस समय सम्पन्न होता है जबकि अन्तिम मापक उपकरण के और हमारी चेतना को सीधा प्रभावित करने वाली चीज के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यह अन्तिम चरण हमारे वर्तमान ज्ञान के लिए अभी रहस्यों से घिरा है और अब तक क्वांटम यांत्रिकी (आधुनिक भौतिकी) या अन्य किसी भी सिद्धान्त के अधीन इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका है।"

आइन्स्टाइन से उनके गम्भीर रोग के दौरान पूछा गया कि क्या वह मृत्यु से डरते हैं, तब उन्होंने उत्तर दिया था, 'मैं सभी जीवित चीजों के साथ ऐसी एकात्मकता का अनुभव करता हूँ कि मेरे लिये यह बात कोई अर्थ नहीं रखती कि व्यक्ति कहाँ शुरू होता है और कहाँ समाप्त होता है।"

आन्तरिक जगत की वास्तविकता का खंडन नहीं किया जा सकता, हिंशेलवुड ने कहा है—"आंतरिक जगत की वास्तविकता का प्रत्याख्यान आसपास की सम्पूर्ण सत्ता को एकदम अस्वीकार करने के समान है। उसकी अर्थवत्ता को कम करना, जीवन के लक्ष्य को ही गिराना है और उसे 'प्राकृतिक चयन के उत्पाद' की संज्ञा देकर उड़ा देना निरा तर्काभास है।'

एक अन्य भौतिक-शास्त्री यान नायमान् ने क्वांटम यान्त्रिकी की स्थापनाओं के सिद्धान्तों में चेतना (चित्र) के योग का समावेश किया, उन्होंने अनुमान किया कि तथाकथित 'तरंग पिटक' का हल निकालने के लिए चेतना से अन्तःक्रिया आवश्यक है, वह कहते हैं—'विषयी प्रेक्षण एक नयी सत्ता है, जो भौतिक परिमंडल से सापेक्ष है। लेकिन उसके बराबर नहीं की जा सकती। वस्तुतः विषयी के प्रेक्षण हमें व्यक्ति के बौद्धिक आभ्यन्तर जीवन में ले जाता है, जो स्वभावतः प्रेक्षणातीत है। हमें संसार को दो भागों में बाँटना चाहिये, एक प्रेक्षित प्रणाली, दूसरा प्रेक्षण करने वाला। पहले में हम सारी भौतिक प्रक्रियाओं का अनुसरण कर सकते हैं (कम से कम सिद्धान्त रूप में)। दूसरे में यह बात अर्थहीन है। दोनों के बीच की सीमा रेखा बहुत कुछ तदर्थ है। यह सीमा वास्तविक प्रेक्षण के शरीर के भीतर मनमाने ढंग से ले जायी जा सकती है। यही बात मनोभौतिक समांतरवाद के सिद्धान्त का सार है, लेकिन इससे इस तथ्य में कोई परिवर्तन नहीं आता कि हर विधि में सीमा (शरीर तथा चित्र के बीच) कहीं रखनी जरूर होगी।'

स्व० योगानन्द परमहंस का क्रिया योग, राधास्वामी गुरु महाराज श्री चरनसिंह का सबत-सुरत योग, महर्षि महेषयोगी का सर्वातीत-ध्यान (ट्रांसेंडेंटल मेडीटेशन), इन सभी यौगिक विद्याओं में इस उपरि-मानसिक अतीन्द्रिक या आत्मिक उन्मेष का अनुभव ध्यान में अचूक रूप से होता है।

प्रत्येक प्राणि के शरीर के अदृश्य आभावलय (AURA) को देखकर उसकी मानसिक स्थिति का निर्णय करने के लिये लोबसांग रम्पा ने एक यन्त्र आविष्कृत किया है। इस विलय-दर्शन से व्यक्ति की अचूक चिकित्सा हो सकती है।

हिप्नाटिज्म यानी सम्मोहन विद्या से पूर्व-जन्म-स्मृति या जाति-स्मरण ज्ञान तक पहुँचने के अनेक सफल प्रयोग हुये हैं।

अभी कुछ ही दशक पहले जर्मनी में एक महान् आधुनिक योगदर्शी हुआ है—रूडाल्फ स्टाइनर। उसने ऑकल्ट से अतीन्द्रिक आत्मानुभूति तक जाने के मार्ग का अन्वेषण किया था। गजिफ
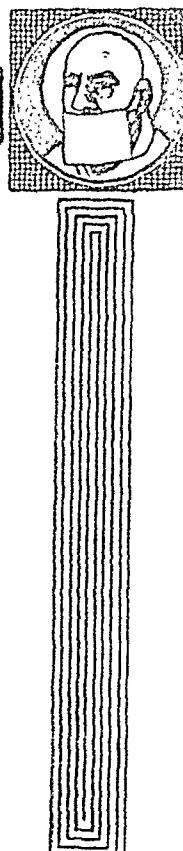
और आडस्पेंस्की भी समकालीन विश्व के महान् पराभौतिक द्रष्टा और चिन्तक हुए। अमेरिका के प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक डा० स्टीवेन्सन इसी अनुसन्धान हेतु भारत भी आये थे।

अमरीका के 'विलसा क्लाउड चेम्बर' के शोध से वड़े आश्चर्यजनक तथ्य सामने आये हैं। इससे यह प्रकट होता है कि मृत्यु के उपरान्त भी प्राणी का अस्तित्व किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है।

इस प्रयोग के अन्तर्गत एक ऐसा वड़ा सिलिण्डर लिया जाता है, जिसकी भीतरी परतें विशेष चमकदार होती हैं। फिर उसमें कुछ रासायनिक घोल डाले जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप विशेष प्रकार की चमकदार और हल्की-सी प्रकाशीय गैस भीतर फैल जाती है। इस गैस की विशेषता है कि यदि कोई परमाणु या इलेक्ट्रान इसके भीतर प्रवेश करें तो शक्तिशाली कैमरे द्वारा उसका चित्र उतार लिया जाता है।

प्रयोग के लिये एक चूहा रखा गया। विजली का करेण्ट लगा कर इस चूहे को मार डाला गया। चूहे के मरणोपरान्त उस सिलेण्डर का चित्र उतारा गया। वैज्ञानिक यह देख कर विस्मित हुये विना नहीं रहे कि मृत्यु के पश्चात् गैस के कुहरे में भी मृत चूहे की धुंधली आकृति तैर रही थी। वह आकृति वैसी ही हरकतें भी कर रही थी जैसी जीवित अवस्था में चूहा करता है। इस प्रयोग से यह प्रमाणित हुआ कि चूहा मृत्यु के पश्चात् प्राणी सत्ता किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है।

अपनी सुविख्यात कृति 'मेमोरीज, ड्रीम्स, रिफ्लेक्शन्स' में विश्व-विख्यात तत्त्वदर्शी, चिन्तक और मनोवैज्ञानिक 'कार्ल जुंग' ने अपने एक विचित्र अनुभव का वर्णन किया है, जिसका तात्पर्य है कि हमारे जगत में अवश्य ही एक चौथा आयाम है, जो अनोखे रहस्यों से ओतप्रोत है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों स्टेनिस्लाव ग्रोफ और जान हेलिफेक्स ग्रोफ ने पिछले दिनों अनेक रोगियों का अध्ययन करते समय तथा रेमण्ड ए० मूडी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'लाइफ आफ्टर डेथ' में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है—जव रोगी मृतक घोषित कर दिये गये, पर फिर भी तत्पश्चात् मृतक जीवित हो उठे और उन्होंने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारा।

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डा० नेलसन वाल्ट का कथन है कि—'मनुष्य के अन्दर एक बलवती आत्म-चेतना रहती है, जिसे जिजीविषा एवं प्राणधात्री शक्ति कह सकते हैं।

मनःशास्त्री हेनब्रुक ने अपनी शोधों में इस वात का उल्लेख किया है कि अतीन्द्रिय क्षमता पुरुषों की अपेक्षा नारियों में कहीं अधिक होती है।

रूस के इलेक्ट्रान विशेषज्ञ मयोन किर्लियान ने फोटोग्राफी की एक विशेष प्रविधि द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि मानव के स्थूल शरीर के अन्दर का सूक्ष्म शरीर ऐसे सूक्ष्म पदार्थों से बना होता है, जिनके इलेक्ट्रान स्थूल शरीर के इलेक्ट्रानों की अपेक्षा अत्यधिक तीव्र गति से गतिमान होते हैं। यह सूक्ष्म शरीर पार्थिव शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है। न्यूयार्क में परामानसिक तत्त्वों की खोज के लिए एक विभाग की स्थापना की गयी है, जिसके अध्यक्ष हैं 'डा० रोवर्ट वेफर'।

लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के फिजियोलॉजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० लियोनिद वासिलयेव

ने टैलीपैथी द्वारा कई मील दूर एक प्रयोगशाला में अनुसन्धानरत वैज्ञानिकों को सम्मोहित कर अनुसन्धानकर्ताओं को अपने प्रयोग से हटाकर दूसरे प्रयोग में लगवा दिया। यह घटना सिद्ध करती है कि भौतिक शरीर के परे मनुष्य के सूक्ष्म शरीर का भी अस्तित्व है।

आत्मा या प्राणों की गुत्थी आज भी वैज्ञानिकों के सम्मुख प्रश्न चिन्ह बनी खड़ी है। वे नहीं कह सकते कि प्राण मस्तिष्क में बसते हैं या आत्मा में, या मस्तिष्क और आत्मा का कोई ऐसा सम्बन्ध है, जिसका पर्दा उठना अभी बाकी है।

प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री मिखाइल पोलान्यी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विश्व की अधिकांश वस्तुओं का अस्तित्व कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित है, जिनका ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिकों को नहीं है।

प्राणी के सम्बन्ध में हम जितना जानते हैं, उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मानव शरीर एक 'यन्त्र' है, किन्तु 'मैं' इसकी गतिविधियों को नियन्त्रित करता है।

चित्त-शरीर समस्या सदा से जीवित है, हर्मन वेल के शब्दों में—"हमें विज्ञान के आगे विकास की प्रतीक्षा करनी होगी। सम्भवतः हजारों वर्ष तक, तब जाकर हम द्रव्य, जीवन तथा आत्मा के जटिल तानेबाने का एक विस्तृत चित्र प्रस्तुत कर सकेंगे और इस साहसपूर्ण कार्य को मानव किस प्रकार झेल सकेगा, सिवा जीवात्मा तथा परमात्मा की परस्पर पूरकता में आस्था के आधार पर?"

[प्रस्तुत लेख में लेखक ने आत्मा के सम्बन्ध में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य दार्शनिकों, वैज्ञानिकों एवं डाक्टरों के अभिमत दिये हैं। इसमें उनके अनुभवों व प्रयोगों के आधार पर बने विचार हैं। आधुनिक जगत आत्मा के सही स्वरूप तक कब पहुँचेगा यह मन्जिल अभी दूर लगती है।

—संपादक]

परिचय एवं पता :

अशोककुमार सक्सेना
दर्शन और विज्ञान के अध्येता
वरिष्ठ शिक्षक जीव-विज्ञान
जवाहर विद्यापीठ, कानोड़।

आत्मसाधना में निश्चयनय की उपयोगिता

✡ श्री सुमेरमुनिजी

जैन-दर्शन में निश्चयनय और व्यवहारनय की चर्चा काफी विस्तार व गहराई से की गई है। दोनों नयों को दो आँखों के समान माना गया है। कोई व्यक्ति व्यवहारनय को छोड़कर केवल निश्चयनय से अथवा निश्चयनय का परित्याग कर केवल व्यवहारनय से वस्तु को जानना-समझना चाहे तो वह समीचीन बोध से अनभिज्ञ ही रहेगा। दोनों में से किसी एक का अभाव होगा तो एकाक्षीपन आ जायेगा। अतः वस्तु को यथार्थ रूप से समझने के लिए दोनों नयों का सम्यग्बोध होना नितान्त जरूरी है। दोनों नयों का अपनी-अपनी भूमिका पर पूरा-पूरा वर्चस्व है। इस बात को हम जितनी गहराई से समझेंगे उतनी ही वह अधिक स्पष्ट हो जायेगी और बोध से भावित हो सकेंगे।

निश्चयनय की परिभाषा

आपके मन-मस्तिष्क में एक प्रश्न खड़ा हो रहा होगा कि निश्चयनय और व्यवहारनय क्या है ? तो लीजिए पहले इसी प्रश्न का समाधान प्राप्त करें। निश्चयनय वह है—जो वस्तु को अखण्ड रूप में स्वीकार करता है, देखता व जानता है। जैसे आत्मा अनन्त गुणों का पुंज है, अनन्त पर्यायों का पिण्ड है, निश्चयनय उसे अखण्ड रूप में ही जानेगा-देखेगा। मतलब यह है कि किसी भी द्रव्य में जो भेद की तरफ नहीं देखता, जो शुद्ध अखण्ड द्रव्य को ही स्वीकार करता है, वह निश्चयनय है। निश्चयनय में विकल्प नहीं दीखेंगे, संयोग नजर नहीं आएँगे। निश्चयनय संयोग की ओर नहीं झाँकता। उसकी दृष्टि में पर्याय नहीं आते। वह न शुद्ध पर्यायों की ओर झाँकता है और न अशुद्ध पर्यायों की ओर ही।

एक उदाहरण के द्वारा समझें। एक पट्टा-तख्त है। निश्चयनय इसे पट्टे के रूप में देखता है। इस नय की आँख से यह पट्टा ही नजर आएगा। पट्टे में कीलें भी हैं, पाये भी हैं, और लकड़ी के टुकड़े भी हैं, पर निश्चयनय इन संयोगों या विभेदों को नहीं देखेगा। वह पट्टे को अखण्ड पट्टे के रूप में ही देखेगा।

एक पुस्तक है। निश्चयनय की दृष्टि से जब हम पुस्तक को देखेंगे तो हमें पुस्तक ही नजर आएगी। क्योंकि निश्चयनय केवल पुस्तक के रूप में ही उस पुस्तक को स्वीकार करेगा। ऐसे देखा जाय तो उस पुस्तक में अलग-अलग अनेक पन्ने हैं। इन पन्नों पर अक्षर भी अंकित हैं, काली स्याही का रंग भी है। ये सब कुछ पुस्तक के अंग होते हुए भी निश्चयनय पुस्तक के इन सब अवयवों को नहीं देखता। उसकी दृष्टि अवयवी—पुस्तक की ओर ही रहेगी।

निश्चयनय संयोगों को नहीं देखता

एक बात और समझ लें। वह यह है कि निश्चयनय की निगाह संयोगों पर नहीं जाती। जैसे पानी में मैल है, उसमें गन्दगी या मिट्टी मिली हुई है। निश्चयनय जल को जल के रूप में ही देखेगा। वह जल के साथ में मिली हुई गन्दगी, मिट्टी या मैल को नहीं देखता। वह जब भी देखेगा, जल को ही देखेगा। वह यह भी नहीं देखेगा कि यह जल किस जलाशय, नदी या समुद्र का है। यह खारा है या मीठा। निश्चयनय की आँख पर्यायों या संयोगों को कतई नहीं देखती।

व्यवहारनय का लक्षण

व्यवहारनय वह है, जो पर्यायों, या संयोगों को देखता है। व्यवहारनय पानी को केवल पानी के रूप में नहीं देखता। वह पानी के साथ मिले हुए मैल या गन्दगी को देखेगा। वह यह भी विचार करता है कि यह पानी कहाँ का है। खारा है या मीठा। व्यवहारनय-संयोगों और पर्यायों से युक्त पानी को देखेगा। उससे शुद्ध जल नहीं दीखेगा।

व्यवहारनय का स्वरूप

व्यवहारनय की दृष्टि से तो हम अनादिकाल से अभ्यस्त हैं। अनादिकाल से हमारी आत्मा संयोग-सम्बन्ध को लेकर संसार में यात्रा करती आ रही है। हमारी आत्मा का कषाय के साथ संयोग है, कर्म के साथ संयोग है और योगों के साथ भी संयोग है। व्यवहार दृष्टि से आप देखेंगे तो ये सब संयोग नजर आयेंगे। व्यवहारनय की दृष्टि से देखें तो आत्मा आठ कर्मों से, चार कषायों से एवं कार्मण शरीर से तथा योगों से युक्त दीखेगा। परन्तु निश्चयनय की दृष्टि से आत्मा को देखेंगे तो वह आठ कर्मों, तीन योगों एवं कषायों से रहित शुद्ध रूप में नजर आएगी। निश्चय-नय की निगाह कर्मों, पर्यायों, योगों, कषायों आदि के संयोगों पर नहीं पड़ती। वह शुद्ध, बुद्ध स्वभावरूप आत्मा पर ही पड़ेगी।

व्यवहारनय एवं निश्चयनय का विषय

अतः निश्चयनय का विषय शुद्ध आत्मा है, जबकि व्यवहारनय का विषय अशुद्ध आत्मा है। व्यवहारनय की आँख से संयोग ही संयोग दिखाई देंगे। व्यवहारनय की दृष्टि से अनन्तभूत भी देखेंगे या अनन्त भविष्य भी देखेंगे तो संयोगयुक्त नजर आएगा। किन्तु निश्चयनय की दृष्टि से एकमात्र आत्मा ही नजर आएगी।

निश्चयनय ही आत्मकल्याण के लिए उपादेय

यहाँ एक बात और समझनी है कि आत्म-कल्याण से सीधा सम्बन्ध किस नय का है? जो व्यक्ति आत्मकल्याण करना चाहता है, या मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए किस नय का उपदेश दिया जाना चाहिए? कौन-सा नय मोक्ष या आत्मकल्याण में साधक है, कौन-सा बाधक है? वास्तव में देखा जाय तो निश्चयनय ही आत्मकल्याण के लिए साधक है। मानसशास्त्र का एक नियम है कि जो जिस रूप में जिस चीज को देखता है, वह वैसा ही बन जाता है, वह उसी रूप मे ढल जाता है। चन्द्रमा का लगातार ध्यान करने या देखने वाले व्यक्ति का स्वभाव प्रायः सौम्य या शीतल हो जाता है। इसी प्रकार जब निश्चयनय की दृष्टि से व्यक्ति आत्मा को देखता है तो वह उसके निर्मल, शुद्ध स्वभाव को ही देखेगा और निरन्तर-अनवरत शुद्ध स्वभाव की ओर दृष्टि होने से आत्म-विशुद्धि भी बढ़ती जाती है। स्वभाव दृष्टि (निश्चयनय) से देखने पर यह कुत्ते की आत्मा है, बिल्ली की आत्मा है, गाय की आत्मा है या मनुष्य की आत्मा है। यह पापी है या धर्मात्मा है। यह निर्धन या धनाढ्य आत्मा है, आदि ये विकल्प बिलकुल ओझल हो जायेंगे। इससे यह लाभ होगा कि निश्चयदृष्टि वाला साधक पवित्र, निर्मल, शुद्ध स्वरूपमय दृष्टि का होने से इन उपर्युक्त पर्यायों पर नजर नहीं डालेगा। वह प्रत्येक आत्मा को सिर्फ आत्म-द्रव्य की दृष्टि से देखेगा। इस कारण न किसी आत्मा पर उसके मन में राग आएगा और न द्वेष ही। जब राग-द्वेषात्मक विकल्प छूट जायेंगे तो आत्मा में होने वाली अशुद्धि या मलीनता भी नहीं होगी। कितना

सुन्दर उपाय है—आत्मा को शुद्ध, निर्मल एवं पवित्र बनाये रखने का। निश्चयनय की दृष्टि में ही यह चमत्कार है, जादू है कि वह आत्मा को राग-द्वेष या कषायों से मलिन नहीं होने देता।

एक-दूसरे पहलू से भी निश्चयदृष्टि पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि इसको अपना लेने पर आत्मा की जो पर्यायें हैं, वे नजर नहीं आयेंगी। जैसे कई लोग अपने को हीन या अधिक मानने लगते हैं कि मैं पापी हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं मूर्ख हूँ इत्यादि विकल्प निश्चयनय की दृष्टि वाले साधक में नहीं स्फुरित होते। उसकी दृष्टि में एकमात्र शुद्ध व अखण्ड आत्मा ही स्फुरित होती है।

'एगे आया' : निश्चयनय का सूत्र

स्थानांग सूत्र में निश्चयनय की दृष्टि से **'एगे आया'** का कथन है। इसके दो अर्थ घटित हो सकते हैं। एक अर्थ तो यह है कि हाथी की, कुत्ते की, चींटी की या मनुष्य की, सभी प्राणियों की आत्मा एक समान है। यह विकल्प और संयोग से रहित शुद्ध आत्मा निश्चयदृष्टि वालों को ही प्रतीत हो सकती है, व्यवहारदृष्टि वालों को नहीं। जब व्यक्ति विश्व की सम्पूर्ण आत्माओं को एकरूप देखेगा तो उसकी दृष्टि में कोई पापी, घृणित या द्वेषी नजर नहीं आएगा और न ही किसी के प्रति उसका राग, मोह, आसक्ति या लगाव होगा।

'एगे आया' का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है, आत्मा अनन्त पर्यायात्मक, अनन्त गुणात्मक अथवा अनेक सम्बन्धों से युक्त होते हुए भी एक है। आत्मा एक अखण्ड द्रव्य है। चाहे पर्याय शुद्ध हो या अशुद्ध, निश्चयनय की दृष्टि में ग्राह्य नहीं होती। वह तो सिद्ध भगवान की आत्मा की निरुपाधिक शुद्ध पर्यायों को भी ग्रहण नहीं करता। इसलिए निश्चयनय की दृष्टि आत्मा को शुद्धता व निर्मलता की ओर प्रेरित करती है।

व्यवहारनय की दृष्टि से आत्मा के आठ प्रकार

स्थानांगसूत्र में आगे चलकर व्यवहारनय की दृष्टि से आत्मा के आठ प्रकार बताये हैं—द्रव्य-आत्मा, कषाय-आत्मा, योग-आत्मा, उपयोग-आत्मा, ज्ञान-आत्मा, दर्शन-आत्मा, चारित्र-आत्मा और वीर्य-आत्मा। क्योंकि व्यवहारनय की दृष्टि आत्मा के संयोगजन्य भेदों, पर्यायजनित प्रकारों को ही पकड़ती है। वह एक शुद्ध, अखण्ड, निरुपाधिक आत्मा को नहीं पकड़ती। निश्चयनय की दृष्टि वाला साधक इन आठ प्रकारों में से सिर्फ द्रव्य रूप आत्मा को ही ग्रहण करेगा। वह इधर-उधर के विकल्पों या पर्यायों के बीहड़ में नहीं भटकेगा।

निश्चयदृष्टि आत्मशुद्धि के लिए उपादेय

शास्त्रों में निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों नयों से आत्मा का कथन मिलता है। इस पर से यह फैसला करना है कि निश्चयनय की दृष्टि से चलना अधिक हितकर हो सकता है या व्यवहारनय की दृष्टि से?

अगर आपको यथार्थ रूप में अपना आत्म-कल्याण करना है तो अपने असली, अखण्ड शुद्ध स्वरूप को देखने का अभ्यास करना होगा। तभी आत्मा शुद्ध से शुद्धतर और निर्मल से निर्मलतर होती जाएगी। और एक दिन वह स्वर्णिम सवेरा होगा कि आत्मा ही परमात्मा के रूप में स्वयं प्रकट हो जायेगा। यह सब निश्चयनय की दृष्टि को अपनाने से ही हो सकता है। क्योंकि धर्मशास्त्रों का यह नियम है कि **'देवो भूत्वा देवं यजेत्'** अर्थात् दिव्य रूप होकर ही देव की पूजा या प्राप्ति कर सकता है। इस दृष्टि से निश्चयनय की दृष्टि वाला साधक परम विशुद्ध ज्ञायिक स्वभाव को प्राप्त कर परमात्मस्वरूप को उपलब्ध हो जाता है।
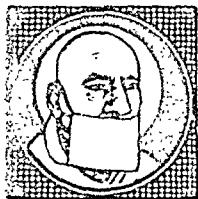
निश्चयदृष्टि के अभ्यास का अवसर

अनादिकाल से हमारी आत्मा संसार में परिभ्रमण करती आ रही है। चौरासी के चक्कर से मुक्त नहीं हो पाई। इसका मूल कारण है—निश्चय दृष्टि से पराङ्मुख होना। व्यवहारनय के आश्रय से संयोग ही संयोग परिलक्षित होता आया है। आत्मा पुद्गल संयोगी और विभाव पर्याय में पड़ा हुआ दृष्टिगोचर हुआ। पुद्गल को देखा तो वह भी अशुद्ध और संयोगी नजर आया। क्योंकि व्यवहार दृष्टि में पड़ा हुआ प्राणी शुद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का अवसर कदापि प्राप्त नहीं कर सकता। किन्तु जो प्राणी निश्चयाश्रित है वही शुद्ध स्वरूप की ओर झाँकता है। उसी के आश्रय से परिमुक्त व परमात्मस्वरूप का बोध व दर्शन कर पाता है, न कि व्यवहार दृष्टि से। अतएव निश्चयदृष्टि, यथार्थ दृष्टि को विस्मृत नहीं कर उसी का लक्ष्य बनाया जाय और सतत अभ्यास किया जाय।

ज्ञेय के लिए दोनों नय : उपादेय के लिए निश्चयनय

जहाँ तक प्रत्येक पदार्थ को जानने का सवाल है, वहाँ तक दोनों नयों की दृष्टियों से प्रत्येक पदार्थ को सर्वांश रूप में भली-भाँति जानना चाहिए। अर्थात्—दोनों नयों को भली-भाँति जानना चाहिए। किन्तु कल्याण साधते समय दोनों में से किसी एक नय का आश्रय लेना पड़े तो निश्चयनय का आश्रय लेना चाहिए, व्यवहारनय का आश्रय श्रेयस्कर नहीं होता। आत्म-कल्याण की साधना के समय व्यवहारनय का आश्रय छूट ही जाता है।

नय का कार्य : वस्तु को जानना है

नय जानने का विषय है; केवल सुनने का विषय नहीं है। वस्तु को भली-भाँति जानने का काम नय करता है। कोई यह शंका उठाए कि नय जब जानने का ही काम करता है तो हमें शुद्ध को ही जानना चाहिए, अशुद्ध को जानने से क्या लाभ है? अशुद्ध को जानकर क्या करना है? इसका समाधान करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—'अशुद्धनय को भी जानना तो अवश्य चाहिए। अशुद्धनय का स्वरूप जाने बिना शुद्ध नय को कैसे अपना सकेंगे? दोनों नयों से वस्तु को जानना तो चाहिए; किन्तु आत्म-कल्याण साधना के समय अपनाना और अभ्यास करना चाहिए निश्चयनय की दृष्टि का।

निश्चयनय की दृष्टि में वस्तु का प्रकाशात्मक पहलू

आत्मा को शुद्ध, निर्मल एवं विकार रहित बनाने के लिए भी निश्चयनय की दृष्टि से उसके प्रकाशात्मक पहलू को देखने और उधर ही ध्यान जोड़ने की जरूरत है। व्यवहारनय की दृष्टि से हम किसी वस्तु को देखेंगे या उस ओर ध्यान जोड़ेंगे तो वह अशुद्ध रूप में ही नजर आयेगा, अन्धकार का पहलू ही हमें दृष्टिगोचर होगा। बुराई को छोड़ने के लिए बुराई की तरफ ध्यान देंगे तो धीरे-धीरे संस्कारों में वह बुराई जम जाएगी। उसका निकलना कठिन हो जाएगा।

बुराई को निकालने का गलत तरीका

एक जगह हम एक मन्दिर में ठहरे थे। वहाँ चर्चा चल पड़ी कि बुराई को छोड़ना हो तो हमें क्या करना चाहिए? अगर हम किसी बुराई को छोड़ना चाहते हैं तो पहले उस बुराई की ओर हमारा ध्यान जाएगा, हम प्रायः यह देखने की कोशिश करेंगे कि हममें कौन-सी बुराई, कितनी मात्रा में है? उस बुराई को हटाते समय भी बार-बार हमारा ध्यान उस ओर जाएगा कि बुराई कितनी घटी है, कितनी शेष रही है? क्या बुराई निकालने का यह तरीका ठीक है?"

हमने कहा—"यह तरीका बिलकुल गलत है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी और आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह तरीका यथार्थ नहीं है। यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि जिस वस्तु का बार-

वार रटन किया जाएगा, जिसे पुनः-पुनः स्मरण किया जायगा, जिसका वार-वार चिन्तन-मनन किया जाएगा, वह धीरे-धीरे संस्कारों में वद्धमूल हो जाएगी। उदाहरण के तौर पर किसी व्यक्ति को क्रोध का त्याग करना है और वह वार-वार क्रोध का चिन्तन करता है, स्मरण करता है या उसकी ओर ध्यान देता है तो क्रोध हटने के वजाय और अधिक तीव्र हो जाएगा। क्रोध उसके संस्कारों के साथ घुल-मिल जाएगा। एक व्यक्ति शराव वहुत पीता था। उसकी पत्नी अपने पति की शराव की आदत पर उसे वहुत झिड़कती थी। परिवार के लोग भी उसकी शराव पीने की आदत के कारण उससे घृणा करते थे। अन्य लोग भी वार-वार उसे टोकते रहते थे। इस पर उसने शराव पीने का त्याग कर दिया। किन्तु उसी दिन शाम को ही समय पर उसे शराव की याद आयी। मन में वहुत ललक उठी कि चुपके से जाकर शराव पी लूं। फिर उसे पत्नी और परिवार की डाँट-फटकार की याद आयी। कुछ समय वाद फिर शराव पीने की हूक उठी, उसने अपनी प्रतिज्ञा को याद किया—मैंने शराव पीने की शपथ ली थी, पर वह तो सवके सामने शराव पीने की शपथ थी। एकान्त में जाकर अकेले में चुपके से थोड़ी शराव पी ली जाय तो क्या हर्ज है ? और फिर जिस किस्म की शराव मैं पीता था, उस किस्म की शराव पीने की मैंने शपथ ली है, दूसरे किस्म की शराव पी लूं तो क्या हानि है ? किन्तु फिर पत्नी के झिड़कने वाली क्रूर मुख मुद्रा, परिवार की वौखलाहट आदि आँखों के सामने उभर आयी। उसने उस समय शराव पीने का विचार स्थगित कर दिया। किन्तु रातभर उसे शराव के विचार आते रहे। स्वप्न भी ढेर सारे आये शराव पीने के कि वह स्वप्न में शराव की कई वोतलें गटगटा गया। सुवह उठा तो शरीर में वहुत सुस्ती थी। दिन भर शराव का चिन्तन चलता रहा। आखिर रात में चुपचाप शराव की दुकान पर चला गया। एक कोने में जाकर वैठ गया। उसने इशारे से वढ़िया किस्म की शराव का आर्डर दिया। दो प्याले शराव के पेट में उड़ेल दिये। घर जाकर चुपचाप विस्तर पर सो गया। यह क्रम सदा चलने लगा। उसने अपने मन में यह सोचकर सन्तोष कर लिया कि मैंने जो शराव पीने की प्रतिज्ञा की है, वह अमुक किस्म की और सवके सामने न पीने की है। मैं अव जो शराव पीता हूँ वह वढ़िया किस्म की तथा चुपचाप अकेला पीता हूँ। इसमें मेरी प्रतिज्ञा में कोई आँच नहीं आती। इस प्रकार शराव का वार-वार स्मरण एवं चिन्तन करने से वह पहले की अपेक्षा अधिक शराव पीने लगा।

हाँ तो, इसी प्रकार बुराई का वार-वार स्मरण करने, चिन्तन करने से वह नहीं छूट सकती, वह तो संस्कारों में और अधिक घुल-मिल जाएगी एवं प्रच्छन्न रूप से होने लगेगी। इस तरीके से तो धीरे-धीरे मनुष्य उसका आदी वन जाता है।

यही वात आध्यात्मिक दृष्टि से विचारणीय है। किसी को क्रोध छोड़ना है, अभिमान छोड़ना है, माया व लोभ छोड़ना है, तो वह कैसे छोड़ेगा ? कौन-सा तरीका अपनायेगा, इन चारों कषायों को छोड़ने के लिए ? अगर अपना उपयोग या ध्यान वार-वार क्रोधादि कषायों के साथ जोड़ेगा, इसी का चिन्तन-मनन चलेगा, इन्हीं की उधेड़वुन में मन लगता रहेगा तो कषाय के छूटने के वजाय और अधिक दृढ़ व वढ़ते जायेंगे। आत्म-परिणति शुद्ध होने के वजाय क्रोधादि के वार-वार विचार से अशुद्ध-अशुद्धत्तर होती चली जायेगी। पूर्वापेक्षा और अधिक रूप से कषाय की गिरफ्त में जकड़ जायेंगे। जैन-दर्शन का यह दृष्टिकोण रहा है—**'अविच्चुई धारणा होई'** जिस वस्तु का पुनः-पुनः स्मरण किया जाता है, वह कालान्तर में धारणा का रूप ले लेती है, संस्कारों में जड़ जमा लेती है। भगवान महावीर से जव क्रोधादि चारों कषायों से छूटने का कारण पूछा गया तो उन्होंने आत्मा के मूल स्वभाव की दृष्टि से समाधान दिया—

"उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं च उज्जुभावेण, लोभं संतोसओ जिणे॥"

—दशवैका० अ० ८, गा० ३९

अगर क्रोध को नष्ट करना चाहते हो तो उपशमभाव-क्षमाभाव को धारण करलो। अभिमान को मृदुता-नम्रता से जीतो, माया (कपट) को सरलता से और लोभ को संतोष से जीतो। क्रोध को छोड़ने के लिए क्रोध का बार-बार चिन्तन नहीं करना है, मान पर विजय पाने के लिए अभिमान का स्मरण करना उचित नहीं है, माया का त्याग करने के लिए बार-बार यह रटन ठीक नहीं कि मुझे माया को छोड़ना है, और न ही लोभ को तिलांजलि देने के लिए लोभ पर मनन करने की आवश्यकता है।

अन्धकार को हटाने के लिए

कोई व्यक्ति अन्धकार को मिटाना चाहता है तो क्या अँधेरे का बार-बार चिन्तन, मनन या रटने से अथवा हाथ से बार-बार अन्धकार को हटाने से वह हट जायेगा, नष्ट हो जायेगा? ऐसा कदापि सम्भव नहीं है।

एक परिवार में नई-नई वहू आयी थी। वहू वहुत ही भोली और बुद्धि से मन्द थी। घर में सास, वहू और लड़का तीन ही प्राणी थे। कच्चा घर था। मिट्टी के घड़ों में घर का सामान रखा हुआ था। एक दिन लड़का कहीं बाहर गाँव गया हुआ था। रात को सास-बहू दो ही घर में थीं। किसी आवश्यक कार्यवश सास को बाहर जाना था। अतः जाते समय वह वहू को हिदायत देती गयी—"वहू! मैं अभी जरूरी काम से बाहर जा रही हूँ। तू एक काम करना, अँधेरे को मार भगाना और घर के आवश्यक कार्य कर लेना।" भोली वहू ने सास की आज्ञा शिरोधार्य की। रात का समय हुआ। अँधियारा फैलने लगा। वहू ने सास की आज्ञा को ध्यान में रखते हुए अपने हाथ में डंडा उठाया और उसे घुमा-घुमाकर अँधेरे को भगाने लगी। हाथ थक गये डंडा घुमाते-घुमाते, पर अँधेरा भगा नहीं। प्रत्युत और अधिक फैल गया। और डंडे के घुमाने, पटकने से घर में सामान के भरे घड़े भी फूट गये। सामान इधर-उधर बिखर गया।

सास जब आवश्यक कार्य से निपटकर घर आयी और उसने यह सब माजरा देखा तो वह दंग रह गयी। सास ने पूछा—"वहू! ये घड़े क्यों फोड़ डाले?"

"माताजी! आपने अँधेरे को मार भगाने के लिए कहा था न। मैंने पहले डंडा यों ही घुमाया, पर अँधेरा भागा नहीं, तब डंडा मारना शुरू किया। अफसोस है, तब भी अँधेरा भागा नहीं, बल्कि बढ़ता ही चला गया।" वहू ने कहा।

वहूरानी के अविवेक पर नाराजी दिखाते हुए सास बोली—"ऐसे कहीं डंडा मारने से अँधेरा भागता है? तूने अक्ल के साथ दुश्मनी कर रखी मालूम होती है।"

"माताजी! तो बताइए न, यह अँधेरा कैसे भगेगा, डंडे के बिना?"

सास ने मुस्कराते हुए कहा—"वहूरानी! ला, दीपक ले आ। मैं अभी बताती हूँ, अँधेरा कैसे भगाया जाता है! वहूरानी सरल थी। वह तुरन्त एक दीपक ले आयी। सास ने दीपक जलाया दीपक के प्रज्वलित होते ही घर का सारा गहन अंधकार दूर हो गया।

सास ने वहूरानी से कहा—"देखो, वहू! अन्धकार डंडे मारने से नहीं भागता, वह तो प्रकाश से बहुत शीघ्र भाग जाता है।"

ठीक इसी प्रकार बुराई या विकारों का अन्धकार मिटाना हो तो बुराई या विकारों के
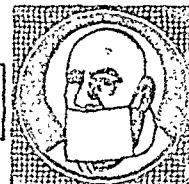
नहीं भागेगा। क्रोध से क्रोध नहीं मिटेगा, लोभ से लोभ नहीं हटेगा। क्रोध या लोभ को हटाना हो तो क्षमाभाव या संतोषभाव को अपनाना होगा। क्षमा के आते ही क्रोध अपने आप पलायन कर जायेगा। नम्रता के आते ही अभिमान चला जायेगा। सरलता का दीपक मानस मन्दिर में जगमगाते ही माया की गाढ़ तमिस्रा दूर हो जायेगी। सन्तोष का हृदय में प्रकाश होते ही लोभ नौ दो ग्यारह हो जायेगा। जिस क्षण हम अन्धकार के पथ से आँखें मूंदकर प्रकाश की ओर दृष्टि जमा देंगे तो फिर उलझनें या बुराई अपने आप काफूर हो जायगी। प्रकाश का मतलब है—निश्चयनय की दृष्टि, स्वभाव दृष्टि। जब हमारा उपयोग, हमारा ध्यान आत्मा के शुद्ध, निर्मल व शाश्वत स्वभाव की ओर लग जायेगा, उसी में तन्मय हो जायेगा तो यह निश्चित है कि क्रोधादि विकारभाव स्वतः ही नहीं आयेंगे। और आत्मा अपने क्षायिक भाव को प्राप्त हो जायेगा।

विकारों के संस्कारों को कैसे भगाएँ

शुद्ध स्वभाव की स्थिति कोरी बातों से या केवल कहने मात्र से नहीं आयेगी आत्मा में वर्षों के जमे हुए क्रोधादि कषायभाव के संस्कार कैसे भाग जायेंगे? यह एक चमत्कार ही है कि शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के बाद आत्मा में पड़े हुए अशुद्ध संस्कारों की ओर ध्यान ही नहीं दिया जायेगा। उनके प्रति एकदम उपेक्षा हो जायेगी, तो वे भी कहाँ तक ठहर सकेंगे? अपने आप अपना-सा मुंह लेकर चले जायेंगे।

किसी बनिये की दूकान पर कोई बातूनी आकर बैठ जाता है, तो वह दुकान पर बैठकर खाली बातें ही बनाता है। दुकानदारी में विघ्न डालता है। ग्राहकों का ध्यान सौदा लेने से हटा देता है। अतः वह दुकानदार उसे हटाना चाहेगा। अगर सीधा ही उसे यह कहा जाय कि भाग जा यहाँ से। यहाँ क्यों बैठा है? या उसे धक्का देकर निकालना चाहे तो यह असभ्यता और अशिष्टता होगी। असभ्यता से किसी को हटाना अच्छा नहीं लगता। तो वह दुकानदार उसे सभ्यता से भगायेगा। इसके लिए वह उससे बात ही नहीं करेगा। वह अपनी दुकानदारी में या अन्य कार्यों में लग जायेगा। जब दुकानदार उसकी उपेक्षा कर देगा तो वह आगन्तुक दुकान से अपने आप ही चला जायेगा। इस प्रकार उस बातूनी से स्वतः ही छुटकारा मिल जायेगा।

हाँ, तो यही बात विकारों को भगाने के सम्बन्ध में है। अगर मन की दुकान पर विकार रूपी वाचाल आ धमके तो उसे हटाने के लिए उससे किनारा कसी करनी ही होगी। उसके प्रति उपेक्षा भाव करना ही होगा। उसकी तरफ से ध्यान हटाकर अपने शुद्ध स्वभाव रूपी माल की ओर ध्यान लगा लेवें। इस प्रकार क्रोधादि विकारों को बिलकुल प्रश्रय नहीं देने से वे अपने आप ही चले जायेंगे।

इस तरीके या पद्धति को नहीं अपनाकर क्रोधादि विकारों को मिटाने के लिए बार-बार उनका स्मरण करेंगे और लक्ष्य देंगे तो कभी दूर नहीं होंगे।

प्रकृति का अटल नियम है कि मनुष्य जिस बात को पुनः-पुनः दुहरायेगा, वह उतनी ही मजबूत होती जायेगी। अतएव उसकी ओर का ध्यान छोड़ा जायेगा तब ही उस विकारभाव को छुटकारा मिल पायेगा।

व्यवहारनय की दृष्टि से विचार : विकल्पों का जनक

व्यवहारनय की दृष्टि से अगर विकारों को हटाने के लिए विकारों की ओर ही झांकेंगे, उन्हीं के सन्मुख होंगे तो विकारों का हटना तो दूर रहा किन्तु और अधिक पैदा होते चले जायेंगे। कहते हैं—ऐलोपैथिक दवा एक बीमारी को मिटाती या दबाती है, तो अन्य नई-नई बीमारियाँ पैदा
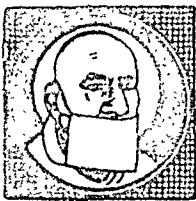
कर देती है। इसी प्रकार कषाय की बीमारी को मिटाने के लिए उसी का स्मरण करते चले जायेंगे तो उस एक बीमारी के स्थान पर अन्य अनेक विकारों का जन्म हो जायेगा। विकारों के बार-बार परिशीलन से विकारों का नाश कदापि नहीं हो सकेगा। इसलिए बार-बार यह कहा जा रहा है कि कषायभाव का परिमार्जन करने के लिए निश्चयनय की दृष्टि से शुद्ध स्वभाव का ध्यान करने की प्रबल आवश्यकता है। वही शुद्ध ध्यान धर्म ध्यान कहलाता है।

पूर्ण आत्म द्रव्य का दर्शन निश्चयनय से ही

जब हम निश्चयनय की आँख से देखने का प्रयास करेंगे तो आत्मा स्वभाव से नित्य, शुद्ध, बुद्ध, असंग, ध्रुव एवं अविनाशी प्रतीत होगी। व्यवहारनय की आँख से देखेंगे तो आत्मा अनित्य, अध्रुव, अशुद्ध नजर आयेगी। दोनों नयों में से कौन-सा ऐसा नय है जो कि आत्मा को संसारी बनाता है, जन्म-मरण के चक्र में भ्रमण कराता है। मोक्ष का चिन्तन होते रहने पर भी बन्धन क्यों हाथ लगता है ? अनन्तकाल व्यतीत हो गया तथापि मोक्ष हस्तगत क्यों नहीं हुआ। अमर व शाश्वत सुख की अनुभूति से क्यों वंचित एवं नासमझ रहे। अगर थोड़ी-सी गहराई से विचार करें तो यह बात बहुत शीघ्र हल हो जाती है। इसका मूल कारण है कि हमने पर्याय को ही देखने की कोशिश की है। पर्यायों को देखने से अखण्ड आत्म-द्रव्य या कोई भी द्रव्य पूरा का पूरा नहीं दिखाई देता। क्योंकि पर्याय का काल एक समय का होता है, और वह भी वर्तमान में ही। यदि हम पर्याय को देखने जायेंगे तो एक साथ दो, तीन या और इससे अधिक दृष्टिगोचर नहीं होगी। एक क्षण या एक समय में एक द्रव्य की या एक गुण की कितनी पर्याय दिखलाई दे सकती है ? सिर्फ एक पर्याय ही दिखलायी देगी। तो एक पर्याय ही तो द्रव्य नहीं है। एक द्रव्य में अनन्त पर्यायें होती हैं। भूतकाल की अनन्त पर्याय हैं, भविष्य काल की अनन्त पर्याय होती हैं और वर्तमान काल की एक पर्याय होती हैं। ये सब पर्यायें—चाहे व्यक्त हों या अव्यक्त—मिलकर एक आत्म-द्रव्य बनता है।

आत्मा एक प्रदेश को नहीं कहा जा सकता, और न दो प्रदेश को ही आत्मा कहा जा सकता है तथा न तीन, चार आदि प्रदेश को भी आत्मा कहा जा सकता है। आत्मा असंख्यात प्रदेशी है। इसी प्रकार एक गुण की अनन्त पर्याय भी आत्मा नहीं है। भूत-भविष्य-वर्तमान की समस्त पर्यायें मिलकर ही अखण्ड आत्म द्रव्य बनता है।

इसी शुद्ध, अखण्ड और शाश्वत आत्म द्रव्य को देखना हो तो स्वभावदृष्टि, द्रव्यदृष्टि या निश्चयनय की दृष्टि को ही अपनाना होगा।

निश्चयनय ही शुद्ध आत्मद्रव्य को देखने में समर्थ है। यही आत्म-शुद्धि में प्रबल साधक है। यही मोक्ष साधना में प्रबलतम सहायक है। इसे अपनाकर ही कर्म, कषाय, संयोग, पर्याय-संयोग आदि से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

व्यवहारनय की उपयोगिता

निश्चयनय से प्रथम अपनी दृष्टि को शुद्ध बनाकर व्यक्ति व्यवहारनय की दृष्टि से साधना-पथ पर चलने का प्रयत्न करेगा तो उसे मोक्ष की मंजिल तक पहुँचने में आसानी होगी। अन्यथा, वह यदि निश्चयनय की दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करके वहीं अटक जायेगा। अतः व्यवहारनय की इतनी-सी उपयोगिता है। उसे माने बिना कोई चारा नहीं है। क्योंकि निश्चय शुद्ध व्यवहारनय को छोड़ देने पर तीर्थ-विच्छेद की सम्भावना है, और निश्चयनय को छोड़कर केवल व्यवहारनय का अनुसरण अन्धी दौड़ है। दोनों नयों का अपनी-अपनी जगह स्थान है, परन्तु अध्यात्मसाधक की दृष्टि मुख्यतया निश्चय नय की ओर होनी चाहिए। दोनों नय परस्पर सापेक्ष हैं। ✠

नयवाद : विभिन्न दर्शनों के समन्वय की अपूर्व कला

☆ श्रीचन्द चोरड़िया, न्यायतीर्थ (द्वय)

सम्पूर्ण पदार्थ सामान्य-विशेषरूप से ही अनुभव में आते हैं। अतः अनेकान्तवाद में ही वस्तु का अर्थक्रियाकारित्व लक्षण सम्यग्प्रकार से घटित हो सकता है। सामान्य और विशेष परस्पर सापेक्ष हैं। बिना सामान्य के विशेष और विशेष के बिना सामान्य कहीं पर भी नहीं ठहर सकते। अतः विशेष निरपेक्ष सामान्य को अथवा सामान्य निरपेक्ष विशेष को तत्त्व मानना केवल प्रलाप मात्र है। जिस प्रकार जन्मान्ध मनुष्य हाथी का स्वरूप जानने की इच्छा से हाथी के भिन्न-भिन्न अवयवों को टटोलकर हाथी के केवल कान, सूंड़, पैर आदि को ही हाथी समझ बैठते हैं उसी प्रकार एकान्तवादी वस्तु के सिर्फ एकांश को जानकर उस वस्तु के सिर्फ एक अंश रूप ज्ञान को ही वस्तु का सर्वांशात्मक ज्ञान समझने लगते हैं। सम्पूर्णनय स्वरूप स्याद्वाद के बिना किसी भी वस्तु का सम्यग् प्रकार से प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण वादी पद-पद पर नयवाद का आश्रय लेकर ही पदार्थों का प्रतिपादन कर सकते हैं। क्योंकि प्रत्येक वस्तु में अनन्त स्वभाव अथवा धर्म है।

नयवाद : परिभाषा, अर्थ

जिसके द्वारा पदार्थों के एक अंश का ज्ञान हो, उसे नय कहते हैं। खोटे नयों को दुर्नय कहते हैं। किसी वस्तु में अन्य धर्मों का निषेध करके अपने अभीष्ट एकान्त अस्तित्व को सिद्ध करने को दुर्नय कहते हैं।[1] जैसे—यह घट ही है। वस्तु में अभीष्ट धर्म की प्रधानता से अन्य धर्मों का निषेध करने के कारण दुर्नय को मिथ्यानय कहा गया है। इसके विपरीत किसी वस्तु में अपने इष्टधर्म को सिद्ध करते हुए अन्य धर्मों में उदासीन होकर वस्तु के विवेचन करने को नय (सुनय) कहते हैं। जैसे—यह घट है। नय में दुर्नय की तरह एक धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का निषेध नहीं किया जा सकता, इसलिए नय को दुर्नय नहीं कहा जा सकता। प्रमाण सर्वार्थग्राही है तथा नय विकलादेशग्राही है। नय और प्रमाण के द्वारा दुर्नयवाद का निराकरण किया जा सकता है।

विशेषावश्यकभाष्य में जिनभद्र क्षमाश्रमण ने नयों को प्रमाण के समान कहा है। उपक्रम, अनुगम, नय, निक्षेप—ये चार अनुयोग महानगर में पहुँचने के दरवाजे हैं। प्रमाण से निश्चित किये हुए पदार्थों के एक अंश के ज्ञान को नय कहते हैं। वस्तुओं में अनन्तधर्म होते हैं। वस्तु के अनन्त धर्मों में से वक्ता के अभिप्राय के अनुसार एक धर्म के कथन करने को नय कहते हैं। घट में कच्चापन, पक्कापन, मोटापन, चौड़ापन आदि अनन्तधर्म होते हैं अतः नाना नयों की अपेक्षा से शब्द और अर्थ की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म विद्यमान हैं। नय का उद्देश्य है माध्यस्थ बढ़े।

प्रमाण, इन्द्रिय और मन—सबसे हो सकता है किन्तु नय सिर्फ मन से होता है क्योंकि अंशों का ग्रहण मानसिक अभिप्राय से हो सकता है। जब हम अंशों की कल्पना करने लग जाते हैं तब वह ज्ञान नय कहलाता है। नयज्ञान में वस्तु के अन्य अंश या गुणों की ओर उपेक्षा या गौणता रहती है परन्तु खण्डन नहीं होता।[2] जो ज्ञान शब्दों में उतारा जा सके, जिसमें वस्तु को उद्देश्य और

---

१ भेदाभेदात्मके ज्ञेये भेदाभेदाभिसन्धयः।
ये ते उपेक्षानपेक्षाभ्यां लक्ष्यन्ते नयदुर्नयाः॥ —लघीय० का० ३०

२ सापेक्षाः परस्परसंबद्धास्ते नयाः —अष्टशती, कारिका १०८

विधेय रूप में कहा जा सके, उसे नय कहते हैं। अपनी विवक्षा से किसी एक अंश को मुख्य मान कर व्यवहार करना नय है। जैसे दीप में नित्य धर्म भी रहता है और अनित्य धर्म भी। यहाँ अनित्यत्व का निषेध न करते हुए अपेक्षावशात् दीपक को नित्य कहना नय है। प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार में कहा है—

नीयते येन श्रुताख्य प्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः।

अर्थात् जिसके द्वारा—श्रुत प्रमाण के द्वारा विषय किये हुए पदार्थ का एक अंश सोचा जाय—ऐसे वक्ता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं। नयों के निरूपण का अर्थ है—विचारों का वर्गीकरण। नयवाद अर्थात् विचारों की मीमांसा। इस वाद में विचारों के कारण, परिणाम या विषयों की पर्यालोचना मात्र नहीं है। व्यवहार में परस्पर विरुद्ध दीखने वाले, किन्तु यथार्थ में अविरोधी विचारों के मूल कारणों की खोज करना ही इसका मूल उद्देश्य है। इसलिए नयवाद की संक्षिप्त परिभाषा है—परस्पर विरुद्ध दीखने वाले विचारों के मूल कारणों की खोजपूर्वक उन सब में समन्वय करने वाला शास्त्र।[1]

नय के ज्ञाननय और क्रियानय—ये दो विचार भी हो सकते हैं। विचार सारणियों से पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को जानना ज्ञाननय है और उसे अपने जीवन में उतरना क्रियानय। केवल संकेत मात्र से अर्थ का ज्ञान नहीं होता क्योंकि शब्दों में ही सब अर्थों को जानने की शक्ति होती है।

नयवाद : परिभाषा—अर्थ की व्याख्या

शाब्दिक, आर्थिक, वास्तविक, व्यावहारिक, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक के अभिप्राय से आचार्यों ने नय के मूलतः सात भेद किये हैं—यथा—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत। बौद्ध कहते हैं—रूप आदि अवस्था ही वस्तुद्रव्य है। वेदान्त का कहना है कि द्रव्य ही वस्तु है, रूपादि गुण तात्त्विक नहीं हैं। भेद और अभेद का द्वन्द्व का एक निदर्शन है। नयवाद अभेद-भेद इन दो वस्तुओं पर टिका हुआ है।[2] शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा द्रव्यार्थिक नय समस्त पदार्थों को केवल द्रव्य रूप जानता है क्योंकि द्रव्य और पर्याय सर्वथा भिन्न नहीं है, जैसे—आत्मा, घट आदि। सभी पदार्थ द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्य हैं। प्रदीप, घटादि सर्वथा अनित्य हैं, आकाश सर्वथा नित्य है—यह मानना दुर्नयवाद को स्वीकार करना है। वस्तु के अनन्त धर्मात्मक होने पर भी सब धर्मों का तिरस्कार करके केवल अपने अभीष्ट नित्यत्वादि धर्मों का समर्थन करना 'दुर्नय' है। वस्तुतः कोई भी पदार्थ सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य नहीं कहा जा सकता। जो अनित्य है वह कथंचित् नित्य है और जो नित्य है वह कथंचित् अनित्य है। वैशेषिक-दर्शन में भी कहीं-कहीं पदार्थ में नित्य-अनित्य दो तरह के धर्मों की व्यवस्था उपलब्ध होती है जैसा कि प्रशस्तिकार ने प्रशस्तपादभाष्य में कहा है—

सा तु द्विविधा नित्या अनित्या च।
परमाणुलक्षणा नित्या कार्यलक्षणा अनित्या।

---

१ अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणस्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्॥ —स्वयम्भू० १०३

२ सामान्य प्रतिभासो ह्यनुगताकारो विशेषप्रतिभासस्तु व्यावृत्ताकारोऽनुभूयते।
—प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, चतुर्थ खण्ड

अर्थात् पृथ्वी नित्य और अनित्य—दो प्रकार की है। परमाणुरूप पृथ्वी नित्य और कार्य-रूप पृथ्वी अनित्य है। वैशेषिक लोग भी एक अवयवी को ही चित्ररूप (परस्पर विरुद्ध रूप) तथा एक ही पट को चल और अचल, रूप और अरूप, आवृत्त, और अनावृत्त आदि विरुद्ध धर्म युक्त स्वीकार करते हैं। बौद्ध लोग भी एक ही चित्रपट में नील-अनील दो विरुद्ध धर्मों को मानते हैं। एक ही पुरुष को अपने पिता की अपेक्षा पुत्र और पुत्रों की अपेक्षा पिता कहा जाता है उसी प्रकार एक ही अनुभूति भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से अनुभूति और अनुभाव्य कही जाती है।

संक्षेपतः द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेद से नय के दो भेद हैं। द्रव्यार्थिकनय के नैगम, संग्रह, व्यवहार ये तीन भेद होते हैं। ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत—ये चार पर्यायार्थिक-नय के भेद हैं। श्री सिद्धसेन आदि तार्किकों के मत को मानने वाले द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद मानते हैं, परन्तु जिनभद्रगणि के मत का अनुसरण करने वाले सैद्धान्तिक द्रव्यार्थिकनय के चार भेद मानते हैं। जो पर्यायों को गौण मानकर द्रव्य को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जो द्रव्य को गौण मानकर पर्यायों को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं अर्थात् द्रव्य अर्थात् सामान्य को विषय करने वाले नय को द्रव्यार्थिकनय कहते हैं और पर्याय अर्थात् विशेष को विषय करने वाले नय को पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

नय और प्रमाण से होने वाले जीवादि तत्त्वों के यथार्थज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। न्यायशास्त्र में जिस ज्ञान का विषय सत्य है उसे सम्यग्ज्ञान और जिसका विषय असत्य है उसे मिथ्याज्ञान कहा जाता है। अध्यात्मशास्त्र में यह विभाग गौण है। यहाँ सम्यग्ज्ञान से उसी ज्ञान का ग्रहण होता है जिससे आत्मा का विकास हो और मिथ्याज्ञान से उसी ज्ञान का ग्रहण होता है जिससे आत्मा का पतन हो या संसार की वृद्धि हो। अस्तु, किसी विषय के सापेक्ष निरूपण को नय कहते हैं। किसी एक या अनेक वस्तुओं के विषय में अलग-अलग मनुष्यों के या एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न विचार होते हैं। अगर प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि से देखा जाय तो वे विचार अपरिमित हैं। इन सबका विचार प्रत्येक को लेकर करना असम्भव है। अपने प्रयोजन के अनुसार अतिविस्तार और अतिसंक्षेप—दोनों को छोड़कर किसी विषय का मध्यम दृष्टि से प्रतिपादन करना ही नय है।

सामान्यतः मनुष्य की ज्ञानवृत्ति अधूरी होती है और अस्मिता अभिनिवेश अर्थात् अहंकार या अपने को ठीक मानने की भावना बहुत अधिक होती है। इससे जब वह किसी विषय में किसी प्रकार का विचार करता है तो उसी विचार को अन्तिम, सम्पूर्ण तथा सत्य मान लेता है। इस भावना से वह दूसरों के विचारों को समझने के धैर्य को खो बैठता है। अन्त में अपने अल्प तथा आंशिक ज्ञान को सम्पूर्ण मान लेता है। इस प्रकार की धारणाओं के कारण ही सत्य होने पर भी मान्यताओं में परस्पर विवाद हो जाता है और पूर्ण और सत्य ज्ञान का द्वार बंद हो जाता है।

एक दर्शन आत्मा आदि के विषय में अपने माने हुए किसी पुरुष के एकदेशीय विचार को सम्पूर्ण सत्य मान लेता है। उस विषय में उसका विरोध करने वाले सत्य विचार को भी असत्य समझता है। इसी प्रकार दूसरा दर्शन पहले को और दोनों मिलकर तीसरे को झूठा समझते हैं। फलस्वरूप समता की जगह विषमता और विवाद खड़े हो जाते हैं अतः सत्य और पूर्ण ज्ञान का द्वार खोलने के लिए तथा विवाद दूर करने के लिए नयवाद की स्थापना की गई है और उसके द्वारा यह बताया गया है कि प्रत्येक विचारक अपने विचार को आप्त-वाक्य कहने के पहले यह तो सोचे

कि उसका विचार प्रमाण की गिनती में आने लायक सर्वांशी है भी या नहीं। इस प्रकार की सूचना करना ही जैनदर्शन की नयवादरूप विशेषता है।

नयवाद—भेद-उपभेद

यद्यपि नैगम, संग्रहादि के भेद से नयों के भेद प्रसिद्ध हैं तथापि नयों को प्रस्थक के दृष्टांत से, वसति के दृष्टान्त से और प्रदेश के दृष्टान्त से समझाया गया है। आगम में कहा है—

से किं तं नयप्पमाणे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—पत्थगदिट्ठंतेणं वसहिदिट्ठंतेणं पएस-दिट्ठतेणं।

—अणुओगद्दाराइं सुत्त ४७३

अर्थात् नयप्रमाण तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, यथा—प्रस्थक के दृष्टान्त से, वसति के दृष्टान्त से और प्रदेश के दृष्टान्त से।

जिन नयों को प्रस्थक के दृष्टान्त से सिद्ध किया जाय उसे प्रस्थक दृष्टान्त जानना चाहिए। जैसे—कोई व्यक्ति परशु हाथ में लेकर वन में जा रहा था। उसको देखकर किसी ने पूछा कि आप कहाँ जाते हैं। प्रत्युत्तर में उसने कहा कि 'प्रस्थक के लिए जाता हूँ।' उसका ऐसा कहना अविशुद्ध नैगमनय की अपेक्षा से है क्योंकि अभी तो उसके विचार विशेष ही उत्पन्न हुए हैं।[1] तदनन्तर किसी ने उसको काष्ठ छीलते हुए देखकर पूछा कि आप क्या छीलते हैं ? प्रत्युत्तर में उसने कहा कि प्रस्थक को छीलता हूँ। यह विशुद्ध नैगम नय का वचन है। इसी प्रकार काष्ठ को तक्षण करते हुए, उत्कीरन करते हुए, लेखन करते हुए को देखकर जब किसी ने पूछा। प्रत्युत्तर में उसने कहा कि प्रस्थक को तक्षण करता हूँ, उत्कीरन करता हूँ, लेखन करता हूँ—यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। क्योंकि विशुद्धतर नैगमनय के मत से जब प्रस्थक नामांकित हो गया तभी पूर्ण प्रस्थक माना जाता है। अर्थात् प्रथम के नैगमनय से दूसरा कथन इसी प्रकार विशुद्धतर होता हुआ नामांकित प्रस्थक (धान्यमान विशेषार्थ काष्ठमय भाजन) निष्पन्न हो जाता है। क्योंकि जब प्रस्थक का नाम स्थापन कर लिया गया तभी विशुद्धतर नैगमनय से परिपूर्ण रूप प्रस्थक होता है।

संग्रहनय के मत से सब वस्तु सामान्य रूप है, इसलिए जब वह धान्य से परिपूर्ण भरा हो तभी उसको प्रस्थक कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो घट-पटादि वस्तुएँ भी प्रस्थक संज्ञक हो जायेंगीं। इसलिए जब वह धान्य से परिपूर्ण भरा हो और अपना कार्य करता हो तभी वह प्रस्थक कहा जाता है।[2]

इसी प्रकार व्यवहारनय की मान्यता है। ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान काल को ही मानता है, भूत और भविष्यत् को नहीं। इसलिए व्यवहार-पक्ष में नामरूप प्रस्थक को भी प्रस्थक और उसमें भरे हुए धान्य को भी प्रस्थक कहा जाता है।[3]

शब्द, समभिरूढ और एवंभूत—इन तीनों नयों को शब्दनय कहते हैं क्योंकि वे शब्द के अनुकूल अर्थ मानते हैं। आद्य के चार नय अर्थ का प्राधान्य मानते हैं।[4] इसलिए शब्दनयों के

---

१ से जहा नामए केइ पुरिसे परसुं गहायअडविहुत्ते गच्छेज्जा, तं च केइ पासित्ता वदेज्जा-कयं भव गच्छसि ? अविवुद्धो नेगमो भणति पत्थगस्स गच्छामि। —अणुओगद्दाराइं ४७४

२ संगहस्स मिउमेज्जसमारूढो पत्थओ। —अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७४

३ अज्जुसुयस्स पत्थओऽवि पत्थओ मेज्जंपि पत्थओ। —अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७४

४ तिण्हं सद्दनयाणं पत्थयस्स अत्थाहिगारजाणओ जस्स वा वसेणं पत्थओ निपफज्जइ। —अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७४

मत से जो प्रस्थक के अर्थ का ज्ञाता। हो—वही प्रस्थक है, क्योंकि उपयोग से जो प्रस्थक की निष्पत्ति है वास्तव में वही प्रस्थक है, अन्य नहीं और बिना उपयोग के प्रस्थक हो ही नहीं सकता। इसलिए ये तीनों भावनय है। भाव प्रधान नयों में उपयोग ही मुख्य लक्षण है—और उपयोग के विना प्रस्थक की उत्पत्ति नहीं होती। अतः उपयोग को ही 'प्रस्थक' कहा जाता है।

वसति के दृष्टान्त से नयों का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—जैसे—कोई नामधारी पुरुष किसी पुरुष को कहे कि आप कहाँ पर रहते हो? प्रत्युत्तर में उसने कहा कि लोक में रहता हूँ—यह अविशुद्ध नैगमनय का कथन है।[1] लोक तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है—यथा—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक, तो क्या आप तीनों लोकों में वसते हैं? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं तिर्यक् लोक में ही वसता हूँ—यह विशुद्ध नैगमनय का वचन है। तिर्यक् लोक में जम्बूद्वीप से स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्येय द्वीप समुद्र हैं, तो क्या आप उन सभी में रहते हो? प्रत्युत्तर में उसने कहा कि मैं जम्बूद्वीप में वसता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र आदि दस क्षेत्र हैं, तो क्या आप उन सभी में वसते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि भरतक्षेत्र में रहता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। भरतक्षेत्र के भी दो खण्ड हैं—दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र तथा उत्तरार्द्ध भरतक्षेत्र? तो आप उन सभी में रहते हो? प्रत्युत्तर में कहा है कि मैं दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र में वास करता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है।

दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र में भी अनेक ग्राम, खान, नगर, खेड़, शहर, मंडप, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संवाह, सन्निवेश आदि स्थान हैं तो क्या आप उन सभी में निवास करते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं पाटलिपुत्र (पटना) में वसता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। पाटलिपुत्र में भी अनेक घर हैं, तो क्या आप उन सभी में वसते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं देवदत्त के घर में वसता हूँ—यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। देवदत्त के घर में अनेक कोठे-कमरे हैं, तो क्या आप उन सभी में वसते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं देवदत्त के गर्भ घर में वसता हूँ।

इस प्रकार पूर्वपूर्वापेक्षया विशुद्धतर नैगमनय के मत से वसते हुए को वसता हुआ माना जाता है। यदि वह अन्यत्र स्थान को चला गया हो तब भी जहाँ निवास करेगा वहीं उसको वसता हुआ माना जायेगा।

इसी प्रकार व्यवहारनय का मन्तव्य है। क्योंकि जहाँ पर जिसका निवासस्थान है वह उसी स्थान में वसता हुआ माना जाता है तथा जहाँ पर रहे, वही निवासस्थान उसका होता है। जैसे कि पाटिलपुत्र का रहने वाला यदि कारणवशात् कहीं पर चला जाय तब वहाँ पर ऐसा कहा जाता है कि अमुक पुरुष पाटलिपुत्र का रहने वाला यहाँ पर आया हुआ है। तथा पाटलिपुत्र में ऐसा कहते हैं—"अब वह यहाँ पर नहीं है अन्यत्र चला गया है।" भावार्थ यह है कि विशुद्धतर नैगमनय और व्यवहारनय के मत से 'वसते हुए को वसता हुआ' मानते हैं।

संग्रहनय से जब कोई स्वशय्या में शयन करे तभी वसता हुआ माना जाता है क्योंकि चलनादि क्रिया से रहित होकर शयन करने के समय को ही संग्रहनय वसता हुआ मानता है। यह सामान्यवादी है? इसलिए इसके मत से सभी शय्याएँ एक समान हैं। चाहे वे फिर कहीं पर ही क्यों न हों।

---

१ से जहा नामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं वदिज्जा, कहिं भवं वससि? तत्थ अविसुद्धो णेगमो—लोगे वसामि।

—अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७५

ऋजुसूत्रनय के मत से आकाश के जिन प्रदेशों में अवकाश किया हो अर्थात् संस्तारक में जितने आकाश प्रदेश उसने अवगाहन किये हों, उनमें ही वसता हुआ माना जाता है।

शब्द, समभिरूढ और एवंभूतनय—तीनों नयों का ऐसा मन्तव्य है कि जो-जो पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने स्वरूप में ही बसते हैं। अर्थात् तीनों शब्दनयों के अभिप्राय से पदार्थ आत्म-भाव में रहता हुआ माना जाता है।

प्रदेश के दृष्टान्त से सप्त नयों का स्वरूप निम्न प्रकार जानना चाहिए—

नैगमनय कहता है कि छह प्रकार के प्रदेश हैं—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश, स्कन्ध का प्रदेश और देश का प्रदेश।[1] इस प्रकार नैगमनय के वचन को सुनकर संग्रहनय ने कहा कि तुम छह के प्रदेश कहते हो—यह उचित नहीं है क्योंकि जो देश का प्रदेश है वह उसी के द्रव्य का है उदाहरणत:—मेरे नौकर ने गधा खरीदा है। दास भी मेरा ही है और गधा भी मेरा ही है। इसलिए ऐसे मत कहो कि छहों के प्रदेश हैं, ऐसा कहो कि पाँचों के प्रदेश हैं—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश।

संग्रहनय के वचन को सुनकर व्यवहारनय ने कहा कि तुमने पाँचों प्रदेश प्रतिपादन किये हैं, वे भी उचित नहीं हैं। जैसे—पाँच गोष्ठिक पुरुषों की किंचित् द्रव्य जाति सामान्य होती है, हिरण्य, सुवर्ण, धन अथवा धान्य साधारण साझी हों—उसी प्रकार पाँचों प्रदेश साधारण हों तब तो आपका कथन युक्तिसंगत है, लेकिन वे पृथक्-पृथक् प्रदेश हैं अत: आपका कथन युक्तिसंगत नहीं है। लेकिन ऐसा प्रतिपादन करो कि प्रदेश पाँच प्रकार का है—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश।

व्यवहारनय के वचन को सुनकर ऋजुसूत्रनय ने कहा कि तुम्हारा प्रतिपादन सम्यग् नहीं है क्योंकि एक-एक द्रव्य के पाँच-पाँच प्रदेश मानने से २५ हो जाते हैं इसलिए यह कथन सिद्धान्त बाधित है। इसलिए ऐसा न कहना चाहिए किन्तु मध्य में 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। जैसे कि—स्यात् धर्म प्रदेश यावत् स्यात् स्कन्ध प्रदेश। क्योंकि जिसकी वर्तमान में अस्ति है उसी की अस्ति है, जिसकी नास्ति है उसी की नास्ति है। जो पदार्थ है वह अपने गुण में सदैव काल में विद्यमान है क्योंकि पाँचों द्रव्य साधारण नहीं हैं इसलिए स्यात् शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

ऋजुसूत्रनय के कथन को सुनकर शब्दनय ने कहा कि यदि स्यात् शब्द का ही सर्वथा प्रयोग किया जायेगा तो अनवस्था आदि दोष की प्राप्ति हो जायेगी। जैसे कि—स्यात् धर्म प्रदेश, स्यात् अधर्म प्रदेश इत्यादि। जैसे देवदत्त राजा का भी भृत्य है और वही अमात्य का भी है। इसी प्रकार आकाशादि प्रदेश भी जानना चाहिए। इसलिए ऐसा कथन युक्तिसंगत नहीं है, किन्तु ऐसा कहना चाहिए कि जो धर्म प्रदेश है वह प्रदेश ही धर्मात्मक है। इसी प्रकार जो अधर्म प्रदेश है वह प्रदेश ही अधर्मात्मक है।[2]

शब्दनय के कथन को सुनकर समभिरूढनय ने कहा कि तुम्हारा यह कथन युक्तिसंगत

---

१ णेगमो भणति छण्हं पदेसो, तं जहा—धम्मपदेसो जाव देसपदेसो—

—अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७६

२ अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७६

नहीं है। यह वाक्य दो समास का है—तत्पुरुष और कर्मधारय **"धम्मे पएसे—से पएसे धम्मे"**। यदि तत्पुरुष के द्वारा कहता है तो ऐसा नहीं कहना चाहिए अथवा कर्मधारय से कहता है तो विशेष रूप से कथन करना चाहिए। जैसे कि—धर्म और उसका जो प्रदेश है वही प्रदेश धर्मास्तिकाय है, इसी प्रकार अधर्म और उसका जो प्रदेश है, वही प्रदेश अधर्मात्मक है।

समभिरूढनय के वचन को सुनकर सम्प्रति एवंभूतनय ने कहा कि तुम्हारा यह कथन युक्तिसंगत नहीं है। धर्मास्तिकाय आदि पदार्थों का स्वरूप देश, प्रदेश की कल्पना से रहित तथा प्रतिपूर्ण—आत्मस्वरूप से अविकल और अवयव रहित एक नाम से ग्रहण किया गया है। कहा है—

देसेऽवि से अवत्थू पएसेऽवि से अवत्थू।

—अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७६

अर्थात् एवंभूतनय की अपेक्षा देश भी अवस्तु है, प्रदेश भी अवस्तु है। भेद नहीं है। एक अखण्ड वस्तु ही ग्राह्य हो सकती है।

अपेक्षाभेद से नैगमादि नयों का आगमों में विवेचन है। ये सातों नय अपना-अपना मत निरपेक्षता से वर्णन करते हुए दुर्नय हो जाते हैं। **'सौगतादि समयवत्'** और परस्पर सापेक्ष होते हुए सन्नय हो जाते हैं। इन सात नयों का जो परस्पर सापेक्ष कथन है वही सम्पूर्ण जैनमत है। क्योंकि जैनमत अनेक नयात्मक है, एक नयात्मक नहीं। स्याद्वादमंजरी[1] में कहा है कि हे नाथ! जैसे सब नदियाँ समुद्र में इकट्ठी हो जाती हैं उसी प्रकार आपके मत में सब नय एक साथ हो जाते हैं। किन्तु आपका मत किसी भी नय में समावेश नहीं हो सकता। जैसे कि समुद्र में नदी में नहीं समाविष्ट होता इसी प्रकार सभी वादियों का सिद्धान्त तो जैनमत है लेकिन सम्पूर्ण जैनमत किसी वादी के मत में नहीं है।

नयवाद की सैद्धान्तिकता और व्यावहारिकता

तत्त्वतः सभी पदार्थ सामान्य-विशेषरूप हैं। परन्तु अल्पज्ञानी धर्म, अधर्म, आकाश—काल, इन अपौद्गलिक पदार्थों के सामान्य-विशेषत्व को सम्यग् प्रकार से नहीं समझ सकते, शब्दादि पौद्गलिक पदार्थों के सामान्य-विशेषत्व को अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। केवल नैगमनय का अनुकरण करने वाले न्याय-वैशेषिक परस्पर भिन्न और निरपेक्ष सामान्य और विशेष दोनों को स्वीकार करते हैं। नैगमनय के अनुसार अभिन्न ज्ञान का कारण सामान्यधर्म विशेषधर्म से भिन्न है। दो धर्म अथवा दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी में प्रधान और गौणता की विविक्षाओं को 'नैक-गम' अथवा नैगमनय कहते हैं। परन्तु दो धर्म, दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी में सर्वथा भिन्नता दिखाने को 'नैगमाभास' कहते हैं। निगम शब्द का अर्थ है—देश-संकल्प और उपचार। इनमें होने वाले अभिप्राय को नैगमनय कहते हैं।[2] अर्थात् इसमें तादात्म्य की अपेक्षा से ही सामान्य विशेष की भिन्नता का समर्थन किया जाता है।

वेदांती और सांख्य केवल संग्रहनय को मानते हैं। विशेषरहित सामान्यमात्र जानने वाले को संग्रहनय कहते हैं। संग्रहनय एक शब्द के द्वारा अनेक पदार्थों को ग्रहण करता है अथवा एक अंश या अवयव का नाम लेने से सर्वगुणपर्याय सहित वस्तु को ग्रहण करने वाला संग्रहनय है।

यद्यपि संग्रहनय की अपेक्षा द्रव्य और पर्याय सत् से अभिन्न हैं—परन्तु व्यवहारनय की

---

१ उदधाविव सर्वसिन्धवः, समुदीर्णास्त्वयिनाथ दृष्टयः।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः॥ —स्याद्वादमंजरी

२ निगमः देशसंकल्पः उपचारो वा तत्र भवो नैगमः। —जैन सिद्धांत दीपिका ६।१६

अपेक्षा द्रव्य और पर्याय को सत् से भिन्न माना गया है, द्रव्य और पर्याय के एकांत भेद प्रतिपादन को व्यवहाराभास कहते हैं, जैसे चार्वाक् दर्शन। चार्वाक् लोग द्रव्य के पर्यायादि को न मानकर केवल भूतचतुष्टय को मानते हैं अतः उन्हें व्यवहार भास कहा गया है। यह व्यवहारनय उपचार-बहुल और लौकिक दृष्टि को लेकर चलता है।

बौद्ध लोग क्षण-क्षण में नाश होने वाली पर्यायों को ही वास्तविक मानकर पर्यायों के आश्रित द्रव्यों का निषेध करते हैं, इसलिए उनका मत ऋजुसूत्रनयाभास है। वस्तु के सर्वथा निषेध करने को ऋजुसूत्रनयाभास कहते हैं। वर्तमान क्षण की पर्याय मात्र की प्रधानता से वस्तु का कथन करना ऋजुसूत्रनय है—जैसे—इस समय मैं सुख की पर्याय भोगता हूँ।

परस्पर विरोधी लिंग, संख्यादि के भेद से वस्तु में भेद मानने को शब्दनय कहते हैं। वैयाकरण लोग शब्दनय आदि का अनुकरण करते हैं। कालादि के भेद से शब्द और अर्थ को सर्वदा अलग मानने को शब्दनयाभास कहते हैं। रूढ़ि से संपूर्ण शब्दों के एक अर्थ में प्रयुक्त होने को 'शब्दनय' कहते हैं।

समभिरूढनय पर्यायवाची शब्दों में भिन्न अर्थ को द्योतित करता है। भिन्न-भिन्न व्युत्पत्ति होने से पर्यायवाची शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों के द्योतक हैं। पर्यायवाची शब्दों को सर्वथा भिन्न मानना समभिरूढनयाभास कहते हैं।

जिस समय व्युत्पत्ति के निमित्त रूप अर्थ का व्यवहार होता है उसी समय में शब्द में अर्थ का व्यवहार होता है अर्थात् जिस क्षण में किसी शब्द की व्युत्पत्ति का निमित्त कारण संपूर्ण रूप से विद्यमान हो, उसी समय उस शब्द का प्रयोग करना उचित है—यह एवंभूतनय की मान्यता है।

नय से विषयीकृत वस्तु धर्म को अभेदवृत्ति प्राधान्य अथवा भेदोपचार से क्रमशः कहने वाला वाक्य—विकलादेश कहा जाता है। अर्थात् विकलादेश क्रमशः भेदोपचार से अथवा भेद प्राधान्य से अशेष धर्मात्मक वस्तु का प्रतिपादन करता है क्योंकि उसको नयाधीनता है। प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार में देवेन्द्र सूरि ने कहा है—

"इयं सप्तभंगी प्रतिभंगं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा चेति।"

अर्थात् सप्तभंगी का एक-एक भंग सकलादेश स्वभाव की तरह विकलादेश स्वभाव भी स्वीकृत किया है। प्रमाण के सात भंगों की अपने विषय में विधि और प्रतिषेध की अपेक्षा नय के भी सात भंग होते हैं।[१]

नैगमादि नयों में पहले-पहले नय अधिक विषय वाले हैं और आगे-आगे के नय परिमित विषय वाले हैं। संग्रहनय सत् मात्र को जानता है जबकि नैगमनय सामान्य और विशेष—दोनों को जानता है इसलिये संग्रहनय की अपेक्षा नैगमनय का अधिक विषय है। व्यवहारनय संग्रहनय से जाने हुए पदार्थों को विशेष रूप से जानता है जबकि संग्रह समस्त सामान्य पदार्थों को जानता है इसलिए संग्रहनय का विषय व्यवहारनय की अपेक्षा अधिक है। व्यवहारनय तीनों कालों के पदार्थों को जानता है और ऋजुसूत्रनय से केवल वर्तमान पर्याय का ज्ञान होता है अतः व्यवहारनय का विषय ऋजुसूत्रनय से अधिक है, इसी प्रकार शब्दनय से ऋजुसूत्रनय का, समभिरूढ से शब्दनय का, और एवंभूतनय से समभिरूढनय का विषय अधिक है।

---

१ नय वाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमानं विधिप्रतिषेधाभ्यां सप्तभंगीमनुव्रजति।

—प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार, अ० ७

व्यावहारिकनय की अपेक्षा फाणित, गुड़, मधुर रस वाला कहा गया है और नैश्चयिकनय की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाला कहा गया है। व्यावहारिकनय की अपेक्षा भ्रमर काला है और नैश्चयिकनय से भ्रमर पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाला है।[1] व्यावहारिकनय से तोते के पंख हरे हैं और नैश्चयिकनय से पाँच वर्ण वाले, दो गंध वाले, पाँच रस वाले और आठ स्पर्श वाले होते हैं। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा मजीठ लाल है, हल्दी पीली है, शंख श्वेत है, कुष्ठ (पटवास—कपड़े में सुगंध देने वाली पत्ती) सुगंधित है, मुर्दा (मृतक शरीर) दुर्गंधित है, नीम (निम्व) तिक्त (तीखा) है, सूँठ कटुय (कड़वा) है, कविठ कषैला है, इमली खट्टी है, खांड मधुर है, वज्र कर्कश (कठोर) है, नवनीत (मक्खन) मृदु (कोमल) हैं, लोह भारी है, उलुकपत्र (बोरड़ी का पत्ता) हल्का है, हिम (बर्फ) ठंडा है, अग्निकाय उष्ण है और तेल स्निग्ध (चिकना) है। किंतु नैश्चयिकनय से इन सब में पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श हैं।

व्यावहारिकनय से राख रूक्ष स्पर्श वाली है और नैश्चयिकनय से राख पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाली है।

व्यावहारिकनय लोक-व्यवहार का अनुसरण करता है इसलिए जिस वस्तु का लोक प्रसिद्ध जो वर्ण होता है वह उसी को मानता है। नैश्चयिकनय वस्तु में जितने वर्ण हैं उन सबको मानता है। परमाणु आदि में सब वर्ण, गंध, रस, स्पर्श विद्यमान हैं, इसलिए नैश्चयिकनय इन सबको मानता है। तात्त्विक अर्थ का कथन करने वाले विचार को निश्चयनय कहते हैं—यह सिद्धांतवादी दृष्टिकोण है। लोकप्रसिद्ध अर्थ को मानने वाले विचार को व्यवहारनय कहते हैं।

विभिन्न दर्शनों के समन्वय का प्रतीक : नयवाद

अन्यवादी परस्पर पक्ष और प्रतिपक्ष भाव रखने के कारण एक-दूसरे से ईर्ष्या करते हैं, परन्तु सम्पूर्ण नयों को एक समान देखने वाले आपके शास्त्रों में पक्षपात नहीं है। आपका सिद्धान्त ईर्ष्या से रहित है क्योंकि आप नैगमादि सम्पूर्ण नयों को एक समान देखते हैं। जिस प्रकार विखरे हुए मोतियों को एक सूत्र में पिरो देने से मोतियों का सुन्दर हार बनकर तैयार हो जाता है। उसी तरह भिन्न-भिन्न नयों को स्याद्वाद रूपी सूत्र में पिरो देने से सम्पूर्ण नय श्रुतप्रमाण कहे जाते हैं। परस्पर विवाद करते हुए वादी लोग किसी मध्यस्थ के द्वारा न्याय किये जाने पर विवाद करना वन्द करके आपस में मिल जाते हैं वैसे ही परस्पर विरुद्ध नय सर्वज्ञ भगवान के शासन की शरण लेकर 'स्यात्' शब्द द्वारा विरोध के शान्त हो जाने पर परस्पर मैत्रीभाव से एकत्र रहने लगते हैं, अतः भगवान के शासन के सर्वनयस्वरूप होने से भगवान का शासन सम्पूर्ण दर्शनों से अविरुद्ध है क्योंकि प्रत्येक दर्शन नयस्वरूप है। हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण नय रूप दर्शनों को मध्यस्थ भाव से देखते हैं अतः ईर्ष्यालु नहीं है। क्योंकि आप एक पक्ष का आग्रह करके दूसरे पक्ष का तिरस्कार नहीं करते हैं। हे भगवन् ! आपने केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को यथार्थ रीति से जान कर—नय और प्रमाण के द्वारा दुर्नयवाद का निराकरण किया है। नयस्वरूप स्याद्वाद का प्ररूपण करने वाला आपका द्वादशांग प्रवचन किसी के द्वारा भी पराभूत नहीं किया जा सकता।

सभी पदार्थ द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य हैं।

---

१ वावहारियणयस्स कालए भमरे, णेच्छइयणयस्स पंचवण्णे दुगंधे पंचरसे अट्ठफासे पण्णत्ते।
—भगवती, शतक १८, उद्देशक ६, सूत्र २

की सचेतावस्था में होने वाला पदार्थज्ञान मतिज्ञान है अथवा श्रवणेन्द्रियातिरिक्त ज्ञानेन्द्रियजन्य ज्ञान को भी मतिज्ञान कहा जा सकता है।

कतिपय दार्शनिकों की इस भ्रान्त धारणा कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान का ही एक भेद है, के निराकरण हेतु अधिकांश जैनदार्शनिकों ने मतिज्ञान के स्वरूप का विवेचन श्रुतज्ञान का लक्षण करते हुए किया है।

श्रुतज्ञान

सामान्यतः श्रुत का अर्थ **'श्रवणं-श्रुतम्'** से सुनना है। यह संस्कृत की 'श्रु' धातु से निष्पन्न है। पूज्यपाद ने श्रुत का अर्थ श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर निरुप्यमाण पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनना या सुनना मात्र है वह श्रुत है।[१]

किन्तु 'श्रुत' शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ सुना हुआ होने पर भी जैन-दर्शन में यह 'श्रुत' शब्द ज्ञान विशेष में रूढ़ है।[२] तथा **'मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्'**[3] इस सूत्र से भी ज्ञान शब्द की अनुवृत्ति चली आने के कारण भावरूप श्रवण द्वारा निर्वचन किया गया श्रुत का अर्थ श्रुतज्ञान है। केवल मात्र कानों से सुना गया शब्द ही श्रुत नहीं है।[४] श्रुत का अर्थ ज्ञान विशेष करने पर जैन-दर्शन में जो शब्दमय द्वादशांग श्रुत प्रसिद्ध है उसमें विरोध उपस्थित होता है क्योंकि श्रुत शब्द से ज्ञान को ग्रहण करने पर शब्द छूट जाते हैं और शब्द को ग्रहण करने पर ज्ञान छूट जाता है तथा दोनों का एक साथ ग्रहण होना भी असम्भव है। इस पर जैनदार्शनिकों का कथन है कि उपचार से शब्दात्मक श्रुत भी श्रुतशब्द द्वारा ग्रहण करने योग्य है। इसीलिए सूत्रकार ने शब्द के भेद-प्रभेदों को बताया है। यदि इनको 'श्रुतशब्द' ज्ञान ही इष्ट होता तो ये शब्द के होने वाले भेद-प्रभेदों को नहीं बताते।[५] अतः जैनदार्शनिकों को मुख्यतः तो श्रुत से ज्ञान अर्थ ही इष्ट है, किन्तु उपचार से श्रुत का शब्दात्मक होना भी उनको ग्राह्य है।

उमास्वाति के पूर्व शब्द को सुनकर जो ज्ञान होता था उसे श्रुतज्ञान कहा जाता था और उसमें शब्द के मुख्य कारण होने से उसे भी उपचार में श्रुतज्ञान कहा जाता था। परन्तु उमास्वाति को श्रुतज्ञान का इतना ही लक्षण इष्ट नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने अपने तत्त्वार्थसूत्र में श्रुतज्ञान का एक-दूसरा ही लक्षण किया है, जिसके अनुसार श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है। उमास्वाति के पश्चात्वर्ती जैनदार्शनिकों में नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक को छोड़कर प्रायः सभी यह मानते हैं कि

---

१ (क) तत्त्वार्थवार्तिकम् १।९।२, पृ० ४४

(ख) तदावरणकर्मक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रुयते अनेन—शृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम्।
—सर्वार्थसिद्धि १।९, पृ० ६६

(ग) तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार ३।९।४, पृ० ३

२ श्रुतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात् कस्मिंश्चिज्ज्ञान विशेषे वर्तते।
—सर्वार्थसिद्धि १।२०, पृ० ८३

३ तत्त्वार्थसूत्र १।२०

४ ·········ज्ञानमित्यनुवर्तनात्। श्रवणं हि श्रुतज्ञानं न पुनः शब्दमात्रकम्।
—तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार ३।२०।२०, पृ० ५९६

५ वही, ३।२०।३, पृ० ५९०

श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है। किन्तु उमास्वाति के इस लक्षण से श्रुतज्ञान का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट नहीं होता है। इसीलिए जैनदार्शनिकों ने पृथक्-पृथक् इसके लक्षण किये हैं।

जिनभद्रगणि के अनुसार इन्द्रिय और मन की सहायता से जो शब्दानुसारी ज्ञान होता है और अपने में प्रतिभा समान अर्थ का प्रतिपादन करने में जो समर्थ होता है उसे तो भावश्रुत कहते हैं तथा जो ज्ञान इन्द्रिय और मन के निमित्त से उत्पन्न होता है परन्तु शब्दानुसारी नहीं होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं।[1]

जिनभद्रगणि के इस लक्षण से यद्यपि अकलंक सहमत हैं किन्तु इन्होंने शब्द पर जिनभद्रगणि से अधिक बल दिया है। अकलंक का कहना है कि शब्द योजना से पूर्व जो मति, स्मृति, चिन्ता, ज्ञान होते हैं, वे मतिज्ञान हैं और शब्द योजना होने पर वे ही श्रुतज्ञान हैं।[2] अकलंक ने श्रुतज्ञान का यह लक्षण करके अन्य दर्शनों में माने गये उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, सम्भव, ऐतिह्य और प्रतिभा प्रमाणों का अन्तर्भाव श्रुतज्ञान में किया है और इनका यह भी कहना है कि शब्द प्रमाण तो श्रुतज्ञान ही है। इनके इस मत का पश्चात्वर्ती जैनदार्शनिकों ने समर्थन भी किया परन्तु उनको इनका शब्द पर इतना अधिक बल देना उचित प्रतीत नहीं हुआ। यद्यपि वे भी इस बात को तो स्वीकार करते हैं कि श्रुतज्ञान में शब्द की प्रमुखता होती है।

अमृतचन्द्र सूरि ने श्रुतज्ञान का लक्षण करते हुए इतना ही कहा कि मतिज्ञान के बाद स्पष्ट अर्थ की तर्कणा को लिए हुए जो ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है।[3]

किन्तु नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक ने तो श्रुतज्ञान का लक्षण इन सबसे एकदम भिन्न किया है। यह हम पूर्व में ही संकेत कर चुके हैं कि श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है इसको ये स्वीकार नहीं करते हैं। इनके इसको स्वीकार नहीं करने का कारण शायद यह रहा होगा कि श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक रूप से जो दो भेद हैं, उनमें अनक्षरात्मक श्रुत दिगम्बर-परम्परा के अनुसार शब्दात्मक नहीं है और ऊपर श्रुतज्ञान की यह परिभाषा दी गयी है कि शब्द योजना से पूर्व जो मति, स्मृति, चिन्ता, ज्ञान हैं, वे मतिज्ञान हैं और शब्द योजना होने पर वे ही श्रुतज्ञान हैं इस परिभाषा को मानने पर मतिज्ञान और अनक्षरात्मक श्रुत में कोई भेद नहीं रह जाता है। इसीलिए इन्होंने श्रुतज्ञान का लक्षण इन सबसे भिन्न किया है। इनके अनुसार मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।[4]

किन्तु श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है इस कथन में कोई असंगति नहीं है क्योंकि यह इस दृष्टि

---

१ इंदियमणोणिमित्तं जं विण्णाणं सुताणुसारेणं।
णिअयत्थु त्ति समत्थं तं भावसुतं मति सेसं॥

—विशेषावश्यकभाष्य, भाग १, गाथा ९९

२ ज्ञानमाद्यं मतिः संज्ञा चिन्ता चाभिनिबोधिकम्।
प्राक् नामयोजनाच्छेषं श्रुतं शब्दानुयोजनात्॥

—लघीयस्त्रय, कारिका १०

३ द्रष्टव्य—तत्त्वार्थसार, कारिका २४

४ अत्थादो अत्थंतरसुवलंभतं भणंति सुदणाणं।

—गोम्मटसार (जीवकाण्ड), गाथा ३९

से कहा गया है कि श्रुतज्ञान होने के लिए शब्द श्रवण आवश्यक है और शब्द श्रवण मति के अन्तर्गत है तथा यह श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है। जब शब्द सुनाई देता है तब उसके अर्थ का स्मरण होता है। शब्दश्रवणरूप जो व्यापार है वह मतिज्ञान है, उसके पश्चात् उत्पन्न होने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान नहीं हो सकता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रुतज्ञान में मतिज्ञान मुख्य कारण है। क्योंकि मतिज्ञान के होने पर भी जब तक श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम न हो तब तक श्रुतज्ञान नहीं हो सकता है। मतिज्ञान तो इसका बाह्य कारण है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि श्रुतज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम होने पर मन और इन्द्रिय की सहायता से अपने में प्रतिभासमान अर्थ का प्रतिपादन करने में समर्थ जो स्पष्ट ज्ञान है वह श्रुतज्ञान है।

यद्यपि दोनों के स्वरूप विवेचन से ही यह सिद्ध हो जाता है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान का भेद नहीं है। फिर भी जैनदार्शनिकों ने पृथक् से इस विषय में अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है।

जिनभद्रगणि[1] ने अपने 'विशेषावश्यकभाष्य' में दोनों के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मतिज्ञान का लक्षण भिन्न है और श्रुत का लक्षण भिन्न है। मति कारण है, श्रुत उसका कार्य है। मति के भेद भिन्न हैं और श्रुत के भेद भिन्न हैं। श्रुतज्ञान की इन्द्रिय केवल श्रोत्रेन्द्रिय है और मतिज्ञान की इन्द्रियाँ सभी हैं; मतिज्ञान मूक है इसके विपरीत श्रुतज्ञान मुखर है इत्यादि।

वैसे भी मतिज्ञान प्रायः वर्तमान विषय का ग्राहक होता है जबकि श्रुतज्ञान त्रिकाल विषयक अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का ग्राहक होता है। श्रुतज्ञान का मतिज्ञान से एक भेद यह है कि मतिज्ञान तो सिर्फ ज्ञान रूप ही है जबकि श्रुतज्ञान ज्ञान रूप भी है और शब्दरूप भी है, इसे ज्ञाता स्वयं भी जानता है और दूसरों को भी ज्ञान कराता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रुतज्ञान एक स्वतन्त्र ज्ञान है। जिन दार्शनिकों ने इसे मति का ही एक भेद माना है उन्होंने इसके स्वरूप को ठीक से नहीं समझा अन्यथा वे ऐसा नहीं कहते।

पता—
डा० हेमलता बोलिया
C/o श्रीमान् बलवन्तसिंहजी बोलिया
३५, गंगा गली (गणेश घाटी)
पो० उदयपुर

---

१ विशेषावश्यकभाष्य भाग १, गाथा ९७
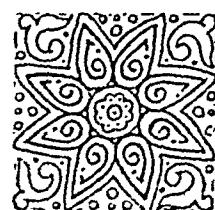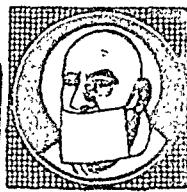
जैन-परम्परा में पूर्वज्ञान : एक विश्लेषण

—डॉ० मुनिश्री नगराज जी, डी० लिट्०

जैन वाङ्मय में ज्ञानियों की दो प्रकार की परम्पराएँ प्राप्त होती हैं: पूर्वधर और द्वादशांग-वेत्ता। पूर्वों में समग्र श्रुत या वाक्-परिणेय समग्र ज्ञान का समावेश माना गया है। वे संख्या में चतुर्दश हैं। जैन श्रमणों में पूर्वधरों का ज्ञान की दृष्टि से उच्च स्थान रहा है। जो श्रमण चतुर्दश पूर्वों का ज्ञान धारण करते थे, उन्हें श्रुत-केवली कहा जाता था।

पूर्व-ज्ञान की परम्परा

एक मत ऐसा है, जिसके अनुसार पूर्व ज्ञान भगवान् महावीर से पूर्ववर्ती समय से चला आ रहा था। महावीर के पश्चात् अर्थात् उत्तरवर्ती काल में जो वाङ्मय सर्जित हुआ, उससे पूर्व का होने से वह (पूर्वात्मक-ज्ञान) 'पूर्व' नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। उसकी अभिधा के रूप में प्रयुक्त 'पूर्व' शब्द सम्भवतः इसी तथ्य पर आधारित है।

द्वादशांगी से पूर्व पूर्व-रचना

एक दूसरे अभिमत के अनुसार द्वादशांगी की रचना से पूर्व गणधरों द्वारा अर्हद्-भाषित तीन मातृका-पदों के आधार पर चतुर्दशशास्त्र रचे गये, जिनमें समग्र श्रुत की अवतारणा की गयी.... आवश्यक निर्युक्ति में ऐसा उल्लेख है।[1]

द्वादशांगी से पूर्व—पहले यह रचना की गयी, अतः ये चतुर्दश शास्त्र चतुर्दश पूर्वों के नाम से विख्यात हुए। श्रुतज्ञान के कठिन, कठिनतर और कठिनतम विषय शास्त्रीय पद्धति से इनमें निरूपित हुए। यही कारण है, यह वाङ्मय विशेषतः विद्वत्प्रोज्य था। साधारण बुद्धिवालों के लिए यह दुर्गम था। अतएव इसके आधार पर सर्वसाधारण के लाभ के लिए द्वादशांगी की रचना की गयी।

आवश्यक-निर्युक्ति[2] विवरण में आचार्य मलयगिरि ने इस सम्बन्ध में जो लिखा है, पठनीय है।

---

१ धम्मोवाओ पवयणमहवा पुव्वाइं देसया तस्स।
सव्व जिणाणा गणहरा चौद्दस पुव्वा उ ते तस्स॥
सामाइयाइया वा वयजीवनिकाय भावणा पढमं।
एसो धम्मोवादो जिणेहिं सव्वेहिं उवइट्ठो॥

—आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा २९२-९३

२ ननु पूर्वं तावत् पूर्वाणि भगवद्भिर्गणधरैरुपनिवध्यन्ते, पूर्वकरणात् पूर्वाणीति पूर्वाचार्यप्रदर्शित-व्युत्पत्तिश्रवणात्, पूर्वेषु च सकलवाङ्मयस्यावतारो, न खलु तदस्ति यत्पूर्वेषु नाभिहितं, ततः किं शेषांगविरचनेनांग बाह्य विरचनेन वा? उच्यते, इह विचित्रा जगति प्राणिनः तत्र ये दुर्मेधसः ते पूर्वाणि नाध्येतुमीशते, पूर्वाणामतिगम्भीरार्थत्वात्, तेषां च दुर्मेधत्वात्, स्त्रीणां पूर्वाध्ययनानधिकार एव तासां तुच्छत्वादिदोषबहुलत्वात्।

—पृ० ४८, प्रकाशक, आगमोदय समिति, बम्बई
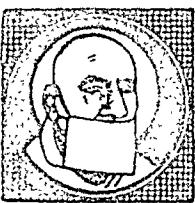
दृष्टिवाद में पूर्वों का समावेश

द्वादशांगी के बारहवें भाग का नाम दृष्टिवाद है। वह पांच भागों में विभक्त है—१. परि-कर्म, २. सूत्र, ३. पूर्वानुयोग, ४. पूर्वगत और ५. चूलिका। चतुर्थ विभाग पूर्वगत में चतुर्दश पूर्वज्ञान का समावेश माना गया है। पूर्वज्ञान के आधार पर द्वादशांगी की रचना हुई, फिर भी पूर्व-ज्ञान को छोड़ देना सम्भवतः उपयुक्त नहीं लगा। यही कारण है कि अन्ततः दृष्टिवाद में उसे सन्निविष्ट कर दिया गया। इससे यह स्पष्ट है कि जैन तत्त्व-ज्ञान के महत्त्वपूर्ण विषय उसमें सूक्ष्म विश्लेषण पूर्वक बड़े विस्तार से व्याख्यात थे।

विशेषावश्यकभाष्य में उल्लेख है कि यद्यपि भूतवाद या दृष्टिवाद में समग्र उपयोग—ज्ञान का अवतरण अर्थात् समग्र वाङ्मय अन्तर्भूत है। परन्तु अल्पबुद्धि वाले लोगों तथा स्त्रियों के उपकार के हेतु उससे शेष श्रुत का निर्ग्रहण हुआ, उसके आधार पर सारे वाङ्मय का सर्जन हुआ।[1]

स्त्रियों के लिए दृष्टिवाद का वर्जन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्त्रियों को दृष्टिवाद का शिक्षण देना वर्जित था। इस सम्बन्ध में विशेषावश्यकभाष्य में जो उल्लेख किया गया है, वह इस प्रकार है—स्त्रियाँ तुच्छ, गर्वोन्नत और चंचलेन्द्रिय होती हैं। उनकी मेधा अपेक्षाकृत दुर्बल होती है, अतः उत्थान-समुत्थान आदि अतिशय या चमत्कार-युक्त अध्ययन तथा दृष्टिवाद का ज्ञान उनके लिए नहीं है।[2]

भाष्यकार ने स्त्रियों की किन्हीं तथाकथित दुर्बलताओं की ओर लक्ष्य किया है। उनका तुच्छ, गर्वबहुल स्वभाव, चपलेन्द्रियता और बुद्धिमान्द्य भाष्यकार के अनुसार वे हेतु हैं, जिनके कारण उन्हें दृष्टिवाद का शिक्षण नहीं दिया जा सकता।

विशेषावश्यकभाष्य की गाथा ५५ की व्याख्या करते हुए मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने जो लिखा है, उसका सारांश इस प्रकार है—स्त्रियों को यदि किसी प्रकार दृष्टिवाद श्रुत करा दिया जाए, तो तुच्छता आदि से युक्त प्रकृति के कारण वे भी दृष्टिवाद की अध्येता हैं, इस प्रकार मन में अभिमान लाकर पुरुष के परिभव-तिरस्कार आदि में प्रवृत्त हो जाती हैं। फलतः उन्हें दुर्गति प्राप्त होती है। यह जानकर दया के सागर, परोपकार-परायण तीर्थंकरों ने उत्थान, समुत्थान आदि अतिशय चमत्कार-युक्त अध्ययन तथा दृष्टिवाद स्त्रियों को देने का निषेध किया है। स्त्रियों को श्रुत ज्ञान प्राप्त कराया जाना चाहिए। यह उन पर अनुग्रह करते हुए शेष ग्यारह अंग आदि वाङ्मय का सर्जन किया गया।

भाष्यकार आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण तथा वृत्तिकार आचार्य मलधारी हेमचन्द्र ने

---

१ जइवि य भूयावाए सव्वस्स वओगयस्स ओयारो।
निज्जूहणा तहावि हु दुम्मेहे पप्प इत्थी य॥

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ५५१

२ तुच्छा गारवबहुला चलिंदिया दुब्बला धिईए य।
इति आइसेसज्झयणा भूयावाओ य नो त्थीणं॥

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ५५२

स्त्रियों की प्रकृति, प्रवृत्ति, मेधा आदि की जो आलोचना की है, वह विमर्श सापेक्ष है, उस पर तथ्यान्वेषण की दृष्टि से ऊहापोह किया जाना चाहिए। गर्व, चापल्य तथा बुद्धि-दौर्बल्य या प्रतिभा की मन्दता आदि स्त्री-धर्म ही हैं, यह कहा जाना तो संगत नहीं लगता पर, प्राचीन काल से ही लोक-मान्यता कुछ इसी प्रकार की रही है। गर्व का अभाव, ऋजुता, जितेन्द्रियता और बुद्धि-प्रकर्ष संस्कार—लभ्य भी हैं और अध्यवसाय-गम्य भी। वे केवल पुरुष जात्याश्रित ही हो, यह कैसे माना जा सकता है? स्त्री जहाँ तीर्थंकर नामकर्म तक का बन्ध कर सकती है अर्थात् स्त्री में तीर्थंकर पद, जो अध्यात्म-साधना की सर्वोच्च सफल कोटि की स्थिति है, अधिगत करने का क्षमता है, तब उसमें उपर्युक्त दुर्बलताएँ आरोपित कर उसे दृष्टिवाद-श्रुत की अधिकारिणी न मानना एक प्रश्न-चिन्ह उपस्थित करता है।

नारी और दृष्टिवाद : एक और चिन्तन

प्रस्तुत विषय में कतिपय विद्वानों की एक और मान्यता है। उसके अनुसार पूर्व-ज्ञान लब्ध्यात्मक है। उसे स्वायत्त करने के लिए केवल अध्ययन या पठन ही यथेष्ट नहीं है, अनिवार्यत: कुछ विशेष प्रकार की साधनाएँ भी करनी होती हैं, जिनमें कुछ काल के लिए एकान्त और एकाकी वास भी आवश्यक है। एक विशेष प्रकार के दैहिक संस्थान के कारण स्त्री के लिए यह सम्भव नहीं है। यही कारण है कि उसे दृष्टिवाद सिखाने की आज्ञा नहीं है, यह हेतु अवश्य विचारणीय है।

पूर्व-रचना : काल-तारतम्य

पूर्वों की रचना के सम्बन्ध में आचारांग-निर्युक्ति में एक और संकेत किया गया है, जो पूर्वों के उल्लेखों से भिन्न है। वहाँ सर्वप्रथम आचारांग की रचना का उल्लेख है, उसके अनन्तर अंग-साहित्य और इतर वाङ्मय का जब एक ओर पूर्व वाङ्मय की रचना के सम्बन्ध में प्राय: अधिकांश विद्वानों का अभिमत उनके द्वादशांगी से पहले रचे जाने का है, वहाँ आचारांग-निर्युक्ति में आचारांग के सर्जन का उल्लेख एक भेद उत्पन्न करता है। अभी तो उसके अपाकरण का कोई साधक हेतु उपलब्ध नहीं है। इसलिए इसे यहीं छोड़ते हैं, पर इसका निष्कर्ष निकालने की ओर विद्वज्जनों का प्रयास रहना चाहिए।

सभी मतों के परिप्रेक्ष्य में ऐसा स्पष्ट ध्वनित होता है कि पूर्व वाङ्मय की परम्परा सम्भवत: पहले से रही है और वह मुख्यत: तत्त्वादि की निरूपक रही है। वह विशेषत: उन लोगों के लिए थी [जो स्वभावत: दार्शनिक मस्तिष्क और तात्त्विक रुचि-सम्पन्न होते थे। सर्वसाधारण के लिए उसका उपयोग नहीं था। इसलिए बालकों, नारियों, वृद्धों, अल्पमेधावियों या गूढ़ तत्त्व समझने की न्यून क्षमता वालों के हित के लिए प्राकृत में धर्म-सिद्धान्त की अवतारणा हुई, जैसी उक्तियाँ अस्तित्व में आईं।[१]

पूर्व वाङ्मय की भाषा

पूर्व वाङ्मय अपनी अत्यधिक विशालता के कारण शब्द-रूप में पूरा-का-पूरा व्यक्त किया

---

१ बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां, नृणां चारित्रकांक्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञै:, सिद्धान्त: प्राकृत: कृत:॥ —दशवैकालिकवृत्ति, पृ० २०३

क में धर्मास्तिकाय आदि जो है और खर-विषाणादि जो
ावा सभी वस्तुएं स्वरूप की अपेक्षा से हैं तथा पररूप की
न है।[2] पद-परिमाण साठ लाख है।

: आदि पाँच प्रकार के ज्ञान का विस्तारपूर्वक विश्लेपण है।

ार्थ संयम या वचन[3] है। उनका विस्तारपूर्वक सूक्ष्मता से
धक एक करोड़ है।

त्मा या जीव का नय-भेद से अनेक प्रकार से वर्णन है। पद-

ावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों का प्रकृति, स्थिति,
विस्तृत वर्णन किया गया है। पद परिमाण एक करोड़

-प्रभेद सहित प्रत्याख्यान-त्याग का विवेचन है। पद-परि-

अतिशय-चमत्कार युक्त विद्याओं का, उनके अनुरूप साधनों
रिमाण एक करोड़ दस लाख हैं।

का अर्थ निष्फल होता है, निष्फल न होना अवन्ध्य है।
ाक ज्ञान, तप, संयम आदि का तथा अशुद्ध फलात्मक प्रमाद
्बीस करोड़ है।

प्राण अर्थात् पाँच इन्द्रिय, मानस आदि तीन बल, उच्छ्वास-
ृत विश्लेषण है। पद-परिमाण एक करोड़ छप्पन लाख है।

कायिक आदि क्रियाओं का, संयमात्मक क्रियाओं का तथा
वेवेचन है। पद-परिमाण नौ करोड़ है।

ं लोक में या श्रुत-लोक में अक्षर के ऊपर लगे बिन्दु की

।

दि, यच्च नास्ति खरशृंगादि तत्प्रवदतीत्यस्तिनास्ति प्रवा-
त, पररूपेण नास्तीति अस्तिनास्ति प्रवादम्।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५

ामं वचनं वा प्रकर्षेण सप्रपंचमं वदंतीति सत्यप्रवादम्।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५

जा सके, सम्भव नहीं माना जाता। परम्परया कहा जाता है कि मसी-चूर्ण की इतनी विशाल राशि हो कि अंबारी सहित हाथी भी उसमें ढंक जाये। उस मसी-चूर्ण को जल में घोला जाए और उससे पूर्व लिखे जाएँ, तो भी यह कभी शक्य नहीं होगा कि वे लेख में बाँधे जा सकें। अर्थात् पूर्वज्ञान समग्रतया शब्द का विषय नहीं है। वह लब्धिरूप आत्मक्षमतानुस्यूत है। पर, इतना सम्भाव्य मानना ही होगा कि जितना भी अंश रहा हो, शब्दरूप में उसकी अवतरणा अवश्य हुई। तब प्रश्न उपस्थित होता है, किस भाषा में ऐसा किया गया ?

साधारणतया यह मान्यता है कि पूर्व संस्कृत-बद्ध थे। कुछ लोगों का इसमें अन्यथा मत भी है। वे पूर्वों के साथ किसी भी भाषा को नहीं जोड़ना चाहते। लब्धिरूप होने से जिस किसी भाषा में उनकी अभिव्यंजना संभाव्य है। सिद्धान्ततः ऐसा भी सम्भावित हो सकता है। पर, चतुर्दश पूर्वधरों की, दश पूर्वधरों की, क्रमशः हीयमान पूर्वधरों की एक परम्परा रही है। उन पूर्वधरों द्वारा अधिगत पूर्व-ज्ञान, जितना भी वाग्-विषयता में संचीर्ण हुआ, वहाँ किसी न किसी भाषा का अवलम्बन अवश्य ही रहा होगा। यदि संस्कृत में वैसा हुआ, तो स्वभावतः एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जैन मान्यता के अनुसार प्राकृत (अर्द्धमागधी) आदि-भाषा है। तीर्थंकर अर्द्धमागधी में धर्म-देशना देते हैं। वह श्रोतृ-समुदाय की अपनी-अपनी भाषा में परिणत हो जाती है। देवता इसी भाषा मे बोलते हैं। अर्थात् वैदिक परम्परा में विश्वास रखने वालों के अनुसार छन्दस् (वैदिक संस्कृत) का जो महत्व है, जैनधर्म में आस्था रखने वालों के लिए आर्षत्व के संदर्भ में प्राकृत का वही महत्व है।

भारत में प्राकृत-बोलियाँ अत्यन्त प्राचीन काल से लोक-भाषा के रूप में व्यवहृत रही हैं। छन्दस् सम्भवतः उन्हीं बोलियों में से किसी एक पर आधृत शिष्ट रूप है। लौकिक संस्कृत का काल उससे पश्चाद्वर्ती है। इस स्थिति में पूर्व-श्रुत को भाषात्मक दृष्टि से संस्कृत के साथ जोड़ना कहाँ तक संगत है ? कहीं परवर्ती काल में ऐसा तो नहीं हुआ, जब संस्कृत का साहित्यिक भाषा के रूप में सर्वातिशायी गौरव पुनः प्रतिष्ठापन्न हुआ, तब जैन विद्वानों के मन में भी वैसा आकर्षण जगा हो कि वे भी अपने आदि वाङ्मय का उसके साथ लगाव सिद्ध करें, जिससे उसका माहात्म्य बढ़े, निश्चयात्मक रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता पर सहसा यह मान लेना समाधायक नहीं प्रतीत होता कि पूर्व-श्रुत संस्कृत-निबद्ध रहा।

पूर्वगत : एक परिचय

पूर्वगत के अन्तर्गत विपुल साहित्य है। उसके अन्तर्वर्ती चौदह पूर्व हैं—

१. **उत्पादपूर्व**—इसमें समग्र द्रव्यों और पर्यायों के उत्पाद या उत्पत्ति को अधिकृत कर विश्लेषण किया गया है। इसका पद-परिमाण एक करोड़ है।

२. **अग्रायणीयपूर्व**—अग्र तथा अयन शब्दों के मेल से अग्रायणीय शब्द निष्पन्न हुआ है। अग्र[1] का अर्थ परिमाण और अयन का अर्थ गमन-परिच्छेद या विशदीकरण है। अर्थात् इस पूर्व में सब द्रव्यों, सब पर्यायों और सब जीवों के परिमाण का वर्णन है। पद-परिमाण छियानवें लाख है।

---

१. अग्रं परिमाणं तस्य अयनं गमनं परिच्छेद इत्यर्थः तस्मै हितमग्रायणीयम्, सर्वद्रव्यादिपरिमाण-परिच्छेदकारि—इति भावार्थः तथाहि तत्र सर्वद्रव्याणां सर्वपर्यायाणां सर्वजीवविशेषाणां च परिमाणमुपवर्ण्यते।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, २५१५

३. **वीर्यप्रवादपूर्व**—इसमें सकर्म और अकर्म जीवों के वीर्य[1] का विवेचन है। पद-परिमाण सत्तर लाख है।

४ **अस्ति-नास्ति-प्रवादपूर्व**—लोक में धर्मास्तिकाय आदि जो हैं और खर-विषाणादि जो नहीं है, उनका इसमें विवेचन है। अथवा सभी वस्तुएँ स्वरूप की अपेक्षा से हैं तथा पररूप की अपेक्षा से नहीं हैं, इस सम्बन्ध में विवेचन है।[2] पद-परिमाण साठ लाख है।

५. **ज्ञानप्रवादपूर्व**—इसमें मति आदि पांच प्रकार के ज्ञान का विस्तारपूर्वक विश्लेषण है। पद-परिमाण एक कम एक करोड़ है।

६. **सत्य-प्रवादपूर्व**—सत्य का अर्थ संयम या वचन[3] है। उनका विस्तारपूर्वक सूक्ष्मता से इसमें विवेचन है। पद-परिमाण छः अधिक एक करोड़ है।

७. **आत्म-प्रवादपूर्व**—इसमें आत्मा या जीव का नय-भेद से अनेक प्रकार से वर्णन है। पद-परिमाण छब्बीस करोड़ है।

८. **कर्म-प्रवादपूर्व**—इसमें ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश आदि भेदों की दृष्टि से विस्तृत वर्णन किया गया है। पद परिमाण एक करोड़ छियासी हजार है।

९. **प्रत्याख्यानपूर्व**—इसमें भेद-प्रभेद सहित प्रत्याख्यान-त्याग का विवेचन है। पद-परिमाण चौरासी लाख है।

१०. **विद्यानुप्रवादपूर्व**—अनेक अतिशय-चमत्कार युक्त विद्याओं का, उनके अनुरूप साधनों का तथा सिद्धियों का वर्णन है। पद-परिमाण एक करोड़ दस लाख है।

११. **अवन्ध्यपूर्व**—वन्ध्य शब्द का अर्थ निष्फल होता है, निष्फल न होना अवन्ध्य है। इसमें निष्फल न जाने वाले शुभफलात्मक ज्ञान, तप, संयम आदि का तथा अशुद्ध फलात्मक प्रमाद आदि का निरूपण है। पद-परिमाण छब्बीस करोड़ है।

१२. **प्राणायुप्रवादपूर्व**—इसमें प्राण अर्थात् पाँच इन्द्रिय, मानस आदि तीन बल, उच्छ्वास-निःश्वास तथा आयु का भेद-प्रभेद सहित विश्लेषण है। पद-परिमाण एक करोड़ छप्पन लाख है।

१३. **क्रियाप्रवादपूर्व**—इसमें कायिक आदि क्रियाओं का, संयमात्मक क्रियाओं का तथा स्वच्छन्द क्रियाओं का विशाल-विपुल विवेचन है। पद-परिमाण नौ करोड़ है।

१४. **लोकबिन्दुसारपूर्व**—इसमें लोक में या श्रुत-लोक में अक्षर के ऊपर लगे बिन्दु की

---

१. अन्तरंग शक्ति, सामर्थ्य, पराक्रम।

२. यद वस्तु लोकेस्ति धर्मास्तिकायादि, यच्च नास्ति खरशृंगादि तत्प्रवदतीत्यस्तिनास्ति प्रवादम् अथवा सर्वं वस्तु स्वरूपेणास्ति, पररूपेण नास्तीति अस्तिनास्ति प्रवादम्।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५

३. सत्यं संयमो वचनं वा तत्सत्य संयमं वचनं वा प्रकर्षेण सप्रपंचमं वदंतीति सत्यप्रवादम्।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५

जा सके, सम्भव नहीं माना जाता। परम्परया कहा जाता है कि मसी-चूर्ण की इतनी विशाल राशि हो कि अंबारी सहित हाथी भी उसमें ढंक जाये। उस मसी-चूर्ण को जल में घोला जाए और उससे पूर्व लिखे जाएँ, तो भी यह कभी शक्य नहीं होगा कि वे लेख में बाँधे जा सकें। अर्थात् पूर्वज्ञान समग्रतया शब्द का विषय नहीं है। वह लब्धिरूप आत्मक्षमतानुस्यूत है। पर, इतना सम्भाव्य मानना ही होगा कि जितना भी अंश रहा हो, शब्दरूप में उसकी अवतरणा अवश्य हुई। तब प्रश्न उपस्थित होता है, किस भाषा में ऐसा किया गया ?

साधारणतया यह मान्यता है कि पूर्व संस्कृत-बद्ध थे। कुछ लोगों का इसमें अन्यथा मत भी है। वे पूर्वों के साथ किसी भी भाषा को नहीं जोड़ना चाहते। लब्धिरूप होने से जिस किसी भाषा में उनकी अभिव्यंजना संभाव्य है। सिद्धान्ततः ऐसा भी सम्भावित हो सकता है। पर, चतुर्दश पूर्वधरों की, दश पूर्वधरों की, क्रमशः हीयमान पूर्वधरों की एक परम्परा रही है। उन पूर्वधरों द्वारा अधिगत पूर्व-ज्ञान, जितना भी वाग्-विषयता में संचीर्ण हुआ, वहाँ किसी न किसी भाषा का अवलम्बन अवश्य ही रहा होगा। यदि संस्कृत में वैसा हुआ, तो स्वभावतः एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जैन मान्यता के अनुसार प्राकृत (अर्द्धमागधी) आदि-भाषा है। तीर्थंकर अर्द्धमागधी में धर्म-देशना देते हैं। वह श्रोतृ-समुदाय की अपनी-अपनी भाषा में परिणत हो जाती है। देवता इसी भाषा मे बोलते हैं। अर्थात् वैदिक परम्परा में विश्वास रखने वालों के अनुसार छन्दस् (वैदिक संस्कृत) का जो महत्व है, जैनधर्म में आस्था रखने वालों के लिए आर्षत्व के संदर्भ में प्राकृत का वही महत्व है।

भारत में प्राकृत-बोलियाँ अत्यन्त प्राचीन काल से लोक-भाषा के रूप में व्यवहृत रही हैं। छन्दस् सम्भवतः उन्हीं बोलियों में से किसी एक पर आधृत शिष्ट रूप है। लौकिक संस्कृत का काल उससे पश्चाद्वर्ती है। इस स्थिति में पूर्व-श्रुत को भाषात्मक दृष्टि से संस्कृत के साथ जोड़ना कहाँ तक संगत है ? कहीं परवर्ती काल में ऐसा तो नहीं हुआ, जब संस्कृत का साहित्यिक भाषा के रूप में सर्वातिशायी गौरव पुनः प्रतिष्ठापन्न हुआ, तब जैन विद्वानों के मन में भी वैसा आकर्षण जगा हो कि वे भी अपने आदि वाङ्मय का उसके साथ लगाव सिद्ध करें, जिससे उसका माहात्म्य बढ़े, निश्चयात्मक रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता पर सहसा यह मान लेना समाधायक नहीं प्रतीत होता कि पूर्व-श्रुत संस्कृत-निबद्ध रहा।

पूर्वगत : एक परिचय

पूर्वगत के अन्तर्गत विपुल साहित्य है। उसके अन्तर्वर्ती चौदह पूर्व हैं—

१. **उत्पादपूर्व**—इसमें समग्र द्रव्यों और पर्यायों के उत्पाद या उत्पत्ति को अधिकृत कर विश्लेषण किया गया है। इसका पद-परिमाण एक करोड़ है।

२. **अग्रायणीयपूर्व**—अग्र तथा अयन शब्दों के मेल से अग्रायणीय शब्द निष्पन्न हुआ है। अग्र[1] का अर्थ परिमाण और अयन का अर्थ गमन-परिच्छेद या विशदीकरण है। अर्थात् इस पूर्व में सब द्रव्यों, सब पर्यायों और सब जीवों के परिमाण का वर्णन है। पद-परिमाण छियानवें लाख है।

---

१. अग्रं परिमाण तस्य अयनं गमनं परिच्छेद इत्यर्थः तस्मै हितमग्रायणीयम्, सर्वद्रव्यादिपरिमाण-परिच्छेदकारि—इति भावार्थः तथाहि तत्र सर्वद्रव्याणां सर्वपर्यायाणां सर्वजीवविशेषाणां च परिमाणमुपवर्ण्यते।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, २५१५

३. **वीर्यप्रवादपूर्व**—इसमें सकर्म और अकर्म जीवों के वीर्य[1] का विवेचन है। पद-परिमाण सत्तर लाख है।

४ **अस्ति-नास्ति-प्रवादपूर्व**—लोक में धर्मास्तिकाय आदि जो हैं और खर-विषाणादि जो नहीं हैं, उनका इसमें विवेचन है। अथवा सभी वस्तुएँ स्वरूप की अपेक्षा से हैं तथा पररूप की अपेक्षा से नहीं हैं; इस सम्बन्ध में विवेचन है।[2] पद-परिमाण साठ लाख है।

५. **ज्ञानप्रवादपूर्व**—इसमें मति आदि पांच प्रकार के ज्ञान का विस्तारपूर्वक विश्लेषण है। पद-परिमाण एक कम एक करोड़ है।

६. **सत्य-प्रवादपूर्व**—सत्य का अर्थ संयम या वचन[3] है। उनका विस्तारपूर्वक सूक्ष्मता से इसमें विवेचन है। पद-परिमाण छः अधिक एक करोड़ है।

७. **आत्म-प्रवादपूर्व**—इसमें आत्मा या जीव का नय-भेद से अनेक प्रकार से वर्णन है। पद-परिमाण छब्बीस करोड़ है।

८. **कर्म-प्रवादपूर्व**—इसमें ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश आदि भेदों की दृष्टि से विस्तृत वर्णन किया गया है। पद परिमाण एक करोड़ छियासी हजार है।

९. **प्रत्याख्यानपूर्व**—इसमें भेद-प्रभेद सहित प्रत्याख्यान-त्याग का विवेचन है। पद-परिमाण चौरासी लाख है।

१०. **विद्यानुप्रवादपूर्व**—अनेक अतिशय-चमत्कार युक्त विद्याओं का, उनके अनुरूप साधनों का तथा सिद्धियों का वर्णन है। पद-परिमाण एक करोड़ दस लाख है।

११. **अवन्ध्यपूर्व**—वन्ध्य शब्द का अर्थ निष्फल होता है, निष्फल न होना अवन्ध्य है। इसमें निष्फल न जाने वाले शुभफलात्मक ज्ञान, तप, संयम आदि का तथा अशुद्ध फलात्मक प्रमाद आदि का निरूपण है। पद-परिमाण छब्बीस करोड़ है।

१२. **प्राणायुप्रवादपूर्व**—इसमें प्राण अर्थात् पाँच इन्द्रिय, मानस आदि तीन बल, उच्छ्‌वास-निःश्वास तथा आयु का भेद-प्रभेद सहित विश्लेषण है। पद-परिमाण एक करोड़ छप्पन लाख है।

१३. **क्रियाप्रवादपूर्व**—इसमें कायिक आदि क्रियाओं का, संयमात्मक क्रियाओं का तथा स्वच्छन्द क्रियाओं का विशाल-विपुल विवेचन है। पद-परिमाण नौ करोड़ है।

१४. **लोकबिन्दुसारपूर्व**—इसमें लोक में या श्रुत-लोक में अक्षर के ऊपर लगे बिन्दु की

---

१. अन्तरंग शक्ति, सामर्थ्य, पराक्रम।

२. यद वस्तु लोकेस्ति धर्मास्तिकायादि, यच्च नास्ति खरशृंगादि तत्प्रवदतीत्यस्तिनास्ति प्रवादम् अथवा सर्वं वस्तु स्वरूपेणास्ति, पररूपेण नास्तीति अस्तिनास्ति प्रवादम्।

—**अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५**

३. सत्यं संयमो वचनं वा तत्सत्य संयमं वचनं वा प्रकर्षेण सप्रपंचमं वदंतीति सत्यप्रवादम्।

—**अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५**

तरह जो सर्वोत्तम तथा सर्वाक्षर-सन्निपातलब्धि हेतुक है, उस ज्ञान का वर्णन है।[1] पद-परिमाण साढ़े बारह करोड़ है।

चूलिकाएँ

चूलिकाएँ पूर्वों का पूरक साहित्य है। उन्हें परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत तथा अनुयोग (दृष्टिवाद के भेदों) में उक्त और अनुक्त अर्थ की संग्राहिका ग्रंथ-पद्धतियाँ[2] कहा गया है। दृष्टिवाद के इन भेदों में जिन-जिन विषयों का निरूपण हुआ है, उन-उन विषयों में विवेचित महत्त्वपूर्ण अर्थो-तथ्यों तथा कतिपय अविवेचित अर्थों—प्रसंगों का इन चूलिकाओं में विवेचन किया गया है। इन चूलिकाओं का पूर्व वाङ्मय में विशेष महत्त्व है। ये चूलिकाएँ श्रुत रूपी पर्वत पर चोटियों की तरह सुशोभित हैं।

चूलिकाओं की संख्या

पूर्वगत के अन्तर्गत चतुर्दश पूर्वों में प्रथम चार पूर्वों की चूलिकाएँ हैं। प्रश्न उपस्थित होता है, दृष्टिवाद के भेदों में पूर्वगत एक भेद है। उसमें चतुर्दश पूर्वों का समावेश है। उन पूर्वों में से चार—उत्पाद, अग्रायणीय, वीर्य-प्रवाद तथा आस्ति-नास्ति-प्रवाद पर चूलिकाएँ हैं। इस प्रकार इनका सम्बन्ध चारों पूर्वों से होता है। तब इन्हें परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत और अनुयोग में उक्त, अनुक्त अर्थोंविषयों की जो संग्राहिका कहा गया है, वह कैसे संगत है ?

विभाजन या व्यवस्थापन की दृष्टि से पूर्वों को दृष्टिवाद के भेदों के अन्तर्गत पूर्वगत में लिया गया है। वस्तुतः उनमें समग्र श्रुत की अवतारणा है, अतः परिकर्म, सूत्र तथा अनुयोग के विषय भी मौलिकतया उनमें अनुस्यूत हैं ही।

चार पूर्वों के साथ जो चूलिकाओं का सम्बन्ध है, उसका अभिप्राय है कि इन चार पूर्वों के संदर्भ में इन चूलिकाओं द्वारा दृष्टिवाद के सभी विषयों का जो-जो वहाँ विस्तृत या संक्षिप्त रूप में व्याख्यात हैं, कुछ कम व्याख्यात हैं, कुछ केवल सांकेतिक हैं, विशदरूपेण व्याख्यात नहीं हैं, संग्रह हैं। इसका आशय है कि वैसे चूलिकाओं में दृष्टिवाद के सभी विषय सामान्यतः संकेतित हैं, पर विशेषतः जो विषय परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत तथा अनुयोग में विशदतया व्याख्यात नहीं है, उनका इनमें प्रस्तुतीकरण है। पहले पूर्व की चार, दूसरे की बारह, तीसरे की आठ तथा चौथे की दश चूलिकाएँ मानी गयी हैं। इस प्रकार कुल ४+१२+८+१०=३४ चूलिकाएँ हैं।

वस्तु वाङ्मय

चूलिकाओं के साथ-साथ 'वस्तु' संज्ञक एक और वाङ्मय है, जो पूर्वों का विश्लेषक या

---

१ लोके जगति श्रुत-लोके वा अक्षरस्योपरि बिन्दुरिव सारं सर्वोत्तमं सर्वाक्षरसन्निपातलब्धि-हेतुत्वात् लोकबिन्दुसारम्।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५

२. यथा मेरो चूलाः, तत्र चूला इव दृष्टिवादे परिकर्म सूत्रपूर्वानुयोगोक्तानुक्तार्थसंग्रहपरा ग्रन्थ-पद्धतयः।

—वही पृ० २५१५

या विवर्धक है। इसे पूर्वान्तर्गत अध्ययन-स्थानीय ग्रन्थों के रूप में माना गया है।[१] श्रोताओं की अपेक्षा से सूक्ष्म जीवादि भाव-निरूपण में भी 'वस्तु' शब्द अभिहित है।[२] ऐसा भी माना जाता है, सब दृष्टियों की उसमें अवतारणा है।[3]

वस्तुओं की संख्या

प्रथम पूर्व में दश, दूसरे में चौदह, तीसरे में आठ, चौथे में अठारह, पाँचवें में बारह, छठे में दो, सातवें में सोलह, आठवें में तीस, नौवे में बीस, दशवें में पन्द्रह, ग्यारहवें में बारह, बारहवें में तेरह, तेरहवें में तीस तथा चौदहवें पूर्व में पच्चीस वस्तुएँ हैं, इस प्रकार कुल १०+१४+८+१८+१२+२+१६+३०+२०+१५+१२+१३+३०+२५=२२५ दो सौ पच्चीस वस्तुएँ हैं। विस्तृत विश्लेषण यहाँ सापेक्ष नहीं है। पूर्व वाङ्मय का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत निबन्ध का विषय है।

---

१ पूर्वान्तर्गतेषु अध्ययनस्थानीयेषु ग्रन्थ विशेषेषु।

—अभिधान राजेन्द्र, षष्ठ भाग, पृ० ८७६

२ श्रोत्रापेक्षया सूक्ष्मजीवादि भावकथने।

३ सर्व दृष्टीनां तत्र समवतारस्तस्य जनके।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१६
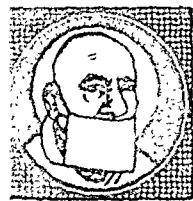
श्री जैन दिवाकर स्मृति-निबन्ध प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

सदाचार के शाश्वत मानदण्ड और जैनधर्म

✡ डा० सागरमल जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०
[दर्शन विभाग, हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल]

सदाचार और दुराचार का अर्थ :

जब हम सदाचार के किसी शाश्वत मानदण्ड को जानना चाहते हैं, तो सबसे पहले हमें यह देखना होगा कि सदाचार का तात्पर्य क्या है और किसे हम सदाचार कहते हैं ? शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से सदाचार शब्द सत्+आचार इन दो शब्दों से मिलकर बना है, अर्थात् जो आचरण सत् (Right) या उचित है वह सदाचार है। लेकिन फिर भी यह प्रश्न बना रहता है कि सत् या उचित आचरण क्या है ? यद्यपि हम आचरण के कुछ प्रारूपों को सदाचार और कुछ प्रारूपों को दुराचार कहते हैं किन्तु मूल प्रश्न यह है कि वह कौन-सा तत्त्व है जो किसी आचरण को सदाचार या दुराचार बना देता है। हम अक्सर यह कहते हैं कि झूठ बोलना, चोरी करना, हिंसा करना, व्यभिचार करना आदि दुराचार हैं और करुणा, दया, सहानुभूति, ईमानदारी, सत्यवादिता, आदि सदाचार हैं; किन्तु वह आधार कौन-सा है, जो प्रथम प्रकार के आचरणों को दुराचार और दूसरे प्रकार के आचरणों को सदाचार बना देता है। चोरी या हिंसा क्यों दुराचार है और ईमानदारी या सत्यवादिता क्यों सदाचार हैं ? यदि हम सत् या उचित के अँग्रेजी पर्याय राईट (Right) पर विचार करते हैं तो Right शब्द लेटिन शब्द Rectus से बना है, जिसका अर्थ होता है नियमानुसार; अर्थात् जो आचरण नियमानुसार है, वह सदाचार है और जो नियमविरुद्ध है, वह दुराचार है। यहाँ नियम से तात्पर्य सामाजिक एवं धार्मिक नियमों या परम्पराओं से है। भारतीय परम्परा में भी सदाचार शब्द की ऐसी ही व्याख्या मनुस्मृति में उपलब्ध होती है, मनु लिखते हैं—

> तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
> वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥

अर्थात् जिस देश, काल और समाज में जो आचरण परम्परा से चला आता है वही सदाचार कहा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो परम्परागत आचार के नियम हैं, उनका पालन करना ही सदाचार है। दूसरे शब्दों में जिस देश, काल और समाज में आचरण की जो परम्पराएँ स्वीकृत रही हैं, उन्हीं के अनुसार आचरण सदाचार कहा जावेगा। किन्तु यह दृष्टिकोण समुचित प्रतीत नहीं होता है। वस्तुतः कोई भी आचरण किसी देश, काल और समाज में आचरित एवं अनुमोदित होने से सदाचार नहीं बन जाता।

कोई आचरण केवल इसलिए सत् या उचित नहीं होता है कि वह किसी समाज में स्वीकृत होता रहा है, अपितु वास्तविकता तो यह है कि इसलिए स्वीकृत होता रहा है क्योंकि वह सत् है। किसी आचरण का सत् या असत् होना अथवा सदाचार या दुराचार होना स्वयं उसके स्वरूप पर निर्भर होता है न कि उसके आचरित अथवा अनाचरित होने पर। महाभारत में दुर्योधन ने कहा था—

> जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
> जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः ॥

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ किन्तु उस ओर प्रवृत्त नहीं होता, उसका आचरण नहीं करता।

मैं अधर्म को भी जानता हूँ परन्तु उससे निवृत्त नहीं होता हूँ। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि किसी आचरण का सदाचार या दुराचार होना इस बात पर निर्भर नहीं है कि वह किसी वर्ग या समाज द्वारा स्वीकृत या अस्वीकृत होता रहा है। सदाचार और दुराचार की मूल्यवत्ता उनके परिणामों पर या उस साध्य पर निर्भर होती है, जिसके लिए उनका आचरण किया जाता है। आचरण की मूल्यवत्ता, स्वयं आचरण पर ही नहीं; अपितु उसके साध्य या परिणाम पर निर्भर होती है। किसी आचरण की मूल्यवत्ता का निर्धारण उसके समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर भी किया जाता है, फिर भी उसकी मूल्यवत्ता का अन्तिम आधार तो कोई आदर्श या साध्य ही होता है। अतः जब हम सदाचार के मानदण्ड की बात करते हैं तो हमें उस परम मूल्य या साध्य पर ही विचार करना होगा जिसके आधार पर किसी कर्म को सदाचार या दुराचार की कोटि में रखा जाता है। वस्तुतः मानव-जीवन का परम साध्य ही वह तत्व है, जो सदाचार का मानदण्ड या कसौटी बनता है। पाश्चात्य आचार दर्शनों में सदाचार और दुराचार के जो मानदण्ड स्वीकृत रहे हैं उन्हें मोटे-मोटे रूप से दो भागों में बाँटा जाता है—१. नियमवादी और २. साध्यवादी। नियमवादी परम्परा सदाचार और दुराचार का मानदण्ड सामाजिक अथवा धार्मिक नियमों को मानती है, जबकि साध्यवादी परम्परा सुख अथवा आत्म-पूर्णता को ही सदाचार और दुराचार की कसौटी मानती है।
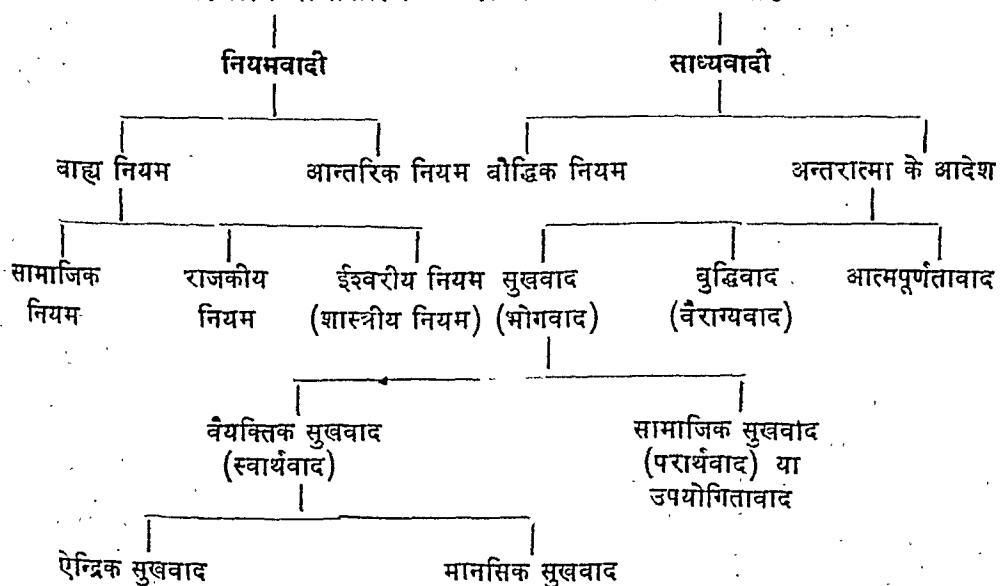
जैन-दर्शन में सदाचार का मापदण्ड

अब मूल प्रश्न यह है कि वह परम मूल्य या चरम साध्य क्या है? जैन-दर्शन मानव के चरम साध्य के बारे में स्पष्ट है। उसके अनुसार व्यक्ति का चरम साध्य मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति है। वह यह मानता है कि जो आचरण निर्वाण या मोक्ष की दिशा में ले जाता है, वही सदाचार की कोटि में आता है। दूसरे शब्दों में जो आचरण मुक्ति का कारण है वह सदाचार है और जो आचरण बन्धन का कारण है, वह दुराचार है। किन्तु यहाँ पर हमें यह भी स्पष्ट करना होगा कि

उसका मोक्ष अथवा निर्वाण से क्या तात्पर्य है ? जैनधर्म के अनुसार निर्वाण या मोक्ष स्वभाव-दशा एवं आत्मपूर्णता की प्राप्ति है। वस्तुतः हमारा जो निज स्वरूप है उसे प्राप्त कर लेना अथवा हमारी बीजरूप क्षमताओं को विकसित कर आत्मपूर्णता की प्राप्ति ही मोक्ष है। उसकी पारम्परिक शब्दावली में परभाव से हटकर स्वभाव में स्थित हो जाना ही मोक्ष है। यही कारण था कि जैन-दार्शनिकों ने धर्म की एक विलक्षण एवं महत्वपूर्ण परिभाषा दी है। उनके अनुसार धर्म वह है जो वस्तु का निज स्वभाव है **(वत्थुसहावो धम्मो)**। व्यक्ति का धर्म या साध्य वही हो सकता है जो उसकी चेतना या आत्मा का निज स्वभाव है और जो हमारा निज स्वभाव है उसी को पा लेना ही मुक्ति है। अतः उस स्वभाव दशा की ओर ले जाने वाला आचरण ही सदाचरण कहा जा सकता है।

पुनः प्रश्न यह उठता है कि हमारा स्वभाव क्या है ? भगवती सूत्र में गौतम ने भगवान महावीर के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित किया था। वे पूछते हैं—हे भगवन् ! आत्मा का निज स्वरूप क्या है और आत्मा का साध्य क्या है ? महावीर ने उनके इन प्रश्नों का जो उत्तर दिया था, वह आज भी समस्त जैन आचार-दर्शन में किसी कर्म के नैतिक मूल्यांकन का आधार है। महावीर ने कहा था—आत्मा समत्व स्वरूप है और उस समत्व स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही आत्मा का साध्य है। दूसरे शब्दों में समता या समभाव स्वभाव है और विषमता विभाव है और जो विभाव से स्वभाव की दिशा में अथवा विषमता से समता की दिशा में ले जाता है वही धर्म है, नैतिकता है, सदाचार है। अर्थात् विषमता से समता की ओर ले जाने वाला आचरण ही सदाचार है। संक्षेप में जैनधर्म के अनुसार सदाचार या दुराचार का शाश्वत मानदण्ड समता एवं विषमता अथवा स्वभाव एवं विभाव है। स्वभाव दशा से फलित होने वाला आचरण सदाचार है और विभाव-दशा या पर-भाव से फलित होने वाला आचरण दुराचार है।

यहाँ हमें समता के स्वरूप पर भी विचार कर लेना होगा। यद्यपि द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से समता का अर्थ परभाव से हटकर शुद्ध स्वभाव दशा में स्थित हो जाना है किन्तु अपनी विविध अभिव्यक्तियों की दृष्टि से विभिन्न स्थितियों में इसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से समता या समभाव का अर्थ राग-द्वेष से ऊपर उठकर वीतरागता या अनासक्त भाव की उपलब्धि है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक समत्व का अर्थ है समस्त इच्छाओं, आकांक्षाओं से रहित मन की शान्त एवं विक्षोभ (तनाव) रहित अवस्था। यही समत्व जब हमारे सामुदायिक या सामाजिक जीवन में फलित होता है तो इसे हम अहिंसा के नाम से अभिहित करते हैं। वैचारिक दृष्टि से इसे हम अनाग्रह या अनेकान्त दृष्टि कहते हैं। जब हम इसी समत्व के आर्थिक पक्ष पर विचार करते हैं तो अपरिग्रह के नाम से पुकारते हैं—साम्यवाद एवं न्यासी सिद्धान्त इसी अपरिग्रह-वृत्ति की आधुनिक अभिव्यक्तियाँ हैं। यह समत्व ही मानसिक क्षेत्र में अनासक्ति या वीतरागता के रूप में, सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा के रूप में, वैचारिकता के क्षेत्र में अनाग्रह या अनेकान्त के रूप में और आर्थिक क्षेत्र में अपरिग्रह के रूप में अभिव्यक्त होता है। अतः समत्व को निर्विवाद रूप से सदाचार का मानदण्ड स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु 'समत्व' को सदाचार का मानदण्ड स्वीकार करते हुए भी हमें उसके विविध पहलुओं पर विचार तो करना ही होगा क्योंकि सदाचार का सम्बन्ध अपने साध्य के साथ-साथ उन साधनों से भी होता है जिसके द्वारा हम उसे पाना चाहते हैं और जिस रूप में वह हमारे व्यवहार में और सामुदायिक जीवन में प्रकट होता है।

जहाँ तक व्यक्ति के चैतसिक या आन्तरिक समत्व का प्रश्न है हम उसे वीतराग मनोदशा या अनासक्त चित्तवृत्ति की साधना मान सकते हैं। फिर भी समत्व की साधना का यह रूप हमारे

वैयक्तिक एवं आन्तरिक जीवन से अधिक सम्बन्धित है। वह व्यक्ति की मनोदशा का परिचायक है। यह ठीक है कि व्यक्ति की मनोदशा का प्रभाव उसके आचरण पर भी होता है और हम व्यक्ति के आचरण का मूल्यांकन करते समय उसके इस आन्तरिक पक्ष पर विचार भी करते हैं किन्तु फिर भी सदाचार या दुराचार का यह प्रश्न हमारे व्यवहार के बाह्य पक्ष एवं सामुदायिकता के साथ अधिक जुड़ा हुआ है। जब भी हम सदाचार एवं दुराचार के किसी मानदण्ड की बात करते हैं तो हमारी दृष्टि व्यक्ति के आचरण के बाह्य पक्ष पर अथवा उस आचरण का दूसरों पर क्या प्रभाव या परिणाम होता है, इस बात पर अधिक होती है। सदाचार या दुराचार का प्रश्न केवल कर्ता के आन्तरिक मनोभावों या वैयक्तिक जीवन से तो सम्बन्धित नहीं है, वह आचरण के बाह्य प्रारूप तथा हमारे सामाजिक जीवन में उस आचरण के परिणामों पर भी विचार करता है। यहाँ हमें सदाचार और दुराचार की व्याख्या के लिए कोई ऐसी कसौटी खोजनी होगी जो आचार के बाह्य पक्ष अथवा हमारे व्यवहार के सामाजिक पक्ष को भी अपने में समेट सके। सामान्यतया भारतीय चिन्तन में इस सम्बन्ध में एक सर्वमान्य दृष्टिकोण यह है कि परोपकार ही पुण्य है और पर-पीड़ा ही पाप है। तुलसीदास ने इसे निम्न शब्दों में प्रकट किया है—

'परहित सरिस धरम नहीं भाई। पर-पीड़ा सम नहीं अधमाई ॥'

अर्थात् वह आचरण जो दूसरों के लिए कल्याणकारी या हितकारी है सदाचार है, पुण्य है और जो दूसरों के लिए अकल्याणकर है, अहितकर है, पाप है, दुराचार है। जैनधर्म में सदाचार के एक ऐसे ही शाश्वत मानदण्ड की चर्चा हमें आचारांग सूत्र में उपलब्ध होती है। वहाँ कहा गया है—'भूतकाल में जितने अर्हंत हो गये हैं, वर्तमान काल में जितने अर्हंत हैं और भविष्य में जितने अर्हंत होंगे वे सभी यह उपदेश करते हैं कि सभी प्राणी, सभी भूतों, सभी जीवों और सभी सत्वों को किसी प्रकार का परिताप, उद्वेग या दुःख नहीं देना चाहिए, न किसी का हनन करना चाहिए। यही शुद्ध नित्य और शाश्वत धर्म है।' किन्तु मात्र दूसरे की हिंसा नहीं करने के रूप में अहिंसा के निषेधात्मक पक्ष का या दूसरों के हित-साधन को ही सदाचार की कसौटी नहीं माना जा सकता है। ऐसी अवस्थाएँ सम्भव हैं कि जबकि मेरे असत्य सम्भाषण एवं अनैतिक आचरण के द्वारा दूसरों का हित-साधन होता हो, अथवा कम से कम किसी का अहित न होता हो, किन्तु क्या हम ऐसे आचरण को सदाचार कहने का साहस कर सकेंगे। क्या वेश्यावृत्ति के माध्यम से अपार धनराशि को एकत्र कर उसे लोकहित के लिए व्यय करने मात्र से कोई स्त्री सदाचारी की कोटि में आ सकेगी ? क्या यौन-वासना की संतुष्टि के वे रूप जिसमें किसी भी दूसरे प्राणी की प्रकट में हिंसा नहीं होती है, दुराचार की कोटि में नहीं आवेंगे ? सूत्रकृतांग में सदाचारिता का एक ऐसा ही दावा अन्य तीर्थिकों द्वारा प्रस्तुत भी किया गया था, जिसे भ० महावीर ने अमान्य कर दिया था। क्या हम उस व्यक्ति को, जो डाके डालकर उस सम्पत्ति को गरीबों में वितरित कर देता है, सदाचारी मान सकेंगे ? एक चोर और एक सन्त दोनों ही व्यक्ति को सम्पत्ति के पाश से मुक्त करते हैं फिर भी दोनों समान कोटि के नहीं माने जाते। वस्तुतः सदाचार या दुराचार का निर्णय केवल एक ही आधार पर नहीं होता है। उसमें आचरण का प्रेरक आन्तरिक पक्ष अर्थात् कर्ता की मनोदशा और आचरण का बाह्य परिणाम अर्थात् सामाजिक जीवन पर उसका प्रभाव दोनों ही विचारणीय हैं। आचार की शुभाशुभता विचार पर और विचार या मनोभावों की शुभाशुभता स्वयं व्यवहार पर निर्भर करती है। सदाचार या दुराचार का मानदण्ड तो ऐसा होना चाहिए जो इन दोनों को समाविष्ट कर सके।

साधारणतया जैनधर्म सदाचार का शाश्वत मानदण्ड अहिंसा को स्वीकार करता है, किन्तु यहाँ हमें यह विचार करना होगा कि क्या केवल किसी को दुःख या पीड़ा नहीं देना या किसी की हत्या नहीं करना, मात्र यही अहिंसा है। यदि अहिंसा की मात्र इतनी ही व्याख्या है, तो फिर वह सदाचार और दुराचार का मानदण्ड नहीं बन सकती; यद्यपि जैन आचार्यों ने सदैव ही उसे सदाचार का एकमात्र आधार प्रस्तुत किया है। आचार्य अमृतचन्द्र ने कहा है कि अनृतवचन, स्तेय मैथुन, परिग्रह आदि पापों के जो भिन्न-भिन्न नाम दिये गये वे तो केवल शिष्य-बोध के लिए हैं, मूलतः तो वे सब हिंसा ही है (पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय)। वस्तुतः जैन आचार्यों ने अहिंसा को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचारा है। वह आन्तरिक भी है और बाह्य भी। उसका सम्बन्ध व्यक्ति से भी है और समाज से भी। हिंसा को जैन-परम्परा में स्व की हिंसा और पर की हिंसा ऐसे दो भागों में बाँटा गया है। जब वह हमारे स्व-स्वरूप या स्वभाव दशा का घात करती है तो स्व-हिंसा है और जब दूसरों के हितों को चोट पहुँचाती है, तो वह पर की हिंसा है। स्व की हिंसा के रूप में वह आन्तरिक पाप है, तो पर की हिंसा के रूप में वह सामाजिक पाप। किन्तु उसके ये दोनों रूप दुराचार की कोटि में ही आते हैं। अपने इस व्यापक अर्थ में हिंसा को दुराचार की और अहिंसा को सदाचार की कसौटी माना जा सकता है।

सदाचार के शाश्वत मानदण्ड की समस्या

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या सदाचार का कोई शाश्वत मानदण्ड हो सकता है। वस्तुतः सदाचार और दुराचार के मानदण्ड का निश्चय कर लेना इतना सहज नहीं है। यह सम्भव है कि जो आचरण किसी परिस्थिति विशेष में सदाचार कहा जाता है, वही दूसरी परिस्थिति में दुराचार बन जाता है और जो सामान्यतया दुराचार कहे जाते हैं वे किसी परिस्थिति विशेष सदाचार हो जाते हैं। शील रक्षा हेतु की जाने वाली आत्महत्या सदाचार की कोटि में आ जाती है जबकि सामान्य स्थिति में वह अनैतिक (दुराचार) मानी जाती है। जैन आचार्यों का तो यह स्पष्ट उद्घोष है—**'जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा'** अर्थात् आचार के जो प्रारूप सामान्यतया बन्धन के कारण हैं, वे ही परिस्थिति विशेष में मुक्ति के साधन बन जाते हैं और इसी प्रकार सामान्य स्थिति में जो मुक्ति के साधन हैं, वे ही किसी परिस्थिति विशेष में बन्धन के कारण बन जाते हैं। प्रशमरति प्रकरण में उमास्वाति का कथन है—

> **देशं कालं पुरुषमवस्थामुपघातं, शुद्ध परिणामान्।**
> **प्रसमीक्ष्य भवति कल्प्यं नैकांतात्कल्प्यते कल्प्यम्॥**

अर्थात् एकान्त रूप से न तो कोई कर्म आचरणीय होता है और न एकान्त रूप से अनाचरणीय होता है, वस्तुतः किसी कर्म की आचरणीयता और अनाचरणीयता देश, काल, व्यक्ति, परिस्थिति और मन:स्थिति पर निर्भर होती है। महाभारत में भी ... को का समर्थन किया गया है, उसमें लिखा है—

> **स एव धर्मः सोऽधर्मो देश काले ...**
> **आदानमनृतं हिंसा धर्मोह्यव[illegible] ॥**
> ।म

अर्थात् जो किसी देश और काल में धर्म (सदाचा[illegible] और काल में अधर्म (दुराचार) बन जाता है और जो हिंसा, [illegible]

में अधर्म (दुराचार) कहे जाते हैं, वही किसी परिस्थिति विशेष में धर्म बन जाते हैं। वस्तुत: कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं, जब सदाचार, दुराचार की कोटि में और दुराचार, सदाचार की कोटि में होता है। द्रौपदी का पाँचों पांडवों के साथ जो पति-पत्नी का सम्बन्ध था फिर भी उसकी गणना सदाचारी सती स्त्रियों में की जाती है; जबकि वर्तमान समाज में इस प्रकार का आचरण दुराचार ही कहा जावेगा। किन्तु क्या इस आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सदाचार-दुराचार का कोई शाश्वत मानदण्ड नहीं हो सकता है। वस्तुत: सदाचार या दुराचार के किसी मानदण्ड का एकान्त रूप से निश्चय कर पाना कठिन है। जो बाहर नैतिक दिखाई देता है, वह भीतर से अनैतिक हो सकता है और जो बाहर से अनैतिक दिखाई देता है, वह भीतर से नैतिक हो सकता है। एक ओर तो व्यक्ति की आन्तरिक मनोवृत्तियाँ और दूसरी ओर जागतिक परिस्थितियाँ किसी कर्म की नैतिक मूल्यवत्ता को प्रभावित करती रहती हैं। अत: इस सम्बन्ध में कोई एकान्त नियम कार्य नहीं करता है। हमें उन सब पहलुओं पर भी ध्यान देना होता है जो कि किसी कर्म की नैतिक मूल्यवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। जैन विचारकों ने सदाचार या नैतिकता के परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील अथवा सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों पक्षों पर विचार किया है।

सदाचार के मानदण्ड की परिवर्तनशीलता का प्रश्न

वस्तुत: सदाचार के मानदण्डों में परिवर्तन देशिक और कालिक आवश्यकता के अनुरूप होता है। महाभारत में कहा गया है कि—

अन्ये कृतयुगे धर्मस्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युग ह्रासानुरूपतः॥

—शान्ति पर्व २५९।८

युग के ह्रास के अनुरूप सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के धर्म अलग-अलग होते हैं। यह परिस्थितियों के परिवर्तन से होने वाला मूल्य परिवर्तन एक प्रकार का सापेक्षिक परिवर्तन ही होगा। यह सही है कि मनुष्य को जिस विश्व में जीवन जीना होता है वह परिस्थिति निरपेक्ष नहीं है। देशिक एवं कालिक परिस्थितियों के परिवर्तन हमारी सदाचार सम्बन्धी धारणाओं को प्रभावित करते हैं। देशिक और कालिक परिवर्तन के कारण यह सम्भव है कि जो कर्म एक देश और काल में विहित हों, वही दूसरे देश और काल में अविहित हो जावें। अष्टक प्रकरण मे कहा गया है—

उत्पद्यते ही साऽवस्था देशकालाभयान् प्रति।
यस्यामकार्यं कार्यं स्यात् कर्मं कार्यं च वर्जयेत॥

—अष्टक प्रकरण २७-५ टीका

देशिक और कालिक स्थितियों के परिवर्तन से ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसमें कार्य अकार्य की कोटि में और अकार्य कार्य की कोटि में आ जाता है, किन्तु यह अवस्था सामान्य अवस्था नहीं, अपितु कोई विशिष्ट अवस्था होती है, जिसे हम आपवादिक अवस्था के रूप में जानते हैं, किन्तु आपवादिक स्थिति में होने वाला यह परिवर्तन सामान्य स्थिति में होने वाले मूल्य परिवर्तन से भिन्न स्वरूप का होता है। उसे वस्तुतः मूल्य परिवर्तन कहना भी कठिन है। इसमें जिन मूल्यों का परिवर्तन होता है, वे मुख्यत: साधन मूल्य होते हैं। क्योंकि साधन मूल्य आचरण

से सम्बन्धित होते हैं और आचरण परिस्थिति निरपेक्ष नहीं हो सकता अतः उसमें परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार साधनपरक आचरण के नैतिक मानदण्ड परिवर्तित होते रहते हैं।

दूसरे, व्यक्ति को समाज में जीवन जीना होता है और समाज परिस्थिति निरपेक्ष नहीं होता है अतः सामाजिक नैतिकता अपरिवर्तनीय नहीं कही जा सकती, उसमें देशकालगत परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है किन्तु उसकी यह परिवर्तनशीलता भी देशकाल सापेक्ष ही होती है। वस्तुतः किसी परिस्थिति में किसी एक साध्य का नैतिक मूल्य इतना प्रधान हो जाता है कि उसकी सिद्धि के लिए किसी दूसरे नैतिक मूल्य का निषेध आवश्यक हो जाता है जैसे अन्याय के प्रतिकार के लिए हिंसा। किन्तु यह निषेध परिस्थिति विशेष तक ही सीमित रहता है। उस परिस्थिति के सामान्य होने पर धर्म पुनः धर्म बन जाता है और अधर्म, अधर्म बन जाता है। वस्तुतः आपवादिक अवस्था में कोई एक मूल्य इतना प्रधान प्रतीत होता है कि उसकी उपलब्धि के लिए हम अन्य मूल्यों की उपेक्षा कर देते हैं अथवा कभी-कभी सामान्य रूप से स्वीकृत उसी मूल्य के विरोधी तथ्य को हम उसका साधन बना लेते हैं। उदाहरण के लिए जब हमें जीवन रक्षण ही एकमात्र मूल्य प्रतीत होता है तो उस अवस्था में हम हिंसा, असत्य-भाषण, चोरी आदि को अनैतिक नहीं मानते हैं। इस प्रकार अपवाद की अवस्था में एक मूल्य साध्य स्थान पर चला जाता है और अपने साधनों को मूल्यवत्ता प्रदान करता प्रतीत होता है, किन्तु यह मूल्य भ्रम ही है, उस समय भी चोरी या हिंसा मूल्य नहीं बन जाते हैं क्योंकि उनका स्वतः कोई मूल्य नहीं है, वे तो उस साध्य की मूल्यवत्ता के कारण मूल्य के रूप में प्रतीत या आभासित होते हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अहिंसा के स्थान पर हिंसा या सत्य के स्थान पर असत्य नैतिक मूल्य बन जाते हैं। साधुजन की रक्षा के लिए दुष्टजन की हिंसा की जा सकती है किन्तु इससे हिंसा मूल्य नहीं बन जाती है। किसी प्रत्यय की नैतिक मूल्यवत्ता उसके किसी परिस्थिति विशेष में आचरित होने या नहीं होने से अप्रभावित भी रह सकती है। प्रथम तो यह कि अपवाद की मूल्यवत्ता केवल उस परिस्थिति विशेष में ही होती है, उसके आधार पर सदाचार का कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता। साथ ही जब व्यक्ति आपद्धर्म का आचरण करता है तब भी उसकी दृष्टि में मूल नैतिक नियम या सदाचार की मूल्यवत्ता अक्षुण्ण बनी रहती है। यह तो परिस्थितिगत या व्यक्तिगत विवशता है, जिसके कारण उसे वह आचरण करना पड़ रहा है। दूसरे सार्वभौम नियम में और अपवाद में अन्तर है। अपवाद की यदि कोई मूल्यवत्ता है, तो वह केवल विशिष्ट परिस्थिति में ही रहती है, जबकि सामान्य नियम की मूल्यवत्ता सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वजनीन होती है। अतः आपद्धर्म या अपवाद मार्ग की स्वीकृति जैनधर्म में मूल्य परिवर्तन की सूचक नहीं है। वह सामान्यतया किसी मूल्य को न तो निर्मूल्य करती है और न मूल्य संस्थान में उसे अपने स्थान से पदच्युत ही करती है, अतः वह मूल्यान्तरण भी नहीं है।

नैतिक कर्म के दो पक्ष होते हैं—एक बाह्यपक्ष, जो आचरण के रूप में होता है और दूसरा आन्तरिक पक्ष, जो कर्ता के मनोभावों के रूप में होता है। अपवादमार्ग का सम्बन्ध केवल बाह्य पक्ष से होता है, अतः उससे किसी नैतिक मूल्य की मूल्यवत्ता प्रभावित नहीं होती है। कर्म का मात्र बाह्य पक्ष उसे कोई नैतिक मूल्य प्रदान नहीं करता है।

सदाचार के मानदण्डों की परिवर्तनशीलता का अर्थ

सदाचार के मानदण्डों की परिवर्तनशीलता पर विचार करते समय सबसे पहले हमें यह

निश्चित कर लेना होगा कि उनकी परिवर्तनशीलता से हमारा क्या तात्पर्य है ? कुछ लोग परिवर्तनशीलता का अर्थ स्वयं सदाचार की मूल्यवत्ता की अस्वीकृति से लेते हैं। आज जब पाश्चात्य विचारकों के द्वारा नैतिक मूल्यों को सांवेगिक अभिव्यक्ति या वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुमोदन एवं रुचि का पर्याय माना जा रहा हो, तब परिवर्तनशीलता का अर्थ स्वयं उनकी मूल्यवत्ता को नकारना ही होगा। आज सदाचार की मूल्यवत्ता स्वयं अपने अर्थ की तलाश कर रही है। यदि सदाचार की धारणा अर्थहीन है, मात्र सामाजिक अनुमोदन है, तो फिर उसकी परिवर्तनशीलता का भी कोई विशेष अर्थ नहीं रह जाता है क्योंकि यदि सदाचार के मूल्यों का यथार्थ एवं वस्तुगत अस्तित्व ही नहीं है, यदि वे मात्र मनोकल्पनाएँ हैं तो उनके परिवर्तन का ठोस आधार भी नहीं होगा ? दूसरे, जब हम सदाचार-दुराचार, शुभ-अशुभ अथवा औचित्य-अनौचित्य के प्रत्ययों को वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुमोदन या पसन्दगी किंवा नापसन्दगी के रूप में देखते हैं तो उनकी परिवर्तनशीलता का अर्थ फैशन की परिवर्तनशीलता से अधिक नहीं रह जावेगा।

किन्तु क्या सदाचार की मूल्यवत्ता पर ही कोई प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है ? क्या नैतिक मूल्यों की परिवर्तनशीलता फैशनों की परिवर्तनशीलता के समान है, जिन्हें जब चाहे तब और जैसा चाहे वैसा बदला जा सकता है। आयें जरा इन प्रश्नों पर थोड़ी गम्भीर चर्चा करें।

सर्वप्रथम तो आज जिस परिवर्तनशीलता की बात कही जा रही है, उससे तो स्वयं सदाचार के मूल्य होने में ही अनास्था उत्पन्न हो गई है। आज का मनुष्य अपनी पाशविक वासनाओं की पूर्ति के लिए विवेक एवं संयम की नियामक मर्यादाओं की अवहेलना को ही मूल्य परिवर्तन मान रहा है। वर्षों के चिन्तन और साधना से फलित ये मर्यादाएँ आज उसे कारा लग रही है और इन्हें तोड़ फेंकने में ही उसे मूल्य-क्रान्ति परिलक्षित हो रही है। स्वतन्त्रता के नाम पर वह अतंत्रता और अराजकता को ही मूल्य मान बैठा है, किन्तु यह सब मूल्य विभ्रम या मूल्य विपर्यय ही है जिसके कारण नैतिक मूल्यों के निर्मूल्यीकरण को ही परिवर्तन कहा जा रहा है। किन्तु हमें यह समझ लेना होगा कि मूल्य-संक्रमण या मूल्यान्तरण मूल्य-निषेध नहीं है। परिवर्तनशीलता का तात्पर्य स्वयं नीति के मूल्य होने में अनास्था नहीं है। यह सत्य है कि नैतिक मूल्यों में और नीति सम्बन्धी धारणाओं में परिवर्तन हुए हैं और होते रहेंगे, किन्तु मानव इतिहास में कोई भी काल ऐसा नहीं है, जब स्वयं नीति की मूल्यवत्ता को ही अस्वीकार किया गया हो। वस्तुतः नैतिक मूल्यों या सदाचार के मानदण्डों की परिवर्तनशीलता में भी कुछ ऐसा अवश्य है, जो बना रहता है और वह है, स्वयं उनकी मूल्यवत्ता। नैतिक मूल्यों का विषय वस्तु बदलती रहती है, किन्तु उनका मूल आधार बना रहता है। मात्र इतना ही नहीं, कुछ मूल्य ऐसे भी हैं, जो अपनी मूल्यवत्ता को नहीं खोते हैं, मात्र उनकी व्याख्या के सन्दर्भ एवं अर्थ बदलते हैं।

आज स्वयं सदाचार या नैतिकता की मूल्यवत्ता के निषेध की बात दो दिशाओं से खड़ी हुई है एक ओर भौतिकवादी और साम्यवादी दर्शनों के द्वारा और दूसरी ओर पाश्चात्य अर्थ विश्लेषणवादियों के द्वारा। यह कहा जाता है कि वर्तमान में साम्यवादी-दर्शन नीति की मूल्यवत्ता को अस्वीकार करता है, किन्तु इस सम्बन्ध में स्वयं लेनिन का वक्तव्य द्रष्टव्य है। वे कहते हैं—'प्रायः यह कहा जाता है कि हमारा अपना कोई नीति-शास्त्र नहीं है, बहुधा मध्य वित्तीय वर्ग कहता है कि हम सब प्रकार के नीति-शास्त्र का खण्डन करते हैं, किन्तु उनका यह तरीका विचारों का भ्रष्ट करना है, श्रमिकों और कृषकों की आँख में धूल झोंकना है। हम उसका खण्डन

करते हैं जो ईश्वरीय आदेशों से नीति-शास्त्र को आविर्भूत करता है। हम कहते हैं कि यह धोखा-धड़ी है और श्रमिकों तथा कृषकों के मस्तिष्कों को पूंजीपतियों तथा भू-पतियों के स्वार्थ के लिए सन्देह में डालता है। हम कहते हैं कि हमारा नीति-शास्त्र सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष के हितों के अधीन है, जो शोषक समाज को नष्ट करे, जो श्रमिकों को संगठित करे और साम्यवादी समाज की स्थापना करे, वही नीति है (शेष सब अनीति है)।' इस प्रकार साम्यवादी दर्शन नैतिक मूल्यों का मूल्यान्तरण तो करता है, किन्तु स्वयं नीति की मूल्यवत्ता का निषेध नहीं करता है। वह उस नीति का समर्थक है जो अन्याय एवं शोषण की विरोधी है और सामाजिक समता की संस्थापक है, जो पीड़ित और शोषित को अपना अधिकार दिलाती है और सामाजिक न्याय की स्थापना करती है। वह सामाजिक न्याय और आर्थिक समता की स्थापना को ही सदाचार मानदण्ड स्वीकार करती है। अतः वह सदाचार और दुराचार की धारणा को अस्वीकार नहीं करती है।

वह भौतिकवादी दर्शन, जो सामाजिक एवं साहचर्य के मूल्यों का समर्थक है, नीति की मूल्यवत्ता का निषेधक नहीं हो सकता है। यदि हम मनुष्य को एक विवेकवान सामाजिक प्राणी मानते हैं, तो हमें नैतिक मूल्यों को अवश्य स्वीकार करना होगा। वस्तुतः नीति का अर्थ है किन्हीं विवेकपूर्ण साध्यों की प्राप्ति के लिए वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में आचार और व्यवहार के किन्हीं ऐसे आदर्शों एवं मर्यादाओं की स्वीकृति, जिसके अभाव में मानव की मानवता और मानवीय समाज का अस्तित्व ही खतरे में होगा, यदि नीति की मूल्यवत्ता का या सदाचार की धारणा का निषेध कोई दृष्टि कर सकती है तो वह मात्र पाशविक भोगवादी दृष्टि है, किन्तु यह दृष्टि मनुष्य को एक पशु से अधिक नहीं मानती है। यह सत्य है कि यदि मनुष्य मात्र पशु है तो नीति का, सदाचार का कोई अर्थ नहीं है, किन्तु क्या आज मनुष्य का अवमूल्यन पशु के स्तर पर किया जा सकता है ? क्या मनुष्य निरा पशु है ? यदि मनुष्य निरा पशु होता है तो वह पूरी तरह प्राकृतिक नियमों से शासित होता और निश्चय ही उसके लिए सदाचार की कोई आवश्यकता नहीं होती। किन्तु आज का मनुष्य पूर्णतः प्राकृतिक नियमों से शासित नहीं है वह तो प्राकृतिक नियमों एवं मर्यादाओं की अवहेलना करता है। अतः पशु भी नहीं है। उसकी सामाजिकता भी उसके स्वभाव से निसृत नहीं है, जैसी कि यूथचारी प्राणियों में होती है। उसकी सामाजिकता उसके बुद्धि तत्त्व का प्रतिफल है, वह विचार की देन है, स्वभाव की नहीं। यही कारण है कि वह समाज का और सामाजिक मर्यादाओं का सर्जक भी है और संहारक भी है, वह उन्हें स्वीकार भी करता है और उनकी अवहेलना भी करता है, अतः वह समाज से ऊपर भी है। ब्रेडले का कथन है कि यदि मनुष्य सामाजिक नहीं है तो वह मनुष्य ही नहीं है, किन्तु यदि वह केवल सामाजिक है तो वह पशु से अधिक नहीं है। मनुष्य की मनुष्यता उसके अति सामाजिक एवं नैतिक प्राणी होने में है। अतः मनुष्य के लिए सदाचार की मूल्यवत्ता की अस्वीकृति असम्भव है। यदि हम परिवर्तनशीलता के नाम पर स्वयं सदाचार की मूल्यवत्ता को ही अस्वीकार करेंगे तो वह मानवीय संस्कृति का ही अवमूल्यन होगा। मात्र अवमूल्यन ही नहीं, उसकी इतिश्री भी होगी।

पुनश्च सदाचार की धारणाओं को सांवेगिक अभिव्यक्ति या रुचि सापेक्ष मानने पर भी, न तो सदाचार की मूल्यवत्ता को निरस्त किया जा सकता है और न सदाचार एवं दुराचार के मानदण्डों को फैशनों के समान परिवर्तनशील माना जा सकता है। यदि सदाचार और दुराचार का आधार पसन्दगी या रुचि है तो फिर पसन्दगी या नापसन्दगी के भावों की उत्पत्ति का आधार क्या है ? क्यों हम चौर्य कर्म को नापसन्द करते हैं और क्यों ईमानदारी को पसन्द करते हैं ? [illegible]

एवं दुराचार की व्याख्या मात्र पसन्दगी और नापसन्दगी के रूप में नहीं की जा सकती। मानवीय पसन्दगी या नापसन्दगी अथवा रुचि केवल मन की मौज या मन की तरंग (whim) पर निर्भर नहीं है। इन्हें पूरी तरह आत्मनिष्ठ (Subjective) नहीं माना जा सकता, इनके पीछे एक वस्तुनिष्ठ आधार भी होता है। आज हमें उन आधारों का अन्वेषण करना होगा, जो हमारी पसन्दगी और नापसन्दगी को बनाते या प्रभावित करते हैं। वे कुछ आदर्श, सिद्धान्त, दृष्टियाँ या मूल्य-बोध हैं, जो हमारी पसन्दगी या नापसन्दगी को बनाते हैं और जिनके आधार पर हमारी रुचियाँ सृजित होती हैं। मानवीय रुचियाँ और मानवीय पसन्दगी या नापसन्दगी आकस्मिक एवं प्राकृतिक (Natural) नहीं है। जो तत्त्व इनको बनाते हैं, उनमें नैतिक मूल्य या सदाचार की अवधारणाएँ भी हैं। ये पूर्णतया व्यक्ति और समाज की रचना भी नहीं है, अपितु व्यक्ति के मूल्य संस्थान के बोध से भी उत्पन्न होती हैं। वस्तुतः मूल्यों की सत्ता अनुभव की पूर्ववर्ती है, मनुष्य मूल्यों का द्रष्टा है, सृजक नहीं। अतः पसन्दगी की इस धारणा के आधार पर स्वयं सदाचार की मूल्यवत्ता को निरस्त नहीं किया जा सकता है। दूसरे यदि हम औचित्य एवं अनौचित्य या सदाचार-दुराचार का आधार सामाजिक उपयोगिता को मानते हैं, तो यह भी ठीक नहीं है। मेरे व्यक्तिगत स्वार्थों से सामाजिक हित क्यों श्रेष्ठ एवं वरेण्य हैं ? इस प्रश्न का हमारे पास क्या उत्तर होगा ? सामाजिक हितों की वरेण्यता का उत्तर सदाचार के किसी शाश्वत मानदण्ड को स्वीकार किये बिना नहीं दिया जा सकता है। इस प्रकार परिवर्तनशीलता के नाम पर स्वयं सदाचार की मूल्यवत्ता पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता। सदाचार के मूल्यों के अस्तित्व की स्वीकृति में ही उनकी परिवर्तनशीलता का कोई अर्थ हो सकता है, उनके नकारने में नहीं है।

यहाँ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि समाज भी सदाचार के किसी मानदण्ड का सृजक नहीं है। अक्सर यह कहा जाता है कि सदाचार या दुराचार की धारणा समाज-सापेक्ष है। एक उर्दू के शायर ने कहा है—

बजा कहे आलम उसे बजा समझो
जबानए खल्क को नक्कारए खुदा समझो।

अर्थात् जिसे समाज उचित कहता है उसे उचित और जिसे अनुचित कहता है उसे अनुचित मानो क्योंकि समाज की आवाज ईश्वर की आवाज है। सामान्यतया सामाजिक मानदण्डों को सदाचार का मानदण्ड मान लिया जाता है किन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह बात प्रामाणिक सिद्ध नहीं होती है। समाज किन्हीं आचरण के प्रारूपों को विहित या अविहित मान सकता है किन्तु सामाजिक विहितता और अविहितता नैतिक औचित्य या अनौचित्य से भिन्न है। एक कर्म अनैतिक होते हुए भी विहित माना जा सकता है अथवा नैतिक होते हुए भी अविहित माना जा सकता है। कंजर जाति में चोरी, आदिम कबीलों में नरबलि या मुस्लिम समाज में बहु-पत्नी प्रथा विहित है। राजपूतों में लड़की को जन्मते ही मार डालना कभी विहित रहा था। अनेक देशों में वेश्यावृत्ति, सम-लैंगिकता मद्यपान आज भी विहित और वैधानिक है—किन्तु क्या इन्हें नैतिक कहा जा सकता है। क्या आचार के ये रूप सदाचार की कोटि में जा सकते हैं ? नग्नता को, शासनतन्त्र की आलोचना को अविहित एवं अवैधानिक माना जा सकता है, किन्तु इससे नग्न रहना या शासक वर्ग के गलत कार्यों की आलोचना करना अनैतिक नहीं कहा जा सकेगा। मानवों के समुदाय विशेष के द्वारा किसी कर्म को विहित या वैधानिक मान लेने मात्र से वह सदाचार की कोटि में नहीं आ जाता। गर्भपात वैधानिक हो सकता है लेकिन नैतिक कभी नहीं। नैतिक मूल्य-

वत्ता निष्पक्ष विवेक के प्रकाश में आलोकित होती है। वह सामाजिक विहितता या वैधानिकता से भिन्न है। समाज किसी कर्म को विहित या अविहित बना सकता है, किन्तु उचित या अनुचित नहीं।

यद्यपि सदाचार के मानदण्डों में परिवर्तन होता है किन्तु उनकी परिवर्तनशीलता फैशनों की परिवर्तनशीलता के समान भी नहीं है, क्योंकि नैतिक मूल्य या सदाचार के मानदण्ड मात्र रुचि सापेक्ष न होकर स्वयं रुचियों के सृजक भी हैं। अतः जिस प्रकार रुचियाँ या तद्जनित फैशन बदलते हैं वैसे ही सदाचार के मानदण्ड नहीं बदलते हैं। यह सही है कि उनमें देश, काल एवं परिस्थितियों के आधार पर कुछ परिवर्तन होता है किन्तु फिर भी उनमें एक स्थायी तत्त्व होता है। अहिंसा, न्याय, आत्म-त्याग, संयम आदि अनेक नैतिक मूल्य या सदाचार के प्रत्यय ऐसे हैं, जिनकी मूल्यवत्ता सभी देशों एवं कालों में समान रूप से स्वीकृत रही है। यद्यपि इनमें अपवाद माने गये हैं, किन्तु अपवाद की स्वीकृति इनकी मूल्यवत्ता का निषेध नहीं होकर, वैयक्तिक असमर्थता अथवा परिस्थिति विशेष में उनकी सिद्धि की विवशता की ही सूचक है। अपवाद, अपवाद है, वह मूल नियम की निषेध नहीं है। जैन-दर्शन उत्सर्ग मार्ग और अपवाद-मार्ग का विधान करता है उसमें उत्सर्ग मार्ग का शाश्वत और अपवाद मार्ग को परिवर्तनशील मानता है। इस प्रकार कुछ नैतिक मूल्य या सदाचार की धारणाएँ अवश्य ही ऐसी हैं जो सार्वभौम और अपरिवर्तनीय हैं। प्रथमतः सदाचार की धारणाओं में बहुत ही कम परिवर्तन होता है और यदि होता भी है तो कहीं अधिक स्थायित्व लिए हुए होता है। फैशन एक दशाब्दी से दूसरी दशाब्दी में ही नहीं, अपितु दिन-प्रतिदिन बदलते रहते हैं, किन्तु नैतिक मूल्य या सदाचार सम्बन्धी धारणाएँ इस प्रकार नहीं बदलती हैं। ग्रीक नैतिक मूल्यों का ईसाइयत के द्वारा तथा भारतीय वैदिक युग के मूल्यों का औपनिषदिक एवं जैन-बौद्ध संस्कृतियों के द्वारा आंशिक रूप से मूल्यान्तरण अवश्य हुआ है किन्तु श्रमण संस्कृति तथा जैन धर्म के द्वारा स्वीकृत मूल्यों का इन दो हजार वर्षों में भी मूल्यान्तरण नहीं हो सका है। इन्होंने सदाचार या दुराचार के जो मानदण्ड स्थिर किये थे वे आज भी स्वीकृत हैं। आज आमूल परिवर्तन के नाम पर उनके उखाड़ फेंकने की जो बात कही जा रही है, वह भ्रान्तिजनक ही है। मूल्य विश्व में आमूल परिवर्तन या निरपेक्ष परिवर्तन सम्भव ही नहीं होता है नैतिक मूल्यों या सदाचार की धारणाओं के सन्दर्भ में जिस प्रकार का परिवर्तन होता है वह एक सापेक्ष और सीमित प्रकार का परिवर्तन है। इसमें दो प्रकार के परिवर्तन परिलक्षित होते हैं— परिवर्तन का एक रूप वह होता है, जिसमें कोई नैतिक मूल्य विवेक के विकास के साथ व्यापक अर्थ ग्रहण करता जाता है तथा उसके पुराने अर्थ अनैतिक और नये अर्थ नैतिक माने जाने लगते हैं, जैसा कि अहिंसा और परार्थ के प्रत्ययों के साथ हुआ है। एक समय में इन प्रत्ययों का अर्थ विस्तार परिजनों, स्वजातियों एवं स्वधर्मियों तक सीमित था। आज वह राष्ट्रीयता या स्वराष्ट्र तक विकसित होता हुआ सम्पूर्ण मानव जाति एवं प्राणी जगत तक अपना विस्तार पा रहा है। आत्मीय परिजनों, जाति बन्धुओं एवं साधर्मी बन्धुओं का हित साधन करना किसी युग में नैतिक माना जाता था किन्तु आज हम उसे भाई-भतीजावाद, जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद कहकर अनैतिक मानते हैं। आज राष्ट्रीय हित साधन नैतिक माना जाता है, किन्तु आने वाले कल में यह भी अनैतिक माना जा सकता है। यही बात अहिंसा के प्रत्यय के साथ भी घटित हुई है, आदिम कबीलों में परिजनों की हिंसा ही हिंसा मानी जाती थी, आगे चलकर मनुष्य की हिंसा को हिंसा माना जाने लगा, वैदिक धर्म एवं यहूदी धर्म ही नहीं, ईसाई धर्म भी, अहिंसा के प्रत्यय को मानव

जाति से अधिक अर्थ-विस्तार नहीं दे पाया, किन्तु वैष्णव परम्परा में अहिंसा का प्रत्यय प्राणी जगत तक और जैन-परम्परा में वनस्पति जगत तक अपना अर्थ-विस्तार पा गया। इस प्रकार नैतिक मूल्यों की परिवर्तनशीलता का एक अर्थ उनके अर्थों को विस्तार या संकोच देना भी है। इसमें मूलभूत प्रत्यय की मूल्यवत्ता बनी रहती है, केवल उसके अर्थ विस्तार या संकोच ग्रहण करते जाते हैं। नरबलि, पशुबलि या विधर्मी की हत्या हिंसा है या नहीं है ? इस प्रश्न के उत्तर लोगों के विचारों की भिन्नता से भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु इससे अहिंसा की मूल्यवत्ता अप्रभावित है। दण्ड के सिद्धान्त और दण्ड के नियम बदल सकते हैं, किन्तु इससे न्याय की मूल्यवत्ता समाप्त नहीं होती है। यौन नैतिकता के सन्दर्भ में भी इसी प्रकार का अर्थ-विस्तार या अर्थ-संकोच हुआ है। इसकी एक अति यह रही है कि एक ओर पर-पुरुष का दर्शन भी पाप माना गया तो दूसरी ओर स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों को भी विहित माना गया। किन्तु इन दोनों अतियों के बावजूद भी पति-पत्नी सम्बन्ध में प्रेम, निष्ठा एवं त्याग के तत्त्वों की अनिवार्यता सर्वमान्य रही तथा संयम एवं ब्रह्मचर्य की मूल्यवत्ता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगाया गया।

नैतिक मूल्यों की परिवर्तनशीलता का एक रूप वह होता है, जिसमें किसी मूल्य की मूल्यवत्ता को अस्वीकार नहीं किया जाता, किन्तु उनका पदक्रम बदलता रहता है अर्थात् मूल्यों का निर्मूल्यीकरण नहीं होता अपितु उनका स्थान संक्रमण होता है। किसी युग में जो नैतिक गुण प्रमुख माने जाते रहे हों, वे दूसरे युग में गौण हो सकते हैं और जो मूल्य गौण थे, वे प्रमुख हो सकते है। उच्च मूल्य निम्न स्थान पर तथा निम्न मूल्य उच्च स्थान पर या साध्य मूल्य साधन स्थान पर तथा साधन मूल्य साध्य स्थान पर आ-जा सकते हैं। कभी न्याय का मूल्य प्रमुख और अहिंसा का मूल्य गौण था—न्याय की स्थापना के लिए हिंसा को विहित माना जाता था—किन्तु जब अहिंसा का प्रत्यय प्रमुख बन गया तो अन्याय को सहन करना भी विहित माने जाने लगा। ग्रीक मूल्यों के स्थान पर ईसाइयत के मूल्यों की स्थापना में ऐसा ही परिवर्तन हुआ है। आज साम्यवादी-दर्शन सामाजिक न्याय के हेतु खूनी क्रान्ति की उपादेयता की स्वीकृति के द्वारा पुनः अहिंसा के स्थान पर न्याय को ही प्रमुख मूल्य के पद पर स्थापित करना चाहता है। किन्तु इसका अर्थ यह कभी नहीं है कि ग्रीक सभ्यता में या साम्यवादी-दर्शन में अहिंसा पूर्णतया निर्मूल्य है या ईसाइयत में न्याय का कोई स्थान ही नहीं है। मात्र होता यह है कि युग की परिस्थिति के अनुरूप मूल्य-विश्व के कुछ मूल्य उभरकर प्रमुख बन जाते हैं और दूसरे उनके परिपार्श्व में चले जाते हैं। मात्र इतना ही नहीं, कभी-कभी बाहर से परस्पर विरोध में स्थित दो मूल्य वस्तुतः विरोधी नहीं होते हैं—जैसे न्याय और अहिंसा। कभी-कभी न्याय की स्थापना के लिए हिंसा का सहारा लिया जाता है; किन्तु इससे मूलतः वे परस्पर विरोधी नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि अन्याय भी तो हिंसा ही है। साम्यवाद और प्रजातन्त्र के राजनैतिक-दर्शनों का विरोध मूल्य-विरोध नहीं, मूल्यों की प्रधानता का विरोध है। साम्यवाद के लिए रोटी और सामाजिक न्याय प्रधान मूल्य है और स्वतन्त्रता गौण मूल्य है, जबकि प्रजातन्त्र में स्वतन्त्रता प्रधान मूल्य है और रोटी गौण मूल्य है। आज स्वच्छन्द यौनाचार का समर्थन भी संयम के स्थान पर स्वतन्त्रता (अतन्त्रता) को ही प्रधान मूल्य मानने के एक अतिवादी दृष्टिकोण का परिणाम है। सुखवाद और बुद्धिवाद का मूल्य-विवाद भी ऐसा ही है, न तो सुखवाद बुद्धितत्त्व को निर्मूल्य मानता है और न बुद्धिवाद सुख को निर्मूल्य मानता है। मात्र इतना ही है कि सुखवाद में सुख प्रधान मूल्य है और बुद्धि गौण मूल्य है जबकि बुद्धिवाद में विवेक प्रधान मूल्य है और सुख गौण मूल्य है। इस प्रकार मूल्य-परिवर्तन का अर्थ

उनके तारतम्य में परिवर्तन है, जो कि एक प्रकार का सापेक्षिक परिवर्तन ही है। कभी-कभी मूल्य विपर्यय को ही मूल्य परिवर्तन मानने की भूल की जाती है, किन्तु हमें यह ध्यान रखना होगा कि मूल्य विपर्यय मूल्य परिवर्तन नहीं है। मूल्य विपर्यय में हम अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं को, जो कि वास्तव में मूल्य है ही नहीं, मूल्य मान लेते हैं—जैसे स्वच्छन्द यौनाचार को नैतिक मान लेना। दूसरे यदि 'काम' की मूल्यवत्ता के नाम पर कामुकता तथा रोटी की मूल्यवत्ता के नाम पर स्वाद-लोलुपता या पेटूपन का समर्थन किया जावे, तो यह मूल्य परिवर्तन नहीं होगा, मूल्य विपर्यय या मूल्याभास ही होगा, क्योंकि 'काम' या 'रोटी' मूल्य हो सकते हैं किन्तु 'कामुकता' या 'स्वाद लोलुपता' किसी भी स्थिति में नैतिक मूल्य नहीं हो सकते हैं। इसी सन्दर्भ में हमें एक तीसरे प्रकार का मूल्य परिवर्तन परिलक्षित होता है जिसमें मूल्य-विश्व के ही कुछ मूल्य अपनी आनुषंगिकता के कारण नैतिक मूल्यों के वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं। और कभी-कभी तो नैतिक जगत के प्रमुख मूल्य या नियामक मूल्य बन जाते हैं, अर्थ और काम ऐसे ही मूल्य हैं जो स्वरूपतः नैतिक मूल्य नहीं हैं फिर भी नैतिक मूल्यों के वर्ग में सम्मिलित होकर उनका नियमन और क्रम निर्धारण भी करते हैं। यह सम्भव है कि जो एक परिस्थिति में प्रधान मूल्य हो, वह दूसरी परिस्थिति में प्रधान मूल्य न हो, किन्तु इससे उनकी मूल्यवत्ता समाप्त नहीं होती है। परिस्थितिजन्य मूल्य या सापेक्ष मूल्य दूसरे मूल्यों के निषेधक नहीं होते हैं। दो परस्पर विरोधी मूल्य भी अपनी-अपनी परिस्थिति में अपनी मूल्यवत्ता को बनाए रख सकते हैं। एक दृष्टि से जो मूल्य लगता है वह दूसरी दृष्टि से निर्मूल्य हो सकता है, किन्तु अपनी दृष्टि या अपेक्षा से तो वह मूल्यवान बना रहता है। यह बात परिस्थितिक मूल्यों के सम्बन्ध में ही अधिक सत्य लगती है।

जैन नैतिकता का अपरिवर्तनशील या निरपेक्ष पक्ष

हमने जैनदर्शन में नैतिकता के सापेक्ष पक्ष पर विचार किया लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि जैन-दर्शन में नैतिकता का केवल सापेक्ष पक्ष ही स्वीकार किया गया है। जैन विचारक कहते हैं कि नैतिकता का एक-दूसरा पहलू भी है जिसे हम निरपेक्ष कह सकते हैं। जैन तीर्थंकरों का उद्घोष था कि "धर्म शुद्ध है, नित्य है और शाश्वत है।" यदि नैतिकता में कोई निरपेक्ष एवं शाश्वत तत्त्व नहीं है तो फिर धर्म की नित्यता और शाश्वतता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। जैन नैतिकता यह स्वीकार करती है कि भूत, वर्तमान, भविष्य के सभी धर्म-प्रवर्तकों (तीर्थकरों) की धर्म प्रज्ञप्ति एक ही होती है लेकिन इसके साथ-साथ वह यह भी स्वीकार करती है सभी तीर्थंकरों की धर्म प्रज्ञप्ति एक होने पर भी तीर्थंकरों के द्वारा प्रतिपादित आचार नियमों में ऊपर से विभिन्नता मालूम हो सकती है, जैसी महावीर और पार्श्वनाथ के द्वारा प्रतिपादित आचार नियमों में थी। जैन विचारणा यह स्वीकार करती है कि नैतिक आचरण के आन्तर और बाह्य ऐसे दो पक्ष होते हैं जिन्हें पारिभाषिक शब्दों में द्रव्य और भाव कहा जाता है। जैन विचारणा के अनुसार आचरण का वह बाह्य पक्ष देश एवं कालगत परिवर्तनों के आधार पर परिवर्तनशील होता है, सापेक्ष होता है। जबकि आचरण का आन्तर पक्ष सदैव-सदैव एकरूप होता है, अपरिवर्तनशील होता है, दूसरे शब्दों में निरपेक्ष होता है। वैचारिक या भाव-हिंसा सदैव-सदैव अनैतिक होती है, कभी भी धर्ममार्ग अथवा नैतिक जीवन का नियम नहीं कहला सकती, लेकिन द्रव्यहिंसा या बाह्यरूप में परिलक्षित होने वाली हिंसा सदैव ही अनैतिक अथवा अनाचरणीय ही हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। आन्तर परिग्रह अर्थात् तृष्णा या आसक्ति सदैव ही अनैतिक है लेकिन द्रव्य परिग्रह सदैव ही अनैतिक नहीं कहा जा सकता। संक्षेप में जैन विचारणा के अनुसार आचरण के बाह्य रूपों में नैतिकता सापेक्ष ही हो सकती है और होती
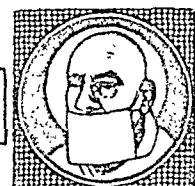
है लेकिन आचरण के आन्तर रूपों या भावों या संकल्पों के रूप में वह सदैव निरपेक्ष ही है। सम्भव है कि बाह्य रूप में अशुभ दिखने वाला कोई कर्म अपने अन्तर् में निहित किसी सदाशयता के कारण शुभ हो जाय लेकिन अन्तर् का अशुभ संकल्प किसी भी स्थिति में नैतिक नहीं हो सकता।

जैन दृष्टि में नैतिकता अपने हेतु या संकल्प की दृष्टि से निरपेक्ष होती है। लेकिन परिणाम अथवा बाह्य आचरण की दृष्टि से सापेक्ष होती है। दूसरे शब्दों में नैतिक संकल्प निरपेक्ष होता है लेकिन नैतिक कर्म सापेक्ष होता है। इसी कथन को जैन पारिभाषिक शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यवहारनय (व्यवहारदृष्टि) से नैतिकता सापेक्ष है या व्यावहारिक नैतिकता सापेक्ष है लेकिन निश्चयनय (पारमार्थिक दृष्टि) से नैतिकता निरपेक्ष है या निश्चय नैतिकता निरपेक्ष है। जैन दृष्टि में व्यावहारिक नैतिकता वह है जो कर्म के परिणाम या फल पर दृष्टि रखती है जबकि निश्चय नैतिकता वह है जो कर्त्ता के प्रयोजन या संकल्प पर दृष्टि रखती है। युद्ध का संकल्प किसी भी स्थिति में नैतिक नहीं हो सकता; लेकिन युद्ध का कर्म सदैव ही अनैतिक हो, यह आवश्यक नहीं। आत्महत्या का संकल्प सदैव ही अनैतिक होता है, लेकिन आत्महत्या का कर्म सदैव ही अनैतिक हो, यह आवश्यक नहीं है, वरन् कभी-कभी तो वह नैतिक ही हो जाता है, जैसे—चन्दना की माता के द्वारा की गई आत्महत्या या चेडा महाराज के द्वारा किया गया युद्ध।

जैन नैतिक विचारणा में नैतिकता को निरपेक्ष तो माना गया लेकिन केवल संकल्प के क्षेत्र तक। जैन-दर्शन 'मानस कर्म' के क्षेत्र में नैतिकता को विशुद्ध रूप में निरपेक्ष एवं अपरिवर्तनशील स्वीकार करता है; लेकिन जहाँ कायिक या वाचिक कर्मों के बाह्य आचरण का क्षेत्र आता है, वह उसे सापेक्ष स्वीकार करता है। वस्तुतः विचारणा का क्षेत्र, मानस का क्षेत्र आत्मा का अपना क्षेत्र है वहाँ वही सर्वोच्च शासक है अतः वहाँ तो नैतिकता को निरपेक्ष रूप में स्वीकार किया जा सकता है लेकिन आचरण के क्षेत्र में चेतन तत्त्व एकमात्र शासक नहीं, वहाँ तो अन्य परिस्थितियाँ भी शासन करती हैं. अतः उस क्षेत्र में नैतिकता के प्रत्यय को निरपेक्ष नहीं बनाया जा सकता।

नैतिक मूल्यों की परिवर्तनशीलता एवं अपरिवर्तनशीलता का मूल्यांकन

नैतिक मूल्यों की परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में हमें जॉन ड्यूई का दृष्टिकोण अधिक संगतिपूर्ण जान पड़ता है। वे यह मानते हैं कि वे परिस्थितियाँ, जिनमें नैतिक आदर्शों की सिद्धि की जाती है, सदैव ही परिवर्तनशील हैं और नैतिक नियमों, नैतिक कर्तव्यों और नैतिक मूल्यांकनों के लिए इन परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ समायोजन करना आवश्यक होता है, किन्तु यह मान लेना मूर्खतापूर्ण ही होगा कि नैतिक सिद्धान्त इतने परिवर्तनशील हैं कि किसी सामाजिक स्थिति में उनमें कोई नियामक शक्ति ही नहीं होती है। शुभ की विषयवस्तु बदल सकती है किन्तु शुभ का आकार नहीं। दूसरे शब्दों में, नैतिकता का शरीर परिवर्तनशील है किन्तु नैतिकता की आत्मा नहीं। नैतिक मूल्यों का विशेष स्वरूप समय-समय पर वैसे-वैसे बदलता रहता है, जैसे-जैसे सामाजिक या सांस्कृतिक स्तर और परिस्थिति बदलती रहती है; किन्तु मूल्यों की नैतिकता का सामान्य स्वरूप स्थिर रहता है।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों की वास्तविक प्रकृति में परिवर्तनशीलता और अपरिवर्तनशीलता के दोनों ही पक्ष उपस्थित हैं। नीति का कौन-सा पक्ष परिवर्तनशील होता है और कौन-सा पक्ष अपरिवर्तनशील होता है, इसे निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है—

१. संकल्प का नैतिक मूल्य अपरिवर्तनशील होता है और आचरण का नैतिक मूल्य परि-

वर्तनशील होता है। हिंसा का संकल्प कभी नैतिक नहीं होता; यद्यपि हिंसा का कर्म सदैव अनैतिक हो, यह आवश्यक नहीं। दूसरे शब्दों में, कर्म का जो मानसिक या बौद्धिक पक्ष है वह निरपेक्ष एवं अपरिवर्तनीय है, किन्तु कर्म का जो व्यावहारिक एवं आचरणात्मक पक्ष है, वह सापेक्ष एवं परिवर्तनशील है। दूसरे शब्दों में, नीति की आत्मा अपरिवर्तनशील है और नीति का शरीर परिवर्तनशील है। संकल्प का क्षेत्र प्रज्ञा का क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ चेतना ही सर्वोच्च शासक है। अन्तस् में व्यक्ति स्वयं अपना शासक है, वहाँ परिस्थितियों या समाज का शासन नहीं है, अतः इस क्षेत्र में नैतिक मूल्यों की निरपेक्षता एवं अपरिवर्तनशीलता सम्भव है। निष्काम कर्म-योग का दर्शन इसी सिद्धान्त पर स्थित है, क्योंकि अनेक स्थितियों में कर्म का बाह्यात्मक रूप कर्त्ता के मनोभावों का यथार्थ परिचायक नहीं होता। अतः यह माना जा सकता है कि वे मूल्य जो मनोवृत्त्यात्मक या भावनात्मक नीति से सम्बन्धित हैं, अपरिवर्तनीय हैं किन्तु वे मूल्य जो आचरणात्मक या व्यवहारात्मक हैं, परिवर्तनीय हैं।

२. दूसरे, नैतिक साध्य या नैतिक आदर्श अपरिवर्तनशील होता है किन्तु उस साध्य के साधन परिवर्तनशील होते हैं। जो सर्वोच्च शुभ हैं वह अपरिवर्तनीय हैं, किन्तु उस सर्वोच्च शुभ की प्राप्ति के जो नियम या मार्ग हैं वे विविध एवं परिवर्तनीय हैं, क्योंकि एक ही साध्य की प्राप्ति के अनेक साधन हो सकते हैं। यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि सर्वोच्च शुभ को छोड़कर कुछ अन्य साध्य कभी साधन भी बन जाते हैं। साध्य साधन का वर्गीकरण निरपेक्ष नहीं है, उनमें परिवर्तन सम्भव है। यद्यपि जब तक कोई मूल्य साध्य स्थान पर बना रहता है, तब तक उसकी मूल्यवत्ता अपरिवर्तनीय रहती है। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि किसी स्थिति में जो साध्य-मूल्य है, वह कभी साधन-मूल्य नहीं बनेगा। मूल्य-विश्व के अनेक मूल्य ऐसे हैं जो कभी साधन-मूल्य होते हैं और कभी साध्य-मूल्य। अतः उनकी मूल्यवत्ता अपने स्थान परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो सकती है। पुनः वैयक्तिक रुचियों, क्षमताओं और स्थितियों की भिन्नता के आधार पर सभी के लिए समान नियमों का प्रतिपादन सम्भव नहीं है। अतः साधन-मूल्यों को परिवर्तनीय मानना ही एक यथार्थ दृष्टिकोण हो सकता है।

३. तीसरे, नैतिक नियमों में कुछ नियम मौलिक होते हैं। साधारणतया सामान्य या मूलभूत नियम ही अपरिवर्तनीय माने जा सकते हैं, विशेष नियम तो परिवर्तनीय होते हैं। यद्यपि हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि अनेक परिस्थितियों में सामान्य नियमों के भी अपवाद हो सकते हैं और वे नैतिक भी हो सकते हैं, फिर भी इतना तो ध्यान में रखना आवश्यक है कि अपवाद को कभी भी नियम का स्थान नहीं दिया जा सकता है।

यहाँ एक बात जो विचारणीय है वह यह कि मौलिक नियमों एवं साध्य-मूल्यों की अपरिवर्तनशीलता भी एकांतिक नहीं है। वस्तुतः जैन-दर्शन में नैतिक मूल्यों या सदाचार के मानदण्डों के सन्दर्भ में एकान्तरूप से अपरिवर्तनशीलता और एकान्तरूप से परिवर्तनशीलता को स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि नैतिक मूल्य या सदाचार के मानदण्ड एकान्तरूप से परिवर्तनशील होंगे तो उनकी कोई नियामकता ही नहीं रह जावेगी। इसी प्रकार वे यदि एकान्त रूप से अपरिवर्तनशील होंगे तो सामाजिक सन्दर्भों के अनुरूप नहीं रह सकेंगे। सदाचार के मानदण्ड इतने निर्लोच तो नहीं हैं कि वे परिवर्तनशील सामाजिक परिस्थितियों के साथ समायोजन नहीं कर सकें, किन्तु वे इतने लचीले भी नहीं हैं कि हर कोई उन्हें अपने अनुरूप ढाल कर उनके स्वरूप को ही विकृत कर दे। सारांश यह है कि सदाचार के मानदण्ड अन्तरंग रूप से स्थायी हैं और बाह्य रूप में परिवर्तनशील हैं।

ईश्वरवाद बनाम पुरुषार्थवाद

✡ डा० कृपाशंकर व्यास
[संस्कृत विभाग, शासकीय महाविद्यालय, शाजापुर (म० प्र०)]

सृष्टि में विषय और विषयी प्रायः एक संस्थान के रूप में होने से पृथक् नहीं हैं। इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से अथवा मानसिक प्रत्ययों से उत्पन्न सुख-दुख रूप विषयों का अनुभवकर्ता जीव है—इसे दार्शनिकों ने विषयी के द्रष्टा के रूप में नित्य स्वीकारा है जबकि विषयों को परिवर्तनशील, क्षण-भंगुर या जड़ पदार्थों से जन्य होने के कारण (अजीव भी कहा जाता है) कुछ दार्शनिकों[1] को छोड़कर शेष सभी ने अनित्य माना है। जीव-अजीव कब और कैसे संयुक्त होकर सृष्टि में कारणरूपता को प्राप्त हुए—यही गहन समस्या दार्शनिकों के समक्ष आदिकाल से बनी हुई है जिसका समाधान सभी दार्शनिकों (भारतीय और पाश्चात्य) ने यथासम्भव ढूंढ़ने का अथक प्रयास किया है। यह भिन्न बात है कि आज तक सर्वसम्मत समाधान नहीं मिल सका है। भारतीय-दर्शन के प्रयास की दिशा को समझने के लिये आवश्यक है कि इसके मूल-सिद्धान्तों को कम से कम स्थूल रूप में समझ लें।

भारतीय-दर्शन स्थूलतः दो भागों में (कालक्रमानुसार नहीं) विभाजित किया गया है—(१) आस्तिक (२) नास्तिक※। आस्तिकदर्शन के अन्तर्गत वे दर्शन आते हैं जो अपने आदिस्रोत के लिये वेदाश्रय लेते हैं। इनमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा आते हैं। नास्तिकदर्शन के अन्तर्गत वे दर्शन हैं जो कि अपने सिद्धान्तों के लिये वेद को आदिस्रोत के रूप में स्वीकार नहीं करते, अपितु अपने-अपने सिद्धान्त प्रतिपादकों को ही अपने-अपने धर्म और दर्शन का आदि प्रणेता स्वीकार करते हैं। इसके अन्तर्गत चार्वाक, जैन[2], बौद्ध विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। उपरोक्त दर्शन विभागों में कतिपय विभाग जीव से परे एक अन्य सत्ता को भी मान्यता देते हैं, जबकि अन्य नहीं। इनमें ईश्वर की सत्ता को अंगीकार करने वाले दर्शन न्याय, वैशेषिक, योग, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा एवं जैन हैं (कुछ सीमा तक तथा भिन्न अर्थ में ईश्वरीय सत्ता में विश्वास है)। सांख्य-दर्शन को अनीश्वरवादी-दर्शन भी कहा जाता है कारण कि सांख्य में पुरुष ही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

ईश्वर और ईश्वरवाद (Theism) को समझने के लिये आवश्यक है कि इन शब्दों का

※ नास्तिक उस अर्थ में जो कुछ लोग कहते आये हैं। नास्तिक की परिभाषा और व्युत्पत्ति के अनुसार जैन नास्तिक नहीं हैं। —सम्पादक

१ (अ) जैन दार्शनिकों के अनुसार द्रव्य सत् है—यथा "सद् दव्वं वा" —भगवती सूत्र ८।९
(ब) "तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धम्" —पंचाध्यायी, पूर्वार्ध, श्लोक ८

२ "विद्वानों का यह भी मत है कि जैन-दर्शन आस्तिक-दर्शन है।" विशेष द्रष्टव्य—"जैनधर्म की आस्तिकता" —चिन्तन की मनोभूमि-उपाध्याय अमरमुनि, पृ० ८९
वस्तुतः आस्तिक या नास्तिक किसी दर्शन के लिए कहना दर्शन की उस शाखा का अपमान नहीं है बल्कि आस्तिक-नास्तिक शब्द दर्शन को विभाजित करने वाले शब्द मात्र हैं।

अथवा संहार के लिये किसी ईश्वर की सत्ता को मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि
पदार्थों का नाश नहीं होता है और न ही असत् से सृष्टि का निर्माण भी सम्भव है। ज
विनाश वस्तुओं के अपने गुणों एवं पर्यायों पर निर्भर है। इस प्रकार संसार में विद्यमान
पदार्थ एवं प्राणी हैं उन सबको जैन-दार्शनिक स्वयम्भूत एवं आधार रूप में स्वीकार करते
प्रक्रिया से जैनी अनेक पदार्थों की कल्पना की स्थापना करते हैं। उनका कथन है कि प
को व्यक्त कर सके इसी प्रयोजन से सृष्टि के रूप में आ जाते हैं। जीवात्माओं से युक्त स
मानसिक एवं भौतिक अवयवों सहित लगातार अनादिकाल से चला आ रहा है तथा इ
नित्य स्थायी देवता का हस्तक्षेप भी नहीं है और न रहा है। संसार में दृष्टगत विभिन्नत
काल, स्वभाव, नियति, कर्म एवं उद्यम इन पांच सहकारी दशाओं के कारण हैं। बीज
वृक्ष रूप में उदित होने की अन्तर्शक्ति विद्यमान है, फिर भी उसे वृक्ष रूप धारण करने
(मौसम), प्राकृतिक वातावरण और भूमि में बोये जाने के कर्म रूप में उचित सहायता
रहती ही है तभी वह वृक्ष रूप धारण कर पाता है। इतना होने पर भी वृक्ष का स
मूलभूत बीज के स्वरूप पर ही निर्भर करता है। इसी कारण से वृक्षों में भिन्नता दिखा
वृक्षों के ही समान जीवों में भी भिन्नता का यही कारण है।

जैन दार्शनिकों ने एक असीम सत्तात्मक शक्ति के रूप में यद्यपि ईश्वर को मा
है, फिर भी उनका स्पष्ट मत है कि संसार की कुछ आत्माएँ जब उचित रूप में विक
हैं तब वे ही दैवत्व रूप धारण कर लेते हैं—ये ही 'अर्हत्' कहलाते हैं अर्थात् सर्वोप
आत्मा जिन्होंने समस्त दोषों पर विजय पा ली है। यह अवश्य है कि उनमें कोई सु
नहीं है कि फिर भी जब जीवात्मा अपनी उच्चतम पूर्णता को प्राप्त कर लेती है
ईश्वरत्व को प्राप्त कर परमात्मा अथवा सर्वोपरि आत्मा बन जाती है। वस्तुतः
उच्चतम अवस्था में पहुँचने की शक्ति है, किन्तु रहती है सुप्तावस्था में। इसी प्रका
क्रियात्मक धरातल पर जीवात्मा को लाकर मानव अपनी उच्चतम स्थिति को प्र
जीवात्मा का परम पुरुषार्थ है। इस उच्चावस्था (ईश्वरत्व) को प्राप्त करने के
अपने पुरुषार्थ पर अडिग विश्वास करना होगा। यह पुरुषार्थ है क्या, इसे किस
अंगीकार कर ईश्वरत्व की कोटि में आ सकता है—इसके लिये आवश्यक है पुरुषार्थ
पित अर्थ समझना।

पुरुषार्थ का साधारणतः प्रचलित अर्थ है—मानव की शक्ति, किन्तु दार्शनि
शब्द का कुछ भिन्न एवं विस्तृत अर्थ है। पुरुषार्थ शब्द के दार्शनिक अर्थ का विश्ले
आवश्यक है कि इसका व्याकरण-सम्मत अर्थ जान लें। व्याकरण की दृष्टि से
के संयोग से बना है—पुरुष+अर्थ। पुरुष[14] शब्द की व्युत्पत्ति है **पुरि देहे**

१४ (क) पु... =पृ+इ।—संस्कृत हिन्दी कोश—
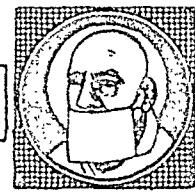
अर्थात् पुरि (नगर) में निवास करने वाला। मानव शरीर एक नगर के समान है इसमें निवास करने वाला 'जीव' है। अतः पुरुष का मूल अर्थ है 'जीव' किन्तु आज पुरुष शब्द जीव का पर्यायवाची न होकर पुरुषलिंग का द्योतक बन गया है; जबकि यह अर्थ व्याकरण-सम्मत नहीं है। व्याकरणसम्मत अर्थ के रूप में जब 'पुरुष' शब्द का प्रयोग हो तथा उसके साथ 'अर्थ' शब्द का संयोग कर दिया जाये तो यह 'पुरुषार्थ' शब्द सम्पूर्ण मानव जाति के उद्देश्य या प्रयोजन की अभिव्यक्ति करता है। इसी कारण से इसी अर्थ में प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में 'पुरुषार्थ चतुष्टय' का उल्लेख मिलता है—

"धर्मार्थकाममोक्षाय पुरुषार्था उदाहृताः" —अग्निपुराण

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में मानव जाति के जीवन का सम्पूर्ण ध्येय अन्तर्निहित है। इन चारों पुरुषार्थों में भी अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष ही श्रेयस्कर माना गया है। इसे[१५] प्राप्त करने के लिए कोई भी साधक प्रयासशील हो सकता है। भले ही वह साधक गृहस्थ हो अथवा गृहत्यागी हो, नर हो या नारी हो, बाल हो या वृद्ध हो, देश का हो या विदेश का हो। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि देश, काल, वय, जाति आदि कुछ भी साधक को साध्य की प्राप्ति में बाधक नहीं है। यदि कुछ बाधक है तो साधक की ही मानसिक-दुर्बलता जो कि उसके मन में संसार के प्रति मोह, ममता, तृष्णा आदि विकार को जन्म दे देती है जिससे वह इस संसार के महा-पंक में आमग्न हो जाता है। इसी कारण से ही वह भवचक्र के गमनागमन क्रिया से दुःखी बना रहता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि साधक अपने आप का हितचिन्तक बने। कथन[१६] भी है—

**"पुरिसा! तुममेव तुमं मित्तं,
किं बहिया मित्तमिच्छसि।"**

इसी भाव को उपनिषदों में भी स्पष्ट किया गया है। वहाँ तो साधक को स्पष्ट चेतावनी दी गई है कि संसार में यदि कोई विषय देखने योग्य है तो वह "स्व आत्मा" है और अन्य कुछ नहीं—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः"

आत्मा[१७] का चिन्तक (स्वचिन्तक) बनते ही साधक सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-चारित्र एवं सम्यक्-तप का पूर्णतया एवं सर्वतोभावेन विकास करने में संलग्न हो जाता है। इस चतुरंग मार्ग के विकसित होते ही साधक के कर्मबन्धन विच्छिन्न[१८] हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप

---

१५ विशेष के लिए द्रष्टव्य—चिन्तन की मनोभूमि—उपाध्याय अमरमुनि, पृ० ७६

१६ आचारांग १।३।३

१७ (अ) "आलंबणं च मे आदा"—**नियमसार ९९**
   (ब) "आदा हु मे सरणं"—**मोक्ष पाहुड १०५**

१८ (अ) "अट्ठ विहं पि य कम्मं
        अरिभूयं होइ सव्व-जीवाणं।
    तं कम्ममरिहंता
        अरिहंता तेण वुच्चंति॥" —आवश्यकनिर्युक्ति ९१४

अथवा संहार के लिये किसी ईश्वर की सत्ता को मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विद्यमान पदार्थों का नाश नहीं होता है और न ही असत् से सृष्टि का निर्माण भी सम्भव है। जन्म तथा विनाश वस्तुओं के अपने गुणों एवं पर्यायों पर निर्भर है। इस प्रकार संसार में विद्यमान जो अनेक पदार्थ एवं प्राणी हैं उन सबको जैन-दार्शनिक स्वयम्भूत एवं आधार रूप में स्वीकार करते हैं। इसी प्रक्रिया से जैनी अनेक पदार्थों की कल्पना की स्थापना करते हैं। उनका कथन है कि पदार्थ अपने को व्यक्त कर सके इसी प्रयोजन से सृष्टि के रूप में आ जाते हैं। जीवात्माओं से युक्त समस्त विश्व मानसिक एवं भौतिक अवयवों सहित लगातार अनादिकाल से चला आ रहा है तथा इसमें किसी नित्य स्थायी देवता का हस्तक्षेप भी नहीं है और न रहा है। संसार में दृष्टगत विभिन्नतायें वस्तुतः काल, स्वभाव, नियति, कर्म एवं उद्यम इन पाँच सहकारी दशाओं के कारण हैं। बीज में यद्यपि वृक्ष रूप में उदित होने की अन्तर्शक्ति विद्यमान है, फिर भी उसे वृक्ष रूप धारण करने के पूर्व काल (मौसम), प्राकृतिक वातावरण और भूमि में बोये जाने के कर्म रूप में उचित सहायता की अपेक्षा रहती ही है तभी वह वृक्ष रूप धारण कर पाता है। इतना होने पर भी वृक्ष का स्वरूप उसके मूलभूत बीज के स्वरूप पर ही निर्भर करता है। इसी कारण से वृक्षों में भिन्नता दिखलाई देती है। वृक्षों के ही समान जीवों में भी भिन्नता का यही कारण है।

जैन दार्शनिकों ने एक असीम सत्तात्मक शक्ति के रूप में यद्यपि ईश्वर को मान्यता नहीं दी है, फिर भी उनका स्पष्ट मत है कि संसार की कुछ आत्माएं जब उचित रूप में विकसित हो जाती हैं तब वे ही देवत्व रूप धारण कर लेते हैं—ये ही 'अर्हत्' कहलाते हैं अर्थात् सर्वोपरि प्रभु, सर्वज्ञ-आत्मा जिन्होंने समस्त दोषों पर विजय पा ली है। यह अवश्य है कि उनमें कोई सृजनात्मक शक्ति नहीं है कि फिर भी जब जीवात्मा अपनी उच्चतम पूर्णता को प्राप्त कर लेती है तत्क्षण ही वह ईश्वरत्व को प्राप्त कर परमात्मा अथवा सर्वोपरि आत्मा बन जाती है। वस्तुतः प्रत्येक जीव में उच्चतम अवस्था में पहुँचने की शक्ति है, किन्तु रहती है सुप्तावस्था में। इसी प्रकार सुप्तावस्था से क्रियात्मक धरातल पर जीवात्मा को लाकर मानव अपनी उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर ले यही जीवात्मा का परम पुरुषार्थ है। इस उच्चावस्था (ईश्वरत्व) को प्राप्त करने के लिये मानव को अपने पुरुषार्थ पर अडिग विश्वास करना होगा। यह पुरुषार्थ है क्या, इसे किस प्रकार व्यक्ति अंगीकार कर ईश्वरत्व की कोटि में आ सकता है—इसके लिये आवश्यक है पुरुषार्थ शब्द का विश्लेषित अर्थ समझना।

पुरुषार्थ का साधारणतः प्रचलित अर्थ है—मानव की शक्ति, किन्तु दार्शनिक जगत् में इस शब्द का कुछ भिन्न एवं विस्तृत अर्थ है। पुरुषार्थ शब्द के दार्शनिक अर्थ का विश्लेषण करने के पूर्व आवश्यक है कि इसका व्याकरण-सम्मत अर्थ जान लें। व्याकरण की दृष्टि से 'पुरुषार्थ' दो शब्दों के संयोग से बना है—पुरुष + अर्थ। पुरुष[14] शब्द की व्युत्पत्ति है **पुरि देहे शेते इति पुरुषः**—

---

१४ (क) पुरि देहे शेते—शी + ड पृषोदरादित्वात्
वाचस्पत्यम्—पुर् + कुषन्। पुरि = पृ + इ।—संस्कृत हिन्दी कोश—आप्टे, पृ० ६२४

(ख) वाचस्पत्यम्—पंचम भाग, पृ० ४३७६

(ग) अर्थः = ऋ + थन्—आप्टे कोश; पृ० ९६
(आशय, प्रयोजन, लक्ष्य, उद्देश्य, इच्छा आदि)
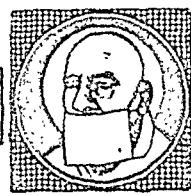
कर्म : बन्धन एवं मुक्ति की प्रक्रियाएँ

☆ मुनिश्री समदर्शीजी 'प्रभाकर'

जीव और पुद्गल—दो स्वतन्त्र तत्त्व हैं। आत्मा के साथ पुद्गल (कर्म) का संयोग-सम्बन्ध होना वन्ध है, और उसका वियोग हो जाना, कर्मों का पूर्णतः क्षय हो जाना, मोक्ष है। श्रमण भगवान महावीर के समय में यह प्रश्न भी दार्शनिकों, विचारकों और धर्म-संस्थापकों (आचार्यों) के समक्ष चर्चा का महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। कुछ विचारक ऐसा मानते थे कि 'पुरुष (आत्मा) सत्त्व, रजो और तमो—तीनों गुणों से रहित है और विभु (व्यापक) है। इसलिए उसे पुण्य-पाप का वन्ध नहीं होता। वह कर्म का वन्ध ही नहीं करता और उससे न तो स्वयं मुक्त होता है और न कर्म को अपने से मुक्त करता है, वह तो अकर्त्ता है। वह वाह्य या आभ्यन्तर कुछ नहीं जानता, क्योंकि ज्ञान पुरुष का नहीं, प्रकृति का स्वभाव है।'

इस तरह के चिन्तन से तीन प्रश्न उठते थे, कि यदि जीव के साथ कर्म का संयोग होना यही वन्ध माना जाए, तो वह वन्ध सादि है, या अनादि? यदि वन्ध सादि है, तो पहले जीव और तदनन्तर कर्म उत्पन्न हुआ? या पहले कर्म उसके वाद जीव का उद्भव हुआ? या दोनों का युगपत जन्म हुआ?[1] जीव कर्म से पूर्व तो उत्पन्न नहीं हो सकता। विना कर्म के उसकी उत्पत्ति निर्हेतुक होगी और तद्रूप उसका विनाश भी निर्हेतुक हो जाएगा। यदि जीव अनादि से है, तो उसका कर्म के साथ संयोग नहीं हो सकता, क्योंकि उसका कोई कारण नहीं है। यदि विना कारण ही जीव-कर्म का संयोग होता हो, तो मुक्त जीव भी पुनः वद्ध हो जायेंगे। इस प्रकार जव वन्ध ही नहीं होता, तो मुक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। वह तो सदा मुक्त ही है।

दूसरी वात यह है कि जीव से पहले कर्म की उत्पत्ति नहीं मान सकते। क्योंकि जीव कर्म का कर्ता है। विना कर्ता के उसकी उत्पत्ति निर्हेतुक होगी, तो विनाश भी निर्हेतुक हो जाएगा। यदि दोनों को युगपत मानें तव भी उनमें कर्तापन और कार्यरूपता घट नहीं सकती। युगपत उत्पन्न होने वाले पदार्थों में जैसे गाय और गाय के सींग—दोनों में गाय सींग की कर्ता नहीं है और सींग गाय के कार्य नहीं हैं, उसी प्रकार जीव-कर्म भी परस्पर कर्ता और कार्य नहीं हो सकते। जीव और कर्म का अनादि सम्बन्ध मानना भी उपयुक्त नहीं है। जो अनादि सम्वन्ध है, वह अनन्त भी होगा और जो अनन्त है, उसका कभी नाश नहीं हो सकता। फिर जीव कभी भी कर्म-वन्ध से मुक्त ही नहीं होगा। इसलिए इस संसार में जीव को न तो कर्म का वन्ध होता है और न वह उस वन्धन से मुक्त होता है। वन्धन ही नहीं है, तव मुक्ति कैसी?

वन्ध-मोक्ष का स्वरूप

कर्म से आत्मा का आवद्ध होना और आवद्ध कर्मों से मुक्त होना—वन्ध और मोक्ष तत्त्व हैं। इस सम्वन्ध में आगम-युग एवं दार्शनिक-युग में विचारकों में विचार-भेद रहा है। चार्वाक-दर्शन के अतिरिक्त सभी दार्शनिक वन्ध और मोक्ष के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, परन्तु अन्तर है—वन्ध और मोक्ष किसका होता है, इस मान्यता में। कुछ विचारक ऐसा मानते हैं कि आत्मा त्रि-गुणातीत है, विभु (व्यापक) है, शुद्ध है, अकर्त्ता है, इसलिए पुरुष (आत्मा) को वन्ध नहीं होता।

---

१ विशेषावश्यकभाष्य, १८०५-६

साधक मानवत्व की कोटि से ईश्वरत्व की कोटि में पहुँच जाता है। वस्तुतः मानव के पुरुषार्थ की इति ही जैनदर्शनानुसार ईश्वरत्व (अर्हत्व सिद्धत्व) की प्राप्ति है। इस ईश्वरत्व की अवस्था में मानव परमात्मभाव को प्राप्त हो जाता है। उसको प्राप्ति के लिए अप्राप्तव्य कुछ नहीं रहता अपितु मानवात्मा[१९] अपने शाश्वत् स्वरूप में स्थित हो जाती है कारण कि उसका बन्धन जो कि अविद्या तथा कर्म के कारण था वह ज्ञान से सदा-सदा के लिए विच्छिन्न हो जाता है। इसी कारण जैन-दर्शन में आत्मा को अनन्त आनन्द सत् माना गया है। यहाँ यह प्रश्न संभाव्य है कि आत्मा जब सुखरूप तथा आनन्दरूप है तब दुख किस कारण से है। यह दुःख यथार्थतः कर्म[२०] बन्धन के कारण है। इसी कर्मबन्धन से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति को पुरुषार्थ का (व्यावहारिक अर्थ—शक्ति या प्रयास) आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ पुरुषार्थ शारीरिक शक्ति का परिचायक नहीं है अपितु मानसिक शक्ति[२१] का द्योतक है। कथन भी है—

"ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः"

इसी ज्ञान रूपी पुरुषार्थ से साधारण से साधारण मानव ईश्वरत्व को प्राप्त हो सकता है। यही है जैनधर्म का मानव-दर्शन।

किसी कवि ने उचित ही कहा है—

"बीज बीज ही नहीं, बीज में तरुवर भी है।
मनुज मनुज ही नहीं, मनुज में ईश्वर भी है॥"

(—चिन्तन की मनोभूमि, पृ० ५०)

पता—
डा० कृपाशंकर व्यास
मारवाड़ सेरी
पो० शाजापुर (म० प्र०)

(ब) "मानवीय चेतना का चरम विकास ही ईश्वरत्व है।"
द्रष्टव्य—चिन्तन की मनोभूमि, पृ० ४७

१९ (अ) "खवित्ता पुव्व कम्माइ संजमेण तवेण य।
सव्वदुक्ख पहीणट्ठा पक्कमंति महेसिणो॥"
—उत्तरा० २५।४५

(ब) चिन्तन की मनोभूमि, पृ० ३१

(स) जैन-दर्शन का व्यापक रूप (जैनधर्म परिचय माला), पृ० २० —महात्मा भगवान दीन

२० "अस्त्यात्माऽनादितोबद्धः कर्मभिः कर्मणात्मकैः"
—(जैनधर्म परिचय माला भाग १२)—लोक प्रकाश ४२४

२१ "णाणं णरस्स सारो"—दर्शन पाहुड ३१—कुन्दकुन्दाचार्य
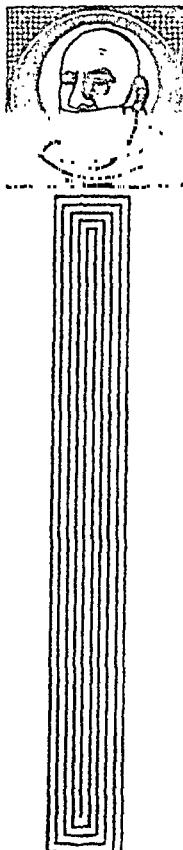
आत्मा के स्व-स्वरूप पर श्रद्धा होना, स्व-स्वरूप को जानना और स्व-स्वरूप में स्थिर होना ही क्रमशः सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र है और इसकी समन्वित-साधना की पूर्णता ही मुक्ति है। इसलिए ज्ञान आत्मा का आगत गुण नहीं, निज गुण है और वह मुक्त-अवस्था में भी रहता है। संसार में परेशानी एवं संसार-परिभ्रमण का कारण ज्ञान नहीं, ज्ञान की अशुद्ध-पर्याय अज्ञान है। राग-द्वेष एवं मोह के कारण यह अशुद्ध पर्याय होती है। ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की अशुद्ध या असम्यक्-पर्याय का क्षय कर देना ही मोक्ष है। चौथी बात यह है कि सभी पदार्थ एक अपेक्षा से क्षणिक भी हैं, परन्तु वे सर्वथा क्षणिक नहीं है। प्रत्येक पदार्थ की पर्याय परिवर्तित होती है, परन्तु पदार्थ का द्रव्यत्व कभी नष्ट नहीं होता, वह सदा बना रहता है। स्वर्ण का आकार बदल सकता है। स्वर्ण के कंगन को तोड़कर उसका हार बना सकते हैं। कंगन का हार बनाने में आकार बदल गया, परन्तु स्वर्ण-द्रव्य, जो कंगन में था, वह हार में भी है, वह नहीं बदला। इसलिए इतना सत्य अवश्य है कि सभी पदार्थ अनित्य भी हैं, क्षणिक भी हैं, परन्तु एकान्तरूप से अनित्य ही नहीं है। इस प्रकार सापेक्ष-दृष्टि से विचार करें, तो वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझ सकते हैं। सापेक्ष-दृष्टि जिसे जैन-दर्शन में अनेकान्त एवं स्याद्वाद कहते हैं, वस्तु के स्वरूप को समझने-जानने एवं परखने की एक वैज्ञानिक दृष्टि एवं पद्धति है। इस विश्व का कोई भी पदार्थ न एकान्तरूप से नित्य है, न एकान्तरूप से अनित्य है, प्रत्युत वह नित्यानित्य है।

जैन-दर्शन एवं आगम-साहित्य में यह माना गया है कि आत्मा शुभ और अशुभ कर्म का कर्ता है और उसके शुभ और अशुभ अथवा सुख-दुःख रूप अनुकूल एवं प्रतिकूल फल का भोक्ता या वेदक भी है।[2] भगवती सूत्र में गणधर गौतम के पूछने पर कि भगवन्! आत्मा स्वकृत कर्म का फल भोगता है, परकृत कर्म का या उभयकृत कर्म का फल भोगता है? इसके उत्तर में श्रमण भगवान महावीर ने कहा—हे गौतम! संसार में परिभ्रमणशील प्रत्येक आत्मा स्व-कृत कर्म-फल का ही भोग करता है। कोई भी व्यक्ति न तो पर-कृत कर्म-फल का वेदन करता है, और न उभय-कृत कर्म-फल का।[3] इससे स्पष्ट होता है, कि कर्म है, कर्म का बन्ध होता है, आबद्ध कर्म के फल का संवेदन होता है अथवा कर्म-फल मिलता है, और आबद्ध-कर्म का भोग करके या निर्जरा करके आत्मा कर्म-बन्धन से एकदेश से और सम्पूर्ण रूप से मुक्त भी होता है। क्योंकि जब तक अपने कृत-कर्मों की निर्जरा (क्षय) नहीं करता, तब तक आत्मा उनसे मुक्त नहीं हो सकता। कर्मक्षय का यह अर्थ नहीं है कि वह कर्म-पुद्गलों के अस्तित्व को ही मिटा देता है। पुद्गल द्रव्यरूप से नित्य हैं, वे सदा से रहे हैं और सदा-सर्वदा रहेंगे। यहाँ क्षय करने का अर्थ इतना ही है कि उनका आत्मा के साथ संयोग-सम्बन्ध नहीं रहता। आत्म-प्रदेशों से अलग हो जाने के बाद वे कर्म नहीं, पुद्गल कहे जाते हैं।

निश्चय-दृष्टि

आत्म-स्वरूप की दृष्टि से आत्मा शुद्ध है। उसमें अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-चारित्र और अनन्त-वीर्य (शक्ति) विद्यमान है। अपने शुद्ध-स्वरूप को भूलकर पर-स्वरूप या पर-भाव में परिणत होने के कारण ही वह कर्म से आबद्ध होकर संसार में परिभ्रमण करता है। वह न तो पर-

---

२ उत्तराध्ययन सूत्र, २०, ३७

३ भगवती सूत्र १, ३
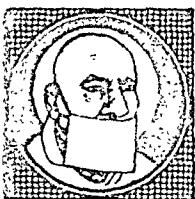
बन्ध प्रकृति को होता है, और वही उससे मुक्त होती है। आत्मा कर्म-बन्ध से अलिप्त है। सांख्य-दर्शन की दृष्टि से पुरुष (आत्मा) कर्ता नहीं है, कर्म का कर्त्ता है—प्रकृति। कुछ विचारक केवल एक ही तत्त्व को मूल-तत्त्व मानते हैं और वह है—ब्रह्म। उनके विचार से ब्रह्म ही सत्य है, उसके अतिरिक्त जगत्—जो प्रत्यक्ष में परिलक्षित होता है, मिथ्या है। हम जो कुछ देखते हैं, वह सब भ्रम है, विवर्त है, माया है। यह संसार मायारूप है, यथार्थ नहीं है। ब्रह्म का ज्ञान नहीं हुआ तब तक ही यह माया रूप संसार है। ब्रह्मज्ञान होते ही जीव, जीव नहीं रह जाएगा, वह ब्रह्म में विलीन हो जाएगा। इस प्रकार अद्वैतवाद के संस्थापक आचार्य शंकर के विचार से ब्रह्म के अतिरिक्त कर्म, कर्म-बन्धन और उसका विपाक सब मिथ्या है, भ्रम है और माया है। न्याय और वैशेषिक-दर्शन द्वैतवाद को मानते हैं, शुभाशुभ कर्म को एवं उसके विपाक (फल) को भी मानते हैं। परन्तु उनके विचार से आत्मा का शुद्ध स्वरूप जड़-सा है। वे आत्मा में ज्ञान-चेतना मानते अवश्य हैं, परन्तु वह आत्मा का स्वभाव नहीं, बाहर से आगत गुण है। जब तक ज्ञान रहता है, तभी तक सारे संघर्ष, जन्म-मरण, दुःख-सुख हैं। इसलिए ज्ञान से मुक्त होना ही मुक्ति है। उनके विचार से मुक्ति या मोक्ष में ज्ञान-चेतना नहीं रहती। ज्ञान-चेतना का अभाव यही तो जड़ता है। जहाँ व्यक्ति की अनन्त-चेतना-शक्ति जाग्रत होने के स्थान में नष्ट हो जाती है, ऐसी मुक्ति कौन चाहेगा ?

बौद्ध-दर्शन आत्मा को क्षणिक मानता है—**'सर्वं अनित्यं, सर्वं क्षणिकं'**—यह उसका मूल सूत्र है। जिस क्षण जो आत्म-चेतना कर्म करती है, बन्ध से आबद्ध होती है, दूसरे क्षण वह नहीं, उसकी सन्तति दूसरी आत्मा जन्म ले लेगी। इस तरह कोई भी वस्तु नित्य नहीं है, जो कुछ दिखाई देता है, वह उसकी सन्तति है। इसलिए कर्म करने वाला आत्मा एक है, और उसके विपाक का वेदन करने वाला दूसरा। यह कभी सम्भव ही नहीं होता कि कर्म करे कोई और उसका फल भोगे दूसरा।

जैन-दृष्टि से बन्ध-मोक्ष

जैन-दर्शन का इस सम्बन्ध में अपना स्वतन्त्र एवं मौलिक-चिन्तन है और कर्मदर्शन (Karma-Philosophy) के सम्बन्ध में उसने वैज्ञानिक (Scientific) एवं मनोवैज्ञानिक (Psychological) पद्धति से विचार किया है। सर्वप्रथम यह दृष्टि पूर्णतः गलत है कि आत्मा कर्म का कर्ता नहीं है, जबकि वह फल का भोक्ता अवश्य है। यह अनुभवगम्य सत्य है कि जो कर्म करता है, वही फल का उपभोग करता है। कर्म अन्य करे और उसका फल वह न भोगकर कोई दूसरा ही भोगे, ऐसा कदापि हो नहीं सकता। दूसरी बात, जो कुछ दिखाई दे रहा है और प्रत्यक्ष है, उसे मिथ्या एवं भ्रान्ति कहना, यह भी सत्य को झुठलाना है। एक ओर यह कहना कि सृष्टि में मूल तत्त्व एक ही है, वह मूल तत्त्व ब्रह्म ही सत्य है, जगत् एकान्ततः मिथ्या है। जब तत्त्व केवल ब्रह्म ही है, तब सृष्टि—यह दूसरा तत्त्व आया कहाँ से। संसार माया एवं अविद्या के कारण है। जैन-दर्शन भी यह मानता है कि कर्म-बन्ध का कारण अज्ञान (अविद्या), राग-द्वेष (मोह-माया) है, परन्तु वह ब्रह्म से भिन्न है। भले ही उसे माया कहें या कर्म-बन्ध कहें—चेतन (ब्रह्म) से भिन्न दूसरा जड़-तत्त्व, जिसे जैन-दर्शन पुद्गल कहता है, है अवश्य। द्वैत-भाव अर्थात् दो मूल तत्त्वों को माने बिना संसार का अस्तित्व रह ही नहीं सकता। तीसरी बात यह है कि ज्ञान आत्मा का गुण है, आत्मा का स्वभाव है। जैन-दर्शन की दृष्टि से आत्मा ज्ञानमय है, ज्ञान के अतिरिक्त वह अन्य कुछ नहीं है। ज्ञानमय

निर्जरा करता है। इसलिए वह स्वयं कर्म का कर्त्ता भी है, भोक्ता भी है और स्वयं ही उनसे मुक्त भी होता है।

जीव : कर्म का कर्त्ता-भोक्ता भी है

सांख्य और जैन-दर्शन में अन्तर यही है कि वह सांख्य की तरह इस बात को नहीं मानता कि कर्म की कर्त्ता प्रकृति है। प्रकृति ही कर्म का बन्ध करती है, और वही उससे मुक्त होती है। प्रकृति जड़ है, जब उसमें चेतना है ही नहीं, तब उसमें बन्ध के परिणाम आ कैसे सकते हैं? पुरुष (आत्मा) के परिणामों के बिना बन्ध होगा कैसे? भले ही वे परिणाम अशुद्ध हों, वैभाविक हों, राग-द्वेषात्मक हों, होंगे पुरुष के ही, आत्मा के ही, जीव के ही। जड़ भावशून्य है, परिणामों से रहित है। इसलिए जैन-दर्शन एवं जैन-आगम-वाङ्मय इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता कि बन्ध का कर्त्ता प्रकृति है और वही उससे मुक्त होती है। पुरुष प्रकृति को अपना समझता है, इसलिए वह प्रकृति द्वारा कृतकर्म का फल भोगता है, संसार में परिभ्रमण करता है। यह कैसे संभव हो सकता है कि कर्म करे प्रकृति और उसका फल भोगना पड़े पुरुष को? इसलिए श्रमण भगवान महावीर ने भगवती सूत्र में स्पष्ट शब्दों में कहा कि आत्मा अपने कृतकर्म के फल को ही भोगता है, पर-कृत कर्म के फल को नहीं। इसलिए वह केवल भोक्ता ही नहीं, कर्म का कर्त्ता भी है और अपने द्वारा आबद्ध कर्म-बन्धन से मुक्त भी वह स्वयं ही होता है। बन्ध और मुक्ति—दोनों उसके परिणामों में निहित हैं विभाव-परिणति बन्ध का कारण है, तो स्वभाव-परिणति मुक्ति का, परन्तु दोनों परिणाम (स्वभाव और विभाव) उसके अपने हैं, वे न प्रकृति के हैं, न पुद्गलों के हैं, न योगों के और न जड़ के हैं। इसलिए प्रकृति अथवा योगों में होने वाले स्पन्दन या क्रिया के द्वारा बन्ध होता है अथवा **'क्रियाएँ बन्ध'** ऐसा न कहकर, यह कहा—**'परिणामे बन्ध'** अथवा बन्ध परिणामों से होता है।

ज्ञान और क्रिया

वेदान्त के व्याख्याकार, ब्रह्म-सूत्र के भाष्यकार एवं अद्वैतवाद के संस्थापक आचार्य शंकर की मान्यता है कि केवल ब्रह्म ही सत्य है, नानात्व से परिपूर्ण यह जगत् मिथ्या है, भ्रम है और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है—**'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।'** अनेक पदार्थों से भरा हुआ, जो जगत प्रत्यक्ष में दिखाई देता है, वह भ्रम है, इसलिए असत्य है। जैसे रज्जू में सर्प की भ्रान्ति होती है और हम उसे सर्प समझ बैठते हैं। परन्तु जब यह भ्रान्ति दूर होती है, तब हम उसे सर्प नहीं, रज्जू (रस्सी) ही समझते हैं। आचार्य शंकर के मत से सर्प-रज्जू भ्रम की पहेली ही विश्व या जगत् पहेली का रहस्य है। इस भ्रान्ति एवं माया का नाश होने पर जगत् सत्य नहीं, मिथ्या प्रतीत होता है। माया अनादि और भावात्मक है, फिर भी ज्ञान के द्वारा समाप्त होने योग्य है। वास्तव में वह भावात्मक नहीं है, उसे भावात्मक केवल इसलिए कहते हैं कि वह अभावात्मक है। वह न भावात्मक है और न अभावात्मक, बल्कि दोनों से भिन्न एक तीसरी वस्तु है।[४]

शंकर का कहना है—'बन्धन का मूल कारण जीव का स्वयं के विषय में अज्ञान है। जीव ब्रह्म है, परन्तु अनादि अविद्या (माया) के कारण वह इस तथ्य को भूल जाता है, और स्वयं शरीर, इन्द्रियाँ समझने लगता है। यही उसका अज्ञान है और इसी कारण वह स्वयं को पड़ा समझता है। जब यह दोषपूर्ण तादात्म्य समाप्त हो जाता है, तो जीव यह अनुभव

...s of Vedanta, Lecture VII.

भाव का अथवा पर-पदार्थ का कर्त्ता है, और न भोक्ता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को जो उसके स्वभाव से भिन्न है, पर है, प्रभावित नहीं कर सकता। उसका परिणमन पर-द्रव्य में नहीं, स्व-द्रव्य में अथवा स्वभाव में ही होता है। यह भेद-ज्ञान हो जाना कि मैं पर-द्रव्य (पुद्गल) से सर्वथा भिन्न हूँ, वह न मेरा था, न मेरा है और न मेरा रहेगा। न पुद्गल के संयोग से मेरे स्वभाव एवं स्वरूप में (आत्म-प्रदेशों में) अभिवृद्धि होती है और न उसके वियोग से स्व-स्वरूप में किसी तरह की क्षति होती है। अत: स्व के द्वारा स्व-स्वरूप का बोध हो जाना, परिज्ञान हो जाना अथवा अपने से अपने आप को जान लेना सम्यक्-ज्ञान है, स्व द्वारा ज्ञात स्व-स्वरूप पर श्रद्धा-निष्ठा एवं विश्वास रखना सम्यक्दर्शन है, और पर-भाव एवं पर-स्वरूप से अपने आप को हटाकर अपने स्वरूप में स्थित रहना ही सम्यक्-चारित्र है। निश्चय-दृष्टि से सम्यक्-चारित्र का अर्थ किसी भी तरह की बाह्य क्रिया को करना नहीं, प्रत्युत अपने परिणामों को समस्त पर भावों से हटा लेना और स्व-भाव में स्थित हो जाना है। क्रिया का सम्बन्ध योग से है। योग आत्मा से भिन्न पौद्गलिक है। इसलिए योग से संबद्ध क्रिया बन्ध का हेतु आस्रव है, निर्जरा एवं मोक्ष का हेतु संवर कैसे हो सकती है? क्रिया ही चारित्र है, यह दृष्टि रहने से अनुकूल क्रिया पर राग होगा और प्रतिकूल क्रिया पर द्वेष। राग-द्वेष स्वभाव नहीं, विभाव हैं। इसलिए राग-द्वेषात्मक वैभाविक परिणति योग आस्रव से आगत कर्म-पुद्गलों के बन्ध का कारण है। निर्जरा का कारण है—राग-द्वेष से रहित वीतरागभाव। वीतराग भाव का अभिप्राय है—वीतराग की दृष्टि क्रिया पर नहीं, स्वभाव में रहती है। वह अपने आप को बाह्य-क्रियाओं का कर्त्ता एवं भोक्ता नहीं, केवल द्रष्टा समझती है। वीतराग क्रिया करता नहीं, वह तो योग का स्वभाव होने से जब तक योग का आत्मा के साथ संयोग-सम्बन्ध रहता है, तब तक होती है। इसलिए बाह्य क्रिया में परिणत होना सम्यक्-चारित्र नहीं है, सम्यक्-चारित्र है—स्व-स्वभाव में परिणत होना।

व्यवहार-दृष्टि

आत्मा और कर्म का संयोग-सम्बन्ध होने के कारण होने वाली वैभाविक परिणति से कर्म का बन्ध होता है और उसका वह साता-असाता के रूप में वेदन भी करता है। वह यह जानता है कि कर्म एवं नोकर्म उसके अपने नहीं हैं। आत्मा मन, वचन एवं काय—तीनों योगों से, जो पौद्गलिक हैं, सर्वथा भिन्न है। उसका स्वरूप एवं स्वभाव भी योगों से सर्वथा भिन्न है। राग-द्वेष भी उसके अपने शुद्ध-भाव नहीं, विभाव हैं, अशुद्ध भाव हैं। राग-द्वेषात्मक परिणति भाव एवं परिणामों की अशुद्ध-पर्याय है, विभावपर्याय है। परन्तु है वह जीव की ही परिणति अजीव की नहीं। क्योंकि अजीव में, पुद्गल में, जड़-पदार्थों में राग-द्वेष हैं ही नहीं। उनमें चेतना का अभाव है, न ज्ञानचेतना है, न कर्मचेतना है और न कर्मफलचेतना है। ये तीनों चेतना आत्मा की ही हैं। कर्म एवं कर्म-फल चेतना अशुद्ध-भाव हैं और ज्ञान चेतना शुद्ध-भाव है। राग-द्वेष एवं कर्म या कर्म-फल चेतना में परिणत आत्मा ही योगों में होने वाले स्पन्दन से आगत कार्मण-वर्गणा के पुद्गलों से आबद्ध होता है, इसी को आगम में बन्ध कहा है। राग-द्वेष शुभ भी हैं और अशुभ भी हैं, इसी कारण शुभ और अशुभ आस्रव से आने वाले शुभ और अशुभ कर्मों का या पुण्य-पाप का बन्ध होता है। राग-द्वेषात्मक भाव या परिणाम आत्मा के हैं। इस अपेक्षा से आगम में यह कहा गया है कि आत्मा शुभ और अशुभ कर्म का कर्त्ता है। वीतरागभाव आत्मा का स्व-भाव है। जब, जिस क्षण आत्मा की परिणति वीतरागभाव में होती है, तब वह नये कर्मों का बन्ध नहीं करता है और आबद्ध कर्मों की

रूप पुद्गलों से सर्वथा भिन्न हूँ, इतने मात्र से वह बन्धन से मुक्त हो नहीं जाएगा। जैसे व्यक्ति ने भ्रान्तिवश सीप को रजत समझ कर एकत्रित कर लिया। उसे जब यह बोध हो गया कि यह रजत नहीं, सीप है, तो उसकी भ्रान्ति दूर हो गई। हम यह कह सकते हैं कि उसे ज्ञान हो गया और ज्ञान का फल यह है कि उसका भ्रम दूर हो गया। परन्तु ज्ञान होने मात्र से वह तब तक उस संग्रहीत सीप के बोझ से मुक्त नहीं हो सकता, जब तक उन्हें अपनी जेब से निकाल कर नहीं फेंक देगा। इसी प्रकार अज्ञान, अविद्या एवं मोहवश आबद्ध कर्मों का यथार्थ बोध हो जाना एक बात है और उन आबद्ध कर्मों से मुक्त होना, उनकी निर्जरा करके उनके आवरण को हटा देना दूसरी बात है। प्रथम को आगम में सम्यक्-ज्ञान कहा है, और दूसरे को सम्यक्-चारित्र। सम्यक्ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान से साधक को यह बोध हो जाता है कि मेरा अपना स्वरूप क्या है और संसार का स्वरूप क्या है? मैं कर्म से आबद्ध क्यों हूँ? आवरण से आवृत होने का कारण क्या है? और उससे अनावृत होने का मार्ग क्या है? ज्ञान से मार्ग का बोध हो जाता है, परन्तु लक्ष्य की प्राप्ति होगी, उस मार्ग पर गति करने से। गति एक क्रिया है, इसे आगम में चारित्र एवं आचार कहा है। बन्धन से मुक्त होने के लिए मात्र ज्ञान ही नहीं, ज्ञान के साथ चारित्र का, क्रिया का, आचार का होना भी आवश्यक है। न केवल क्रिया से आत्मा बन्धन से मुक्त हो सकता है, और न मात्र ज्ञान से। इसलिए जैन-दर्शन अद्वैत-वेदान्त की इस बात को तो मानता है, कि संसार में आबद्ध रहने का कारण अविद्या (अज्ञान) है, परन्तु इसे स्वीकार नहीं करता कि उससे मुक्त होने के लिए ज्ञान का होना ही पर्याप्त है, कर्म (चारित्र) की, क्रिया की कोई आवश्यकता नहीं है।

जैन-दर्शन में बन्ध और मोक्ष

सात या नव तत्त्व में दो तत्त्व ही मुख्य हैं—जीव-अजीव, जड़-चेतन, आत्मा-पुद्गल, पुरुष-प्रकृति या ब्रह्म-माया। स्थानांग सूत्र में दो द्रव्य कहे हैं—'जीव दव्वा चेव अजीव दव्वा' अथवा जीव और अजीव द्रव्य। अजीव-द्रव्य के पाँच भेद किए गए हैं—धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, आकाश-द्रव्य, काल-द्रव्य और पुद्गल-द्रव्य। भले ही जीव और अजीव कह दें या आत्मा और पुद्गल—इन दो की प्रमुखता है, सृष्टि की रचना में। आत्मा और पुद्गल का संयोग-सम्बन्ध संसार है और इस संयोग से मुक्त-उन्मुक्त हो जाना मोक्ष है। जब आत्मा स्व-भाव को छोड़कर विभाव में परिणमन करता है, राग-द्वेष के प्रवाह में प्रवहमान रहता है, कषायों के रंग से अनुरंजित रहता है, तब वह कर्म से आबद्ध होता है, और कर्म से आबद्ध होने के कारण ही संसार में परिभ्रमण करता है। जब आत्मा को स्वरूप का बोध हो जाता है और भेद-विज्ञान द्वारा परिज्ञात स्व-स्वरूप में स्थित होता है, तब वह नये कर्म का बन्ध नहीं करता, प्रत्युत आबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है, उनसे मुक्त होता है। राग-भाव से हटकर वीतराग-भाव में आना कर्म-बन्धन से मुक्त होना है।

बन्धन कब से?

भारत के सभी आस्तिक-दर्शन इस बात को मानते हैं कि आत्मा की आदि नहीं है, वह अनादि है। और सांख्य, योग, न्याय-वैशेषिक, अद्वैत-वेदान्त—सभी आस्तिक-दर्शन इस तथ्य को भी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि संसार से मुक्त होने के बाद आत्मा पुनः संसार में जन्म नहीं लेता। पुनर्जन्म-मरण बद्ध-आत्मा का होता है, मुक्त का नहीं। संसार-परिभ्रमण का कारण पुरुष-प्रकृति के संयोग को मानें या ब्रह्म और माया के संयोग को, वह ठीक जैन-दर्शन की मान्यता के अनुसार अनादि काल से है। आचार्य शंकर की मान्यता के अनुसार, 'अविद्या एवं भ्रम का

करता है कि वह तो अनादिकाल से ब्रह्म ही था, मुक्त ही था। वास्तव में बन्धन मानसिक भ्रम है, सत्तागत नहीं। इसलिए बन्धन केवल व्यावहारिक दृष्टिकोण से ही सत्य है। पारमार्थिक सत्य यह है कि जीव न कभी बन्धन में पड़ता है और न कभी मोक्ष को प्राप्त करता है।[५] आचार्य शंकर का कहना है कि जिस प्रकार रज्जू-सर्प भ्रम को केवल ज्ञान द्वारा ही दूर किया जा सकता है, कर्म अथवा क्रिया इस भ्रम को दूर करने में जरा भी सहायक नहीं होती, उसी प्रकार मोक्ष भी—जो ब्रह्म एवं जगत् का भ्रम दूर होना है, केवल ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है, कर्म से नहीं।[६]

जैन-दर्शन आत्मा को सत्य मानता है, परन्तु वह जगत् को मिथ्या नहीं मानता। नानात्व से परिपूर्ण यह जगत् या लोक भी सत्य है। इस लोक में आत्मा का अस्तित्व है और आत्मा के स्वरूप से सर्वथा भिन्न पुद्गल का, जड़ का अस्तित्व भी है। भले ही आत्मा एवं पुद्गल का अथवा चेतन और जड़ का, या पुरुष और प्रकृति का अथवा ब्रह्म और माया का अथवा जीव और कर्म का संयोग सम्बन्ध अथवा आत्मा का कर्म के साथ आबद्ध होना अज्ञान (अविद्या) के कारण हुआ है, परन्तु इतना तो मानना ही होगा कि जिसके बन्धन में आत्मा आबद्ध है, उसका अस्तित्व है, और मुक्त होने के बाद भले ही आत्मा के साथ उसका सम्बन्ध न रहे, पर जगत् में उसका अस्तित्व रहेगा ही। केवल भ्रम कहने मात्र से किसी वस्तु की सत्ता समाप्त नहीं हो जाती। रज्जू में सर्प के भ्रम का तात्पर्य इतना ही है कि वह रज्जू सर्प नहीं है, परन्तु सर्प की सत्ता तो है, उसका अस्तित्व तो है। यदि उसका अस्तित्व ही नहीं होता, तो यह भ्रान्ति कैसे होती। जैसे किसी भी व्यक्ति को खर-विषाण (गधे की सींग) की भ्रान्ति नहीं होती। अस्तु यह नितान्त सत्य है कि मन, आत्मा नहीं है। शरीर भी आत्मा नहीं है, इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं हैं। आगम की भाषा में कहूँ, तो कर्म और नोकर्म भी आत्मा नहीं है। आत्मा से सम्बद्ध होने के कारण अज्ञानवश व्यक्ति उन पर-पदार्थों को अपना समझ लेता है, परन्तु सम्यक्-ज्ञान होने पर वह उन्हें अपने स्वरूप से सर्वथा भिन्न समझता है। इसी को आगम में भेद-विज्ञान कहा है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि आत्मा से भिन्न ये पदार्थ अथवा अनेक जड़-पदार्थों से परिपूर्ण यह जगत् या लोक सर्वथा मिथ्या है। जीव जड़ नहीं है, जैसे रज्जू सर्प नहीं है, इतना सत्य है। परन्तु सर्प सर्वथा मिथ्या है, जड़ जगत् सर्वथा मिथ्या है, उसका अस्तित्व ही नहीं है, यह अनुभूत सत्य को झुठलाना है। भ्रम या भ्रान्ति उसी वस्तु की होती है, जो उस वस्तु में नहीं है, परन्तु जिसका अस्तित्व है अवश्य, जैसे सूर्य के प्रकाश में चमकती हुई सीप में रजत (चाँदी) की भ्रान्ति होती है। सीप में रजत का अस्तित्व नहीं है, यह भ्रान्ति है, परन्तु रजत का अस्तित्व ही नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते। जड़ को जीव मानना भ्रान्ति है, अज्ञान है। जब तक यह अज्ञान (अविद्या) रहता है, तब तक आत्मा कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं होता। यह जड़ शरीर, इन्द्रियाँ एवं मन जीव नहीं है, आत्मा इनसे भिन्न है, यह बोध हो जाना और पर-भाव एवं पर-स्वरूप से हटकर अपने स्वरूप को जान लेना सम्यक्-ज्ञान है। भ्रान्ति का दूर हो जाना यह बन्धन से मुक्त होने का रास्ता है। परन्तु सम्यक्-ज्ञान होने का यह अर्थ नहीं है कि जड़-पदार्थ एवं पुद्गलों का अस्तित्व ही मिट गया। उनके अस्तित्व से इन्कार करना, यही सबसे बड़ा अज्ञान है।

ज्ञान से स्वरूप का बोध होता है और साधक यह जान लेता है कि मैं कर्म और नोकर्म

---

५ ईशावास्योपनिषद्, ५ शांकरभाष्य

६ कठोपनिषद् १, २, १४

रूप पुद्गलों से सर्वथा भिन्न हूँ, इतने मात्र से वह बन्धन से मुक्त हो नहीं जाएगा। जैसे व्यक्ति ने भ्रान्तिवश सीप को रजत समझ कर एकत्रित कर लिया। उसे जब यह बोध हो गया कि यह रजत नहीं, सीप है, तो उसकी भ्रान्ति दूर हो गई। हम यह कह सकते हैं कि उसे ज्ञान हो गया और ज्ञान का फल यह है कि उसका भ्रम दूर हो गया। परन्तु ज्ञान होने मात्र से वह तब तक उस संग्रहीत सीप के बोझ से मुक्त नहीं हो सकता, जब तक उन्हें अपनी जेब से निकाल कर नहीं फेंक देगा। इसी प्रकार अज्ञान, अविद्या एवं मोहवश आबद्ध कर्मों का यथार्थ बोध हो जाना एक बात है और उन आबद्ध कर्मों से मुक्त होना, उनकी निर्जरा करके उनके आवरण को हटा देना दूसरी बात है। प्रथम को आगम में सम्यक्-ज्ञान कहा है, और दूसरे को सम्यक्-चारित्र। सम्यक्ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान से साधक को यह बोध हो जाता है कि मेरा अपना स्वरूप क्या है और संसार का स्वरूप क्या है? मैं कर्म से आबद्ध क्यों हूँ? आवरण से आवृत होने का कारण क्या है? और उससे अनावृत होने का मार्ग क्या है? ज्ञान से मार्ग का बोध हो जाता है, परन्तु लक्ष्य की प्राप्ति होगी, उस मार्ग पर गति करने से। गति एक क्रिया है, इसे आगम में चारित्र एवं आचार कहा है। बन्धन से मुक्त होने के लिए मात्र ज्ञान ही नहीं, ज्ञान के साथ चारित्र का, क्रिया का, आचार का होना भी आवश्यक है। न केवल क्रिया से आत्मा बन्धन से मुक्त हो सकता है, और न मात्र ज्ञान से। इसलिए जैन-दर्शन अद्वैत-वेदान्त की इस बात को तो मानता है, कि संसार में आबद्ध रहने का कारण अविद्या (अज्ञान) है, परन्तु इसे स्वीकार नहीं करता कि उससे मुक्त होने के लिए ज्ञान का होना ही पर्याप्त है, कर्म (चारित्र) की, क्रिया की कोई आवश्यकता नहीं है।

जैन-दर्शन में बन्ध और मोक्ष

सात या नव तत्त्व में दो तत्त्व ही मुख्य हैं—जीव-अजीव, जड़-चेतन, आत्मा-पुद्गल, पुरुष-प्रकृति या ब्रह्म-माया। स्थानांग सूत्र में दो द्रव्य कहे हैं—'जीव दव्वा चेव अजीव दव्वा' अथवा जीव और अजीव द्रव्य। अजीव-द्रव्य के पाँच भेद किए गए हैं—धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, आकाश-द्रव्य, काल-द्रव्य और पुद्गल-द्रव्य। भले ही जीव और अजीव कह दें या आत्मा और पुद्गल—इन दो की प्रमुखता है, सृष्टि की रचना में। आत्मा और पुद्गल का संयोग-सम्बन्ध संसार है और इस संयोग से मुक्त-उन्मुक्त हो जाना मोक्ष है। जब आत्मा स्व-भाव को छोड़कर विभाव में परिणमन करता है, राग-द्वेष के प्रवाह में प्रवहमान रहता है, कषायों के रंग से अनुरंजित रहता है, तब वह कर्म से आबद्ध होता है, और कर्म से आबद्ध होने के कारण ही संसार में परिभ्रमण करता है। जब आत्मा को स्वरूप का बोध हो जाता है और भेद-विज्ञान द्वारा परिज्ञात स्व-स्वरूप में स्थित होता है, तब वह नये कर्म का बन्ध नहीं करता, प्रत्युत आबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है, उनसे मुक्त होता है। राग-भाव से हटकर वीतराग-भाव में आना कर्म-बन्धन से मुक्त होना है।

बन्धन कब से?

भारत के सभी आस्तिक-दर्शन इस बात को मानते हैं कि आत्मा की आदि नहीं है, वह अनादि है। और सांख्य, योग, न्याय-वैशेषिक, अद्वैत-वेदान्त—सभी आस्तिक-दर्शन इस तथ्य को भी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि संसार से मुक्त होने के बाद आत्मा पुनः संसार में जन्म नहीं लेता। पुनर्जन्म-मरण बद्ध-आत्मा का होता है, मुक्त का नहीं। संसार-परिभ्रमण का कारण पुरुष-प्रकृति के संयोग को मानें या ब्रह्म और माया के संयोग को, वह ठीक जैन-दर्शन की मान्यता के अनुसार अनादि काल से है। आचार्य शंकर की मान्यता के अनुसार, 'अविद्या एवं भ्रम का

करता है कि वह तो अनादिकाल से ब्रह्म ही था, मुक्त ही था। वास्तव में बन्धन मानसिक भ्रम है, सत्तागत नहीं। इसलिए बन्धन केवल व्यावहारिक दृष्टिकोण से ही सत्य है। पारमार्थिक सत्य यह है कि जीव न कभी बन्धन में पड़ता है और न कभी मोक्ष को प्राप्त करता है।[5] आचार्य शंकर का कहना है कि जिस प्रकार रज्जू-सर्प भ्रम को केवल ज्ञान द्वारा ही दूर किया जा सकता है, कर्म अथवा क्रिया इस भ्रम को दूर करने में जरा भी सहायक नहीं होती, उसी प्रकार मोक्ष भी—जो ब्रह्म एवं जगत् का भ्रम दूर होना है, केवल ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है, कर्म से नहीं।[6]

जैन-दर्शन आत्मा को सत्य मानता है, परन्तु वह जगत् को मिथ्या नहीं मानता। नानात्व से परिपूर्ण यह जगत् या लोक भी सत्य है। इस लोक में आत्मा का अस्तित्व है और आत्मा के स्वरूप से सर्वथा भिन्न पुद्गल का, जड़ का अस्तित्व भी है। भले ही आत्मा एवं पुद्गल का अथवा चेतन और जड़ का, या पुरुष और प्रकृति का अथवा ब्रह्म और माया का अथवा जीव और कर्म का संयोग सम्बन्ध अथवा आत्मा का कर्म के साथ आवद्ध होना अज्ञान (अविद्या) के कारण हुआ है, परन्तु इतना तो मानना ही होगा कि जिसके बन्धन में आत्मा आवद्ध है, उसका अस्तित्व है, और मुक्त होने के बाद भले ही आत्मा के साथ उसका सम्बन्ध न रहे, पर जगत् में उसका अस्तित्व रहेगा ही। केवल भ्रम कहने मात्र से किसी वस्तु की सत्ता समाप्त नहीं हो जाती। रज्जू में सर्प के भ्रम का तात्पर्य इतना ही है कि वह रज्जू सर्प नहीं है, परन्तु सर्प की सत्ता तो है, उसका अस्तित्व तो है। यदि उसका अस्तित्व ही नहीं होता, तो यह भ्रान्ति कैसे होती। जैसे किसी भी व्यक्ति को खर-विषाण (गधे की सींग) की भ्रान्ति नहीं होती। अस्तु यह नितान्त सत्य है कि मन, आत्मा नहीं है। शरीर भी आत्मा नहीं है, इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं हैं। आगम की भाषा में कहूँ, तो कर्म और नोकर्म भी आत्मा नहीं है। आत्मा से सम्बद्ध होने के कारण अज्ञानवश व्यक्ति उन पर-पदार्थों को अपना समझ लेता है, परन्तु सम्यक्-ज्ञान होने पर वह उन्हें अपने स्वरूप से सर्वथा भिन्न समझता है। इसी को आगम में भेद-विज्ञान कहा है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि आत्मा से भिन्न ये पदार्थ अथवा अनेक जड़-पदार्थों से परिपूर्ण यह जगत् या लोक सर्वथा मिथ्या है। जीव जड़ नहीं है, जैसे रज्जू सर्प नहीं है, इतना सत्य है। परन्तु सर्प सर्वथा मिथ्या है, जड़ जगत् सर्वथा मिथ्या है, उसका अस्तित्व ही नहीं है, यह अनुभूत सत्य को झुठलाना है। भ्रम या भ्रान्ति उसी वस्तु की होती है, जो उस वस्तु में नहीं है, परन्तु जिसका अस्तित्व है अवश्य, जैसे सूर्य के प्रकाश में चमकती हुई सीप में रजत (चाँदी) की भ्रान्ति होती है। सीप में रजत का अस्तित्व नहीं है, यह भ्रान्ति है, परन्तु रजत का अस्तित्व ही नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते। जड़ को जीव मानना भ्रान्ति है, अज्ञान है। जब तक यह अज्ञान (अविद्या) रहता है, तब तक आत्मा कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं होता। यह जड़ शरीर, इन्द्रियाँ एवं मन जीव नहीं है, आत्मा इनसे भिन्न है, यह बोध हो जाना और पर-भाव एवं पर-स्वरूप से हटकर अपने स्वरूप को जान लेना सम्यक्-ज्ञान है। भ्रान्ति का दूर हो जाना यह बन्धन से मुक्त होने का रास्ता है। परन्तु सम्यक्-ज्ञान होने का यह अर्थ नहीं है कि जड़-पदार्थ एवं पुद्गलों का अस्तित्व ही मिट गया। उनके अस्तित्व से इन्कार करना, यही सबसे बड़ा अज्ञान है।

ज्ञान से स्वरूप का बोध होता है और साधक यह जान लेता है कि मैं कर्म और नोकर्म

५ ईशावास्योपनिषद, ५ शांकरभाष्य

६ कठोपनिषद् १, २, १४

रूप पुद्गलों से सर्वथा भिन्न हूँ, इतने मात्र से वह बन्धन से मुक्त हो नहीं जाएगा। जैसे व्यक्ति ने भ्रान्तिवश सीप को रजत समझ कर एकत्रित कर लिया। उसे जब यह बोध हो गया कि यह रजत नहीं, सीप है, तो उसकी भ्रान्ति दूर हो गई। हम यह कह सकते हैं कि उसे ज्ञान हो गया और ज्ञान का फल यह है कि उसका भ्रम दूर हो गया। परन्तु ज्ञान होने मात्र से वह तब तक उस संग्रहीत सीप के बोझ से मुक्त नहीं हो सकता, जब तक उन्हें अपनी जेब से निकाल कर नहीं फेंक देगा। इसी प्रकार अज्ञान, अविद्या एवं मोहवश आबद्ध कर्मों का यथार्थ बोध हो जाना एक बात है और उन आबद्ध कर्मों से मुक्त होना, उनकी निर्जरा करके उनके आवरण को हटा देना दूसरी बात है। प्रथम को आगम में सम्यक्-ज्ञान कहा है, और दूसरे को सम्यक्-चारित्र। सम्यक्ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान से साधक को यह बोध हो जाता है कि मेरा अपना स्वरूप क्या है और संसार का स्वरूप क्या है? मैं कर्म से आबद्ध क्यों हूँ? आवरण से आवृत होने का कारण क्या है? और उससे अनावृत होने का मार्ग क्या है? ज्ञान से मार्ग का बोध हो जाता है, परन्तु लक्ष्य की प्राप्ति होगी, उस मार्ग पर गति करने से। गति एक क्रिया है, इसे आगम में चारित्र एवं आचार कहा है। बन्धन से मुक्त होने के लिए मात्र ज्ञान ही नहीं, ज्ञान के साथ चारित्र का, क्रिया का, आचार का होना भी आवश्यक है। न केवल क्रिया से आत्मा बन्धन से मुक्त हो सकता है, और न मात्र ज्ञान से। इसलिए जैन-दर्शन अद्वैत-वेदान्त की इस बात को तो मानता है, कि संसार में आबद्ध रहने का कारण अविद्या (अज्ञान) है, परन्तु इसे स्वीकार नहीं करता कि उससे मुक्त होने के लिए ज्ञान का होना ही पर्याप्त है, कर्म (चारित्र) की, क्रिया की कोई आवश्यकता नहीं है।

जैन-दर्शन में बन्ध और मोक्ष

सात या नव तत्त्व में दो तत्त्व ही मुख्य हैं—जीव-अजीव, जड़-चेतन, आत्मा-पुद्गल, पुरुष-प्रकृति या ब्रह्म-माया। स्थानांग सूत्र में दो द्रव्य कहे हैं—**'जीव दव्वा चेव अजीव दव्वा'** अथवा जीव और अजीव द्रव्य। अजीव-द्रव्य के पाँच भेद किए गए हैं—धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, आकाश-द्रव्य, काल-द्रव्य और पुद्गल-द्रव्य। भले ही जीव और अजीव कह दें या आत्मा और पुद्गल—इन दो की प्रमुखता है, सृष्टि की रचना में। आत्मा और पुद्गल का संयोग-सम्बन्ध संसार है और इस संयोग से मुक्त-उन्मुक्त हो जाना मोक्ष है। जब आत्मा स्व-भाव को छोड़कर विभाव में परिणमन करता है, राग-द्वेष के प्रवाह में प्रवहमान रहता है, कषायों के रंग से अनुरंजित रहता है, तब वह कर्म से आबद्ध होता है, और कर्म से आबद्ध होने के कारण ही संसार में परिभ्रमण करता है। जब आत्मा को स्वरूप का बोध हो जाता है और भेद-विज्ञान द्वारा परिज्ञात स्व-स्वरूप में स्थित होता है, तब वह नये कर्म का बन्ध नहीं करता, प्रत्युत आबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है, उनसे मुक्त होता है। राग-भाव से हटकर वीतराग-भाव में आना कर्म-बन्धन से मुक्त होना है।

बन्धन कब से ?

भारत के सभी आस्तिक-दर्शन इस बात को मानते हैं कि आत्मा की आदि नहीं है, वह अनादि है। और सांख्य, योग, न्याय-वैशेषिक, अद्वैत-वेदान्त—सभी आस्तिक-दर्शन इस तथ्य को भी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि संसार से मुक्त होने के बाद आत्मा पुनः संसार में जन्म नहीं लेता। पुनर्जन्म-मरण बद्ध-आत्मा का होता है, मुक्त का नहीं। संसार-परिभ्रमण का कारण पुरुष-प्रकृति के संयोग को मानें या ब्रह्म और माया के संयोग को, वह ठीक जैन-दर्शन की मान्यता के अनुसार अनादि काल से है। आचार्य शंकर की मान्यता के अनुसार, 'अविद्या एवं भ्रम का

नाश होते ही आत्मा को अपने ब्रह्म-स्वरूप का बोध हो जाता है और वह यह जान लेता है कि भ्रम या अविद्या के कारण मैं अनादि काल से माया के साथ रहा, परन्तु वास्तव में मैं तो अनादि-काल से ब्रह्म ही था।' सांख्य की भाषा में पुरुष-प्रकृति का भेद-ज्ञान नहीं होने से पुरुष अनादिकाल से संसार में आवद्ध रहा। जैन आगम एवं जैन-दर्शन भी इसी बात को मानते हैं कि जीव भी अनादि से है और पुद्गल भी अनादि से है। आत्मा को अपने स्वरूप का परिज्ञान न होने के कारण अज्ञान एवं मोहवश वह कर्म-पुद्गलों से आवद्ध होकर संसार में परिभ्रमण करता रहा। जब वह अज्ञान या मिथ्यात्व के आवरण को हटा देता है, मिथ्यात्व-ग्रन्थि (गांठ) का भेदन करके सम्यक्त्व को, सम्यक्-ज्ञान को अनावृत कर लेता है, तब उसे अपने स्वरूप का यथार्थ बोध हो जाता है। इससे वह यह जान लेता है, कि मैं शरीर, इन्द्रिय, मन एवं कर्म आदि सभी पौद्गलिक पदार्थों से सर्वथा भिन्न हूँ। मैं अथवा आत्मा स्वरूप की दृष्टि से शुद्ध होते हुए भी कर्म से आवद्ध क्यों है, कर्म-बन्ध का कारण क्या है और उससे मुक्त होने का साधन क्या है, इसका परिज्ञान हो जाता है और एक दिन वह समस्त कर्म-बन्धन एवं कर्मजन्य साधनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अनन्तकाल से अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान इस धारा का आदिकाल किसी भी दार्शनिक को ज्ञात नहीं है। जो वस्तु अनन्त काल से है, उसकी आदि हो ही नहीं सकती। आदि सान्त की होती है, अनन्त की नहीं। इसलिए संसारी आत्मा अनादि से कर्म-पुद्गलों से आवद्ध है।

अनादि-संयोग का अन्त कैसे ?

आत्मा और पुद्गल (कर्म) का संयोग अनादि से है, फिर वह अनन्त तक रहेगा ? जो वस्तु अनन्तकाल से है, जिसका आदिकाल है ही नहीं, उस अनन्त का अन्त भी नहीं होगा। अन्त उसी वस्तु का होता है, जिस वस्तु का आदिकाल निश्चित है। यदि संसारी-आत्मा अनादिकाल से कर्म से आवद्ध है, तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकती ?

इसका समाधान श्रमण भगवान महावीर ने इस प्रकार किया कि आत्मा और पुद्गल—दोनों स्वतन्त्र द्रव्य हैं। दोनों अनादिकाल से हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे। ऐसा कोई भी क्षण नहीं रहा कि आत्मा का अस्तित्व न रहा हो, नहीं है और नहीं रहेगा। यही बात पुद्गल के सम्बन्ध में है। आत्मा और कर्म-पुद्गल का संयोग सम्बन्ध होने पर भी दोनों का अस्तित्व स्वतन्त्र है। आत्मा से सम्बद्ध रहने पर भी आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में से एक भी प्रदेश पुद्गल रूप में परिणत नहीं होता और पुद्गलों का एक भी परमाणु चेतन रूप में परिणत नहीं होता। दोनों के साथ रहने पर भी आत्मा की परिणति चेतन रूप में होती है, और पुद्गल की परिणति पुद्गल (जड़) रूप में होती है। दोनों एक-दूसरे से सम्बद्ध दिखाई देने पर भी एक-दूसरे के रूप में समाहित नहीं होते। जैसे लोहे के गोले को आग में डालने पर अग्नि के परमाणु उसमें इतने एकाकार परिलक्षित होते हैं कि वह लोहे का नहीं, आग का गोला-सा दिखाई पड़ता है। परन्तु लोहे के परमाणु अलग हैं और अग्नि के संयोग से आये हुए आग के परमाणु उससे अलग हैं। दोनों परमाणु पुद्गल हैं, फिर भी उस गोले को आग से बाहर निकालकर कुछ देर पड़ा रहने दें, तो ठण्डा होने पर आप देखेंगे कि आग के परमाणु शान्त हो जाते हैं, और वह लोहे का गोला ही रह जाता है। जैसे अग्नि के परमाणु लोहे से भिन्न हैं, इसी प्रकार पुद्गल के संयोग से आत्मा और पुद्गलों से निर्मित शरीर एक दिखाई देते हैं, परन्तु वस्तुतः दोनों एक-दूसरे के स्वरूप एवं स्वभाव से सर्वथा भिन्न हैं। दोनों में होने वाली परिणति भी पृथक्-पृथक् होती है। इसलिए उनका पृथक् होना सम्भव है।

कर्म का वन्ध वैभाविक परिणति (राग-द्वेष) से होता है, और जब तक आत्मा में मोह-कर्म का उदय-भाव रहता है, तब तक प्रति समय कर्म का बन्ध होता रहता है। आत्मा पूर्व में आवद्ध कर्म के विपाक का प्रति समय वेदन करता है, और वह कर्म अपना फल देकर आत्म-प्रदेशों से अलग हो जाता है और नये कर्मों का वन्ध हो जाता है। इस प्रकार प्रवाह की दृष्टि से कर्म का प्रवाह अनादि से चला आ रहा है। हम यह नहीं कह सकते कि यह कर्म-प्रवाह आत्मा के साथ कब से आ रहा है। वैभाविक परिणति से कर्म बँधते हैं और कर्म के कारण मोह, राग-द्वेष आदि विभाव जागृत होते हैं। जैसे अण्डे से मुर्गी निकलती है, और मुर्गी से अण्डा उत्पन्न होता है। यह नहीं कहा जा सकता कि अण्डा पहले अस्तित्व में आया या मुर्गी। दोनों का यह पारस्परिक सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। इसी प्रकार आत्मा और कर्म का प्रवाह रूप से संयोग सम्वन्ध अनादि काल से है, परन्तु एक ही कर्म अनादि काल से नहीं है। प्रतिक्षण बँधने वाले कर्म की आदि है और उसका वन्ध कितने समय का है अथवा वह कितने काल तक सत्ता में रहेगा, उसकी स्थिति का वन्ध भी उसके रस के वन्ध के साथ हो जाता है और वह कब उदय में आकर फल देगा, यह भी स्थिति के अनुरूप निश्चित हो जाता है, इसलिए प्रतिक्षण बँधने वाले कर्म की आदि भी है और उसका अन्त भी है। इसी कारण जैन-दर्शन इस बात को मानता है कि आवद्ध कर्म को तोड़ा भी जा सकता है। आत्मा राग-द्वेषमय विभाव-धारा में वहता है, तब कर्म बाँधता है, और राग-द्वेष का क्षय करके वीतरागभाव अथवा स्वभाव में परिणत होता है, तब वह उससे मुक्त हो सकता है।

अस्तु, कर्म-प्रवाह की भले ही आदि न हो, परन्तु समय-समय पर बंधने वाले कर्मों की आदि है, इसलिए आत्मा उनसे मुक्त भी हो सकता है। प्रतिक्षण आत्मा पुराने कर्मों से छुटकारा पाता भी है—भले ही उसी क्षण नये कर्मों को बांध ले, इससे यह कहना नितान्त गलत है कि वह बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। भले ही कर्म-वन्ध अनादि से है, परन्तु संवर और निर्जरा की अथवा वीतराग-भाव की साधना से उनका अन्त किया जा सकता है।

वन्ध के कारण

आगम-वाङ्मय में कर्म-वन्ध का मूल कारण राग-द्वेष को माना है। योग—मन, वचन और काय-योग में जब स्पन्दन होता है, क्रिया होती है, गति होती है, तब कार्मण-वर्गणा के पुद्गल आते हैं। कर्म के आने के द्वार को आस्रव कहा है। इसलिए शुभ-योग अथवा शुभ-प्रवृत्ति और अशुभ-योग अथवा अशुभ-प्रवृति दोनों कर्म के आगमन का द्वार हैं। इससे कर्म आते अवश्य हैं, परन्तु केवल योगों की प्रवृत्ति से उनका आत्म-प्रदेशों के साथ वन्ध नहीं होता। आगमों में प्रकृति-वन्ध, प्रदेश-बन्ध, अनुभाग (रस) बन्ध और स्थिति-वन्ध यह चार प्रकार का वन्ध वताया है। आस्रव से आने वाले कर्म ज्ञानावरण आदि किस प्रकृति (स्वभाव) के हैं और उनके अनन्त परमाणुओं से निर्मित स्कन्ध कितने प्रदेश के हैं—यह दो प्रकार का वन्ध योगों में होने वाले स्पन्दन एवं प्रवृत्ति से होता है। परन्तु वे शुभ या अशुभ, तीव्र या मन्द किस तरह के रस के हैं और कितने काल तक आत्म-प्रदेशों को आवृत कर रहने वाले हैं, यह वन्ध प्रवृत्ति के साथ राग-द्वेषात्मक परिणामों से होता है और इसी को आगम में वन्ध कहा है। इस दृष्टि से आगम में राग-द्वेष अथवा कषाय और योग को वन्ध का हेतु कहा है। इसी का विस्तृत रूप है—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, ये पाँच भेद। राग-द्वेष या कषाय मिथ्यात्व गुणस्थान (प्रथम गुणस्थान) से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुण-

स्थान (दसवें गुणस्थान) तक रहता है। मिथ्यात्व गुणस्थान में राग (माया-लोभ) और द्वेष (क्रोध-मान) तीव्रतम रहता है। अव्रत एवं देश-व्रत सम्यक्दृष्टि में तीव्र कषाय रहता है। प्रमत्त-संयत में मन्द कषाय रहता है, अप्रमत्त में मन्दतर और आठवें से दसवें तक मन्दतम कषाय रहता है। एकादश गुणस्थान में कषाय पूर्णतः उपशान्त रहता है, उसका नाश नहीं होता, इसी कारण इस गुणस्थान को स्पर्श करने वाला साधक अवश्य ही नीचे गिरता है। परन्तु अष्टम गुणस्थान से कषायों का क्षय करते हुए क्षपक श्रेणी से गुणस्थानों का आरोहण करने वाला साधक दसवें से सीधा बारहवें गुणस्थान को स्पर्श करके त्रयोदश गुणस्थान में पूर्णतः वीतराग-भाव में स्थित हो जाता है। अतः द्वादश एवं त्रयोदश दोनों गुणस्थानों में केवल योग रहता है, इसलिए योगों की प्रवृत्ति से केवल कर्म आते हैं और तत्क्षण झड़ जाते हैं, कषाय अथवा राग-द्वेष का अभाव होने से उनका वन्ध नहीं होता, प्रत्युत पूर्व आवद्ध कर्मों की निर्जरा होती है। और चतुर्दश गुणस्थान में योग का भी निरोध करके साधक अयोग अवस्था को प्राप्त होकर सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त हो जाता है, इसलिए इस गुणस्थान में कर्म का आगमन भी नहीं होता।

निष्कर्ष यह रहा कि वन्ध का कारण राग-द्वेष एवं कषाय युक्त परिणाम है। जब तक योगों का अस्तित्व है, तव तक प्रवृत्ति तो होगी ही। प्रवृत्ति योगों का स्वभाव है। वह कर्म-पुद्गलों को अपनी ओर आकर्षित करती है, परन्तु उनका आत्म-प्रदेशों के साथ वन्ध होता है कषाय-भाव से ही। अतः राग-भाव, कषाय-भाव वन्ध का कारण है, और वीतराग-भाव संसार-चक्र से, कर्म-वन्ध से मुक्त होने के कारण है। इसलिए संसार एवं वन्ध का अर्थ है—कषाय-भाव या राग-भाव में परिणत होना और मोक्ष या मुक्ति का अर्थ है—वीतराग-भाव में स्थित रहना, उसी में परिणत होना।

वन्ध एवं अवन्ध की इस प्रक्रिया को आगम एवं विशेषावश्यकभाष्य में एक रूपक के द्वारा समझाया गया है—एक व्यक्ति शरीर पर तेल लगाकर खड़ा होता या लेट जाता है, तो हवा के झोंके के साथ आने वाली मिट्टी उसके शरीर पर चिपक जाती है और दूसरा व्यक्ति विना तेल लगाये खुले आकाश में खड़ा होता है, उसके शरीर पर हवा के झोंके से मिट्टी लगती तो है, परन्तु चिपकती नहीं है। उत्तराध्ययनसूत्र में एक रूपक और दिया गया है—एक व्यक्ति मिट्टी के दो गोले—एक गीला और एक सूखा, दीवार पर फेंकता है, तो गीला गोला दीवार पर चिपक जाता है और सूखा गोला दीवार को स्पर्श तो करता है, परन्तु उस पर चिपकता नहीं है। एक उदाहरण और दिया जा सकता है—एक ईंट रखने के वाद उस पर दूसरी ईंट रखने के पूर्व प्रथम ईंट पर सीमेन्ट, चूना या गारा लगा दिया जाता है, तो वे ईंटें एक-दूसरी से भली-भाँति आवद्ध होकर दीवार का आकार ले लेती हैं, भव्य-भवन के रूप में साकार रूप ले लेती हैं। परन्तु यदि उनके मध्य में सीमेन्ट, चूना या गारा न लगाया जाए, तो वे ईंटें परस्पर आवद्ध होकर दीवार या भवन का रूप नहीं ले सकतीं। एक ही झटके में गिर सकती हैं या गिरायी जा सकती हैं।

यही स्थिति कर्म-वन्ध की है। जिस व्यक्ति के परिणामों में राग-द्वेष एवं कषाय-भाव की स्निग्धता (चिकनाहट) है, वही कर्म-रज से आवद्ध होता है। अलग-थलग रही हुई दो ईंटों को परस्पर आवद्ध करने की क्षमता सीमेण्ट की चिकनाहट में ही है। यदि साधक के परिणामों में कषायों का चिकनापन न हो तो कोई कारण नहीं कि कर्म उसे बांध ले। मिट्टी का गीला गोला ही दीवार पर चिपकता है। कषाय-भाव एवं राग-भाव के गीलेपन से रहित वीतराग-भाव में स्थित साधक कदापि कर्म से आवद्ध नहीं होता।

इस प्रकार जैन-धर्म का कर्म-सिद्धान्त वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक पद्धति से किया गया विश्लेषण है। व्यक्ति का निर्माता उसका कार्य नहीं, उसके परिणाम हैं, विचार हैं, चिन्तन है। व्यक्ति जैसा बना है, जिस रूप में बन रहा है और भविष्य में जिस रूप का बनेगा, वह परिणाम के साँचे में ही ढल कर बना है और बनेगा। अपने परिणामों से ही वह बँधा है, और अपने परिणामों से ही मुक्त होगा। परिणामों की, भावों की, विचारों की राग-द्वेष युक्त अशुद्ध पर्याय अथवा आध्यात्मिक भाषा में कहूँ तो विभाव-पर्याय बन्ध का कारण है और राग-द्वेष से रहित वीतराग-भाव की शुद्ध-विशुद्ध एवं परम-शुद्ध पर्याय मुक्ति का कारण है। यदि एक शब्द में कहूँ तो **'राग-भाव संसार है, और वीतराग-भाव मोक्ष है।'** अस्तु मन (परिणाम) ही बन्ध का कारण है और मन ही मुक्ति का हेतु है—

'मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्ध-मोक्षयोः'

संवर और निर्जरा

कर्म के आने का द्वार आस्रव है। जब तक आस्रव का द्वार खुला रहेगा, तब तक कर्म-प्रवाह भी आता रहेगा। व्यक्ति पूर्व के आबद्ध कर्मों का विपाक भोगकर उसे आत्म-प्रदेशों से अलग करने के साथ नये कर्मों को बाँध लेता है। इसलिए बन्ध से मुक्त होने के लिए सर्वप्रथम आस्रव के द्वार को रोकना आवश्यक है। इस साधना को संवर कहा है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग—ये पाँच आस्रव हैं, इसके विपरीत सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय और शुद्धोपयोग संवर है। स्व-स्वरूप का बोधरूप सम्यक्-ज्ञान और उस पर श्रद्धा एवं निष्ठा होना सम्यक्-दर्शन है, इसे सम्यक्त्व भी कहते हैं। व्रत का अर्थ है—स्व-स्वरूप से भिन्न पर-पदार्थों में आसक्त नहीं रहना, केवल पदार्थों का नहीं, परन्तु अज्ञानवश उस पर रहे हुए ममत्व का त्याग करना, पर-पदार्थों की तृष्णा एवं आकांक्षा का परित्याग करना। अपने स्वरूप में जागृत रहकर विवेकपूर्वक गति करना अप्रमाद है और क्रोध, मान, माया और लोभ का प्रसंग उपस्थित होने पर भी इस वैभाविक परिणति में नहीं बहना अथवा कषायों को उदित नहीं होने देना अकषाय-भाव है। शुद्धोपयोग का अर्थ है—राग-द्वेष एवं शुभ और अशुभ भावों से ऊपर उठकर अपने स्वभाव अथवा वीतराग-भाव में परिणत रहना। इस प्रकार साधक जब अपने विशुद्ध स्वरूप को अनावृत करने के लिए संवर की साधना में स्थित होता है, तब वह नये कर्मों का बन्ध नहीं करता। आस्रव के द्वार को संवर द्वारा रोक देने का तात्पर्य है—कर्म-बन्ध की परम्परा को रोक देना।

संवर की साधना से साधक कर्म-प्रवाह को अवरुद्ध करता है, और फिर निर्जरा की साधना से पूर्वआबद्ध कर्मों का क्षय करता है। आगम में निर्जरा के लिए तप-साधना को महत्वपूर्ण बताया है। जिस प्रकार स्वर्ण पर लगे हुए मल को दूर करने के लिए उसे अग्नि में डालकर, तपाकर शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार तप की अग्नि के द्वारा साधक कर्म-मल को जलाकर नष्ट कर देता है। आगम में तप दो प्रकार का बताया गया है—बाह्य-तप और आभ्यन्तर-तप। अनशन, ऊणोदर्य, रस-परित्याग, भिक्षाचरी, परिसंलीनता और काया-क्लेश—ये छह प्रकार के बाह्य-तप हैं। विनय, वैयावृत्य (सेवा-शुश्रूषा) प्रायश्चित्त, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग—ये छह आभ्यन्तर-तप हैं। तप-साधना से पूर्व-आबद्ध कर्मों का क्षय होता है। तप-साधना निर्जरा का एक साधन है। मुख्यता है, उसमें स्व-स्वरूप में रमणरूप परिणामों की, पदार्थों के प्रति रही हुई आसक्ति एवं व्यामोह के

त्यागमय भावना की। इसलिए श्रमण भगवान महावीर ने तप की परिभाषा करते हुए कहा है—इच्छा (आकांक्षा एवं तृष्णा) का निरोध करना, उनका क्षय करना ही तप है—

'इच्छा निरोधो तपः।'

पदार्थों के प्रति मन में जो राग-भाव है, उसी से इच्छा एवं तृष्णा का भाव जागृत होता है, अनुकूल प्रतीत होने वाले पदार्थों को प्राप्त करने की एवं अप्राप्त भोगों को तथा भोग्य पदार्थों को भोगने की कामना उद्बुद्ध होती है। यह रागमय मनोवृत्ति ही बन्ध का कारण है। इसलिए इस इच्छा एवं आकांक्षा की मनोवृत्ति को रोकना, उसका निरोध करना तप है। तप का अर्थ है—तपाना, परन्तु मात्र शरीर एवं इन्द्रियों को नहीं, मनोविकारों को, भोगेच्छा को, वासना को तपाना है। जिस साधना के द्वारा इच्छा, तृष्णा, वासना एवं कामना नष्ट होती है और साधक निष्काम-भाव से साधना में संलग्न होता है, स्व-स्वरूप में परिणमन करता है, वह तप है, और वह निर्जरा का कारण है। इस साधना से एक भव के एवं वर्तमान भव के ही नहीं, पूर्व के अनेक भवों में आबद्ध कर्मों का भी एक क्षण में नाश हो जाता है। इसके लिए यह रूपक दिया गया है कि हजारों मन घास का ढेर एक प्रज्वलित चिनगारी के डालते ही जिस प्रकार कुछ ही क्षणों में जलकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सम्यक्ज्ञानपूर्वक की गई तप-साधना से करोड़ों भवों के आबद्ध कर्मों को क्षय होते देर नहीं लगती।

बन्ध और मोक्ष के स्वरूप को आगम-साहित्य में सरोवर के रूपक द्वारा समझाया है—तालाब में नालों के द्वारा वर्षा का पानी आता है, और वह उसमें संग्रहीत हो जाता है। पहले आया हुआ पानी काम में आता रहता है, और नया पानी पुनः आकर उस सरोवर को भरा हुआ रखता है। यदि उसके नालों को बन्द कर दिया जाए, तो नया पानी उसमें आएगा नहीं, और पहले का आया हुआ पानी काम में लेने से खाली हो जाएगा या खाली कर दिया जाए तो सरोवर सूख जाएगा। इस प्रकार आस्रव कर्म रूप पानी के आने का नाला है और उससे आगत कर्मों का बन्ध के द्वारा आत्म-प्रदेशों के साथ बन्ध होता है। संवर कर्म आने के स्रोत को रोकने की साधना है, जिससे नये कर्मों का बन्ध रुक जाएगा और पूर्व के आबद्ध कर्मों की तप-साधना से निर्जरा करके साधक कर्म-बन्धन से पूर्ण मुक्त हो जाएगा। इस प्रकार आस्रव और बन्ध ये दो तत्त्व संसार परि-भ्रमण के कारण हैं, और संवर एवं निर्जरा ये दो तत्त्व मुक्ति के कारण हैं।
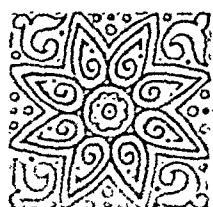
जैन-दर्शन में मिथ्यात्व और सम्यक्त्व : एक तुलनात्मक विवेचन

✡ डा० सागरमल जैन एम. ए., पी-एच. डी. ✡

मिथ्यात्व का अर्थ

सामान्यतया जैनागमों में अज्ञान और अयथार्थ ज्ञान दोनों के लिए मिथ्यात्व शब्द का प्रयोग हुआ है। यही नहीं किन्हीं सन्दर्भों में अज्ञान, अयथार्थ ज्ञान, मिथ्यात्व और मोह समानार्थक रूप में प्रयुक्त भी हुए हैं। यहाँ पर हम अज्ञान शब्द का प्रयोग एक विस्तृत अर्थ में कर रहे हैं जिसमें उसके उपरोक्त सभी अर्थ समाहित हैं। नैतिक दृष्टि से अज्ञान नैतिक-आदर्श के ज्ञान का अभाव और शुभाशुभ विवेक की कमी को अभिव्यक्त करता है। जब तक प्राणी को स्व-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है अर्थात् मैं क्या हूँ ? मेरा आदर्श क्या है ? या मुझे क्या प्राप्त करना है ? तब तक वह नैतिक जीवन में प्रविष्ट ही नहीं हो सकता। जैन विचारक कहते हैं कि जो आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता, जड़ पदार्थों के स्वरूप को नहीं जानता, वह क्या संयम की आराधना (नैतिक साधना) करेगा ?[1]

ऋषिभाषित सूत्र में तरुण साधक अर्हत गाथापतिपुत्र कहते हैं—अज्ञान ही बहुत बड़ा दुःख है। अज्ञान से ही भय का जन्म होता है। समस्त देहधारियों के लिए भव-परम्परा का मूल विविध रूपों में व्याप्त अज्ञान ही है। जन्म-जरा और मृत्यु, भय-शोक, मान और अपमान सभी जीवात्मा के अज्ञान से उत्पन्न हुए हैं। संसार का प्रवाह (संतति) अज्ञानमूलक है।[2]

भारतीय नैतिक चिन्तन में मात्र कर्मों की शुभाशुभता पर ही विचार नहीं किया गया वरन् यह भी जानने का प्रयास किया गया कि कर्मों की शुभाशुभता का कारण क्या है। क्यों एक व्यक्ति अशुभ कृत्यों की ओर प्रेरित होता है और क्यों दूसरा व्यक्ति शुभकृत्यों की ओर प्रेरित होता है ? गीता में अर्जुन यह प्रश्न उठाता है कि हे कृष्ण ! नहीं चाहते हुए भी किसकी प्रेरणा से प्रेरित हो, यह पुरुष पापकर्म में नियोजित होता है।[3]

जैन-दर्शन के अनुसार इसका जो प्रत्युत्तर दिया जा सकता है, वह यह है कि मिथ्यात्व ही अशुभ की ओर प्रवृत्ति करने का कारण है।[4] बुद्ध का भी कथन है कि मिथ्यात्व ही अशुभाचरण और सम्यक्दृष्टि ही सदाचरण का कारण है[5]। गीता का उत्तर है रजोगुण से उत्पन्न काम ही ज्ञान को आवृत कर व्यक्ति को बलात् पापकर्म की ओर प्रेरित करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध, जैन और गीता के आचार-दर्शन इस सम्बन्ध में एक मत हैं—अनैतिक आचरण के मार्ग में प्रवृत्ति का कारण व्यक्ति का मिथ्या दृष्टिकोण ही है।

---

१ दशवैकालिक ४।१२

२ इसिभासियाइं सुत्तं गहावइज्जं नामज्झयणं

३ गीता ३।३६

४ इसिभसियाइं सुत्तं २१।३

५ अंगुत्तरनिकाय १।१७
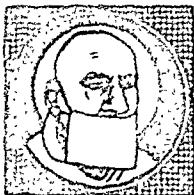
मिथ्यात्व क्या है ?

जैन विचारकों की दृष्टि में वस्तुतत्त्व का अपने यथार्थस्वरूप में बोध नहीं होना, यही मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व लक्ष्य विमुखता है, तत्त्वरुचि का अभाव है, सत्य के प्रति जिज्ञासा या अभीप्सा का अभाव है। बुद्ध ने अविद्या को वह स्थिति माना है जिसके कारण व्यक्ति परमार्थ को सम्यक्रूप से नहीं जान पाता है। बुद्ध कहते हैं—"आस्वाद दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है, यही अविद्या है।"[6] मिथ्या स्वभाव को स्पष्ट करते हुए बुद्ध कहते हैं 'जो मिथ्या दृष्टि है—मिथ्या समाधि है—इसी को मिथ्या स्वभाव कहते हैं।'[7] मिथ्यात्व को हम एक ऐसा दृष्टिकोण कह सकते हैं जो सत्यता की दिशा से विमुख है। संक्षेप में मिथ्यात्व असत्याभिरुचि है, राग और द्वेष के कारण दृष्टिकोण का विकृत हो जाना है।

जैन-दर्शन में मिथ्यात्व के प्रकार

पूज्यपाद देवनन्दी ने मिथ्यात्व को उत्पत्ति की दृष्टि से दो प्रकार का बताया है :

१. नैसर्गिक (अनर्जित)—जो मिथ्यात्व मोहकर्म के उदय से होता है, वह नैसर्गिक मिथ्यात्व है।

२. परोपदेशपूर्वक–जो मिथ्या धारणा वाले लोगों के उपदेश से स्वीकार किया जाता है। अतः यह अर्जित या परोपदेशपूर्वक मिथ्यात्व है।

यह अर्जित मिथ्यात्व चार प्रकार का है—

(अ) क्रियावादी—आत्मा को कर्ता मानना

(ब) अक्रियावादी—आत्मा को अकर्ता मानना

(स) अज्ञानी—सत्य की प्राप्ति को सम्भव नहीं मानना

(द) वैनयिक—रूढ़-परम्पराओं को स्वीकार करना।

स्वरूप की दृष्टि से जैनागमों में मिथ्यात्व पाँच प्रकार का भी माना गया है।"[8]

१. एकान्त—जैनतत्त्वज्ञान में वस्तुतत्व को अनन्तधर्मात्मक माना गया है। उसमें समान जाति के अनन्त गुण ही नहीं होते हैं वरन् विरोधी गुण भी समाहित होते हैं। अतः वस्तु-तत्त्व का एकांगी ज्ञान उसके सन्दर्भ में पूर्ण सत्य को प्रकट नहीं करता। वह आंशिक सत्य होता है, पूर्ण सत्य नहीं। आंशिक सत्य को जब पूर्ण सत्य मान लिया जाता है तो वह मिथ्यात्व हो जाता है। न केवल जैन विचारणा वरन् बौद्ध विचारणा में भी एकान्तिक ज्ञान को मिथ्या कहा गया है। बुद्ध कहते हैं—"भारद्वाज ! सत्यानुरक्षक विज्ञ पुरुष को एकांश से ऐसी निष्ठा करना योग्य नहीं है कि यही सत्य है और बाकी सब मिथ्या है।" बुद्ध इस सारे कथानक में इसी बात पर बल देते हैं कि सापेक्षिक कथन के रूप में ही सत्यानुरक्षण होता है, अन्य प्रकार से नहीं[9]। उदान में भी बुद्ध ने कहा है—जो एकांतदर्शी हैं वे ही विवाद करते हैं[10]। इस प्रकार बुद्ध ने भी एकांत को मिथ्यात्व माना है।

२. विपरीत—वस्तुतत्त्व का उसके स्व-स्वरूप के रूप में ग्रहण नहीं कर उसके विपरीत रूप

---

६ संयुतनिकाय २१।३।३।८

७ संयुत्तनिकाय ४३।३।१

८ तत्त्वार्थ० सर्वार्थसिद्धि टीका–(पूज्यपाद) ८।१

९ मज्झिमनिकाय चंकिसुत्त उद्धृत महायान, पृ० १२५,

१० उदान ६।४

में ग्रहण करना भी मिथ्यात्व है। प्रश्न हो सकता है कि जब वस्तुतत्त्व अनन्तधर्मात्मक है और उसमें विरोधी धर्म भी रहे हुए हैं तो सामान्य व्यक्ति जिसका ज्ञान अंशग्राही है, इस विपरीत ग्रहण के दोष से बच नहीं सकता क्योंकि उसने वस्तुतत्त्व के जिस पक्ष को ग्रहण किया उसका विरोधी धर्म भी उसमें उपस्थित है। अतः उसका समस्त ग्रहण विपरीत ही होगा; लेकिन इस विचार में एक भ्रान्ति है और वह यह है कि यद्यपि वस्तु अनन्तधर्मात्मक है लेकिन यह तो निरपेक्ष कथन है। एक अपेक्षा की दृष्टि से या जैन पारिभाषिक दृष्टि से कहें तो एक ही नय से वस्तुतत्त्व में दो विरोधी धर्म नहीं होते हैं, उदाहरणार्थ—एक ही अपेक्षा से आत्मा को नित्य और अनित्य नहीं माना जाता है। आत्मा द्रव्यार्थिक-दृष्टि से नित्य है तो पर्यायार्थिक-दृष्टि से अनित्य है। अतः आत्मा को पर्यायार्थिक दृष्टि से भी नित्य मानना, यह विपरीत ग्रहण मिथ्यात्व है। बुद्ध ने भी विपरीत ग्रहण को मिथ्या दृष्टित्व माना है और विभिन्न प्रकार के विपरीत ग्रहणों को स्पष्ट किया है।[११] गीता में भी विपरीत ग्रहण को अज्ञान कहा गया है। अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म के रूप में मानने वाली बुद्धि को गीता में तामस कहा गया है (१८।३२)।

३. **वैनयिक**—बिना बौद्धिक गवेषणा के परम्परागत तथ्यों, धारणाओं, नियमोपनियमों को स्वीकार कर लेना, वैनयिक मिथ्यात्व है। यह एक प्रकार की रूढ़िवादिता है। वैनयिक मिथ्यात्व को बौद्ध-परम्परा की दृष्टि से शीलव्रत परामर्श भी कहा जा सकता है। इसे क्रियाकाण्डात्मक मनोवृत्ति भी कहा जा सकता है। गीता में इस प्रकार के केवल रूढ़ व्यवहार की निन्दा की गई है। गीता कहती है ऐसी क्रियाएँ जन्म-मरण को बढ़ाने वाली और त्रिगुणात्मक होती है।[१२]

४. **संशय**—संशयावस्था को भी जैन विचारणा में मिथ्यात्व माना गया है। यद्यपि जैन दार्शनिकों की दृष्टि में संशय को नैतिक विकास की दृष्टि अनुपादेय माना गया है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि जैन विचारकों ने संशय को इस कोटि में रखकर उसके मूल्य को भुला दिया है। जैन विचारक भी आज के वैज्ञानिकों की तरह संशय को ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। प्राचीनतम जैनागम आचारांग सूत्र में कहा गया है "जो संशय को जानता है वही संसार के स्वरूप का परिज्ञाता होता है जो संशय को नहीं जानता वह संसार के स्वरूप का भी परिज्ञाता नहीं हो सकता[१३]। लेकिन जहाँ तक साधनात्मक जीवन का प्रश्न है हमें संशय से ऊपर उठना होगा। जैन विचारक आचार्य आत्मरामजी महाराज आचारांग सूत्र की टीका में लिखते हैं—"संशय ज्ञान कराने में सहायक है परन्तु यदि वह जिज्ञासा की सरल भावना का परित्याग करके केवल सन्देह करने की कुटिल वृत्ति अपना लेता है, तो वह पतन का कारण बन जाता है।"[१४] संशयावस्था वह स्थिति है जिसमें प्राणी सत् और असत् की कोई निश्चित धारणा नहीं रखता है। सांशयिक अवस्था अनिर्णय की अवस्था है। सांशयिक ज्ञान सत्य होते हुए भी मिथ्या ही होगा। नैतिक दृष्टि से ऐसा साधक कब पथ-भ्रष्ट हो सकता है यह नहीं कहा जा सकता। वह तो लक्ष्योन्मुखता और लक्ष्यविमुखता के मध्य हिण्डोले की भाँति झूलता हुआ अपना समय व्यर्थ करता है। गीता भी यही कहती है कि संशय की अवस्था में लक्ष्य प्राप्त नहीं होता। संशयी आत्मा विनाश को ही प्राप्त होता है।[१५]

---

११ अंगुत्तरनिकाय १।११
१२ गीता २।४२-४५
१३ आचारांग १।५।१।१४४
१४ आचारांग, हिन्दी टीका, प्रथम भाग, पृ० ४०६
१५ गीता ४।४०

५. अज्ञान—जैन विचारकों ने अज्ञान को पूर्वाग्रह, विपरीत ग्रहण, संशय और एकान्तिक ज्ञान से पृथक् माना है। उपरोक्त चारों मिथ्यात्व के विधायक पक्ष कहे जा सकते हैं; क्योंकि इनमें ज्ञान तो उपस्थित है लेकिन वह अयथार्थ है। इनमें ज्ञानाभाव नहीं वरन् ज्ञान की अयथार्थता है; जबकि अज्ञान ज्ञानाभाव है। अतः वह मिथ्यात्व का निषेधात्मक पक्ष प्रस्तुत करता है। अज्ञान नैतिक साधना का सबसे अधिक बाधक तत्त्व है क्योंकि ज्ञानाभाव में व्यक्ति को अपने लक्ष्य का भान नहीं हो सकता है, न वह कर्तव्याकर्तव्य का विचार कर सकता है। शुभाशुभ में विवेक करने की क्षमता का अभाव अज्ञान ही है। ऐसे अज्ञान की अवस्था में नैतिक आचरण सम्भव नहीं होता।

मिथ्यात्व के २५ प्रकार

मिथ्यात्व के २५ भेदों का विवेचन हमें प्रतिक्रमण सूत्र में प्राप्त होता है जिनमें से १० भेदों का विवेचन स्थानांग सूत्र में है, मिथ्यात्व के शेष भेदों का विवेचन मूलागम ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरा हुआ मिलता है।

(१) धर्म को अधर्म समझना।
(२) अधर्म को धर्म समझना।
(३) संसार (बन्धन) के मार्ग को मुक्ति का मार्ग समझना।
(४) मुक्ति के मार्ग को बन्धन का मार्ग समझना।
(५) जड़ पदार्थों को चेतन (जीव) समझना।
(६) आत्मतत्त्व (जीव) को जड़ पदार्थ (अजीव) समझना।
(७) असम्यक् आचरण करने वालों को साधु समझना।
(८) सम्यक् आचरण करने वालों को असाधु समझना।
(९) मुक्तात्मा को बद्ध मानना।
(१०) राग-द्वेष से युक्त को मुक्त समझना[१६]।

(११) आभिग्रहिक मिथ्यात्व—परम्परागत रूप में प्राप्त धारणाओं को बिना समीक्षा के अपना लेना अथवा उनसे जकड़े रहना।

(१२) अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व—सत्य को जानते हुए भी उसे स्वीकार नहीं करना अथवा सभी मतों को समान मूल्य वाला समझना।

(१३) आभिनिवेशिक मिथ्यात्व—अभिमान की रक्षा के निमित्त असत्य मान्यता को हठपूर्वक पकड़े रहना।

(१४) सांशयिक मिथ्यात्व—संशयशील बने रहकर सत्य का निश्चय नहीं कर पाना।

(१५) अनाभोग मिथ्यात्व—विवेक अथवा ज्ञानक्षमता का अभाव।

(१६) लौकिक मिथ्यात्व—लोक रूढ़ि में अविचारपूर्वक बँधे रहना।

(१७) लोकोत्तर मिथ्यात्व—पारलौकिक उपलब्धियों के निमित्त स्वार्थवश धर्म साधना करना।

(१८) कुप्रवचन मिथ्यात्व—मिथ्या दार्शनिक विचारणाओं को स्वीकृत करना।

(१९) न्यून मिथ्यात्व—पूर्ण सत्य अथवा तत्त्व स्वरूप को आंशिक सत्य समझ लेना अथवा न्यून मानना।

---

१६ स्थानांग, स्थान १०। तुलना कीजिए—अंगुत्तरनिकाय १।१०-१२

(२०) अधिक मिथ्यात्व—आंशिक सत्य को उससे अधिक अथवा पूर्ण सत्य समझ लेना।

(२१) विपरीत मिथ्यात्व—वस्तुतत्त्व को उसके विपरीत रूप में समझना।

(२२) अक्रिया मिथ्यात्व—आत्मा को एकान्तिक रूप से अक्रिय मानना अथवा सिर्फ ज्ञान को महत्व देकर आचरण के प्रति उपेक्षा रखना।

(२३) अज्ञान मिथ्यात्व—ज्ञान अथवा विवेक का अभाव।

(२४) अविनय मिथ्यात्व—पूज्य वर्ग के प्रति समुचित सम्मान का प्रकट न करना अथवा उनकी आज्ञाओं का परिपालन नहीं करना। पूज्यबुद्धि और विनीतता का अभाव अविनय मिथ्यात्व है।

(२५) असातना मिथ्यात्व—पूज्य वर्ग की निन्दा और आलोचना करना।

अविनय और असातना को मिथ्यात्व इसलिए कहा गया है कि इनकी उपस्थिति से व्यक्ति गुरुजनों का यथोचित सम्मान नहीं करता है और फलस्वरूप उनसे मिलने वाले यथार्थता के बोध से वंचित रहता है।

बौद्ध-दर्शन में मिथ्यात्व के प्रकार

महात्मा बुद्ध ने सद्धर्म का विनाश करने वाली कुछ धारणाओं का विवेचन अंगुत्तरनिकाय[१७] में किया है जो कि जैन विचारणा के मिथ्यात्व की धारणा के बहुत निकट है। तुलना की दृष्टि से हम उनकी संक्षिप्त सूची प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसके आधार पर यह जाना जा सके कि दोनों विचार परम्पराओं का इस सम्बन्ध में कितना अधिक साम्य है।

१. धर्म को अधर्म बताना।
२. अधर्म को धर्म बताना।
३. भिक्षु अनियम (अविनय) को भिक्षुनियम (विनय) बताना।
४. भिक्षु नियम को अनियम बताना।
५. तथागत (बुद्ध) द्वारा अभाषित को तथागत भाषित कहना।
६. तथागत द्वारा भाषित को अभाषित कहना।
७. तथागत द्वारा अनाचरित को आचरित कहना।
८. तथागत द्वारा आचरित को अनाचरित कहना।
९. तथागत द्वारा नहीं बनाए हुए (अप्रज्ञप्त) नियम को प्रज्ञप्त कहना।
१०. तथागत द्वारा प्रज्ञप्त (बनाए हुए नियम) को अप्रज्ञप्त बताना।
११. अनपराध को अपराध कहना।
१२. अपराध को अनपराध कहना।
१३. लघु अपराध को गुरु अपराध कहना।
१४. गुरु अपराध को लघु अपराध कहना।
१५. गम्भीर अपराध को अगम्भीर कहना।
१६. अगम्भीर अपराध को गम्भीर कहना।
१७. निर्विशेष अपराध को सविशेष कहना।

---

१७ अंगुत्तरनिकाय १।१०-१२

१८. सविशेष अपराध को निर्विशेष कहना।

१९. प्रायश्चित्त योग्य (सप्रतिकर्म) आपत्ति को प्रायश्चित्त के अयोग्य कहना।

२०. प्रायश्चित्त के अयोग्य (अप्रतिकर्म) आपत्ति को प्रायश्चित्त के योग्य (सप्रतिकर्म) कहना।

गीता में अज्ञान :

गीता के मोह, अज्ञान या तामसिक ज्ञान भी मिथ्यात्व कहे जा सकते हैं। इस आधार पर विचार करने से गीता में मिथ्यात्व का निम्न स्वरूप उपलब्ध होता है—

१. परमात्मा लोक का सर्जन करने वाला, कर्म का कर्ता एवं कर्मों के फल का संयोग करने वाला है अथवा वह किसी के पाप-पुण्य को ग्रहण करता है, यह मानना अज्ञान है (५-१४, १५)।

२. प्रमाद, आलस्य और निद्रा अज्ञान है (१४–८), धन परिवार एवं दान का अहंकार करना अज्ञान है (१६–१५), विपरीत ज्ञान के द्वारा क्षणभंगुर नाशवान शरीर में आत्म-बुद्धि रखना व उसमें सर्वस्व की भाँति आसक्त रहना जो कि तत्व-अर्थ से रहित और तुच्छ है, तामसिक ज्ञान है (१८–१२)। इसी प्रकार असद् का ग्रहण, अशुभ आचरण (१६–१०) और संशयात्मकता को भी गीता में अज्ञान कहा गया है।

पाश्चात्य-दर्शन में मिथ्यात्व का प्रत्यय

मिथ्यात्व यथार्थता के बोध का बाधक तत्त्व है। वह एक ऐसा रंगीन चश्मा है जो वस्तु-तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को प्रकट नष्ट कर व्यक्ति के समक्ष उसका अयथार्थ किंवा भ्रान्त स्वरूप ही प्रकट करता है। भारत ही नहीं, पाश्चात्य देशों के विचारकों ने भी यथार्थता या सत्य के जिज्ञासु को मिथ्या धारणाओं से परे रहने का संकेत किया है। पाश्चात्य-दर्शन के नवयुग के प्रतिनिधि फ्रांसिस बेकन शुद्ध और निर्दोष ज्ञान की प्राप्ति के लिए मानस को निम्न चार मिथ्या धारणाओं से मुक्त रखने का निर्देश करते हैं। चार मिथ्या धारणाएँ निम्न हैं—

(१) **जातिगत मिथ्या धारणाएँ** (Idola Tribus)—सामाजिक संस्कारों से प्राप्त मिथ्या धारणाएँ।

(२) **बाजारू मिथ्या विश्वास** (Idola Fori)—असंगत अर्थ आदि।

(३) **व्यक्तिगत मिथ्या विश्वास** (Idola Speces)—व्यक्ति के द्वारा बनाई गयीं मिथ्या धारणाएँ (पूर्वाग्रह)।

(४) **रंगमंच की भ्रान्ति** (Idola Theatri)—मिथ्या सिद्धान्त या मान्यताएँ।

वे कहते हैं—'इन मिथ्या विश्वासों (पूर्वाग्रहों) से मानस को मुक्त करके ही ज्ञान को यथार्थ और निर्दोष रूप में ही ग्रहण करना चाहिए।'[१८]

जैन-दर्शन में अविद्या का स्वरूप

जैन-दर्शन में अविद्या का पर्यायवाची शब्द मोह भी है। मोह आत्मा की सत् के सम्बन्ध में यथार्थ दृष्टि को विकृत कर उसे गलत मार्ग-दर्शन करता है और उसे असम्यक् आचरण के लिए

१८ हिस्ट्री आफ फिलॉसफी (थिली), पृ० २८७

ेरित करता है। परमार्थ और सत्य के सम्बन्ध में जो अनेक भ्रान्त धारणाएँ आती हैं एवं असदा-चरण होता है उनका आधार यही मोह है। मिथ्यात्व, मोह या अविद्या के कारण व्यक्ति की दृष्टि दूषित होती है और परिणामस्वरूप व्यक्ति की परम मूल्यों के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाएँ बन जाती हैं। वह उन्हें ही परम मूल्य मान लेता है जोकि वस्तुतः परम मूल्य या सर्वोच्च मूल्य नहीं होते हैं।

जैन-दर्शन में अविद्या और विद्या का अन्तर करते हुए समयसार में आचार्य कुन्दकुन्द बताते हैं कि जो पुरुष अपने से अन्य जो पर-द्रव्य सचित्त स्त्री-पुत्रादिक, अचित्त धनधान्यादिक, मिश्र ग्रामनगरादिक—इनको ऐसा समझे कि मेरे हैं, ये मेरे पूर्व में थे, इनका मैं भी पहले था तथा ये मेरे आगामी होंगे; मैं भी इनका आगामी होऊँगा ऐसा झूठा आत्म-विकल्प करता है वह मूढ़ है और जो पुरुष परमार्थ को जानता हुआ ऐसा झूठा विकल्प नहीं करता है, वह मूढ़ नहीं है, ज्ञानी है।[९]

जैन-दर्शन में अविद्या या मिथ्यात्व केवल आत्मनिष्ठ (Subjective) ही नहीं है, वरन् वह वस्तुनिष्ठ भी है। जैन-दर्शन में मिथ्यात्व का अर्थ है—ज्ञान का अभाव या विपरीत ज्ञान। उसमें एकान्त या निरपेक्ष दृष्टि को भी मिथ्यात्व कहा गया है। तत्त्व का सापेक्षिक ज्ञान ही सम्यक्ज्ञान है और एकान्तिक दृष्टिकोण मिथ्याज्ञान है। दूसरे, जैन-दर्शन में मिथ्यात्व अकेला ही बन्धन का कारण नहीं है। वह बन्धन का प्रमुख कारण होते हुए भी उसका सर्वस्व नहीं है। मिथ्या-दर्शन के कारण ज्ञान दूषित होता है और ज्ञान के दूषित होने से आचरण या चारित्र दूषित होता है। इस प्रकार मिथ्यात्व अनैतिक जीवन का प्रारम्भिक बिन्दु है और अनैतिक आचरण उसकी अन्तिम परिणति है। नैतिक जीवन के लिए मिथ्यात्व से मुक्त होना आवश्यक है, क्योंकि जब तक दृष्टि दूषित है, ज्ञान भी दूषित होगा और जब तक ज्ञान दूषित है तब तक आचरण भी सम्यक् या नैतिक नहीं हो सकता। नैतिक जीवन में प्रगति के लिए प्रथम शर्त है, मिथ्यात्व से मुक्त होना।

जैन-दार्शनिकों की दृष्टि में मिथ्यात्व की पूर्वकोटि का पता नहीं लगाया जा सकता, वह अनादि है, फिर भी वह अनन्त नहीं माना गया है। जैन-दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में कहें तो भव्य जीवों की अपेक्षा से मिथ्यात्व अनादि और सान्त है और अभव्य जीवों की अपेक्षा से वह अनादि और अनन्त है। आत्मा पर अविद्या या मिथ्यात्व का आवरण कब से है यह पता नहीं लगाया जा सकता है, यद्यपि अविद्या या मिथ्यात्व से मुक्ति पाई जा सकती है। एक ओर मिथ्यात्व का कारण अनैतिकता है तो दूसरी ओर अनैतिकता का कारण मिथ्यात्व है। इसी प्रकार सम्यक्त्व का कारण नैतिकता और नैतिकता का कारण सम्यक्त्व है। नैतिक आचरण के परिणामस्वरूप सम्यक्त्व या यथार्थ दृष्टिकोण का उद्भव होता है और सम्यक्त्व या यथार्थ दृष्टिकोण के कारण नैतिक आचरण होता है।

बौद्ध-दर्शन में अविद्या का स्वरूप

बौद्ध-दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रथम कड़ी अविद्या ही मानी गयी है। अविद्या से उत्पन्न व्यक्तित्व ही जीवन का मूलभूत पाप है। जन्म-मरण की परम्परा और दुःख का मूल यही अविद्या है। जिस प्रकार जैन-दर्शन में मिथ्यात्व की पूर्वकोटि नहीं जानी जा सकती, उसी प्रकार बौद्ध-दर्शन में भी अविद्या की पूर्वकोटि नहीं जानी जा सकती है। यह एक ऐसी सत्ता है जिसको समझ सकना कठिन है। हमें बिना अधिक गहराइयों में उतरे इसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेना पड़ेगा। अविद्या समस्त जीवन की पूर्ववर्ती आवश्यक अवस्था है, इसके पूर्व कुछ नहीं; क्योंकि जन्म-

---

९ समयसार २१–२२।

दर्शन में माया जगत की व्याख्या और उसकी उत्पत्ति का सिद्धान्त है, जबकि अविद्या वैयक्तिक आसक्ति है।

समीक्षा

वेदान्त-दर्शन में माया एक अर्ध सत्य है जबकि तार्किक दृष्टि से माया या तो सत्य हो सकती है या असत्य। जैन-दार्शनिकों के अनुसार सत्य सापेक्षिक अवश्य हो सकता है लेकिन अर्ध सत्य (Half Truth) ऐसी कोई अवस्था नहीं हो सकती है। यदि अद्वय परमार्थ को नानारूपात्मक मानना यह अविद्या है तो जैन दार्शनिकों को यह दृष्टिकोण स्वीकार नहीं है। यद्यपि जैन, बौद्ध और वैदिक परम्पराएँ अविद्या की इस व्याख्या में एकमत हैं कि अविद्या या मोह का अर्थ अनात्म में आत्मबुद्धि है।

उपसंहार

अज्ञान, अविद्या या मोह की उपस्थिति ही हमारी सम्यक् प्रगति का सबसे बड़ा अवरोध है। हमारे क्षुद्र व्यक्तित्व और परमात्मत्व के बीच सबसे बड़ी बाधा है। उसके हटते ही हम अपने को अपने में ही उपस्थित कर परमात्मा के निकट खड़ा पाते हैं। फिर भी प्रश्न है कि इस अविद्या या मिथ्यात्व से मुक्ति कैसे हो? वस्तुत: अविद्या से मुक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं हम अविद्या या अज्ञान को हटाने का प्रयत्न करें क्योंकि उसके हटाने के सारे प्रयास वैसे ही निरर्थक होंगे जैसे कोई अन्धकार को हटाने के प्रयत्न करे। जैसे प्रकाश के होते ही अन्धकार स्वयं ही समाप्त हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान रूप प्रकाश या सम्यक् दृष्टि के उत्पन्न होते ही अज्ञान या अविद्या का अन्धकार समाप्त हो जाता है। आवश्यकता इस बात की नहीं है कि हम अविद्या या मिथ्यात्व को हटाने का प्रयत्न करें वरन् आवश्यकता इस बात की है कि हम सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान की ज्योति को प्रज्वलित करें ताकि अविद्या या अज्ञान का तमिस्र समाप्त हो जावे।

सम्यक्त्व

जैन-परम्परा में सम्यक्दर्शन, सम्यक्त्व या सम्यक्दृष्टित्व शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप में हुआ है। यद्यपि आचार्य जिनभद्र ने विशेषावश्यकभाष्य में सम्यक्त्व और सम्यक्-दर्शन के भिन्न-भिन्न अर्थों का निर्देश किया है।[२८] अपने भिन्न अर्थ में सम्यक्त्व वह है जिसकी उपस्थिति से श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र सम्यक् बनते हैं। सम्यक्त्व का अर्थ-विस्तार सम्यक्दर्शन से अधिक व्यापक है, फिर भी सामान्यतया सम्यक्दर्शन और सम्यक्त्व शब्द एक ही अर्थ में प्रयोग किए गए हैं। वैसे सम्यक्त्व शब्द में सम्यक्दर्शन निहित ही है।

सम्यक्त्व का अर्थ

सबसे पहले हमें इसे स्पष्ट कर लेना होगा कि सम्यक्त्व या सम्यक् शब्द का क्या अभिप्राय है। सामान्य रूप में सम्यक् या सम्यक्त्व शब्द सत्यता या यथार्थता का परिचायक है, उसे हम उचितता भी कह सकते हैं। सम्यक्त्व अर्थ तत्त्वरुचि[२९] है। इस अर्थ में सम्यक्त्व सत्याभिरुचि या

२८ विशेषावश्यकभाष्य

२९ अभिधान राजेन्द्र, खण्ड ५, पृष्ठ २४२५

सत्य की अभीप्सा है। दूसरे शब्दों में, इसको सत्य के प्रति जिज्ञासावृत्ति या मुमुक्षुत्व भी कहा जा सकता है। अपने दोनों ही अर्थों में सम्यक्दर्शन या सम्यक्त्व नैतिक जीवन के लिए आवश्यक है। जैन नैतिकता का चरम आदर्श आत्मा के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि है, लेकिन यथार्थ की उपलब्धि भी तो यथार्थ से सम्भव होगी, अयथार्थ से तो यथार्थ पाया नहीं जा सकता। यदि साध्य यथार्थता की उपलब्धि है तो साधन भी यथार्थ ही चाहिए। जैन विचारणा साध्य और साधन की एकरूपता में विश्वास करती है। वह यह मानती है कि अनुचित साधन से प्राप्त किया लक्ष्य भी अनुचित ही है, वह उचित नहीं कहा जा सकता। सम्यक् को सम्यक् से ही प्राप्त करना होता है। असम्यक् से जो भी मिलता है, पाया जाता है, वह भी असम्यक् ही होता है। अतः आत्मा के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि के लिए उन्होंने जिन साधनों का विधान किया उनका सम्यक् होना आवश्यक माना गया। वस्तुतः ज्ञान, दर्शन और चारित्र का नैतिक मूल्य उनके सम्यक् होने में समाहित है। जब ज्ञान, दर्शन और चारित्र सम्यक् होते हैं तो वे मुक्ति या निर्वाण के साधन बनते हैं। लेकिन यदि वे ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र मिथ्या होते हैं तो बन्धन का कारण बनते हैं। बन्धन और मुक्ति ज्ञान, दर्शन और चारित्र पर निर्भर नहीं वरन् उनकी सम्यक्ता और मिथ्यात्व पर आधारित है। सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग है जबकि मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र ही बन्धन का मार्ग है।

आचार्य जिनभद्र की धारणा के अनुसार यदि सम्यक्त्व का अर्थ तत्त्वरुचि या सत्याभीप्सा करते हैं तो सम्यक्त्व का नैतिक साधना में महत्त्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। नैतिकता की साधना आदर्शोन्मुख गति है लेकिन जिसके कारण वह गति है, साधना है, वह तो सत्याभीप्सा ही है। साधक में जब तक सत्याभीप्सा या तत्त्वरुचि जाग्रत नहीं होती तब तक वह नैतिक प्रगति की ओर अग्रसर ही नहीं हो सकता। सत्य की चाह या सत्य की प्यास ही ऐसा तत्त्व है जो उसे साधना मार्ग में प्रेरित करता है। जिसे प्यास नहीं, वह पानी की प्राप्ति का क्यों प्रयास करेगा? जिसमें सत्य की उपलब्धि की चाह (तत्त्वरुचि) नहीं वह क्यों साधना करने लगा? प्यासा ही पानी की खोज करता है। तत्त्वरुचि या सत्याभीप्सा से युक्त व्यक्ति ही आदर्श की प्राप्ति के निमित्त साधना के मार्ग पर आरूढ़ होता है। उत्तराध्ययन सूत्र में सम्यक्त्व के भेदों का विवेचन करते हुए दोनों अर्थों को समन्वित कर दिया गया है। ग्रन्थकर्ता की दृष्टि में यद्यपि सम्यक्त्व यथार्थता की अभिव्यक्ति करता है लेकिन यथार्थता जिस ज्ञानात्मक तथ्य के रूप में उपस्थित होती है, उसके लिए सत्याभीप्सा या रुचि आवश्यक है।

दर्शन का अर्थ

दर्शन शब्द भी जैनागमों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जीवादि पदार्थों के स्वरूप का देखना, जानना, श्रद्धा करना दर्शन कहा जाता है।[३०] सामान्यतया दर्शन शब्द देखने के अर्थ में व्यवहार किया जाता है लेकिन यहाँ पर दर्शन शब्द का अर्थ मात्र नेत्रजन्य बोध नहीं है। उसमें इन्द्रियबोध, मनबोध और आत्मबोध सभी सम्मिलित हैं। दर्शन शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में जैन-परम्परा में काफी विवाद रहा है। दर्शन शब्द को ज्ञान से अलग करते हुए विचारकों ने दर्शन को अन्तर्बोध और ज्ञान को बौद्धिक ज्ञान कहा है।[३१] नैतिक जीवन की दृष्टि से विचार करने पर

---

३० अभि० रा०, खण्ड ५, पृष्ठ २४२५

३१ सम प्राब्लम्स इन जैन साइकोलाजी, पृष्ठ ३२

दर्शन शब्द का दृष्टिकोणपरक अर्थ किया गया है।[३२] दर्शन शब्द के स्थान पर दृष्टि शब्द का प्रयोग, उसके दृष्टिकोणपरक अर्थ का द्योतक है। प्राचीन जैन आगमों में दर्शन शब्द के स्थान पर दृष्टि शब्द का प्रयोग बहुलता से देखा जाता है। तत्त्वार्थसूत्र[३३] और उत्तराध्ययन सूत्र[३४] में दर्शन शब्द का अर्थ तत्त्वश्रद्धा माना गया है। परवर्ती जैन साहित्य में दर्शन शब्द का देव, गुरु और धर्म के प्रति श्रद्धा या भक्ति के अर्थ में भी व्यवहार किया गया है।[३५] इस प्रकार जैन-परम्परा में सम्यक्-दर्शन तत्त्व-साक्षात्कार, आत्म-साक्षात्कार, अन्तर्बोध, दृष्टिकोण, श्रद्धा और भक्ति आदि अर्थों को अपने में समेटे हुए है। इन पर थोड़ी गहराई से विचार करना अपेक्षित है।

क्या सम्यक्दर्शन के उपरोक्त अर्थ परस्पर विरोधी हैं ?

सम्यक्दर्शन शब्द के विभिन्न अर्थों पर विचार करने से पहले हमें यह देखना होगा कि इनमें से कौन-सा अर्थ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम था और उसके पश्चात् किन-किन ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण यही शब्द अपने दूसरे अर्थों में प्रयुक्त हुआ। प्रथमतः हम देखते हैं कि बुद्ध और महावीर के अपने समय में प्रत्येक धर्म-प्रवर्तक अपने सिद्धान्त को सम्यक्दृष्टि और दूसरे के सिद्धान्त को मिथ्यादृष्टि कहता था। बौद्धागमों में ६२ मिथ्यादृष्टियों एवं जैनागम सूत्रकृतांग में ३६३ मिथ्यादृष्टियों का विवेचन मिलता है। लेकिन वहाँ पर मिथ्यादृष्टि शब्द अश्रद्धा अथवा मिथ्याश्रद्धा के अर्थ में नहीं वरन् गलत दृष्टिकोण के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। बाद में जब यह प्रश्न उठा कि गलत दृष्टिकोण को किस सन्दर्भ में माना जावे, तो कहा गया कि जीव (आत्मतत्त्व) और जगत के सम्बन्ध में जो गलत दृष्टिकोण है, वही मिथ्यादर्शन या मिथ्यादृष्टि है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि से तात्पर्य हुआ आत्मा और जगत के स्वरूप के विषय में गलत दृष्टिकोण। उस युग में प्रत्येक धर्म-मार्ग का प्रवर्तक आत्मा और जगत के स्वरूप के विषय में अपने दृष्टिकोण को सम्यक् दृष्टिकोण अथवा सम्यक्दर्शन; और अपने विरोधी के दृष्टिकोण को मिथ्यादृष्टि अथवा मिथ्या-दर्शन कहता था। बाद में प्रत्येक सम्प्रदाय जीवन और जगत सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण पर विश्वास करने को सम्यक्दर्शन कहने लगा और जो लोग उसकी मान्यताओं के विपरीत मान्यता रखते थे उनको मिथ्यात्वी कहने लगा और उनकी मान्यता को मिथ्यादर्शन। इस प्रकार सम्यक्दर्शन शब्द तत्त्वार्थश्रद्धान (जीव और जगत के स्वरूप की) के अर्थ में अभिरूढ़ हुआ। लेकिन तत्त्वार्थश्रद्धान के अर्थ में भी सम्यक्दर्शन शब्द अपने मूल अर्थ से अधिक दूर नहीं हुआ था। यद्यपि उसकी भावना में दिशा बदल चुकी थी, उसमें श्रद्धा का तत्त्व प्रविष्ट हो गया था लेकिन वह श्रद्धा थी तत्त्व के स्वरूप की मान्यता के सन्दर्भ में। वैयक्तिक श्रद्धा का विकास बाद की बात थी। श्रमण-परम्परा में सम्यक्दर्शन का दृष्टिकोणपरक अर्थ ही ग्राह्य था जो बाद में तत्त्वार्थश्रद्धान के रूप में विकसित हुआ। यहाँ तक तो श्रद्धा में बौद्धिक पक्ष निहित था, श्रद्धा ज्ञानात्मक थी। लेकिन जैसे-जैसे भागवत सम्प्रदाय का विकास हुआ, उसका प्रभाव जैन और बौद्ध श्रमण परम्पराओं पर भी पड़ा। तत्त्वार्थ की श्रद्धा जब 'बुद्ध' और 'जिन' पर केन्द्रित होने लगी—वह ज्ञानात्मक से भावात्मक और निर्वैयक्तिक से वैयक्तिक बन गई। जिसने जैन और बौद्ध परम्पराओं में भक्ति के तत्त्व

---

३२ अभि० रा०, खण्ड ५, पृ० २४२५
३३ तत्त्वार्थ० १।२
३४ उत्तरा० २८।३५
३५ सामायिक सूत्र—सम्यक्त्व पाठ

का वपन किया।[36] मेरी अपनी दृष्टि में आगम एवं पिटक ग्रन्थों के संकलन एवं लिपिवद्ध होने तक यह सब कुछ हो चुका था। अतः आगम और पिटक ग्रन्थों में सम्यक्दर्शन के इन सभी अर्थों की उपस्थिति उपलब्ध होती है। वस्तुतः सम्यक्दर्शन का भाषाशास्त्रीय विवेचन पर आधारित यथार्थ दृष्टिकोणपरक अर्थ ही उसका प्रथम एवं मूल अर्थ है, लेकिन यथार्थ दृष्टिकोण तो मात्र वीतराग पुरुष का ही हो सकता है, जहाँ तक व्यक्ति राग और द्वेष से युक्त है उसका दृष्टिकोण यथार्थ नहीं हो सकता। इस अर्थ को स्वीकार करने पर यथार्थ दृष्टिकोण तो साधनावस्था में सम्भव नहीं होगा क्योंकि साधना की अवस्था सरागता की अवस्था है। साधक-आत्मा में तो राग और द्वेष दोनों की उपस्थिति होती है, साधक तो साधना ही इसलिए कर रहा है कि वह इन दोनों से मुक्त हो, इस प्रकार यथार्थ दृष्टिकोण तो मात्र सिद्धावस्था में होगा। लेकिन यथार्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता तो साधक के लिए है, सिद्ध को तो वह स्वाभाविक रूप में प्राप्त है। यथार्थ दृष्टिकोण के अभाव में व्यक्ति का व्यवहार एवं साधना सम्यक् नहीं हो सकती अथवा अयथार्थ दृष्टिकोण ज्ञान और जीवन के व्यवहार को सम्यक् नहीं बना सकता है। यहाँ एक समस्या उत्पन्न होती है। यथार्थ दृष्टिकोण का साधनात्मक जीवन में अभाव होता है और विना यथार्थ दृष्टिकोण के साधना हो नहीं सकती। यह समस्या हमें ऐसी स्थिति में डाल देती कि जहाँ हमें साधना-मार्ग की सम्भावना को ही अस्वीकृत करना होता है। यथार्थ दृष्टिकोण के बिना साधना सम्भव नहीं और यथार्थ दृष्टिकोण साधना-काल में हो नहीं सकता।

लेकिन इस धारणा में एक भ्रान्ति है, वह यह कि साधना मार्ग के लिए, दृष्टिकोण की यथार्थता के लिए, राग-द्वेष से पूर्ण विमुक्त दृष्टि का होना आवश्यक नहीं है, मात्र इतना आवश्यक है कि व्यक्ति अयथार्थता को जाने और उसके कारण जाने। ऐसा साधक यथार्थता को नहीं जानते हुए भी सम्यक्दृष्टि ही है, क्योंकि वह असत्य को असत्य मानता है और उसके कारण को जानता है अतः वह भ्रान्त नहीं है, असत्य के कारण को जानने के कारण वह उसका निराकरण कर सत्य को पा सकेगा। यद्यपि पूर्ण यथार्थ दृष्टि तो एक साधक व्यक्ति में सम्भव नहीं है, फिर भी उसकी राग-द्वेषात्मक वृत्तियों में जब स्वाभाविक रूप से कमी हो जाती है तो इस स्वाभाविक परिवर्तन के कारण पूर्वानुभूति और पश्चानुभूति में अन्तर ज्ञात होता है और इस अन्तर के कारण के चिन्तन में उसे दो बातें मिल जाती हैं—एक तो यह कि उसका दृष्टिकोण दूषित है और उसकी दृष्टि की दूषितता का अमुक कारण है। यद्यपि यहाँ सत्य तो प्राप्त नहीं होता लेकिन अपनी असत्यता और उसके कारण का बोध हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उसमें सत्याभीप्सा जाग्रत हो जाती है। यही सत्याभीप्सा उसे सत्य या यथार्थता के निकट पहुँचाती है और जितने अंश में वह यथार्थता के निकट पहुँचता है उतने ही अंश में उसका ज्ञान और चारित्र शुद्ध होता जाता है। ज्ञान और चारित्र की शुद्धता से पुनः राग और द्वेष में क्रमशः कमी होती है और उसके फलस्वरूप उसके दृष्टिकोण में और अधिक यथार्थता आ जाती है। इसी प्रकार क्रमशः व्यक्ति स्वतः ही साधना की चरम स्थिति में पहुँच जाता है। आवश्यकनिर्युक्ति में कहा गया है कि जल जैसे-जैसे स्वच्छ होता जाता है त्यों-त्यों द्रष्टा उसमें प्रतिविम्वित रूपों को स्पष्टतया देखने लगता है उसी प्रकार अन्तर में ज्यों-ज्यों तत्त्वरुचि जाग्रत होती है त्यों-त्यों तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होता जाता है।[37] इसे जैन परिभाषा में प्रत्येकबुद्ध (स्वतः ही यथार्थता को जानने वाले) का साधना-मार्ग कहते हैं।

---

३६ देखिए स्थानांग ५।२ उद्धृत—आत्म-साधना संग्रह, पृ० १४३

३७ आवश्यकनिर्युक्ति ११६३

लेकिन प्रत्येक सामान्य साधक यथार्थ दृष्टिकोण को इस प्रकार प्राप्त नहीं करता है और न उसके लिए यह सम्भव ही है; सत्य की स्वानुभूति का मार्ग कठिन है। सत्य को स्वयं जानने की विधि की अपेक्षा दूसरा सहज मार्ग है और वह यह कि जिन्होंने स्वानुभूति से सत्य को जानकर उसका जो भी स्वरूप बताया है, उसको मानकर चलना। इसे ही जैनशास्त्रकारों ने तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है अर्थात् यथार्थ दृष्टिकोण से युक्त वीतराग ने अपने यथार्थ दृष्टिकोण में सत्ता का जो स्वरूप प्रकट किया है, उसे स्वीकार कर लेना। मान लीजिए कोई व्यक्ति पित्त विकार से पीड़ित है, अब ऐसी स्थिति में वह किसी श्वेत वस्तु के यथार्थ ज्ञान से वंचित होगा। उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्राप्त करने के दो मार्ग हो सकते हैं। पहला मार्ग यह है कि उसकी बीमारी में स्वाभाविक रूप से जब कुछ कमी हो जावे और वह अपनी पूर्व और पश्चात् की अनुभूति में अन्तर पाकर अपने रोग को जाने और प्रयासों द्वारा उसे शान्त कर वस्तु के यथार्थस्वरूप का बोध पा जावे। दूसरी स्थिति में जब किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उसे यह बताया जावे कि वह श्वेत वस्तु को पीत वर्ण की देख रहा है। यहाँ पर इस स्वस्थ दृष्टि वाले व्यक्ति की बात को स्वीकार कर लेने पर भी उसे अपनी रुग्णावस्था या अपनी दृष्टि की दूषितता का ज्ञान हो जाता है और साथ ही वह वस्तुतत्त्व को यथार्थ रूप में जान भी लेता है।

सम्यक्दर्शन को चाहे यथार्थ दृष्टि कहें या तत्त्वार्थश्रद्धान उनमें वास्तविकता की दृष्टि से अन्तर नहीं होता है। अन्तर होता है उनकी उपलब्धि की विधि में। एक वैज्ञानिक स्वतः प्रयोग के आधार पर किसी सत्य का उद्घाटन करता है और वस्तुतत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जानता है। दूसरा व्यक्ति वैज्ञानिक के कथनों पर विश्वास करके भी वस्तुतत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जानता है। दोनों दशाओं में व्यक्ति का दृष्टिकोण यथार्थ ही कहा जायगा यद्यपि दोनों की उपलब्धि विधि में अन्तर है। एक ने उसे तत्त्व-साक्षात्कार या स्वतः की अनुभूति में पाया, तो दूसरे ने श्रद्धा के माध्यम से।

वस्तुतत्त्व के प्रति दृष्टिकोण की यथार्थता जिन माध्यमों से प्राप्त की जा सकती है, वे दो हैं—या तो व्यक्ति स्वयं तत्त्व-साक्षात्कार करे अथवा उन ऋषियों, साधकों के कथनों पर श्रद्धा करे जिन्होंने तत्त्व-साक्षात्कार किया है। तत्त्वश्रद्धा तो मात्र उस समय तक के लिए एक अनिवार्य विकल्प है जब तक साधक तत्त्व-साक्षात्कार नहीं कर लेता। अन्तिम स्थिति तो तत्त्व-साक्षात्कार की ही है। इस सम्बन्ध में पं० सुखलाल जी लिखते हैं—"तत्त्वश्रद्धा ही सम्यकदृष्टि हो तो भी वह अर्थ अन्तिम नहीं है, अन्तिम अर्थ तो तत्त्व-साक्षात्कार है। तत्त्वश्रद्धा तो तत्त्व-साक्षात्कार का एक सोपान मात्र है। वह सोपान दृढ़ हो तभी यथोचित पुरुषार्थ से तत्त्व का साक्षात्कार होता है।"[३८]

जैन आचार-दर्शन में सम्यक्दर्शन का स्थान

सम्यक्दर्शन जैन आचार-व्यवस्था का आधार है। नन्दीसूत्र में सम्यक्दर्शन को संघ रूपी सुमेरु पर्वत की अत्यन्त सुदृढ़ और गहन भूपीठिका (आधारशिला) कहा गया है जिस पर ज्ञान और चारित्र रूपी उत्तम धर्म की मेखला अर्थात् पर्वतमाला स्थिर रही हुई है।[३९] जैन आचार-दर्शन में सम्यकदर्शन को मुक्ति का अधिकार-पत्र कहा जा सकता है। उत्तराध्ययनसूत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सम्यक्दर्शन के बिना सम्यक्ज्ञान नहीं होता और सम्यक्ज्ञान के अभाव में आचरण में यथार्थता या सद्चारित्रता नहीं आती और सद्चारित्रता के अभाव में कर्मावरण

---

३८ जैनधर्म का प्राण, पृ० २४

३९ नन्दीसूत्र १।१२
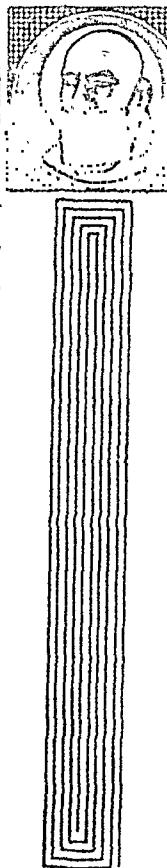
से मुक्ति सम्भव नहीं और कर्मावरण से जकड़े हुए प्राणी का निर्वाण नहीं होता।[४०] आचारांगसूत्र में कहा गया है कि सम्यक्‌दृष्टि पापाचरण नहीं करता।[४१] जैन विचारणा के अनुसार आचरण का सत् अथवा असत् होना कर्ता के दृष्टिकोण (दर्शन) पर निर्भर है। सम्यक्‌दृष्टित्व से परिनिष्पन्न होने वाला आचरण सदैव सत् होगा और मिथ्यादृष्टि से परिनिष्पन्न होने वाला आचरण सदैव असत् होगा। इसी आधार पर सूत्रकृतांगसूत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि व्यक्ति प्रबुद्ध है, भाग्यवान है और पराक्रमी भी है, लेकिन यदि उसका दृष्टिकोण असम्यक् है तो उसका समस्त दान, तप आदि पुरुषार्थ फलयुक्त होने के कारण अशुद्ध ही होगा। वह उसे मुक्ति की ओर नहीं ले जाकर बन्धन की ओर ही ले जावेगा। क्योंकि असम्यक्‌दर्शी होने के कारण वह आसक्त (सराग) दृष्टि वाला होगा और आसक्त या फलाशापूर्ण विचार से परिनिष्पन्न होने के कारण उसके सभी कार्य भी फलयुक्त होंगे और फलयुक्त होने से उसके बन्धन का कारण होंगे। अतः असम्यक्‌दर्शी व्यक्ति का सारा पुरुषार्थ अशुद्ध ही कहा जावेगा क्योंकि वह उसकी मुक्ति में बाधक होगा। लेकिन इसके विपरीत सम्यक्‌दृष्टि या वीतरागदृष्टिसम्पन्न व्यक्ति के सभी कार्य फलाशा से रहित होने से शुद्ध होंगे। इस प्रकार जैन विचारणा यह बताती है कि सम्यक्‌दर्शन के अभाव से विचार-प्रवाह सराग, सकाम या फलाशा से युक्त होता है और यही कर्मों के प्रति रही हुई फलाशा बन्धन का कारण होने से पुरुषार्थ को अशुद्ध बना देती है जबकि सम्यक्‌दर्शन की उपस्थिति से विचार-प्रवाह वीतरागता, निष्कामता और अनासक्ति की ओर बढ़ता है, फलाकांक्षा समाप्त हो जाती है अतः सम्यक्‌दृष्टि से युक्त सारा पुरुषार्थ परिशुद्ध होता है।[४२]

बौद्ध-दर्शन में सम्यक्‌दर्शन का स्थान

बौद्ध-दर्शन में सम्यक्‌दर्शन का क्या स्थान है, यह बुद्ध के निम्न कथन से स्पष्ट हो जाता है। अंगुत्तरनिकाय में बुद्ध कहते हैं कि—

भिक्षुओ! मैं दूसरी कोई भी एक बात ऐसी नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हों तथा उत्पन्न अकुशल-धर्मों में वृद्धि होती हो, विपुलता होती हो, जैसे भिक्षुओ! मिथ्या-दृष्टि।

भिक्षुओ! मिथ्यादृष्टि वाले में अनुत्पन्न अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं, उत्पन्न अकुशल-धर्म वृद्धि को, विपुलता को प्राप्त हो जाते हैं।

भिक्षुओ! मैं दूसरी कोई भी एक बात ऐसी नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हों तथा उत्पन्न कुशल-धर्मों में वृद्धि होती हो, विपुलता होती हो, जैसे भिक्षुओ! सम्यक्-दृष्टि।

भिक्षुओ! सम्यक्-दृष्टि वाले में अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, उत्पन्न कुशल-धर्म वृद्धि को, विपुलता को प्राप्त हो जाते हैं।[४३] इस प्रकार बुद्ध सम्यक्-दृष्टि को नैतिक जीवन के लिए आवश्यक मानते हैं। उनकी दृष्टि में मिथ्यादृष्टिकोण इधर (संसार) का किनारा है और सम्यक्-दृष्टिकोण उधर (निर्वाण) का किनारा है।[४४] बुद्ध के ये वचन यह स्पष्ट कर देते हैं कि बौद्ध-दर्शन में सम्यक्-दृष्टि का कितना महत्वपूर्ण स्थान है।

---

४० उत्तरा० २८।३० ४१ आचारांग १।३।२ ४२ सूत्रकृतांग १।८।२२-२३
४३ अंगुत्तरनिकाय १।१७ ४४ अंगुत्तरनिकाय १०।१२

वैदिक-परम्परा एवं गीता में सम्यक्-दर्शन (श्रद्धा) का स्थान

वैदिक-परम्परा में भी सम्यक्-दर्शन को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जैनदर्शन के समान ही मनुस्मृति में कहा गया है कि सम्यक्-दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति कर्म के वन्धन में नहीं आता है, लेकिन सम्यक्-दर्शन से विहीन व्यक्ति संसार में परिभ्रमित होता रहता है।

गीता में यद्यपि सम्यक्-दर्शन शब्द का अभाव है फिर भी सम्यक्-दर्शन को श्रद्धापरक अर्थ में लेने पर गीता में उसका महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध हो जाता है। श्रद्धा गीता के आचार-दर्शन के केन्द्रीय तत्त्वों में से एक है। **'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं'** कहकर गीता में उसके महत्व को स्पष्ट कर दिया है। गीता यह भी स्वीकार करती है कि व्यक्ति की जैसी श्रद्धा होती है, उसका जीवन के प्रति जैसा दृष्टिकोण होता है, वैसा ही वह वन जाता है।[४५] गीता में श्रीकृष्ण ने यह कहकर कि यदि दुराचारी व्यक्ति भी मुझे भजता है अर्थात् मेरे प्रति श्रद्धा रखता है तो उसे साधु ही समझा जाना चाहिए क्योंकि वह यथार्थ निश्चय या दृष्टि से युक्त हो चुका है और वह शीघ्र ही धर्मात्मा होकर चिरशांति को प्राप्त हो जाता है, इस कथन में सम्यक्-दर्शन या श्रद्धा के महत्व को स्पष्ट कर दिया है।[४६] गीता का यह कथन आचारांग के उस कथन से कि 'सम्यक्-दर्शी कोई पाप नहीं करता' काफी अधिक साम्यता रखता है। आचार्य शंकर ने अपने गीता-भाष्य में भी सम्यक्दर्शन के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "सम्यक्दर्शननिष्ठ पुरुष संसार के वीज रूप अविद्या आदि दोषों का उन्मूलन नहीं कर सके ऐसा कदापि सम्भव नहीं हो सकता अर्थात् सम्यक्-दर्शनयुक्त पुरुष निश्चितरूप से निर्वाण-लाभ करता है।"[४७] आचार्य शंकर के अनुसार जव तक सम्यक्दर्शन नहीं होता तव तक राग (विपयासक्ति) का उच्छेद नहीं होता और जव तक राग का उच्छेद नहीं होता, मुक्ति सम्भव नहीं होती।

सम्यक्दर्शन आध्यात्मिक जीवन का प्राण है। जिस प्रकार चेतना से रहित शरीर शव है उसी प्रकार सम्यक्-दर्शन से रहित व्यक्ति चलता-फिरता शव है। जिस प्रकार शव लोक में त्याज्य होता है वैसे ही आध्यात्मिक-जगत में यह चल-शव त्याज्य होता है।[४८] वस्तुतः सम्यक्-दर्शन एक जीवन-दृष्टि है। विना जीवन-दृष्टि के जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता। व्यक्ति की जीवन-दृष्टि जैसी होती है उसी रूप में उसके चरित्र का निर्माण हो जाता है। गीता में कहा गया है कि व्यक्ति श्रद्धामय है, जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही वह वन जाता है।[४९] असम्यक् जीवन-दृष्टि पतन की ओर और सम्यक् जीवन-दृष्टि उत्थान की ओर ले जाती है इसलिए यथार्थ जीवन-दृष्टि का निर्माण जिसे भारतीय परम्परा में सम्यक्दर्शन, सम्यक्दृष्टि या श्रद्धा कहा गया है, आवश्यक है।

यथार्थ जीवनदृष्टि क्या है? यदि इस प्रश्न पर हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हम पाते हैं कि समालोच्य सभी आचार-दर्शनों में अनासक्त एवं वीतराग जीवनदृष्टि को ही यथार्थ जीवनदृष्टि माना गया है।

---

४५ मनुस्मृति ६।७४
४६ गीता १७।३
४७ गीता ६।३०-३१
४८ गीता (शां०) १८।१२
४९ भावपाहुड १४३
५० गीता १७।३

सम्यक्दर्शन का वर्गीकरण

उत्तराध्ययनसूत्र में सम्यक्दर्शन के, उसकी उत्पत्ति के आधार पर, दस भेद किये गये हैं, जो निम्नानुसार हैं—

(१) **निसर्ग (स्वभाव) रुचि सम्यक्त्व**—जो यथार्थ दृष्टिकोण व्यक्ति में स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है, वह निसर्गरुचि सम्यक्त्व कहा जाता है।

(२) **उपदेशरुचि सम्यक्त्व**—दूसरे व्यक्ति से सुनकर जो यथार्थ दृष्टिकोण या तत्त्वश्रद्धान होता है, वह उपदेशरुचि सम्यक्त्व है।

(३) **आज्ञारुचि सम्यक्त्व**—वीतराग महापुरुषों के नैतिक आदेशों को मानकर जो यथार्थ दृष्टिकोण उत्पन्न होता है अथवा जो तत्त्वश्रद्धा होती है, उसे आज्ञारुचि सम्यक्त्व कहा जाता है।

(४) **सूत्ररुचि सम्यक्त्व**—अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर जो यथार्थ दृष्टिकोण या तत्त्वश्रद्धान होता है, वह सूत्ररुचि सम्यक्त्व कहा जाता है।

(५) **बीजरुचि सम्यक्त्व**—यथार्थता के स्वल्पबोध को स्वचिन्तन के द्वारा विकसित करना, बीजरुचि सम्यक्त्व है।

(६) **अभिगमरुचि सम्यक्त्व**—अंगसाहित्य एवं अन्य ग्रन्थों को अर्थ एवं विवेचना सहित अध्ययन करने से जो तत्त्व-बोध एवं तत्त्व-श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह अभिगमरुचि सम्यक्त्व है।

(७) **विस्ताररुचि सम्यक्त्व**—वस्तुतत्त्व (षट् द्रव्यों) के अनेक पक्षों का विभिन्न अपेक्षाओं (दृष्टिकोणों) एवं प्रमाणों से अवबोध कर उनकी यथार्थता पर श्रद्धा करना, यह विस्ताररुचि सम्यक्त्व है।

(८) **क्रियारुचि सम्यक्त्व**—प्रारम्भिक रूप में साधक जीवन की विभिन्न क्रियाओं के आचरण में रुचि हो और उस साधनात्मक अनुष्ठान के फलस्वरूप यथार्थता का बोध हो, वह क्रियारुचि सम्यक्त्व है।

(९) **संक्षेपरुचि सम्यक्त्व**—जो वस्तुतत्त्व का यथार्थ स्वरूप नहीं जानता है और जो आर्हत् प्रवचन (ज्ञान) में प्रवीण भी नहीं है लेकिन जिसने अयथार्थ (मिथ्यादृष्टिकोण) को अंगीकृत भी नहीं किया, जिसमें यथार्थ ज्ञान की अल्पता होते हुए भी मिथ्या (असत्य) धारणा नहीं है ऐसा सम्यक्त्व संक्षेपरुचि कहा जाता है।

(१०) **धर्मरुचि सम्यक्त्व**—तीर्थंकरदेव प्रणीत धर्म में बताए गए द्रव्य स्वरूप, आगम साहित्य एवं नैतिक नियम (चारित्र) पर आस्तिक्य भाव रखना उन्हें यथार्थ मानना यह धर्मरुचि सम्यक्त्व है।[५१]

सम्यक्त्व का त्रिविध वर्गीकरण[५२]

अपेक्षाभेद से सम्यक्त्व का त्रिविध वर्गीकरण भी जैनाचार्यों ने किया है। इस वर्गीकरण के अनुसार सम्यक्त्व के कारक, रोचक और दीपक ऐसे तीन भेद किये गये हैं :

१. कारकसम्यक्त्व

जिस यथार्थ दृष्टिकोण (सम्यक्त्व) के होने पर व्यक्ति सदाचरण या सम्यक्चारित्र की

---

५१ उत्तरा० २८।१६ ५२ विशेषावश्यकभाष्य २६७५

साधना में अग्रसर होता है, वह 'कारक सम्यक्त्व' है। कारक सम्यक्त्व ऐसा यथार्थ दृष्टिकोण है जिसमें व्यक्ति आदर्श की उपलब्धि के हेतु सक्रिय एवं प्रयासशील बन जाता है। नैतिक दृष्टि से कहें तो 'कारक-सम्यक्त्व' शुभाशुभ विवेक की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति जिस शुभ का निश्चय करता है उसका आचरण भी करता है। यहाँ ज्ञान और क्रिया में अभेद होता है। सुकरात का यह वचन कि 'ज्ञान ही सद्गुण है' इस अवस्था में लागू होता है।

२. रोचकसम्यक्त्व

रोचक सम्यक्त्व सत्यबोध की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति शुभ को शुभ और अशुभ को अशुभ के रूप में जानता है और शुभ की प्राप्ति की इच्छा भी करता है, लेकिन उसके लिए प्रयास नहीं करता। सत्यासत्यविवेक होने पर भी सत्य का आचरण नहीं कर पाना, यह रोचक सम्यक्त्व है। जैसे कोई रोगी अपनी रुग्णावस्था को भी जानता है, रोग की औषधि भी जानता है और रोग से मुक्त होना भी चाहता है लेकिन फिर भी औषधि का ग्रहण नहीं कर पाता वैसे ही रोचक सम्यक्त्व वाला व्यक्ति संसार के दुःखमय यथार्थ स्वरूप को जानता है, उससे मुक्त होना भी चाहता है, उसे मोक्ष-मार्ग का भी ज्ञान होता है फिर वह सम्यक्चारित्र का पालन (चारित्रमोहकर्म के उदय के कारण) नहीं कर पाता है। इस अवस्था को महाभारत के उस वचन के समकक्ष माना जा सकता है, जिसमें कहा गया है कि धर्म को जानते हुए भी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म को जानते हुए भी उससे निवृत्ति नहीं होती है।[५३]

३. दीपकसम्यक्त्व

वह अवस्था जिसमें व्यक्ति अपने उपदेश से दूसरों में तत्वजिज्ञासा उत्पन्न कर देता है और उसके परिणामस्वरूप होने वाले यथार्थबोध का कारण बनता है, दीपक सम्यक्त्व कहलाती है। दीपक सम्यक्त्व वाला व्यक्ति वह है जो दूसरों को सन्मार्ग पर लगा देने का कारण तो बन जाता है लेकिन स्वयं कुमार्ग का ही पथिक बना रहता है। जैसे कोई नदी के तीर पर खड़ा हुआ व्यक्ति किसी नदी के मध्य में थके हुए तैराक का उत्साहवर्धन कर उसके पार लगने का कारण बन जाता है यद्यपि न तो स्वयं तैरना जानता है और न पार ही होता है।

सम्यक्त्व का त्रिविध वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से भी किया गया है—जिसमें कर्मप्रकृतियों के क्षयोपशम के आधार पर उसके भेद किये हैं। जैन विचारणा में अनन्तानुबंधी (तीव्रतम) क्रोध, मान, माया (कपट), लोभ तथा मिथ्यात्वमोह, मिश्रमोह और सम्यक्त्वमोह यह सात कर्मप्रकृतियाँ सम्यक्त्व (यथार्थबोध) की विरोधी मानी गयी है, इसमें सम्यक्त्वमोहनीय को छोड़ शेष छह कर्म-प्रकृतियाँ उदय होती हैं तो सम्यक्त्व का प्रगटन नहीं हो पाता। सम्यक्त्वमोह मात्र सम्यक्त्व की निर्मलता और विशुद्धि में बाधक होता है। कर्मप्रकृतियों की तीन स्थितियाँ हैं—

१. क्षय, २. उपशम, और ३. क्षयोपशम।

इसी आधार पर सम्यक्त्व का यह वर्गीकरण किया गया है जिसमें सम्यक्त्व तीन प्रकार का होता है—

१. औपशमिक सम्यक्त्व २. क्षायिक सम्यक्त्व, और

३. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व।

---

५३ देखिए—पंचदशी ६।१७६ उद्धृत—भारतीय-दर्शन, पृ० १२

१. औपशमिक सम्यक्त्व

उपरोक्त (क्रियमाण) कर्मप्रकृतियों के उपशमित (दबाई हुई) हो जाने से जिस सम्यक्त्व गुण का प्रगटन होता है वह औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। औपशमिक सम्यक्त्व में स्थायित्व का अभाव होता है। शास्त्रीय विवेचना के अनुसार यह एक अन्तर्मुहूर्त (४८ मिनिट) से अधिक नहीं टिक पाता है। उपशमित कर्मप्रकृतियाँ (वासनाएँ) पुनः जाग्रत होकर इसे विनष्ट कर देती हैं।

२. क्षायिक सम्यक्त्व

उपरोक्त सातों कर्मप्रकृतियों के क्षय हो जाने पर जिस सम्यक्त्व रूप यथार्थबोध का प्रगटन होता है, वह क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता है। यह यथार्थबोध स्थायी होता है और एक बार प्रकट होने पर कभी भी विनष्ट नहीं होता है। शास्त्रीय भाषा में यह सादि एवं अनन्त होता है।

३. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व

मिथ्यात्वजनक उदयगत (क्रियमाण) कर्मप्रकृतियों के क्षय हो जाने पर और अनुदित (सत्तावान या संचित) कर्मप्रकृतियों के उपशम हो जाने पर जिस सम्यक्त्व का प्रगटन होता है वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। यद्यपि सामान्य दृष्टि से यह अस्थायी ही है फिर भी एक लम्बी समयावधि (छयासठ सागरोपम से कुछ अधिक) तक अवस्थित रह सकता है।

औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की भूमिका में सम्यक्त्व के रस का पान करने के पश्चात् जब साधक पुनः मिथ्यात्व की ओर लौटता है तो लौटने की इस क्षणिक समयावधि में वान्त सम्यक्त्व का किंचित् संस्कार अवशिष्ट रहता है। जैसे वमन करते समय वमित पदार्थों का कुछ स्वाद आता है वैसे ही सम्यक्त्व को वान्त करते समय सम्यक्त्व का भी कुछ आस्वाद रहता है। जीव की ऐसी स्थिति **सास्वादन सम्यक्त्व** कहलाती है।

साथ ही जब जीव क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की भूमिका से क्षायिक सम्यक्त्व की प्रशस्त भूमिका पर आगे बढ़ता है और इस विकास क्रम में जब वह सम्यक्त्वमोहनीय कर्मप्रकृति के कर्मदलिकों का अनुभव कर रहा होता है तो उसके सम्यक्त्व की यह अवस्था **'वेदक सम्यक्त्व'** कहलाती है। वेदक सम्यक्त्व के अनन्तर जीव क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है।

वस्तुतः सास्वादन सम्यक्त्व और वेदक सम्यक्त्व सम्यक्त्व की मध्यान्तर अवस्थायें हैं। पहली सम्यक्त्व से मिथ्यात्व की ओर गिरते समय और दूसरी क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से क्षायिक सम्यक्त्व की ओर बढ़ते समय होती है।

सम्यक्त्व का विविध वर्गीकरण

सम्यक्त्व का विश्लेषण अनेक अपेक्षाओं से किया गया है ताकि उसके विविध पहलुओं पर समुचित प्रकाश डाला जा सके। सम्यक्त्व का विविध वर्गीकरण चार प्रकार से किया गया है—

(अ) द्रव्यसम्यक्त्व और भावसम्यक्त्व[५४]

१. **द्रव्यसम्यक्त्व**—विशुद्ध रूप में परिणत किये हुए मिथ्यात्व के कर्मपरमाणु द्रव्य-सम्यक्त्व कहलाते हैं।

---

५४ प्रवचनसारोद्धार (टीका) १४९।९४२

२. भावसम्यक्त्व—उपरोक्त विशुद्ध पुद्गल वर्गणा के निमित्त से होने वाली तत्त्वश्रद्धा भावसम्यक्त्व कहलाती है।

(ब) निश्चयसम्यक्त्व और व्यवहारसम्यक्त्व[५५]

१. निश्चयसम्यक्त्व—राग-द्वेष और मोह का अत्यल्प हो जाना, पर-पदार्थों से भेदज्ञान एवं स्व-स्वरूप में रमण, देह में रहते हुए देहाध्यास का छूट जाना, यह निश्चयसम्यक्त्व के लक्षण हैं। मेरा शुद्ध स्वरूप अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तआनन्दमय है। पर-भाव या आसक्ति ही मेरे बन्धन का कारण है, और स्व-स्वभाव में रमण करना यही मोक्ष का हेतु है। मैं स्वयं ही अपना आदर्श हूँ, देव-गुरु और धर्म यह मेरा आत्मा ही है। ऐसी दृढ़ श्रद्धा का होना ही निश्चय-सम्यक्त्व है। दूसरे शब्दों में आत्मकेन्द्रित होना यही निश्चयसम्यक्त्व है।

२. व्यवहारसम्यक्त्व—वीतराग में देवबुद्धि (आदर्श बुद्धि), पाँच महाव्रतों के पालन करने वाले मुनियों में गुरुबुद्धि और जिनप्रणीत धर्म में सिद्धान्तबुद्धि रखना, यह व्यवहारसम्यक्त्व है।

(स) निसर्गजसम्यक्त्व और अधिगमजसम्यक्त्व[५६]

१. निसर्गजसम्यक्त्व—जिस प्रकार नदी के प्रवाह में पड़ा हुआ पत्थर अप्रयास ही स्वाभाविक रूप से गोल हो जाता है उसी प्रकार संसार में भटकते हुए प्राणी के अनायास ही जब कर्मावरण के अल्प होने पर यथार्थता का बोध हो जाता है तो ऐसा सत्यबोध निसर्गज (प्राकृतिक) होता है। बिना किसी गुरु आदि के उपदेश के स्वाभाविक रूप में स्वतः उत्पन्न होने वाला ऐसा सत्य-बोध निसर्गजसम्यक्त्व कहलाता है।

२. अधिगमजसम्यक्त्व—गुरु आदि के उपदेशरूप निमित्त से होने वाला सत्यबोध या सम्यक्त्व अधिगमजसम्यक्त्व कहलाता है।

इस प्रकार जैन दार्शनिक न तो वेदान्त और मीमांसक दर्शन के अनुसार सत्य-पथ के नित्य प्रकटन को स्वीकार करते हैं और न न्याय-वैशेषिक और योगदर्शन के समान यह मानते हैं कि सत्य-पथ का प्रकटन ईश्वर के द्वारा होता है वरन् वे तो यह मानते हैं कि जीवात्मा में सत्यबोध को प्राप्त करने की स्वाभाविक शक्ति है और वह बिना किसी दूसरे की सहायता के सत्य-पथ का बोध प्राप्त कर सकता है यद्यपि किन्हीं विशिष्ट आत्माओं (सर्वज्ञ, तीर्थंकर) द्वारा सत्य-पथ का प्रकटन एवं उपदेश भी किया जाता है।[५७]

सम्यक्त्व के पाँच अंग

सम्यक्त्व यथार्थता है, सत्य है; इस सत्य की साधना के लिए जैन विचारकों ने ५ अंगों का विधान किया है। जब तक साधक इन्हें नहीं अपना लेता है वह यथार्थता या सत्य की आराधना एवं उपलब्धि में समर्थ नहीं हो पाता। सम्यक्त्व के निम्न पाँच अंग हैं :

१. सम—सम्यक्त्व का पहला लक्षण है सम। प्राकृत भाषा का यह 'सम' शब्द संस्कृत भाषा में तीन रूप लेता है—१. सम, २. शम, ३. श्रम। इन तीनों शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं।

---

५५ प्रवचनसारोद्धार (टीका) १४६।६४२

५६ स्थानांग सूत्र २।१।७०

५७ स्टडीज इन जैन फिलासफी, पृ० २६८

पहले 'सम' शब्द के ही दो अर्थ होते हैं। पहले अर्थ में यह समानुभूति या तुल्यता है अर्थात् सभी प्राणियों को अपने समान समझना है। इस अर्थ में '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' के महान् सिद्धान्त की स्थापना करता है जो अहिंसा की विचार-प्रणाली का आधार है। दूसरे अर्थ में इसे सम-मनोवृत्ति या समभाव कहा जा सकता है अर्थात् सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि एवं अनुकूल और प्रतिकूल दोनों स्थितियों में समभाव रखना, चित्त को विचलित नहीं होने देना। यह चित्तवृत्ति संतुलन है। संस्कृत के 'शम' के रूप के आधार पर इसका अर्थ होता है शांत करना अर्थात् कषायाग्नि या वासनाओं को शांत करना। संस्कृत के तीसरे रूप 'श्रम' के आधार पर इसका निर्वचन होता है—प्रयास, प्रयत्न या पुरुषार्थ करना।

२. **संवेग**—संवेग शब्द का शाब्दिक विश्लेषण करने पर उसका निम्न अर्थ ध्वनित होता है—सम्+वेग, सम्—सम्यक्, उचित, वेग—गति अर्थात् सम्यक्गति। सम् शब्द आत्मा के अर्थ में भी आ सकता है। इस प्रकार इसका अर्थ होगा आत्मा की ओर गति। दूसरे, सामान्य अर्थ में संवेग शब्द अनुभूति के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यहाँ इसका तात्पर्य होगा स्वानुभूति, आत्मानुभूति अथवा आत्मा के आनन्दमय स्वरूप की अनुभूति। तीसरे, आकांक्षा की तीव्रतम अवस्था को भी संवेग कहा जाता है। इस प्रसंग में इसका अर्थ होगा सत्याभीप्सा अर्थात् सत्य को जानने के तीव्रतम आकांक्षा। क्योंकि जिसमें सत्याभीप्सा होगी वही सत्य को पा सकेगा। सत्याभीप्सा से ही अज्ञान से ज्ञान की ओर प्रगति होती है। यही कारण है कि उत्तराध्ययनसूत्र में संवेग का प्रतिफल बताते हुए महावीर कहते हैं कि संवेग से मिथ्यात्व की विशुद्धि होकर यथार्थ-दर्शन की उपलब्धि (आराधना) होती है।[५८]

३. **निर्वेद**—निर्वेद शब्द का अर्थ होता है उदासीनता, वैराग्य, अनासक्ति। सांसारिक प्रवृत्तियों के प्रति उदासीन भाव रखना। क्योंकि इसके अभाव में साधना-मार्ग पर चलना सम्भव नहीं होता। वस्तुतः निर्वेद निष्काम भावना या अनासक्त दृष्टि के उदय का आवश्यक अंग है।

४. **अनुकम्पा**—इस शब्द का शाब्दिक निर्वचन इस प्रकार है—अनु+कम्पा। अनु का अर्थ है तदनुसार, कम्प का अर्थ है धूजना या कम्पित होना अर्थात् किसी अन्य के अनुसार कम्पित होना। दूसरे शब्दों में कहें तो दूसरे व्यक्ति के दुःखित या पीड़ित होने पर तदनुकूल अनुभूति हमारे अन्दर उत्पन्न होना यही अनुकम्पा है। दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना यही अनुकम्पा का अर्थ है। परोपकार के नैतिक सिद्धान्त का आधार यही अनुकम्पा है। इसे सहानुभूति भी कहा जा सकता है।

५. **आस्तिक्य**—आस्तिक्य शब्द आस्तिकता का द्योतक है। जिसके मूल में अस्ति शब्द है जो सत्ता का वाचक है। आस्तिक किसे कहा जाए इस प्रश्न का उत्तर अनेक रूपों में दिया गया है। कुछ ने कहा—जो ईश्वर के अस्तित्व या सत्ता में विश्वास करता है, वह आस्तिक है। दूसरों ने कहा—जो वेदों में आस्था रखता है, वह आस्तिक है। लेकिन जैन विचारणा में आस्तिक और नास्तिक के विभेद का आधार इससे भिन्न है। जैन-दर्शन के अनुसार जो पुण्य-पाप, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त और आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है, वह आस्तिक है।

सम्यक्त्व के दूषण (अतिचार)

जैन विचारकों की दृष्टि में यथार्थता या सम्यक्त्व के निम्न पांच दूषण (अतिचार) माने

---

५८ उत्तरा० २९।१
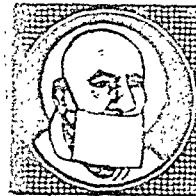
गये हैं जो सत्य या यथार्थता को अपने विशुद्ध स्वरूप में जानने अथवा अनुभूत करने में बाधक होते हैं। अतिचार वह दोष है जिससे व्रत भंग तो नहीं होता लेकिन उसकी सम्यक्ता प्रभावित होती है। सम्यक् दृष्टिकोण की यथार्थता को प्रभावित करने वाले ३ दोष हैं—१. चल, २. मल, और ३. अगाढ़। चल दोष से तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यक्ति अन्तःकरणपूर्वक तो यथार्थ दृष्टिकोण के प्रति दृढ़ रहता है लेकिन कभी-कभी क्षणिक रूप में बाह्य आवेगों से प्रभावित हो जाता है। मल वे दोष हैं जो यथार्थ दृष्टिकोण की निर्मलता को प्रभावित करते हैं। मल निम्न पाँच हैं—

१. **शंका**—वीतराग या अर्हत् के कथनों पर शंका करना, उनकी यथार्थता के प्रति संदेहात्मक दृष्टिकोण रखना।

२. **आकांक्षा**—स्वधर्म को छोड़कर पर-धर्म की इच्छा करना, आकांक्षा करना। अथवा नैतिक एवं धार्मिक आचरण के फल की आकांक्षा करना। फलासक्ति भी साधना-मार्ग में बाधक तत्त्व मानी गयी है।

३. **विचिकित्सा**—नैतिक अथवा धार्मिक आचरण के फल के प्रति संशय करना कि मेरे इस सदाचरण का प्रतिफल मिलेगा या नहीं। जैन विचारणा में कर्मों की फलापेक्षा एवं फल-संशय दोनों को ही अनुचित माना गया है। कुछ जैनाचार्यों के अनुसार इसका अर्थ घृणा भी लगाया गया है।[५९] रोगी एवं ग्लान व्यक्तियों के प्रति घृणा रखना। घृणाभाव व्यक्ति को सेवापथ से विमुख बनाता है।

४. **मिथ्यादृष्टियों की प्रशंसा**—जिन लोगों का दृष्टिकोण सम्यक् नहीं है ऐसे अयथार्थ दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों अथवा संगठनों की प्रशंसा करना।

५. **मिथ्यादृष्टियों से अति परिचय**—साधनात्मक अथवा नैतिक जीवन के प्रति जिनका दृष्टिकोण अयथार्थ है, ऐसे व्यक्तियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना। संगति का असर व्यक्ति के जीवन पर काफी अधिक होता है। चारित्र के निर्माण एवं पतन दोनों में ही संगति का प्रभाव पड़ता है अतः अनैतिक आचरण करने वाले लोगों से अतिपरिचय या घनिष्ठ सम्बन्ध रखना उचित नहीं माना गया है।

पं० बनारसीदासजी ने नाटक समयसार में सम्यक्त्व के अतिचारों की एक भिन्न सूची प्रस्तुत की है। उनके अनुसार सम्यक्दर्शन के निम्न पाँच अतिचार हैं—

१. लोकभय
२. सांसारिक सुखों के प्रति आसक्ति
३. भावी जीवन में सांसारिक सुखों के प्राप्त करने की इच्छा
४. मिथ्याशास्त्रों की प्रशंसा एवं
५. मिथ्या-मतियों की सेवा[६०]

अगाढ़ दोष वह दोष है जिसमें अस्थिरता रहती है। जिस प्रकार हिलते हुए दर्पण में यथार्थ रूप तो दिखता है लेकिन वह अस्थिर होता है। इसी प्रकार अस्थिर चित्त में सत्य का प्रकटन तो होता है लेकिन वह भी अस्थिर होता है। स्मरण रखना चाहिए कि जैन विचारणा के अनुसार उपरोक्त दोषों की सम्भावना क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में होती है—उपशम सम्यक्त्व और क्षायिक

---

५९ देखिए गोम्मटसार (जीवकाण्ड) गाथा २९ की अंग्रेजी टीका जे० एल० जैन, पृष्ठ २२
६० नाटक समयसार १३।३८

सम्यक्त्व में नहीं होती है क्योंकि उपशम सम्यक्त्व की समयावधि ही इतनी क्षणिक होती है कि दोष होने का अवकाश ही नहीं रहता और क्षायिक सम्यक्त्व पूर्ण शुद्ध होता है अतः वहाँ भी दोषों की सम्भावना नहीं रहती है।

सम्यक्दर्शन के आठ अंग या आठ दर्शनाचार

उत्तराध्ययनसूत्र में सम्यग्दर्शन की साधना के आठ अंग प्रस्तुत किये गये हैं जिनका समाचरण साधक के लिए अपेक्षित है। दर्शनविशुद्धि एवं उसके संवर्द्धन और संरक्षण के लिए इनका पालन आवश्यक माना गया है। उत्तराध्ययन में वर्णित यह आठ प्रकार का दर्शनाचार निम्न है—

१—निःशंकित २—निःकांक्षित ३—निर्विचिकित्सा ४—अमूढ़दृष्टि ५—उपबृंहण ६—स्थिरीकरण ७—वात्सल्य, और ८—प्रभावना।[६१]

१. **निःशंकता**—संशयशीलता का अभाव ही निःशंकता है। जिनप्रणीत तत्त्व-दर्शन में शंका नहीं करना—उसे यथार्थ एवं सत्य मानना, यही निःशंकता है।[६२] संशयशीलता साधनात्मक जीवन के विकास का विघातक तत्त्व है। जिस साधक की मनःस्थिति संशय के हिंडोले में झूल रही हो वह भी इस संसार में झूलता रहता है (परिभ्रमण करता रहता है) और अपने लक्ष्य को नहीं पा सकता। साधना के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साध्य, साधक और साधना-पथ तीनों पर अविचल श्रद्धा चाहिए। साधक में जिस क्षण भी इन तीनों में से एक के प्रति भी सन्देहशीलता उत्पन्न होती है, वह साधना के क्षेत्र में च्युत हो जाता है। यही कारण है कि जैन विचारणा साधनात्मक जीवन के लिए निश्शंकता को आवश्यक मानती है। निश्शंकता की इस धारणा को प्रज्ञा और तर्क की विरोधी नहीं मानना चाहिए। संशय ज्ञान के विकास में साधन हो सकता है लेकिन उसे साध्य मान लेना अथवा संशय में ही रुक जाना यह साधनात्मक जीवन के उपयुक्त नहीं है। मूलाचार में निश्शंकता को निर्भयता माना गया है।[६३] नैतिकता के लिए पूर्ण निर्भय जीवन आवश्यक है। भय पर स्थित नैतिकता सच्ची नैतिकता नहीं है।

२. **निष्कांक्षता**—स्वकीय आनन्दमय परमात्मस्वरूप में निष्ठावान रहना और किसी भी परभाव की आकांक्षा या इच्छा नहीं करना यही निष्कांक्षता है। साधनात्मक जीवन में भौतिक वैभव अथवा ऐहिक तथा पारलौकिक सुख को लक्ष्य बना लेना, यही जैनदर्शन के अनुसार 'कांक्षा' है।[६४] किसी भी लौकिक और पारलौकिक कामना को लेकर साधनात्मक जीवन में प्रविष्ट होना यह जैन विचारणा को मान्य नहीं है; वह ऐसी साधना को वास्तविक साधना नहीं कहता है क्योंकि वह आत्म-केन्द्रित नहीं है। भौतिक सुखों और उपलब्धियों के पीछे भागने वाला साधक चमत्कार और प्रलोभन के पीछे किसी भी क्षण लक्ष्यच्युत हो सकता है। इस प्रकार जैन साधना में यह माना गया है कि साधक को साधना के क्षेत्र में प्रविष्ट होने के लिए निष्कांक्षित अथवा निष्काम भाव से युक्त होना चाहिए। आचार्य अमृतचन्द्र ने पुरुषार्थसिद्धयुपाय में निष्कांक्षता का अर्थ एकान्तिक मान्यताओं से दूर रहना किया है।[६५] इस आधार पर अनाग्रहयुक्त दृष्टिकोण सम्यक्त्व के लिए आवश्यक माना गया है।

---

६१ उत्तरा० २८।३१
६२ आचारांग १।५।५।१६३
६३ मूलाचार २।५२-५३
६४ रत्नकरण्ड श्रावकाचार १२
६५ पुरुषार्थ० २४

३. **निर्विचिकित्सा**—निर्विचिकित्सा के दो अर्थ माने गये हैं :

(अ) मैं जो धर्म-क्रिया या साधना कर रहा हूँ इसका फल मुझे मिलेगा या नहीं, मेरी यह साधना व्यर्थ तो नहीं चली जावेगी, ऐसी आशंका रखना 'विचिकित्सा' कहलाती है। इस प्रकार साधना अथवा नैतिक क्रिया के फल के प्रति शंकित बने रहना विचिकित्सा है। शंकित हृदय से साधना करने वाले साधक में स्थिरता और धैर्य का अभाव होता है और उसकी साधना सफल नहीं हो पाती है। अतः साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह इस प्रतीति के साथ नैतिक आचरण का प्रारम्भ करें कि क्रिया और फल का अविनाभावी सम्बन्ध है और यदि नैतिक आचरण किया जावेगा तो निश्चित रूप से उसका फल प्राप्त होगा ही। इस प्रकार क्रिया के फल के प्रति सन्देह नहीं होना यही निर्विचिकित्सा है।

(ब) कुछ जैनाचार्यों के अनुसार तपस्वी एवं संयमपरायण मुनियों के दुर्बल एवं जर्जर शरीर अथवा मलिन वेशभूषा को देखकर मन में ग्लानि लाना विचिकित्सा है। अतः साधक की वेश-भूषा एवं शरीरादि बाह्य रूप पर ध्यान नहीं देकर उसके साधनात्मक गुणों पर विचार करना चाहिए। वेशभूषा एवं शरीर आदि बाह्य सौन्दर्य पर दृष्टि को केन्द्रित नहीं करके आत्म-सौन्दर्य की ओर उसे केन्द्रित करना यही सच्ची निर्विचिकित्सा है। आचार्य समन्तभद्र का कथन है—शरीर तो स्वभाव से ही अपवित्र है उसकी पवित्रता तो सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्नत्रय के सदाचरण से ही होती है अतएव गुणीजनों के शरीर से घृणा न कर उनके गुणों से प्रेम करना निर्विचिकित्सा है।[६६]

४. **अमूढ़दृष्टि**—मूढ़ता का अर्थ है अज्ञान। हेय और उपादेय, योग्य और अयोग्य के मध्य निर्णायक क्षमता का अभाव ही अज्ञान है, मूढ़ता है। जैन साहित्य में विभिन्न प्रकार की मूढ़ताओं का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया है—

१. देवमूढ़ता, २. लोकमूढ़ता, और ३. समयमूढ़ता।

(अ) **देवमूढ़ता**—साधना का आदर्श कौन है? उपास्य बनने की क्षमता किसमें है? ऐसे निर्णायक ज्ञान का अभाव ही देवमूढ़ता है, जिसके कारण साधक अपने लिए गलत आदर्श और उपास्य का चयन कर लेता है। जिसमें उपास्य एवं साधना का आदर्श बनने की योग्यता नहीं है उसे उपास्य बना लेना देवमूढ़ता है। काम-क्रोधादि विकारों के पूर्ण विजेता, वीतराग एवं अविकल ज्ञान और दर्शन से युक्त परमात्मा को ही अपना उपास्य और आदर्श बनाना, यही देव के प्रति अमूढ़दृष्टि है।

(ब) **लोकमूढ़ता**—लोक प्रवाह और रूढ़ियों का अन्धानुकरण यही लोक मूढ़ता है। आचार्य समन्तभद्र लोकमूढ़ता की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'नदियों एवं सागर में स्नान करने से आत्मा की शुद्धि मानना, पत्थरों का ढेर कर उससे मुक्ति समझना अथवा पर्वत से गिरकर या अग्नि में जलकर प्राण विसर्जन करना आदि लोकमूढ़ताएँ हैं।'[६७]

(स) **समयमूढ़ता**—समय का अर्थ सिद्धान्त या शास्त्र भी माना गया है। इस अर्थ में सैद्धान्तिक ज्ञान या शास्त्रीय ज्ञान का अभाव समयमूढ़ता है।

---

६६ रत्नकरण्ड श्रावकाचार १३

६७ रत्नकरण्ड श्रावकाचार १४

५. **उपबृंहण**—वृहि धातु के साथ 'उप' उपसर्ग लगाने से उपबृंह शब्द निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है वृद्धि करना, पोषण करना अपने आध्यात्मिक गुणों का विकास करना यह उपबृंहण है।[६८] सम्यक् आचरण करने वाले गुणिजनों की प्रशंसा आदि करके उनके सम्यक् आचरण की वृद्धि में योग देना उपबृंहण है।

६. **स्थिरीकरण**—साधनात्मक जीवन में कभी-कभी ऐसे अवसर उपस्थित हो जाते हैं जब साधक भौतिक प्रलोभन एवं साधनात्मक जीवन की कठिनाइयों के कारण पथच्युत हो जाता है। अतः ऐसे अवसरों पर स्वयं को पथच्युत होने से बचाना और पथच्युत साधकों को धर्ममार्ग में स्थिर करना, यह स्थिरीकरण है। सम्यग्दृष्टिसम्पन्न साधक को न केवल अपने विकास की चिन्ता करनी होती है वरन् उसका यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसे साधकों को जो धर्ममार्ग से विचलित या पतित हो गये हैं, उन्हें मार्ग में स्थिर करे। जैनदर्शन यह मानता है कि व्यक्ति या समाज की भौतिक सेवा सच्ची सेवा नहीं है, सच्ची सेवा तो है उसे धर्ममार्ग में स्थिर करना। जैनाचार्यों का कथन है कि व्यक्ति अपने शरीर के चमड़े के जूते बनाकर अपने माता-पिता को पहिनावे अर्थात् उनके प्रति इतना अधिक आत्मोत्सर्ग का भाव रखे तो भी वह उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता, वह माता-पिता के ऋण से उऋण तभी माना जाता है जब वह उन्हें धर्ममार्ग में स्थिर करता है। दूसरे शब्दों में, उनके साधनात्मक जीवन में सहयोग देता है। अतः धर्म-मार्ग से पतित होने वाले व्यक्तियों को धर्म-मार्ग में पुनः स्थिर करना यह साधक का कर्तव्य माना गया है। इस पतन के दो प्रकार होते हैं—

१. दर्शन विकृति अर्थात् दृष्टिकोण की विकृतता

२. चारित्र विकृति अर्थात् धर्म-मार्ग या सदाचरण से च्युत होना। दोनों ही स्थितियों में उसे यथोचित बोध देकर स्थिर करना चाहिए।[६९]

७. **वात्सल्य**—धर्ममार्ग में समाचरण करने वाले समान शील-साथियों के प्रति प्रेमभाव रखना वात्सल्य है। आचार्य समन्तभद्र के अनुसार 'स्वधर्मियों एवं गुणियों के प्रति निष्कपट भाव से प्रीति रखना और उनकी यथोचित सेवा-शुश्रूषा करना वात्सल्य है। वात्सल्य में मात्र समर्पण और प्रपत्ति का भाव होता है। वात्सल्य धर्मशासन के प्रति अनुराग है। वात्सल्य का प्रतीक गाय और गोवत्स (बछड़ा) का प्रेम है। जिस प्रकार गाय बिना किसी प्रतिफल की अपेक्षा के गोवत्स को संकट में देखकर अपने प्राणों को भी जोखिम में डाल देती है ठीक इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि साधक का भी यह कर्तव्य है कि वह धार्मिकजनों के सहयोग और सहकार के लिए कुछ भी उठा नहीं रखे। वात्सल्य संघ धर्म या सामाजिक भावना का केन्द्रित तत्त्व है।

८. **प्रभावना**—साधना के क्षेत्र में स्व-पर-कल्याण की भावना होती है। जैसे पुष्प अपने सुवास से स्वयं भी सुवासित होता है और दूसरों को भी सुवासित करता है वैसे ही साधक सदाचरण और ज्ञान की सौरभ से स्वयं भी सुरभित होता है, साथ ही जगत् को भी सुरभित करता है। साधना, सदाचरण और ज्ञान की सुरभि द्वारा जगत के अन्य प्राणियों को धर्ममार्ग में आकर्षित करना, यही प्रभावना है।[७०]

---

६८ पुरुषार्थ० २७

६९ रत्नकरण्ड श्रावकाचार १६

७० पुरुषार्थ० ३०

प्रभावना के आठ प्रकार माने गये हैं—

१. प्रवचन, २. धर्म, ३. वाद, ४. नैमित्तिक ५. तप, ६. विद्या, ७. प्रसिद्ध व्रत ग्रहण करना और ८. कवित्वशक्ति।

सम्यग्दर्शन की साधना के ६ स्थान

जिस प्रकार बौद्धदर्शन में दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख से निवृत्ति हो सकती है, और दुःख निवृत्ति का मार्ग है, इन चार आर्यसत्यों की स्वीकृति सम्यग्दृष्टित्व है उसी प्रकार जैन साधना के अनुसार निम्न षट्स्थानकों[71] (छः बातों) की स्वीकृति सम्यग्दृष्टित्व है—

१. आत्मा है
२. आत्मा नित्य है
३. आत्मा अपने कर्मों का कर्ता है
४. आत्मा कृतकर्मों के फल का भोक्ता है
५. आत्मा मुक्ति प्राप्त कर सकता है
६. मुक्ति का उपाय या मार्ग है।

जैन तत्त्व विचारणा के अनुसार उपरोक्त षट्स्थानकों पर दृढ़ प्रतीति सम्यग्दर्शन की साधना का आवश्यक अंग है। दृष्टिकोण की विशुद्धता एवं सदाचरण दोनों ही इन पर निर्भर हैं। यह षट्स्थानक जैन नैतिकता के केन्द्र बिन्दु हैं।

बौद्ध-दर्शन में सम्यक्-दर्शन का स्वरूप

जैसा कि हमने पूर्व में देखा बौद्ध परम्परा में जैन-परम्परा के सम्यक्दर्शन के स्थान पर सम्यक् समाधि, श्रद्धा या चित्त का विवेचन उपलब्ध होता है। बुद्ध ने अपने त्रिविध साधना मार्ग में कहीं शील, समाधि और प्रज्ञा, कहीं शील, चित्त और प्रज्ञा और कहीं शील, श्रद्धा और प्रज्ञा का विवेचन किया है। इस आधार पर हम देखते हैं कि बौद्ध-परम्परा में समाधि, चित्त और श्रद्धा का प्रयोग सामान्यतया एक ही अर्थ में हुआ है। वस्तुतः श्रद्धा चित्त-विकल्प की शून्यता की ओर ही ले जाती है। श्रद्धा के उत्पन्न हो जाने पर विकल्प समाप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार समाधि की अवस्था में भी चित्त-विकल्पों की शून्यता होती है, अतः दोनों को एक ही माना जा सकता है। श्रद्धा और समाधि दोनों ही चित्त की अवस्थाएँ हैं अतः उनके स्थान पर चित्त का प्रयोग भी किया गया है। क्योंकि चित्त की एकाग्रता ही समाधि है और चित्त की भावपूर्ण अवस्था ही श्रद्धा है। अतः चित्त, समाधि और श्रद्धा एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। यद्यपि अपेक्षाभेद से इनके अर्थों में भिन्नता भी रही हुई है। श्रद्धा बुद्ध, संघ और धर्म के प्रति अनन्य निष्ठा है तो समाधि चित्त की शांत अवस्था है।

बौद्ध परम्परा में सम्यक्दर्शन का अर्थ साम्य बहुत कुछ सम्यक्दृष्टि से है। जिस प्रकार जैन-दर्शन में सम्यक्दर्शन तत्त्वश्रद्धा है उसी प्रकार बौद्धदर्शन में सम्यक्दृष्टि चार आर्यसत्यों के

---

७१ आत्मा छे, ते नित्य छे, छे कर्ता निजकर्म।
छे भोक्ता वली मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुधर्म॥

—आत्मसिद्धि शास्त्र (राजचन्द्रभाई)

प्रति श्रद्धा है। जिस प्रकार जैन-दर्शन में सम्यक्दर्शन का अर्थ देव, गुरु और धर्म के प्रति निष्ठा माना गया है उसी प्रकार बौद्ध-दर्शन में श्रद्धा का अर्थ बुद्ध, संघ और धर्म के प्रति निष्ठा है। जिस प्रकार जैन-दर्शन में देव के रूप में अरिहंत को साधना आदर्श के रूप में स्वीकार किया जाता है उसी प्रकार बौद्ध-परम्परा में साधना आदर्श के रूप में बुद्ध और बुद्धत्व को स्वीकार किया जाता है। साधना-मार्ग के रूप में दोनों ही धर्म के प्रति निष्ठा को आवश्यक बताते हैं। जहाँ तक साधना के पथ-प्रदर्शक का प्रश्न है जैन-परम्परा में पथ-प्रदर्शक के रूप में गुरु को स्वीकार किया गया है जबकि बौद्ध-परम्परा उसके स्थान पर संघ को स्वीकार करती है।

जैसा कि हमने पूर्व में निर्देश किया, जैन-दर्शन में सम्यक्दर्शन के दृष्टिकोणपरक और श्रद्धापरक ऐसे दो अर्थ स्वीकृत रहे हैं। बौद्ध-परम्परा में श्रद्धा और सम्यक्दृष्टि दो भिन्न-भिन्न तथ्य माने गये हैं। दोनों समवेत रूप से जैन-दर्शन के सम्यक्दर्शन शब्द के अर्थ की अवधारणा को बौद्ध-दर्शन में स्पष्ट कर देते हैं।

बौद्ध-परम्परा में सम्यक्दृष्टि का अर्थ दुःख, दुःख के कारण, दुःख निवृत्ति का मार्ग और दुःख विमुक्ति इन चार आर्यसत्यों की स्वीकृति रहा है। जिस प्रकार जैन-दर्शन में वह जीवादि नव तत्त्वों का श्रद्धान् है उसी प्रकार बौद्ध-दर्शन में वह चार आर्यसत्यों का श्रद्धान् है।

यदि हम सम्यक्दर्शन को तत्त्वदृष्टि या तत्त्वश्रद्धान् से भिन्न श्रद्धापरक अर्थ में गिनते हैं तो बौद्ध परम्परा में उसकी तुलना श्रद्धा से की जा सकती है। बौद्ध परम्परा में श्रद्धा पांच इन्द्रियों में प्रथम इन्द्रिय, पाँच बलों में अन्तिम बल और स्रोतापन्न अवस्था के चार अंगों में प्रथम अंग मानी गई है। बौद्ध परम्परा में श्रद्धा का अर्थ चित्त की प्रसादमयी अवस्था माना गया है। श्रद्धा जब चित्त में उत्पन्न होती है तो वह चित्त को प्रीति और प्रामोद्य से भर देती है और चित्तमलों को नष्ट कर देती है। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि बौद्ध परम्परा में श्रद्धा अन्धविश्वास नहीं वरन् एक बुद्धिसम्मत अनुभव है। यह विश्वास करना नहीं वरन् साक्षात्कार के पश्चात् उत्पन्न हुई तत्त्वनिष्ठा है। बुद्ध एक ओर यह मानते हैं कि धर्म का ग्रहण स्वयं के द्वारा जानकर ही करना चाहिए। समग्र कलामासुत्त में उन्होंने इसे सविस्तार स्पष्ट किया है। दूसरी ओर वे यह भी आवश्यक समझते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति बुद्धधर्म और संघ के प्रति निष्ठावान रहे। बुद्ध श्रद्धा को प्रज्ञा से समन्वित करके चलते हैं। मज्झिमनिकाय में बुद्ध यह स्पष्ट कर देते हैं कि समीक्षा के द्वारा ही उचित प्रतीत होने पर धर्म का ग्रहण करना चाहिए।[७२] विवेक और समीक्षा यह सदैव ही बुद्ध को स्वीकृत रहे हैं। बुद्ध भिक्षुओं को सावधान करते हुए कहते थे कि भिक्षुओ, क्या तुम शास्ता के गौरव से तो हाँ नहीं कह रहे हो? भिक्षुओ, जो तुम्हारा अपना देखा हुआ, अपना अनुभव किया हुआ है क्या उसी को तुम कह रहे हो।[७३] इस प्रकार बुद्ध श्रद्धा को प्रज्ञा से समन्वित कर देते हैं। सामान्यतया बौद्ध-दर्शन में श्रद्धा को प्रथम और प्रज्ञा को अन्तिम स्थान दिया गया है। साधना-मार्ग की दृष्टि से श्रद्धा पहले आती है और प्रज्ञा उसके पश्चात् उत्पन्न होती है। श्रद्धा के कारण ही धर्म का श्रवण, ग्रहण, परीक्षण और वीर्यारम्भ होता है। नैतिक जीवन के लिए श्रद्धा कैसे आवश्यक होती है इसका सुन्दर चित्रण बौद्ध-परम्परा के सौन्दरनन्द नामक ग्रन्थ में किया गया है। उसमें बुद्ध नन्द के प्रति कहते हैं कि पृथ्वी के भीतर जल है यह श्रद्धा जब मनुष्य को होती है तब प्रयोजन होने पर पृथ्वी को प्रयत्नपूर्वक खोदता है। भूमि से अन्न की उत्पत्ति होती है, यदि यह

७२ मज्झिमनिकाय १।५।७ ७३ मज्झिमनिकाय १।४।८

श्रद्धा कृषक में न हो तो वह भूमि में बीज ही नहीं बोवेगा। धर्म की उत्पत्ति में श्रद्धा उत्तम कारण मानी गई है। जब तक मनुष्य तत्त्व को देख या सुन नहीं लेता तब तक उसकी श्रद्धा स्थिर नहीं होती। साधना के क्षेत्र में प्रथम अवस्था में श्रद्धा एक परिकल्पना के रूप में ग्रहण होती है और वही अन्त में तत्त्वसाक्षात्कार बन जाती है। बुद्ध ने श्रद्धा और प्रज्ञा अथवा दूसरे शब्दों में जीवन के बौद्धिक और भावात्मक पक्षों में एक समन्वय किया है। यह एक ऐसा समन्वय है जिसमें न तो श्रद्धा अन्धश्रद्धा बनती है और न प्रज्ञा केवल बौद्धिक या तर्कात्मक ज्ञान बन कर रह जाती हैं।

जिस प्रकार जैन-दर्शन में सम्यक्दर्शन के शंकाशीलता, आकांक्षा, विचिकित्सा आदि दोष माने गए हैं उसी प्रकार बौद्ध परम्परा में भी पाँच नीवरण माने गये हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. कामच्छन्द (कामभोगों की चाह)
२. अव्यापाद (अविहिंसा)
३. स्त्यानगृद्ध (मानसिक और चैतसिक आलस्य)
४. औद्धत्य-कौकृत्य (चित्त की चंचलता), और
५. विचिकित्सा (शंका)।[७४]

तुलनात्मक दृष्टि से अगर हम देखें तो बौद्ध-परम्परा का कामच्छन्द जैन-परम्परा के कांक्षा नामक अतिचार के समान हैं। इसी प्रकार विचिकित्सा को भी दोनों ही दर्शनों में स्वीकार किया गया है। जैन-परम्परा में संशय और विचिकित्सा दोनों अलग-अलग माने गए हैं लेकिन बौद्ध परम्परा दोनों का अन्तर्भाव एक में ही कर देती है। इस प्रकार कुछ सामान्य मतभेदों को छोड़ कर जैन और बौद्ध दृष्टिकोण एक-दूसरे के निकट ही आते हैं।

गीता में श्रद्धा का स्वरूप एवं वर्गीकरण

जैसा कि हमने पूर्व में निर्देश किया कि गीता में सम्यक्दर्शन के स्थान पर श्रद्धा का प्रत्यय ग्राह्य है। जैन-परम्परा में सामान्यतया सम्यक्दर्शन दृष्टिपरक अर्थ में स्वीकार हुआ है और अधिक से अधिक उसमें यदि श्रद्धा का तत्त्व समाहित है तो वह तत्त्वश्रद्धा ही है। लेकिन गीता में श्रद्धा शब्द का अर्थ प्रमुख रूप से ईश्वर के प्रति अनन्य निष्ठा ही माना गया है। अतः गीता में श्रद्धा के स्वरूप पर विचार करते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जैन-दर्शन में श्रद्धा का जो अर्थ है वह गीता में नहीं है।

यद्यपि गीता भी यह स्वीकार करती है कि नैतिक जीवन के लिए संशयरहित होना आवश्यक है। श्रद्धारहित यज्ञ, तप, दान आदि सभी नैतिक कर्म निरर्थक ही माने गये हैं।[७५] गीता में श्रद्धा तीन प्रकार की मानी गई है—१. सात्विक, २. राजस और ३. तामस। सात्विक श्रद्धा सतोगुण से उत्पन्न होकर देवताओं के प्रति होती है। राजस श्रद्धा यक्ष और राक्षसों के प्रति होती है। इसमें रजोगुण की प्रधानता होती है। तामस श्रद्धा भूत-प्रेत आदि के प्रति होती है।[७६]

---

७४ विसुद्धिमग्ग, पृ० ५१ (भाग-१)

७५ गीता १७।१५

७६ गीता १७।२-४

जिस प्रकार जैन-दर्शन में शंका या सन्देह को सम्यक्दर्शन का दोष माना गया है उसी प्रकार गीता में भी संशयात्मकता को दोष माना गया है।[७७] जिस प्रकार जैन-दर्शन में फलाकांक्षा भी सम्यक्दर्शन का अतिचार (दोष) मानी गई है उसी प्रकार गीता में भी फलाकांक्षा को नैतिक जीवन का दोष ही माना गया है। गीता के अनुसार जो फलाकांक्षा से युक्त होकर श्रद्धा रखता है अथवा भक्ति करता है वह साधक निम्न श्रेणी का ही है। फलाकांक्षायुक्त श्रद्धा व्यक्ति को आध्यात्मिक प्रगति की दृष्टि से आगे नहीं ले जाती है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो लोग विवेक-ज्ञान से रहित होकर तथा भोगों की प्राप्ति विषयक कामनाओं से युक्त हो मुझ परमात्मा को छोड़ अन्यान्य देवताओं की शरण ग्रहण करते हैं, मैं उन लोगों की श्रद्धा उनमें स्थिर कर देता हूँ और उस श्रद्धा से युक्त होकर वे उन देवताओं की आराधना के द्वारा अपनी कामनाओं की पूर्ति करते हैं लेकिन उन अल्पबुद्धि लोगों का वह फल नाशवान होता है। देवताओं का पूजन करने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं लेकिन मुझ परमात्मा की भक्ति करने वाला मुझे ही प्राप्त होता है।[७८]

गीता में श्रद्धा या भक्ति अपने आधारों की दृष्टि से चार प्रकार की मानी गई है—

१. ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् होने वाली श्रद्धा या भक्ति। परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् उनके प्रति जो निष्ठा होती है वह एक ज्ञानी की निष्ठा मानी गई है।

२. जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा पर श्रद्धा रखना। यह श्रद्धा या भक्ति का दूसरा रूप है। इसमें यद्यपि श्रद्धा तो होती है लेकिन वह पूर्णतया संशयरहित नहीं होती जबकि प्रथम स्थिति में होने वाली श्रद्धा पूर्णतया संशयरहित होती है। संशयरहित श्रद्धा तो साक्षात्कार के पश्चात् ही सम्भव है। जिज्ञासा की अवस्था में संशय बना ही रहता है अतः श्रद्धा का यह स्तर प्रथम की अपेक्षा निम्न ही माना गया है।

३. तीसरे स्तर की श्रद्धा आर्त व्यक्ति की होती है। कठिनाई में फँसा हुआ व्यक्ति जब स्वयं अपने को उससे उबारने में असमर्थ पाता है और इसी दैन्य भाव से किसी उद्धारक के प्रति अपनी निष्ठा को स्थित करता है तो उसकी यह श्रद्धा या भक्ति एक दुःखी या आर्त व्यक्ति की भक्ति ही होती है। श्रद्धा या भक्ति का यह स्तर पूर्वोक्त दोनों स्तरों से निम्न होता है।

४. श्रद्धा या भक्ति का चौथा स्तर वह है जिसमें श्रद्धा का उदय स्वार्थ के वशीभूत होकर होता है। यहाँ श्रद्धा कुछ पाने के लिए की जाती है, यह फलाकांक्षा की पूर्ति के लिए की जाने वाली श्रद्धा अत्यन्त निम्न स्तर की मानी गई है। वस्तुतः इसे श्रद्धा केवल उपचार से ही कहा जाता है। अपनी मूल भावनाओं में तो यह एक व्यापार अथवा ईश्वर को ठगने का एक प्रयत्न है। ऐसी श्रद्धा या भक्ति नैतिक प्रगति में किसी भी अर्थ में सहायक नहीं हो सकती है। नैतिक दृष्टि से केवल ज्ञान के द्वारा अथवा जिज्ञासा के लिए की गई श्रद्धा का ही कोई अर्थ और मूल्य हो सकता है।[७९]

तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गीता में

---

७७ गीता ४।४०

७८ गीता ७।२१-२३

७९ गीता ७।१६

स्वयं श्रीकृष्ण के द्वारा अनेक वार यह आश्वासन दिया गया है कि जो मेरे प्रति श्रद्धा रखेगा वह बन्धनों से छूट कर अन्त में मुझे ही प्राप्त हो जावेगा। गीता में भक्त के योगक्षेम की जिम्मेदारी स्वयं श्रीकृष्ण ही वहन करते हैं[८०] जबकि जैन और बौद्ध दर्शनों में ऐसे आश्वासनों का अभाव है। गीता में वैयक्तिक ईश्वर के प्रति जिस निष्ठा का उद्बोधन है वह सामान्यतया जैन और बौद्ध परम्पराओं में अनुपलब्ध ही है।

उपसंहार

सम्यक्दर्शन अथवा श्रद्धा का जीवन में क्या मूल्य है, इस पर भी विचार अपेक्षित है। यदि हम सम्यक्दर्शन को दृष्टिपरक अर्थ में स्वीकार करते हैं, जैसा कि सामान्यतया जैन और बौद्ध विचारणाओं में स्वीकार किया गया है, तो उसका हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। सम्यक्दर्शन जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है, वह अनासक्त जीवन जीने की कला का केन्द्रीय तत्त्व है। हमारे चरित्र या व्यक्तित्व का निर्माण इसी जीवन दृष्टि के आधार पर होता है। गीता में इसी तथ्य को यह कहकर वताया है कि यह पुरुष श्रद्धामय है और जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही वह वन जाता है। हम अपने को जैसा वनाना चाहते हैं, अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण भी उसी के अनुरूप करें। क्योंकि व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है वैसा ही उसका जीवन जीने का ढंग होता है और जैसा उसका जीवन जीने का ढंग होता है वैसा ही उसका चरित्र वन जाता है। और जैसा उसका चरित्र होता है वैसा ही उसके व्यक्तित्व का उभार होता है। अतः एक यथार्थ दृष्टिकोण का निर्माण जीवन की सबसे प्राथमिक आवश्यकता है।

☐ ३. स्वर्ग की दुनिया को पैरिस समझ लीजिए। जैसे कोई मनुष्य अच्छी कमाई करके पैरिस में जा बैठे और वहाँ के राग-रंग में सारी सम्पत्ति लुटाकर वापस अपने गाँव आ जाय, इसी प्रकार यहाँ कमाई करके जीव स्वर्ग में जाता है और वहाँ उसे खत्म करके वापिस लौट आता है। वहाँ सामायिक-पौषध आदि कुछ भी कमाई नहीं है, अतः जो कुछ शुभ सामग्री का योग मिला है वह मनुष्य जन्म में ही मिला है।

—भाग १८ पृष्ठ ११४

---

८० गीता १८।६५-६६

जैन साहित्य में गाणितिक संकेतन

Mathematical Notations

—डा० मुकुटबिहारीलाल अग्रवाल, एस-सी०, पी-एच० डी०

[जैन तत्त्वविद्या में 'गणितानुयोग' एक स्वतन्त्र अनुयोग (विषय) है। प्राचीन जैन मनीषी आत्मा-परमात्मा आदि विषयों पर गणित की भाषा में किस प्रकार विश्लेषण करते थे, उनकी शैली, उनके संकेतन आदि के सम्बन्ध में गणित के प्रसिद्ध विद्वान् तथा लेखक डा० अग्रवाल का यह लेख एक नये विषय पर प्रकाश डालता है।]

पूर्वाभास—मानवीय जीवन में संकेत की महत्ता प्रायः देखी जाती है। भाषा ने जब तक शब्दों की पकड़ नहीं की थी तब भी अभिव्यक्ति (Expression) होती रहती थी। यह अभिव्यक्ति केवल संकेतों के कारण ही थी—यह सर्वविदित ही है। यदि कहा जाये कि भाषा का जन्म ही संकेतों से हुआ है तो असंगति न होगी। जीवन में गणित का अपना विशिष्ट महत्व है, क्योंकि मानव अपनी आँखें खोलते ही गण (गिनना) के चक्कर में फँस जाता है। यह चक्कर इतना सरल तो नहीं है कि वह आसानी से समझ सके। परन्तु कुछ ऐसे साधन हैं जो इस कार्य को सरल बना देते हैं; वे हैं गाणितिक संकेत अर्थात् गणित सम्बन्धी संकेत। इसी गाणितिक सांकेतिकता के विकास पर विचार करना अपना परम लक्ष्यमय कर्त्तव्य है।

ये वे संकेत होते हैं जो किसी गणित सम्बन्धी क्रिया को व्यक्त करने में, किसी गणितीय राशि को दर्शाने में अथवा गणित में प्रयुक्त होने वाली गणितीय राशि को निर्दिष्ट करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। यथा $a \div b$ में, भाग का चिह्न ($\div$) निर्दिष्ट करता है कि a में b का भाग देना है। $a < b$ में, असमता का चिह्न $<$ a का b से छोटे होने का सम्बन्ध दर्शाता है। इन संकेतों की सहायता से गणित के तर्क संक्षिप्त रूप से लिखे जा सकते हैं और पाठक सूक्ष्म तर्क-संगत भाषा की सहायता से जटिल सम्बन्धों को सरलता से समझ लेता है।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के संकेत मिलते हैं; किन्तु समय के साथ उन सब में परिवर्तन हुए और वे अनेक रूपान्तर के बाद वर्तमान रूप में आये।

धन और ऋण के चिह्न—सन् १४६० ई० लगभग बोहीमिया के एक नगर में जॉन विड्मैन नामक एक गणितज्ञ हुआ है। विदेशियों में सबसे पहले इसी ने + और — चिह्नों का प्रयोग किया है। परन्तु इसने इन संकेतों को जोड़ने और घटाने के अर्थ में प्रयोग नहीं किया था। वरन् वह ये संकेत व्यापारिक बण्डलों पर डाला करता था यह दिखाने के लिए कि अमुक बण्डल किसी निश्चित मात्रा से अधिक है या कम।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों को देखने से मालूम होता है कि भारतवर्ष में भी जोड़ने-घटाने आदि को सूचित करने के लिए संकेतों का प्रयोग होता था। वे संकेत या तो प्रतीकात्मक हैं या चिह्नात्मक।

जोड़ने के लिए संकेत—'बक्षाली हस्तलिपि' में जो ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों का ग्रन्थ है जोड़ने के लिए 'युत' शब्द का प्रथम अक्षर 'यु' मिलता है। यह अक्षर 'यु' जोड़ी जाने वाली

संख्या के अन्त में लिखा जाता था। जैसे ४ और ६ जोड़ने होते थे तो इस प्रकार लिखा जाता था—

४   ६
१   १   यु

'वक्षाली हस्तलिपि' में पूर्णांक लिखने की यह पद्धति थी कि अङ्क के नीचे १ लिख दिया जाता था, किन्तु दोनों के बीच भाग रेखा नहीं लगाई जाती थी।

जैन ग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ति' (ईसा की दूसरी शताब्दी का ग्रन्थ) में जोड़ने के लिए 'धण' शब्द लिखा है क्योंकि प्राचीन साहित्य में धन के लिए 'धण' शब्द प्रयोग होता था।

जोड़ने के लिए पं० टोडरमल ने 'अर्थसंदृष्टि' में — चिह्न का प्रयोग किया है। यथा $\log_2 \log_2$ (अं)+१ के लिए उसमें इस प्रकार लिखा है[1]—

१—
व$_2$

जोड़ने के लिए, विशेषकर भिन्नों के योग में, 'अर्थसंदृष्टि' में खड़ी लकीर का प्रयोग मिलता है।[2] यथा

१ | $\frac{1}{2}$ का आशय १+$\frac{1}{2}$ से है।

घटाने के लिए संकेत—'वक्षाली हस्तलिपि' में घटाने के लिए + संकेत का प्रयोग किया गया है। यह + चिह्न उस अङ्क के बाद लिखा जाता या जिसे घटाना होता था। जैसे २० में से ३ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा जाता था—

२०   ३+
१   १

कुछ जैन ग्रन्थों में भी घटाने के लिए उपरोक्त संकेत का प्रयोग मिलता है परन्तु यह + चिह्न घटायी जाने वाली संख्या के ऊपर लिखा जाता था। आचार्य वीरसेन ने 'धवला' (ईसा की नवीं शताब्दी का ग्रन्थ) में इस प्रकार के संकेत का प्रयोग किया है जो निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट है[3]—

"............|१| $\overset{+}{_{1}}$ **सोज्झ माणादो एदिस्से रिण सण्णा"**

अर्थात् १ $\overset{+}{_{1}}$ शोध्यमान (अर्थात् घटाने योग्य) होने से इसकी ऋण संज्ञा है।

घटाने के लिए + चिन्ह की उत्पत्ति के बारे में प्रोफेसर लक्ष्मीचन्दजी जैन का मत है कि यह चिन्ह ब्राह्मी भाषा से बना है। ब्राह्मी भाषा में ऋण के लिए 'रिण' लिखा जाता है और रिण का प्रथम अक्षर रि ब्राह्मीभाषा में [ब्राह्मी चिह्न] लिखा जाता है। अधिक प्रयोग होते-होते इसका रूप + हो गया है।

जैन ग्रन्थों में घटाने के लिए [चिह्न] चिन्ह भी मिलता है। यह चिन्ह जिस अङ्क को

---

१ पं० टोडरमल की अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ६,७, ८, १५, १८, २०, २१

२ अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ११

३ धवला, पुस्तक १०, सन् १९५४, पृष्ठ १५१

घटाना होता था उसके बाद लिखा जाता था।[४] यथा

$$\frac{१}{२}\ \underline{\Omega}$$

का आशय जघन्य युक्त असंखेय —१ से है। यहाँ पर २ का आशय जघन्य युक्त असंखेय से है।

'अर्थसंदृष्टि' में इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं।[५] यथा—यदि ल।५।४।३ का आशय ल × ५ × ४ × ३ अर्थात् ६० लाख से है और १ लाख इस राशि में से घटाया जावे तो शेषफल को इस प्रकार लिखते हैं—

$$ल\ \overset{१\ \Omega}{५।४।३}$$

'त्रिलोकसार' (दशवीं शताब्दी का जैन ग्रन्थ) में भी घटाने के लिए इसी प्रकार का संकेत मिलता है। इसमें लिखा है कि मूलराशि के ऊपर घटाई जाने वाली संख्या लिखो और उसके आगे पूछड़ी का सा आकार बिन्दी सहित करो जैसे २०० में से २ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है[६]—

$$\overset{२\,\frown}{२००}$$

घटाने के लिए ∼ संकेत भी जैन ग्रन्थों में प्रयोग किया गया है। यथा १ करोड़ में से २ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है[७]—

$$को \sim २$$

घटाने के लिए उपरोक्त चिन्ह ∼ ई० पू० तीसरी शताब्दी में भी दृष्टिगोचर होता है।[८]

कहीं-कहीं घटाने के लिए ० संकेत का भी प्रयोग किया गया है। पं० टोडरमलजी ने इस संकेत का प्रयोग इस प्रकार किया है—

---

४ अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ४; तिलोयपण्णत्ति, भाग २, पृष्ठ ६०६, ७१७
५ वही, पृष्ठ २०
६ त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ २
७ अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ६
८ गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, भारतीय प्राचीनलिपि माला १६५६, प्लेट १

०
१
को

इसका आशय १ करोड़ —१ है।

एक करोड़ में से २ घटाने के लिए इस प्रकार भी लिखा है—

को ०
२

धनलोक में से २ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है—

०
२
≡

यहाँ पर संकेत ≡ धनलोक के लिए प्रयोग किया गया है।

एक लाख में से १ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है[९]—

ल
०
१

'त्रिलोकसार' में भी घटाने के लिए उपरोक्त चिन्ह ० मिलता है। उसमें लिखा है कि मूल राशि (जिसमें से घटाना हो) के नीचे विन्दी लिखो और फिर विन्दी के नीचे ऋण राशि (घटाई जाने वाली संख्या) लिखो। यथा यदि २०० में से २ घटाने हों तो इस प्रकार लिखते हैं[१०]—

२००
०
२

घटाने के लिए ‿ तथा) संकेतों का प्रयोग भी पं० टोडरमल ने 'अर्थसंदृष्टि' में किया है। जैसे एक लाख में से ५ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है[११]—

ल‿५ तथा ल
५)

घटाने के लिए संकेत के स्थान पर ऋण शब्द का प्रतीकात्मक प्रथम अक्षर भी प्रयोग किया गया है। प्राचीन साहित्य में ऋण के लिए रिण लिखा जाता था। अतः घटाने के लिए 'रि' और कहीं-कहीं 'रिण' का प्रयोग होता था। परन्तु यह अक्षर, जिस अङ्क को घटाना होता था, उसके बाद में लिखा जाता था। 'तिलोयपण्णत्ति' में ऐसे उदाहरण अनेक जगह मिलते हैं।[१२] यथा—

---

९ अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ६

१० त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ २

११ अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ६

१२ तिलोयपण्णत्ति, भाग १, पृष्ठ २०

१४⁻³ | रि० यो० १००००० | ³

अर्थात्—मध्यलोक के ऊपरी भाग से सौधर्म विमान के ध्वजदण्ड तक १ लाख योजन कम डेढ़ राजू ऊँचाई प्रमाण है। इसमें स्पष्ट है कि 'रि०' का आशय यहाँ पर घटाने से है। यहाँ १४⁻³ का अर्थ डेढ़ राजू से है।

गुणा के लिए संकेत—गुणा के लिए 'वक्षाली हस्तलिपि' में 'गु' संकेत का प्रयोग मिलता है। यह संकेत 'गु' शब्द 'गुणा' अथवा 'गुणित' का प्रथम अक्षर है। यथा—[13]

३	३	३	३	३	३	३	१०	गु
१	१	१	१	१	१	१	१	

इसका आशय ३×३×३×३×३×३×३×१० है।

'तिलोयपण्णत्ति' में गुणा के लिए एक खड़ी लकीर का प्रयोग किया गया है। यथा १०००×९६×५००×८×८×८×८×८×८×८×८ के लिए इस प्रकार लिखा है।[14]

§०।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

यहाँ पर §० का आशय १००० है।

'अर्थसंदृष्टि' में भी गुणा के लिए यही चिह्न मिलता है। यथा— १६ को २ से गुणा करने के लिए १६।२ लिखा है।[15]

'त्रिलोकसार' में भी गुणा के लिए यही चिह्न मिलता है। यथा— १२८ को ६४ से गुणा करने के लिए १२८।६४ लिखा है।[16]

भाग के लिए संकेत—भाग के लिए 'वक्षाली हस्तलिपि' में 'भा' संकेत का प्रयोग मिलता है। यह संकेत 'भा' शब्द 'भाग' अथवा 'भाजित' का प्रथम अक्षर है। यथा—[17]

इसका आशय

४० भा	१६०	१३
१	१	१
		२

इसका आशय

$$\frac{१६०}{१} \times १३\frac{१}{२} \div \frac{४०}{१}$$ से है।

भिन्नों को प्रदर्शित करने के लिए प्राचीन जैन साहित्य में अंश और हर के बीच रेखा का प्रयोग नहीं मिलता है। 'तिलोयपण्णत्ति' में वेलन का आयतन मालूम किया है जो $\frac{१९}{२४}$ आया है। इस $\frac{१९}{२४}$ को इस ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है[18]—

१९
२४

---

१३ वक्षाली हस्तलिपि Folio 47, recto
१४ तिलोयपण्णत्ति, भाग १, गाथा १, १२३-१२४
१५ अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ६
१६ त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ ३
१७ वक्षाली हस्तलिपि Folio 42, recto
१८ तिलोयपण्णत्ति, भाग १, गाथा १, ११८

'त्रिलोकसार' में भी इसी प्रकार के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इसमें लिखा है कि इक्यासी सौ बाणवे का चौंसठवाँ भाग इस प्रकार लिखिये[19]—

८१९२
६४

'त्रिलोकसार' में भाग देकर शेष बचने पर उसको लिखने की विधि का भी उल्लेख किया है, जो आधुनिक विधि से भिन्न है। यथा ८१९४ में ६४ का भाग दें तो १२८ बार भाग जावेगा और २ शेष रहेंगे। अर्थात् $१२८\frac{२}{६४}$ को इस ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है[20]—

१२८।२
६४

शून्य का प्रयोग—० का प्रयोग आदि संख्या के रूप में प्रारम्भ नहीं हुआ अपितु रिक्त स्थान की पूर्ति हेतु प्रतीक के रूप में प्रयोग हुआ था। आधुनिक संकेत लिपि में जहाँ ० लिखा जाता है वहाँ पर प्राचीनकाल में ० संकेत न लिखकर उस स्थान को खाली छोड़ दिया जाता था। जैसे ४६ का अर्थ होता था छियालीस और ४ ६ का अर्थ होता था चार सौ छः। यदि दोनों अंकों के मध्य जितना उपयुक्त स्थान छोड़ना चाहिए उससे कम छोड़ा जाता था तो पाठकगण भ्रम में पड़ जाते थे कि लेखक का आशय ४६ से है अथवा ४०६ से। इस भ्रम को दूर करने के लिए उस संख्या को ४ ६ न लिखकर ४.६ के रूप में अंकित किया जाने लगा। धीरे-धीरे इस प्रणाली का आधुनिक रूप ४०६ हो गया।

इस प्रकार के प्रयोग का उल्लेख प्राचीन जैन ग्रन्थों एवं मन्दिरों आदि में लिखा मिलता है। उदाहरणार्थ आगरा के हींग की मण्डी में गोपीनाथ जी के जैन मन्दिर में एक जैन प्रतिमा है जिसका निर्माण काल सं० १५०९ है, परन्तु इस प्रतिमा पर इसका निर्माण काल १५०९ न लिखकर १५ ९ लिखा है।

वर्ग के लिए चिह्न—किसी संख्या को वर्ग करने के लिए 'व' चिह्न मिलता है। यह चिह्न 'व' उस संख्या के बाद लिखा जाता है, जिसका वर्ग करना होता है। यथा 'ज जु अ' एक संख्या है जिसका अर्थ जघन्य युक्त अनन्त है। यदि इसका वर्ग करेंगे तो उसे इस प्रकार लिखेंगे[21]—

ज जु अ व

इसी प्रकार घन का संकेत 'घ', चतुर्थ घात के लिए 'व-व' (वर्ग-वर्ग), पाँचवीं घात के लिए 'व-घ-घा' (वर्ग घन घात), छठवीं घात के लिए 'घ-व' (घन वर्ग), सातवीं घात के लिए 'व-व-घ-घा' (वर्ग वर्ग घन घात) आदि संकेत उपलब्ध होते हैं।

वर्गित-संवर्गित के लिये चिह्न—वर्गित-संवर्गित शब्द का तात्पर्य किसी संख्या का उसी संख्या तुल्य घात करने से है। जैसे ५ का वर्गित-संवर्गित $५^५$ हुआ। जैन ग्रन्थों में इसके लिये विशेष चिह्न प्रयोग किया है। किसी संख्या को प्रथम बार वर्गित-संवर्गित करने के लिए इस प्रकार लिखा जाता है—

$न7^१$

19 त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ ५
20 वही, परिशिष्ट, पृष्ठ ६
21 अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ५

इसका आशय है $न^{न}$ से है। द्वितीय वर्गित-संवर्गित के लिए इस प्रकार लिखा जाता है।

$$न^{2}$$

इसका आशय न को वर्गित-संवर्गित करके प्राप्त राशि को पुनः वर्गित-संवर्गित करना है। अर्थात् $\left(न^{न}\right)^{न^{न}}$ है। जैसे २ का द्वितीय वर्गित-संवर्गित $\left(२^{२}\right)^{२^{२}}$ हुआ। अतः २^{2} $४^{४}$ = २५६ हुआ।

द्वितीय वर्गित-संवर्गित राशि को पुनः एक बार वर्गित-संवर्गित करने पर तृतीय वर्गित-संवर्गित प्राप्त होता है। २ के तृतीय वर्गित-संवर्गित को 'धवला' में इस प्रकार लिखा है[२२]—

$$२^{3} \quad (२५६)^{२५६}$$

वर्गमूल के लिए संकेत—'तिलोयपण्णत्ति' और 'अर्थसंदृष्टि' आदि में वर्गमूल के लिए 'मू॰' का प्रयोग किया है। 'तिलोयपण्णत्ति' के निम्नलिखित अवतरण में 'मू॰' संकेत वर्गमूल के लिए दृष्टिगोचर होता है।[२३]

= ५८६,४ रिण रा॰ =

४/५ |४|६५६१| ४|६५५३६| −२ मू॰ | ८ / १|३ मू॰ | = ४|६५५३६|५|

पं॰ टोडरमल की 'अर्थसंदृष्टि' में 'के $मू_{१}$' प्रथम वर्गमूल और 'के $मू_{२}$' वर्गमूल के वर्गमूल के लिए प्रयोग किया गया है।

संकेत 'मू॰' मूल अर्थात् वर्गमूल शब्द का प्रथम अक्षर है। इस संकेत को उस संख्या के अन्त में लिखा जाता था जिसका वर्गमूल निकालना होता था। 'बक्षाली हस्तलिपि' में भी 'मू॰' का प्रयोग मिलता है जो निम्न उदाहरण से स्पष्ट है[२४]—

११	यु॰	५	मू॰	४
१		१		१

---

२२ धवला, पुस्तक ३, अमरावती १९४१, परिशिष्ट पृ॰ ३५

२३ तिलोयपण्णत्ति, भाग २, पंचम अधिकार, पृष्ठ ६०६

२४ Bulletin of Mathematical Society, Calcutta, Vol. 21, 1929 पत्रिका में प्रकाशित विभूतिभूषणदत्त का 'बक्षाली गणित' पर लेख, पृष्ठ २४

का आशय $\sqrt{११+५} = ४$ है।

विशेष संख्या के लिए चिन्ह—'त्रिलोकसार'[२५] और 'अर्थसंदृष्टि' में संख्यात के लिए २

असंख्यात के लिए a तथा अनन्त के लिए 'ख' का प्रयोग मिलता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों ने गाणितिक संकेतन पर गहन अध्ययन प्रस्तुत करके गणितशास्त्र को समृद्धिशाली बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। वस्तुतः गणित-शास्त्र में गाणितिक संकेतन का अपना विशिष्ट महत्त्व है। इसके अभाव में गणितीय अन्तर्दृष्टि धुंधली सी दीख पड़ती है। जैनाचार्यों ने प्रस्तुत कथन की महत्ता को समझते हुए गणित सम्बन्धी चिन्हों पर विचार करना अपना परम धर्म समझा और इन आचार्यों का यह परम धर्म ही गणित-शास्त्र को महती देन सिद्ध हुआ। ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ पर जैनाचार्यों ने प्रस्तुत विषय को मार्मिकता तो प्रदान की ही है, साथ ही साथ व्यावहारिकता, रोचकता, और सरलता की त्रिगुणात्मकता को समाहित भी किया है। अन्ततः यह कह सकते हैं कि जैनाचार्यों ने इस क्षेत्र में जो भगीरथ यत्न किये हैं, वे कदापि विस्मृत नहीं किये जा सकते।

दिव्य ज्योतिर्धर

जय-जय-जय-जय जैन दिवाकर।
त्याग-मूर्ति ! जय ! दिव्य-ज्योतिधर ॥
"केशरमाता" रत्न प्रसूति।
भारत को दी दिव्य विभूति ॥
"चौथमलजी महाराज" नाम था।
पर-उपकार ही एक काम था ॥
गुणीजनों के नित्य गुण गाते।
निन्दा के तो निकट न जाते ॥

वाणी के जादूगर वक्ता।
मंत्रमुग्ध हो जाते श्रोता ॥
घर-घर धर्म प्रदीप जलाये।
प्रेम-सत्य के मोती लुटाये ॥
भूले-भटकों को समझाये।
बंजर में भी फूल खिलाये ॥
जीवन भर रहे "केवल" निर्भय।
बोलो ! सच्चे गुरुवर की जय ॥

—श्री केवल मुनि

२५ त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ २१

ऐतिहासिक चर्चा—

धर्मवीर लोंकाशाह

—डा० तेजसिंह गौड़, एम० ए०, पी-एच० डी०

कल्पसूत्र में भगवान महावीर के कल्याणकों का वर्णन करके दीवाली की उत्पत्ति और श्रमण-संघ के भविष्य का कुछ उल्लेख किया गया है। उसमें बताया गया है कि जिस समय भगवान महावीर का निर्वाण हुआ, उस समय उनके जन्म नक्षत्र पर भस्मराशि नामक महाग्रह का संक्रमण हुआ। जब से २००० वर्ष की स्थिति वाला भस्मग्रह महावीर की जन्म राशि पर आया तब से ही श्रमण संघ की उत्तरोत्तर सेवाभक्ति घटने लगी। भस्मग्रह के हटने पर २००० वर्ष बाद श्रमण संघ की उत्तरोत्तर उन्नति होगी।

इस बीच में धर्म और शासन को संकट का मुकाबला करना होगा। करीब-करीब इसी वचनानुसार शुद्ध निर्ग्रन्थधर्म और उसके पालकों का शनैः-शनैः अभाव-सा होता गया। विक्रम संवत् १५३० को जब २००० वर्ष पूरे हुए, तब लोंकाशाह ने विक्रम संवत् १५३१ में आगमानुसार साधुधर्म का पुनरुद्योत किया। उनके उपदेश से लखमशी, जगमालजी आदि ४५ पुरुषों ने एक साथ भागवती दीक्षा स्वीकार की, जिनमें कई अच्छे-अच्छे संघपति और श्रीपति भी थे। लोंकाशाह की वाणी में हृदय की सच्चाई और सम्यक्ज्ञान की शक्ति थी, अतएव बहुसंख्यक जनता को वे अपनी ओर आकर्षित कर सके। आगमों की युक्ति, श्रद्धा की शक्ति और वीतराग प्ररूपित शुद्ध धर्म के प्रति भक्ति होने के कारण लोंकाशाह क्रांति करने में सफल हो सके।[1]

लोंकाशाह के सम्बन्ध में विदुषी महासती श्री चन्दनकुमारीजी महाराज ने लिखा है, "उन्होंने स्वयं अपना परिचय अथवा अपनी परम्परा का उल्लेख कहीं भी नहीं किया है। परम्परागत वृत्तांतों तथा तत्कालीन कृतियों के आधार पर ही उनके इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। अनेक भण्डारों में भी उनके जीवन सम्बन्धी परिचय की प्राचीन सामग्री संग्रहीत है। श्रीमान् लोंकाशाह के जन्म संवत् के विषय में अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। कोई उनका जन्म[2] १४७५ में कोई १४८२ में तथा कोई १४७२ को प्रमाणित मानते हैं। इनमें वि० सं० १४८२ का वर्ष ही ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक जँचता है। वि० सं० १४८२ कार्तिक पूर्णिमा के दिन गुजरात के पाटनगर अहमदाबाद में आपका जन्म होना माना जाता है। कुछ विद्वान् उनका जन्म "अरहट्टवाड़ा" नामक स्थान पर मानते हैं। यह ग्राम राजस्थान के सिरोही जिले में है।"

एक इतिहास लेखक ने उनका जन्म सौराष्ट्र प्रांत के लिम्बड़ी ग्राम में दशाश्रीमाली के घर में होना लिखा है। किसी ने सौराष्ट्र की नदी के किनारे बसे हुए नागवेश ग्राम में हरिश्चन्द्र सेठ की धर्मपत्नी मंघीबाई की कुक्षि से उनका जन्म माना है। कुछ लोग उनका जन्म जालौर[3] में मानते हैं। इन सभी प्रमाणों में अहमदाबाद का प्रमाण उचित जंचता है। क्योंकि अणहिलपुर पाटण के लखमसी श्रेष्ठि ने अहमदाबाद आकर ही उनसे धर्म-चर्चा की थी। अरहट्टवाड़ा, पाटन और सूरत

---

१ आदर्श विभूतियाँ, पृष्ठ ५-६
२ श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ ४७०
३ पट्टावली प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ २७
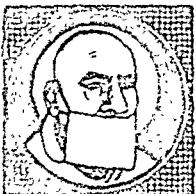
आदि संघों के नागजी, दुलीचन्दजी, मोतीचन्द्र तथा सम्भूजी ये चारों संघवी जब अहमदाबाद में आये थे तो उनका लोंकाशाह के घर जाना इस बात को सिद्ध करता है कि लोंकाशाह का जन्म स्थान अहमदाबाद ही होना चाहिए।[4] विनयचन्द्रजी कृत पट्टावली में भी अहमदाबाद रहना लिखा है।[5]

श्री अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ में लिखा है, "धर्मप्राण लोंकाशाह के जन्मस्थान, समय और माता-पिता के नाम आदि के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अभिप्राय मिलते हैं किन्तु विद्वान् संशोधनों के आधारभूत निर्णय के अनुसार श्री लोंकाशाह का जन्म अरहट्ट वाड़े में चौधरी गोत्र के ओसवाल गृहस्थ सेठ हेमाभाई की पवित्र पति-परायणा भार्या गंगावाई की कूख से वि० सं० १४७२ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को शुक्रवार ता० १८-७-१४१५ के दिन हुआ था।[6] श्री लोंकाशाह की जाति प्राग्वट भी मिलती है।[7] श्रावक-धर्म-परायण हेमाशाह के संरक्षण में वालक लोंकाशाह का वाल्यकाल सुख-सुविधापूर्वक व्यतीत हुआ। छः-सात वर्ष की आयु में उनका अध्ययन आरम्भ कराया गया। थोड़े ही वर्षों में उन्होंने प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। मधुरभाषी होने के साथ-साथ लोंकाशाह अपने समय के सुन्दर लेखक भी थे। उनका लिखा हुआ एक-एक अक्षर मोती के समान सुन्दर लगता था। शास्त्रीय ज्ञान की उनके मन में विशेष रुचि थी। लोंकाशाह अपने सद्गुणों के कारण अपने पिता से भी अधिक प्रसिद्ध हो गये। जब वे पूर्ण युवा हो गये तब सिरोही के प्रसिद्ध सेठ शाह ओधवजी की सुपुत्री 'सुदर्शना' के साथ उनका विवाह कर दिया गया। विवाह के तीन वर्ष बाद उनके यहाँ पूर्णचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[8] लोंकाशाह का विवाह सं० १४८७ में हुआ। लोंकाशाह के तेईसवें वर्ष में माता का और चौवीसवें वर्ष में पिता का देहावसान हो गया।[9]

सिरोही और चन्द्रावती इन दोनों राज्यों के बीच युद्धजन्य स्थिति के कारण अराजकता और व्यापारिक अव्यवस्था प्रसारित हो जाने से वे अहमदाबाद आ गये और वहाँ जवाहिरात का व्यापार करने लगे। अल्प समय में ही आपने जवाहिरात के व्यापार में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली। अहमदाबाद का तत्कालीन बादशाह मुहम्मदशाह उनके बुद्धि-चातुर्य से अत्यन्त प्रभावित हुआ और लोंकाशाह को अपना खजांची बना लिया।[10]

विदुषी महासती चन्दनकुमारीजी महाराज ने लिखा है, "कहते हैं एक बार मुहम्मदशाह के दरबार में सूरत से एक जौहरी दो मोती लेकर आया। बादशाह मोतियों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। खरीदने की दृष्टि से उसने मोतियों का मूल्य जँचवाने के लिए अहमदाबाद शहर के सभी प्रमुख जौहरियों को बुलाया। सभी जौहरियों ने दोनों मोतियों को 'सच्चा' बताया। जब लोंका-

---

४ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६०-६१
५ पट्टावली प्रबन्ध संग्रह, पृ० १३५
६ वही, पृष्ठ ३८
७ श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ ४७०
८ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६१-६२
६ स्वर्ण जयंती ग्रन्थ, पृष्ठ ३८
१० वही, पृष्ठ ३८

शाह की वारी आई तो उन्होंने एक मोती को खरा और दूसरे को खोटा बताया। खोटे मोती की परख के लिए उसे एरन पर रख कर हथौड़े की चोट लगाई गई। चोट लगते ही उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। मोती की इस परीक्षा को देखकर सारे जौहरी आश्चर्यचकित हो गये। लोंकाशाह की विलक्षण बुद्धि देखकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें अपना कोषाध्यक्ष बना लिया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि उन्हें अपने मन्त्री पद पर नियुक्त किया था। इस पद पर वे दस वर्ष तक रहे। इन्हीं दिनों चम्पानेर के रावल ने मुहम्मदशाह पर आक्रमण कर दिया। शत्रु के प्रति शिथिल नीति अपनाने के कारण उसके पुत्र कुतुबशाह ने जहर देकर अपने पिता को मार डाला। बादशाह की इस क्रूर हत्या से लोंकाशाह के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अब वे राजकाज से पूर्णतया विरक्त से रहने लगे। कुतुबशाह ने उन्हें राज्य प्रबन्ध में पुनः लाने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु श्रीमान् लोंकाशाह ने सब प्रलोभन अस्वीकार कर दिये।"[११]

श्री लोंकाशाह प्रारम्भ से ही तत्त्वशोधक थे। उन्होंने एक लेखक मण्डल की स्थापना की और बहुत से लहिये (लिखने वाले) रख कर प्राचीन शास्त्रों और ग्रन्थों की नकलें करवाने लगे तथा अन्य धार्मिक कार्य में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। एक समय ज्ञानसुन्दरजी नाम के एक यति इनके यहाँ गोचरी के लिए आये। उन्होंने लोंकाशाह के सुन्दर अक्षर देखकर अपने पास के शास्त्रों की नकल कर देने के लिए कहा। लोंकाशाह ने श्रुत सेवा का यह कार्य स्वीकार कर लिया।[१२]

मेवाड़ पट्टावली में लिखा है, "एक दिन द्रव्यलिंगियों की स्थान चर्चा चली। भण्डार में शास्त्रों के पन्ने उद्दइयों ने खाये हैं। अतः लिखने की पूर्ण आवश्यकता है। श्री लोंकाशाह के सुन्दर अक्षर आते थे। अतः यह भार आप ही के ऊपर डाला गया। सर्वप्रथम दशवैकालिक सूत्र लिखा। उसमें अहिंसा का प्रतिपादन देखकर आपको इन साधुओं से घृणा होने लगी। परन्तु कहने का अवसर न देखकर कुछ भी न कहा। क्योंकि ये उलटे बनकर शास्त्र लिखाना बन्द कर देंगे। जबकि प्रथम शास्त्र में ही इस प्रकार ज्ञान रत्न है तो आगे बहुत होंगे। यों एक प्रति दिन में और एक प्रति रात्रि में लिखते रहे।

"एकदा आप तो राजभवन में थे और पीछे से एक साधु ने आपकी पत्नी से सूत्र माँगा। उसने कहा—दिन का दूँ या रात्रि का। उसने दोनों ले लिये और गुरु से कहा कि—अब सूत्र न लिखवाओ। लोंकाशाह घर आये। पत्नी ने सर्व वृत्तांत कह दिया। आपने संतोष से कहा—जो शास्त्र हमारे पास हैं उनसे भी बहुत सुधार बनेगा। आप घर पर ही व्याख्यान द्वारा शास्त्र प्ररूपने लगे। वाणी में मीठापन था। साथ ही शास्त्र प्रमाण द्वारा साधु आचार श्रवण कर बहुत प्राणी शुद्ध दयाधर्म अंगीकार करने लगे।"[१३]

विविध उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुए श्री भँवरलाल नाहटा ने लिखा है, "पहले घर की अवस्था अच्छी हो सकती है, पर फिर आर्थिक कमजोरी आ जाने से उन्होंने अपनी आजीविका ग्रन्थों की नकल कर चलाना आरम्भ किया। उनके अक्षर सुन्दर थे। महात्माओं के पास सं० १५०८ के

---

११ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६३-६४

१२ स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ, पृष्ठ ३८-३९

१३ पट्टावली प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ २८६

लगभग विशेष सम्भव है कि अहमदाबाद में लेखन-कार्य करते हुए कुछ विशेष अशुद्धि आदि के कारण उनके साथ बोलचाल हो गई। वैसे व्याख्यानादि श्रवण द्वारा जैन-साध्वाचार की अभिज्ञता तो थी ही और यति-महात्माओं में शिथिलाचार प्रविष्ट हो चुका था। इसलिए जब यतिजी ने विशेष उपालम्भ दिया तो रुष्ट होकर उनका मान भंग करने के लिए उन्होंने कहा कि शास्त्र के अनुसार आपका आचार ठीक नहीं है एवं लोगों में उस बात को प्रचारित किया। इसी समय पारख लखमसी उन्हें मिला और उसके संयोग से यतियों के आचार शैथिल्य का विशेष विरोध किया गया। जब यतियों में साधु के गुण नहीं हैं तो उन्हें वन्दन क्यों किया जाय? कहा गया। तब यतियों ने कहा—'वेष ही प्रमाण है। भगवान की प्रतिमा में यद्यपि भगवान के गुण नहीं फिर भी वह पूजी जाती है।' तब लुंका ने कहा कि—'गुणहीन मूर्ति को मानना भी ठीक नहीं और उसकी पूजा में हिंसा भी होती है। भगवान ने दया में धर्म कहा है।' इस प्रकार अपने मत का प्रचार करते हुए कई वर्ष बीत गये। सं० १५२७ और सं० १५३४ के बीच विशेष सम्भव सं० १५३०-३१ में भाणा नामक व्यक्ति स्वयं दीक्षित होकर इस मत का प्रथम मुनि हुआ। इसके बाद समय के प्रवाह से यह मत फैल गया।"[१४]

विनयचन्द्रजी कृत पट्टावली का विवरण भी उल्लेखनीय है। उसके अनुसार, "एक दिन गच्छधारी यति ने विचारा और भण्डार में से सारे सूत्रों को बाहर निकालकर संभालना प्रारम्भ किया तो देखा कि सूत्रों को उदई चाट गई है और तब से वे सोच करने लगे। उस समय गुजरात प्रदेशान्तर्गत अहमदाबाद शहर में ओसवाल वंशीय लोंकाशाह नाम के दफ्तरी रहते थे। एक दिन लोंकाशाह प्रसन्नतापूर्वक उपाश्रय में गुरुजी के पास गए तो वहाँ साधु ने कहा कि—"श्रावकजी सिद्धांत लिखकर उपकार करो। यह संघ सेवा का काम है।" लोंकाशाह ने यतिजी से सारा वृत्तांत सुनकर कहा कि—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" और सबसे पहले दशवैकालिक की प्रति लेकर अपने घर चले गये। प्रतिलिपि करते समय लोंकाशाह ने जिनराज के वचनों को ध्यान से पढ़ा। पढ़कर मन में विचार किया कि वर्तमान गच्छधारी सभी साध्वाचार से भ्रष्ट दिखाई देते हैं। लोंकाशाह ने लिखते समय विचार किया कि यद्यपि ये गच्छधारी साधु अधर्मी है तथापि अभी इनके साथ नम्रता से ही व्यवहार करना चाहिए। जब तक शास्त्रों की पूरी प्रतियाँ प्राप्त नहीं हो जातीं तब तक इनके अनुकूल ही चलना चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होंने समस्त आलस्य का त्याग कर दो-दो प्रतियाँ लिखनी प्रारम्भ कीं। वीतराग-वाणी (सूत्र) को पढ़कर उन्होंने बड़ा सुख माना और तन, मन, वचन से अत्यन्त हर्षित हुए।

अपने लेखन के संयोग को उन्होंने पूर्वजन्म का महान् पुण्योदय माना तथा उसी के प्रभाव से तत्त्व-ज्ञान रूप अपूर्व वस्तु की प्राप्ति को समझा। दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा में धर्म का लक्षण बताते हुए भगवान ने अहिंसा, संयम और तप को प्रधानता दी है।

दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा इस प्रकार है—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

लोंकाशाह यह पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

१४ श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ ४७५-७६

ये गच्छधारी साधु कल्याण रूप अहिंसा के मार्ग को त्याग कर, मूढ़तावश हिंसा में धर्म मानने लगे हैं। इस प्रकार लोंकाशाह के मन में आश्चर्य हुआ। उन्होंने दशवैकालिक सूत्र की दो प्रतियाँ लिखीं।

उस प्रतापी लोंकाशाह ने उन लिखित दो प्रतियों में से एक अपने घर में रखी और दूसरी भेषधारी यति को दे दी। इसी तरह लिखने को अन्यान्य सूत्र लाते रहे और एक प्रति अपने पास रख कर दूसरी यति को पहुँचाते रहे। इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण बत्तीस सूत्रों को लिख लिया और परमार्थ के साथ-साथ शास्त्र-ज्ञान में प्रवीण बन गए। इसी समय भस्मग्रह का योग भी समाप्त हुआ और वीर निर्वाण के दो हजार वर्ष भी पूरे होने को आये।

संवत् १५३१ में धर्मप्राण लोंकाशाह ने धर्म का शुद्ध स्वरूप समझकर लोगों को समझाया कि साधु का धर्ममार्ग अत्यन्त कठिन अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पंच महाव्रत वाला है। मुनिधर्म की विशेषता बताते हुए उन्होंने कहा कि—पांच समिति और तीन गुप्ति की जो आराधना करते हैं, सत्रह प्रकार के संयम का पालन करते हैं, हिंसा आदि अठारह पापों का भी सेवन नहीं करते और जो निरवद्य भँवर—भिक्षा ग्रहण करते हैं, वे ही सच्चे मुनि हैं। जो बयालीस दोषों को टालकर गाय की तरह शुद्ध आहार-पानी ग्रहण करते हैं, नव बाड़ सहित पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं तथा बारह प्रकार की तपस्या करके शरीर को कृश करते हैं, इस प्रकार जो शुद्ध व्यवहार का पालन करते हैं, उन्हें ही उत्तम साधु कहना चाहिए। आज के जो मतिविहीन मूढ़ भेषधारी हैं वे लोभारूढ़ होकर हिंसा में धर्म बताते हैं। इसलिए इन भेषधारी साधुओं की संगति छोड़कर स्वयंमेव सूत्रों के अनुसार धर्म की प्ररूपणा करने लगे। लोंकाशाह ने मन में ऐसा विचार किया कि सन्देह छोड़कर अब धर्म-प्रचार करना चाहिए।"[१५]

मन्दिरों, मठों और प्रतिमाग्रहों को आगम की कसौटी पर कसने पर उन्हें मोक्ष-मार्ग में कहीं पर भी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा का विधान नहीं मिला। शास्त्रों का विशुद्ध ज्ञान होने से अपने समाज की अन्ध-परम्परा के प्रति उन्हें ग्लानि हुई। शुद्ध जैनागमों के प्रति उनमें अडिग श्रद्धा का आविर्भाव हुआ। उन्होंने दृढ़तापूर्वक घोषित किया कि—"शास्त्रों में बताया हुआ निर्ग्रन्थ धर्म आज के सुखाभिलाषी और सम्प्रदायवाद को पोषण करने वाले कलुषित हाथों में जाकर कलंक की कालिमा से विकृत हो गया है। मोक्ष की सिद्धि के लिए मूर्तियों अथवा मन्दिरों की जड़ उपासना की आवश्यकता नहीं है किन्तु तप, त्याग और साधना के द्वारा आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है।"

अपने इस दृढ़ निश्चय के आधार पर उन्होंने शुद्ध शास्त्रीय उपदेश देना प्रारम्भ किया। भगवान महावीर के उपदेशों के रहस्य को समझकर उनके सच्चे प्रतिनिधि बनकर ज्ञान-दिवाकर धर्मप्राण लोंकाशाह ने अपनी समस्त शक्ति को संचित कर मिथ्यात्व और आडम्बर के अन्धकार के विरुद्ध सिंहगर्जना की। अल्प समय में ही अद्भुत सफलता मिली। लाखों लोग उनके अनुयायी बन गये। सत्ता के लोलुपी व्यक्ति लोंकाशाह की यह धर्मक्रान्ति देखकर घबरा गये और यह कहने लगे कि "लोंकाशाह नाम के एक लहिये ने अहमदाबाद में शासन के विरोध में विद्रोह खड़ा कर दिया है। इस प्रकार उनके विरोध में उत्सूत्र प्ररूपणा और धर्म-भ्रष्टता के आक्षेप किये जाने लगे।"[१६] इसी तारतम्य में मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज का लोंकाशाह विषयक कथन द्रष्टव्य है,

---

१५ पट्टावली प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ १३४ से १३६

१६ स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ, पृष्ठ ३६

"लोंकाशाह न तो विद्वान् था और न आपके समकालीन कोई आपके मत में ही विद्वान् हुआ। यही कारण है कि लोंकाशाह के समकालीन किसी के अनुयायी ने लोंकाशाह का जीवन नहीं लिखा, इतना ही नहीं पर लोंकाशाह के अनुयायियों को यह भी पता नहीं था कि लोंकाशाह का जन्म किस ग्राम में, किस कुल में हुआ था; किस कारण से उन्होंने संघ में भेद डाल नया मत खड़ा किया तथा लोंकाशाह के नूतन मत के क्या सिद्धांत थे इत्यादि।"[१७] जन्मस्थान, जन्मतिथि, कुल आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो लोंकाशाह ही नहीं अनेक जैनाचार्यों की भी नहीं मिलती अथवा मिलती हैं तो विवादास्पद हैं। इसलिए इन सबके लिए मैं यहाँ कुछ लिखना उचित नहीं समझता हूँ। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि आज भी देश में एक विशाल समुदाय उनको मानता है। वे भले ही एक सामान्य पुरुष रहे हों किन्तु उनकी असाधारणता इसी में है कि श्री ज्ञानसुन्दर मुनिजी ने अपने ग्रन्थ में लोंकाशाह की जन्मतिथि, जन्मस्थान, जाति तथा नवीन मत आदि पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है। और इस प्रकार लेखक महोदय ने स्वयं ही लोंकाशाह का न केवल महत्व स्वीकार किया है वरन् एक ऐतिहासिक पुस्तक (भले ही विरोधी) लिखकर उन्हें प्रसिद्ध और लोकप्रिय किया है।

गच्छवासी लोग उनके विविध दोष बतलाते और उनका विरोध करते। समाज में यह भ्रांति फैलाई जाने लगी कि लोंकाशाह पूजा, पौषध और दान आदि नहीं मानता। विरोधभाव से इस प्रकार के कई दोष विरोधियों द्वारा लगाये गये किन्तु वास्तव में लोंकाशाह धर्म का या व्रत का नहीं; अपितु धर्मविरोधी ढोंग आडम्बर का निषेध करते थे। उनका मत था कि हमारे देव वीतराग एवं अविकारी हैं अतः उनकी पूजा भी उनके स्वरूपानुकूल ही आडम्बररहित होनी चाहिए।[१८]

विरोधी लोगों का यह कथन कि लोंकाशाह व्रत, पौषध आदि को नहीं मानता; मात्र धर्मप्रेमी जनसमुदाय को बहकाने के लिए था। वास्तव में लोंकाशाह ने व्रत या तप का नहीं किन्तु धर्म में आये हुए बाह्य क्रियावाद यानि आडम्बर आदि विकारों का ही विरोध किया था। जैसा कि कबीर ने भी अपने समय में बढ़ते हुए मूर्तिपूजा के विकारों के लिए जनसमुदाय को ललकारा था। यही बात लोंकाशाह ने भी कही थी। वीतराग के स्वरूपानुकूल निर्दोष भक्ति से उनका कोई विरोध नहीं था।[१९]

लोंकाशाह ने दया, दान, पूजा और पौषध की करणी में आडम्बर एवं उजमणा आदि की प्रणाली को ठीक नहीं माना। उन्होंने कर्मकाण्ड में आये हुए विकारों का शोधन किया और सर्वसाधारणजन भी सरलता से कर सकें, वैसी निर्दोष प्रणाली स्वीकार की। उन्होंने पूजनीय के सद्गुणों की ही पूजा को भवतारिणी माना। आरम्भ को धर्म का अंग नहीं माना, क्योंकि पूर्वाचार्यों ने **"आरम्भेण नित्य दया"** इस वचन से हिंसा रूप आरम्भ में दया नहीं होती, यह प्रमाणित किया।[२०]

---

१७ श्रीमान् लोंकाशाह, पृष्ठ २

१८ श्री जैन आचार्य चरितावली, पृष्ठ ८५

१९ वही, पृष्ठ ८५

२० वही, पृष्ठ ८६

शास्त्र-वाचन करते हुए लोंकाशाह को बोध हुआ। उन्होंने समझा कि वस्तु के नाम-रूप या द्रव्य पूजनीय नहीं हैं। पूजनीय तो वास्तव में वस्तु के सद्गुण हैं। लोंकाशाह की इस परम्परा विरोधी नीति से लोगों में रोष बढ़ना सहज था। गच्छवासियों ने शक्ति भर इनका विरोध किया, पर ज्यों-ज्यों विरोध बढ़ता गया, त्यों-त्यों उनकी ख्याति व महिमा भी बढ़ती गई। जो अल्पकाल में ही देशव्यापी हो गई। गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में चारों ओर—लोंकागच्छ का प्रचार-प्रसार हो गया। लोंकाशाह के मन्तव्य की उपादेयता इसी से प्रमाणित है कि अल्पतम समय में ही उनके विचारों का सर्वत्र आदर हुआ।[२१]

लोंकाशाह सम्बन्धी समाचार अनहिलपुर पाटन वाले श्रावक लखमशीभाई को मिले। लखमशीभाई उस समय के प्रतिष्ठित सत्ता-सम्पन्न तथा साधन-सम्पन्न श्रावक थे। लोंकाशाह को सुधारने के विचार से वे अहमदाबाद में आये। उन्होंने लोंकाशाह के साथ गम्भीरतापूर्वक बातचीत की। अन्त में उनको भी समझ में आ गया कि लोंकाशाह की बात यथार्थ है और उनका उपदेश आगम के अनुसार ही है।[२२]

इसी प्रकार मूर्ति-पूजा विषयक चर्चा में भी उनकी समझ में आ गया कि मूर्तिपूजा का मूल आगमों में कहीं भी वर्णन नहीं है। इस पर जो लखमशी लोंकाशाह को समझाने के लिए आये थे, वे खुद समझ गये। लोंकाशाह की निर्भीकता और सत्यप्रियता ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया और वे स्वयं लोंकाशाह के शिष्य बन गये। यह घटना वि० सं० १५२८ की है।[२३]

श्री लखमशीभाई के शिष्यत्व स्वीकार कर लेने के कुछ समय बाद सिरोही, अरहट्टवाड़ा, पाटण और सूरत के चारों संघ यात्रा करते हुए अहमदाबाद आये। यहाँ श्री लोंकाशाह के साथ चारों संघों के संघपति नागजी, दलीचन्दजी, मोतीचन्दजी और शंभुजी इन चारों प्रमुख पुरुषों ने अनेक तत्त्वचर्चाएँ कीं। लोंकाशाह की पवित्र वाणी का उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि संघ समूह में से ४५ पुरुष श्री लोंकाशाह की प्ररूपणा के अनुसार दीक्षा लेने को तैयार हो गये। यहाँ श्री लोंका-शाह की प्ररूपणा के अनुसार दीक्षा लेने का प्रसंग भी यही प्रमाणित करता है कि वे उस समय तक स्वयं दीक्षित नहीं हुए थे। गृहस्थावस्था में ही उन्होंने इन ४५ पुरुषों को प्रतिबोध दिया था। कहते हैं कि हैदराबाद की ओर विचरण करने वाले श्री ज्ञानजी मुनि को अहमदाबाद पधारने की प्रार्थना की गई। श्री मुनिराज २१ मुनिराजों के साथ अहमदाबाद पधारे। वि० सं० १५२८ वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया के दिन ४५ पुरुषों को भागवती जैन दीक्षा प्रदान की गई।[२४] स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ में दीक्षा प्रसंग की तिथि वैशाख शुक्ला ३ सं० १५२७ दी गई है।[२५] जबकि आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज भाणाजी आदि के मुनिव्रत धारण करने की तिथि सं० १५३१ मानते हैं।[२६] मरुधर पट्टावली के अनुसार वि० सं० १५३१ वैशाख शुक्ला तेरस को दीक्षा सम्पन्न हुई।[२७]

२१ श्री जैन आचार्य चरितावली, पृष्ठ ८६
२२ स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ, पृष्ठ ३६
२३ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६६
२४ वही, पृष्ठ ६८
२५ वही, पृष्ठ ४०
२६ श्री जैन आचार्य चरितावली, पृष्ठ ८७
२७ पट्टावली प्रबंध संग्रह, पृष्ठ २५५

मेवाड़ पट्टावली में यही तिथि वीर संवत् २०२३ दी गई है।[२८] जो वि० सं० १५५३ होती है। यह तिथि विचारणीय है क्योंकि इसके पूर्व उनके स्वर्गवास होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। अस्तु यह तिथि त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती है। खम्भात पट्टावली के अनुसार ४५ व्यक्तियों को भागवती जैन दीक्षा वि० सं० १५३१ में सम्पन्न हुई।[२९] प्राचीन पट्टावली में भी तिथि १५३१ मिलती है।[३०] चूंकि अधिक संख्या में तिथि सं० १५३१ प्राप्त होती है, इसलिए हमें भी यही तिथि स्वीकार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

जिन ४५ व्यक्तियों ने लोंकाशाह से प्रभावित होकर दीक्षा ग्रहण की उसके पूर्व की घटना का रोचक विवरण श्री विनयचन्द्रजी कृत पट्टावली में मिलता है। हमारे लिए भी यह एक विचारणीय प्रश्न है कि बिना किसी बात के संघ के लोगों को किस आधार पर लोंकाशाह ने धर्म सन्देश दिया अथवा उचित-अनुचित की ओर ध्यान आकर्षित किया। जब हम उक्त विवरण पढ़ते हैं तो हमारे सामने सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती है और तब इस बात का औचित्य प्रमाणित हो जाता है कि क्यों लोंकाशाह ने धर्म सन्देश फरमाया। तो आप भी उन विवरण को देखिये—

"अरहट्टवाड़ा के सेठ श्रावक लखमसींह ने तीर्थयात्रा के लिए एक विशाल संघ निकाला। साथ में वाहन रूप में कई गाड़ियाँ और सेजवाल भी थे। धर्म के निमित्त द्रव्य खर्च करने की उनमें बड़ी उमंग थी। रास्ते में अतिवर्षा होने के कारण संघपति ने पाटन नगर में संघ ठहरा दिया और संघपति प्रतिदिन लोंकाशाह के पास शास्त्र सुनने जाने लगे और सुनकर मन ही मन बड़े प्रसन्न होने लगे। एक दिन संघ में रहे हुए भेषधारी यति ने संघपति से कहा—संघ को आगे क्यों नहीं बढ़ाते? इस पर संघपति ने उनको समझाकर कहा—'महाराज! वर्षा ऋतु के कारण मार्ग में हरियाली और कोमल नवांकुर पैदा हो गये हैं तथा पृथ्वी पर असंख्य चराचर जीव उत्पन्न हो गए हैं। पृथ्वी पर रंग-बिरंगी लीलण-फूलण भी हो गई है, जिससे संघ को आगे बढ़ाने से रोक रहे हैं। वर्षा ऋतु में जमीन जीवसंकुल बन जाती है, अतः ऐसे समय में अनावश्यक यातायात वर्जित हैं।' संघपति के करुणासिक्त वचन सुनकर भेषधारी बोले कि 'धर्म के काम में हिंसा भी हो, तो कोई दोष नहीं है।' यति की बात सुनकर संघपति ने कहा कि 'जैनधर्म में ऐसी पोल नहीं है। जैनधर्म दया-युक्त एवं अनुपम धर्म है। मुझे आश्चर्य है कि तुम उसे हिंसाकारी अधर्म रूप कहते हो।' संघपति ने यति से आगे कहा कि—'तुम्हारे हृदय में करुणा का लेश भी नहीं है, जिसको कि अब मैंने अच्छी तरह देख लिया है। ए! भेषधारी संभलकर वचन बोल।' संघपति की यह बात सुनकर वह भेषधारी यति पीछे लौट गया। लोंकाशाह के उपदेश से प्रभावित होकर संघपति ने पैंतालीस व्यक्तियों के साथ स्वयं मुनिव्रत स्वीकार किया। उनमें मानजी, नूनजी, सखोजी और जगमालजी अत्यन्त दयालु एवं विशिष्ट सन्त थे। उन पैंतालीस में ये चार प्रमुख थे और जो शेष थे वे भी सच्चे अर्थों में निश्चित रूप से उत्तम पुरुष थे। उन्होंने जप, तप आदि क्रिया करके सम्यक् प्रकार से गुण भण्डार जिनधर्म को दिपाया।"[३१]

---

२८ पट्टावली प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ २६०

२९ वही, पृष्ठ २०२

३० वही, पृष्ठ १८२

३१ वही, पृष्ठ १३६ से १४१

श्री लोंकाशाह की विशेष प्रेरणा से ये दीक्षाएँ हुई थीं अतः इसी स्मृति में यहाँ पर समस्त मुनियों के संगठन का नाम लोंकागच्छ रखा गया।[३२]

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन लोंकाशाह की प्रेरणा से पैंतालीस व्यक्तियों ने मुनिव्रत स्वीकार किया, क्या उन लोंकाशाह ने स्वयं मुनिव्रत स्वीकार किया था अथवा नहीं ? इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं—एक मत यह स्वीकार करता है कि लोंकाशाह ने मुनिधर्म स्वीकार किया था तथा दूसरा मत इसके विपरीत कहता है कि लोंकाशाह ने दीक्षा नहीं ली थी। अस्तु हम संक्षेप में दोनों मतों का अध्ययन करना उचित समझते हैं—

स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ में लिखा है कि लोंकाशाह की आगम मान्यता को अब बहुत अधिक समर्थन मिलने लगा था। अब तक तो वे अपने पास आने वालों को ही समझाते और उपदेश देते थे, परन्तु जब उन्हें विचार हुआ कि क्रियोद्धार के लिए सार्वजनिक रूप से उपदेश करना और अपने विचार जनता के समक्ष उपस्थित करना आवश्यक है, तब उन्होंने वैशाख शुक्ला ३ संवत् १५२९ ता० ११-४-१४७३ से सरेआम सार्वजनिक उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। इनके अनुयायी दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगे। स्वभावतः ये विरक्त तो थे ही किन्तु अब तक कुछ कारणों से दीक्षा नहीं ले सके। जबकि क्रियोद्धार के लिए यह आवश्यक था कि उपदेशक पहले स्वयं आचरण करके बताये अतः मिगसर शुक्ला-५ सं० १५३६ को ज्ञानजी मुनि के शिष्य सोहनजी से आपने दीक्षा अंगीकार कर ली। अल्प समय में ही आपके ४०० शिष्य और लाखों श्रावक आपके श्रद्धालु बन गये।[३३] मरुधर पट्टावली के अनुसार लोंकाशाह ने दीक्षा ली थी।[३४] दरियापुरी सम्प्रदाय पट्टावली ने उन्हें ४९वें आचार्य के रूप में बताया है और लिखा है, "केटलाक कहे छे के लोंकाशाहे थे। सं० १५०९ मी पाटण मा सुमतिविजय पासे दीक्षा लीधी अने लक्ष्मीविजय नामधारण करी ४५ जणा ने दीक्षा ग्रहण करावी। अने केटलाक कहे छे के दीक्षा ग्रहण करी नथी अने संसार मां रहीने ४५ जणा ने दीक्षा अपावी।"[३५] इस प्रकार यहाँ हम देखते हैं कि इस मत को मानने वालों में ही अन्तर्विरोध दिखाई देता है। क्योंकि एक स्थान पर उनके दीक्षागुरु का नाम श्री सोहन मुनिजी मिलता है तो दूसरे स्थान पर सुमतिविजय मिलता है। इसमें वास्तविकता क्या है ? निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि पट्टावलियों के भी प्रमाण हैं।

दूसरे मतानुसार विद्वान् उन्हें गृहस्थ ही स्वीकार करते हैं। उनके पास अनेक प्राचीन पट्टावलियों के प्रमाण हैं जिनमें लोंकाशाह को गृहस्थ स्वीकार किया गया है। वि० सं० १५४३ के लावण्यसमय कवि ने अपनी चौपाइयों में स्पष्ट लिखा है कि लोंकाशाह पौषध, प्रतिक्रमण तथा पच्चक्खाण नहीं करता था। वह जिन-पूजा, अष्टापद तीर्थ तथा प्रतिमा प्रसाद का भी विरोध करता था। इससे यह तो स्पष्ट होता है कि यदि श्री लोंकाशाह दीक्षित होते तो उन पर पौषध आदि क्रियाओं के न करने का आरोप न लगाया जाता। कुछ भी हो, भले ही उन्होंने द्रव्यरूप से दीक्षा न ग्रहण की हो पर उनके भाव तो दीक्षारूप ही थे। वे एक आदर्श गृहस्थ थे। उनका जीवन

---

३२ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६८-६६

३३ वही, पृष्ठ ४०

३४ पट्टावली प्रबंध संग्रह, पृष्ठ २५५

३५ वही, पृष्ठ २६६

संयम पोषक था। विक्रम संवत् १५०६ में पाटण में श्री सुमतिविजयजी के पास उनके दीक्षित होकर श्री लक्ष्मीविजय नाम से प्रसिद्ध होने के प्रमाण में भी कुछ तथ्य नहीं दीखता।[36] यहाँ एक प्रश्न उठता है कि दीक्षा लेने के उपरान्त दीक्षा नाम परिवर्तित होकर पुनः वही जन्म या गृहस्थ नाम का प्रवचन हो जाता है क्या ? क्योंकि लोंकाशाह के सम्बन्ध में ही यह प्रश्न आता है। यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी और उनका लक्ष्मीविजय नाम रखा गया था तो फिर वे कौनसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो गईं जिनके अन्तर्गत पुनः उनका नाम लोंकाशाह रखा गया। मैं सोचता हूँ कि ऐसा कहीं होता नहीं है। श्री मोती ऋषि जी महाराज ने लिखा है, "इस समय श्रीमान् लोंकाशाहजी गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी पूरी तरह शासन की प्रभावना में तल्लीन हो गये थे। आपके एक अनुयायी और भक्त सज्जन ने आपको दीक्षा लेने का सुझाव दिया था। परन्तु आपने कहा कि मेरी वृद्धावस्था है। इसके अतिरिक्त गृहस्थावस्था में रहकर मैं शासन प्रभावना का कार्य अधिक स्वतन्त्रता के साथ कर सकूँगा। फलतः आप दीक्षित नहीं हुए, मगर जोर-शोर से संयम-मार्ग का प्रचार करने लगे।"[37] वृद्धावस्था वाली बात समझ में आती है। क्योंकि वृद्धावस्था में यदि वे दीक्षा लेते और मुनिव्रत का पूर्णरूपेण पालन नहीं कर पाते तो शिथिलाचार आ जाता। शिथिलाचार के विरुद्ध ही तो उनका शंखनाद था। इससे ऐसा लगता है कि यद्यपि न केवल उनके दीक्षा ग्रहण करने का प्रकरण वरन् उनके समस्त जीवन से सम्बन्धित घटनाओं पर ही मतभेद है तो भी ऐसा कह सकते हैं कि वे गृहस्थ होते हुए भी किसी दीक्षित सन्त के समान भाव वाले थे और उन्होंने जो कुछ भी किया उसके परिणामस्वरूप स्थानकवासी जैन संघ आज सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है।

लोंकागच्छ और तदुपरांत स्थानकवासी नाम की परम्परा चल पड़ने के सम्बन्ध में विदुषी महासती श्री चन्दनकुमारीजी महाराज साहब ने इस प्रकार लिखा है "उनके अनुयायियों ने अपने उपकारी के उपकारों की स्मृति के लिए ही लोंकागच्छ की स्थापना की थी। उनकी भावना भी इसे साम्प्रदायिक रूप देने की नहीं थी। वास्तव में लोंकागच्छ एक अनुशासनिक संस्था थी। साधु समाज के पुनर्निर्माण में इस संस्था का पूरा-पूरा योग रहा था। इतिहास में केवल लोंकागच्छ का नाम ही यत्र-तत्र देखने में आता है। अन्य किसी भी नाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता। तत्कालीन साधु-समाज के रहन-सहन, वेशभूषा आदि का भी कोई समुचित उल्लेख नहीं मिलता। श्रीमान लोंकाशाह के बाद लोंकागच्छ किस नाम से प्रचलित रहा, यह अत्यन्त शोध का विषय है। इतना तो अवश्य निश्चित है कि वर्तमान में प्रचलित श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज लोंकागच्छ की वर्तमान-कालीन कड़ी है। इसी समाज में हमें आज सही रूप में लोंकाशाह-सिद्धान्त के दर्शन होते हैं। आज के "धर्म स्थानक" प्राचीन श्रावकों की पौषधशालाओं के रूपान्तर हैं। स्थानकों में धर्म-ध्यान करने के कारण जनता इन्हें स्थानकवासी कहने लगी। प्रारम्भ में स्थानकवासी शब्द श्रावकों के लिए प्रयुक्त हुआ था। बाद में श्रावक समाज के परम-आराध्य मुनिराजों के लिए भी इसका प्रयोग होने लग गया। स्थानक-शब्द एक गुण-गरिमापूर्ण शास्त्रीय शब्द है। जैन शास्त्रों में चौदह गुण-स्थानकों का वर्णन आता है। इन गुणस्थानों में आत्मा के क्रमिक विकास का इतिहास निहित है। अथवा इसे यों भी कह सकते हैं कि गुण-स्थानक मोक्ष-

---

३६ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६७-६८

३७ ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास, पृष्ठ ७
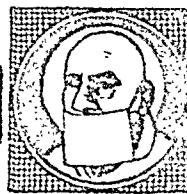
धाम की चौदह सीढ़ियाँ हैं। हमारे धर्म-स्थानों के लिए प्रयुक्त 'स्थानक' शब्द के पीछे भी एक धार्मिक परम्परा का इतिहास है।"[३८]

मुझे ऐसा लगता है कि 'लोंकागच्छ' के नाम का परिवर्तन स्थानकवासी में हुआ। क्यों ? व कैसे ? जिन ४५ अनुयायियों ने लोंकाशाह के नाम से लोंकागच्छ नाम रखा, वह उस समय तो चलता रहा। कालान्तर में धर्म-साधना हेतु 'स्थान' विशेष का उपयोग होने लगा तथा वहीं शास्त्र-वाचन एवं साधु-सन्त ठहरने लगे और वह 'स्थान' प्रतीक स्वरूप 'स्थानक' नाम से पहिचाना जाने लगा। पुनः जो व्यक्ति वहाँ जाकर धर्म-साधना करने लगे अथवा सन्त रहने लगे वे स्थान-वास करने वाले=स्थान में वास करने वाले होने से स्थानकवासी कहलाने लगे तथा उन सन्तों के अनुयायी स्थानकवासी समाज के नाम से प्रसिद्ध होते गये। जब यह नया नाम प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हो गया तो लोंकागच्छ नाम गौण बन गया और स्थानकवासी ही प्रचलन में रह गया, जो अभी भी चल रहा है। इसके पीछे जो धार्मिक मान्यताएँ एवं भावनाएँ हैं, वे सब अपने स्थान पर यथावत् हैं। उनका सम्बन्ध तो स्वाभाविक ही जुड़ गया। एक नाम "ढूंढ़िया" भी मिलता है जिसके सम्बन्ध में यहाँ विचार करना उचित प्रतीत नहीं होता है। यह द्वेषवश उपहास करने के लिए विरोधियों के द्वारा दिया हुआ शब्द है।

धर्मवीर लोंकाशाह के स्वर्गवास की तिथि के सम्बन्ध में भी पर्याप्त मतभेद है। स्वर्ण जयंती ग्रन्थ में उनके स्वर्गवास के सम्बन्ध में निम्नानुसार विवरण दिया गया है, "अपने जीवनकाल में किसी भी क्रान्तिकार की प्रतिष्ठा नहीं होती। सामान्य जनता उसे एक पागल के रूप में मानती है। यदि वह शक्तिशाली होता है तो उसके प्रति ईर्ष्या से भरी हुई विष की दृष्टि से देखा जाता है और उसे शत्रु के रूप में मानती है। लोंकाशाह के सम्बन्ध में भी ऐसा ही बना। जब वे दिल्ली से लौट रहे थे तब बीच में अलवर में मुकाम किया। उन्होंने अट्ठम (तीन दिन का उपवास) का पारणा किया था। समाज के दुर्भाग्य से श्री लोंकाशाह का प्रताप और प्रतिष्ठा नहीं सही जाने के कारण उनके शिथिलाचारी और ईर्ष्यालु विरोधी लोगों ने उनके विरुद्ध कुचक्र रचा। तीन दिन के इस उपवासी तपस्वी को पारणे में किसी दुष्ट-बुद्धि के अभागे ने विषयुक्त आहार वहरा दिया। मुनिश्री ने इस आहार का सेवन कर लिया। औदारिक शरीर और वह भी जीवन की लम्बी यात्रा से थका हुआ होने के कारण उस विष का तात्कालिक असर होने लगा। विचक्षण पुरुष शीघ्र ही समझ गये कि उनका अन्तिम काल समीप है, किन्तु महामानव मृत्यु से घबराता नहीं है। वे शान्ति से सोगये और चौरासी लाख जीव योनियों को क्षमा कर शुक्लध्यान में लीन हो गये। इस प्रकार इस युग सृष्टा ने अपने जीवन से नये युग को अनुप्राणित करके चैत्र शुक्ला एकादशी सं० १५४६ तारीख १३ मार्च १४९० को देवलोकवासी हुए।"[३९] धर्मवीर लोंकाशाह के स्वर्गगमन की विभिन्न विचार-धाराओं का समन्वय करते हुए विदुषी महासती चन्दनाकुमारी जी ने लिखा है, "धर्मप्राण श्री लोंकाशाह के स्वर्गवास के विषय में भी अनेक मतभेद हैं। यतिराज भानुचन्द्रजी का मत है कि धर्मवीर लोंकाशाह का स्वर्गवास विक्रम संवत् १५३२ में हुआ था। लोंकागच्छीय यति श्री केशवजी उनका स्वर्गवास ५६ वर्ष की अवस्था में वि० सं० १५३३ में मानते हैं। वीरवंशावली में उनका स्वर्गवास काल १५३५ माना है। प्रभु वीर पट्टावली के लेखक श्री मणिलालजी महाराज ने लोंका-

---

३८ हमारा इतिहास, पृष्ठ १०५-१०६

३९ वही, पृष्ठ ४०-४१

शाह के स्वर्गवास का समय १५४१ निर्धारित किया है। ये सभी प्रमाण एक-दूसरे से भिन्न हैं। इनमें १५४१ का काल ही उचित लगता है। उनके स्वर्गवास के विषय में भी अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। कोई तो उनकी स्वाभाविक मृत्यु मानते हैं। कोई उन्हें विरोधियों द्वारा विष देकर मारा गया बताते हैं। इनमें दूसरे 'विष-प्रसंग' के प्रमाण अधिक पुष्ट मिलते हैं। एक प्रमाण में उनका स्वर्गवास स्थान अलवर माना गया है।"[४०] श्री पारसमल प्रसून भी उनकी मृत्यु विष प्रसंग से मानते हैं।[४१] इस प्रकार प्रचलित इन विभिन्न विचारधाराओं से हम किसी भी निष्कर्ष पर तब तक नहीं पहुँच सकते हैं जब तक कि कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न हो। फिर भी हमें वि० सं० १५४६ में मृत्यु होना कुछ विश्वसनीय लगता है।

पता—डा० तेजसिंह गौड़
छोटा बाजार, उन्हेल, जिला उज्जैन (म०प्र)

जिनकी शताब्दी है।

जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज गुणवान।
जिनकी शताब्दी है, चमके वे सूर्य समान ।।टेर।।
महा मालव में "नीमच" नगरी सुन्दर है।
"गंगारामजी" पिता है, माता "केशर" है।।
"चौरडिया कुल" धन्य हो गया पा ऐसी संतान ।।१।।
जीवन में यौवन गुलाब सा मुस्काया।
विवाह किया पर रति-पति नहीं लुभा पाया।।
सुन्दर पत्नी छोड़ के निकले ले उद्देश्य महान ।।२।।
सदियों में कोई ऐसे संत नजर आते।
जिनके चरणों में पर्वत भी झुक जाते।।
वाणी में जिनकी जादू हो, मन में जन-कल्याण ।।३।।
पतितों को पावन कर, प्रभु से जोड़ दिया।
वाणी सुनकर पाप पंथ कई छोड़ दिया।।
अग्नि शीतल नीर बनाई, पिघलाये पाषाण ।।४।।
तन जैसा ही मन निर्मल, उन्नत विशाल था।
करुणा भरा हृदय था कोमल, भव्य भाल था।।
आत्मानन्द की आभा देती मधुर वदन मुस्कान ।।५।।
योगी-तपसी-पंडित कई मिल जाते हैं।
सतगुरु "केवलमुनि" पुण्य से पाते हैं।।
जिनका कुटिया से महलों तक गूँजा गौरवगान ।।६।।

—श्री केवलमुनि

४० हमारा इतिहास, पृष्ठ १०१
४१ मुनिश्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ १८३

श्री जैन दिवाकरजी महाराज की गुरु-परम्परा

✯ मधुरवक्ता श्री मूलमुनि जी

दर्शन, सिद्धान्त तथा विचार की दृष्टि से जैन-परम्परा अनादि है, शाश्वत है। किन्तु व्यक्ति की दृष्टि से प्रत्येक परम्परा का आदिसूत्र भी होता है। वर्तमान उत्सर्पिणी में जैन श्रमण परम्परा के आदिकर्ता तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव माने गये हैं। इन्हीं की पवित्र परम्परा में २४वें तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर थे। वर्तमान में विश्व में जहाँ भी जैन श्रमण या श्रावक विद्यमान है, उन सबके परमाराध्य-पुरुष भगवान महावीर हैं तथा अभी सभी श्रमण महावीरवंशीय कहलाते हैं।

भगवान महावीर के पट्ट शिष्य थे सुधर्मा स्वामी। वर्तमान पट्टावली (गुरु परम्परा) की गणना उन्हीं के क्रम से की जाती है। सुधर्मा स्वामी के पश्चात् कुछ सौ वर्ष के बाद गुरु-परम्परा में शाखा-प्रशाखाएँ निकलनी प्रारम्भ हुई जो आज तक भी निकलती जा रही है।

श्री स्थानकवासी मान्यता के अनुसार भगवान महावीर निर्वाण के एक हजार वर्ष बाद श्रमण-परम्परा में क्रमशः शिथिलता बढ़ती गई। आचार-विचार की शुद्धता से हटकर श्रमणवर्ग भौतिक सुख-सुविधा यश-वैभव की ओर मुड़ गया। लगभग १६वीं शताब्दी में वीर लोंकाशाह ने आचार क्रांति का बिगुल बजाया जिससे प्रेरणा पाकर भाणाजी ऋषि ने पुनः शुद्ध-श्रमण परम्परा की विच्छिन्न कड़ी को जोड़ा। हमारी गणना के अनुसार भाणाजी ऋषि भगवान महावीर के ६२वें पाट पर होते हैं। उनके पश्चात् शुद्ध श्रमण-परम्परा में ७२वें पाट पर (हमारी परम्परा के अनुसार) श्री दौलतरामजी स्वामी हुए। श्री दौलतरामजी स्वामी से गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज तक की परम्परा का वर्णन यहाँ प्रस्तुत है। इस परम्परा-पट्टावली में संभवतः अन्य परम्परा (गुर्वावली) वालों का मतभेद भी हो सकता है, हमने अपनी गुरु-अनुश्रुति के अनुसार यहाँ उल्लेख किया है।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज ने लगभग १३ वर्ष की अल्पायु में ही फाल्गुन शुक्ला ५ को दीक्षा ली थी। आप काला पीपल ग्राम के बघेरवाल जाति के थे। पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के दादा गुरु थे।

आप अत्यन्त ही समर्थ विद्वान् एवं सूत्र सिद्धान्त के पारगामी थे। इनका विचरण क्षेत्र कोटा, बूंदी, मेवाड़, मालवा आदि था। आप एक बार विचरते हुए देहली पधारे। वहाँ के शास्त्रज्ञ श्रावक श्री दलपतसिंहजी से शास्त्रों का अध्ययन करने की जिज्ञासा प्रकट की। श्री दलपतसिंहजी ने कहा कि वे 'दसवैकालिकसूत्र' का अध्ययन करायेंगे। इस पर आपने अन्य शास्त्रों का अध्ययन कराने का भी अनुरोध किया। किन्तु श्री दलपतसिंहजी सहमत नहीं हुए। जब आप वहाँ से विहार करके अलवर पहुँचे तब आपके मन में विचार आया कि आखिर श्री दलपतसिंहजी ने 'दसवैकालिकसूत्र' पर ही विशेष बल क्यों दिया ? इसमें अवश्य कोई रहस्य होना चाहिए। आप पुनः देहली पधारे और श्री दलपतसिंहजी से कहा, आप जो चाहें सो पढ़ाएँ। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रकार आपने श्री दलपतसिंहजी से "दसवैकालिकसूत्र" के साथ-साथ अन्य ३२ सूत्रों का अध्ययन भी किया। उनके असाधारण ज्ञान-सम्पत्ति की प्रशंसा पूज्य श्री अजरामरजी महाराज ने सुनी। पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी का आगमेतर ज्ञान भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था। फिर भी आगम-ज्ञान प्राप्त

करने को आपको पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के पास ज्ञान-अभ्यास करने की इच्छा हुई। इस इच्छा को ध्यान में रखकर लीमड़ी श्रीसंघ ने एक विशेष व्यक्ति के साथ पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज की सेवा में तत्सम्बन्धी प्रार्थना-पत्र भेजा।

आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी महाराज उस समय कोटा-बूंदी की तरफ विराजते थे। उन्होंने इस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर काठियावाड़ लीमड़ी की ओर विहार कर दिया। वह व्यक्ति भी महाराजश्री के साथ अहमदावाद तक रहा। वह वहाँ से श्रीसंघ को वधाई देने और महाराज श्री के पधारने का शुभ सन्देश देने को लीमड़ी पहुँच गया। उस समय लीमड़ी श्रीसंघ के आनन्द का पार न रहा। श्रीसंघ ने उस व्यक्ति को १२५०) रु० भेंट किये।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के लीमड़ी पधारने पर श्रीसंघ ने भाव-भीना स्वागत किया।

पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज से सूत्र-सिद्धान्त का रहस्य समझने लगे।

'समकितसार' के कर्त्ता पंडित मुनि श्री जेठमलजी महाराज जो मारवाड़ के पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज के सम्प्रदाय के थे, उन दिनों पालनपुर विराजते थे, वे भी शास्त्र अध्ययनार्थ लीमड़ी पधारे।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के साधुओं में उस समय कितना पारस्परिक स्नेह था तथा उनमें ज्ञान-पिपासा कितनी तीव्र थी यह उपरोक्त प्रसंग से स्पष्ट होता है।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज ने बहुत समय तक विचरण कर पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी को सूत्र-ज्ञान दिया।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के आग्रह से पूज्य श्री अजरामरजी महाराज ने जयपुर में एक चातुर्मास उनके साथ किया था।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के चार शिष्य प्रसिद्ध थे—(१) श्री गणेशरामजी, (२) श्री गोविन्दरामजी, (३) श्री लालचन्दजी, (४) श्री राजारामजी। उनमें भी पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज विशेष प्रसिद्ध थे।

पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के पट्टधर पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज अन्तरड़ी ग्राम के निवासी तथा सिलावट जाति के थे। वे एक कुशल चित्रकार थे। एक बार पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज चित्र बनाते हुए अन्यत्र चले गये। उनकी चित्र सर्जन की सामग्री (रंग तूलिका आदि) कक्ष में ज्यों की त्यों खुली रखी थी। संयोग से एक मक्खी रंग में फँस गई और तड़प-तड़प कर मर गई। लौटने पर श्री लालचन्दजी महाराज ने उसे देखा और बड़े दुःखी हुए, आपको वहीं वैराग्य उत्पन्न हो गया।

सौभाग्य से अन्तरड़ी में पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज पधारे थे। आप उनके पास पहुँचे और दीक्षित होने का विचार प्रकट किया। इस तरह पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज ने इन्हें दीक्षा दी और जैन-सम्प्रदाय को एक सुयोग्य रत्न मिला। कालान्तर में आप ही पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के पदाधिकारी हुए। आपकी उपस्थिति में ही उन दिनों कोटा सम्प्रदाय में २५

पंडित मुनिराज प्रसिद्ध हुए। ये विद्वान् पंडितगण जैन समाज की गौरव-गाथा का विस्तार चारों दिशाओं में कर रहे थे।

पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज के नौ शिष्यों में से पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज सुप्रसिद्ध हैं।

आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज

आपका जन्म टोंक के पास टोडा (रायसी) जयपुर स्टेट में हुआ था। आप एक सुसम्पन्न ओसवाल चपलोत गौत्रीय थे।

एक समय पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज का बूंदी में शुभागमन हुआ। गृह कार्यवश श्री हुक्मीचन्दजी का भी बूंदी में आना हो गया। पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज का वैराग्योत्पादक उपदेश श्रवण कर सं० १८७९ में मृगसर के शुक्ल पक्ष में आपने प्रबल वैराग्य से दीक्षा धारण की। तत्पश्चात् एक महान् धर्मवीर के रूप में पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज रत्नत्रय की आराधना में जुट गए।

आपकी व्याख्या शैली शब्दाडम्बर से रहित सरल तथा वैराग्य से ओत-प्रोत भव्य जीवों के हृदय को सीधे छूने वाली थी। आपके हस्ताक्षर भी अति सुन्दर थे। आज भी आपके द्वारा लिखित शास्त्र निम्बाहेड़ा के ग्रन्थालय में सुरक्षित हैं। साथ ही १९ सूत्रों की हस्तलिखित प्रतियाँ अन्यत्र विद्यमान हैं।

आपने निरन्तर २१ वर्षों तक बेले-बेले (छठ) तप किया था। आप केवल एक ही चद्दर का सदा उपयोग करते थे चाहे भयंकर शीत हो या ग्रीष्मऋतु। आप प्रतिदिन दो सौ "नमोत्थुणं" का स्मरण जीवन-पर्यन्त करते रहे। आपने मिष्ठान्न तथा तली हुई चीजों का जीवन-पर्यन्त के लिए त्याग कर दिया था, केवल १३ द्रव्य रखकर शेष सभी द्रव्यों का आजीवन के लिए त्याग किया था। आप नींद बहुत ही कम लेते थे। आपने अपने गुरुजी से धर्म-प्रचार हेतु आज्ञा प्राप्त कर हाड़ोती प्रान्त मेवाड़ मालवा आदि के अनेक गाँवों में भ्रमण करते हुए धर्म-प्रचार किया।

आपके धर्म-प्रचार से श्रीसंघों में आशातीत धर्म-ध्यान एवं तपोन्नति हुई तथा पूज्यश्री के उच्चकोटि के आचार-विचार के प्रति जनगण सश्रद्धा नतमस्तक हो उठा। आपके स्पर्शमात्र से रामपुरा के एक कुष्टी का कुष्ठ रोग तिरोहित हो गया। इसी प्रकार एक दीक्षार्थिनी की हथकड़ियाँ भी आपके दर्शनों से टूट गईं। आपके तपोबल से नाथद्वारा के व्याख्यानस्थल पर नभ से रुपयों की वर्षा हुई थी।

आपके गुरु पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज ने अपने व्याख्यान में कहा था कि हुक्मीचन्दजी तो साक्षात् चौथे आरे के नमूने हैं। ये एक पवित्र आत्मा व उत्तम साधु तथा अद्भुत क्षमा के भंडार हैं।'

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज ने साधुओं के नियमों-उपनियमों में शास्त्रानुसार बहुत सुधार किये। आपने एवं आपके साथी मुनि श्री शिवलालजी महाराज ने वि० सं० १९०७ में बीकानेर में ठाणा ४ से चातुर्मास किया। आपके प्रभाव से महान् धर्मोन्नति हुई। आपके उपदेश से ४ दीक्षार्थी तैयार हुए। दीक्षा के समय पाँच नाई आए किन्तु दीक्षार्थी चार ही थे। अतः पाँचवां नाई निराश हुआ। उस समय एक नाई तत्काल तैयार होकर बोला, "हे नाई नाई, निराश मत हो, मैं दीक्षा लेने को तैयार हूँ।" इस प्रकार पाँच दीक्षाएँ एक साथ एक ही दिन में हुई।

इस चातुर्मास के पश्चात् ही आप ६ ठाणा बन गए। पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज ने चार ही संघ की साक्षी से श्री शिवलालजी महाराज को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। उनके लिए यह विरद सुशोभित होता है—'क्रियोद्धारक प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज।

इस तरह लगभग ३८ वर्ष ५ मास तक शुद्ध संयम का परिपालन कर विक्रम सं० १९१७ वैसाख शुक्ल ५ मंगलवार को जावद में आपका संथारा-समाधि पूर्वक स्वर्गवास हुआ।

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज ने एक पद्य में आपके विषय में कथन किया है कि आप आउष्टक विमान में देवपने उत्पन्न होकर महाविदेह क्षेत्र में राज्य वंश में बलदेव की पदवी प्राप्त कर मोक्ष में पधारेंगे। जैन दिवाकरजी महाराज ने परम्परा से सुना था कि पूज्य श्री के देवलोक होने के बाद उनके पात्र पर स्वर्णाक्षरों में यह सब लिखा हुआ था जो बाद में मिट गया।

पूज्य श्री शिवलालजी महाराज

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के जिन चार प्रसिद्ध शिष्यों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उनमें श्री गोविन्दरामजी महाराज भी थे, जिनके शिष्य श्री दयालजी महाराज थे। श्री दयालजी के ही शिष्य श्री शिवलालजी महाराज थे। आपकी दीक्षा रतलाम में वि० सं० १८६१ में हुई थी। आपका जन्मस्थान धामनिया (नीमच) मध्य प्रदेश था।

आप भी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की तरह की शास्त्र मर्मज्ञ, स्वाध्यायी, आचार-विचार में महान् निष्ठावान तथा परम श्रद्धावान थे। आपने लगातार ३२ वर्ष तक एकान्तर उपवास किया था। आप केवल तपस्वी ही नहीं, अपितु पूर्ण विद्वान् स्व-पर मत के पूर्ण ज्ञाता व समर्थ उपदेशक थे। आप भक्ति भरे जीवनस्पर्शी उपदेशात्मक कवित्त व भजन आदि की रचना भी करते थे।

आप पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० के साथ ही विचरण करते थे। कोई जिज्ञासु यदि पूज्य हुक्मीचन्दजी महाराज से प्रश्न करता तो उसका उत्तर प्रायः आप ही दिया करते थे। इसका कारण पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की मौनावस्था में रहने की प्रवृत्ति थी।

जब पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज का सन्त समुदाय अत्यधिक बढ़ गया तब उन्होंने सन्तों से कहा कि हे सन्तों! मुनि शिवलालजी ही आप सबके आचार्य हैं। इस प्रकार सभी सन्तों ने पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज का आदेश शिरोधार्य किया और उन्होंने श्री शिवलालजी महाराज को अपना आचार्य मान लिया। आपको आचार्य पद सं० १९०७ में बीकानेर में दिया गया।

पूज्य श्री शिवलालजी महाराज ने भी जैन-समाज व शासन का समुत्थान किया। वर्तमान काल में पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के जितने भी मुनि व सन्त हैं सब आप ही के शिष्य प्रशिष्य परिवार में हैं। आप ही कुलाचार्य भी हैं।

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज ने शिष्य बनाने के त्याग कर लिए थे अतएव जो शिष्य बने वह पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के बने।

पूज्य श्री शिवलालजी महाराज

श्री चतुर्भुजजी महाराज
|
श्री लालचन्दजी महाराज
|
श्री केवलचन्दजी महाराज (बड़े)
|
श्री केवलचन्दजी महाराज (छोटे)
|
श्री रतनचन्दजी महाराज
(आपके लगभग २७ शिष्य-प्रशिष्य हुए)
|
पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज

श्री हर्षचन्द्र जी महाराज
|
श्री राजमलजी महाराज (आपका शिष्य परिवार वर्तमान में बहुत विस्तृत है)
|
आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज
|
आचार्य श्री चौथमलजी महाराज
|
आचार्य श्री मन्नालालजी महाराज
|
आचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज
|
आचार्य श्री सहसमलजी महाराज

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के समय में अर्थात् विक्रम सं० १८७८ कंजार्डा गाँव में दयारामजी भंडारी के घर में पुत्र रत्न का जन्म हुआ। जिनका नाम रत्नचन्द रखा गया। बालक की शिक्षा के पश्चात् इन्हीं रतनचन्दजी का इन्दौर रियासत में वड़कुआ निवासी गुलराजजी पटवारी की सुपुत्री राजकँवर के साथ विवाह सम्बन्ध हुआ।

वि. सं० १९०३ में प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नाम जवाहरलाल रखा गया। वि०सं० १९०९ आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी में द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम हीरालाल रखा गया और वि०सं० १९१२ भाद्रपद शुक्ला छठ सोमवार को तृतीय पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम नन्दलाल रखा गया।

सं० १९१४ विद्वद्वर मुनिश्री राजमल जी महाराज का शिष्य मंडली सहित कंजार्डा में पधारना हुआ। उनकी अमृत वाणी सुनकर रतनचन्दजी को वैराग्य जागृत हुआ। उन्होंने दीक्षा लेने का विचार अपनी पत्नी राजकँवर और साले देवीचन्दजी के सामने रखे। अनेक उत्तर प्रत्युत्तर होने के पश्चात् ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी सं० १९१४ के पवित्र दिन राजमलजी महाराज के पास श्री रतनचन्दजी व श्री देवीचन्द जी दोनों ने संयम स्वीकार किया। इन दोनों के संयम के समय मगनमलजी सोनी और हीरालालजी पटवा को भी वैराग्य उत्पन्न हो गया था।

दीक्षा-ग्रहण करने के पश्चात् दोनों मुनियों ने पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के अपने गुरुश्री राजमलजी महाराज से जैनागम तथा आत्मबोध का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

विक्रम सं० १९१९ को भावी पूज्य पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज अपने शिष्य समुदाय के साथ कंजार्डा पधारे। जिनका सारगर्भित प्रवचन सुनकर जवाहरलालजी के हृदय में गहरा प्रभाव पड़ा। जिन्होंने जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया।

उनकी मातेश्वरी को इस प्रत्याख्यान का पता लगा, तब पुत्र को भाँति-भाँति से समझाया।

परन्तु उन्होंने अपना दीक्षा का विचार पक्का कर लिया। विक्रम सं० १९२० में भावी पूज्य श्री चौथमलजी महाराज और मुनिश्री रतनचन्दजी महाराज का चातुर्मास फलौदी मारवाड़ में था। तब कंजार्डा का श्रीसंघ पहुँचकर मुनिश्री से निवेदन किया कि चातुर्मास के पश्चात् आप विहार कंजार्डा की तरफ कराने की कृपा करें। कारण श्री रतनचन्दजी महाराज का शेष सारा कुटुम्ब दीक्षा ग्रहण करने वाला है। मुनिश्री ने विनती स्वीकार की। चातुर्मास के पश्चात् विहार करते हुए कंजार्डा पधारे। उन पधारने वाले मुनिराजों में श्रीमद् जैनाचार्य शिवलालजी महाराज, श्री राजमलजी महाराज, भावी पूज्य श्री चौथमलजी महाराज, श्री रतनचन्दजी महाराज और श्री देवीचन्दजी महाराज आदि आठ मुनिराज थे। इनके अतिरिक्त श्री रंगूजी महासतीजी महाराज श्री नवला जी महासतीजी महाराज और श्री व्रजूजी महासती जी महाराज का शुभ आगमन भी कंजार्डा में हुआ।

पौष शुक्ला छठ सं० १९२० के पवित्र दिन श्रीमती राजकँवर बाई ने अपने तीनों पुत्रों (जवाहरलालजी, हीरालालजी नन्दलालजी) को दीक्षा दिलवाई। और स्वयं भी दीक्षित हो गई। पूज्य श्री ने राजकँवर बाई को दीक्षा देकर महासतीजी श्री नवलाजी महाराज की शिष्या घोषित की।

इसी प्रकार मुनि जवाहरलालजी महाराज को मुनि श्री रतनचन्दजी के शिष्य और मुनिश्री हीरालालजी महाराज, मुनिश्री नन्दलालजी महाराज को, मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के शिष्य घोषित किये।

जैसे—

विद्वद्वर पं० श्री राजमलजी महाराज के शिष्य
|
श्री रतनचन्दजी महाराज
|
श्री जवाहरलालजी महाराज
|
श्री हीरालालजी महाराज — (मुनिश्री चेनरामजी महाराज) — श्री नन्दलालजी महाराज

श्री हीरालालजी महाराज		श्री नन्दलालजी महाराज
मुनिश्री माणकचन्दजी महाराज	मुनिश्री चेनरामजी महाराज	मुनिश्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज

आगे की शिष्य-परम्परा संलग्न चार्ट में देखें।

☆

परमश्रद्धेय विद्वद्वर श्रीराजमलजी महाराज की शिष्य-परम्परा

श्री रतनचन्दजी महाराज
(आपके प्रमुख शिष्य)

गुरु श्री जवाहरलालजी महाराज

कविवर श्री हीरालालजी म०
श्री चैनरामजी म०
वादीमानमर्दक श्री नन्दलालजी म०
श्री लक्ष्मीचन्दजी म०
श्री माणकचन्दजी म०

पं० श्रीदेवीलालजी म०

श्री शाकर चन्दजी म०
त० बड़े हजारीमलजी म०
श्री गुलाबचन्दजी म०
श्री मूलचन्द जी म०
श्री रायचन्दजी म०
पू० श्री खूबचन्दजी म०
श्री नरसिंहदासजी म०
श्री मन्नालालजी म०
मेवाड़ भूषण श्री प्रतापमलजी म०
पू० श्री सहसमल जी म०

जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म० (आपके ३२ शिष्य)
छोटे हजारीमलजी म०
श्री शोभालालजी म०
तपस्वी श्रीमयाचन्दजी म०
श्री भगवान जी म०
श्री भोप जी म०
त० छोटेलाल जी म०
श्री नाथूलाल जी म०
श्री लक्ष्मीचन्द जी म०

शेषाभाषी श्री बड़े नाथूलालजी म०
तपस्वी श्री छोटे चम्पालालजी म०
तपस्वी श्री छबलालजी म०
प्रवर्तक श्री हीरालालजी म०

मधुर व्याख्यानी श्रीचन्दनमुनिजी म०
तपस्वी श्रीवृद्धिचन्दजी म०
मालवरत्न उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी म०
श्री हजारीमलजी म०
श्री हरकचन्द जी म०
तपस्वी श्री दीपचन्दजी म०
नवीन मुनिजी म०

सलाहकार श्री केसरीमलजी म०
श्री सुखलाल जी म०
श्री राजमल जी म०
श्री शोभालाल जी म०
श्री मिश्रीलालजी म०

बालकवि श्री सुभाषमुनिजी म०
श्री नगराजी म०
कवि श्री रंगलालजी म०
पं० श्री ईश्वर मुनिजी म०

भजनान्दी श्री नानकरामजी म०
तपस्वी श्री लाभचन्दजी म०

श्री अरुणमुनिजी म०
श्री सुरेशमुनिजी म०

जगतवल्लभ जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता श्री चौथमलजी म० के शिष्य-प्रशिष्य

श्री हुक्मीचन्दजी म० (बड़ा)
श्री कजोड़ीमलजी म०
पं० श्री शंकरलालजी म०
श्री किशनलालजी म०

श्री भैंरुलालजी म०
श्री रतनलालजी म०
श्री नन्दलालजी म०
श्री हुक्मीचन्दजी म० (छोटा)

स्वा० श्री इन्दरमलजी म०
त० श्री मोहनलालजी म०

उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी म०
कविश्री चम्पालालजी म०
श्री सागरमलजी म०
प्रवर्तक श्री वृद्धिचन्दजी म०, सेवाभावी श्री सन्तोषचन्दजी म०
तपस्वी मंगलचन्दजी म०
पं० श्री भगवती मुनिजी म०
तपस्वी श्री विमलमुनिजी म०
श्री वीरेन्द्र मुनिजी म०
मधुरवक्ता श्री मूलचन्दजी म०
व्याख्यानी श्री ऋषभ मुनिजी म०
मधुर गायक श्री प्रमोद मुनिजी म०

कविश्री केवलचन्दजी म०
तपस्वी श्री विजयराजजी म०
त० श्री वसन्तीलालजी म०
श्री ताराचन्दजी म०
प्रवर्तक श्री मगनलालजी म०
तपस्वी श्री नेमीचन्दजी म०
श्री दिनेश मुनिजी म०
तपस्वी श्री गौरीलालजी म०
तपस्वी सागरमलजी म०
अवधानी श्री अशोक मुनिजी म०
तपस्वी श्री मेघराजजी म०
सेवाभावी श्री सुदर्शन मुनिजी म०

पं० श्री वर्द्धमान जी म०, श्री मन्नालालजी, म० त० श्री वक्तावरमलजी म०, श्रीगणेश मुनिजी म०, तपस्वी श्री पन्नालालजी म०, पं० श्री उदय मुनिजी म०

श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन

में

उदारतापूर्वक आर्थिक सहयोग

प्रदान करने वाले सद्गृहस्थों का

चित्र एवं परिचय

सहयोगी परिचय

परिशिष्ट

श्री जैन दिवाकर स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशन निमित्त कोई स्थायी फण्ड या किसी संस्था विशेष का आर्थिक दायित्व अब तक हमने नहीं किया और न ही हम ऐसा चाहते। यद्यपि ग्रन्थ के सम्पादन-प्रकाशन का गुरुतर व्यय सामने था। और सम्वल था कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज की प्रेरणा-शक्ति का। हमें प्रसन्नता है कि स्व० गुरुदेव के भक्त वर्ग ने अपने श्रद्धेय के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप भक्ति और श्रद्धा पूर्ण हृदय से उदारता के साथ हमारा सहयोग किया, और स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशन के व्ययसाध्य कार्य को सरल वनाया।

पं० मुनि श्री मूलचन्द जी महाराज ने भी इस कार्य के लिए कई सज्जनों को वलवती प्रेरणा दी। साथ ही देहली के उत्साही श्री नेमचन्द जी तातेड़ (चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट) श्री ज्ञानचन्द जी तातेड़, श्री कमलचन्द जी घोडावत आदि ने भी अथक प्रयत्न करके सहयोगी वनाये। हम इन सव के स्नेहपूर्ण सहयोग के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही उदार सहयोगियों का चित्र, परिचय व नामावली यहाँ क्रमपूर्वक प्रकाशित की जा रही है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ में प्रमुख उदार सहयोगी : सचित्र परिचय

श्रीमान रतनचन्दजी रांका, कडपा (आं० प्र०)

आपका जन्म १५ अक्टूबर १६३८ को बाड़मेर (राजस्थान) के अन्तर्गत राखी ग्राम में स्व० श्रीमान जसराज जी रांका के घर पर माताजी श्रीमती वरजूबाई की कुक्षि से हुआ।

आपके माता-पिता दोनों ही अत्यंत धर्मपरायण, सुसंस्कार सम्पन्न सद्गृहस्थ थे। आपको धार्मिक संस्कार वचपन से ही विरासत में मिले। धार्मिक कार्यों की तरफ आपकी प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही रही है।

प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् १२ वर्ष की अल्पायु में आप व्यवसाय के लिए कलकत्ता गये। पश्चात् सन् १६६० से आं. प्र. के कडपा शहर में आंध्रा इंडस्ट्रियल वर्क्स की स्थापना से आपने औद्योगिक क्षेत्र में पदार्पण किया, जिससे १६७३ तक आप सम्बन्धित रहे। सन् १६६४ में रांका केवल कार्पोरेशन की स्थापना की जो सन् १६७५ में एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के रूप में परिवर्तित हो गई। यह संस्थान कण्डक्टर व्यवसाय में देश-विदेश में अपनी अच्छी प्रतिष्ठा रखता है। वम्वई में रांका मेटल वर्क्स तथा अहमदावाद में रांका टेक्स टाइल्स के नाम से आपकी दो फर्में हैं।

व्यावसायिक प्रगति के साथ-साथ आप सामाजिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों में भी सदा अग्रणी रहे हैं। आप अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष व सक्रिय सदस्य हैं।

वर्तमान में निम्न संस्थाओं से आप सम्बन्धित हैं—

० भगवान महावीर जनरल अस्पताल व रिसर्च सेंटर (सुमेरपुर)
—चेयरमेन

० भगवान महावीर पोस्ट ग्रेजुएट सेंटर श्री वेंकटेश्वरा युनिवर्सिटी, एडवाइजरी कमेटी
—सदस्य।

० कडपा डिस्ट्रिक्ट जनरल अस्पताल एडवाइजरी कमेटी—सदस्य।

० कडपा चेम्बर आफ कामर्स व इण्डस्ट्रीज—सदस्य

० आपने अभी हाल ही में विभिन्न २३ देशों की यात्रा की है। जिनमें कनाडा, अमेरिका, जापान, जर्मनी, हालैण्ड, फ्रांस, ताइवान, स्वीट्जरलैण्ड आदि प्रमुख हैं।

आप धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में बड़ी उदारता पूर्वक समय-समय पर सहयोग करते रहते हैं। साहित्य प्रकाशन में आपका विशेष सहयोग अनेक संस्थाओं को मिलता रहा है। भविष्य में आपके उदार सहयोग का हाथ सदा प्रवर्धमान रहे। श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ में आपने मुक्त हृदय से सहयोग प्रदान किया है।
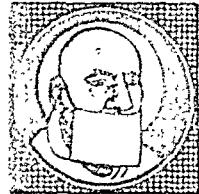
श्रीमान रतनकुमार जी जैन, बम्बई

श्री रतनकुमार जी जैन मूलतः आगरा निवासी हैं। आगरा लोहामण्डी जैन समाज के प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ स्व० श्री मक्खनलालजी जैन आपके पिता व स्व० श्रीमती दुर्गादेवी आपकी माताजी थीं। आपका जन्म २४ फरवरी, १९३४ को हुआ।

आगरा में प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् बम्बई के मारवाड़ी विद्यालय में आपने हिन्दी-गुजराती-मराठी-इंगलिश-उर्दू व बांगला आदि भाषाओं का ज्ञान व शिक्षण प्राप्त किया।

सन् १९३३।३४ में आप आगरा में स्व० श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सम्पर्क में आये, तब से उनके प्रति आपकी अगाध श्रद्धा है। शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी महाराज, पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज, कविश्री अमरचन्दजी महाराज, श्री रतनचन्द्रजी महाराज, कविश्री केवल मुनिजी आदि अनेक विद्वान् सन्तों के सम्पर्क से आपके विचार सदा धर्मानुकूल रहे और रहे पक्षपात-मुक्त गुणग्राही।

व्यवसाय के क्षेत्र में आपकी प्रतिभा अच्छी चमकी है। आगरा, कलकत्ता, बम्बई आपके व्यवसाय केन्द्र रहे हैं।

लोह-स्टील व्यवसाय में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है। बम्बई में नित्यानन्द स्टील रोलिंग मिल्स, नेरल (जि० कोलाबा) में आपकी स्टील फैक्ट्री है।

आप (१) बोम्बे आइरन मर्चेण्ट एसोसियेशन व (२) आइरन एण्ड हार्डवेयर मर्चेण्ट्स ऐसोशिएशन बम्बई के डाइरेक्टर रह चुके हैं। सन् १९७७ में दारुखाना आइरन मर्चेण्टस् ऐसोसियेशन लि. के मैनेजिंग डाइरेक्टर भी रहे।

अनेक समाज सेवी तथा धार्मिक संस्थाओं में आप उदारतापूर्वक सहयोग करते रहते हैं। वीरायतन (राजगृह) के आप उपाध्यक्ष हैं। महावीर मेडिकल रिसर्चसेंटर के ट्रस्टी तथा अनेक संस्थाओं के संरक्षक सदस्य हैं। शिक्षा एवं चिकित्सा के क्षेत्र में आप उदारतापूर्वक सदा मुक्त हृदय से दान करते रहते हैं। फिर भी आप नाम एवं यश की भावना से सदा दूर रहते हैं। आपका हँसमुख चेहरा, निश्छल स्नेह और उदारवृत्ति प्रत्येक मिलने वाले के हृदय में अंकित हो जाती है।

कविरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज की प्रेरणा से आपने जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ में सहयोग की प्रमुख भूमिका निवाही है।

सहयोगी सज्जन

उदारचेता दानवीर श्री रतनचन्द जी रांका
कडपा (आ० प्र०)
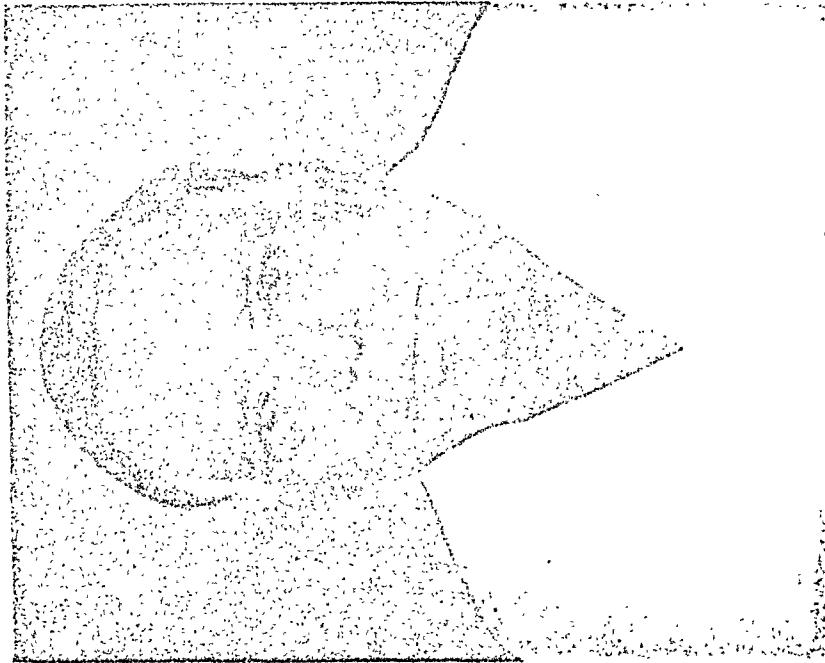
धर्मप्रेमी उदार हृदय श्री रतनकुमार जी जैन
(बम्बई)

सहयोगी सज्जन
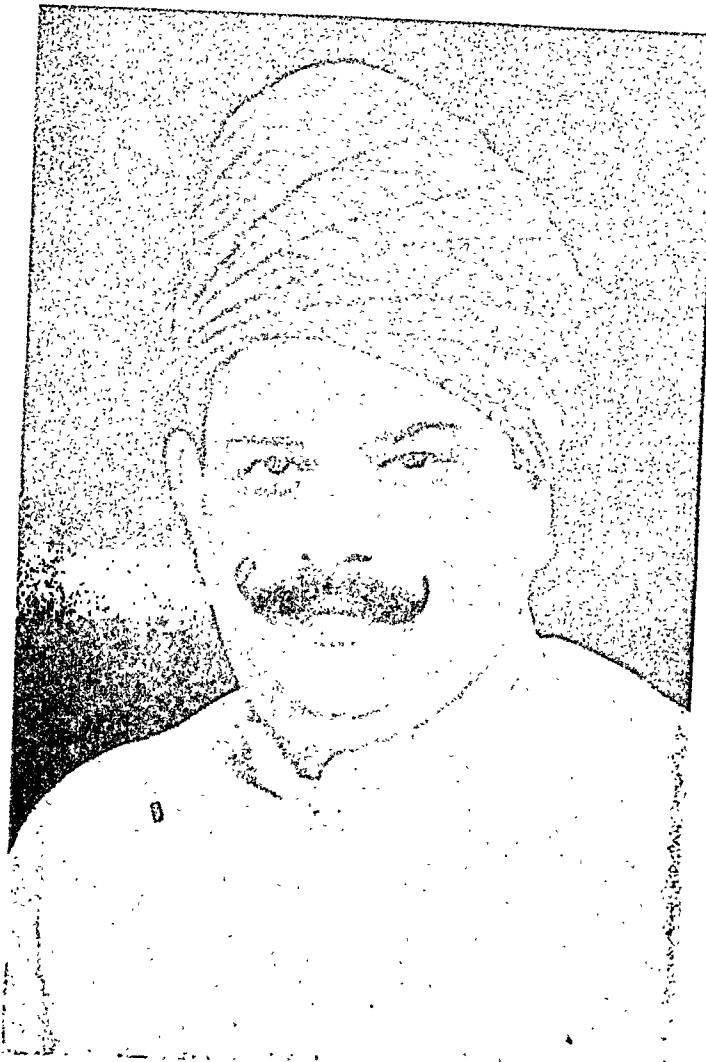
स्व० श्री नेमीचन्दजी बांठिया
बगड़ी (मारवाड़)

स्व० श्रीमान नेमीचन्दजी बांठिया, बगड़ी (मारवाड़)

स्व० श्रीमान नेमीचन्दजी बांठिया एक मिलनसार, हँसमुख प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले सज्जन थे। आपका जन्म राजस्थान के बगड़ी नगर में १५-१-१९१९ को श्रीमान हीराचन्दजी बांठिया की धर्मपत्नी मातेश्वरी श्री मैनाबाई की कुक्षि से हुआ। युवा होने पर आपका पाणिग्रहण सादड़ी (मारवाड़) निवासी श्रीमान ओटरमलजी कावेडिया की सुपुत्री धर्मानुरागिणी श्री मदनबाई के साथ सम्पन्न हुआ। सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक कार्यों में आप दोनों की ही सदा रुचि रही है और उदारतापूर्वक सहयोग भी मिलता रहा है।

श्रीमान नेमीचन्दजी का ४४ वर्ष की लघुवय में बगड़ी में अकस्मात् स्वर्गवास हो गया।

श्रीमती मदनबाई धर्म में अडिग आस्थावाली बहुत ही उदार और तपस्विनी महिला है। दान और तपस्या दोनों में ही आपकी विशेष रुचि है। मासखमण तप भी आप कर चुकी हैं।

आपके भाई श्रीमान पारसमलजी कावेडिया भी बड़े धर्मप्रेमी व उदारहृदय है। आप दानवीर भामाशाह के वंशज हैं। 'एच० नेमीचन्द जैन ज्वेलर्स' (आरकाट) फर्म का संचालन भी अभी आप ही करते हैं। बहन की धर्म एवं दान-भावना में आप सदा सहयोगी रहते हैं। आपके माताजी, आपकी धर्मपत्नी दोनों ही धर्मानुरागी हैं। बच्चे भी सभी सुसंस्कारी हैं।

श्रीमान पारसमलजी ओटरमलजी कावेडिया, आरकाट

श्रीमान पारसमलजी कावेडिया सादड़ी (मारवाड़) निवासी हैं वर्तमान में आप आरकाट में सोने-चाँदी का व्यापार करते हैं।

आप बहुत ही उदार, सरल और धर्मप्रेमी हैं। आपकी माताजी भी बड़ी धर्मात्मा हैं। आपकी धर्मपत्नी बहुत ही धर्मशीला हैं। आपकी सुपुत्रियों एवं पुत्रों में धर्म के संस्कार पूर्णतः परिलक्षित होते हैं।

आपने धर्म एवं समाज सेवा के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। सादड़ी (मारवाड़) में जैन स्थानक के उद्घाटन का शुभ कार्य आपके हाथ से ऊँची बोली बोल कर आनन्द सम्पन्न हुआ। अनेक संस्थाओं को भी दान दिया है।

आपकी बहिन श्रीमती मदनबाई (धर्मपत्नी श्री नेमीचन्दजी बांठिया) बहुत ही बड़ी उदार और तपस्विनी है। मासखमण का तप आप कर चुकी है। वर्षीतप और अनेक तपस्याएँ आपने की हैं।

आप जैन दिवाकरजी महाराज के प्रति बहुत भक्ति-भावना रखते हैं। स्मृतिग्रन्थ में प्रसन्नतापूर्वक सहयोग प्रदान किया है। तथा आपकी उदारता से अनेक व्यक्तियों को स्मृतिग्रन्थ भेंट दिया जायेगा।

स्व० सेठ स्वरूपचन्द जी तालेरा, ब्यावर

ब्यावर के प्रमुख एवं सुप्रसिद्ध श्रीमान् सेठ स्वरूपचन्दजी तालेरा से जिसने एक बार भी भेंट की, वह अपने जीवन में उन्हें कभी नहीं भूल सकता, यह उनके स्वागत-सत्कार व वात्सल्य भावना की अपनी नीजि विशेषता थी।

आपका जन्म सं० १९४८ में मंवरी (मारवाड़) में हुआ, अपने पिता श्री कुनणमलजी तालेरा की छत्रछाया में बाल्यकाल सुख पूर्वक व्यतीत कर आप सं० १९५६ में ब्यावर पधारे एवं यहीं विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। शिक्षा की ओर विशेष रुचि न होने के कारण आपने कुछ वर्ष बाद ही नौकरी कर ली और व्यापारिक क्षेत्र की विशेष जानकारी करने में दिलचस्पी रखी। सन् १९१८ में आपने ऊन का व्यापार शुरू किया, भाग्य ने आपका साथ दिया, लक्ष्मी ने आपको वरद हाथों से वरा और इस प्रकार आपने आशातीत सफलता प्राप्त की। बम्बई में आपने बड़े पैमाने पर ऊन का कारोबार बढ़ाया और भारत ही नहीं, विलायतों में भी अपनी प्रामाणिकता एवं कार्य-कुशलता की छाप जमाई। इस प्रकार लाखों की सम्पत्ति का उपार्जन कर आप पूर्ण वैभवशाली बने।

स्व० जैन दिवाकर गुरुदेव चौथमलजी महाराज साहब के आप परम भक्त हैं, गुरुदेव के प्रति आपकी प्रगाढ़ श्रद्धा एवं अटूट स्नेह था। धर्म गुरु के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा का परिचय, आपने धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में विशाल हृदय से लक्ष्मी का सदुपयोग कर संस्थाओं को ऊँचा उठाने एवं धार्मिक प्रचार करने में पूर्ण सहयोग दिया जो कि सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

(शेष पृष्ठ ५८३ पर)

लक्ष्मीचन्द जी तालेरा

आप स्व० सेठ श्री स्वरूपचन्दजी तालेरा के द्वितीय सुपुत्र हैं। पिता की तरह आप भी बड़े उदार, मिलनसार तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवा कार्यों में विशेष उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।

आपका जन्म १६ मार्च, १९३७ को ब्यावर में हुआ। शिक्षा प्राप्त कर आपने अपना पैतृक व्यवसाय तो सँभाला ही, साथ ही नये उद्योगों का भी प्रारम्भ किया।

०कुन्दनमल स्वरूपचन्द, ब्यावर
०ओसवाल केबल्स प्रा० लि०, जयपुर
०ओसवाल इण्डस्ट्रीज, जयपुर
ये आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं।

आप वर्तमान में अनेक समाज-सेवी संस्थाओं के अधिकारी हैं—अध्यक्ष—

१. जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर
२. उपाध्याय प्यारचन्द जैन छात्रालय, ब्यावर
३. आयंबिल खाता, ब्यावर
४. श्री जैन दिवाकर फाउण्डेशन, ब्यावर
५. श्री मगनजैन सहायता समिति, ब्यावर

उपाध्यक्ष—अखिल भारतीय जैन दिवाकर संगठन समिति श्री जैन दिवाकर क्लिनिक, ब्यावर
ट्रस्टी—श्री जैन चतुर्थ वृद्धाश्रम, चित्तौड़
कोषाध्यक्ष—राजस्थान कंडक्टर मैन्युफैक्चरिंग एसोसियेशन, जयपुर

आपकी कार्यदक्षता व उत्साह से समाज को सदा लाभ मिलता रहेगा।
आपने स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में अच्छी सहायता प्रदान की है।

समाजरत्न, उदारमना कंवरलाल जी बेताला, गोहाटी (आसाम)

उदार हृदय, धर्मनिष्ठ, समाजरत्न सेठ श्रीमान् कंवरलाल जी वेताला अत्यन्त सरल हृदय एवं धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रति हार्दिक रूप से निष्ठावान, सज्जन प्रकृति के सुश्रावक हैं।

आपका जन्म वि० सं० १९८० डेह (नागौर) निवासी श्रीमान पूनमचन्द जी वेताला के घर श्रीमती राजाबाई की कुक्षि से हुआ। आप पाँच भाई हैं। जिसमें आपका चौथा क्रम है। आप अभी गोहाटी (आसाम) के अच्छे उद्योगी तथा साहसी व्यवसायी हैं। आप अनेक संस्थाओं के सक्रिय सहयोगी हैं। उदारतापूर्वक विविध रचनात्मक प्रवृत्तियों के आप उत्साह के साथ प्रायः दान देते रहते हैं। सन्तों की सेवा के प्रति तो जैसे आपके मन का कण-कण समर्पित है। श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति आपके हृदय में असीम श्रद्धा भक्ति है।

आपकी धर्म पत्नी श्रीमती विदामाबाई तथा आपके सुपुत्र श्री धर्मचन्द जी की धार्मिक रुचि भी प्रशंसनीय है। आपकी दो पुत्रियाँ श्रीमती कांता एवं ममता तथा पौत्र महेश, मुकेश आदि सभी की जैन संस्कृति के प्रति असीम आस्थाएँ हैं।

(शेष पृष्ठ ५८२ का)

आप सन् १९३३ से सेवा समिति व्यावर, के सभापति एवं कोषाध्यक्ष रहे। जहाँ से करीब १५०-२०० रोगियों को हमेशा मुफ्त औषधि मिलती है, समिति के लिये ३१०१) रु० प्रदान कर आपने अपनी ओर से एक विशाल कमरा भी बनाया है। आप सन् १९५५ से ब्यावर श्रावक संघ के उपसंघपति, अहिंसा सभा के सभापति, जैन एसोसिएशन के प्रमुख सदस्य एवं सन् १९६२ से प्रेसीडेंट पद पर रहे। चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम चित्तौड़गढ़ के ट्रस्टी भी थे जहाँ आपने अपनी ओर से एक कमरा भी बनवा दिया है। जैन दिवाकर पुस्तकालय व्यावर व अजमेर संघ के धार्मिक भवन में भी एक-एक कमरा आपने अपनी ओर से बनवाया। व्यावर में आपने रु० १५०००) की एक मुश्त रकम निकाल कर "नालेरा पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट, व्यावर" की स्थापना की। नगर के चक्षु-दान यज्ञ में भी आप प्रतिवर्ष पूर्ण सहयोग देते रहे।

आपकी सहधर्मिणी श्रीमती ऐजन कंवरजी एक विशाल हृदय वाली धार्मिक वृत्ति की महिला है, धार्मिक प्रसंगों एवं व्यवहारिक कार्यों में हजारों को खिलाकर खाने में ही आपकी विशेष रुचि है। वृद्धावस्था होते हुए भी नियमव्रत में दृढ़ है सन्त-सतियों की सेवा में तत्पर रहती है।

आपके दो सुपुत्र हैं—श्रीमान् निहालचन्दजी एवं श्री लक्ष्मीचन्दजी।

श्री निहालचन्दजी सरल हैं। श्री लक्ष्मीचन्दजी उत्साही युवक हैं। नम्र, सरल, उदारवृत्ति वाले हैं। आपकी धर्मपत्नी भी बहुत धर्मात्मा एवं उदार हैं।

श्रीमान् नालेराजी का २५ अप्रैल, १९६९ को स्वर्गवास हो गया।

स्व० माँगीलाल जी बडेर, देहली

देहली के स्थानकवासी जैन समाज में बडेर परिवार सदा से ही धर्म एवं समाज की सेवा में अमूल्य सेवाएँ देता रहा है। श्रीमान् रिखवचन्दजी बडेर के पिता स्व० जौहरी श्री मांगीलालजी बडेर भी एक श्रावक रत्न थे। आप व्यापार के क्षेत्र में नीलम (जवाहरात) के प्रसिद्ध पारखी एवं व्यापारी थे।

आपका हृदय बहुत ही उदार तथा दया पूर्ण था। जो भी आपके पास भावना लेकर आया वह खाली हाथ नहीं लौटा। आपका साहस और धैर्य तो बड़ा प्रशंसनीय था। जब आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री चम्पालालजी तथा मध्यम पुत्र श्री मुन्नालालजी का स्वर्गवास हुआ तो आपने उनको अन्तिम समय में धर्म सहयोग कराने में अद्भुत साहस का परिचय दिया। सन्तों को बुलाकर मृत्युशय्या पर पड़े पुत्रों को यावज्जीवन संथारा कराकर उनका जीवन सार्थक कराया यह बड़े ही आदर्श की बात है। इस प्रकार आपके जीवन-व्यवहार में धर्म और त्याग भावना पग-पग पर साकार थी। आप जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के प्रति बड़ी ही श्रद्धा भावना रखते थे। गुरुदेव श्री की भी आप पर तथा आपके परिवार पर असीम कृपा थी। आपने विक्रम संवत् १९९३ आसोज सुदि पंचमी को ५६ वर्ष की आयु में शान्तिपूर्वक संथारा करके देह-त्याग किया।

तपस्विनी श्रीमती मीनादेवी, बडेर

धर्मनिष्ठ उदारचेता श्रीमान् रिखवचन्दजी बडेर की धर्मपत्नी सौ० मीना देवी जी बहुत धार्मिक संस्कार सम्पन्न, तपस्या एवं दान-धर्म में विशेष रुचि वाली महिला रत्न हैं। आपने अपने स्व० स्वसुर श्रीमान् मांगीलालजी बडेर एवं सास स्व० श्रीमती विनय कंवर जी की काफी सेवा की। धर्म एवं समाज सेवा के प्रत्येक कार्य में आप उदारतापूर्वक सहयोग देती रहती हैं। श्रीमान् रिखवचन्दजी साहब भी आपकी धार्मिक प्रवृत्तियों को सदा प्रोत्साहन देते रहते हैं।

आपने अनेक तपस्याएँ की है। मुख्यतः १ से १५ उपवास तक की लड़ी। ४ अठाई ६ वर्षी तप, एक मास का आयंबिलतप किया है। इस वर्ष (१९७८) श्री केवल मुनि जी महाराज के चातुर्मास में आपने मासखमण तप किया है। आप शरीर से अवश्य दुर्बल हैं पर आत्म-बल बहुत प्रखर है। आपके दो सुपुत्र—श्री महेन्द्रकुमार व श्री राजेन्द्रकुमार तथा—दो पुत्रियाँ—श्रीमती पवन कुमारी तथा श्रीमती फूल कुमारी हैं। सभी परिवार बड़ा ही धर्मप्रेमी, उदार हृदय और समाज सेवा में अग्रणी है। श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ में आपने अच्छा सहयोग किया है।
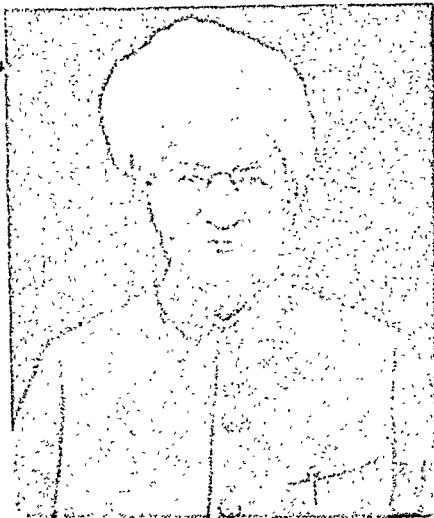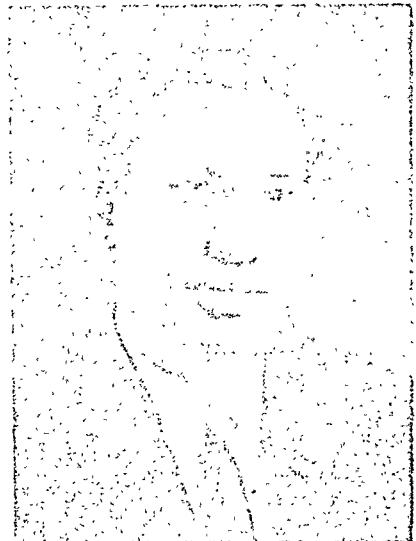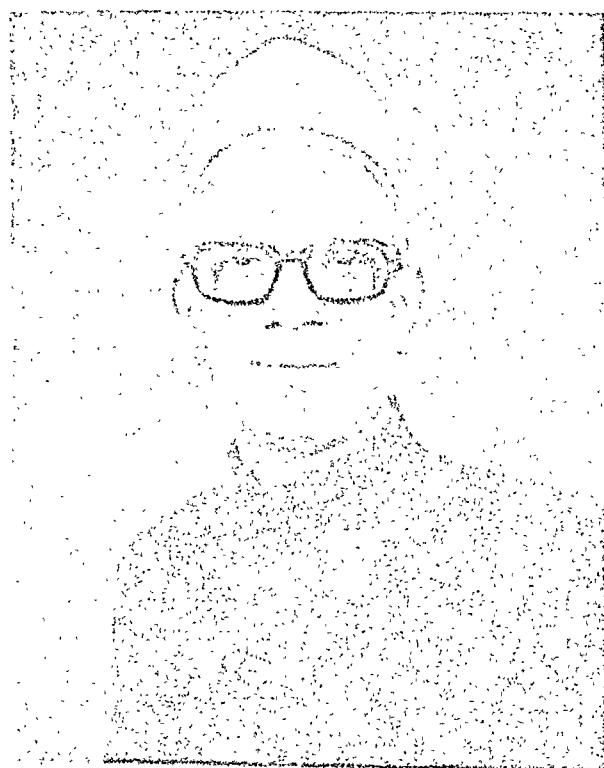
स्व० श्री मागीलाल जी वडेर, देहली

सौ० श्रीमती मीनादेवी वडेर, देहली

सहयोगी सज्जन

सेठ कालूसिंह जी मुणोत, ब्यावर

श्री कंवरमल जी चोपड़ा, ब्यावर
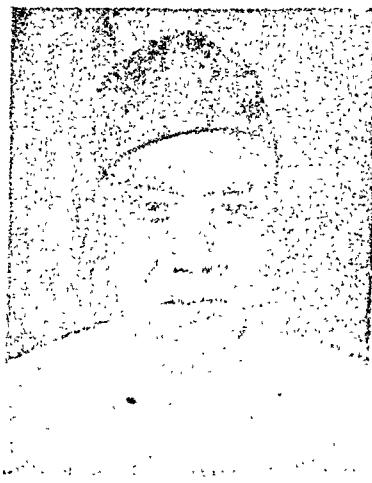
सेठ कालूसिंह जी मुणोत, ब्यावर

श्रीमान् सेठ कालूसिंहजी मुणोत ब्यावर के प्रमुख सर्राफों में से एक है। आपका परिवार मूलतः किशनगढ़ का निवासी है। आप सं० १९८४ में ब्यावर आये और यहाँ अपना सर्राफा का व्यवसाय बढ़ाया। आपके तीन पुत्र श्री केशरसिंहजी, श्री सुमेरसिंहजी, श्री चाँदसिंहजी हैं और पुत्री सुश्री प्रह्लाद कंवर जिनका विवाह पाली हुआ है।

आपश्री ने समय-समय पर समाज-सेवा में भी धन का सदुपयोग किया है। रूपनगढ़ स्थानक के निर्माण के लिए आपने आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

प्रसिद्ध वक्ता श्री जैन दिवाकर जी महाराज साहब के शताब्दि वर्ष के अवसर पर स्थापित अस्पताल के लिये एवं छात्रावास के लिये भी सहायता प्रदान की। श्री दिवाकर जैन लायब्रेरी भवन में भी अपनी पूजनीया मातु श्री की स्मृति में एक कमरे का निर्माण करवाया है।

सेठ कचरमल जी चोपड़ा, जावद

जावद (जि० मंदसोर) एक अच्छा कस्बा है। यहाँ अनेक धर्मप्रेमी समाजसेवी सज्जन निवास करते हैं। श्रीमान् सेठ कचरमल जी चोपड़ा यहाँ के अच्छे प्रतिष्ठित श्रावक तथा प्रमुख नागरिक हैं।

आप स्व० सेठ मगनमलजी चोपड़ा के सुपुत्र हैं। आपका परिवार सदा से समाज एवं राजकीय कार्यों में अग्रणी रहा है। श्री चोपड़ा जी स्वयं भी मंडी कमेटी, म्युनिसिपल कमेटी के अध्यक्ष तथा आनरेरी मजिस्ट्रेट आदि पदों पर रहकर सेवा कार्य करते रहे हैं।

आप स्व० गुरुदेव श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिभावना रखते आये हैं। उनके प्रेरक प्रवचनों से आपके जीवन में धर्म श्रद्धा विशेष सुदृढ़ हुई।

आप कई भाई-बन्धुओं का बड़ा परिवार है। धर्म-ध्यान तथा सामायिक आदि कार्यों में आपकी विशेष रुचि है। सामाजिक सेवा कार्यों में सहयोग भी करते रहते हैं। आपका अनाज का व्यवसाय है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ में आपने अच्छा सहयोग प्रदान किया है।

स्व० सेठ छगनमलजी बोरा, स्व० सेठ वस्तीमलजी बोरा

व्यावर निवासी श्रीमान छगनमलजी व वस्तीमलजी बोरा दोनों सगे भाई थे। आप दोनों बन्धुओं में परस्पर स्नेह एवं प्रेम प्रशंसनीय था। धार्मिक भावना बडी दृढ़ थी। स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० के प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा थी। गुरुदेव की सद्प्रेरणा से आपने व्यापार में सदा ही प्रामाणिकता और नीतिमत्ता अपनाई और इसी के परिणामस्वरूप रूई एवं ऊन के व्यापार में दूर-दूर तक बहुत प्रसिद्धि भी पाई और सफलता भी। गुरुवर्य के उपदेशों से आप बन्धुओं में दानशीलता भी निरन्तर बढ़ती गई और ज्यों-ज्यों दानवृत्ति बढ़ी, व्यापार फला-फूला।

श्रीमान छगनमलजी के एक पुत्र—श्री घीसुलालजी तथा चार पुत्रियाँ हैं। श्री वस्तीमलजी के पाँच पुत्र हैं—श्री मिश्रीलालजी, मोतीलालजी, अमरचन्दजी, राजेन्द्रप्रसादजी और लक्ष्मीचन्दजी एवं पुत्रियाँ भी हैं। दोनों भाइयों का भरा-पूरा परिवार बड़ा ही धर्मप्रेमी तथा सुसंस्कारी है। गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी महाराज के स्मृतिग्रन्थ में श्रद्धांजलि स्वरूप वोहरा परिवार ने उदार सहयोग प्रदान किया है।

✡✡

श्रीमती वीरनदेवी पारख, दिल्ली

आप श्रीमान खेमचन्दजी पारख की धर्मपत्नी हैं। धार्मिक भावना एवं तपस्या की विशेष रुचि और दानशीलता आपकी विशेषता है। आपने ८/११/१५ आदि तपस्याएँ की हैं। मासखमण तप और वर्षीतप भी किया है।

श्रीमान खेमचन्दजी भी आपको दान-तप आराधना में सदा सहयोग देते रहते हैं। आपकी प्रवृत्ति परोपकार व लोक-हितकारी कार्यों में विशेष है। ६४ वर्ष की आयु में भी आप सामाजिक कार्यों में उत्साह से भाग लेते हैं। आप श्रीमान स्व० हिम्मतसिंह जी पारख के सुपुत्र हैं।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ में आपका अच्छा सहयोग मिला है।

श्रीमान केसरसिंहजी खमेसरा व उनकी धर्मपत्नी सौ० पदमबाई उदयपुर

श्री केसरसिंह जी ने धर्मप्रेमी स्व० श्रीयुत मूरालालजी सा० खमेसरा की धर्मपत्नी स्व० नाथबाई की कोख से सन् १९१२ में उदयपुर शहर में जन्म लिया। विद्याध्ययन के बाद आप रेलवे सेवा में आये, जहाँ करीब ३८ वर्ष तक स्टेशन मास्टर पद पर उदयपुर, चित्तौड़गढ़, पालनपुर, कान्डला पोर्ट, ब्यावर, सोजतरोड आदि स्टेशनों पर कार्य करते रहे। सौ० पदमबाई धर्मप्रेमी श्रद्धालु स्व० श्री कस्तूरचन्दजी सा० बोरदिया व स्व० श्रीमती चाँदबाई की सुपुत्री हैं।

इनके दो पुत्र श्री मनोहरसिंह इन्जीनियर व श्री नरेन्द्रसिंह इन्जीनियर है तथा दो पुत्रियाँ सौ० विमला व सौ० शोभा है। जिनकी शादी हो चुकी है। श्री मनोहरसिंह जी कानपुर में सलाहकार हैं व श्री नरेन्द्र सिंह जी मुजफ्फरनगर में बैंक सेवा में हैं।

पूरे परिवार को धर्म से बहुत लगाव है व जैन दिवाकरजी महाराज के अनन्य भक्त हैं।

आपने स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में उदार सहायता प्रदान की है।

श्रीमान इन्द्रसिंहजी बावेल उदयपुर

उदयपुर निवासी जैन दिवाकरजी महाराज के परम भक्त श्रीयुत मालमसिंह जी बावेल के सुपुत्र श्री तेजसिंहजी बावेल के यहाँ ५ मई, १९४३ को आपका जन्म हुआ।

आप बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। शुरू से ही आपका परिवार धर्मरत रहा है, यही कारण है कि आपकी बहिन श्री चन्दनबालाजी जो अब महासती चन्दनबाला जी महाराज हैं १३ वर्ष की लघु अवस्था में ही विदुषी महासती श्री कमलावती जी के चरणों में दीक्षित बनी हैं।

आपका बाल्यकाल बड़ा ही संघर्षपूर्ण स्थिति से गुजरा, किन्तु इन संघर्षों के बावजूद आप बाल्यकाल से ही अत्यधिक परिश्रमी एवं मेधावी रहे, हाईस्कूल तक विद्या प्राप्त करने के पश्चात् आपकी नियुक्ति, दी उदयपुर सेन्ट्रल को-आपरेटिव बैंक लि०, उदयपुर में एक लिपिक के पद पर हुई, अपने सेवा-काल में ही स्नातक (बी० ए०) की उपाधि प्राप्त की। साथ ही अपने मृदुव्यवहार से अपने समस्त सहकर्मियों का स्नेह अर्जित किया।

समाज में व्याप्त कुरीतियों के लिए सदा से आप विपक्ष में रहे हैं।

संप्रति आप मुख्य लेखपाल के पद पर कार्यरत हैं तथा अखिल राजस्थान सहकारी बैंक अधिकारी एसोसियेशन के संयुक्त महामन्त्री भी हैं।

सदा से ही श्री इन्द्रसिंहजी बावेल का समाज संगठित एवं पठन-पाठन कर रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशन में आपका अच्छा सहयोग मिला है।

श्रीमान सोहनलालजी भटेवरा, कोशीथल

श्री सोहनलालजी अत्यन्त उदार, मिलनसार, सरल व सरस प्रकृति के धनी हैं। नवयुवक होने पर भी आपमें धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा है। आपमें धार्मिक भावना पैदा करने का श्रेय आपके पूज्य पिता श्री किस्तूरचन्दजी को है। किस्तूरचन्दजी बड़े ही प्रतिभासम्पन्न थे। स्वाध्यायशील होने के कारण पर्युषण पर्व के दिनों में सन्तों के अभाव में वे स्वयं प्रवचन किया करते थे। श्री सोहनलाल जी ने पूज्य पिताजी के नाम पर चार चाँद लगा दिये हैं।

व्यापार के क्षेत्र में जैसे उन्होंने ख्याति प्राप्त की है वैसी ही ख्याति धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में भी प्राप्त की है। आपकी जन्मस्थली वीरभूमि मेवाड़ में कोशीथल की है और आपका व्यवसाय अहमदाबाद में है।

श्री सोहनलालजी साहब के पांच भाई थे, जिनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं—श्रीमान् तखतमलजी, श्रीमान् चुनीलालजी, श्रीमान् कुन्दनलालजी, श्रीमान् राजमलजी श्रीमान् सोहनलालजी।

इन पाँचों भाइयों की जोड़ी पांडवों के समान थी, उसमें से दो भाई तखतमलजी तथा भाई चुनीलालजी साहब का स्वर्गवास हो गया है। अन्य सभी भाइयों में भी धार्मिक भावनाएँ व उत्साह अपूर्व है। आपका सम्पूर्ण परिवार धर्मप्रेमी है।

✡✡

श्रीयुत गोपालचन्दजी चौधरी, अलवर

आप अलवर निवासी स्व० श्रीमान चांदमलजी चौधरी के सुपुत्र हैं। बचपन से ही आप अच्छे प्रतिभाशाली रहे हैं। निष्ठापूर्वक अध्ययन करते हुए आप अपनी प्रतिभा, लगन और कार्यकुशलता के कारण सदा प्रगति करते रहे हैं।

आपने उच्च शिक्षा के लिए पिलानी कालेज में अध्ययन किया। वहाँ से मैकेनिकल इंजीनियरी परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्णता प्राप्त की। अभी आप सिमको वेगन फैक्ट्री (भरतपुर) में ज्वाइंट प्रेसिडेन्ट पद पर अपना दायित्व कुशलतापूर्वक निबाह रहे हैं।

आपकी धर्मपत्नी सौ० श्री लाड़कुमारी बहुत ही विवेकशील चतुर गृहिणी हैं। धर्मध्यान में भी विशेष रुचि रखती हैं। आपके दो पुत्र और दो पुत्रियां हैं। वे भी आपकी तरह सुसंस्कारी और धार्मिक भावना वाले बड़े होनहार हैं।

श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज साहब के प्रति आपके पिताश्रीजी की बड़ी श्रद्धा थी। आप भी श्री केवल मुनिजी महाराज साहब के प्रति बड़ी भक्ति-भावना रखते हैं। इस ग्रन्थ प्रकाशन में आपने उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान किया है।
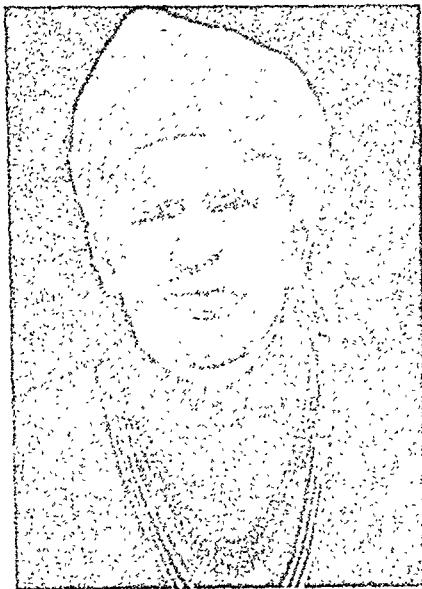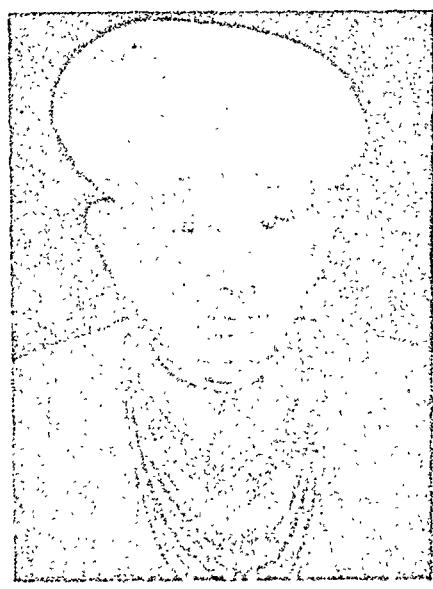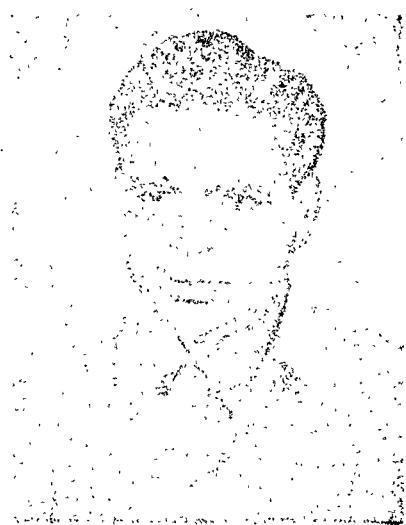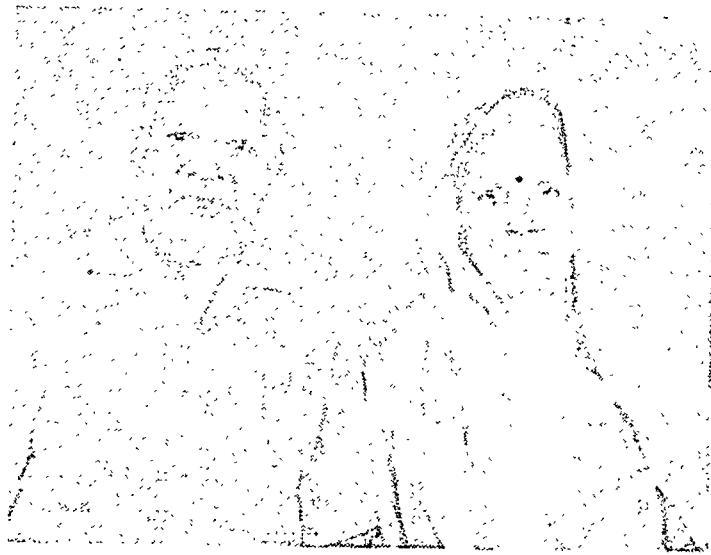
श्री केशरसिंह जी खमेसरा सौ० पदमबाई
उदयपुर

श्री गोपालचन्द जी चौधरी
अलवर

सहयोगी सज्जन

सेठ श्री मदनलाल जी चोरड़िया
सौ० मोहनकंवर चोरड़िया

श्री मोहनलाल जी भटेवरा
कोशीथल

श्रीमान सेठ मदनलालजी चोरड़िया, मदनगंज

आपका जन्म वि० सं० १९८९ आसोज सुदि ५ को सेठ श्री स्व० नेमीचन्दजी चोरड़िया के घर में हुआ। सुसंस्कारी परिवार में आपका पालन-पोषण हुआ तथा जीवन विशेष धर्मध्यान, समाजसेवा आदि कार्यों में लगा।

आपका कपड़े का अच्छा व्यवसाय है। साथ ही लघु उद्योगशाला के अधिकारी भी हैं। आप जिस प्रकार व्यापार में कुशल हैं, उसी प्रकार जीवन के अभ्युत्थान में भी सदा जागरूक व कुशल रहे हैं। नियमित धर्मध्यान करना, सामाजिक संस्थाओं को समय-समय पर उदारतापूर्वक सहयोग करना आपकी रुचि का कार्य है। ज्ञान दान, विद्या दान और औषध दान करने में आपको अधिक प्रसन्नता रहती है। साधु-सन्तों की सेवा में आप हर समय तत्पर रहते हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मोहनकंवर बाई भी आपकी भांति धर्मशीला संस्कारी महिला हैं। श्री जैन दिवाकर स्मृति-ग्रन्थ में आपने अच्छा सहयोग दिया है।

स्व० श्रीमान माणकचन्दजी तातेड़, दिल्ली

आप श्रीमान ला० कल्लूमल जी तातेड़ के पुत्र थे। आप स्वभाव से बड़े ही धार्मिक, उदार और व्यापार में नीति निष्ठ थे। आपकी धर्मपत्नी श्री शरबतीदेवी भी आपकी तरह ही धर्मशीला और साधु-सन्तों की सेवा करने में माता की तरह थीं। धर्म साधना करना, दान देना, संतों की सेवा करना और साधर्मि भाइयों का वात्सल्य करना—इनमें आपको बड़ा आनन्द आता था।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सुशिष्य कवि श्री पंनालालजी महाराज जब देहली में अस्वस्थ थे तब आपने बड़ी श्रद्धा और विवेक के साथ सेवा का लाभ लिया था।

स्व० श्री माणकचन्दजी के तीन सुपुत्र हैं—१. पूनमचन्दजी, २. श्री कमलचन्दजी, ३. श्री ज्ञानचन्दजी। आपकी पुत्रियाँ हैं सौ० पदमा, सौ० विमला। सभी की धर्मसाधना बड़ी सराहनीय है। सभी का परिवार धार्मिक संस्कारों वाला सुखी तथा सुसंस्कारी है।

श्री ज्ञानचन्दजी बहुत ही उदार हृदय, सेवा-भावी तथा उत्साही युवक हैं। श्री माणकचन्दजी के समय से ही आपका गोटे का व्यवसाय चला आ रहा है, आपने इस व्यवसाय में चार चाँद लगाये हैं।

दिनेशकुमार चन्द्रकान्त वेंकर, हैदराबाद

श्री दिनेशभाई चन्द्रकांत वेंकर हैदरावाद स्थानकवासी जैन समाज के प्रमुख उत्साही कार्यकता व युवावर्ग के आदर्श प्रेरणा केन्द्र है। अभी ३५ वर्ष की आयु में भी आपको धार्मिक व सामाजिक कार्यों में विशेष अभिरुचि है। स्थानीय समाज के प्रत्येक कार्य में आपका सहयोग मिलता रहता है। समाज के सत्साहित्य प्रचार में आपको विशेष दिलचस्पी है। समय-समय पर साहित्य प्रकाशन में आपका उदार सहयोग मिलता रहता है।

आपका हैदरावाद में अच्छा स्टील व्यवसाय है। भारत स्टील इण्डस्ट्रीज् हैदरावाद के आप पार्टनर है।

आपके पिता श्री चन्द्रकांत भाई भी बड़ी सात्विक वृत्ति वाले धर्मप्रेमी उदार श्रावक है। व्यापार एवं धर्म दोनों क्षेत्रों में ही आप यशस्वी है।

प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन में आपने अच्छा सहयोग प्रदान किया है।

✡✡

स्व० श्री मिश्रीलालजी लोढा, देहली

आप श्रीमान स्व० श्री मोतीलालजी लोढा के सुपुत्र थे। आपको धार्मिक संस्कार तथा समाजसेवा की भावना पैतृक विरासत में मिली थी। त्यागी साधु सतियों की सेवा तथा दीन-दुखियों की सहायता में आप सदा अग्रणी रहते थे। चांदनी चौक वारादरी ट्रस्ट के संस्थापकों में से आप एक थे।

आपकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती लक्ष्मीवाई जी भी बड़ी धार्मिक विचार वाली धर्मशीला श्राविका थी। आपके सुपुत्र श्री हजारीलालजी एवं श्री केसरीचन्दजी दोनों ही बड़े धर्मप्रेमी तथा जवाहरात व्यापार में सुदक्ष सुप्रसिद्ध हैं। समाज-सेवा में दोनों ही अग्रणी रहते हैं। आपकी तीन सुपुत्रियाँ—श्रीमती मीनादेवीजी, श्रीमती धन्नोदेवीजी तथा सत्यवतीजी भी आपकी भांति ही धर्मानुरागिणी हैं। श्रीमती मीनादेवीजी (वडेर) ने अभी सितम्बर (१९७८) में मासखमण तप किया है।

श्रीमान हजारीलालजी एवं श्री केसरीचन्दजी ने पूज्य पिताजी की स्मृति एवं बहन मीनादेवी जी के मासखमण तपोपलक्ष्य में स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में सहयोग दिया है।

श्री दिनेश कुमार सी० दंकर
हैदराबाद

स्व० मिश्रीलाल जी लोढा
दिल्ली

सहयोगी सज्जन

स्व० श्रीमान नाणकचन्द जी तातेड़ एवं उनकी
धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वतीदेवी, दिल्ली

स्व० श्रीमान छुट्टनलाल जी तातेड़
दिल्ली

श्रीमान भेरुंसिंह जी जामड
मदनगंज

सहयोगी सज्जन
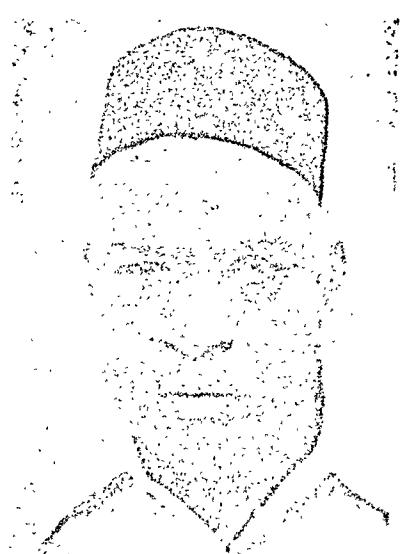
श्री मोहनलाल जी तातेड़, दिल्ली

सौ० नगीनादेवी तातेड़

मिस्रीमलजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर

दान अगर प्रसन्नतापूर्वक निरभिमान वृत्ति से दिया जाता है तो वह दान विशिष्ट दान कहलाता है। श्री धनराज जी विनायकिया एक ऐसे ही दानशील वृत्ति के सज्जन हैं। जब श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन की चर्चा चली तो आपने अपनी इच्छा से बिना किसी प्रेरणा के सर्वप्रथम अपने उदार सहयोग की घोषणा कर दी और कहा कि स्व० श्री जैन दिवाकर जी महाराज के असीम उपकारों से वर्तमान समाज को अवगत कराने का यह प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है। आप सदा ही धर्म एवं समाजोपयोगी कार्यों में विनम्रभाव पूर्वक सहयोग करते रहते हैं। दान देकर यश भावना भी नहीं रखते वे नाम व चित्र छपाने में भी संकोच करते हैं।

आपका मद्रास तथा ब्यावर में **'मिसरीमल धनराज विनायकिया'**—इसी नाम से अच्छा व्यवसाय है। व्यवसाय में अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके परिवार में भी धार्मिक भावना अच्छी है। श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति आपका पूरा परिवार भक्ति व श्रद्धा रखता है।

धर्मप्रेमी छल्लाणी परिवार, ब्यावर

ब्यावर निवासी छल्लाणी परिवार स्थानीय समाज में प्रत्येक कार्य में अग्रणी और कार्यशील रहता है। श्रीमान प्रेमराज जी, मोतीलाल जी, पुनमचन्द जी और नौरतनमल जी ये चारों भाई तथा आपका परिवार स्व० श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति गहरी श्रद्धाभावना रखता है। आपकी माताजी भी अत्यन्त श्रद्धाशील, धर्मपरायण तथा उदार स्वभाव की हैं। माता के संस्कार सन्तान में आते ही हैं, आप चारों भाइयों में परस्पर प्रेम तथा सहयोग की भावना है और व्यापार तथा सामाजिक कार्यों में एक-दूसरे के परामर्श तथा विचारों का मान रखते हैं। ब्यावर के महावीर बाजार में आपके व्यवसाय की अच्छी धाक है। प्रेम, नीतिमत्ता एवं प्रामाणिकता के सहारे आपके व्यवसाय में बहुत प्रगति तथा उन्नति की है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ के प्रकाशन में छल्लाणी परिवार ने अच्छा सहयोग किया है।

श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन श्रीसंघ, लोहामण्डी, आगरा

जैनधर्म विभूषण स्व० गुरुदेव श्री रतनचन्द्र जी महाराज के सदुपदेशों से प्रभावित लोहामण्डी आगरा का श्रीसंघ, सदा से ही धर्म-प्रभावना और समाजसेवा में अग्रणी रहा है। यहाँ पर अनेक वर्षों तक प्रवर्तक श्री पृथ्वीचन्द जी महाराज राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमर मुनि जी आदि का विराजना हुआ। साहित्य, शिक्षा आदि क्षेत्रों में समाज की चहुँमुखी गति-प्रगति होती रही।

श्रीसंघ के रजिस्टर्ड ट्रस्ट के अन्तर्गत दो महाविद्यालय (श्री रतनमुनि जैन गर्ल्स इण्टर कालेज तथा वोयज इण्टर कालेज) दो वाल मन्दिर, पुस्तकालय आदि अनेक शिक्षण संस्थाएँ चल रही हैं। समाज सुधार की दिशा में भी अनेक क्रान्तिकारी कार्यक्रम चलते रहते हैं

जैन दिवाकर जी महाराज के दो चातुर्मास आगरा लोहामण्डी में हो चुके हैं। लोहामण्डी धर्म-प्रेमियों ने वहुत धर्म का लाभ लिया। श्रीसंघ बहुत धर्मानुरागी है।

वर्तमान में अध्यक्ष हैं—श्री जगन्नाथ प्रसाद जी जैन

उपाध्यक्ष—श्री पदमकुमार जी जैन

कोषाध्यक्ष—श्री किशनमुरारी जी जैन

मन्त्री—श्री चन्द्रभान जी जैन
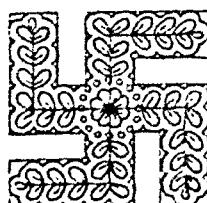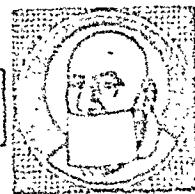
स्व० श्री छुट्टनलाल जी तातेड़, वकील (दिल्ली) की स्मृति में

श्रीमान छुट्टनलाल जी तातेड़ बड़े ही मिलनसार शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे। साधु-सन्तों की सेवा के लिए आपके मन में विशेष भाव था। श्री जैन दिवाकर जी महाराज के सुशिष्य कवि श्री वंशीलाल जी महाराज जो देहली में रुग्णावस्था में रहे, आपने उनकी सेवा-औषधि आदि की व्यवस्था में बहुत ही ध्यान दिया और भक्तिभाव से सेवा की। समाज सेवा में भी आप सदा अग्रणी रहे। अनेक संस्थाओं के आप पदाधिकारी रहे, उनकी प्रगति में दिलचस्पी ली और स्वयं भी उदारतापूर्वक सहयोग करते रहे। आपके चार पुत्रियाँ व एक पुत्र है। आपके सुपुत्र श्री सोहनलाल जी तातेड़ भी आपकी तरह समाज सेवा आदि कार्यों में तथा साधु-सतियों की सेवाभक्ति में सदा अग्रणी रहते हैं।

श्रीमान मोहनलाल जी तातेड़, दिल्ली

आप स्व० श्री कल्लूमल जी तातेड़ के सुपुत्र हैं। स्वभाव से बड़े सरल, नम्र और मिलनसार हैं। धर्मप्रेम भी अच्छा है। कपड़े का अच्छा व्यवसाय है। समाज-सेवा और साधर्मि-सेवा में उदारतापूर्वक दान देते हैं। आपकी धर्मपत्नी सौ० नगीनादेवी जी तपस्विनी श्राविका है।

श्री मोहनलाल जी के पाँच सुपुत्र हैं—

१. श्री विमलचन्द जी, २. नेमचन्द जी, ३ श्री कुशलचन्द जी, ४. महताबचन्द जी, ५. श्री संजय कुमार तथा सुपुत्री है—अंजु कुमारी।

श्री नेमचन्द जी अच्छे सुशिक्षित (चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट) हैं। समाज एवं राष्ट्र-सेवा में सदा आगे रहते हैं। व्यवसाय में बहुत व्यस्त रहते हुए भी आप धार्मिक कार्यों में सहयोग करते रहते हैं। स्वभाव से भी मधुर मिलनसार हैं। प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ के लिए जन-जन का सहयोग प्राप्त करने में श्री नेमचन्द जी ने बहुत ही श्रम किया है।

सौ० नगीनादेवी तातेड़, दिल्ली

आप श्रीमान मोहनलाल जी तातेड़ की धर्मपत्नी हैं। समाज-सेवा, धर्मध्यान, दान और तपस्या में सदा अग्रणी रही हैं। आपने अपने श्वसुर स्व० श्री कल्लूमल जी तातेड़ एवं सास स्व० श्रीमती सुगनकुंवर जी की काफी सेवा की व धर्म-ध्यान का सहयोग दिया। आपने १ से लेकर ११ उपवास तक की लड़ी की है। वर्ष १९७८ में कविरत्न श्री केवलमुनि जी महाराज के चातुर्मास में कविश्री जी की प्रेरणा से आपने मासखमण की तपस्या बड़े ही आत्मबल और उत्साह के साथ की। समय-समय पर आप अनेक प्रकार के तप-त्याग करती रहती हैं।

मासखमण तप की खुशी में जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ में आपने अच्छा सहयोग प्रदान किया है।

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, ताल

जिला उदयपुर के अन्तर्गत 'ताल' बड़ा ही सौभाग्यशाली गाँव रहा है। इस गाँव ने अनेक श्रमण रत्न प्रदान किये हैं, जैसे—तपस्वी श्री मयाचन्द जी महाराज जिन्होंने स्व० गुरुदेव श्री जैन दिवाकर जी महाराज के सान्निध्य में बड़ी-बड़ी आश्चर्यकारक तपस्याएँ कीं। १ से ४१ तक की लड़ी भी की। तपस्वी श्री सेवन्तीचन्द जी महाराज भी बड़े ही तपस्वी और त्यागी थे। आपने ५८ दिन तक की तपस्याएँ कीं। बड़े ही गुणवान श्रमण थे। उपाध्याय श्री [illegible] जी महाराज भी कई वर्षों से रतलाम में विराजमान हैं, आपने भी इसी ताल की पावन भूमि में जन्म लिया है।

ताल श्री संघ ने श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन में उदार सहयोग किया है।

श्रीमान भैरुंसिहजी जामड़, मदनगंज

आप धार्मिक प्रवृत्ति के उदार और परोपकारी सज्जन हैं। मदनगंज के जैन समाज में तथा व्यापारिक क्षेत्र में आपका अच्छा स्थान है। धर्म एवं समाज सेवा के क्षेत्र में आपका अच्छा स्थान है। धर्म एवं समाज-सेवा के क्षेत्र में आप सदा सहयोग देते रहते हैं। आपका जन्म वि. सं. १९८७ में श्रीमान पृथ्वीराज जी जामड़ के घर श्रीमती धापूबाई की कुक्षि से हुआ। आप चार भाई व दो वहिनें है। सभी सुखी सम्पन्न व सुसंस्कारी है।

श्रीयुत गुलाबचन्द जी जैन, दिल्ली

आपश्री जैन दिवाकर जी महाराज के अनन्य भक्तों में से एक है। जब श्री दिवाकर जी महाराज का दिल्ली में चातुर्मास हुआ तब आपने बड़ी श्रद्धा और तत्परता के साथ उनकी सेवा की थी। आपकी कार्यक्षमता देखकर स्व० उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम तथा जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम का कार्यभार संभालने की प्रेरणा दी। उनकी कृपा से आपने यह कार्य सुचारु रूप से चलाया। तथा श्री गुरुदेव के प्रवचन-श्रवण तथा सान्निध्य का भी काफी सुअवसर आया।

आप देहली निवासी स्व० श्री मिलापचन्दजी पारख के सुपुत्र हैं। अच्छे सुशिक्षित हैं तथा सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियों में रुचि रखते हैं। देहली में भी आप प्रेस व्यवसाय में संलग्न हैं। आप वेदवाडे में जैन दिवाकर प्रिंटिंग प्रेस के मालिक हैं।

सेठ चाँदमल जी कोठारी, ब्यावर

श्रीमान चाँदमल जी कोठारी स्व० श्री जैन दिवाकर जी महाराज के बहुत पहले से ही भक्त रहे हैं। जब कभी भी धर्म एवं समाज सेवा का कार्य सामने आया, आपने प्रसन्नतापूर्वक उसमें सहयोग किया।

बम्बई, त्रिचनापल्ली तथा ब्यावर में आपका व्यवसाय है। सन्तों की सेवा तथा धर्म प्रभावना में आप सदा अग्रणी रहते हैं। भाइयों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम और स्नेह सराहनीय है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में आपने उदार सहयोग प्रदान किया है।

सेठ हरकचन्द जी बेताला, इन्दौर

आपकी जन्म-भूमि डेह (जिला नागोर, राजस्थान) है। प्रारम्भ से ही धार्मिक रुचि रही। व्यवसाय में बड़े दक्ष हैं। आपका इन्दौर व कानपुर में दाल मिल है। सरल तथा मिलनसार स्वभाव के हैं। समय-समय पर सामाजिक व धार्मिक कार्यों में दान करते रहते है।

आपकी धर्मपत्नी बहुत तपस्या करती हैं। ८।१०।११।१५ आदि की बड़ी तपस्याएँ भी की हैं। साधु-सन्तों की सेवा तथा त्याग प्रत्याख्यान करती रहती हैं। आपके आठ सुपुत्र हैं—श्री धर्मचन्द जी, मिश्रीलाल जी, सागरमल जी, सम्पतराज जी, उगमचन्द जी, प्रसन्नचन्द जी (डाक्टर), कैलाश-चन्द जी (C. A) व सन्तोष कुमार जी। सभी परिवार बड़ा संस्कारी व धर्मप्रेमी है। श्री सागरमल जी को धर्मध्यान की विशेष भावना व उत्साह है।

सहयोगी सज्जन

श्री कुशालचन्द जी जैन
दिल्ली

श्री देवराज जी सुराना, ब्यावर

श्री हरकचन्द जी बेताला, इन्दौर
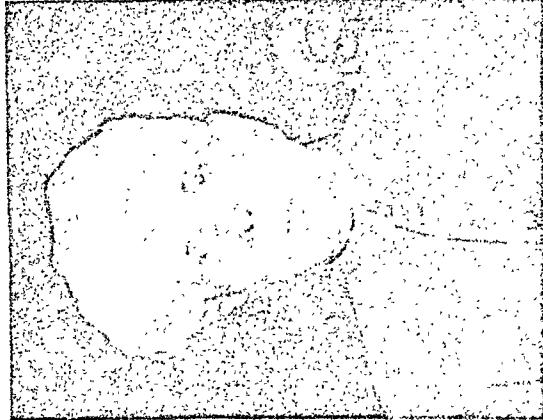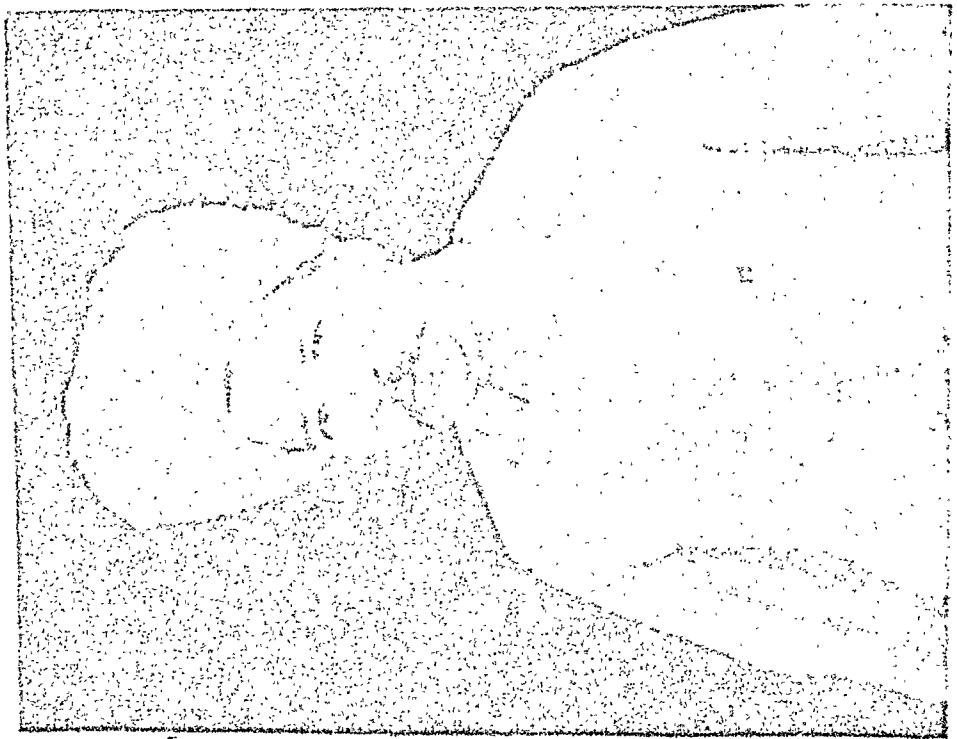
श्रीमान सूरजभान जी जैन, हांसीवाले

आप हांसी के प्रसिद्ध श्रावक श्रीमान मुन्नालाल जी जैन के सुपुत्र हैं। बड़े ही सरल स्वभाव के उदार हृदय सज्जन हैं। गरीब-असहाय व्यक्तियों की सेवा के लिए आप सदा कुछ न कुछ करते रहते हैं। प्रतिमास अपनी आय में से कुछ अंश गरीब असहायों की सेवा में तथा गुप्तदान में खर्च करते हैं। अपनी जन्मभूमि हांसी में भी अस्पताल में बीमारों को बांटने के लिए प्रतिमास दवाइयां भी भेजते रहते हैं।

श्री सूरजभान जी के सुपुत्र श्री प्रेमचन्दजी भी बड़े धर्मप्रेमी उत्साही है। आप देहली (चाँदनी चौक) में कपड़े का व्यापार करते हैं। ✡

श्रीमती प्रेमवती पारख, दिल्ली

दानवीर समाजसेवी श्रीमान रतनलालजी पारख देहली के स्थानकवासी जैन समाज के एक सुप्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आप बड़े ही धार्मिक, शिक्षाप्रेमी तथा उदार हृदय थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमवती पारख भी आपकी भांति ही धार्मिक, उदार हृदया और सरल स्वभाव की हैं। दान-क्षमा आदि कार्यों में विशेष रुचि रखती हैं। आपने अठाई तप तक तपश्चरण भी किया है। अपनी सन्तानों में धार्मिक संस्कार भरने में भी आप बड़ी निपुण सिद्ध हुई हैं। आपके सुपुत्र—श्री महतावचन्द जी व्यवसाय करते हैं, तथा श्री सितावचन्द जी डाक्टर हैं। सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में सदा सहयोग करते रहते हैं।

श्री प्रेमवती जी ने स्व० श्रीमान रतनलाल जी की स्मृति में प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशन में सहयोग दिया है। ✡

सौ० श्रीमती प्रेमलता तातेड़, दिल्ली

आप श्रीमान चन्दनमलजी तातेड़ की धर्मपत्नी हैं। तथा देहली के प्रसिद्ध श्रावक श्रीमान गोपालचन्द जी तातेड़ की पुत्रवधू हैं। श्रीमान चन्दनमल जी बड़े ही उत्साही समाज सेवी और उदार हृदय हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमलता बहन अभी ३३ वर्ष की आयु होते हुए भी बड़ी धर्मात्मा और तपस्या में विशेष रुचि रखती हैं। इस वर्ष आपका मासखमण (३१ दिन का उपवास) करने का विचार था। आप बम्बई गईं, वहाँ तपस्या प्रारम्भ भी कर दी, पर अचानक आपको पारणा करना पड़ा। देहली आकर पुनः तपस्या की। ४ नवम्बर को मासखमण का पारणा हुआ।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ में आपने अच्छा सहयोग दिया है। ✡

श्रीमान गोपालचन्द जी तातेड़, दिल्ली

आप स्व० श्रीमान कल्लूमल जी तातेड़ के सुपुत्र हैं। आप बड़े ही धर्मज्ञ, कष्ट-सहिष्णु और साधु-सन्तों की सेवा करने वाले श्रावक हैं। आपकी धर्मपत्नी सौ० इन्द्रादेवी भी बड़ी धर्मात्मा, तपस्यानुरागिणी है। आप बीमारी में भी धर्म-ध्यान, त्याग-प्रत्याख्यान करके मन को धर्म में लगाये रखते हैं तथा वेदना को बड़े समभावपूर्वक सहन करते हैं। तपस्वीरत्न खादीधारी श्री गणेशमल जी महाराज के चरणों में आपकी अत्यन्त भक्ति थी।

सौ० इन्द्रादेवी जी ने वर्षीतप, एकान्तर तप, आदि तपस्याएँ की हैं। आपके तीन सुपुत्र हैं—श्री खूबचन्द जी, श्री चन्दनमल जी तथा श्री सन्तोषचन्द जी और दो सुपुत्रियां हैं—सौ० विद्यादेवी सौ० सरलादेवी। देहली में आपका वस्त्र व्यवसाय है। समय-समय पर समाज सेवा भी करते रहते हैं। ✡

सेठ श्री भूरचन्द जी मीठालाल जी वाफना, तिरुकोइलूर

सेठ श्री भूरचंदजी वाफना राजस्थान में आगेवा (मारवाड़) के निवासी हैं। अभी आप तिरुकोइलुर नगर (तामिलनाडु) में व्यवसाय करते हैं। आप उदार हृदय वाले धर्मप्रेमी, संतों के भक्त और श्रद्धालु सज्जन हैं। सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं।

आपके सुपुत्र श्री मीठालालजी बड़े ही उत्साही और धर्म कार्यों में रस लेने वाले युवक हैं। श्री रमेशकुमार और आनन्दकुमार दोनों बालक (श्री भूरचन्दजी के पौत्र) आपके पुत्र, हैं जो छोटी आयु में ही बड़े संस्कारी और संत प्रेमी हैं। आपकी पोती विजय कुमारी भी संस्कारी है। बालकों की माताजी भी अच्छे गुणों वाली हैं। ❋

श्रीमान रतनलाल जी मारु, मदनगंज

उदार हृदय श्री रतनलालजी मारु का जन्म वि० सं. १९८० मिगसर वदि १३ नरवर ग्राम में श्री भंवरलाल जी मारू के घर पर हुआ। आपकी माताजी श्रीमती गोपीदेवी भी बड़ी धार्मिक विचारों वाली सरलता व सादगी वाली महिला थी।

श्री रतनलाल जी को दान में विशेष रुचि है। सेवा, शिक्षा, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में आप धन का सदुपयोग करते रहते हैं। स्वभाव से अत्यन्त सरल, सादगी पूर्ण जीवन और धार्मिक प्रवृत्तियों में रुचिशील श्री मारु जी स्थानीय जैन समाज के विशिष्ट व्यक्ति हैं। आपका बीड़ी का व्यवसाय है। आप तीन भाई तथा तीन बहनें हैं। सभी गुरुदेवश्री के भक्त हैं। ❋

श्रीमान छगनलाल जी गोठी, मद्रास

मौन भाव से समाज सेवा करना तथा जीवन को सादा धर्म मय बनाये रखना—यही उद्देश्य है श्री छगनलाल जी गोठी के जीवन का।

आपके पिताजी श्री बालचन्दजी गोठी भी बड़े ही धार्मिक व सुसंस्कारी थे। आप तीन भाई हैं जिनमें द्वितीय क्रम आपका है। आपने कुछ वर्षों तक जयपुर में जवाहरात का व्यवसाय किया। फिर करीब १२ वर्ष तक बर्मा के रंगून शहर में जवाहरात का व्यापार किया और अच्छी सफलता प्राप्त की। अभी काफी समय से साहूकार पेठ (मद्रास शहर) में 'शांति डायमंड' नाम से आपका जवाहरात का अच्छा व्यवसाय है।

आप स्वभाव से बड़े ही सरल, विनम्र और मिलनसार हैं। साधु-सन्तों के प्रति अच्छा प्रेम व भक्ति रखते हैं। समाज के कार्यों में समय-समय पर उदारमन से सहयोग करते हैं।

कविरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज के प्रति आपकी विशेष भक्ति-भावना है। ❋

स्व० सेठ तेजमलजी पुसालाल जी रुणवाल, बीजापुर

स्व० श्रीमान तेजमल जी रुणवाल का जन्म २०-१-१९०३ को हुआ। आप बड़े ही धर्मप्रेमी, सादगीप्रिय तथा साधु-सन्तों के भक्त थे। धार्मिक सामाजिक कार्यों में उत्साह रखते थे। दिनांक २१-१-१९७४ को आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रूपाबाई तेजमल जी बड़ी धर्मशीला, सरल स्वभावी हैं। आपकी सरलता-उदारता व प्रेम-भावना के कारण इतना बड़ा परिवार आज भी प्रेम व स्नेह के सूत्र में बंधा हुआ एक आदर्श परिवार बना हुआ है।

श्रीमान तेजमल जी के क्रमशः पांच पुत्र हैं—

(१) श्री प्रेमचन्द जी, (२) उदैराज जी (३) अमृतलाल जी, (४) [illegible], (५) जवाहरलाल जी। तीन पुत्रियां हैं जिनका विवाह हो गया है। सभी सुखी हैं। सब में धर्म की भावना अच्छी है तथा मातृ-प्रेम एवं व्यवहार शुद्धि की तरफ विशेष भावना रखते हैं। ❋

श्रीमान श्रीकिशनचन्द जी तातेड़, दिल्ली

श्रीमान किशनचन्द जी तातेड़ देहली निवासी श्रीमान स्व० कल्लूमल जी तातेड़ के सुपुत्र हैं। आप बड़े ही शांत-स्वभाव के सरलात्मा हैं।

साधु-सन्तों की विशेष सेवा करते रहते हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती नगीनादेवी भी आपकी भाँति सरल हृदया धर्मशीला महिला हैं। आपने तेले, चोले व अठाई आदि तपस्याएँ की हैं। आजकल प्रतिमाह चार आयम्बिल करते हैं।

आपके चार पुत्र हैं—श्री विजयकुमारजी, निर्मलकुमार जी, धर्मचन्दजी एवं अजयकुमारजी। सभी सुयोग्य तथा सुसंस्कारी हैं।

निर्मल कुमार जी तातेड़

श्री किशनचन्दजी तातेड़ के सपुत्र श्री निर्मलकुमार जी तातेड़ एक समाज-सेवी एवं धर्म-प्रेमी उत्साही नवयुवक हैं। आप चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट हैं और दिल्ली में अपना व्यवसाय करते हैं। आपका काफी समाजसेवी संस्थाओं से सम्बन्ध है। आप अपने माता-पिता की भाँति साधु-सन्तों की काफी सेवा करते रहते हैं।

स्व० श्री किशनचन्द जी चौरड़िया, देहली

देहली के श्रावक शिरोमणी लाला किशनचन्द जी चौरड़िया का जीवन सरलता की अनुपम मिसाल रहा है। आप लाला कपूरचन्द जी चौरड़िया जोकि चाँदनी चौक बिरादरी के अनेक वर्षों तक प्रधान रहे, के एकमात्र पुत्र थे। अपने पिता की भाँति धर्माचरण में सदैव आगे रहे। व्यापार में प्रामाणिक व अनेकों को सहारा देने वाले थे। स्वयं बहुत सादगी से रहते थे, किन्तु दानशीलता में अग्रगण्य थे। हर वर्ष सन्त गणों के दर्शनार्थ सपरिवार यात्रा पर जाते थे। साधु-सन्तों की सेवा का लाभ लेने में कभी पीछे न रहे। जैन दिवाकर जी महाराज साहब के अनन्य भक्तों में से थे। हर सप्ताह व्रत आयंबिल आदि तपस्या भी बराबर करते थे।

आपके पुत्र श्री महताबचन्द चौरड़िया, पुत्री श्रीमती विजयकुमारी भी उसी प्रकार धर्माचरण, तप संयम की प्रवृत्तियों व दानशीलता में अग्रगण्य है।

श्रीमती नगीना देवी चौरड़िया

आप स्व० लाला किशनचन्दजी चौरड़िया की धर्मपत्नी व समाज की अग्रगण्य नेताओं में से हैं। जैन साहित्य व आगमों का ज्ञान अनुकरणीय है। आपको धार्मिक संस्कार माता की गोद से ही मिले। आपकी माता श्रीमती फूलमती जी (धर्मपत्नी लाला धन्नोमल जी सुजंती जौहरी) ने युवावस्था में ही भागवती दीक्षा धारण करली थी और लगभग अर्धशताब्दि तक संयम जीवन का पालन किया। देहली में ही अनेक वर्षों स्थिरावास रहा। धर्मवीर माता के सान्निध्य में उनकी शूरवीर पुत्री ने यहाँ समाज की सेवा की है। अनेक वर्षों तक आप एस० एस० जैन महिला संगठन सभा की सचिव व प्रधान रहीं। उन दिनों ही धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रचार व प्रसार के लिए आप तत्कालीन राजनेताओं राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्रप्रसाद जी व प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू जी से मिलती रही है।

श्री दिवाकर जी महाराज साहब की आप अनन्य भक्तों में से रही हैं। ज्ञान भी उन्हीं से प्राप्त किया।

आपके ज्ञान व अनुभव का सहयोग समाज को बराबर मिलता रहे यही कामना है।
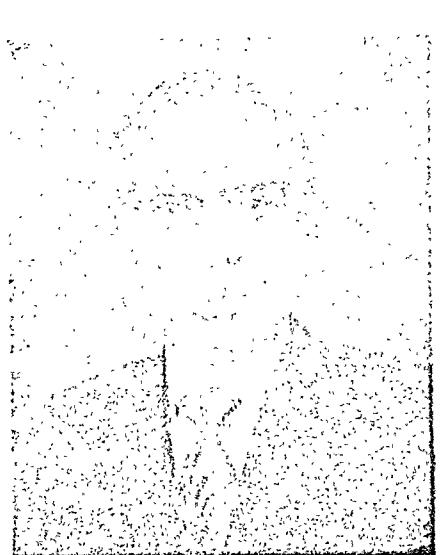
श्री किशनचन्द जी चोरड़िया
दिल्ली

श्रीमती नगीनादेवी चौरड़िया

सहयोगी सज्जन
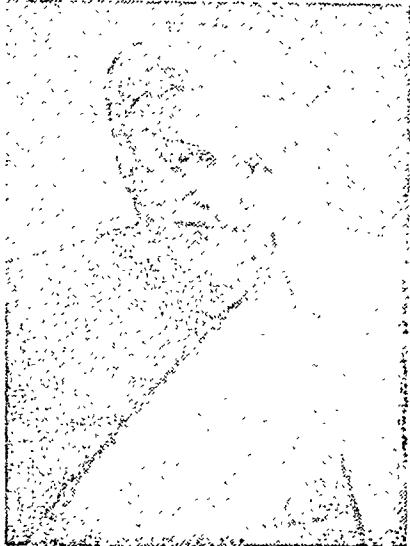
स्व० सुश्री किरन चंद, दिल्ली

श्री जमनादास जी सुराना, दिल्ली
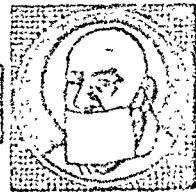
स्व० सुश्री किरन वैद की स्मृति में

आप देहली निवासी श्रीमान शान्तिलाल जी वैद की होनहार सुपुत्री थीं। बचपन से ही बड़ी संस्कारी, प्रतिभा-सम्पन्न और धार्मिक विचार की थीं। माता-पिता की दुलारी थीं। अध्ययन में भी अच्छी गति थी।

संसार में कुछ फूल खिलने से पूर्व ही मुर्झा जाते हैं और उनकी मधुर सुवास से हम वंचित रह जाते हैं। यही हाल सुश्री किरन के विषय में हुआ। उनका जन्म २७-६-६१ को हुआ था। और सोलह वर्ष की कोमल कच्ची आयु में दिनांक ५ अक्टूबर, १६७७ को क्रूर काल ने उनको उठा लिया।

सुश्री किरन की स्नेह स्मृति में गुरुभक्त धर्मप्रेमी श्रीमान शान्तिलाल जी वैद स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में सहयोगी बने हैं।

स्व० श्री जमनादास जी सुराना, देहली

श्रीमान जमनादास जी स्व० श्रीपन्नालाल जी सुराना के सुपुत्र थे। आप अपने पिताजी की ही भांति सामाजिक कार्यों में भाग लेने वाले धार्मिकवृत्ति के सदाचारी सुसंस्कारी श्रावक थे। आपका स्वर्गवास १८ मार्च, १६६६ को जयपुर में हुआ।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती धनकंवर जी भी अच्छी धर्मानुरागिणी तथा दानशील महिला है। आपने अनेक प्रकार की तपस्याएँ की है। १५ का थोकड़ा बड़ा पक्खवासा, ओलीजी, चौविहार आयंबिल आदि तपस्या करती रहती है। आप साधु-सन्तों की सेवा में तथा गरीब-दुखियों की सहायता करने में सदा तत्पर रहती है।

आपके १ पुत्र व ४ पुत्रियाँ है। पुत्र श्री जगमोहनलाल जी भी आपकी ही भांति धर्म-समाज आदि की सेवा में अग्रणी रहते है।

श्रीमान पुखराजजी किशनलालजी तातेड़ सिकन्दराबाद

सेठ श्री गुलाबचन्दजी तातेड़ सिकन्दराबाद (आं० प्र०) के प्रमुख श्रावकों की गणना में थे। आपके सुपुत्र श्रीमान पुखराज जी एवं श्री किशनलाल जी भी वहाँ की सामाजिक तथा धार्मिक गतिविधियों के प्रमुख सूत्रधार हैं। आपकी धार्मिक भावना, त्याग-प्रत्याख्यान की वृत्ति विशेष प्रेरणादायी है। खादीधारी तपस्वी श्री गणेशीलाल जी महाराज के प्रति आपकी बड़ी भक्ति है। उनसे आपने अनेक त्याग-प्रत्याख्यान भी ग्रहण किये हैं। स्थानीय धार्मिक कार्यों में सदा आपका सहयोग मिलता रहता है।

पोट मार्केट (सिकन्दराबाद) में आपका सराफा का व्यवसाय है। अपने व्यापार में भी बड़े प्रामाणिक हैं। आपका भरापूरा परिवार है। सभी बड़े सुसंस्कारी व सुशील हैं।

श्रीमान सेठ भंवरलाल जी बांठिया, बेंगलूर

श्रीमान भंवरलाल जी बांठिया, बेंगलोर-स्थानकवासी जैन समाज के एक उत्साही [illegible] [illegible] है। सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में सदा सक्रिय रहते हैं। [illegible] बेंगलूर के [illegible] पदाधिकारी भी रह चुके हैं। अनेक शिक्षण संस्थाओं तथा समाजसेवी संस्थाओं से [illegible] सम्बन्ध रहा है। साधु-सन्तों की सेवा तथा संघ-समाज पर दान आदि करते रहते हैं।

आपकी धर्मपत्नी भी धार्मिक [illegible] की हैं। [illegible] भी संस्कारी हैं।

श्रीमती बसन्तीदेवी नाहर, दिल्ली

आप स्व० श्री मंगलचन्द जी नाहर की धर्मपत्नी है। स्वभाव से बड़ी शांत और धार्मिक है। स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहते हुए भी तपस्या तथा धर्मध्यान में अच्छी रुचि रखती है। अठाई तक तपस्या भी कर चुकी है।

आपके तीन सुपुत्र है—श्री पूनमचन्द जी, श्री प्रीतमचन्द जी और श्री पदमचन्द जी। तीनों ही अच्छे स्वभाव के सामाजिक भावना वाले हैं। जवाहरात का व्यवसाय करते हैं तथा समाज सेवा में सदा हाथ बँटाते है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में आपने अपने स्वर्गीय पति श्री मंगलचन्द जी की पुण्य स्मृति में सहयोग प्रदान किया है। ✡

श्री कस्तूरचन्द जी लोढा, दिल्ली

आप बड़े ही उदार हृदय, समाज सेवी प्रतिष्ठित जौहरी हैं। समाज के कार्यों में सदा दिल खोलकर सहयोग देते हैं।

आपके सुपुत्र श्री रघुवीर सिंह जी लोढा है, जो स्वयं भी जवाहरात का व्यवसाय करते हैं तथा उदार हृदय है। राम और श्याम आपके दो पौत्र हैं, दोनों ही बड़े होनहार और प्रतिभाशाली है। श्री कस्तूरचन्द जी की दो सुपुत्रियाँ हैं, जो बड़ी धर्मशीला हैं।

स्व० पिताश्री चुनीलाल जी लोढा की स्मृति में आपने सहयोग प्रदान किया है। ✡

स्व० श्रीमती धनवती देवी लोढा, दिल्ली

आप श्रीमान कस्तूरचन्द जी लोढा की धर्मपत्नी थी।

स्वभाव से बड़ी मधुर, विनम्र, समझदार और धर्मपरायण ! तपस्या में विशेष रुचि थी। १ से ६ लेकर तक तपस्याएं की थीं। दो बार वर्षीतप भी किया।

आपके सुपुत्र श्री रघुवीरसिंह जी लोढा एक अच्छे उदार सज्जन है। सदा हँसमुख, मिलनसार और हर काम में उत्साही हैं। आप जवाहरात का व्यापार करते हैं। आपकी धर्मपत्नी सौ० प्रेमवती जैन भी बड़ी धार्मिक भावना वाली हैं। माता जी की रुग्णावस्था में श्री रघुवीरसिंह जी तथा सौ० प्रेमवती जी ने बहुत ही सेवा की तथा धार्मिक सहयोग दिया। स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में आपने अच्छा सहयोग प्रदान किया है। ✡

स्व० श्री पन्नालालजी घोड़ावत (दिल्ली) की स्मृति में

स्व० श्री हजारीलाल जी घोड़ावत के सुपुत्र श्रीमान (स्व०) पन्नालाल जी घोड़ावत एक कर्मठ समाज सेवी तथा धर्मप्रेमी सज्जन थे। स्वभाव से बड़े सरल तथा शांतिप्रिय थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दनदेवी जी भी आपकी तरह ही बड़ी धार्मिक, सरलमना और विनम्र स्वभाव की हैं। आपने अठाई तक तपस्या भी की है।

आपके सुपुत्र श्री रूपचन्दजी घोड़ावत भी पिताजी की तरह ही समाज-सेवा की भावना रखते हैं, धार्मिक कार्यों में उत्साही हैं। तथा आपके दो पौत्र हैं श्री विमलचन्द जी एवं श्री कमल चन्द जी। श्री कमलचन्द जी कर्मठ कार्यकर्ता हैं। सामाजिक तथा धार्मिक समारोहों में बड़ी दिलचस्पी लेते है और समय-समय पर सहयोग भी करते हैं।

श्रीमती कुन्दनदेवीजी ने स्वर्गीय श्री पन्नालाल जी की स्मृति में प्रकाशन-सहयोग किया है। ✡
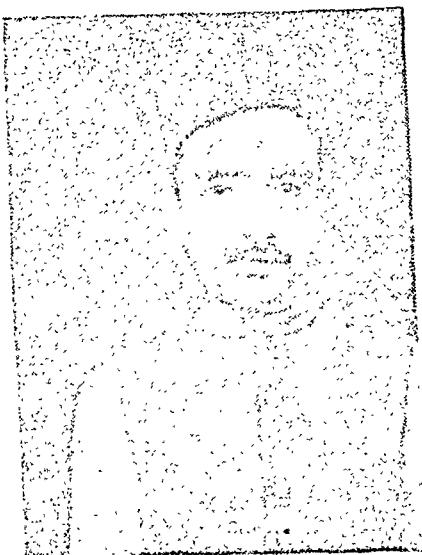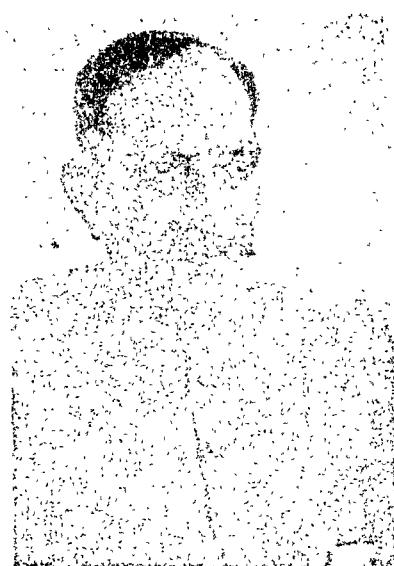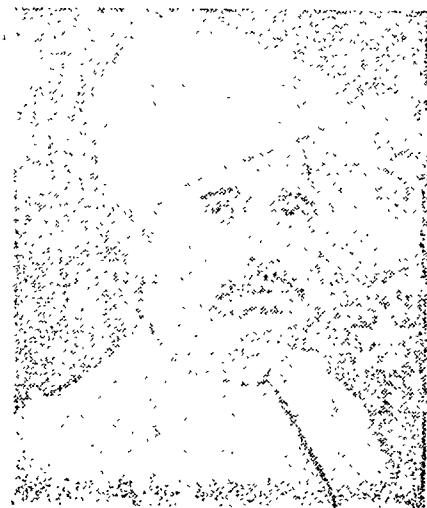
श्री हजारीलाल जी बैद' दिल्ली
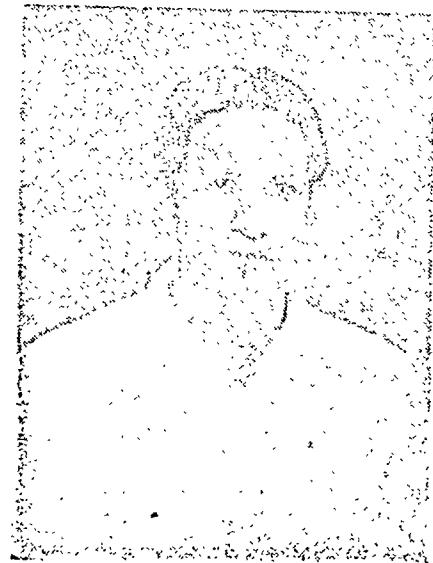
श्री हेमचन्द जी संखवाल, दिल्ली

सहयोगी सज्जन

श्रीमती विनयकुमारी रावयान

श्रीमती धनवतीदेवी छजलानी
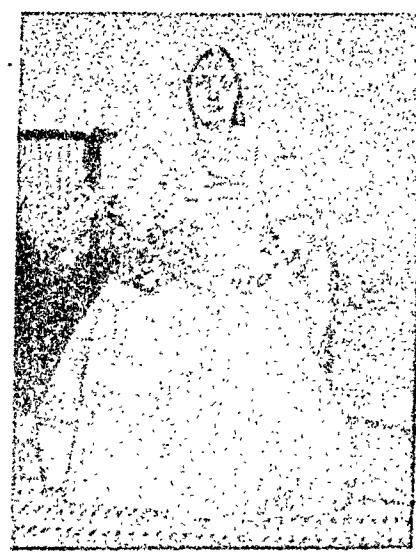
स्व० भंवरीलाल जी वैद (खंडेला) की स्मृति में

स्व० श्रीमान भंवरीलाल जी वैद खंडेला के निवासी थे।

आप धर्म में अच्छे श्रद्धालु थे। तपस्याएं भी करते थे। कई अठाइयां भी की थीं। प्रत्येक शुभ-कार्य में उदारतापूर्वक सहयोग दान भी करते थे।

आपके चार सुपुत्र हैं—श्री ताराचन्द जी, श्री शांतिलाल जी, श्री निहालचन्दजी तथा श्री ज्ञानचन्द जी। चारों ही सज्जन पिताजी के आदर्शों का अनुसरण करने वाले हैं। देहली में जवाहरात का व्यवसाय करते हैं। स्व० पिताजी की स्मृति में चारों बन्धुओं ने सहयोग दिया है।

☆

स्व० हजारीलाल जी वैद (खण्डेला) की स्मृति में

खंडेला निवासी श्रीमान हजारीलाल जी वैद बड़े ही धर्म-प्रेमी और तपस्वी श्रावक थे। आपने जीवन में अनेक तपस्याएँ कीं। विशेष रूप में अठाई तप की तपस्याएँ। तपस्वी होने के साथ-साथ आप उदार दानशील वृत्ति के थे।

आपके सुपुत्र श्री वंशीलाल जी वैद भी आपकी तरह उदार और सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवा कार्यों में सदा भाग लेते हैं, और अपना योगदान भी करते हैं। देहली में आपका जवाहरात का व्यवसाय है।

☆

स्व० श्रीमती विनयकुमारी राकयान, दिल्ली

आप समाज सेवी श्री [illegible] जी राकयान की धर्मपत्नी थी। बचपन से ही धार्मिक संस्कारों में पली थी अतः धार्मिक भावना, दया, तपस्या आदि के शुभ संस्कार आपमें गहरे थे।

आपके दो पुत्र श्री आदीश्वरकुमार जी एवं श्री शांतिकुमार जी हैं। आपकी पुत्री श्रीमती मधुकुमारी जी है। श्री आदीश्वर कुमार जी आपकी भांति ही धर्मप्रेमी और समाज सेवी व्यक्ति हैं। आप अनेक समाज-सेवी संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। आप दीन-दुखियों की सहायता करने में सदा आगे रहते हैं।

स्व० श्रीमती धनवती देवी, छजलानी, दिल्ली

आप श्रीमान पन्नालाल जी छजलानी की धर्मपत्नी थीं। धार्मिक भावना के साथ ही तपस्या में अधिक रुचि थी। अठाई व ११ तक की तपस्याएं कीं। स्व० श्रीमती धनवती जी के पिता श्री चम्पालालजी चौरडिया भी बहुत धर्मप्रेमी थे।

श्रीमान पन्नालाल जी स्वयं भी अनेक समाजसेवी तथा धार्मिक संस्थाओं से सम्बद्ध है। बड़े उत्साही और कर्मठ समाज सेवी है। आपके सुपुत्र श्री तुमुल कुमार जी भी बड़े समझदार तथा धर्मप्रेमी युवक है।

श्रीमान शेरमलजी जैन, सिकन्दराबाद

आंध्रप्रदेश की राजधानी सिकन्दराबाद का स्थानकवासी जैन समाज धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में सदा प्रगतिशील रहा है। वहाँ के श्वे० स्थानकवासी जैन श्रावक संघ के उपाध्यक्ष हैं—

श्रीमान शेरमल जी·······। आप बड़े ही मिलनसार और हँसमुख हैं। आपका हृदय उदार तथा धार्मिक श्रद्धा से परिपूर्ण है।

आपका सर्राफा (सोना-चाँदी) का अच्छा व्यवसाय है तथा आंध्रप्रदेश पान ब्रोकर्स ऐसोसियेशन के आप अध्यक्ष हैं। अनेक धार्मिक तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों को सम्भाले हुये हैं।

☆

श्रीमान हेमचन्द जी संखवाल, दिल्ली

श्री स्थानकवासी जैन समाज (चांदनीचौक देहली) के जाने-माने श्रावक सेठ स्व० श्री जगन्नाथ जी संखवाल के सुपुत्र है—श्रीमान हेमचन्द जी संखवाल। आप भी स्व० पिताजी की तरह समाज-सेवा, धर्म-प्रभावना आदि में उत्साह पूर्वक भाग लेते है। और उदारता पूर्वक दान देते हैं। आपका जवाहरात का बहुत अच्छा व्यवसाय है।

आपकी धर्मपत्नी सौ० श्रीमती रत्नप्रभा जी भी बड़ी समझदार उदार हृदया और धर्मशीला श्राविका है। आपका भवन, महावीर जैन भवन (चांदनी चौक) के सबसे निकट होने से साधु-सतियों की सेवा तथा सुपात्र दान का सर्वाधिक लाभ भी आपको मिलता रहता है। आप बड़ी श्रद्धा और विवेकपूर्वक सेवा करती रहती हैं।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ के उदार सहयोगियों की

शुभ नामावली

२५१) श्री शाह गुलाबचन्दजी भँवरलाल जी मेहता, उदयपुर
२५१) श्री मोतीलालजी हीरालालजी बोरा, वकील अहमदनगर
२५१) श्री सुखमालचन्दजी जैन, दरियागंज दिल्ली
२०१) श्री भीकामलजी लोढा, मालीवाड़ा, दिल्ली
२०१) श्री कस्तूरमलजी हेमन्तकुमारजी सिंघी, मालीवाड़ा, दिल्ली
२०२) श्री तखतमलजी गहरीलालजी भटेवरा, अहमदाबाद
२०१) श्री प्यारेलालजी मदनलालजी सोनी, अजमेर
१५१) श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ मोती कटरा, आगरा
१०१) श्री कनकमलजी रूपचन्दजी डाबरिया, अजमेर
१०१) श्री सौभागमलजी चपलोद, अजमेर
१०१) श्री हगामीलालजी चांदमलजी गोखरू, अजमेर
१०१) श्री कस्तूरमलजी सांड, अजमेर
१०१) श्री कंवरलालजी नागचन्दजी चौधरी, अजमेर
१०१) श्री भेरूँलालजी कपूरचन्दजी जैन, अजमेर
१०१) श्री सूरजकरणजी लोढा, अजमेर
१०१) श्री पीसालालजी लालचन्दजी बीरवाल, अजमेर
१०१) श्री रिखबचन्दजी जैन वकील आर्यनगर, अजमेर
१०१) सौ० प्रेमकुँवर बाई, अजमेर
१०१) श्रीमान धानचन्दजी मेहता (अध्यक्ष श्री० व० स्था० श्रीसंघ) जोधपुर
१०१) श्रीमान सुमेरमलजी साहब मेड़तिया (मन्त्री श्री० व० स्था० श्रीसंघ) जोधपुर
१०१) श्रीमान अगरचन्दजी फतेहचन्दजी (कोषाध्यक्ष श्री० व० स्था० श्रीसंघ) ,,
१०१) श्रीमान सुजानमलजी संचेती जोधपुर
१०१) श्रीमान खेमराज जी संचेती ,,
१०१) श्रीमान हुकमचन्द जी मेहता ,,
१०१) श्रीमान कनकराज जी गोलिया ,,
१०१) श्रीमान [illegible] बाफना, जोधपुर
१०१) श्रीमान गणपतमलजी सुराणा ,,
१०१) श्रीमान नेमीचन्द जी कोठारी ,,
१०१) श्रीमान [illegible] जी भण्डारी ,,
१०१) श्रीमान [illegible] ,,

१०१) श्रीमान जेठमलजी साहव "चूड़ी वाले", जोधपुर
१०१) श्रीमान मूलचन्द जी गोलेच्छा, जोधपुर
१०१) श्रीमान पारसमल जी साँखला, जोधपुर
१०१) श्री अतरचन्द जी जैन, मालीवाड़ा, दिल्ली
१०१) कु० अंजू तातेड़, छीपीवाड़ा, दिल्ली
१०१) श्री विरधीचन्द जी वैद, मालीवाड़ा, दिल्ली
१०१) श्री अजीत प्रसाद जी जैन, दिल्ली
१०१) श्री सुरेशचन्द जी जैन, दिल्ली
१०१) श्री युद्धवीर सिंह जी जैन, दिल्ली
१०१) श्री महेन्द्रसिंह जी पारख, मालीवाड़ा, दिल्ली
१०१) सौ० निर्मला पारख, मालीवाड़ा, दिल्ली
१०१) श्री श्यामसुन्दर जी लोढा, मालीवाड़ा, दिल्ली
१०१) श्री उदयसिंह जी जैन, कश्मीरी गेट दिल्ली
१०१) श्री पदमचन्द जी लोढा, मालीवाड़ा, दिल्ली
१०१) श्री रतनलाल जी लोढा (पाली वाले), दिल्ली
१०१) श्री चन्दूलाल जी सी० झवेरी, शक्तिनगर, दिल्ली
१०१) श्री जसवन्तराय जी सी० शाह, प्रेमनगर, दिल्ली
१०१) श्रीमान भुरालाल जी राजमल जी पीपाड़ा, ब्यावर
१०१) श्री पुखराज जी नौरतमल जी लोढा, ब्यावर
१०१) श्री सम्पतराज शान्तिलाल लोढा, ब्यावर
१०१) श्री मदनलाल जी नौरतमल जी संचेती, ब्यावर
१०१) श्री पुनमचन्द जी नौरतमल जी वावेल, ब्यावर
१०१) श्री चतुरभुज जी उत्तमचन्द जी गुगलिया, ब्यावर
१०१) श्री मोखमसिंह जी चाँदमल जी मेहता, ब्यावर
१०१) श्री चांदमल जी वीरेन्द्र कुमार जी मेहता, मदनगंज (किसनगढ़)
१०१) श्री माँगीलाल जी चोरड़िया, मदनगंज (किसनगढ़)
१०१) श्रीमती हंगामकंवर वाई, धर्मपत्नी—श्री पुखराज जी कोटेचा, मदनगंज (किसनगढ़)
१०१) सौ० वादामवाई, धर्मपत्नी श्री पन्नालाल जी वरड़िया, मदनगंज (किसनगढ़)
१०१) श्री लादूलाल जी नेमीचन्द जी बम्ब, ओसवाली मोहल्ला, मदनगंज (किसनगढ़)
१०१) श्रीमती इचरजवाई धर्मपत्नी स्व० गोविन्दसिंह जी मुणोत, मदनगंज (किसनगढ़)
१०१) श्रीमती सारसवाई धर्मपत्नी श्रीमान भंवरलाल जी सोनी, मदनगंज (किसनगढ़)
१०१) श्रीमान मनोहरसिंह जी रतनलाल जी घूपिया (कादेड़ावाला), मदनगंज (किसनगढ़)
१०१) श्री हनुमन्तसिंह जी लोढा, वालाजी रोड, विजयनगर
१०१) श्री लालचन्द जी पोखरना, विजयनगर
१०१) श्री सुज्ञानचन्द जी डावरिया, विजयनगर

१०१) श्री मदनलाल जी नावेडा, विजयनगर
१०१) श्री सोहनलाल जी कावड़िया, विजयनगर
१०१) श्री सोहनलालजी वच्छराज जी भण्डारी, विजयनगर
१०१) श्री उदयमल जी खाव्या, विजयनगर
१०१) श्रीमती सन्तोषबाई, धर्मपत्नी गजराज जी तातेड़, विजयनगर

सवाई माधोपुर में (वर्षीतप करने वाली बहनों की ओर से)

१०१) सौ० रामप्यारी देवी, रामकल्याण जी पंसारी, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती धापूबाई नन्दलाल जी ठेकेदार, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती बादामबाई सौभागमल जी डेकवावाले, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती अनोखीबाई धूलीलाल जी पटेल, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती कंचनबाई मोतीलाल जी मोटर वाला, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती फूलाबाई हीरालाल जी मोटर वाला, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती कल्याणीबाई कन्हैयालाल जी चौधरी, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती चौसरबाई लड्डूलाल जी चौधरी, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती चलतीबाई चौथमलजी खांजणा वाले, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती अनारबाई कालुलाल जी बाबई वाले, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती फूलाबाई रतनलाल जी सौंफ वाले, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती दौलतबाई धर्मपत्नी श्री मंगलचन्द जी बीरवाल, सवाई माधोपुर

१०१) श्रीयुत पवन कुमारजी पालावात (पिता श्री रतनलालजी पालावत की स्मृति में), जयपुर
१०१) श्रीयुत एस० एन० जैन, जयपुर
१०१) श्री विमलसिंह जी मेहता, जयपुर
१०१) श्री निहालचन्द जी लोढा, जयपुर
१०१) श्री नथमल जी जैन (बाईसगोदाम), जयपुर
१०१) श्री शिवराज जी खाव्या, रामगढ़
१०१) श्री विमलचन्द जी छाजेड़, भीलवाड़ा
१०१) श्री चांदमल जी गोरीलाल जी नागोता, निम्बाहेड़ा
१०१) श्री राधाकिशन जी मोहनलाल जी बीरवाल, नीमच
१०१) श्री फूलचन्द जी बाबूलाल जी पोरवाल जैन, इन्दौर
१०१) श्री भंवरलाल जी कल्याणमल जी जैन, इन्दौर
१०१) श्री कल्याणमल जी मूलचन्द जी जैन, इन्दौर
१०१) सौ० मंजुलाबहन, स्नेहलता गंज, इन्दौर
१०१) श्री कन्हैयालाल जी प्रभुलाल जी जैन [illegible], इन्दौर
१०१) श्री श्वे० स्था० जैन [illegible] संघ, इन्दौर
१०१) श्री [illegible] जी [illegible] जी [illegible], [illegible]
१०१) श्री [illegible] जी [illegible] जी [illegible], [illegible]
१०१) श्री [illegible] जी [illegible] जी [illegible], [illegible]
१०१) श्रीमती [illegible] धर्मपत्नी [illegible] जी मेहता, [illegible]

१०१) श्री सोहनलाल जी शंकरलाल जी जैन, मालेगांव
१०१) सेठ श्री चम्पालाल जी धारीवाल, पाली
१०१) सौ० रोशनदेवी धर्मपत्नी श्री शांतिलाल जी मंडलेचा, खाचरोद
१०१) सौ० पुष्पादेवी धर्मपत्नी श्री नवीन कुमार जी मंडलेचा, खाचरोद
१०१) श्री पुरुषोत्तमदास जी मालेरकोटला वाले
१०१) श्री जे० दीपचन्द जी बोकड़िया, मद्रास
१०१) श्री जे० पारसमल जी बोकड़िया, मद्रास
१०१) श्री बसन्तलाल जी चाँदमल जी बोकड़िया, कान्हूर पठारकर, सोनई
१०१) श्री रसिकलाल जी के० पारिख, जोहरी केम्बे
१०१) एक सज्जन (गुप्त भेंट), मद्रास
१०१) श्री महावीरचन्द जी बरमेचा, मद्रास
१०१) श्री जयचन्द जी कोचेटा, राबर्टसन पेठ, K. C. F.
१०१) श्री जयचन्द जी चौधरी, अलवर
१०१) सौ० भावना बैन धर्मपत्नी डा० पुखराज जी देसरला, देवगढ़ (मदारिया)
१०१) श्री माणकचन्द जी हंसराज जी बेताला, बागलकोट
१०१) श्री शशिकान्त जी जैन, (पूना निवासी) सेलम
१०१) श्री हरकचन्द हस्तीमल जी संचेती, पूना
१०१) श्री बलवन्तसिंह जी सिंघवी (शाहपुरा वाले), मन्दसौर
१०१) श्रीमती पानबाई भालोट वाली, मन्दसौर
१०१) श्रीमान भंवरलाल जी नवरतनमल जी सकलेचा, मेट्टूपालियम (तमिलनाडु)
१०१) श्री चन्द्रकांत जी खिमानी, बेंगलोर
१०१) श्री पोपट लाल जी रामचंद जी कणविट, पूना
१०१) स्व० श्रीमती तोतीबाई धर्मपत्नी श्री मेहरचंद जी वकील, गुडगाँवां
१०१) श्री मास्टर साहब मंगलचन्दजी सकलेचा, दरगाह बाजार, अजमेर
१०१) श्री अमरचन्दजी कासवा, लाखन कोटड़ी, अजमेर
१०१) श्री गोविन्दरायजी फूलचन्दजी बीरवाल, ऊन के व्यापारी, अजमेर
१०१) श्री आर० सी० जैन, ८३, एवरेस्ट अपार्टमेंट, माउंट प्लीजेंट रोड, मालाबार हिल बम्बई नं० ६
१०१) श्री आर० सी० जैन, जैन ज्वैलर्स, (ग्रहरत्न विक्रेता) कदम कुआं, पटना (बिहार)
१०१) श्री ताराचन्दजी कोठारी, बांसवाड़ा (राज०)